नमस्ते जी

ऋषि दयानंद द्वारा प्रचारित वैदिक विचारधारा ने सैकड़ो हृदय को क्रान्तिकारी विचारो से भर दिया | जो वेद उस काल में विचारो से भी भुला दिए गए थे | ऋषि दयानंद ने उन हृदयों को वेदों के विचारो से ओतप्रोत कर दिया और देश में वेद गंगा बहने लगी | ऋषि के अपने अल्प कार्य काल में समाज की आध्यात्मिक, सामाजिक, और व्यक्तिगत विचार धारा को बदल के रख दिया | ऋषि के बाद भी कही वर्षो तक यह परिपाटी चली पर यह वैचारिक परिवर्तन पुनः उसी विकृति की और लौट रहा है | और इसी विकृति को रोकने के लिए वैदिक विद्वान प्रो० राजेंद्र जी जिज्ञासु के सानिध्य में "पंडित लेखराम वैदिक मिशन" संस्था का जन्म हुआ है | इस संस्था का मुख्य उद्देश्य वेदों को समाज रूपी शरीर के रक्त धमनियों में रक्त के समान स्थापित करना है | यह कार्य ऋषि के जीवन का मुख्य उद्देश्य था और यही इस संस्था का भी मुख्य उद्देश्य है | संस्था के अन्य उद्देश्यों में सम्लित है साहित्य का सृजन करना | जो दुर्लभ आर्य साहित्य नष्ट होने की और अग्रसर है उस साहित्य को नष्ट होने से बचाना और उस साहित्य को क्रम बद्ध तरीके से हमारे भाई और बहनों के समक्ष प्रस्तुत करना जिससे उनकी स्वाध्याय में रुचि बढ़े और वे तुलनात्मक अध्यन कर सकें जिससे उनकी स्वधर्म में रूचि बढ़े और अन्य मत मतान्तरो की जानकारी उन्हें प्राप्त हो और वे विधर्मियो द्वारा लगाये जा रहे विभिन्न आक्षेपों का उत्तर दे सकें विधर्मियो से स्वयं भी बचें और अन्यो की भी सहयता करें | संस्था का उद्देश्य है समाज के समक्ष हमारे गौरव शाली इतिहास को प्रस्तुत करना जिससे हमारा रक्त जो ठंडा हो गया है वह पुनः गर्म हो सके और हम हमारे इतिहास पुरुषो का मान सम्मान करें और उनके बताये गये नीतिगत मार्ग पर चलें | संस्था का अन्य उद्देश्य गौ पालन और गौ सेवा को बढ़ावा देना जिससे पशुओ के प्रति प्रेम, दया का भाव बढ़े और इन पशुओ की हत्या बंद हो, समाज में हो रहे परमात्मा के नाम पर पाखण्ड, अन्धविश्वास, अत्याचार को जड़ से नष्ट करना और परमात्मा के शुद्ध वैदिक स्वरुप को समाज के समक्ष रखना, हमारे युवा शक्ति को अनेक भोग, विबिन्न व्यसनों, छल, कपट इत्यादि से बचाना |

इन कार्यो को हम अकेले पूरा करने का सामर्थ्य नहीं रखते पर, यह सारे कार्य है तो बड़े विशाल और व्यापक पर अगर संस्था को आप का साथ मिला तो बड़ी सरलता से पूर्ण किये जा सकते है | हमारा समाजिक ढाचा ऐसा है की हम प्रत्येक कार्य की लिए एक दूसरे पर निर्भर है | आशा करते है की इस कार्य में आप हमारी तन, मन से साहयता करेंगे | संस्था द्वारा चलाई जा रही वेबसाइट www.aryamantavya.in और www.vedickranti.in पर आप संस्था द्वारा स्थापित संकल्पों सम्बन्धी लेख पड़ सकते है और भिन्न-भिन्न वैदिक साहित्य को निशुल्क डाउनलोड कर सकते है | कृपया स्वयं भी जाये और अन्यो को भी सूचित करे यही आप की हवी होंगी इस यज्ञ में जो आप अवश्य करेंगे यही परमात्मा से प्रार्थना करते है |

जिन सज्जनों के पास दुर्लभ आर्य साहित्य है एवं वे उसे संरक्षित करने में संस्था की सहायता करना चाहते हैं वो कृपया निम्न पते पर सूचित करें

ptlekhram@gmail.com

धन्यवाद् !

पंडित लेखराम वैदिक मिशन

आर्य मंतव्य टीम

॥ ओ३म् ॥
ऋग्वेदभाष्यम्
पं० हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार

ओ३म्

ऋग्वेदभाष्यम्

(अथ पञ्चमं मण्डलम्)

(१–८७ सूक्तम्)

एवं

(षष्ठं मण्डलम्)

(१–७५ सूक्तम्)

[चतुर्थ भागः]

भाष्यकार :

पं० हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार

अनुष्ठानकर्त्ता :

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

हिण्डौन सिटी (राज०)–३२२ २३०

ISBN-978-93-80209-14-2

प्रकाशक : **श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास**
"अभ्युदय" भवन, अग्रसेन कन्या महाविद्यालय मार्ग,
स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी, (राज०)-३२२ २३०
दूरभाष : ०९३५२६-७०४४८
चलभाष : ०-९४१४०-३४०७२, ०-९८८७४-५२९५९

संस्करण : २०६७ विक्रमी संवत्, २०१० ई०

मूल्य : ३५०.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान : १. **श्री हरिकिशन ओम्प्रकाश**
३९९, गली मन्दिरवाली, नया बाँस, दिल्ली-११०००६,
चलभाष : ०९३५०९९३४५५

२. **श्री गणेशदास-गरिमा गोयल,** २७०४, प्रेममणि-निवास,
नया बाजार, दिल्ली-११० ००६, चलभाष : ०९८९९७५९००२

३. **श्री राजेन्द्रकुमार,** १८, विक्रमादित्यपुरी, स्टेट बैंक कॉलोनी,
बरेली (उ०प्र०) चलभाष : ०९८९७८८०९३०

शब्द-संयोजक : **आर्य लेज़र प्रिंट्स,** हिण्डौन सिटी, राजस्थान

मुद्रक : राधा प्रेस, कैलाशनगर, दिल्ली - ११० ०३१

वेदनिधि के सहयोगी

स्वामी श्री जगदीश्वरानन्द सरस्वती, नई दिल्ली
आचार्य श्री आनन्द पुरुषार्थी होशंगाबाद (म०प्र०)
श्री हरिश्चन्द्र साहित्यार्थी दाहोद (गुजरात)
प्रिय गीतेश, आपकी स्मृति में–
श्रीमती गरिमा मोहन-श्री पुरुषोत्तम मोहन
श्री उपेन्द्रनाथ चतुर्वेदी आगरा (उ०प्र०)
श्रद्धेय पतिदेव डॉ० बी०एस० मित्तल आपकी स्मृति में, प्रतिभा मित्तल
श्री मित्रावसु माडल टाउन, दिल्ली
श्री कृष्ण चोपड़ा सोलिहुल (यू०के०)
श्रीमती रक्षा चोपड़ा सोलिहुल (यू०के०)
श्री गोपालचन्द्र बरमिंघम (यू०के०)
श्री राधेश्याम, दिल्ली (श्री मनोहर विद्यालंकार)
स्वामी श्री श्रद्धानन्द सरस्वती अलीगढ़ (उ०प्र०)
श्री प्रशान्तकुमार आर्य (स्मृति में–परिवारीजन)
आर्यसमाज (वैदिक मिशन) वैस्ट मिडलैण्ड्स, बरमिंघम (यू०के०)
बरमिंघम (यू०के०)
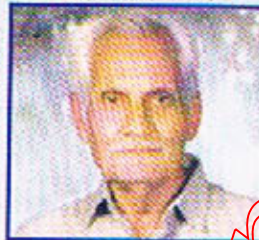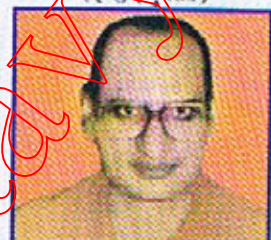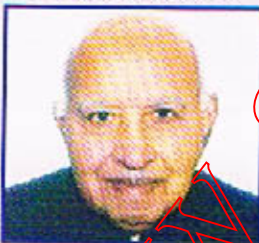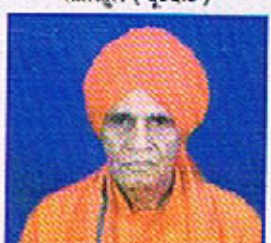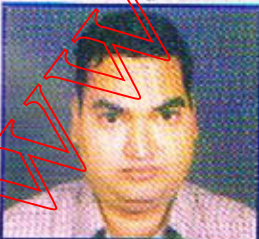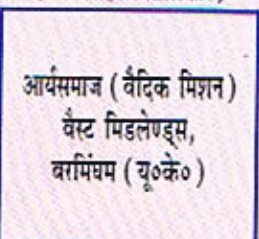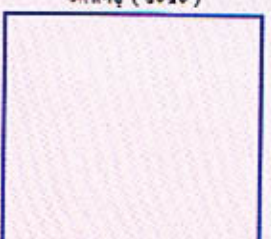
अथ पञ्चमं मण्डलम्

अथ प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जीवन-यात्रा का सुन्दर अन्त

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ॥ १॥

(१) प्रथमाश्रम में **अग्निः**=यह ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़नेवाला विद्यार्थी **समिधा**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक के पदार्थों के ज्ञानरूप समिधाओं से **अबोधि**=उद्बुद्ध होता है। ज्ञान को प्राप्त करके चमक उठता है। 'अग्निनाग्निः समिध्यते' आचार्य की ज्ञानाग्नि से विद्यार्थी की ज्ञानाग्नि समिद्ध की जाती है। (२) गृहस्थ में आने पर यह ज्ञानदीप्त युवक **प्रति आयतीं उषासम्**=प्रत्येक आनेवाली उषा में **जनानाम्**=लोगों के लिए **धेनुं इव**=धेनु की तरह होता है। जैसे धेनु प्रतिदिन दूध को देकर हमारा प्रीणन करती है, इसीप्रकार यह सद्गृहस्थ अतिथि-यज्ञ आदि यज्ञों को करता हुआ सबका प्रीणन करता है। (३) अब गृहस्थ की समाप्ति पर **यह्वाः इव**=जैसे बड़े हुए-हुए पक्षि शावक **वयाम्**=शाखा को **प्र उज्जिहानाः**=प्रकर्षेण छोड़नेवाले होते हैं, इसीप्रकार ये घर को छोड़कर आगे बढ़ते हैं। इसी को इस प्रकार कहते हैं कि ये वनस्थ बनते हैं। ये यह्व=महान् बनते हैं। परिवार के संकुचित क्षेत्र से विशाल-क्षेत्र की ओर चलते हैं अथवा 'यातश्च हूतश्च' प्रभु की ओर गतिवाले व प्रभु को पुकारनेवाले होते हैं। (४) इस प्रकार वानप्रस्थ में साधना करके, प्रभु सम्पर्क के कारण **भानवः**=खूब ज्ञानदीप्तिवाले होते हुए, सूर्य की तरह ही सर्वत्र ज्ञान के प्रकाश को फैलाते हुए, **नाकं अच्छ**=मोक्षलोक की ओर **प्रसिस्रते**=निरन्तर आगे बढ़ते हैं। मोक्षलोक ही जीवन-यात्रा का लक्ष्य स्थान है। यहाँ इनकी जीवन-यात्रा पूर्ण होती है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य में ज्ञान प्राप्त करके; गृहस्थ में यज्ञशील होकर, वानप्रस्थ में घर से ऊपर उठकर प्रभुस्मरण करते हुए ये ज्ञानी पुरुष संन्यस्त होकर मोक्ष की ओर बढ़ते हैं।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अनुक्रम से आगे और आगे

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्।
समिद्धस्य रुशदर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि॥ २॥

(१) जीवन के प्रथमाश्रम में **होता**=त्यागपूर्वक अदन करनेवाला, निर्लोभ बनकर **देवान्**=ज्ञानी आचार्यों के **यजथाय**=पूजन व संगतिकरण के लिये होता है। उन आचार्यों का पूजन करता है, उनके सदा साथ रहता है (अन्तेवासी)। इस प्रकार होने से **अबोधि**=यह ज्ञान से उद्बुद्ध हो उठता

है। (२) गृहस्थ में यह सदा अग्निहोत्र आदि यज्ञों के महत्त्व को समझता हुआ **अग्निः**=प्रगतिशील होता हुआ **सुमनाः**=प्रशस्त मनवाला बनकर **प्रातः ऊर्ध्वः अस्थात्**=प्रातः उठ खड़ा होता है। यह 'प्रातः प्रबोध' ही इसे सब यज्ञों के करने में समर्थ करता है। इन यज्ञों से ही इसे यह सौमनस्य प्राप्त होता है। (३) अब वानप्रस्थ में निरन्तर स्वाध्याय से (स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्) **समिद्धस्य**=ज्ञानदीप्त इस पुरुष का **पाजः**=तेज **रुशत्**=चमकता हुआ **अदर्शि**=दिखता है। (४) इस चमकते हुए ज्ञान के प्रकाश से **महान् देवः**=बड़े प्रकाशमय जीवनवाला होता हुआ यह **तमसः निरमोचि**=अन्धकार से मुक्त हो जाता है। यह सूर्य द्वार से ऊपर उठता हुआ उस प्रकाशमय प्रभु को प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्रथमाश्रम में देवों के सम्पर्क में द्वितीय में यज्ञों के सम्पर्क में, तृतीय में ब्राह्म-तेज के सम्पर्क में रहकर हम तुरीय स्थिति में प्रकाशमय लोक में पहुँच जाएँ।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

संयम-दान-स्वाध्याय

यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः॥ ३॥

(१) **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से **गणस्य**=इन्द्रियगण की **रशनाम्**=बन्धन-रज्जु को **अजीगः**=ग्रहण करता है (गृह्णाति सा०), अर्थात् जब इन्द्रियों को व्रत-बन्धन-रज्जु से बाँध देता है, इन्द्रियों को वश में कर लेता है तथा व्रत-बन्धन से **शुचिः**=पवित्र हुआ-हुआ यह **अग्निः**=प्रगतिशील ब्रह्मचारी **शुचिभिः**=पवित्र **गोभिः**=ज्ञान-वाणियों से व इन्द्रियों से **अङ्क्ते**=अपने को अलंकृत करता है। (२) **आत्**=अब, इस ब्रह्मचर्याश्रम के बाद **दक्षिणा**=दान की वृत्ति **युज्यते**=इसके साथ जुड़ती है। गृहस्थ में यह खूब दानशील बनता है। यह दक्षिणा ही इसे **वाजयन्ती**=(वाज=strength, wealth) शक्तिशाली व धन-सम्पन्न बनाती है। (३) **ऊर्ध्वः**=गृहस्थ से भी ऊपर उठा हुआ यह **उत्तानाम्**=(उत्तन्=try to rise) हमें उन्नत करने के लिये यत्नशील इस वेदवाणी को **जुहूभिः**=अपनी ज्ञानेन्द्रियरूप जिह्वाओं से **अधयत्**=पीने के लिये यत्नशील होता है। सदा ज्ञान-प्राप्ति में लगा रहता है। आगे चलकर इसी ज्ञान को फैलाने में यह तत्पर होगा।

भावार्थ—ब्रह्मचर्याश्रम में संयम, गृहस्थ में दान, वानप्रस्थ में स्वाध्याय ही प्रमुख धर्म है।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सतत प्रभुस्मरण

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम्॥ ४॥

(१) **देवयताम्**=सब दिव्यगुणों को प्राप्त करने की कामनावाले व महान् देव को प्राप्त करने की कामनावाले संन्यस्त पुरुषों के **मनांसि**=मन **अग्निं अच्छा**=उस आगे ले-चलनेवाले प्रभु की ओर इस प्रकार **संचरन्ति**=जाते हैं, **इव**=जैसे कि सामान्य लोगों की **चक्षूंषि**=आँखें **सूर्ये**=सूर्य में गतिवाली होती हैं। उदय होते हुए सूर्य की ओर जैसे हमारी आँखें जाती हैं, उसी प्रकार देवयन् पुरुषों के मन प्रभु की ओर जाते हैं। (२) **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से **उषसा**=(उष दाहे) सब दोषों के दहन से **विरूपे**=विशिष्टरूपवाले मस्तिष्क व शरीर **सुवाते**=अपने में ज्ञान व शक्ति को प्रादुर्भूत करते हैं (जनयतः सा०), तो **अह्नां अग्रे**=दिनों के अग्रभाग में, ब्राह्ममुहूर्त के समय,

श्वेतः=वह शुद्ध **वाजी**=शक्तिशाली प्रभु **जायते**=हमारे लिये प्रकट होते हैं।

भावार्थ—दोषों का दहन करके, मस्तिष्क व शरीर को ज्ञान व शक्ति से भर के, हम देवयन् मन से प्रभु का दर्शन करें। ऐसा करनेवाला ही आदर्श संन्यासी है।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्राणिहित में प्रवृत्त उपासक को प्रभु-प्राप्ति

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान्॥ ५॥

(१) **जेन्यः**=(जेतुं शीलः द०) सदा विजयी वह प्रभु **अह्नां अग्रे**=दिनों के अग्रभाग में **हि**=निश्चय से **जनिष्ट**=प्रादुर्भूत होते हैं। यह समय ही 'ब्राह्ममुहूर्त' है। यह हमारा दौर्भाग्य है कि हम सोये ही जाएँ (तमस्) या अन्य भोगों में फँस जाएँ (रजस्)। यह प्रभु **हितेषु**=प्राणिमात्र के प्रति हित की कामनावालों में **हितः**=स्थापित होते हैं। **वनेषु**=उपासकों में **अरुषः**=आरोचमान होते हैं। (२) वे प्रभु जहाँ भी प्रकट होते हैं, उन प्रत्येक **दमेदमे**=शरीर गृहों में **सप्त रत्ना**=सात रत्नों को (आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण व ब्रह्मवर्चस् को) **दधानः**=धारण करते हैं। **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **होता**=सब कुछ देनेवाले हैं। वे **यजीयान्**=उपास्य प्रभु **निषसाद**=हमारे हृदयों में ही आसीन होते हैं,

भावार्थ—वे प्रभु प्राणिमात्र के हित में प्रवृत्त उपासकों में निवास करते हैं। सब उपासकों के लिये सात रत्नों को धारण करते हैं।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उपस्थे मातुः, सुरभा उ लोके

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः॥ ६॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **होता**=सब-कुछ देनेवाले हैं। **यजीयान्**=वे सब के उपास्य प्रभु **न्यसीदत्**=हमारे हृदयों में निवास करते हैं, स्थित होते हैं। परन्तु कब? जब कि हम **मातुः उपस्थे**=प्रभु द्वारा उपस्थित की गयी इस वेदमाता की गोद में स्थित होते हैं 'स्तुता मया वरदा वेदमाता'। **उ**=और निश्चय से **सुरभौ लोके**=सुगन्धित स्थान में, अर्थात् यज्ञवेदि पर आसीन होते हैं। स्वाध्याय और यज्ञ को अपनाने पर हम अपने को प्रभु का निवास-स्थान बनाते हैं। (२) ऐसा होने पर यह व्यक्ति **युवा**=अपने से दोषों का अमिश्रण व गुणों का मिश्रण करनेवाला होता है। **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ बनता है। **पुरुनिःष्ठः**=पालन व पूरण करनेवाली निष्ठावाला होता है। **ऋतावा**=ऋत का रक्षण करता है, ऋतमय जीवनवाला होता है। **उत**=और **कृष्टीनां मध्ये**=मनुष्यों के बीच **इद्धः**=ज्ञानदीप्त हुआ-हुआ **धर्ता**=उनका धारण करनेवाला बनता है।

भावार्थ—हम वेदवाता की गोद में व यज्ञवेदि पर स्थित हों। तब हम प्रभु के निवास-स्थान बनेंगे। ऐसा होने पर ज्ञानदीप्त होकर हम लोकहित में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नमोभिः+घृतेन

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन॥ ७॥

(१) **नु**=अब **त्यम्**=उस प्रसिद्ध **विप्रम्**=सबका पूरण करनेवाले, **अध्वरेषु साधुम्**=सब यज्ञों में सिद्धि को प्राप्त करानेवाले **अग्निम्**=अग्रणी **होतारम्**=सर्वफल-प्रदाता प्रभु को **नमोभिः**=नमस्कारों के द्वारा **प्र ईडते**=प्रकर्षेण पूजित करते हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **ऋतेन**=ऋत के द्वारा, अपने अटल नियमों के द्वारा **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **आततान**=विस्तृत करते हैं। उस **वाजिनम्**=शक्ति व सम्पत्तिवाले प्रभु को **नित्यम्**=सदा **घृतेन**=मलों के क्षरण (दूरीकरण) व ज्ञानदीप्ति के द्वारा **मृजन्ति**=शुद्ध करते हैं। हृदय के निर्मल होने पर तथा मस्तिष्क के ज्ञानदीप्त होने पर ही प्रभु के दर्शन होते हैं।

भावार्थ—प्रतिदिन प्रभु को प्रणाम करते हुए हम निर्मलता व ज्ञानदीप्ति से प्रभु का दर्शन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'मार्जाल्य' प्रभु

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान्॥ ८॥

(१) **मार्जाल्यः**=यह प्रभु ही परिशोध के योग्य हैं, अन्ततः प्रभु ही ज्ञेय हैं, इनके जान लेने पर ही जीवन-यात्रा की पूर्णता होती है 'ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि, यज्ज्ञात्वा मृतमश्नुते'। **स्वे मृज्यते**=प्रत्येक व्यक्ति से अपने अन्दर ही इस प्रभु का परिशोध हुआ करता है। हृदय की शुद्धि के होने पर वहाँ ही प्रभु का दर्शन होता है। ये प्रभु **दमूनाः**=(दानमनाः) सदा हमारे लिये आवश्यक साधनों को देने के मनवाले हैं। **कविप्रशस्तः**=ज्ञानियों से सदा प्रभु का शंसन किया जाता है। वे प्रभु **अतिथिः**=निरन्तर गतिवाले हैं, हमारे यहाँ भी प्रभु का आगमन होता है, हमारे भी वे अतिथि बनते हैं और **नः शिवः**=हमारा कल्याण करनेवाले हैं। (२) **सहस्रशृंगः**=अनन्त ज्ञान की ज्वालाओंवाले वे प्रभु **वृषभः**=अत्यन्त शक्तिशाली हैं। **तद् ओजः**=उस पदार्थ के ओज प्रभु ही तो हैं 'यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसम्भवम्'। हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **विश्वान् अन्यान्**=अन्य सबको **सहसा**=अपने बल से **प्र असि**=(प्रभवसि) अभिभूत कर लेनेवाले हैं।

भावार्थ—शुद्ध हृदय में प्रभु का दर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए। वे प्रभु ही सब तेजस्वियों का तेज व बलवानों का बल हैं। वे अपने बल से सबको अभिभूत करनेवाले हैं।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सर्वातिशायी प्रभु

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूर्थ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम्॥ ९॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **सद्यः**=शीघ्र ही **अन्यान्**=औरों को **प्र अत्येषि**=प्रकर्षेण लाँघ जाते हैं। आप सब गुणों की पराकाष्ठा के रूप में हैं 'तन्निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्'=जहाँ ज्ञान निरतिशय हो जाता है, वे सर्वज्ञ प्रभु ही तो आप हैं। इसी प्रकार जहाँ शक्ति निरतिशय हो जाती है, वे सर्वशक्तिमान् प्रभु ही तो आप हैं। (२) **यस्मै आविः बभूथ**=जिसके लिये भी आप प्रकट होते हैं, उसके लिये **चारुतमः**=अत्यन्त सुन्दर होते हैं। वह द्रष्टा यही देखता है कि आप 'चारुतम' हैं। उसके लिये आप **ईडेन्यः**=स्तुत्य होते हैं, **वपुष्यः**=दीप्त रूपवाले होते हैं, तेजस्वी।

विभावा=विशिष्ट ज्ञानदीप्तिवाले। (३) हे प्रभो! आप **मानुषीणां विशाम्**=विचारशील प्रजाओं के **प्रियः अतिथिः**=प्रिय अतिथि होते हैं। विचारशील लोग ही आपके हृदयस्थरूपेण देखते हैं और प्रीति का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—वे सर्वातिशायी प्रभु 'सुन्दरतम स्तुत्य, तेजस्वी व ज्ञानदीप्त' हैं। विचारशील व्यक्ति उन्हें हृदय में देखते हैं और प्रीति का अनुभव करते हैं। वह प्रभु दर्शन का आनन्द तो 'न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते'।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

दान व प्रभुस्तवन

तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात्।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम्॥ १०॥

(१) हे **यविष्ठ**=सब बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों का हमारे साथ मिश्रण करनेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **तुभ्यम्**=आपके लिये ही **क्षितयः**=मनुष्य **अन्ततः**=समीप से **उत**=और **दूरात्**=दूर से **बलिम्**=बलि को **आभरन्ति**=प्राप्त कराते हैं। आपकी प्राप्ति के लिये ही दान आदि पुण्य कार्यों को करते हैं। (२) हे प्रभो! **आभन्दिष्ठस्य**=इस दान की वृत्तिवाले उत्तम स्तोता की **सुमतिम्**=कल्याणीमति को **आचिकिद्धि**=सब प्रकार से ज्ञात कराइये, प्राप्त कराइये। **अग्ने**=परमात्मन्! **ते**=आपका **बृहत् शर्म**=महान् कल्याण आपसे प्राप्त कराये जानेवाला कल्याण **महि**=महनीय है और **भद्रम्**=सुखकर है।

भावार्थ—मनुष्य प्रभु-प्राप्ति के लिये ही दान आदि वृत्तियों को अपनाते हैं। हम भी इस दानवृत्तिवाले बनकर प्रभु के सच्चे स्तोता बनें। प्रभु से प्राप्त कराये जानेवाले महनीय सुख को प्राप्त करें।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

'भानुमान् समन्त' रथ

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम्।
विद्वान्पथीनामुर्व१न्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि॥ ११॥

(१) हे **भानुमः**=दीप्तिमन् **अग्ने**=परमात्मन्! **अद्य**=आज **भानुमन्तम्**=दीप्तिवाले **यजतेभिः**=संगतिकरण योग्य तत्त्वों से **समन्तम्**=समीचीन प्रान्तोंवाले! ज्ञानदीप्ति युक्त मस्तिष्कवाले तथा शक्ति व क्रियाशीलता से युक्त पाँवोंवाले **रथम्**=इस शरीर-रथ पर **आतिष्ठ**=अधिष्ठित होइये। आपकी कृपा से हमारा यह शरीर-रथ 'भानुमान् व समन्त' बने। (२) हे प्रभो! **पथीनां विद्वान्**=सब मार्गों को जाननेवाले आप **उरु अन्तरिक्षम्**=इस विशाल अन्तरिक्ष को (अन्तराक्षि)=मध्यमार्ग को **इह**=इस जीवन में **आवक्षि**=प्राप्त कराइये। अथवा (अन्तरिक्ष=हृदय) विशाल हृदय को हमें प्राप्त कराइये। **देवान्**=दिव्यगुणों को प्राप्त कराइये तथा **अद्याय**=खाने के लिये **हविः**=हवि को प्राप्त कराइये। हम सदा हवि को, यज्ञशेष को ही खानेवाले हों।

भावार्थ—हमारा दीप्तिवाला, उत्तम मस्तिष्क व पाँवोंवाला, यह शरीर-रथ प्रभु से अधिष्ठित हो। हम विशाल हृदय व दिव्यगुणों को प्राप्त करें और यज्ञशेष का सेवन करनेवाले हों। सदा मध्यमार्ग से चलें।

ऋषिः—**बुधगविष्ठिरावात्रेयौ** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

हृदय में स्तवन, मस्तिष्क में ज्ञान

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत्॥ १२॥

(१) उस **कवये**=क्रान्तदर्शी **मेध्याय**=(मेधृ संगमे) संगम योग्य, पवित्र **वृषभाय**=शक्तिशाली **वृष्णे**=सुखवर्षक प्रभु के लिये **वन्दारु**=अभिवादन व स्तुति करनेवाले **वचः**=वचन को **अवोचाम**=बोलते हैं। प्रभु का स्तवन करते हैं। (२) **गविष्ठिरः**=वेद-वाणियों में स्थित होनेवाला पुरुष **अग्नौ**=उस अग्रणी प्रभु में **नमसा**=नमन के साथ **स्तोमम्**=स्तुति को **अश्रेत**=आश्रित करे, **इव**=जिस प्रकार वह **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **उरुव्यञ्चम्**=विशाल विशिष्ट गमनवाले **रुक्मम्**=देदीप्यमान ज्ञान सूर्य को धारण करता है। 'गविष्ठिर' मन में स्तवन व मस्तिष्क में ज्ञान का धारण करता है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। ज्ञान की वाणियों में स्थिर होनेवाला पुरुष हृदय में नम्रता युक्त स्तुति के भाव को स्थापित करता है और मस्तिष्क में दीप्त क्रियाशील ज्ञानाग्नि को।

इस प्रकार प्रभु-स्तवन व ज्ञानधारण को करनेवाला यह व्यक्ति **कुमार**=सब बुराइयों को (कु) मारनेवाला बनता है, 'अत्रेय' (अविद्यमानाः त्रयोयस्यः) 'काम-क्रोध-लोभ' से ऊपर उठता है। यह 'वृश' (वृश्यति selects) ठीक चुनाव करनेवाला होता है, प्रेय व श्रेय में श्रेय का ही चुनाव करता है और 'जारः'=सब वासनाओं को जीर्ण करनेवाला होता है। यह प्रार्थना करता है कि—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

युवति माता

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ॥ १॥

(१) प्रस्तुत मन्त्र में 'वेदज्ञान' ही 'माता' है 'स्तुता मया वरदा वेदमाता'। यह दोषों को दूर करके गुणों का मिश्रण करने के कारण 'युवति' है। जीव 'कुमार' है, (कु) बुराई को मारनेवाला। यह **युवतिः माता**=कभी जीर्ण व मृत न होनेवाला 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' जीवन का निर्माण करनेवाला (माता) वेदज्ञान **कुमारम्**=बुराई को नष्ट करनेवाले इस जीव को, **समुब्धम्**=जिसे कि ज्ञान से अच्छी प्रकार भरा गया है (उभ् to fill with), **गुहा बिभर्ति**=अपने अन्दर धारण करती है या बुद्धिरूप गुहा में स्थापित करती है। **पित्रे न ददाति**=प्रभु रूप पिता के लिये नहीं दे डालती, अर्थात् यह जीव सदा प्रभु का ही जप नहीं करता रहता, ज्ञान-प्राप्ति आदि निर्दिष्ट कर्मों को करनेवाला बनता है। वस्तुतः ज्ञान-प्राप्ति आदि कर्मों में लगना प्रभु की दृश्य भक्ति है, केवल नाम को जपते रहना उसकी श्रव्य भक्ति है। वेदमाता हमें दृश्यभक्ति में प्रेरित करती है, केवल श्रव्य भक्ति से बचाती है। (२) इस प्रकार यह वेदमाता **अस्य अनीकम्**=इसके बल को **न मिनत्**=नष्ट नहीं होने देती। इस प्रकार ज्ञान व शक्ति के परिपाक से **जनासः**=लोग इस कुमार को **पुरः**=अपने सामने **अरतौ निहितम्**=(अ-रतौ) विषय-वासनाओं के प्रति अरुचि में स्थापित हुआ-हुआ **पश्यन्ति**=देखते हैं। सब लोग अनुभव करते हैं कि वेदज्ञान ने इसे विषय-वासनाओं

की आसक्ति से ऊपर उठा दिया है।

भावार्थ—वेदमाता हमारे जीवन को सर्वांग सुन्दर बनाती है। यह वेदमाता का पुत्र केवल नाम ही नहीं जानता रहता। इसका बल हिंसित नहीं होता और यह विषयों के प्रति रुचिवाला नहीं होता।

ऋषिः—**वृशो जारः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

गर्भः ववर्ध

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता॥ २॥

(१) हे **युवते**=बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों का मिश्रण करनेवाली वेदमातः! **त्वम्**=तू **पेषी**=सब राक्षसीभावों का पेक्षण करनेवाली होती हुई **कम्**=किस अद्भुत **एतम्**=इस **कुमारम्**=बुराइयों के नष्ट करनेवाले जीव को **बिभर्षि**=धारण करती है। इसके धारण से ही तू **महिषी जजान**=महिषी के रूप में प्रादुर्भूत हुई है। इस कुमार के धारण करने से तू अत्यन्त महनीय हो गई है। (२) अपने जीवन के **पूर्वीः शरदः**=प्रारम्भिक वर्षों में **हि**=निश्चय से **गर्भः**=वेदमाता के गर्भ में रहता हुआ यह जीव (कुमार) **ववर्ध**=वृद्धि को प्राप्त हुआ है। आज **यद्**=जब **माता असूत**=वेदमाता इसे उत्पन्न करती है, यह उसके गर्भ से बाहिर आता है, तो **जातम्**=उत्पन्न हुए-हुए उस कुमार को **अपश्यम्**=मैं देखता हूँ 'तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः'।

भावार्थ—ब्रह्मचर्याश्रम में वेदमाता के गर्भ में रहता हुआ कुमार सुन्दर जीवनवाला बनता है। उत्पन्न हुए-हुए इस कुमार को, आचार्यकुल से समावृत्त इस कुमार को सब कोई देखने के लिये आते हैं।

ऋषिः—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥
स्वरः—**धैवतः** ॥

हिरण्यदन्त-शुचिवर्ण

हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम्।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः॥ ३॥

(१) गतमन्त्र में वर्धित कुमार का ही उल्लेख करते हुए कहते हैं कि **हिरण्यदन्तम्**=अत्यन्त हितरमणीय दाँतोंवाले अथवा स्वर्ण के समान चमकते हुए दाँतोंवाले, **शुचिवर्णम्**=पवित्र दीप्त वर्णवाले, तेजस्वी, इस कुमार को **अपश्यम्**=देखता हूँ। यह **क्षेत्रात् आराद्**=(आरात्=रुचि) इस क्रियाक्षेत्र शरीर में ही स्थित होकर **आयुधा मिमानम्**=इन्द्रियों, मन व बुद्धि आदि जीवन संग्राम के आयुधों का निर्माण करते हुए है। यह सदा इनके परिष्कार में लगा रहता है। (२) यह कुमार **अस्मा**=हमारे लिये **विपृक्वत्**=विशिष्ट सम्पर्क के साधनभूत (पृच् संपर्के) प्रभु सम्पर्क को करानेवाले, **अमृतम्**=मृत्यु से ऊपर उठानेवाले (न मृतं यस्मात्) ज्ञान को **ददानः**=धारण करता है। हमारे लिये उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त कराता है। इस ज्ञान को प्राप्त कर लेने पर अब **अनिन्द्राः**=प्रभु को न माननेवाले, जगद् को अनीश्वर कहनेवाले **अनुक्थाः**=प्रभु-स्तवन से सदा दूर रहनेवाले **मां किं कृणवन्**=मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं, अर्थात् अब ये मुझे व्यर्थ की बातों से बहकाकर मार्गभ्रष्ट नहीं कर सकते।

भावार्थ—उत्तम आचार्यों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला कुमार पूर्ण स्वस्थ, मन, बुद्धि आदि का

परिष्कार करनेवाला औरों के लिये ज्ञान को देनेवाला बनता है।

ऋषिः—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासनाओं से लिप्त न होना और युवा बने रहना

क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम्।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥ ४ ॥

(१) आचार्य गर्भ में **सनुतः**=अन्तर्हित होकर रहते हुए इस कुमार को आज **क्षेत्रात्**=आचार्य गर्भ से **चरन्तम्**=बाहर विचरते हुए को **अपश्यम्**=देखता हूँ। अध्ययन काल में आचार्य गर्भ में रहकर आज यह आचार्य गर्भ से बाहर आया है। अध्ययन को पूरा करके आज उत्पन्न हुए-हुए इस कुमार को देखने के लिये सभी विद्वान् आये हैं 'तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः'। इसका **यूथम्**=इन्द्रियगण **न**=जैसे **सुमत्**=उत्तम ज्ञानवाला है, उसी प्रकार **पुरुशोभमानम्**=खूब ही शोभावाला है। शक्ति-सम्पन्न होने से इसकी प्रत्येक इन्द्रिय सुन्दर प्रतीत होती है। (२) **ताः**=वे संसार में प्रसिद्ध विषयवासनाएँ **न अगृभ्रन्**=इसे नहीं ग्रहण कर पायीं। यह विषयवासनाओं का शिकार नहीं हुआ। **सः**=वह कुमार **हि**=निश्चय से **अजनिष्ट**=प्रादुर्भूत शक्तियोंवाला हुआ है। विषय वासनाओं का शिकार न होने पर **पलिक्नीः इत्**=पलित केश वृद्ध प्रजाएं भी **इत्**=निश्चय से **युवतयः**=युवतियाँ **भवन्ति**=हो जाती हैं। विषय-वासनाएँ ही तो जीर्ण करती हैं। इनके अभाव में यौवन व सौन्दर्य ठीक बना रहता है।

भावार्थ—आचार्य विद्यार्थी को अपने रक्षण में रखता हुआ इस प्रकार तप=परिपक्व करता है कि यह वासनाओं में लिप्त नहीं होता और तेजस्विता से शोभा-सम्पन्न बना रहता है।

ऋषिः—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ग्वाला व उसके पशु

के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ ५ ॥

(१) **के**=कौन **मे मर्यकम्**=मेरे इस मनुष्य को, सन्तान को रक्षक के अभाव में जिसके मरने की निरन्तर आशंका है उस मेरे मर्यक को **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **वियवन्त**=विषयवासनाओं से पृथक् करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **येषाम्**=जिनका **गोपाः**=ग्वाला **अरणः**=इधर-उधर जानेवाला **न आस**=नहीं होता। विद्यार्थी गौवें हैं, आचार्य गोपा है। ग्वाला सदा गौवें के साथ रहता है तो गौवें हिंसन पशुओं के आक्रमण से बची रहती हैं। इसी प्रकार आचार्य सदा विद्यार्थियों के साथ रहता है, तो उन्हें निरन्तर ज्ञान देता हुआ विषयवासनाओं में फँसने नहीं देता। (२) **ये**=जो आचार्य **ईम्**=निश्चय से **जगृभुः**=इन विद्यार्थियों का ग्रहण करते हैं, **ते**=वे आचार्य ही इन्हें **अवसृजन्तु**=विषयवासनाओं से पृथक् करें। यह **चिकित्वान्**=ज्ञानी आचार्य **नः**=हमारे **पश्वः**=अक्रोध बालकों को (पशुतुल्य, नासमझ बालकों को) **उप आजाति**=अपने समीप प्राप्त कराता है 'आचार्य उपनयमानः ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः'। अब इस आचार्य का ही कर्त्तव्य है कि वह इनकी रक्षा करे। आचार्य गोपा हो, ये विद्यार्थी ही इसके पशु हों। इनको वह विषयवासनारूप हिंस्र पशुओं के आक्रमण से बचाये। सदा इनको ज्ञानक्षेत्र में चराये।

भावार्थ—आचार्य गोप है, विद्यार्थी उसकी गौवें हैं। इनकी उसे रक्षा करनी है, इन्हें ज्ञान का चारा चराना है।

ऋषिः—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥
स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ज्ञान द्वारा वासनाओं से बचाव

वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु॥ ६॥

(१) **वसाम्**=शरीर में निवास करनेवाली इन्द्रियों, मन व बुद्धि के **राजानम्**=राजा-शासक, **जनानां वसतिम्**=लोगों को ज्ञानोपदेश आदि द्वारा बसानेवाले इस ज्ञानी पुरुष को भी **अरातयः**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रु **मर्त्येषु**=इन मरणधर्मा नश्वर पदार्थों में **निदधुः**=स्थापित करते हैं। ज्ञानी भी, आकस्मिक प्रमाद क्षण में, विषय वासनाओं की ओर झुक जाता है। सो सदा सावधान रहने की आवश्यकता है। (२) **अत्रेः**=(अ-त्रि) काम-क्रोध-लोभ से अतीत उस 'अ-त्रि' के, उस महान् प्रभु के **ब्रह्माणि**=ज्ञान को देनेवाले ये मन्त्र **तम्**=उसे **अवसृजन्तु**=इन विषयों से युक्त करें। अर्थात् सदा स्वाध्याय में लगा रहकर यह विषय वासनाओं के आक्रमण से अपने को बचाये। **निन्दितारः**=इन ज्ञान की वाणियों की निन्दा करनेवाले ही **निन्द्यासः**=निन्द्य जीवनवाले **भवन्तु**=हों। ज्ञान के प्रशंसक, ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहकर अपने जीवन को प्रशस्त बना पायें।

भावार्थ—सदा सावधान रहकर खाली समय को ज्ञान-प्राप्ति में व्यतीत करते हुए ही हम अपने को विषयों के आक्रमण से बचा सकते हैं।

ऋषिः—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥
स्वरः—**धैवतः** ॥

'होता-चिकित्वात्' आचार्य

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य॥ ७॥

(१) आचार्य को ज्ञानी तो होना ही है 'चिकित्वान्', उसे लोकहित के कार्य में आहुति देनेवाला 'होता' भी बनना है। ऐसा ही आचार्य विद्यार्थियों का कल्याण कर सकता है। हे आचार्य! तूने **सहस्राद् यूपात्**=हजारों विषय वासनाओं के खम्भों से **निदितम्**=बँधे हुए **शुनः शेपम्**=सुख आराम का ही निर्माण करनेवाले सुख भोगों में मस्त **चित्**=भी इस पुरुष को **अमुञ्चः**=उन विषय स्तम्भों से मुक्त किया है। इससे अब **सः**=वह **हि**=निश्चय से **अशमिष्ट**=शान्त जीवनवाला बना है। (२) **एवा**=इसी प्रकार **होतः**=प्राजापत्य यज्ञ में अपनी आहुति देनेवाले अथवा ज्ञान को देनेवाले, **चिकित्वः**=ज्ञानी आचार्य! **इह**=यहाँ **तु**=निश्चय से **निषद्य**=हम लोगों में आसीन होकर, **अग्ने**=हे अग्नि के समान ज्ञानाग्नि से दीप्त आचार्य! **अस्मत्**=हमारे से **पाशान्**=जालों को **विमुमुग्धि**=छुड़ाइये। आपसे ज्ञान को प्राप्त करके हम विषय जालों से छूट जाएँ।

भावार्थ—ज्ञानी त्यागी आचार्यों के सम्पर्क से ज्ञान को प्राप्त करके हम विषय जाल से मुक्त हो जाएँ।

ऋषि:—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

('जितेन्द्रिय ज्ञानी' आचार्य) फिर से प्रभु का प्रिय बनना

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम्॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! जब मैं विषयों में फँस गया तो मुझे अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करने में लज्जा अनुभव करते हुए आप **मत्**=मेरे से **हि**=निश्चयपूर्वक **अप ऐये:**=दूर हो गये। प्रभु का पुत्र विषयों में फँसे यह प्रभु के लिये भी लज्जाकर है ही। **देवानां व्रतपाः**=देवों के व्रतों के पालन करनेवाले ज्ञानी पुरुष ने **मे**=मुझे **प्र उवाच**=इस बात को कहा। देवों के व्रतों का पालन करनेवाला यह ज्ञानी मुझे प्रेरणा देता हुआ बतला रहा था कि इस प्रकार विषय मलिन तुझे प्रभु अपने पुत्र के रूप में कैसे स्वीकार करें? (२) **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय **विद्वान्**=ज्ञानी पुरुष **हि**=निश्चय से **त्वा**=आपको **अनुचचक्ष**=सर्वत्र आपकी महिमा का दर्शन करता हुआ देखता है। **तेन**=उसी से **अनुशिष्टः**=अनुशासन-उपदेश को प्राप्त करके **अहम्**=मैं **आगाम्**=आपके पास आया हूँ। विषय वासनाओं को छोड़कर मैं आपका पुनः प्रिय बनने की कामनावाला हूँ।

भावार्थ—जितेन्द्रिय ज्ञानी आचार्यों से अनुशिष्ट होकर, विषयों से हम ऊपर उठें और प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषि:—**वृशो जारः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

सद्गुणों का विकास-राक्षसीभावों का विनाश

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे॥ ९॥

(१) आचार्य से ज्ञान को प्राप्त करके **बृहता ज्योतिषा**=महान् ज्ञान-ज्योति से **विभाति**=यह विशेषरूप से चमकता है। **अग्निः**=प्रगतिशील होता है। **महित्वा**=ज्ञान की महिमा से **विश्वानि**=सब सद्गुणों को **आविः कृणुते**=अपने में प्रादुर्भूत करता है। (२) **अदेवीः**=अदिव्य, अर्थात् आसुरी **मायाः**=मायाओं को, छलकपट की भावनाओं को **प्रसहते**=प्रकर्षेण कुचल देता है। ये मायाएँ ही तो **दुरेवाः**=दुष्टगमनवाली हैं, उसे कुटिल मार्ग पर ले-जानेवाली हैं। यह **रक्षसे विनिक्षे**=राक्षसीभावों के विनाश के लिये **शृंगे शिशीते**=अपराविद्या व पराविद्या, प्रकृतिविद्या व आत्मविद्या रूप-शृंगों को तीव्र करता है। इन ज्ञानों को प्राप्त करके ही वह सब दुर्भावों से ऊपर उठ पाता है।

भावार्थ—ज्ञान-ज्योति से हमारे में सद्गुणों का विकास तथा राक्षसीभावों का विनाश होता है।

ऋषि:—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

स्तुति शब्दों से अदिव्य भावों का दूरीकरण

उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः॥ १०॥

(१) **उत**=और **अग्नेः**=इस प्रगतिशील पुरुष के **स्वानासः**=स्तुति के शब्द **दिवि**=उस

द्योतनात्मक प्रकाशमय प्रभु में **सन्तु**=हों। ये सदा उस प्रकाशमय प्रभु का स्तवन करनेवाला हो। ये स्तुति शब्द ही **रक्षसे हन्तवा**=राक्षसीभावों के विनाश के लिये **उ**=निश्चय से **तिग्मायुधाः**=तीव्र अस्त्रों के समान हों। इन स्तुति शब्दों से राक्षसीभावों का विनाश हो। (२) स्तुति के द्वारा **मदे**=आनन्द के होने पर **चित्**=निश्चय से **अस्य**=इस (अग्नि) प्रगतिशील स्तोता के **भामाः**=तेज **प्ररुजन्ति**=उन राक्षसीभावों को प्रकर्षेण पीड़ित करते हैं। इन स्तोताओं को **अदेवीः**= आसुरी **परिबाधः**=उन्नति की बाधक भावनाएँ **न वरन्ते**=घेरनेवाली नहीं होतीं। यह स्तोता आसुरीभावों से कभी आक्रान्त नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन अदिव्य भावनाओं का विनाशक है।

ऋषिः—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः**॥

स्वर्वतीः अपः जयेम

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम॥ ११॥

(१) हे **तुविजात**=महान् विकासवाले प्रभो! प्रत्येक गुण की चरमसीमा ही तो आप हैं, आप में ज्ञान व शक्ति का निरतिशय विकास हुआ है। मैं **विप्रः**=अपना पूरण करनेवाला **एतम्**=इस **ते स्तोमम्**=आपके स्तवन को **अतक्षम्**=करता हूँ, **न**=जैसे कि एक **धीरः**=धीर (समझदार) **स्वपाः**=उत्तम कर्मोंवाला पुरुष **रथम्**=रथ को बनाता है। यह स्तवन ही मेरे लिये जीवन-यात्रा की पूर्ति का साधनरूप रथ बन जाता है। (२) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **यदि**=यदि **इत्**=इस स्तोम को (It) **त्वम्**=आप **प्रतिहर्याः**=स्वीकार करें, यह आपके लिये प्रीतिकर हो, तो **एना**=इस स्तोम के द्वारा हम **स्वर्वतीः अपः**=स्वर्ग को प्राप्त करानेवाले कर्मों का **जयेम**=विजय करें। इस स्तवन से आपको आराधित करके आपकी प्रेरणाओं से हम यज्ञादि उत्तम कर्मों को करें, जो कि हमारे घरों स्वर्गतुल्य सुखमय बनाएँ।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करते हुए हम यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हों, जिनके परिणामस्वरूप हमारे गृह स्वर्ग बनें।

ऋषिः—**कुमार आत्रेयो, वृशो वा जार उभौ वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृदतिजगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

'बर्हिष्मान्-हविष्मान्'

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्व१र्यः समजाति वेदः।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत्॥ १२॥

(१) **तुविग्रीवः** (many)=अनन्त गर्दनोंवाला ('सहस्रशीर्षा: पुरुषः' की तरह ही 'तुविग्रीवः' का भाव है), अर्थात् सब प्राणियों के अन्दर विद्यमान होता हुआ अनन्त गर्दनोंवाला वह प्रभु **वृषभः**=शक्तिशाली है। **वावृधानः**=निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करानेवाला **अर्यः**=सबका स्वामी है। ये प्रभु ही **अशत्रु**=अकण्टक व न नष्ट करनेवाले **वेदः**=धन को **समजाति**=प्राप्त कराते हैं। **इति**=इस प्रकार **अमृताः**=विषयों के पीछे न मरनेवाले देव पुरुष **इमं अग्निम्**=इस अग्रणी प्रभु को **अवोचन्**=पुकारते हैं। (२) ये प्रभु **बर्हिष्मते**=वासनाशून्य प्रशस्त हृदयवाले, उस हृदयवाले जिसमें से कि वासनाओं का उद्बर्हण कर दिया गया है, **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये **शर्म**=सुख

को **यंसत्**=देते हैं। **हविष्मते**=हविवाले **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिये, त्यागपूर्वक अदन (हवि) करनेवाले ज्ञानी पुरुष के लिये, **शर्म**=कल्याण को प्राप्त कराते हैं। विचारशील पुरुष सब प्राणियों में प्रभु का दर्शन करता है, वह प्रभु को 'तुविग्रीव' रूप में देखता है। सो यज्ञ करके यह सदा यज्ञशेष का ही सेवन करता है। प्रभु भी इस 'बर्हिष्मान्-हविष्मान्' पुरुष को सुख प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम त्याग की वृत्तिवाले व प्रशस्त हृदयवाले बनें। प्रभु हमें वह धन प्राप्त करायेंगे जो कि किसी प्रकार हमारा विनाशक न होगा।

अगले सूक्त का ऋषि इस अविनाशक ज्ञान धन को प्राप्त करनेवाला 'वसुश्रुत' है, ज्ञानधन है। यह काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठे होने के कारण 'आत्रेय' तो है ही। यह स्तुति करता हुआ कहता है कि—

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वरुण मित्र इन्द्र

त्वम॑ग्ने॒ वरु॑णो॒ जाय॑से॒ यत्त्वं मि॒त्रो भ॑वसि॒ यत्समि॑द्धः।
त्वे विश्वे॑ सहसस्पुत्र दे॒वास्त्वमिन्द्रो॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य॥ १ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **यत्**=जब **जायसे**=हमारे हृदयों में प्रादुर्भूत होते हैं, तो **वरुणः**=सब पापों का निवारण करनेवाले होते हैं। **यत् समिद्धः**=जब हमारे हृदयों में आप समिद्ध (दीप्त) होते हैं तो **त्वम्**=आप **मित्रः**=सब प्रमीतियों से, मृत्यु व रोगों से बचानेवाले **भवसि**=होते हैं। (२) हे **सहसः पुत्र**=शत्रुओं का मर्षण करनेवाली शक्ति के पुञ्ज प्रभो! **त्वे**=आप में **विश्वे देवाः**=सब देवों का निवास है। आपके प्राप्त होने पर सब देवों की प्राप्ति तो हो ही जाती है। आपका आना ही सब दिव्य गुणों के आने का कारण बनता है। आपका स्मरण करके हम हृदयों को पवित्र व दिव्यवृत्तियों का अधिष्ठान बना पाते हैं। (३) हे प्रभो! आप **दाशुषे मर्त्याय**=इस दाश्वान् मनुष्य के लिये, देने की वृत्तिवाले मनुष्य के लिये अथवा अपना अर्पण करनेवाले मनुष्य के लिये **त्वम्**=आप **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली हैं तथा शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं। जो भी आपके प्रति अपना अर्पण करता है, उसे आप परमैश्वर्य-सम्पन्न करते हैं और उसके काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करते हैं।

भावार्थ—प्रभु दाश्वान् पुरुष के लिये मित्र हैं, वरुण हैं, इन्द्र हैं।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समनसा दम्पती

त्वम॑र्य॒मा भ॑वसि॒ यत्क॒नीनां॒ नाम॑ स्वधाव॒न्गुह्यं॑ बिभर्षि।
अ॒ञ्जन्ति॑ मि॒त्रं सुधि॑तं॒ न गोभि॒र्यद्दम्प॑ती॒ सम॑नसा कृ॒णोषि॑॥ २ ॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **यत्**=जब **कनीनाम्**=ज्ञानदीप्तियों के **अर्यमा**=देनेवाले (अर्यमेति तमाहुर्यो ददाति) **भवसि**=होते हैं, तो हे **स्वधावन्**=आत्मधारण शक्तिवाले प्रभो! **गुह्यम्**=हृदयरूप गुहा में होनेवाली **नाम**=नम्रता की भावना को **बिभर्षि**=पुष्ट करते हैं। प्रभु अपने उपासकों को ज्ञानदीप्ति व नम्रता धारण कराते हैं। (२) घरों में पति-पत्नी इस **मित्रम्**=सब मृत्यु व रोगों से बचानेवाले **सुधितम्**=हृदयों में उत्तमता से स्थापित **न**=(इव) के समान प्रभु को **गोभिः**=ज्ञान

की वाणियों के द्वारा **अञ्जन्ति**=(अञ्ज् गतौ) जाते हैं, उस प्रभु को हृदय में देखने का प्रयत्न करते हैं, तो हे प्रभो! आप **दम्पती**=उन पति-पत्नी को **समनसा कृणोषि**=समान मनवाला, एक हृदयवाला करते हैं। इन्हें आप सहृदयता व सामनस्य प्राप्त कराते हैं यदि घरों में पति-पत्नी स्वाध्याय व प्रभु के ध्यान की वृत्तिवाले बनते हैं तो समान मनस्क होते हैं, परस्पर सच्चे प्रेमवाले। सिनेमा व क्लबों में जाकर परस्पर विघटित मनवाले हो जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञानदीप्ति व नम्रता को देते हैं। प्रभु का ध्यान व स्वाध्याय पति-पत्नी को समानमनस्क बनाता है।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शुद्ध हृदय में प्रभु की श्री का निवास

तव॑ श्रि॒ये म॒रुतो॑ मर्जयन्त॒ रुद्र॒ यत्ते॒ जनि॑म॒ चारु॑ चि॒त्रम्।
प॒दं यद्विष्णो॑रुप॒मं नि॒धायि॒ तेन॑ पासि॒ गुह्यं॒ नाम॒ गोना॑म्॥ ३॥

(१) हे **रुद्र**=सब रोगों का द्रावण करनेवाले प्रभो! **तव श्रिये**=आपका आश्रय करने के लिये, आपकी श्री को प्राप्त करने के लिये **मरुतः**=प्राणसाधना करनेवाले पुरुष **मर्जयन्त**=अपने जीवन का शोधन करते हैं। अपवित्र जीवनवाले को तो आपकी श्री ने क्या प्राप्त होना? हे इन्द्र! **यत्**=जो **ते**=आपका **जनिम**=प्रादुर्भाव व विकास है, हृदयों में जो आपकी ज्योति का देखना है, वह **चारु**=अत्यन्त सुन्दर है और **चित्रम्**=अद्भुत है, हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाला है (चित्+र)। (२) **यत्**=जब **विष्णोः**=उस सर्वव्यापक प्रभु का **उपमं पदम्**=वह सर्वोच्च (highest) ज्ञान (पद गतौ, गति=ज्ञान) **निधायि**=हृदय में स्थापित किया जाता है, तो हे प्रभो! **तेन**=उस ज्ञान से **गोनाम्**=इन ज्ञान की वाणियों के साथ सम्बद्ध **गुह्यं नाम**=हृदयस्थ नम्रता की भावना को **पासि**=आप रक्षित करते हैं। आप ज्ञान देते हैं, ज्ञान से उत्पन्न होनेवाली नम्रता को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम हृदयों को शुद्ध करते हुए प्रभु की श्री को प्राप्त करते हैं। प्रभु हमें ज्ञान व नम्रता को प्राप्त कराते हैं। प्रभु का स्तोता 'ज्ञानी व नम्र' होता है।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु धारण व अमृतत्व की प्राप्ति

तव॑ श्रि॒या सु॒दृशो॑ देव दे॒वाः पु॒रू दधा॑ना अ॒मृतं॑ सपन्त।
होता॑रम॒ग्निं मनु॑षो॒ नि षे॑दुर्दश॒स्यन्त॑ उ॒शिजः॒ शंस॑मा॒योः॥ ४॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **देवाः**=सब सूर्य आदि देव **तव श्रिया**=आपकी श्री से ही **सुदृशः**=उत्तम दर्शनीय रूपवाले हो रहे हैं। ज्ञानी लोगों (विद्वांसो हि देवाः) को ज्ञान भी आपसे ही प्राप्त होता है। 'तेन देवा देवतामग्र आयन्'=सब देवों को देवत्व आपसे ही प्राप्त होता है। (२) **पुरू दधानाः**=खूब ही आपका धारण करते हुए लोग **अमृतं सपन्त**=अमृतत्व का स्पर्श करते हैं। जितना-जितना प्रभु का धारण करते हैं, उतना-उतना ही देवत्व को प्राप्त होते हुए महादेव के समीप पहुँचते हैं और जन्म-मरण-चक्र से ऊपर उठ जाते हैं। (२) **मनुषः**=विचारशील पुरुष **होतारम्**=उस सब कुछ देनेवाले **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु की **निषेदुः**=उपासना में आसीन होते हैं। ये लोग **दशस्यन्तः**=हवि को देते हुए, यज्ञ करते हुए **उशिजः**=प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामनावाले **आयोः**=गतिशील पुरुष के **शंसम्**=उपासन में **निषेदुः**=निषण्ण होते हैं। प्रभु की उपासना करते हैं, पर इनकी उपासना एक मेधावी गतिशील पुरुष की उपासना होती है। ये उपासना करते हुए

सदा दानशील होते हैं। यज्ञों के द्वारा ही वे प्रभु का उपासन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु को धारण करते हुए हम अमृतत्व को प्राप्त करें। यज्ञों के द्वारा प्रभु का उपासन करनेवाले हों।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'होता' प्रभु का उपासक भी होता बनता है

न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान्॥ ५॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वत् पूर्वः**=आपसे पहिला **होता न**=दाता कोई नहीं है। दाताओं में सर्वप्रथम दाता आप ही हैं। हे प्रभो! आपसे बढ़कर **यजीयान्**=पूजनीय कोई नहीं है। **काव्यैः**=ज्ञानों से भी **परः**=उत्कृष्ट भी **न अस्ति**=नहीं है। हे **स्वधावः**=आत्मधारणशक्तिवाले प्रभो! सर्वाधिक ज्ञानवाले आप ही हैं। आप ही सर्वश्रेष्ठ 'दाता, पूज्य व ज्ञानी' हैं। (२) **च**=और आप **यस्याः विशः**=जिस प्रजा के **अतिथिः भवासि**=अतिथि होते हैं, जिस प्रजा को आप प्राप्त होनेवाले होते हैं **सः**=वह **यज्ञेन**=यज्ञों के द्वारा, हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **मर्तान्**=मनुष्यों को **वनवत्**=संभक्त करनेवाला होता है, यह यज्ञों के द्वारा मनुष्यों की सेवा करता है। प्रभु का उपासक सब प्राणियों के हित में प्रवृत्त होता ही है। प्रभु होता है, यह भी होता बनता है।

भावार्थ—प्रभु सर्वश्रेष्ठ होता हैं इनका उपासक भी प्राजापत्य यज्ञ में आहुति देनेवाला बनता है।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वसूयवः बुध्यमानाः

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान्॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वा ऊताः**=आपके द्वारा रक्षित हुए-हुए **वयम्**=हम **वनुयाम**=शत्रुओं का विजय करें, शत्रुओं को हिंसित करके **वसूयवः**=वसुओं की कामनावाले, जीवन के लिये आवश्यक धनों की कामनावाले, हम **हविषा**=दानपूर्वक अदन से **बुध्यमानाः**=निरन्तर अपने ज्ञान को बढ़ानेवाले हों। प्रभु-रक्षण को प्राप्त करके काम-क्रोध को पराजित करें। वसुओं को प्राप्त करके, दानपूर्वक उन वसुओं का प्रयोग करते हुए हम निरन्तर अपने ज्ञान को बढ़ानेवाले हों। (२) **वयम्**=हम **समर्ये**=संग्राम में तथा **अह्नां विदथेषु**=सब हितों में चलनेवाले ज्ञानयज्ञों में आपसे रक्षित होकर ही विजय को प्राप्त करेंगे (त्वा ऊताः वनुयाम)। काम-क्रोध के साथ होनेवाले संग्राम में आपने ही हमें विजय प्राप्त करानी है। हमारे ज्ञानयज्ञों को भी आपने ही सफल बनाना है। (२) हे **सहसस्पुत्र**=शक्ति के पुञ्ज प्रभो! **वयम्**=हम **राया**=धन के द्वारा **मर्तान्**=मनुष्यों को जीतनेवाले बनें। धन का विनियोग मानवहित के लिये करते हुए सर्वत्र प्रशंसनीय हों और इस प्रकार धन के विनियोग से, विलास में न फँसकर, हम खूब शक्तिशाली बनें।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित होकर हम वसुओं को प्राप्त करके, उनका लोकहित में विनियोग करते हुए शक्तिशाली बनें।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अघशंस में अक्ष का धारण

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदुघमघशंसे दधात।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन॥ ७॥

(१) **यः**=जो पुरुष **नः अभि**=हमारे प्रति **आगः एनः**=अपराध को व पाप को **भरति**=करता है, तो उस अपराध व पाप से होनेवाले **अघम्**=कष्ट को (evil, harm) **इत्**=निश्चय से **अघशंसे**=इस अघ की कामना करनेवाले पुरुष में ही, हमें कष्ट देने की कामनावाले में ही **अधिदधात**=आधिक्येन धारण करिये। कोई भी व्यक्ति किसी आगस् व एनस् के द्वारा (अपराध व पाप के द्वारा) हमें कष्ठ पहुँचाने का प्रयत्न करता है तो यह कष्ट उसी अघशंस पुरुष को प्राप्त हो। (२) हे **चिकित्वः**=सर्वज्ञ प्रभो! **एताम्**=इस **अभिशस्तिम्**=(hurt, injury, attack) हानि व कष्ट के आक्रमण को **जहि**=विनष्ट करिये। हे **अग्ने**=प्रभो! **यः**=जो **नः**=हमें **द्वयेन मर्चयति**=आगस् व एनस् के दोनों के द्वारा बाधित व पीड़ित करता है उसे भी **जहि**=हमारे से दूर करिये, विनष्ट करिये। हम उसके आगस् व एनस् का शिकार न हों।

भावार्थ—हम अपराध व शाप जनित कष्टों का पात्र न बनें। बुरा चाहनेवाले को ही कष्ट प्राप्त हो।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रातः प्रभु-स्मरण

त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः॥ ८॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **त्वाम्**=आपको **अस्याः व्युषि**=इस रात्रि के व्युष्ट (समाप्त) होने पर, अर्थात् उषाकाल में (when the day dawns) **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले लोग **दूतं कृण्वानाः**=ज्ञान-संदेश प्राप्त करानेवाला करते हुए **हव्यैः अयजन्त**=हव्यों के द्वारा, यज्ञों के द्वारा उपासित करते हैं। उषाकाल होते ही ये पूर्व लोग आपका उपासन करते हैं, आप से ज्ञान सन्देश को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। ध्यान तथा स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होते हैं तथा दानपूर्वक अदन से, यज्ञशीलता से आपका यजन करते हैं। आप सब कुछ देनेवाले हैं। ये लोग भी सदा देकर अवशिष्ट का ही सेवन करते हैं। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **देवः**=प्रकाशमय हैं। **यत्**=चूँकि **रयीणाम्**=सब ऐश्वर्यों के **संस्थे**=संस्थान में **ईयसे**=आप गति करते हैं, सब **मर्तैः**=मनुष्यों से **वसुभिः**=वसुओं के उद्देश्य से **इध्यमानः**=दीप्त किये जाते हैं। सब मनुष्य वसुओं की प्राप्ति के लिये आपका ही ध्यान करते हैं। सब धनों के अधिष्ठाता प्रभु ही हैं, सो प्रभु ही सब को वसु प्राप्त कराते हैं। जो भी प्रभु को अपने हृदय में दीप्त करते हैं, प्रभु उन्हें सब वसु प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रातः उठकर प्रभु का हम स्मरण करें। ज्ञानपूर्वक अदन से प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें सब वसु प्राप्त करायेंगे।

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेय:** ॥ देवता—**अग्नि:** ॥ छन्द:—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवत:** ॥

पिता के नेतृत्व में पुत्र की यात्रा

अव॑ स्पृधि पि॒तरं॒ योधि॑ वि॒द्वान्पु॒त्रो यस्ते॑ सहसः सून ऊ॒हे।
क॒दा चि॑कित्वो अ॒भि च॑क्षसे॒ नोऽग्ने॑ क॒दाँ ऋ॒तचि॑द्यातयासे ॥ ९ ॥

(१) हे **सहस: सूनो**=बल के पुत्र, बल के पुञ्ज प्रभो! **पितरं विद्वान्**=पालक आप को जानता हुआ **य:**=जो **ते**=आपका **पुत्र:**=पुत्र होता हुआ आपको **ऊहे**=अपने हृदय में धारण करता है, उसको आप **योधि अवस्पृधि**=(योधय, स्पृह extricate from) पापों के साथ युद्ध कराइये और इन पापों से पृथक् करिये। आपका स्मरण करता हुआ यह आपका उपासक पापों से मुकाबिला कर सके और उन्हें पराजित करके अपने से दूर करनेवाला हो। (२) हे **चिकित्व:**=सर्वज्ञ प्रभो! **कदा**=हमारे जीवन में कब वह सौभाग्य का दिन होगा जब कि आप **न: अभिचक्षसे**=हमारे पर कृपा दृष्टि करेंगे? हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **कदा**=कब **ऋतचित्**=ऋतों का, सत्यों का हमारे जीवन में चयन करनेवाले आप **न:**=हमें **यातयासे**=सन्मार्ग से ले चलनेवाले होते हैं? कितना ही सुन्दर वह दिन होगा जब कि हम आपकी कृपादृष्टि को प्राप्त करके आपसे सन्मार्ग पर ले जायें जा रहे होंगे। आप मेरे नेता होंगे, मैं आपका अनुयायी।

भावार्थ—हे प्रभो! मैं आपका स्मरण करूँ। आप मुझे पापों से पृथक् करें। मैं आपका अनुयायी होऊँ, आप मुझे सन्मार्ग से ले चलें और मेरे में सत्य का वर्धन करें।

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेय:** ॥ देवता—**अग्नि:** ॥ छन्द:—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवत:** ॥

पिता द्वारा पुत्र में नम्रता का स्थापन

भूरि॒ नाम॒ वन्द॑मानो दधाति पि॒ता व॑सो॒ यदि॒ तज्जो॒षया॑से।
कु॒विद्दे॒वस्य॒ सह॑सा चका॒नः सु॒म्नम॒ग्निर्व॑नते वावृधा॒नः ॥ १० ॥

(१) **वन्दमान:**=स्तुति करता हुआ यह उपासक **भूरि**=खूब ही **नाम**=नम्रता को **दधाति**=धारण करता है, हे **वसो**=वसानेवाले प्रभो! **पिता**=पालक व रक्षक होते हुए **यदि**=यदि **तत्**=उस नम्रता को आप **जोषयासे**=हमें प्रीतिपूर्वक सेवन कराते हैं। अर्थात् इस नम्रता को भी तो आपने ही हमारे अन्दर धारण कराना है, पुत्र में पिता ही तो सब सद्गुणों का स्थापन करता है। (२) जब इस उषासक में प्रभु नम्रता को धारण कराते हैं, तो यह उपासक **देवस्य**=उस प्रकाशमय प्रभु का **कुवित्**=खूब ही **सहसा**=बल के द्वारा **चकान:**=(कामयमान:) कामना करता हुआ **अग्नि:**=प्रगतिशील होता है, **वावृधान:**=खूब ही वृद्धि को प्राप्त करता है और **सुम्नम्**=सुख को **वनते**=जीतता है, प्राप्त करता है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:' इस बात का स्मरण करता हुआ वह उपासक अपने को प्राप्त करता हुआ अपने सुख को बढ़ाता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हम नम्र बनते हैं। उपासना से सबल बनकर प्रभु प्राप्ति की कामनावाले होते हैं। प्रभु हमें सुखी करते हैं।

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेय:** ॥ देवता—**अग्नि:** ॥ छन्द:—**भुरिक्पङ्क्ति:** ॥ स्वर:—**पञ्चम:** ॥

उपासक का निष्पाप जीवन

त्वम॒ङ्ग ज॑रि॒तारं॑ यविष्ठ॒ विश्वा॑न्यग्ने दुरि॒ताति॑ पर्षि।
स्ते॒ना अ॑दृश्रन्रि॒पवो॒ जना॒सोऽज्ञा॑तकेता वृजि॒ना अ॑भूवन् ॥ ११ ॥

(१) हे **अंग**=गतिशील 'स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च', स्वाभाविकरूप से क्रियाशील, **यविष्ठ**=हमारी बुराइयों को दूर करके हमारे साथ अच्छाइयों का सम्पर्क करनेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **जरितारम्**=स्तोता को **विश्वानि दुरिता**=सब पापों से **अतिपर्षि**=पार ले जाते हो। आपका उपासक, आपकी कृपा से पापवृत्तियों को पराजित करने में समर्थ होता है। (२) **अज्ञातकेताः**=(न ज्ञातं के तं यैः, केतः सं केत) आपके संकेतों को न समझनेवाले **जनासः**=लोग **स्तेनाः**=चोर व **रिपवः**=ठग (cheat, rogue) **अदृश्रन्**=देखे जाते हैं, ये **वृजिनाः**=पाप ही पाप **अभूवन्**=हो जाते हैं। जो प्रभु की ओर झुकाव नहीं रखते और प्रभु के संकेतों को नहीं समझते वे 'चोर, ठग व पापी' बन पाते हैं।

भावार्थ—उपासक निष्पाप जीवनवाला बनता है और नास्तिक पापमय जीवनवाला।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रक्षक प्रभु

इमे यामा॑सस्त्व॒द्रिग॑भूव॒न्वस॑वे वा॒ तदिदागो॑ अवाचि।
नाहा॒यम॒ग्निर॒भिश॑स्तये नो॒ न रीष॑ते वावृ॒धानः॒ परा॑ दात्॥ १२॥

(१) **इमे**=ये **यामासः**=गतिशील पुरुष **त्वद्रिक्**=आपकी ओर आनेवाले **अभूवन्**=होते हैं। **वा**=अथवा **तत् इत् आगः**=वह अपराध भी, जो कि हमारे से शक्ति व ज्ञान की अल्पता के कारण हो जाता है, **वसवे**=उस निवासक प्रभु के लिये **अवाचि**=कहा जाता है। हम अपने अपराध को प्रभु के सामने स्वीकार करके उसे दूर करने के लिये प्रभु से प्रार्थना करते हैं। प्रभु हमें निष्पाप बनाकर हमारे निवास को उत्तम बनाते हैं। (२) **न अह अयं अग्निः**=नहीं ही यह अग्रणी प्रभु **नः**=हमें **अभिशस्तये**=वासनाओं के आक्रमण के लिये **परादात्**=छोड़ देते। अर्थात् ये प्रभु हमारे पर वासनाओं के आक्रमण को नहीं होने देते। **वावृधानः**=निरन्तर हमारा वर्धन करते हुए वे प्रभु **नः**=हमें **रीषते**=हिंसक पुरुष के लिये **न परादात्**=नहीं दे डालते। प्रभु से रक्षित हम उपासकों को हिंसक व्यक्ति भी हिंसित नहीं कर पाते।

भावार्थ—हम प्रभु की ओर चलें, प्रभु से ही पापों को दूर करने की याचना करें। प्रभु हमें वासनाओं व हिंसकों के आक्रमण से बचाते हैं।

'वसुश्रुत आत्रेयः' का ही अगला सूक्त है। वह अग्नि नाम से प्रभु स्मरण करता हुआ कहता है—

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वसुओं व शक्तियों के दाता प्रभु

त्वाम॑ग्ने॒ वसु॑पतिं॒ वसू॑नाम॒भि प्र म॑न्दे अध्व॒रेषु॑ राजन्।
त्वया॒ वाजं॑ वाज॒यन्तो॑ जयेमा॒भि ष्या॑म पृत्सु॒तीर्मर्त्या॑नाम्॥ १॥

हे **अग्ने**=अग्रणी **राजन्**=सबके शासक प्रभो! **वसूनां वसुपतिम्**=सब वसुओं (धनों) के पति **त्वाम्**=आपको **अध्वरेषु**=हिंसारहित परोपकार के कर्मों में **अभिप्रमन्दे**=आभिमुख्येन स्तुत करता हूँ, स्तुति करता हुआ आपके अभिमुख होता हूँ। आपने ही तो हमारे लिये सब वसुओं को प्राप्त कराना है। (२) **त्वया**=आपकी उपासना से **वाजयन्तः**=अपने साथ शक्ति को जोड़ने की कामना करते हुए हम **जयेम**=शत्रुओं को जीतनेवाले हों। हम **मर्त्यानाम्**=मरणधर्माओं की

पृत्सुती:=सेनाओं को **अभिष्याम**=अभिभूत करें। कोई भी हमारे पर आक्रमण करे, तो हम उसका मुकाबिला कर सकें, उसके पराभव से आत्मरक्षण करने में समर्थ हों।

भावार्थ—प्रभु ही हमें वसुओं को प्राप्त कराते हैं, शत्रुओं को पराजित करने की शक्ति देते हैं।

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेय:** ॥ देवता—**अग्नि:** ॥ छन्द:—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवत:** ॥

'हव्यवाळग्नि: अजर: पिता न:'

हव्यवाळग्निरजर: पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे।
सुगार्हपत्या: समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि॥ २॥

(१) **न:**=हमारे **पिता**=वे रक्षक प्रभु **हव्यवाड्**=सब हव्य पदार्थों के प्राप्त करानेवाले हैं, **अग्नि:**=अग्रणी हैं, हम आगे ले चलनेवाले हैं। **अजर:**=कभी जीर्ण नहीं होते। **विभु:**=व्यापक, **विभावा**=विशिष्ट दीप्तिवाले, **अस्मे**=हमारे लिये **सुदृशीक:**=उत्तम दृष्टिवाले हैं, सदा हमारा ध्यान करनेवाले, कृपादृष्टिवाले हैं। पिता के अनुरूप बनते हुए हमें भी हव्य पदार्थों का सेवन करनेवाला (हव्यवाड्) प्रगतिशील (अग्नि), शक्तियों को न जीर्ण कर लेनेवाला (अजर), उदार (विभु), विशिष्ट ज्ञानदीप्तिवाला (विभावा) व सदा उत्तम दृष्टिवाला (सुदृशीक) बनना है। (२) हे प्रभो! आप **सुगार्हपत्मा:**=गार्हपत्य यज्ञ को उत्तम बनानेवाले **इष:**=अन्नों को **अस्मद्र्यक्**=अस्मदभिमुख होकर **संमिमीहि**=सम्यक् दीजिये। आपकी कृपा से सात्विक अन्नों को प्राप्त करके, उन अन्नों के सेवन से सात्विक वृत्तिवाले होते हुए हम गृहस्थ यज्ञ को उत्तमता से चलानेवाले हों। हे प्रभो! आप इन्हीं सात्विक अन्नों से सात्विक बुद्धिवाला हमें बनाकर **शवांसि**=ज्ञानों का हमारे जीवन में निर्माण करिये?

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम अन्न व ज्ञान प्राप्त करायें, ताकि हमारा 'गृहस्थ यज्ञ' बड़ी उत्तमता से चले।

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेय:** ॥ देवता—**अग्नि:** ॥ छन्द:—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवत:** ॥

'रक्षक-पावक-होता' प्रभु

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम्।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि॥ ३॥

(१) **मानुषीणां विशां विश्पतिम्**=विचारशील प्रजाओं के रक्षक, **कविम्**=उस क्रान्तप्रज्ञ प्रभु को **निदधिध्वे**=निश्चय से अपने हृदयों में धारण करो। वे प्रभु **शुचिम्**=पवित्र हैं, **पावकम्**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले हैं। **घृतपृष्ठम्**=दीप्त पृष्ठवाले हैं, अर्थात् दीप्ति के रूप में आभासित होते हैं। उपासक उन्हें एक प्रकाश के रूप में ही देखता है। **अग्निम्**=वे उपासक को उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले हैं। **होतारम्**=वे होता हैं, दाता हैं। **विश्वविदम्**=सर्वज्ञ हैं व सर्वललक-सब कुछ प्राप्त करानेवाले हैं। (२) **स:**=वे प्रभु ही **देवेषु**=देवों में **वार्याणि**=वरणीय वस्तुओं को **वनते**=प्राप्त कराते हैं। सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले वे प्रभु ही हैं। सूर्यादि को ये ही दीप्ति प्राप्त कराते हैं। बुद्धिमानों को ये ही बुद्धि देते हैं और तेजस्वियों को तेज देनेवाले हैं। वे ही सर्वत्र विजय प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही रक्षक, पवित्र करनेवाले हैं। सब वरणीय वस्तुएँ प्रभु ही प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ब्रह्मयज्ञ-अतिथियज्ञ

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि॥ ४॥

(१) हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **इडया सजोषाः**=वेदवाणी से प्रीतिवाला होता हुआ तू ज्ञान की रुचिवाला होता हुआ तू **जुषस्व**=अपने कर्त्तव्य कर्मों को प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाला हो। तू **सूर्यस्य रश्मिभिः**=सूर्य की किरणों के साथ ही **यतमानः**=कर्त्तव्य कर्मों को करने के लिये यत्नशील हो। सूर्योदय से सूर्यास्त तक अपने नियत कर्मों को करने में लगा रह। (२) प्रभु जीव से कहते हैं कि—हे **जातवेदः**=उत्पन्न हुआ है ज्ञान जिसमें ऐसा तू **नः**=हमारी **समिधम्**=वेदोपदिष्ट इस ज्ञानदीप्ति को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन कर। **च**=और **हविः अद्याय**=सदा दानपूर्वक अदन के लिये **देवान् आवक्षि**=देवों को अपने घर पर लानेवाला हो उनका आतिथ्य करके, उनको खिला करके ही तू खानेवाला बन। यह आतिथ्य ही तुझे सब लोकों का विजेता बनायेगा।

भावार्थ—मनुष्य स्वाध्याय करे और अपने कर्त्तव्य कर्मों के करने में लगा रहे। ज्ञान में रुचिवाला हो, अतिथियों को खिला करके ही यज्ञशेष को खानेवाला बने।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आत्मविजय से जगत् विजय

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि॥ ५॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि **जुष्टः**=प्रीतिपूर्वक कार्यों में लगा हुआ, **दमूनाः**=दान के मनवाला अथवा दान्त (वशीभूत) मनवाला, **अतिथिः**=निरन्तर गतिशील तू **दुरोणे**=घर में **इमम्**=इस **नः यज्ञम्**=हमारे यज्ञ को **उपयाहि**=प्राप्त हो। अर्थात् वेद में उपदिष्ट यज्ञों को तू करनेवाला बन। (२) **विद्वान्**=ज्ञानी व समझदार होता हुआ तू हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **विश्वाः**=सब **अभियुजः**=आक्रमण करनेवाली वासनाओं को **विहत्य**=नष्ट करके, **शत्रूयताम्**=इन शत्रुत्व का आचरण करनेवाली प्रजाओं के **भोजनानि**=भोग साधनभूत धनों को आभर (आहर) हरण करनेवाला हो। वस्तुतः अपना विजय करके ही जगत् का विजय करनेवाला बनेगा। 'इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रियुधनं त्वया'।

भावार्थ—हम इस शरीर में दान्तमनवाले बनकर यज्ञों में प्रवृत्त रहें। सब वासनाओं को जीतकर बाह्य शत्रुओं को भी पराजित करनेवाले बनें।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ज्ञान' रूप शस्त्र से 'काम' रूप शत्रु का संहार

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३ स्वायै।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान्॥ ६॥

(१) हे जीव! तू **वधेन**=वध के साधनभूत आयुधों के द्वारा **दस्युम्**=इस नाशक कामरूप वृत्ति को **हि**=निश्चय से **चातयस्व**=विनष्ट कर। इसके विनाश के द्वारा **स्वायै तन्वे**=अपने शरीर के लिये **वयः**=दीर्घ आयुष्य को **कृण्वानः**=करनेवाला हो। 'काम' तेरे शरीर को जीर्ण

करनेवाला शत्रु है। इसके वध का साधन ज्ञान ही है। बुद्धि को परिष्कृत करता हुआ तू ज्ञान को बढ़ा और इस वासनारूप शत्रु को विनष्ट कर। (२) इस प्रकार कहा हुआ जीव प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे **सहसस्पुत्र**=बल के पुञ्ज प्रभो! **यत्**=जो आप **देवान् पिपर्षि**=दिव्य गुणों को हमारे अन्दर पूरण करते हैं, **सः**=वे **अग्ने**=हे अग्रणी, **नृतम**=सर्वोत्तम नेतृत्व देनेवाले प्रभो! आप **वाजे**=इस जीवन संग्राम में **अस्मान्**=हमें **पाहि**=सुरक्षित कीजिये। आप से रक्षित होकर ही हम इस संग्राम में विजय को प्राप्त कर सकेंगे।

भावार्थ—जीव का कर्त्तव्य है कि ज्ञानरूप शस्त्र के द्वारा 'काम' रूप शत्रु का संहार करके दीर्घ जीवन को प्राप्त करे। प्रभु के सम्पर्क से शक्तिशाली बनकर जीवन संग्राम में विजय को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उक्थों व हव्यों द्वारा प्रभु-स्तवन

व॒यं ते॑ अग्न उ॒क्थैर्वि॑धेम व॒यं ह॒व्यैः पा॑वक भद्रशोचे।
अ॒स्मे र॒यिं वि॒श्ववा॑रं॒ समि॑न्वा॒स्मे विश्वा॑नि॒ द्रवि॑णानि धेहि॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **वयम्**=हम **उक्थैः**=स्तोत्रों से **ते विधेम**=आपका पूजन करें। हे **पावक**=हमें पवित्र करनेवाले, **भद्रशोचे**=कल्याणकर ज्ञानदीप्तिवाले प्रभो! **वयम्**=हम **हव्यैः**=हव्यों के द्वारा दानपूर्वक अदन के द्वारा आपका पूजन करते हैं। यज्ञरूप प्रभु का पूजन यज्ञशेष के सेवन से ही होता है। (२) हे प्रभो! आप **अस्मे**=हमारे लिये **विश्ववारम्**=सब से वरने योग्य **रयिम्**=ज्ञानैश्वर्य को **समिन्व**=प्राप्त कराइये। इस ज्ञानैश्वर्य के द्वारा **विश्वानि**=सब **द्रविणानि**=जीवन की गति के साधक धनों को **धेहि**=हमारे में धारण करिये।

भावार्थ—हम स्तोत्रों व हव्यों के द्वारा प्रभु का पूजन करें। प्रभु हमें ज्ञानैश्वर्य व जीवन-यात्रा के साधक द्रविणों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'हव्य व अध्वर' का सेवन व सुख प्राप्ति

अ॒स्माक॑मग्ने अध्व॒रं जु॑षस्व॒ सह॑सः सूनो त्रिषधस्थ ह॒व्यम्।
व॒यं दे॒वेषु॑ सु॒कृतः॑ स्याम॒ शर्म॑णा नस्त्रि॒वरू॑थेन पाहि॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अस्माकम्**=हमारे **अध्वरम्**=जीवनयज्ञ का **जुषस्व**=आप सेवन करिये। हमारा जीवनयज्ञ आपके लिये प्रिय हो। वस्तुतः आपके द्वारा ही इसने पूर्ण होना है। हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज **त्रिषधस्थ**=तीनों लोकों में एक साथ वर्तमान सर्वव्यापक प्रभो! हमारे **हव्यम्**=हव्य को (जुषस्व) आप प्रीतिपूर्वक सेवन करिये। यह हव्य आपके लिये प्रीतिकर हो। हम इस त्यागपूर्वक अदन से ही तो आपकी उपासना कर पाते हैं। (२) **वयम्**=हम **देवेषु**=देववृत्ति के पुरुषों में भी **सुकृतः**=उत्तम कर्मों को करनेवाले **स्याम**=हों। देवों में भी देववर व देवतम बनने का प्रयत्न करें। अथवा माता, पिता, आचार्य व अतिथि आदि देवों में सदा शुभ कर्मों को करनेवाले हों, उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों को अच्छी प्रकार निभायें। आप **त्रिवरूथेन**=तीनों कष्टों का निवारण करनेवाले **शर्मणा**=सुख से **नः**=हमें **पाहि**=सुरक्षित करिये। हमें 'वाचिक व मानस' कोई भी कष्ट न प्राप्त हो।

भावार्थ—हम अध्वर व हव्य के द्वारा प्रभु के प्रिय हों। उत्तम कर्मों को करते हुए त्रिविध

कष्टों से सन्तप्त न हों।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अत्रि' बनकर नमनपूर्वक प्रभु का उपासन करें

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिं पर्षि।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो३ऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम्॥ ९॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! आप **नः**=हमें **विश्वानि**=सब **दुर्गहा**=दुःख से ग्रहण योग्य-दुःख से भोग्य, **दुरिता**=दुरितों को, अशुभों को **अतिपर्षि**=पार कराइये, **न**=जैसे कि **सिन्धुम्**=नदी को **नावा**=नाव से पार कराते हैं। आपकी कृपा से हम सब इन दुःखभोग्य दुरितों से दूर हों। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **अत्रिवत्**='काम-क्रोध-लोभ' से ऊपर उठे हुए व्यक्ति की तरह **नमसा**=नमस्कार के द्वारा **गृणानः**=हमारे से स्तुति किये जाते हुए आप **अस्माकम्**=हमारे **तनूनाम्**=शरीरों के **अविता**=रक्षक **बोधि**=होइये। हम अत्रि बनकर नमनपूर्वक आपके चरणों में उपस्थित हों और आपसे रक्षणीय हों।

भावार्थ—प्रभु हमें सब कष्टों से पार करते हैं। हम अत्रि बनकर प्रभु का स्तवन करें, प्रभु हमारा रक्षण करेंगे।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यशस्वी व अमर जीवन

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्॥ १०॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **अमर्त्यं त्वा**=अविनाशी आपको **यः**=जो **मर्त्यः**=मरणधर्मा मैं **कीरिणा**=स्तुतियुक्त **मनसा**=मन से **मन्यमानः**=मनन करता हुआ, स्तुति शब्दों के अर्थ का भावन करता हुआ (तज्जपः तदर्थभावनम्) **जोहवीमि**=पुकारता हूँ। (२) वे आप **अस्मासु**=हमारे में **यशः धेहि**=यश का स्थापन करिये, आपकी कृपा से मैं यशस्वी कार्यों को ही करनेवाला बनूँ। **अग्ने**=हे अग्रणी प्रभो! मैं आपकी कृपा से **प्रजाभिः**=प्रजाओं के द्वारा **अमृतत्वम्**=अमरता को **अश्याम्**=प्राप्त करूँ। इस शरीर को छोड़ने के बाद भी सन्तानों के रूप में जीवित ही रहूँ। वस्तुतः यशस्वी जीवनवालों का वंश चलता ही चलता है। कोई तीव्र अपयश की बात आ जाने पर ही वंश समाप्त हुआ करता है।

भावार्थ—प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ। प्रभु मुझे यशस्वी व प्रजाओं द्वारा अमर जीवन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उत्तम धन

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम्।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति॥ ११॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **यस्मै सुकृते**=जिस पुण्यशाली के लिये **त्वम्**=आप **उ**=निश्चय से **स्योनम्**=सब सुखों के साधक **लोकम्**=आलोक को (प्रकाश को) **कृणवः**=करते हैं **सः**=वह **स्वस्ति**=कल्याण करें **रयिम्**=रयि को, ऐश्वर्य को **नशते**=प्राप्त होता

है। (२) उस रयि को प्राप्त होता है जो कि **पुत्रिणम्**=प्रशस्त सन्तानोंवाला है, **वीरवन्तम्**=धन स्वामी को वीर बनानेवाला है तथा **गोमन्तम्**=उसे प्रशस्त इन्द्रियोंवाला बनाता है। सामान्यत: ऐश्वर्य में यही कमी है कि (क) सन्तानें अधिक लाड-प्यार में पलने से बिगड़ जाती है, (ख) मनुष्य स्वयं कम काम करने से कमजोर हो जाता है, (ग) भोगविलास की वृद्धि से इन्द्रियाँ 'विषयपंक मलिन' हो जाती हैं। पर यह पुण्यशाली इन दोषों से रहित रयि को प्राप्त करता है।

भावार्थ—पुण्यशाली को प्रभु पवित्र रयि प्राप्त कराते हैं जो कि उसे पवित्र पुत्रोंवाला, प्रकृष्ट बलवाला व प्रशस्तेन्द्रिय बनाता है।

वसुश्रुत आत्रेय ही अगले सूक्त का भी ऋषि है। यह ४.११ के अनुसार उस वसु के कारण श्रुत (प्रसिद्ध) है जो कि सन्तानों शक्ति व इन्द्रियों पर अशुभ प्रभाववाला नहीं। यह कहता है—

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेय:** ॥ देवता—**आप्रिय:** ॥ छन्द:—**गायत्री** ॥ स्वर:—**षड्जः** ॥

प्रभु प्राप्ति के लिये ज्ञान की साधना

सुस॑मिद्धाय शो॒चिषे॑ घृ॒तं ती॒व्रं जु॑होतन। अ॒ग्नये॑ जा॒तवे॑दसे॥ १ ॥

(१) **सुसमिद्धाय**=खूब दीप्त-तेजस्वी, **शोचिषे**=ज्ञानदीप्तिवाले, **अग्नये**=गतिशील अग्रणी, **जातवेदसे**=(जातं वेद: यस्मात्) उत्पन्न धनवाले, सब धनों के दाता उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **तीव्रम्**=बड़ी प्रबल **घृतम्**=ज्ञानदीप्ति को **जुहोतन**=अपने में आहुत करो। (२) प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम ज्ञान को बढ़ायें। जितना-जितना ज्ञान बढ़ेगा, उतना-उतना प्रभु की महिमा को हम प्रत्येक पदार्थ में देखेंगे। प्रभु के समीप होते हुए हम भी तेजस्वी (समिद्ध) ज्ञानदीप्तिवाले, प्रगतिशील व आवश्यक धनों का अर्जन करनेवाले बनेंगे।

भावार्थ—ज्ञानवृद्धि के द्वारा हम प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त करें। यह सान्निध्य हमें तेजस्वी, ज्ञानदीप्त, प्रगतिशील व ऐश्वर्य-सम्पन्न बनायेगा।

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेय:** ॥ देवता—**आप्रिय:** ॥ छन्द:—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वर:—**ऋषभः** ॥

'अदाभ्य-कवि-मधुहस्त्य'

नरा॒शंस॑: सुषूदती॒मं य॒ज्ञमदा॑भ्यः। क॒विर्हि मधु॑हस्त्यः॥ २ ॥

(१) **नराशंस:**=मनुष्यों से स्तुति किये जानेवाले वे प्रभु **इयं यज्ञम्**=इस यज्ञ को **सुषूदति**=सम्यक् प्रेरित करते हैं। जो भी प्रभु का स्तवन करता है, प्रभु उसे यज्ञात्मक कर्मों में चलने की प्रेरणा देते हैं। (२) वे प्रभु **अदाभ्य:**=वासनाओं व अन्य शत्रुओं से हिंसित होनेवाले नहीं, **हि**=निश्चय से **कवि:**=सर्वज्ञ हैं। **मधुहस्त्य:**=मधुरता से सब कर्मों को करनेवाले हैं, हाथों में माधुर्य को लिये हुए हैं। मन में अदाभ्य, मस्तिष्क में ज्ञानी, हाथों में मधुहस्त्य।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमारे जीवन को यज्ञमय बनाते हैं, हम 'अदाभ्य-कवि-मधुहस्त्य' बनते हैं।

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेय:** ॥ देवता—**आप्रिय:** ॥ छन्द:—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वर:—**षड्जः** ॥

'सुख' रथ

ई॒ळि॒तो अ॑ग्न॒ आ व॒हेन्द्रं॑ चि॒त्रमि॒ह प्रि॒यम्। सु॒खै रथे॑भिरू॒तये॑॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **ईळित:**=स्तुति किये गये आप **इह**=इस जीवन में **इन्द्रम्**=इस

जितेन्द्रिय पुरुष को **प्रियम्**=प्रीति के साधक **चित्रम्**=अद्भुत ज्ञान को (चित्=ज्ञाने) **आवह**=प्राप्त कराइये। (२) इस ज्ञान के द्वारा ही तो आप **सुखैः**=(सु-ख) उत्तम इन्द्रियोंवाले **रथेभिः**=शरीर-रथों से **ऊतये**=हमारे रक्षण के लिये होते हैं। प्रभु हमें ज्ञान प्राप्त कराते हैं, ज्ञान के द्वारा इन्द्रियाँ उत्तम बनती हैं। सब इन्द्रियों के उत्तम होने पर ही जीवन-यात्रा का सुख निर्भर करता है।

भावार्थ—प्रभु उपासक को ज्ञान प्राप्त कराते हैं, ज्ञान के द्वारा इन्द्रियाँ उत्तम होती हैं, इन्द्रियों के ठीक होने पर शरीर-रथ ठीक से चलता हुआ जीवन-यात्रा की पूर्ति का साधक होता है।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**पिपीलिकामध्यागायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विशाल हृदयता-स्तुति व शुद्धता

ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत। भवा नः शुभ्र सातये॥ ४॥

(१) **ऊर्णम्रदाः**=(ऊर्ण् आच्छादने, मृदु) औरों के दोषों को आच्छादित करनेवाले, दोषों को न उघाड़ते फिरनेवाले और कोमल हृदय से युक्त हुआ-हुआ तू **विप्रथस्व**=विशिष्ट विस्तारवाला हो। (२) **अर्काः**=मेरे जीवन में स्तुति के साधनभूत मन्त्र (अर्कः मंत्रः अर्चन्ति अनेन) **अभि अनूषत**=तेरा आभिमुख्येन स्तवन करनेवाला हो। तू मन्त्रों द्वारा सदा प्रभु का स्तोता बन। (३) **शुभ्र**=शुभ्र जीवनवाला होता हुआ तू **नः**=हमारी **सातये**=प्राप्ति के लिये **भवा**=हो। जीवन को शुद्ध बनाकर तू प्रभु को प्राप्त होनेवाला हो।

भावार्थ—हम विशाल हृदय बनें, मन्त्रों द्वारा प्रभु का स्तवन करें, शुद्ध जीवनवाले बनकर प्रभु को प्राप्त हों।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तम इन्द्रिय द्वार

देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये। प्रप्र यज्ञं पृणीतन॥ ५॥

(१) यह मानवदेह यज्ञ की वेदि है। इसमें इन्द्रियाँ इस यज्ञशाला के द्वार हैं। इनके लिये कहते हैं कि **देवीः द्वारः**=प्रकाशमय-उत्तम व्यवहारों के साधक (दिव्-द्युतौ, व्यवहारे) इन्द्रिय द्वारो! **विश्रयध्वम्**=विशिष्टरूप से इस देह में अपना आश्रय करो। **नः**=हमारे **ऊतये**=रक्षण के लिये **सुप्रायणाः**=शुभ प्रकृष्ट गतिवाले होवो। सब इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य उत्तमता से करें, ताकि जीवन यज्ञ सुन्दरता से चले। (२) हे इन्द्रिय द्वारो! सुप्रायण होते हुए तुम **यज्ञम्**=इस जीवन यज्ञ को **प्र प्र**=खूब ही अच्छी तरह **पृणीतन**=पूरा करो। ये इन्द्रियाँ इस जीवन यज्ञ के होता हैं, इन्होंने ही तो इसे पूरा करना है।

भावार्थ—इन्द्रिय द्वार उत्तम गतिवाले होकर जीवन यज्ञ को सिद्ध करनेवाले हों।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

जीवन को बनानेवाले 'दिन-रात'

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा। दोषामुषासमीमहे॥ ६॥

(१) हम जीवन के निर्माण करनेवाले **दोषाम्**=रात्रि को व **उषासम्**=उषा (दिन) को **ईमहे**=स्तुत करते हैं। दिन व रात का ठीक उपयोग ही इनका स्तवन है। दिन के एक-एक क्षण को क्रियामय बनाते हुए हम इसे सचमुच 'उषस्' (दोष दहन करनेवाला) बनाते हैं तथा रात्रि को आराम करते हुए इसे रमयित्री करते हैं। (२) ये दिन-रात **सुप्रतीके**=उत्तम अंगोंवाले हैं। यदि दिन हमारा खूब क्रियाशील बीतता है और रात्रि हमारे लिये रमयित्री होती है तो सब अंग-प्रत्यंग

स्वास्थ्य के सौन्दर्य से दीप्त प्रतीत होते हैं। **वयोवृधा**=ये दिन-रात हमारे आयुष्य के वर्धक हैं। **यह्वी**=हमारे लिये महत्त्वपूर्ण हैं (महत्यौ)। हमारे जीवनों में **ऋतस्य**=सब ठीक चीजों का **मातरा**=निर्माण करनेवाले हैं।

भावार्थ—हमारे दिन-रात क्रमशः निरन्तर क्रिया व आराम में बीतते हुए हमारे जीवन को 'सुरूप, दीर्घ व यज्ञिय' बनानेवाले हों।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

जीवन यज्ञ के दैव्य होता

वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः। इमं नो यज्ञमा गतम्॥ ७॥

(१) शरीर में जो जीवनयज्ञ चलता है उसके 'दो कान, दो आँखें, दो नासिका-छिद्र व मुख' ये सात होता हैं। इस जीवन यज्ञ के रक्षक प्राण व अपान हैं। उन्हें यहाँ 'दैव्य होता' कहा है। ये दोनों उस महान् देव प्रभु से शरीर में यज्ञ ही रक्षा के लिये स्थापित हुए हैं। ये दोनों **नः**=हमारे **इमम्**=इस **यज्ञम्**=जीवन यज्ञ को **आगतम्**=प्राप्त हों। इन्होंने ही तो हमारे इस जीवन यज्ञ का रक्षण करना है 'तत्र जागृतः आस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ'=वे देव यज्ञ में आसीन होकर सदा जागते हैं। (२) ये दोनों **वातस्य पत्मन्**=वायु के पतन-स्थान अन्तरिक्ष में, हृदयान्तरिक्ष में **ईडिता**=स्तुत होते हैं। वायु अन्तरिक्ष की देवता है, प्राणापान हृदयान्तरिक्ष की। ये **मनुषः**=विचारशील पुरुष के **दैव्या होतारा**=प्रभु से दिये गये होता हैं, अथवा विचारशील पुरुष को प्रभु की ओर ले-जानेवाले होता हैं।

भावार्थ—बाहर जो वायु का स्थान है, वही शरीर में प्राणापान का। वे मनुष्य को प्रभु की ओर ले-जानेवाले होते हैं, जीवन यज्ञ को सफल करते हैं।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इडा, सरस्वती, मही

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥ ८॥

(१) पृथिवी स्थानीय अग्नि की पत्नी 'इडा' है, अन्तरिक्ष स्थानीय सरस्वान् (=वायु) की पत्नी सरस्वती है, द्युस्थान आदित्य (भरत) की पत्नी 'मही' है। शरीर के साथ 'इडा' का सम्बन्ध है, शरीर में उचित अग्नि आवश्यक ही है। हृदयान्तरिक्ष के साथ 'सरस्वती' का सम्बन्ध है, सरस्वती का आराधक हृदय ही 'हृदय' है। मस्तिष्क आदित्य पत्नी मही का निवास-स्थान है। यह मही ज्ञानवाणी ही मस्तिष्क को सुभूषित करती है। ये 'इडा सरस्वती मही'=शरीर, हृदय व मस्तिष्क की देवताएँ **तिस्रः**=तीनों मिलकर **देवीः**=हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाती हैं **मयोभुवः**=ये कल्याण व नीरोगता को जन्म देनेवाली हैं। (२) **अस्रिधः**=किसी प्रकार का हिंसन न करती हुईं ये **बर्हिः**=हमारे वासनाशून्य हृदय में **सीदन्तु**=स्थित हों। हमारे हृदयों में इन तीनों के लिये स्थान हो। इन तीनों की स्थिति हमें अहिंसित बनाये।

भावार्थ—हम जीवन में 'इडा, सरस्वती व मही' के उपासक बनकर कल्याण को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'शिव, विभु, पोष' प्रभु

शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना। यज्ञेयज्ञे न उदव॥ ९॥

(१) **त्वष्टः**=हे संसार के निर्माता (त्वक्ष्) दीप्त (त्विक्ष्) प्रभो! आप **शिवः**=सबका कल्याण

करनेवाले हैं। **विभुः**=सर्वव्यापक हैं। **उत**=और **त्मना**=स्वयं **पोषः**=पोषण करनेवाले हैं। हमारी बिना प्रार्थना के भी वे प्रभु पोषण करते ही हैं। ऐसे आप **इह**=यहाँ जीवनयज्ञ में **आगहि**=हमें प्राप्त होइये। (२) **यज्ञे यज्ञे**=प्रत्येक यज्ञ में, उत्तम कर्म में **नः**=हमें **उद् अव**=उत्कर्षेण रक्षित करिये। वस्तुतः प्रभु-कृपा से ही सब यज्ञ पूर्ण हुआ करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें प्राप्त हों। हमारे सब यज्ञ प्रभु-कृपा से पूर्ण हों।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वनस्पति' प्रभु (ज्ञानरश्मियों के पति)

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि। तत्र हव्यानि गामय ॥ १० ॥

(१) हे **वनस्पते**=ज्ञानरश्मियों के स्वामिन् प्रभो! **यत्र**=जहाँ आप **देवानाम्**=देववृत्तिवाले पुरुषों के **गुह्या**=हृदयरूप गुहा में होनेवाली **नामानि**=नम्रता की भावनाओं को **वेत्थ**=जानते हैं व प्राप्त कराते हैं, **तत्र**=वहाँ **हव्यानि गामय**=हव्य पदार्थों को भी प्राप्त कराइये। (२) हे प्रभो! आपकी कृपा से हम देववृत्तिवाले बनकर, खूब उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करके, हृदय में नम्रता को धारण करें तथा जीवन में सदा हव्य पदार्थों का ही सेवन करनेवाले बनें। सदा यज्ञशेष का सेवन ही हव्य का सेवन है। हम हव्यों के ग्रहण के द्वारा ही प्रभु-पूजन करते हैं।

भावार्थ—हमारे हृदयों में ज्ञानी पुरुष की नम्रता हो तथा हम हव्य पदार्थों का सेवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हव्य सेवन के लाभ

स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः। स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥ ११ ॥

(१) **अग्नये**=उस अग्नि नामक प्रभु की प्राप्ति के लिये **हविः स्वाहा**=मैं अपने में हवि की आहुति देता हूँ। अर्थात् हवि का सेवन करता हुआ मैं अग्नि (प्रभु) को प्राप्त होता हूँ। हवि के द्वारा ही तो अग्नि का उपासन होता है। अग्नि, अर्थात् मैं प्रगतिशील बनता हूँ। (२) **वरुणाय**=वरुण नामक प्रभु के लिये मैं अपने में हवि की **स्वाहा**=आहुति देता हूँ। हवि का सेवन करता हुआ वरुण का उपासक बनता हूँ। वरुण, अर्थात् द्वेष का निवारण करनेवाला व व्रत के बन्धन में अपने को बाँधनेवाला बनता हूँ। (३) **इन्द्राय**=इन्द्र के लिये मैं हवि को **स्वाहा**=अपने में आहुत करता हूँ। हवि का, यज्ञशेष का ही सेवन करता हुआ मैं जितेन्द्रिय बनता हूँ। (४) **मरुद्भ्यः**=प्राणों के लिये मैं हवि की अपने में आहुति देता हूँ। यज्ञशेष का सेवन करता हुआ अपनी प्राणशक्ति का वर्धन करता हूँ। (५) **देवेभ्यः**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये मैं हवि को अपने में आहुत करता हूँ। हवि, अर्थात् 'हु दानादनयोः' देकर बचे हुए को ही खानेवाला बनता हूँ। इस यज्ञशेष के सेवन से हमारे में दिव्य वृत्तियों का वर्धन होता है, आसुर वृत्तियों का ह्रास।

भावार्थ—देकर बचे हुए यज्ञशेष का सेवन करता हुआ मैं 'प्रगतिशील, निर्द्वेष व व्रतबन्धनवाला, जितेन्द्रिय, प्राणशक्ति-सम्पन्न व दिव्यवृत्तिवाला' बनता हूँ।

इस प्रकार हव्य सेवन करनेवाले 'वसुश्रुत आत्रेय' को प्रभु की प्रेरणा प्राप्त होती है। यह भाव प्रस्तुत सूक्त में देखिये—

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अग्नि=प्रगतिशील जीव

अ॒ग्निं तं म॑न्ये॒ यो वसु॒रस्तं॒ यं यन्ति॑ धे॒नवः॑।
अस्त॒मर्व॑न्त आ॒शवोऽस्तं॒ नित्या॑सो वा॒जिन॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र॥ १॥

(१) **तम्**=उसको **अग्निम्**=प्रगतिशील **मन्ये**=मानता हूँ, (क) **यः**=जो **वसुः**=अपने निवास को उत्तम बनाता है और औरों के भी वास का कारण बनता है। (ख) उसे अग्नि मानता हूँ **यम्**=जिसको **धेनवः**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणीरूप गौवें **अस्तं यन्ति**=घर की तरह प्राप्त होती हैं। गौवें चरकर सायं घर को लौटती हैं, इसे भी ये वेदवाणी रूप धेनुएँ प्राप्त होती हैं, यह उनके लिये घर की तरह बनता है (at home, familiar), (ग) इस अग्नि को **आशवः अर्वन्तः**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियाँ **अस्तम्**=घर की तरह प्राप्त होती हैं। (घ) इस अग्नि को **नित्यासः**=(नि=) अन्दर होनेवाले, बाहर विषय वासनाओं से मलिन न होनेवाले **वाजिनः**=इन्द्रियरूप अग्नि **अस्तम्**=घर की तरह प्राप्त होते हैं। (२) इन **स्तोतृभ्यः**=अपने जीवन को उत्तम बनाने के द्वारा आपका सच्चा स्तवन करनेवाले स्तोताओं के लिये **इषम्**=प्रेरणा को **आभर**=प्राप्त कराइये। आपसे निरन्तर प्रेरणा को प्राप्त करके ही तो ये अपने जीवन को सुन्दर बना पायेंगे।

भावार्थ—प्रगतिशील वह है जो अपने निवास को उत्तम बनाये, ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करे, क्रियाशील इन्द्रियोंवाला हो, विषयों से अनाक्रान्त इन्द्रियोंवाला हो। यही स्तोता है। इस स्तोता को प्रभु प्रेरणा प्राप्त होती है।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुजात सूरियों का सम्पर्क

सो अ॒ग्निर्यो वसु॑र्गृ॒णे सं यमा॒यन्ति॑ धे॒नवः॑।
सम॑र्वन्तो रघु॒द्रुवः॒ सं सु॑जा॒तासः॑ सू॒रय॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र॥ २॥

(१) **सः**=वह **अग्निः**=प्रगतिशील जीव है **यः**=जो कि **वसुः**=अपने निवास को उत्तम बनाता है और औरों के निवास का कारण बनता है। **यम्**=जिसको **धेनवः**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणी रूप गौवें **सं आयन्ति**=सम्यक् प्राप्त होती हैं। जिसको **रघुद्रुवः**=शीघ्र गमनवाले, क्रियाओं को स्फूर्ति से करनेवाले **अर्वन्तः**=इन्द्रियाश्व **सम्**=सम्यक् प्राप्त होते हैं। (२) यह अग्नि ही **गृणे**=स्तुत होता है, प्रशंसनीय होता है, जिसे कि **सुजातासः**=उत्तम कुलों में जन्म लेनेवाले अथवा उत्तम विकासवाले **सूरयः**=ज्ञानी पुरुष **सम्**=प्राप्त होते हैं, जिसका उठना-बैठना कुलीन व गुण-सम्पन्न ज्ञानी पुरुषों के साथ होता है। वस्तुतः ये ही पुरुष प्रभु के सच्चे स्तोता होते हैं। हे प्रभो! आप **स्तोतृभ्यः**=इन स्तोताओं के लिये **इषम्**=प्रेरणा को **आभर**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ—अग्नि वह है जो वसु है, जिसे ज्ञानदुग्धदात्री वेदवाणीरूप धेनुएँ प्राप्त होती हैं, जिसकी कर्मेन्द्रियाँ शीघ्र गतिवाली हैं, जिसका उठना-बैठना कुलीन ज्ञानी पुरुषों के साथ है। इन्हें ही प्रभु प्रेरणा प्राप्त होती है।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

विशाल 'व्यापक, मनोवृत्तिवाला' प्रभु-भक्त

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥

(१) **विश्वचर्षणिः**=सब का द्रष्टा, सब का ध्यान (पालन) करनेवाला **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **हि**=निश्चय से **विशे**=प्रजाओं के लिये **वाजिनम्**=शक्ति को (strength) **ददाति**=देता है। इस शक्ति के द्वारा ही वह हमें रक्षण के योग्य बनाता है। **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु ही **स्वाभुवम्**=(सु आ भू) उत्तमता से सर्वत्र व्याप्त होनेवाले पुरुष को, अर्थात् वसुधा को ही अपना परिवार बना लेनेवाले पुरुष को, **राये**=धन के लिये प्राप्त कराता है। **सः**=वह स्वाभुम=पुरुष **प्रीतः**=प्रसन्नता का अनुभव करनेवाला हुआ-हुआ **वार्य**=सब वरणीय धनों को **याति**=प्राप्त होता है। परिवार की विशालता से प्रीति का अनुभव होता है। यह वसुधा को परिवार बनानेवाला पुरुष प्रीति का अनुभव करता हुआ, प्रभु के अनुग्रह से सब वरणीय धनों को प्राप्त करता है। (२) हे प्रभो! आप इन वसुधा को अपना परिवार बनानेवाले, विशाल हृदयवाले **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये **इषं आभर**=प्रेरणा को प्राप्त कराइये। ये स्वाभू पुरुष प्रभु के भक्त होते हैं 'सर्वभूतहितेरताः'। इन्हें प्रभु की प्रेरणा प्राप्त होती है।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति व धन प्राप्त कराते हैं। हम हृदय को विशाल बनायें, तभी प्रभु के प्रिय होंगे और प्रभु से प्रेरणा को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्रभु के अजरामर काव्य 'वेद' का उपासक

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **ते**=आपकी **द्युमन्तम्**=ज्योतिर्मय **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाली ज्ञान-ज्योति को **आ इधीमहि**=अपने में सर्वथा दीप्त करते हैं 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'=उस देव का यह वेद अजरामर काव्य है। इसे हम अपने में दीप्त करते हैं। (२) हे प्रभो! **यत्**=जो **स्या**=वह **ते**=आपकी **पनीयसी**=अति प्रशंसनीय **समित्**=ज्ञानदीप्ति है, वह **ह**=निश्चय से **द्यवि**=हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में **दीदयति**=चमकती है। अर्थात् आपने जो वेदज्ञान दिया है, उसे हम अपने मस्तिष्क में दीप्त करने का प्रयत्न करते हैं। हे प्रभो! आप इन **स्तोतृभ्यः**=आपके सच्चे स्तोताओं के लिये **इषम्**=प्रेरणा को **आभर**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम प्रभु की वेदरूप ज्ञान-ज्योति से मस्तिष्क को दीप्त करने का प्रयत्न करें। प्रभु हमें प्रकृष्ट प्रेरणा प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विज्ञान-हवि

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिये **ते ऋचा**=आपकी इन ऋचाओं के साथ, विज्ञान वाणियों के साथ **हविः आ हूयते**=हमारे से हवि आहुत होती है। 'मंत्रोच्चारणपूर्वक हवन करते हैं' इस अर्थ के साथ 'ऋचा हविः आ हूयते' का भाव यह भी है कि हम (क) ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और (ख) सदा त्यागपूर्वक अदन करते हैं। प्रभु प्राप्ति के ये ही मुख्य साधन हैं। (२) हे प्रभो! आप **शुक्रस्य शोचिषः पते**=(शुक गतौ) हमें क्रियाशील बनानेवाली ज्ञानदीप्ति के पति हैं। आपसे प्राप्त ज्ञानदीप्ति से हमारा जीवन क्रियाशील बनता है। **सुश्चन्द्र**=आप उत्तम आह्लादवाले हैं। उपासक को अद्भुत आनन्द को प्राप्त कराते हैं। **दस्म**=आप सब दुःखों के विनाशक हैं। **विश्पते**=सब प्रजाओं के रक्षक हैं **हव्यवाट्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं। हे प्रभो! आप **स्तोतृभ्यः**=विज्ञान व हवि को अपनानेवाले हम स्तोताओं के लिये **इषम्**=प्रेरणा को **आभर**=प्राप्त करानेवाले होइये।

भावार्थ—हे प्रभो! हम आपके विज्ञान को धारण करते हुए दानपूर्वक अदन करनेवाले बनें। आप हमें प्रेरणा को प्राप्त कराके हमारे लिये आह्लाद को प्राप्त करानेवाले व दुःखों को दूर करनेवाले होइये।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

हिन्विरे-इन्विरे-इषणयन्ति

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषणयन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ६॥

(१) **उ**=निश्चय से **त्ये**=वे ही **अग्नयः**=प्रगतिशील जीव हैं, जो **अग्निषु**=माता-पिता व आचार्यरूप अग्नियों में रहते हुए, इन अग्नियों की उपासना करते हुए, **विश्वम्**=सब **वार्यम्**=वरणीय धनों को **प्रपुष्यन्ति**=अपने में प्रकर्षेण पुष्ट करते हैं। माता के सम्पर्क में 'चरित्र' को, पिता से 'सदाचार' को तथा आचार्य से ये 'ज्ञान' को प्राप्त करते हैं। (२) **ते**=वे 'चरित्र सदाचार व ज्ञान' को प्राप्त करनेवाले व्यक्ति **हिन्विरे**=(cast, throw) सब बुराइयों को अपने से दूर फेंकते हैं, **ते इन्विरे**=(pervade) अच्छाइयों का वे व्यापन करते हैं। बुराइयों के स्थान में अच्छाइयों को अपने में भरते हैं। इस प्रकार **ते**=वे **आनुषक्**=निरन्तर **इषणयन्ति**=(strengthen) अपने को शक्तिशाली बनाते हैं। **स्तोतृभ्यः**=इन स्तोताओं के लिये **इषं आभर**=प्रेरणा को प्राप्त कराइये।

भावार्थ—माता, पिता व आचार्य से 'चरित्र, सदाचार व ज्ञान' रूप वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करें। बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों को अपने अन्दर भरें और इस प्रकार अपने को शक्तिशाली बनायें। इस प्रकार प्रभु का स्तवन करनेवाले हमारे लिये प्रभु प्रेरणा को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अर्चयः-वाजिनः

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्ये**=वे **तव**=आपके **अर्चयः**=उपासक, **वाजिनः**=शक्तिशाली होते हुए **महि व्राधन्त**=खूब वृद्धि को प्राप्त करते हैं। **ये**=जो **पत्वभिः**=गतिशीलता के द्वारा, पुरुषार्थ के द्वारा **शफानाम्**=(शं फणन्ति प्रापयन्ति इति) शान्ति को प्राप्त करानेवाली **गोनाम्**=ज्ञानवाणियों के **व्रजा**=समूहों को **भुरन्त**=चाहते हैं। इन ज्ञानवाणियों के द्वारा ही वस्तुतः

उनका जीवन उपासनामय व शक्तिशाली बनता है। प्रभु से दी गयी ये ज्ञान की वाणियाँ 'शफ' हैं, शान्ति का विस्तार करनेवाली हैं। सो इनका जीवन इन ज्ञानवाणियों के द्वारा शान्त बनता है। (२) इन **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये हे प्रभो! आप **इषं आभर**=प्रेरणा को प्राप्त कराइये। आपसे निरन्तर प्रेरणा को प्राप्त करके ही ये सत्पथ का अनुसरण करते हुए 'उपासक व शक्तिशाली' बनते हैं। वस्तुतः तभी ये इन ज्ञान की वाणियों की कामनावाले भी बनते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु के उपासक बनकर शक्तिशाली बनें। पुरुषार्थ से ज्ञान की वाणियों का ग्रहण करते हुए जीवन को शान्त बनायें।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

त्वादूतासः

नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ८ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **नः**=हम **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये **नवाः**=(नव गतौ) हमारे जीवन को गतिमय बनानेवाली **सुक्षितीः**=गति के द्वारा हमारे निवास को उत्तम बनानेवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **आभर**=प्राप्त कराइये। (२) आपकी प्रेरणाओं को प्राप्त करके **ते स्याम**=हम वे बनें, **ये आनृचुः**=जो सदा पूजा की वृत्तिवाले हों और **दमे दमे**=प्रत्येक गृह में **त्वादूतासः**=आपके दूत हों, आपके ज्ञान सन्देश को पहुँचानेवाले हों। इन **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये **इषं आभर**=आप प्रेरणा को प्राप्त कराइये। आप से प्रेरणा को प्राप्त करके ही सप्तम मन्त्र के अनुसार ब्रह्मचर्याश्रम में हम पुरुषार्थ से ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करते हैं। अष्टम मन्त्र के पूर्वार्ध के अनुसार गृहस्थ में गतिशील बनकर अपने निवास को उत्तम बनाते हैं। उत्तरार्ध के अनुसार वानप्रस्थ में निरन्तर आपका अर्चन करते हुए संन्यास में आपके ज्ञान के सन्देश को घर-घर में पहुँचाते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्रेरणा से हम अपने जीवन को उत्तम बनायें। निरन्तर प्रभु की उपासना से शक्तिशाली बनकर प्रभु के सन्देश को फैलानेवाले हों।

ऋषिः—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सर्पिषः उभे दर्वी (ज्ञान-विज्ञान)

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ९ ॥

(१) हे **सुश्चन्द्र**=उत्तम आह्लादवाले व आह्लाद को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **सर्पिषः**=(सृप् गतौ) (सर्पिः घृतं=दीप्तिः) हमें गतिशील बनानेवाली ज्ञानदीप्ति की **उभे दर्वी**=दोनों कड़छियों को **आसनि**=हमारे मुखों में **श्रीणीषे**=आप आश्रित करते हैं अथवा 'श्री पाके' उन्हें परिपक्व करते हैं। सर्पि की ये दो कड़छियाँ 'अपरा विद्या व पराविद्या' ही हैं। प्रभु हमारे लिये इन दोनों को ही प्राप्त कराते हैं। इनको प्राप्त कराके ही वे हमारे जीवनों को आह्लादमय बनाते हैं। (२) **उत**=और हे **शवसस्पते**=सब बलों के स्वामिन् प्रभो! आप **नः**=हमें **उ**=निश्चय से **उक्थेषु**=स्तोत्रों में **उत्पुपूर्याः**=उत्पूरित करिये, हम सदा आपका स्तवन करनेवाले हों, और आपके स्तवन से अपने में शक्ति का संचार करें। **स्तोतृभ्यः**=हम स्तोताओं के लिये **इषम्**=प्रेरणा को **आभर**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करायें। हमें स्तुति की वृत्तिवाला बनायें।

ऋषि:—**वसुश्रुत आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

गीर्भि:-यज्ञेभिः

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर॥ १०॥

(१) **एवा**=इस प्रकार **गीर्भि:**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा स्तुतियों से तथा **आनुषक्**=निरन्तर **यज्ञेभिः**=यज्ञों से उपासक लोग **अग्निं अजु:**=उस प्रभु की ओर जाते हैं और **यमु:**=उस प्रभु को अपने में स्थापित करते हैं। (२) प्रभु को प्राप्त करने के लिये यही मार्ग है कि हम ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान की वाणियों का ग्रहण करें (गीर्भि:) कर्मेन्द्रियाँ यज्ञों को करनेवाली हों (यज्ञेभि:)। ऐसा करने पर वे प्रभु **अस्मे**=हमारे लिये **सुवीर्यं दधत्**=उत्तम वीर्य को धारण करते हैं। **उत**=और **त्यत्**=उस **आशु**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले **अश्व्यम्**=इन्द्रियाश्व समूह को धारण करते हैं। हे प्रभो! **स्तोतृभ्यः**=इन गिराओं व यज्ञों को अपनानेवाले स्तोताओं के लिये आप **इषम्**=प्रेरणा को **आभर**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम ज्ञानवाणियों व यज्ञों से प्रभु को प्राप्त हों। प्रभु हमें सुवीर्य व स्फूर्ति से क्रियाओं को करनेवाली इन्द्रियों को प्राप्त करायें।

सूचना—इस सूक्त में १० बार 'इषं स्तोतृभ्य आभर' यह वाक्य आवृत्त हुआ है। 'दसों की दसों इन्द्रियाँ उत्तम मार्ग पर ही प्रेरित हों' ऐसा इसका संकेत है। इन प्रेरणाओं के अनुसार चलनेवाला ऋषि 'इषः' कहलाता है, प्रेरणामय जीवन वाला। यह आत्रेय तो है ही, त्रिविध दुःखों से ऊपर उठा हुआ व काम-क्रोध-लोभ से दूर। यह कहता है—

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषि:—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सम्यञ्चमिषं-स्तोमं

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते॥ १॥

(१) हे **सखायः**=समान ज्ञानवाले, मित्रभाव से चलनेवाले साथियो! तुम **वः**=अपनी **सम्यञ्चम्**=मिलकर होनेवाली **इषम्**=गति को **च**=और **स्तोमम्**=स्तुति को **सम्**=(कुरुत, संस्कुरुत) सम्यक् करनेवाले होवो। तुम्हारे काम परस्पर विरोध करनेवाले न हों 'संगच्छध्वम्, संवदध्वम्'। तुम मिलकर प्रभु-स्तवन करनेवाले बनो। समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार है। परिवार में किसी भी क्रिया एक-दूसरे का विरोध करनेवाली न हो और सब मिलकर प्रातः-सायं प्रभु-स्तवन करनेवाले हों। (२) यही मार्ग है **अग्नये**=उस अग्रणी प्रभु की प्राप्ति के लिये **वर्षिष्ठाय**=वृद्धतम प्रभु की प्राप्ति के लिये **क्षितीनाम्**=मनुष्यों के **ऊर्जः नप्त्रे**=बल व प्राणशक्ति को न गिरने देनेवाले प्रभु के लिये **सहस्वते**=शत्रुओं के कुचलनेवाले बलयुक्त प्रभु के लिये। यदि हमारी क्रियाएँ मिलकर होंगी और हम प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होंगे तो प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनकर हम भी अग्रगतिवाले, बढ़ी हुई शक्तियोंवाले, अविनष्ट बलवाले व शत्रुओं के कुचलनेवाले बन पायेंगे।

भावार्थ—हमारे क्रियाएँ परस्पर अविरुद्ध हों। हम मिलकर प्रभु-स्तवन करें। यही मार्ग है जिससे कि हम आगे बढ़ेंगे, सदा वृद्धि को प्राप्त करेंगे, शक्तियों को सुरक्षित रख पायेंगे और शत्रुओं को कुचलनेवाले बनेंगे।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

अर्हन्तः-जन्तवः

कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने। अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥ २ ॥

(१) **कुत्रा चित्**=वे प्रभु कहाँ हैं? **यस्य समृतौ**=(ऋ गतौ) जिनकी प्राप्ति के होने पर **नरः**=प्रगतिशील मनुष्य **नृषदने**=मनुष्यों के मिलकर बैठने के स्थानों में, सभाओं में **रण्वाः**=अत्यन्त रमणीय जीवनवाले होते हैं। प्रभु प्राप्तिवाले मनुष्य का जीवन सुन्दर बनता ही है। ऐसा व्यक्ति सभा में अनुपम शोभा पाता है। (२) 'कहाँ हैं?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि वे प्रभु वे हैं **यम्**=जिनको **अर्हन्तः चित्**=पूजा करते हुए लोग ही **इन्धते**=अपने में दीप्त करते हैं और **जन्तवः**=अपनी शक्तियों का विकास करनेवाले लोग **सञ्जनयन्ति**=अपने हृदयों में प्रादुर्भूत करते हैं। अर्थात् प्रभु का निवास उन लोगों में है जो कि (क) पूजा की वृत्तिवाले हैं तथा (ख) अपनी शक्तियों के विकास में लगे हैं।

भावार्थ—'हम उपासना करें तथा अपनी शक्तियों का विकास करें' यही प्रभु-दर्शन का मार्ग है, प्रभु-दर्शन होने पर हमारा जीवन अद्भुत सौन्दर्य को लिये हुए होगा।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

द्युम्न-शवस्-ऋत

सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम्। उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥ ३ ॥

(१) **यत्**=जब हम **इषः**=प्रभु प्रेरणाओं का **संवनामहे**=सम्यक् संभजन करते हैं, अर्थात् प्रभु प्रेरणाओं के अनुसार जीवन को बनाते हैं तथा **मानुषाणाम्**=विचारशील पुरुषों के **हव्या**=हव्य पदार्थों का ही **सम् (वनामहे)**=संभजन (सेवन) करते हैं। तो **द्युम्नस्य**=ज्ञान-ज्योति की **रश्मिम्**=किरणों को **आददे**=ग्रहण करता हूँ। **उत**=और **शवसः**=बल की रश्मि को ग्रहण करता हूँ। ज्ञान व बल को प्राप्त करके मैं **ऋतस्य**=ऋत की रश्मि को प्राप्त करता हूँ। मेरा जीवन तब ऋतमय बन जाता है, इसमें से सब अनृत दूर हो जाते हैं। (२) मनुष्य प्रभु प्रेरणा के अनुसार चले तथा सदा विचारशील बन करके अकेला खानेवाला न बन जाये, यज्ञ करके यज्ञशेष का ही सेवन करे। ऐसा करने पर 'ज्ञान, बल व ऋत' की प्राप्ति होती है। मस्तिष्क में ज्ञान, शरीर में बल तथा मन में ऋत। ज्ञान से मस्तिष्क दीप्त होता है, तो बल से शरीर स्वस्थ व नीरोग बनता है और ऋत से मन पवित्र बना रहता है।

भावार्थ—प्रभु प्रेरणा को सुनें और यज्ञशेष का सेवन करें। यही ज्ञान, बल व ऋत को प्राप्त करने का मार्ग है।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

संभवामि युगे युगे

स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद् दूर आ सते। पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ॥ ४ ॥

(१) **सः**=वे **पावकः**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले प्रभु **नक्तं चित्**=रात्रि में भी, अत्यन्त अन्धकार में भी तथा **दूरे आ सते**=सर्वथा दूर स्थित पुरुष के लिये भी **केतुम्**=प्रकाश को **आकृणोति स्म**=करनेवाले होते हैं। वस्तुतः प्रभु कृपा से ही हमें प्रकाश प्राप्त होता है। (२) इस प्रकाश को प्राप्त कराते तब हैं **यद्**=जब कि **अजरः**=कभी जीर्ण न होनेवाले वे प्रभु **वनस्पतीन्**=ज्ञान रश्मियों के स्वामियों को, ज्ञानी पुरुषों को, मुक्त हुए-हुए पुरुषों को **प्र आ**

मिनाति स्म=(establish) एक बार फिर पृथ्वी पर स्थापित करते हैं। प्रभु प्रेरणा से ये मुक्तात्मा जन्म-मरण के कष्ट को स्वीकार करके इस पृथ्वी पर आते हैं और लोगों को प्रभु का सन्देश सुनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु से दूर स्थित अन्धकार मग्न पुरुषों को प्रभु, स्वेच्छा से जन्म धारण करनेवाले मुक्तात्माओं के द्वारा, ज्ञान-सन्देश सुनाते हैं और इस प्रकार उनके अज्ञानन्धकार को दूर करते हैं।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

पिता की पीठ पर

अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति। अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥ ५ ॥

(१) **यस्य वेषणे**=जिस प्रभु के हृदय में व्याप्त होने पर (विष् व्याप्तौ) ये उपासक **पथिषु**=मार्गों में **स्वेदं अवजुह्वति स्म**=निश्चय से पसीने की आहुति देते हैं, अर्थात् खूब श्रमशील होते हैं 'क्रियावान् एव ब्रह्मविदां वरिष्ठः'। ये उपासक खाट पर आराम से लेटे हुए नहीं होते। सो ये **ईम्**=निश्चय से **अह**=ही **अभि रुरुहुः**=इहलोक व परलोक दोनों का आरोहण करनेवाले होते हैं, वे **इव**=जैसे कि **स्वजेन्यम्**=अपने से उत्पन्न हुआ-हुआ **भूम**=पुत्र **पृष्ठा**=पिता की पीठ पर आरोहण करता है। अभ्युदय व निःश्रेयस के शिखर पर पहुँचकर ये प्रभु को प्राप्त करते हैं, प्रभु की मानों पीठ पर होते हैं, उसी प्रकार जैसे कि पुत्र पिता की पीठ पर।

भावार्थ—प्रभु का उपासक खूब श्रमशील होता है। अभ्युदय व निःश्रेयस को सिद्ध करके प्रभु की पीठ पर आरूढ़ होता है, जैसे कि पुत्र पिता की पीठ पर।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रस्वादनं पितूनाम्

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे। प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥ ६ ॥

(१) **यम्**=जिस **पुरुस्पृहम्**=खूब ही स्पृहणीय (=चाहने योग्य) प्रभु को **मर्त्यः**=मनुष्य **विदत्**=जानता है। जब मनुष्य उस प्रभु को जानता है तो यही अनुभव करता है कि वे प्रभु **विश्वस्य धायसे**=सब के धारण के लिये होते हैं। अन्ततो गत्वा ये प्रभु ही हमारा धारण कर रहे हैं। साक्षात् देखने में तो पृथिवी माता व द्यौ पिता ही हमें वृष्टि द्वारा सब धनों को प्राप्त करा रहे हैं। परन्तु इनके अन्दर भी तो उस-उस शक्ति को रखनेवाले वे प्रभु ही हैं। सो वस्तुतः, प्रभु ही सबका धारण करते हैं। (२) वे प्रभु ही सब **पितूनाम्**=अन्नों के **प्र स्वादनम्**=प्रकृष्ट स्वाद को करनेवाले हैं 'पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः'। तथा **आयवे**=गतिशील पुरुष के लिये **चित्**=निश्चय से **अस्तताति**=गृह का विस्तार करनेवाले वे प्रभु ही हैं। प्रभु ही घर व अन्न को देकर हमें उन्नति के लिये अवसर प्राप्त कराते हैं। इस प्रकार वस्तुतः प्रभु ही सबका धारण कर रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु ही स्पृहणीय हैं। वे ही तो सब का धारण कर रहे हैं। धारण के लिये वे ही अन्न व घर को देते हैं।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

उपासक का पवित्र जीवन

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः। हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥ ७ ॥

(१) **सः**=वह **पशुः**=सर्वद्रष्टा प्रभु **हि**=निश्चय से **दाता न**=एक खेत काटनेवाले के समान

(दाप् लावने) **आक्षितम्**=चारों ओर वासना-स्तम्बों (वासनाओं के झाड़ी झंकाड़ों) से बसे हुए (क्षि निवासे)=जिसमें वासनाओं की झाड़ियाँ ही झाड़ियाँ चारों ओर उगी हुई हैं, ऐसे **धन्व**=मरुप्रदेश को उत्तम भावनाओं के लिये ऊसर बने हुए इस हृदय क्षेत्र को **आ दाति**=चारों ओर काट डालता है। इसमें से वासनाओं को काटकर, इसे साफ बना देता है। प्रभु की उपासना हृदयक्षेत्र को पवित्र करती है। (२) अब यह उपासक (श्रनि श्रितं=श्वश्रु) **हिरिश्मश्रुः**=शरीर में रहनेवाले इन्द्रियगण, मन व बुद्धि को दीप्त करनेवाला होता है (हिरि=हिरण्य=स्वर्णवत् दीप्त)। **शुचिदन्**=पवित्र दाँतोंवाला होता है, कभी अभक्ष्य भोजनों को नहीं खाता और पूर्ण स्वस्थ होता है। **ऋभुः**=खूब ही ज्ञान से दीप्त बनता है और **अनिभृष्ट तविषिः**=शत्रुओं से अपीड़ित बलवाला होता है, इसकी शक्ति वासनाओं से आक्रान्त नहीं होती।

भावार्थ—उपासक के हृदय क्षेत्र को प्रभु पवित्र कर देते हैं। अब इस पर वासनाओं का आक्रमण नहीं हो पाता।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

उपासना व स्वाध्याय

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते। सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम्॥ ८॥

(१) वह व्यक्ति **शुचिः**=पवित्र बनता है, **यस्मै**=जिसके लिये वे प्रभु **अत्रिवत्**=(अत्ति इति अत्रिः) सब वासनाओं को दग्ध करनेवाले के समान और **स्वधिति इव**=वासनाओं के वृक्षों को काटनेवाले परशु के समान **प्र रीयते स्म**=प्रकर्षेण प्राप्त होते हैं। उपासक के जीवन को प्रभु पवित्र कर डालते हैं। (२) **माता**=वेदमाता भी **सुषूः**=उत्तम भावों को जन्म देनेवाली होती हुई **असूत**=इसके जीवन में दिव्य गुणों को जन्म देती है, **यत्**=जब कि **भगम्**=ऐश्वर्य को **क्राणा**=(कुर्वाणा) करती हुई **आनशे**=इसके जीवन में व्याप्त होती है। वेदमाता ऐश्वर्य को उत्पन्न करती हुई इस उपासक को दिव्य गुणोंवाला बनाती है।

भावार्थ—प्रभु ध्यान से सब वासनाएँ विनष्ट होती हैं। वेद के स्वाध्याय से, ज्ञान की उपासना से सब दिव्य गुणों का ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ज्योति-कीर्ति व स्मृति

आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे। ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः॥ ९॥

(१) हे **आसुते**=चतुर्दिक् ऐश्वर्यवाले **अग्ने**=परमात्मन्! **यः**=जो **ते**=तेरा **सर्पिः**=(उदकं नि० १।१२) रेतःरूप उदक है, वह **आ**=शरीर में चारों ओर व्याप्त होता हुआ **शं अस्ति**=शान्ति को देनेवाला है तथा **धायसे**=धारण के लिये है। इस रेतःरूप उदक के शरीर में रक्षण से शरीर का धारण होता है और मानस शान्ति प्राप्त होती है। (२) **एषु**=इन इस सर्पि की रक्षा करनेवाले लोगों में **द्युम्नम्**=ज्ञान की ज्योति का **आधाः**=सर्वथा धारण करिये। **उत**=और इन **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **श्रवः**=यश को धारण करिये। तथा **चित्रम्**=स्मृति शक्ति को **आधाः**=सर्वथा धारण करिये। ये लोग '**कोऽहं कुत आयातः**' इस बात को भूले नहीं कि मैं 'कौन हूँ और क्यों कहाँ से आया हूँ'।

भावार्थ—शरीर में सोमरक्षण से शरीर का धारण होता है, मन की शान्ति प्राप्त होती है। ज्योति, कीर्ति व स्मृति को हम प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—इष आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृद्बृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

दस्यून्-सासह्यात्द

इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन्॥ १०॥

(१) **इति चित्**=इस प्रकार गतमन्त्र में वर्णित सोम (सर्पि) के रक्षण के द्वारा, **अध्रिजाः**=(अधृष्यं जनयिता सा०) शत्रुओं से अधर्षणीय बल को अपने में पैदा करनेवाला यह व्यक्ति, हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वादातम्**=आपसे दिये गये **मन्युम्**=ज्ञान को तथा **पशुम्**=सर्वद्रष्टा आपको **आददे**=ग्रहण करता है। सोमरक्षण से ज्ञान व प्रभु की प्राप्ति होती है। (२) **आत्**=अब, ज्ञान और प्रभु को प्राप्त करने के बाद, **अत्रिः**=यह काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाला व्यक्ति **अपृणतः**=न पालन करनेवाली **दस्यून्**=दास्यव वृत्तियों को **सासह्यात्**=पराभूत करता है। इसके अन्दर आसुरी वृत्तियाँ प्रबल नहीं हो पातीं। यह **इषः**=प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाला व्यक्ति **नॄन्**=आक्रमण करनेवाले शत्रुभूत व्यक्तियों को भी पराभूत करता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक सोमरक्षण के द्वारा ज्ञान को व प्रभु को प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त करके दास्यव वृत्तियों को, तथा शत्रुभूत मनुष्यों को पराजित करता है।

अगले सूक्त में भी यह 'इष आत्रेय' ही अग्नि का उपासन करता हुआ कहता है कि—

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—इष आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'ऋतायु' को प्रभु के प्रकाश की प्राप्ति

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम्॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **प्रत्नम्**=सनातन आपको **प्रत्नासः ऋतायवः**=सनातन काल से चले आनेवाले ऋतायु लोग **ऊतये**=अपने रक्षण के लिये **समीधिरे**=अपने में सम्यक् दीप्त करते हैं। ऋत का आचरण करनेवाले ऋतायु सदा से आपको ही अपने हृदय देश में देखने का प्रयत्न करते हैं। अपने को वासनाओं के आक्रमण से बचाने का यही मार्ग है। (२) हे **सहस्कृत**=शत्रुपराभव करने की शक्ति को उत्पन्न करनेवाले प्रभो! आपको ही वे समिद्ध करते हैं। जो आप **पुरुश्चन्द्रम्**=खूब ही आह्लादमय हैं, उपासकों को आह्लादित करनेवाले हैं। **यजतम्**=उपासनीय हैं। **विश्वधायसम्**=सबका धारण करनेवाले हैं। **दमूनसम्**=दान के मनवाले हैं, आप हमें सब कुछ देने की कामना करते हैं। **गृहपतिम्**=आप ही हमारे शरीर रूप गृह के रक्षक हैं। **वरेण्यम्**=वरने के योग्य हैं।

भावार्थ—जीवन की क्रियाओं को ऋतपूर्वक करने से प्रभु के प्रकाश की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—इष आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अतिथि का उपदेश

त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम्॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **अतिथिम्**=(अत सातत्यगमने) निरन्तर क्रियाशील **त्वाम्**=आपको **विशः**=सब प्रजाएँ **निषेदिरे**=अपने हृदय देश में बिठाने के लिये यत्नशील होती हैं। उन आपको,

जो कि **पूर्व्यम्**=हमारा पालन व पूरण करनेवालों में सर्वोत्तम हैं अथवा सृष्टि से पहिले ही होनेवाले हैं। **शोचिष्केशम्**=दीप्त ज्ञान-रश्मियोंवाले हैं। **गृहपतिम्**=हमारे गृहों के रक्षक हैं। (२) उन आपको हम हृदय में स्थापित करते हैं, जो आप **बृहत्केतुम्**=खूब बढ़े हुए ज्ञानवाले हैं, निरतिशय ज्ञानवाले हैं। **पुरुरूपम्**=अनन्त रूपोंवाले हैं 'रुपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' सब प्राणी आपके ही तो रूप हैं। **धनस्पृतम्**=सब धनों के देनेवाले हैं (स्पृ=grant)। **सुशर्माणम्**=आवश्यक धनों को देकर उत्तम सुख को प्राप्त करानेवाले हैं, **स्ववसम्**=(सु-अवसं) खूब अच्छी प्रकार रक्षण करनेवाले हैं और **जरद्विषम्**=व्यापक ज्ञानों का (विष्) उपदेश देनेवाले हैं (जरत्)। वस्तुतः इस ज्ञानोपदेश द्वारा ही प्रभु हमारा कल्याण करते हैं।

भावार्थ—हम उस अतिथि प्रभु को हृदयासन पर बिठायें। वे हमें व्यापक ज्ञानोपदेश देकर सुख व कल्याण प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'होत्राविद्-सुयज' प्रभु

त्वाम॑ग्ने मानु॑षीरीळते वि॒शो॑ होत्रा॒विदं॒ विवि॑चिं रत्न॒धात॑मम्।
गुहा॒ सन्तं॑ सुभग वि॒श्वद॑र्शतं तुविष्व॒णसं॑ सु॒यजं॑ घृत॒श्रिय॑म् ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वाम्**=आपको **मानुषीः विशः**=विचारशील प्रजाएँ **ईडते**=उपासित करती हैं उन आपको जो कि **होत्राविदम्**=शरीर-यज्ञ के संचालक सात होताओं को प्राप्त कराते हैं 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्'। **विविचिम्**=हृदयस्थरूपेण इन प्रजाओं के लिये सद्-असद् के विवेचक हैं, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान देनेवाले हैं। **रत्नधातमम्**=रसरुधिर आदि रमणीय धातुओं के धारण करनेवाले हैं। (२) **सुभग**=उत्तम ज्ञानैश्वर्यवाले प्रभो! उन आपको ये विचारशील लोग उपासित करते हैं, जो आप **गुहा सन्तम्**=हृदयरूप गुहा के अन्दर निवास करनेवाले हैं। **विश्व-दर्शतम्**=सब से दर्शनीय हैं व सबके द्रष्टा हैं। **तुविष्वणसम्**=महान् स्वनोंवाले हैं, हृदयस्थरूपेण सदा धर्माधर्म की प्रेरणा देनेवाले हैं। **सुयजम्**=सब उत्तम चीजों का हमारे साथ मेल करनेवाले हैं और **घृतश्रियम्**=दीप्त ज्ञान की श्रीवाले हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का उपासन करें। प्रभु सब उत्तम चीजों का हमारे साथ मेल करनेवाले हैं।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

यशसा-सुदीतिभिः

त्वाम॑ग्ने ध॒र्णसिं॑ वि॒श्वधा॑ व॒यं गी॒र्भिर्गृ॒णन्तो॒ नम॒सोप॑ सेदिम।
स नो॑ जुषस्व समिधा॒नो अ॑ङ्गिरो दे॒वो मर्त॑स्य य॒शसा॑ सु॒दीति॑भिः ॥ ४ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **वयम्**=हम **धर्णसिम्**=सबके धारक **त्वाम्**=आपको **विश्वधा**=सब प्रकार से **गीर्भिः गृणन्तः**=ज्ञान की वाणियों से स्तुत करते हुए **नमसा उपसेदिम**=नमन के द्वारा समीप प्राप्त हों। नम्रतापूर्वक आपकी उपासना करनेवाले बनें। (२) हे **अंगिरः**=गतिशील प्रभो! **समिधानः**=हृदयदेश में दीप्त किये जाते हुए **सः**=वे आप **नः जुषस्व**=हमें उत्तम धनादि से सेवित करिये आपकी कृपा से हम धन आदि पदार्थों को प्राप्त करें। **देवः**=प्रकाशमय आप **मर्तस्य**=मनुष्य के **यशसा**=यश से व **सुदीतिभिः**=(दीति splendour) उत्तम प्रकाशों से हमें संगत करिये। मनुष्य से प्राप्त यश व उत्तम ज्ञानदीप्तियों को हम प्राप्त करें।

भावार्थ—हम प्रभु के समीप नम्रता से बैठें। प्रभु हमें यशस्वी व ज्ञानदीप्त बनायेंगे।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अनाधृष्ट त्विषि

त्वम॑ग्ने पुरु॒रूपो॑ वि॒शेवि॑शे॒ वयो॑ दधासि प्र॒त्नथा॑ पुरुष्टुत।
पु॒रूण्यन्ना॒ सह॑सा॒ वि रा॑जसि॒ त्विषिः॒ सा ते॑ तित्विषा॒णस्य॒ नाधृषे॑॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **पुरुरूपः**=अनन्तरूपोंवाले हैं, विश्वरूप हैं। हे **पुरुष्टुत**=खूब ही स्तुति किये गये प्रभो! आप **प्रत्नथा**=सदा की तरह **विशे विशे**=सब प्रजाओं के लिये **वयः दधासि**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं। (२) **सहसा**=बल के हेतु से **पुरूणि अन्ना**=पालक व पूरक अन्नों के **विराजसि**=आप राजा होते हैं। बल प्राप्ति के लिये हमें उत्कृष्ट अन्नों को प्राप्त कराते हैं और **तित्विषाणस्य**=अत्यन्त दीप्तिवाले **ते**=आपकी **सा त्विषिः**=वह दीप्ति **न आधृषे**=धर्षण के लिये नहीं होती। आपकी दीप्ति किसी अन्य देव से अतिशयित नहीं की जा सकती। वस्तुतः सब देव आपकी दीप्ति से ही दीप्त हो रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिये उत्कृष्ट अन्नों व ज्ञानदीप्तियों को प्राप्त कराके हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाते हैं।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

चक्षुः-चोदयन्मति

त्वाम॑ग्ने स॒मिधा॒नं य॑विष्ठ्य दे॒वा दू॒तं च॑क्रिरे हव्य॒वाह॑नम्।
उ॒रु॒ज्रय॑सं घृ॒तयो॑निमाहु॑तं त्वे॒षं चक्षु॑र्दधिरे चोद॒यन्म॑ति॥ ६ ॥

(१) हे **यविष्ठ्य**=बुराइयों को हमारे से दूर करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे से मिलानेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **त्वां चक्रिरे**=आपको ही अपने हृदयों में स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। जो आप **समिधानम्**=सम्यग् ज्ञान से दीप्त हैं, **दूतम्**=ज्ञान-सन्देश को प्राप्त करानेवाले हैं, **हव्यवाहनम्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं। (२) आपको विद्वान् पुरुष **चक्षुः दधिरे**=आँख के रूप में धारण करते हैं, आपके द्वारा ही प्रकाश को प्राप्त करते हैं। जो आप **उरुज्रयसम्**=बड़े वेगवाले हैं। **घृतयोनिम्**=ज्ञानदीप्ति के उत्पत्ति-स्थान हैं। **आहुतम्**=चारों ओर दानोंवाले हैं (आ हुतं यस्य) **त्वेषम्**=दीप्त हैं तथा **चोदयन्मति**=हमारी बुद्धियों को प्रेरणा देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही ज्ञान-सन्देश प्राप्त करानेवाले हैं, प्रभु ही हमारी आँख हैं, हमारी बुद्धियों को सत्प्रेरणा देनेवाले हैं।

ऋषिः—**इष आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रदिवः-सुम्नायवः

त्वाम॑ग्ने प्र॒दिव॒ आहु॑तं घृ॒तैः सु॑म्ना॒यवः॑ सुष॒मिधा॒ समी॑धिरे।
स वा॑वृधा॒न ओष॑धीभिरु॒क्षि॒तो॒३॒॑ऽभि ज्रयां॑सि॒ पार्थि॑वा॒ वि ति॑ष्ठसे॥ ७ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **आहुतम्**=चारों ओर दानोंवाले **त्वाम्**=आपको **प्रदिवः**=प्रकृष्ट द्युतिवाले, **सुम्नायवः**=स्तोत्रों को अपनाने की कामनावाले उपासक **सुषमिधा**=उत्तम ज्ञान दीप्ति के द्वारा **समीधिरे**=अपने अन्दर समिद्ध करते हैं। प्रभु-दर्शन का उपाय 'ज्ञान-स्तवन' ही है। (२)

हे प्रभो! **सः**=वे आप **वावृधानः**=खूब ही हमारा वर्धन करते हुए, **ओषधीभिः उक्षितः**=ओषधियों के द्वारा हृदयों में सिक्त हुए-हुए (प्रभु-दर्शन के लिये वानस्पतिक भोजन ही ठीक है) **पार्थिवा ज्रयांसि**=सब पृथिवी सम्बन्धी विजयों के (ज्रि=to conquer) **अभि वि तिष्ठसे**=अधिष्ठाता होते हैं। अर्थात् आपके द्वारा ही सब पार्थिव विजयें प्राप्त होती हैं। इस पृथ्वीरूप शरीर में होनेवाली सब विजयें आप ही करते हैं 'जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्'।

भावार्थ—ज्ञान व स्तवन के समन्वय से हम प्रभु को हृदयों में समिद्ध करें। प्रभु प्राप्ति के वानस्पतिक भोजनों को अपनाएँ। प्रभु ही हमें सब विजयों को प्राप्त करायेंगे।

इस सूक्त के सातों मन्त्र 'त्वामग्ने' इस प्रकार प्रारम्भ होते हैं। केवल पञ्चम मन्त्र का 'त्वमग्ने' इस प्रकार प्रारम्भ हुआ है।

प्रभु के उपासन से यह उपासक प्राणशक्ति-सम्पन्न बनता है, सो 'गय' है यह 'आत्रेय' तो है ही, काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठा हुआ। यह कहता है कि—

अथ चतुर्थाऽष्टके प्रथमोऽध्यायः

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

जातवेदस् प्रभु की उपासना

त्वाम॑ग्ने ह॒विष्म॑न्तो दे॒वं मर्ता॑स ईळते। मन्ये॑ त्वा जा॒तवे॑दसं॒ स ह॒व्या व॑क्ष्यानु॒षक्॥ १ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **देवं त्वाम्**=प्रकाशमय आपको **हविष्मन्तः**=हविवाले, दानपूर्वक अदन करनेवाले, यज्ञशेष का सेवन करनेवाले, **मर्तासः**=लोग **ईडते**=उपासित करते हैं। प्रभु की सच्ची उपासना वे ही करते हैं, जो कि हवि का सेवन करते हैं। (२) हे प्रभो! मैं **त्वा**=आपको **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ व सर्वैश्वर्यवाला (वेदस=धन) **मन्ये**=मानता हूँ। **सः**=वे आप **आनुषक्**=निरन्तर **हव्या**=हव्य पदार्थों को **वक्षि**=धारण करते हैं। हमारे लिये यज्ञ के साधनभूत सब पदार्थों को आप ही प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु सर्वज्ञ सर्वैश्वर्यवाले हैं। यज्ञशेष का सेवन करनेवाले लोग ही प्रभु के सच्चे उपासक हैं। इन हव्य पदार्थों को भी प्रभु ही तो प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'यज्ञासः वाजासः श्रवस्यवः' (कैसा घर?)

अ॒ग्निर्होता॒ दास्व॑तः॒ क्षय॑स्य वृ॒क्तब॑र्हिषः। सं य॒ज्ञास॒श्चर॑न्ति॒ यं सं वाजा॑सः श्रव॒स्यवः॑॥ २ ॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **दास्वतः**=(दसु उपक्षये) जिसमें से सब बुराइयों का उपक्षय कर दिया गया है अथवा (दास् दाने) दानवाले, जिसमें निरन्तर दान चलता है, **वृक्तबर्हिषः**=जिसमें से वासनाओं के बर्हि (घास) को काट दिया गया है, ऐसे वासनाशून्य **क्षयस्य**=गृह के **होता**=दाता हैं। प्रभु कृपा से हमारा घर दान की वृत्तिवाला व वासनाशून्य बनता है। (२) उस घर को प्रभु देते हैं **यम्**=जिसकी ओर **यज्ञासः**=यज्ञ **संचरन्ति**=गति करते हैं, **वाजासः**=शक्तियाँ **सम्**=गति करती हैं तथा **श्रवस्यवः**=ज्ञान की कामनावाले पुरुष गति करते हैं। इन गृहों के अन्दर रहनेवाले व्यक्ति शरीर में शक्ति-सम्पन्न (वाजासः) हृदयों में यज्ञ की भावनावाले (यज्ञासः) तथा दीप्त मस्तिष्कवाले (श्रवस्यवः) होते हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारा घर वासनाओं से मलिन नहीं होता। यहाँ 'यज्ञों, शक्तियों व

ज्ञानों' का निवास होता है।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

दो अरणियों द्वारा प्रभु रूप अग्नि का प्रकाश

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी। धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम्॥ ३॥

(१) **उत**=और उपर्युक्त मन्त्र में वर्णित घरों में रहकर, हम उस परमात्मा की उपासना करें, **यम्**=जिसको **अरणी**=देह व प्रणवरूप अरणियाँ (स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं प्रोत्तरारणिं ध्याननिर्मथनाभ्यासात् पश्येद्देवं निगूढवत्) उसी प्रकार **जनिष्ट**=उत्पन्न करती हैं **यथा**=जैसे माता-पिता रूप अरणियाँ **नवं शिशुम्**=एक नव शिशु को। अथवा जैसे दो काष्ठरूप अरणियाँ इस स्तुत्य शिशु रूप अग्नि को (नु स्तुतौ)। प्रभु के प्रकाश को प्राप्त करने के लिये शरीर में स्वास्थ्य की सबलता आवश्यक है तथा हृदय में प्रभु के ध्यान की आवश्यकता है। (२) हम उस प्रभु का ध्यान करें जो कि **मानुषीणां विशाम्**=मानव प्रजाओं के **धर्तारम्**=धारण करनेवाले हैं। **अग्निम्**=आगे ले चलनेवाले हैं तथा **स्वध्वरम्**=हमारे जीवन से उत्तम यज्ञात्मक कर्मों को करानेवाले हैं।

भावार्थ—शक्ति व ध्यान के द्वारा हम प्रभु के प्रकाश को प्राप्त करें। वे प्रभु पोषक अग्रणी व उत्तम यज्ञादि को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

पुत्रो न ह्वार्याणाम्

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम्। पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे॥ ४॥

(१) **उत**=और हे प्रभो! आप **दुर्गृभीयसे स्म**=बड़ी कठिनता से ग्रहण किये जाते हैं। आपको प्राप्त करने के लिये 'दीर्घकाल तक, निरन्तर आदरपूर्वक' ध्यान के अभ्यास की आवश्यकता है। आप **ह्वार्याणाम्**=कुटिल गतिवालों के **पुत्रः न**=पुत्र के समान हैं, उन कुटिल गतिवालों को 'पुनाति त्रायते' पवित्र करते हैं और उनका रक्षण करते हैं। प्रभु-स्मरण से चित्त की सब वक्रता विनष्ट हो जाती है ब्रह्मभूत (भू प्राप्तौ) पुरुष सरल वृत्ति का हो जाता है। (२) हे प्रभो! **यः**=जो आप हैं, वे **पुरू**=खूब ही **दग्धा असि**=वासनावृक्षों के वनों को जलानेवाले हैं। हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **पशुः न**=सर्वद्रष्टा के समान होते हुए **यवसे**=(यु मिश्रणामिश्रणयोः) हमारी बुराइयों को दूर करनेवाले तथा अच्छाइयों को मिलानेवाले होते हैं।

भावार्थ—ये कठिनता से प्राप्त होनेवाले प्रभु हमारी कुटिलताओं को दूर करते हैं, वासनाओं को जलाते हैं तथा हमारे साथ अच्छाइयों का मिश्रण करते हैं।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

धूमिनः अर्चयः

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा॥ ५॥

(१) **यद्**=जब **ईं अह**=निश्चय से **त्रितः**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाला व्यक्ति **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **उपध्माता इव**=शंख ध्वनि करनेवाले के समान **धमति**=प्रभु के नामों को ध्वमित करता है और **यथा ध्मातरि**=ध्माता में, अग्नि संयोग करनेवाले लोहार में, लोहार के समीप कोई अस्त्र अपने को तीक्ष्ण करता है उसी प्रकार जो प्रभु में, प्रभु की उपासना में **शिशीते**=अपनी बुद्धि को तीव्र करता है, **अध**=तो **यस्य अर्चयः**=जिस प्रभु की ज्ञान ज्वालाएँ

धूमिनः=वासनाओं को प्रकम्पित करनेवाली हैं वे ज्वालाएँ उसे सम्यक् **संयन्ति स्म**=सम्यक् प्राप्त होती हैं। (२) हम प्रभु के नामों का उच्चारण करें, प्रभु की उपासना से बुद्धि को तीव्र करें तो प्रभु की वे ज्ञान-ज्वालाएँ हमें प्राप्त होंगी जो कि हमारी वासनाओं को कम्पित करनेवाली हैं। ये ज्ञान ज्वालाएँ ही वासनाओं को विनष्ट करके हमें त्रित बनायेंगी।

भावार्थ—प्रभु की ज्ञान ज्वालाएँ वासनाओं को कम्पित करनेवाली हैं। हम प्रभु-स्मरण द्वारा बुद्धि को तीव्र करके इन्हें प्राप्त करें। ये हमें त्रित बनायेंगी, काम-क्रोध-लोभ को तैर जानेवाला।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

वाह्याभ्यन्तर शत्रु विजय

तवाहमंग्न ऊतिभिर्मित्रस्यं च प्रशंस्तिभिः। द्वेषोयुतो न दुंरिता तुर्याम मर्त्यांनाम्॥ ६ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **अहम्**=मैं **तव**=आपकी **ऊतिभिः**=रक्षाओं से **च**=और **मित्रस्य**=पापों से बचानेवाले आपके प्रशंसनों व स्तवनों से **मर्त्यानां दुरिता**=मनुष्यों के दुरितों से **तुर्याम**=तैर जाऊँ। उन सब दोषों से अपने को ऊपर उठानेवाला बनूँ, जो कि मानव स्वभाव में सुलभ हैं। (२) मैं इन दुरितों से इसी प्रकार तैर जाऊँ **न**=जैसे कि **द्वेषोयुतः**=द्वेष युक्त जनों को तैर जाऊँ। द्वेष करनेवालों के द्वेष का मैं शिकार न हो जाऊँ।

भावार्थ—प्रभु के रक्षणों व स्तवनों से हम अन्दर के शत्रुभूत दुरितों से तथा बाह्यशत्रुभूत द्वेषी जनों से तैर जायें। न अन्दर के शत्रुओं का शिकार हों और ना ही बाहर के शत्रुओं का।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स क्षेपयत्-स पोषयत्

तं नों अग्ने अभी नरों रयिं संहस्व आ भंर।
स क्षेंपयत्स पोंषयद्भुवद्वाजंस्य सातयं उतैधि पृत्सु नों वृधे॥ ७॥

(१) हे **सहस्वः**=शत्रुमर्षक बल-सम्पन्न **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **नरः**=हमें उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले आप (नृ नये) **नः**=हमारे लिये **तम्**=उस **रयिम्**=धन को **अभि**=आभिमुख्येन **आभर**=प्राप्त कराइये। इस रयि के द्वारा ही हमारी जीवन-यात्रा को आपने सफल बनाना है। (२) इस रयि को प्राप्त करानेवाले **सः**=वे प्रभु ही **क्षेपयत्**=सब अमंगलों को हमारे से दूर करते हैं, **स पोषयत्**=वे प्रभु सब पोषणों को हमें प्राप्त कराते हैं। वे प्रभु **वाजस्य**=शक्ति की **सातये**=प्राप्ति के लिये **भुवत्**=होते हैं। **उत**=और हे प्रभो! आप **पृत्सु**=संग्रामों में **नः**=हमारे **वृधे**=वर्धन के लिये **एधि**=होइये।

भावार्थ—प्रभु हमें वह रयि प्राप्त कराते हैं जिससे कि अमंगल दूर होता है, पोषण प्राप्त होता है, शक्ति बढ़ती है और संग्रामों में विजय प्राप्त होती है।

'गय आत्रेय' ही अगले सूक्त का भी ऋषि है। वह प्रार्थना करता है कि—

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ओजिष्ठ द्युम्न

अग्न ओजिंष्ठमा भंर द्युम्नमस्मभ्यंमध्रिगो। प्र नों राया परींणसा रत्सि वाजांय पन्थाम्॥ १ ॥

(१) हे **अग्ने**=हमें निरन्तर आगे ले चलनेवाले प्रभो! **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये इस जीवन के

प्रथम प्रयाण में **ओजिष्ठम्**=ओजस्वितम-अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न **द्युम्नम्**=ज्ञान-ज्योति को **आभर**=भरिये, प्राप्त कराइये। इस ब्रह्मचर्याश्रम में हम शक्ति व ज्ञान का संचय करके अपने जीवन-गगन में शुक्र व बृहस्पति नक्षत्रों का उदय करनेवाले बनें। (२) अब जीवन के द्वितीय प्रयाण में, हे **अध्रिगो**=अधृतगमन प्रभो! अव्याहत गतिवाले प्रभो! **नः**=हमें **परीणसा**=(परितो व्यापकेन) यज्ञादि के द्वारा सर्वत्र फैलनेवाले **राया**=धन से भरिये। गृहस्थ में धन-सम्पन्न हों। पर हमारा धन यज्ञों द्वारा चारों ओर फैलनेवाला हो। (३) हे प्रभो! अब जीवन के तृतीय प्रयाण में आप **वाजाय**=(sacrifice) त्याग के लिये **पन्थां रत्सि**=मार्ग को बना देते हैं। हम वानप्रस्थ बनकर सांसारिक वस्तुओं के त्याग के लिये प्रवृत्त होते हैं। इस त्याग के पूर्ण होने पर संन्यस्त होकर प्रभु चरणों में निवासवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम जीवन-यात्रा में प्रथम ओजयुक्त ज्ञान का संचय करें, फिर यज्ञों में विनियुक्त होनेवाले धन का। अब तृतीय प्रयाण में इन धनों का त्याग करके आगे बढ़ें।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'सम्पूर्ण शक्ति के स्रोत' प्रभु

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना। त्वे असुर्य१मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिये **क्रत्वा**=कर्म के अनुसार अथवा यज्ञादि कर्मों के करने के हेतु से **दक्षस्य मंहना**=बल के दानों को **क्राणा**=(कुर्वाणः) करते हुए हैं। आप हमें शक्ति प्रदान करते हैं कि हम यज्ञादि कर्मों को कर सकें। (२) हे **अद्भुत**=सामर्थ्य के अतिशय से सब के लिये आश्चर्यभूत प्रभो! **त्वे**=आप में ही **असुर्यम्**=सब बल **आरुहत्**=आरूढ़ हुआ है। आप ही सम्पूर्ण शक्ति के स्रोत हैं, सर्वत्र आपसे ही शक्ति का प्रसार हो रहा है। **मित्रः न**=सूर्य की तरह आप **यज्ञियः**=आप संगतिकरण योग्य हैं। सूर्य के सम्पर्क में रोग व अन्धकार नष्ट होता है। प्रभु भी उपासक के रोगों व अज्ञानान्धकारों के विनाशक हैं।

भावार्थ—सब यज्ञादि उत्तम कर्मों के लिये प्रभु ही शक्ति देते हैं। प्रभु में ही सम्पूर्ण शक्ति का निवास है। वे सूर्य हैं, हमारे रोगों व अन्धकारों को दूर करनेवाले हैं।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

गय-पुष्टं-मघ

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय। ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः॥ ३॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **एषां नः**=इन हमारे **गयम्**=प्राणों को **च**=व **पुष्टिम्**=धनादि के पोषण को **वर्धय**=बढ़ाइये। प्रभु कृपा से ही प्राणशक्ति व धन की वृद्धि होती है। (२) **ये**=जो **सूरयः नरः**=ज्ञानी पुरुष हैं वे **स्तोमेभिः**=स्तुतियों के द्वारा **मघानि**=ऐश्वर्यों को **प्र आनशुः**=प्रकर्षेण व्याप्त करते हैं। प्रभु का स्तवन करते हुए ये ज्ञानी वास्तविक ऐश्वर्यों को, अध्यात्म-सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करते हुए 'प्राणशक्ति, धनपुष्टि व अध्यात्म ऐश्वर्य' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

स्तुति के लाभ

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना॥ ४॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी **चन्द्र**=सब के आह्लाद को करनेवाले प्रभो! **ये**=जो व्यक्ति **ते**=आपकी **गिरः**=स्तुति-वाणियों को **शुम्भन्ति**=शोभन करते हैं, अर्थात् खूब ही आपका स्तवन करते हैं, वे **अश्वराधसः**=अपने इन्द्रियाश्वों को खूब ही संसिद्ध करनेवाले होते हैं। (२) ये स्तोता **नरः**=पुरुष **शुष्मेभिः**=शत्रु शोषक बलों से **शुष्मिणः**=बलवाले होते हैं। ये वे होते हैं, **येषाम्**=जिनकी **सुकीर्तिः**=उत्तम कीर्ति **दिवः चित्**=द्युलोक से भी **बृहत्**=बड़ी होती है, इनकी कीर्ति दिशाओं से अवच्छिन्न नहीं होती। इन लोगों का प्रभु **त्मना**=स्वयं **बोधति**=ध्यान करते हैं। जो व्यक्ति इन्द्रियाश्वों को वश में करके मार्ग पर बढ़ते हैं, प्रभु से वे रक्षणीय होते ही हैं।

भावार्थ—स्तुति से (१) इन्द्रियाश्वों का वशीकरण होता है, (२) शत्रु शोषक बल प्राप्त होता है, (३) हम यशस्वी कर्मोंवाले बनते हैं, (४) प्रभु से रक्षणीय होते हैं।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्रभु की ज्ञान-ज्वालाएँ

तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया। परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तव**=आपकी **त्ये**=वे प्रसिद्ध **अर्चयः**=ज्ञान-दीप्तियाँ **भ्राजन्तः**=चमकती हुईं **यन्ति**=हमें प्राप्त होती हैं। ये ज्ञान-ज्वालाएँ **धृष्णुया**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाली हैं। इनमें काम आदि का दहन हो जाता है। (२) ये ज्ञान ज्वालाएँ **परिज्मानः**=चारों ओर गतिवाली **विद्युतः न**=विद्युतों के समान हैं। जैसे विद्युत् अन्धकार को चीरती हुई प्रकाश को करनेवाली होती है, इसी प्रकार ये ज्ञान-ज्वालाएँ अविद्यान्धकार को विलुप्त करनेवाली हैं। **वाजयुः**=संग्राम में विजय की कामनावाले **स्वानः रथः न**=शब्द युक्त रथ की तरह ये ज्ञान-ज्वालाएँ हैं। जैसे रथ शब्द करता हुआ संग्राम में आगे बढ़ता है और विजय को प्राप्त कराता है, इसी प्रकार ये ज्ञान-ज्वालाएँ, ज्ञान के शब्दों का उच्चारण करती हुईं, हमें जीवन-संग्राम में विजयी बनाती है।

भावार्थ—प्रभु की ज्ञान-ज्वालाएँ अज्ञानान्धकार को दूर करती हैं, जीवन-संग्राम में विजयी बनाती हैं।

ऋषिः—**गय आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

इच्छाओं से ऊपर

नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये। अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ६ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **नु**=अब **नः**=हमारे **ऊतये**=रक्षण के लिये होइये। **च**=और **सबाधसः**=दारिद्र्यजनित दुःखों के बाधन से युक्त धनों के **रातये**=दान के लिये होइये। (२) **च**=और **अस्माकासः**=हमारे ये **सूरयः**=विद्वान् पुरुष **विश्वा आशाः**=सब आशाओं को, इच्छाओं को **तरीषणि**=तैरने में समर्थ हों। सब आशाओं से ऊपर उठकर ही वास्तविक सुख का लाभ होता है। इन आशाओं से ऊपर उठना तभी होता है, जब कि हम प्रभु-दर्शन कर पाते हैं 'रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते'।

भावार्थ—प्रभु हमारे रक्षक हों, प्रथमाश्रम में प्रभु-रक्षण में हम शक्ति व ज्ञान का संचय करें। द्वितीयाश्रम में प्रभु हमें दारिद्र्य दुःखनिवारक धनों को दें। तृतीय में हम इच्छाओं से ऊपर उठने की साधना करें।

ऋषिः—गय आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

विभ्वासह रयिं, स्तवन-सामर्थ्य, संग्राम-विजय

त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी, **अंगिरः**=अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाले प्रभो! **स्तुतः**=पूर्वकाल में स्तुति किये गये **स्तवानः**=वर्तमान में स्तुति किये जाते हुए **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=रयि को, धन को **आभर**=प्राप्त कराइये। हे **होतः**=सर्वप्रद प्रभो! **स्तोतृभ्यः**=हम स्तोताओं के लिये **विभ्वासहम्**=(विभु-आसहं) व्यापक-व्यापक हित करनेवाले, अधिक से अधिक लोगों के हित में विनियुक्त होनेवाले को दीप्ति तथा सब कष्टों का पराभव करनेवाले धन को दीजिये। (२) **च**=और **नः**=हमारे लिये **स्तवसे**=स्तवन के सामर्थ्य को **एधि**=प्राप्त कराइये, हमारे स्तवन सामर्थ्य के लिये होइये। **उत**=और इस प्रकार **पृत्सु**=संग्रामों में **नः**=हमारी **वृधे**=वृद्धि के लिये होइये। प्रभु-स्तवन द्वारा हमें वह सामर्थ्य प्राप्त हो, जिससे कि हम सब काम-क्रोध आदि शत्रुओं को पराभूत कर पायें।

भावार्थ—प्रभु हमें लोकहित में विनियुक्त होनेवाले धन को, स्तुति-सामर्थ्य को और संग्राम-विजय को प्राप्त करायें।

सूचना—पूर्वार्ध में प्रार्थित रयि ऐहलौकिक संग्राम में हमें विजयी बनाती है और उत्तरार्ध में प्रार्थित स्तवन-सामर्थ्य हमें पारलौकिक (अध्यात्म) संग्राम में विजयी करता है।

यहाँ 'विम्वाविभर्ति' यज्ञों से औरों का पोषण करता है, सो 'सुतम्भर' कहलाता है। यह आत्रेय तो है ही, काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठा हुआ। यह प्रार्थना करता है कि—

११. [एकादशं सूक्तम्]

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

जनस्य गोपा

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥

(१) **जनस्य**=मनुष्य का **गोपाः**=रक्षक **जागृविः**=जागरणशील सदा प्रबुद्ध, **अग्निः**=अग्रणी **सुदक्षः**=उत्तम बलवाला, वह प्रभु **नव्यसे**=अत्यन्त प्रशंसनीय **सुविताय**=कल्याण के लिये **अजनिष्ट**=होता है। ये प्रभु मनुष्य का कल्याण करते हैं। (२) **घृतप्रतीकः**=दीप्त अंगोंवाला, अर्थात् सर्वतो दीप्त **शुचिः**=पवित्र प्रभु **भरतेभ्यः**=अपने कर्त्तव्य कर्मों का भरण करनेवालों के लिये **बृहता**=अत्यन्त बढ़ी हुई **दिविस्पृशा**=द्युलोक को स्पर्श करनेवाली, सर्वत्र व्याप्त दीप्ति से **द्युमत्** **विभाति**=खूब ज्योतिर्मय होकर चमकते हैं। भरत लोग आपको प्रकाशमय रूप में देखते हैं।

भावार्थ—प्रभु सदा जागरूक रक्षक हैं। अपना कर्त्तव्यभार उठानेवालों के लिये ये प्रकाशमय रूप में प्रकट होते हैं।

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

यज्ञस्य होता

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ २ ॥

(१) **यज्ञस्य केतुम्**=यज्ञों के प्रकाशक, यज्ञों का वेदमुखेन उपदेश देनेवाले 'यज्ञस्य देवम्', **प्रथमम्**=सर्वत्र विस्तृत-सर्वव्यापक **पुरोहितम्**=हमारे सामने आदर्श के रूप में विद्यमान **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोग **त्रिषधस्थे**='ज्ञान-कर्म-उपासना' तीनों के (त्रि) मिलकर (षध) ठहरने के स्थान (स्थ) शरीर में **समीधिरे**=समिद्ध करते हैं। ज्ञान, कर्म, उपासना का समन्वय करके प्रभु को अपने अन्दर दीप्त करते हैं। (२) **इन्द्रेण**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव तथा **देवैः**=इन्द्रियों के साथ **सरथम्**=समान रथ में **सः**=वे **सुक्रतुः**=शोभनकर्मा व उत्तम शक्तिवाले प्रभु **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **निसीदत्**=निषण्ण होते हैं और **यजथाय**=इस जीवनयज्ञ के संचालन के लिये **होता**=होता होते हैं, सब आवश्यक सामग्री को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—ज्ञान, कर्म व उपासना के समन्वय से प्रभु का दर्शन होता है। जब हम इन्द्र (जितेन्द्रिय) बनते हैं, इन्द्रियों को प्रकाशमय (देव) बनाते हैं, तो प्रभु हमारे हृदयों में आसीन होकर जीवनयज्ञ को चलाते हैं।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

असम्मृष्टः-मात्रोः शुचिः

असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः॥ ३॥

(१) **असंमृष्टः**=किसी से शुद्ध न किये गये, स्वयं सदा से शुद्ध, हे प्रभो! आप **जायसे**=प्रादुर्भूत होते हैं। **मात्रोः शुचिः**=आप ही द्यावापृथिवी के शोधक हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को वे प्रभु शुद्ध करनेवाले हैं, वे किसी से शुद्ध नहीं किये जाते। **मन्द्रः**=आनन्दस्वरूप हैं। **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ हैं, सर्वज्ञ हैं। आप **विवस्वतः**=ज्ञान की किरणोंवालों से **उदतिष्ठः**=उत्थित होते हैं। ज्ञान की किरणोंवाला ही आपको हृदयदेश में देखता है। (२) हे **आहुत**=चारों ओर दानोंवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **घृतेन**=ज्ञानदीप्ति से ही उपासक **त्वा**=आपको **अवर्धयन्**=अपने में बढ़ाते हैं। हे प्रभो! **दिवि श्रितः**=मस्तिष्करूप द्युलोक में आश्रित हुआ-हुआ **ते केतुः**=आपका ज्ञान, आपसे दिया गया ज्ञान **धूमः**=सब वासनाओं को कम्पित करनेवाला **अभवत्**=होता है। ज्ञान से वासनाएँ विनष्ट होती हैं।

भावार्थ—प्रभु स्वयं पवित्र हैं, हमें पवित्र करनेवाले हैं। ज्ञान से प्रभु का प्रकाश होता है। प्रभु का ज्ञान वासनाओं को कम्पित करनेवाला है।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु वरण से प्रज्ञा व शक्ति की प्राप्ति

अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम्॥ ४॥

(१) **साधुया**=सब पुरुषार्थों का साधक (साध्नोति) **अग्निः**=वह प्रभु **नः**=हमारे **यज्ञम्**=इस यज्ञ को **उपवेतु**=प्राप्त हो। प्रभु-कृपा से ही तो यज्ञ की पूर्ति होती है। **अग्निम्**=इस अग्रणी प्रभु को ही **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोग **गृहे गृहे**=प्रत्येक घर में **विभरन्ते**=धारण करते हैं। वस्तुतः इस प्रभु के धारण से ही वे अपने गृह का धारण करते हैं। (२) यह **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **दूतः**=ज्ञान सन्देश को प्राप्त करानेवाला **अभवत्**=होता है। यही **हव्यवाहनः**=सब यज्ञिय पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। **अग्निं वृणानाः**=इस अग्रणी प्रभु का वरण करते हुए ये उपासक **कविक्रतुं वृणते**=उस क्रान्तप्रज्ञ शक्तिशाली प्रभु का वरण करते हैं। अर्थात् प्रज्ञा और शक्ति को अपने अन्दर

धारण करनेवाले होते हैं। प्रभु के वरण से यश व शक्ति प्राप्त होती है। प्रकृति का वरण अधिक से अधिक धन को देनेवाला होता है, न प्रज्ञा का न शक्ति का। सो नर मनुष्य प्रभु का ही वरण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा से ही सब यज्ञ पूर्ण होते हैं। हम प्रभु का वरण करेंगे तो ज्ञान और शक्ति को प्राप्त कर रहे होंगे।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

स्तुति से शान्ति की प्राप्ति व बल की वृद्धि

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **तुभ्य**=आपके लिये ही **इदम्**=यह **मधुमत्तमं वचः**=अत्यन्त मधुर वचन बोला जाता है। हम अत्यन्त मधुर शब्दों में आपका स्तवन करते हैं। **तुभ्य**=आपके लिये ही **मनीषा**=बुद्धिपूर्वक की गयी यह स्तुति है। **इयम्**=यह **हृदे**=हृदय के लिये **शं अस्तु**=शान्ति को देनेवाली हो। (२) यह **गिरः**=स्तुतिवाणियाँ **त्वाम्**=आपको ही **आपृणन्ति**=(आपूरयन्ति) भरती हैं, आपकी ओर ही आती हैं, **इव**=जैसे कि **महीः अवनीः**=बड़ी-बड़ी नदियाँ **सिन्धुम्**=समुद्र को आपूरित करनेवाली होती हैं। **च**=और ये स्तुतियाँ **शवसा**=बल के द्वारा **वर्धयन्ति**=हमें बढ़ाती हैं। प्रभु-स्तवन से स्तोता का बल बढ़ता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से हृदय को शान्ति प्राप्त होती है और स्तोता का बल बढ़ता है।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सहो महत्

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ ६ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **गुहाहितम्**=हृदयरूप गुहा में स्थापित **त्वाम्**=आपको ये उपासक **अन्वविन्दन्**=प्राप्त करते हैं। **वने वने**=(वन् संभजने) प्रत्येक उपासक में **शिश्रियाणम्**=आश्रय करनेवाले प्रभु को ये उपासक प्राप्त होते हैं। (२) **स**=वे आप **मथ्यमानः**=मन्थन किये जाते हुए, चिन्तन किये जाते हुए **जायसे**=प्रादुर्भूत होते हैं। 'मनीषिणो मनसा पृच्छेत्'। हे **अंगिरः**=अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाले **त्वाम्**=आपको **महत् सहः**=महान् शत्रुमर्षक बल अथवा **सहस्पुत्रम्**=बल का पुत्र (बल का पुञ्ज) **आहुः**=कहते हैं। वस्तुतः उपासक आपके बल से बलवान् होकर ही काम आदि शत्रुओं का पराभव करता है।

भावार्थ—हृदयस्थ प्रभु को हम उपासना द्वारा देखते हैं। चिन्तन से प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है। वे बल का पुञ्ज प्रतीत होते हैं। इसी बल से उपासक बलवान् बनता है।

सुतम्भर आत्रेय ही कहता है—

१२. [द्वादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्तुति-वचनों का मुख में धारण

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म।
घृतं न यज्ञ आस्ये३ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥ १ ॥

(१) **अग्नये**=उस अग्रणी, **बृहते**=सदा वर्धमान (वर्धमानं स्वे दमे), **यज्ञियाय**=पूजनीय, **ऋतस्य वृष्णे**=जो भी सत्य है (ठीक है) उसका सेचन करनेवाले के लिये (प्रभु हमारे हृदयों में सत्य का सेचन करते हैं) **असुराय**=प्राणशक्ति का संचार करनेवाले (असून् राति) प्रभु के लिये **मन्म**=मननपूर्वक की जानेवाली स्तुति को **प्रभरे**=प्रकर्षेण सम्पादित करता हूँ। (२) मैं **आस्ये**=अपने मुख में **वृषभाय**=सुखों का वर्षण करनेवाले उस प्रभु के लिये **प्रतीचीम्**=(प्रति अञ्चति) प्रभु की ओर जानेवाली **गिरम्**=स्तुतिवाणी को **प्रभरे**=प्रभृत करता हूँ, **न**=जैसे कि **यज्ञे**=यज्ञ में **सुपूतम्**=सम्यक् पवित्र किये गये **घृते**=घृत को मुख में धारण करता हूँ। मुख में धारण किया गया यह पवित्र घृत जैसे प्रीतिकर होता है, ऐसे ही मेरे लिये यह स्तुतिवाणी प्रीतिकरी होती है।

भावार्थ—प्रभु के स्तवन में, प्रभु के स्तुतिवचनों के उच्चारण में प्रीति का अनुभव करता हूँ। वे प्रभु ही मुझे प्राणशक्ति-सम्पन्न करके यज्ञों में समर्थ करते हैं।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ऋत का ही सेवन

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः॥ २॥

(१) हे प्रभो! आप **ऋतम्**=ऋत को **चिकित्वः**=जाननेवाले हैं, जाननेवाले ही क्या ऋत को जन्म देनेवाले आप ही हैं। **इत्**=निश्चय से **ऋतम्**=ऋत का **चिकिद्धि**=हमें ज्ञान दीजिये। आप **पूर्वीः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली अथवा हमारा पालन व पूरण करनेवाली **ऋतस्य धाराः**=सत्य ज्ञान की इन वाणियों को (धाराः वाक् नि०) **अनु तृन्धि**=अनुकूलता से विच्छिन्न करिये, इन्हें खोलकर इनके रहस्य को समझाइये। (ये वाणियाँ हमें strike करें-सूझें) (२) इस सत्य वेदज्ञान को प्राप्त करके **अहम्**=मैं सहसा बल के कारण या अविचार के कारण **यातुम्**=पीडाकरी हिंसा का **न सपामि**=(स्पृशामि) सेवन नहीं करता हूँ। **न द्वयेन**=मैं सत्य व अनृत का प्रयोग करता हूँ संसार में कार्यों को नहीं करता। मैं तो **अरुषस्य**=आरोचमान **वृष्णः**=सब सुखों के वर्षक प्रभु के **ऋतम्**=ऋत का ही **सपामि**=सेवन करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु से ऋत का ज्ञान प्राप्त करके मैं तदनुसार ही सब कार्यों को करता हूँ। न तो पीडाकरी हिंसा की ओर मेरा झुकाव होता है और ना ही झूट-सच बोलकर जैसे-तैसे कार्यों को सिद्ध करनेवाला होता हूँ।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञाता व अज्ञेय प्रभु

कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः॥ ३॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **ऋतेन**=सत्य वेदज्ञान से **ऋतयन्**=हमारे जीवन को ऋत युक्त करते हुए **कया**=इस कल्याणकारक वेदवाणी से **नः**=हमारे **न वेदाः**=ज्ञाता (ननवेद इति) **भुवः**=होते हैं। आप सदा हमारा ध्यान करते हैं। (२) वे प्रभु **ऋतूनां ऋतुपा**=सब ऋतुओं की नियमित गति के रक्षक हैं। प्रभु की व्यवस्था में ही ये ऋतुएँ नियम से चल रही हैं। **देवः**=वे ही प्रकाशमय हैं, **नव्यः**=स्तुति के योग्य हैं **मे उचथस्य**=मेरे स्तोत्र को **वेद**=जानते हैं। मेरी स्तुति उनसे सुनी जाती है। पर **अहम्**=मैं **अस्य**=इस **रायः**=ऐश्वर्य के **सनितुः**=दाता उस प्रभु को तथा

पतिम्=उस रक्षक प्रभु को **न वेद**=जानता नहीं हूँ। प्रभु मुझे जानते हैं, मेरे ज्ञान से वे परे हैं। मैं प्रभु को पूरा ज्ञान नहीं पाता।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु के व्यक्ति कौन हैं?

के ते॑ अग्ने रि॒पवे॒ बन्ध॑नासः॒ के पा॒यवः॑ सनिषन्त द्यु॒मन्तः॑।
के धा॒सिम॑ग्ने॒ अनृ॑तस्य पान्ति॒ क आस॑तो॒ वच॑सः सन्ति गो॒पाः ॥ ४ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **के ते**=कौन व्यक्ति हैं, जो तेरे हैं? उत्तर—**रिपवे**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं के लिये जो **बन्धनासः**=बन्धन करनेवाले होते हैं। वस्तुतः प्रभु के व्यक्ति वे ही हैं जो कि काम-क्रोध आदि में फँसते नहीं। प्रभु उपासना का यदि यह भी परिणाम न हो, तो उपासना निरर्थक ही हो जाए। (२) **के**=प्रभु-भक्त कौन हैं? उत्तर—जो **पायवः**=रक्षण करनेवाले होते हुए **द्युमन्तः**=ज्योतिर्मय जीवनवाले बनकर **सनिषन्त**=दीनों के लिये धनों का विभाग करते हैं। दीनों पर दया करनेवाला ही प्रभु-भक्त होता है। प्रभु-भक्त कभी अकेले खाने का विचार भी नहीं कर सकता। (३) हे **अग्ने**=प्रभो! कौन तेरे हैं? उत्तर—**अनृतस्य**=अनृत के **धासिम्**=धारक मनुष्य को अनृत से छुड़ाकर सन्मार्ग-दर्शन के द्वारा जो **पान्ति**=पाप से बचाते हैं। (४) **के**=कौन तेरे उपासक हैं? जो **असतः वचसः**=असत्य वचन से **गोपाः**=बचानेवाले, रक्षा करनेवाले **सन्ति**=हैं। असत्य से छुड़ाकर जो सत्य के लिये प्रेरित करते हैं ये ही प्रभु-भक्त हैं। ये प्रभु-भक्त स्वयं 'ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि' का व्रत ग्रहण करते हैं और औरों को भी अनृत से छुड़ाकर ऋत की ओर तथा असत्य से छुड़ाकर सत्य की ओर ले चलते हैं। ब्रह्म का प्रकाश जीवन में ऋत और सत्य के रूप में ही होता है।

भावार्थ—प्रभु-भक्त (क) काम-क्रोध आदि में नहीं फँसता, (ख) अकेला नहीं खाता, (ग) अनृत मार्ग से, अशुभ अव्यवस्थित कर्मों से मनुष्यों को बचाता है, (घ) असत्य से हटाकर सत्य की ओर ले चलता है।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु के मित्रों व अमित्रों में भेद

सखा॑यस्ते॒ विषु॑णा अग्न ए॒ते शि॒वासः॒ सन्तो॒ अशि॑वा अभूवन्।
अधू॑र्षत स्व॒यमे॒ते वचो॑भिर्ऋजूय॒ते वृ॑जि॒नानि॑ ब्रु॒वन्तः॑ ॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=प्रभो! **ते सखायः**=जो तेरे मित्र हैं, वे **विषुणाः**=व्यापक (उदार) मनोवृत्तिवाले होते हैं। ये अपने परिवार को व्यापक करते हुए वसुधा को ही अपना कुटुम्ब बना लेते हैं। **एते**=ये **शिवासः**=सदा कल्याण करनेवाले होते हैं। **सन्तः**=सज्जनता की वृत्तिवाले होते हैं। (२) इनके विपरीत जो प्रभु के मित्र नहीं होते वे **अशिवाः अभूवन्**=सबका अकल्याण करनेवाले बनते हैं और **ऋजूयते**=ऋजु (सरल) मार्ग पर आचरण करनेवाले के लिये **वृजिनानि**=कुटिल बातों को **ब्रुवन्तः**=कहते हुए **एते**=ये लोग, उन **वचोभिः**=कुटिल वचनों से स्वयं **अधूर्षत**=स्वयं हिंसित होते हैं। उन कुटिल वचनों का अशुभ परिणाम स्वयं इनके जीवन पर ही होता है।

भावार्थ—प्रभु के मित्र 'उदार, कल्याण करनेवाले व सज्जन' होते हैं। इनके विपरीत लोग अकल्याण में प्रवृत्त हुए-हुए, सज्जनों के लिये कुटिल शब्दों का प्रयोग करते हुए, स्वयं उन वचनों से हिंसित होते हैं।

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'पृथुः क्षयः'-'साधुः शेषः'

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=प्रभो! **यः**=जो **ते**=आपके प्रति **नमसा**=नमन के साथ **यज्ञं ईट्टे**=यज्ञों का आसन करता है, यज्ञशील होता है, **सः**=वह व्यक्ति **अरुषस्य**=आरोचमान **वृष्णः**=शक्तिशाली आपके **ऋतम्**=ऋत का **पाति**=रक्षण करता है। इस ऋत के पालन से वह भी प्रभु की तरह आरोचमान व शक्तिशाली ब्रह्म है। मस्तिष्क में आरोचमान, शरीर में शक्ति-सम्पन्न। (२) **तस्य**=उस प्रभु के प्रति नमनवाले, यज्ञशील ऋत के रक्षक पुरुष का **क्षयः**=घर **पृथुः**=विशाल होता है, सब प्रकार से फलता-फूलता है और इस **प्रसर्स्राणस्य**=यज्ञादि उत्तम कर्मों में निरन्तर गतिवाले **नहुषस्य**=सबके साथ अपने को बाँधकर चलनेवाले मनुष्य का **शेषः**=सन्तान **आ साधुः**=सब प्रकार से साधु **एतु**=आये। अर्थात् इसके सन्तान सदा उत्तम होते हैं।

भावार्थ—प्रभु के प्रति नमन के साथ हम यज्ञशील हों, ऋत का पालन करें। इससे हम चमकेंगे और शक्तिशाली होंगे। हमारा घर फले-फूलेगा, सन्तान उत्तम स्वभाव के होंगे।

अगला सूक्त भी 'सुतम्भर आत्रेय' ऋषि का ही है—

१३. [त्रयोदशं सूक्तम्]

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अर्चना के तीन लाभ

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि। अग्ने अर्चन्त ऊतये॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अर्चन्तः**=पूजा करते हुए हम **त्वा हवामहे**=आपको पुकारते हैं। पूजा के द्वारा आप से सब आवश्यक वस्तुओं की याचना करते हैं। (२) **अर्चन्तः**=पूजा करते हुए ही **समिधीमहि**=आपको समिद्ध करते हैं, हृदयदेश में आपके प्रकाश को देखने के लिये यत्नशील होते हैं। (३) हे परमात्मन्! **ऊतये**=अपने रक्षण के लिये हम **अर्चन्तः**=आपकी पूजा करते हुए होते हैं। आपकी पूजा ही हमें वासनाओं का शिकार होने से बचायेगी।

भावार्थ—प्रभु पूजन (क) हमारी कामनाओं को पूर्ण करता है, (ख) प्रभु के प्रकाश को प्राप्त कराता है, (ग) वासनाओं के आक्रमण से हमें बचाता है।

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

'अग्नि-दिविस्पृग्-देव'

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः। देवस्य द्रविणस्यवः॥ २॥

(१) **द्रविणस्यवः**=द्रविणों (धनों) की कामनावाले हम **अद्य**=आज **सिध्रम**=सब प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाले **स्तोमम्**=स्तोम को, स्तुति को **मनामहे**=मननपूर्वक करते हैं। स्तोम ही सिध्र है, यह प्रभु स्तवन ही हमारे सब मनोरथों का पूरक है। (२) उस प्रभु के स्तवन को हम करते हैं जो कि **अग्नेः**=अग्रणी हैं, हमें उन्नतिपथ आगे ले-चलनेवाले हैं। **दिविस्पृशः**=सदा ज्ञान के स्पर्श करनेवाले, ज्ञानस्वरूप हैं। **देवस्य**=दिव्यगुणों के पुञ्ज हैं। वे प्रभु हमें भी शरीर के दृष्टिकोण से 'अग्नि', मस्तिष्क के दृष्टिकोण से 'दिविस्पृश' तथा हृदय के दृष्टिकोण से 'देव' बनाते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु स्तवन द्वारा इष्ट द्रविणों को प्राप्त करनेवाले हों। शरीर में अग्नि तत्त्ववाले, मस्तिष्क में उत्कृष्ट ज्ञानवाले तथा हृदय में देव ही बनें।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स यक्षत् दैव्यं जनम्

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा। स यक्षद्दैव्यं जनम्॥ ३॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **नः गिरः**=हमारी स्तुति वाणियों को **जुषत**=प्रीतिपूर्वक सेचन करें। हमारी स्तुतिवाणियाँ प्रभु के लिये प्रिय हों। हमें स्तुति वृत्तिवाला देखकर प्रभु को हम प्रिय लगें। (२) वे प्रभु हमारी स्तुतिवाणियों को प्राप्त करें **यः**=जो कि **मानुषेषु**=विचारशील प्रजाओं में **आ होता**=समन्तात् आवश्यक वस्तुओं के देनेवाले हैं। (२) **सः**=वे प्रभु **दैव्यं जनम्**=देव की ओर चलनेवाले, देव को अपनानेवाले, मनुष्य को **यक्षत्**=प्राप्त हों (यज् संगतिकरणे)। हम देववृत्तिवाले बनेंगे तो प्रभु हमें क्यों न प्राप्त होंगे।

भावार्थ—हम स्तुति द्वारा प्रभु के प्रिय होते हैं। ये प्रभु विचारशील पुरुषों के लिये सब आवश्यक वस्तुओं को देनेवाले हैं। देववृत्तिवाले पुरुषों को ये प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ **स्वरः—षड्जः** ॥

त्वया यज्ञं वितन्वते

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते॥ ४॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **सप्रथाः असि**=(सर्वतः पृथुः नि ६।९) सब गुणों के दृष्टिकोण से निरतिशय (absolute) विस्तारवाले हैं। **जुष्टः**=प्रीतिपूर्वक सेवित होते हुए आप **होता**=सब कुछ देनेवाले हैं। अतएव **वरेण्यः**=आप ही वरने के योग्य हैं, आपको प्राप्त कर लेने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। (२) **त्वया**=आपसे ही सब यजमान **यज्ञं वितन्वते**=उस-उस यज्ञ का विस्तार करते हैं। आपके द्वारा ही वे यज्ञपूर्ण होते हैं। '**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च**'। वस्तुतः आपकी शक्ति से ही ये सब यज्ञ चलते हैं। सो वस्तुतः इन यज्ञों को तो आप ही करते हैं। मैं तो निमित्त मात्र होता हूँ।

भावार्थ—प्रभु सब प्रकार से महान् हैं। प्रसन्न हुए वे सब कुछ देनेवाले हैं। वरणीय हैं, क्योंकि इनके वरण में सब का वरण हो जाता है। प्रभु के आश्रय से ही हम यज्ञों का विस्तार कर पाते हैं।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सुवीर्य प्राप्ति

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम्। स नो रास्व सुवीर्यम्॥ ५॥

(१) हे **अग्ने**=सर्वाग्रणी प्रभो! **विप्राः**=ज्ञानी लोग **त्वाम्**=आपको **वर्धन्ति**=स्तुति शब्दों से बढ़ाते हैं स्तुति शब्दों से वस्तुतः अपने को प्रेरणा देते हुए आपके भाव को अपने अन्दर बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। उन आपको, जो कि **वाजसातमम्**=शक्ति प्रदान करनेवालों में सर्वोत्तम हैं। जितना-जितना आपको धारण करते हैं, उतना-उतना शक्ति को भी अपने अन्दर अनुभव करते हैं। उन आपकी हम स्तुति करते हैं, जो आप **सुष्टुतम्**=उत्तम स्तुतिवाले हैं, वस्तुतः सब स्तुत्य गुणों की चरमसीमा ही तो आप हैं, आपके स्तवन से स्तोता का जीवन उत्तम ही उत्तम बनता है। (२) **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिये **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **रास्व**=दीजिये। सुवीर्य से सम्पन्न पुरुष

ही आपकी प्राप्ति का अधिकारी होता है। आप 'वाजसातम' हैं, आपका स्तोता बनकर मैं 'वाज' (बल) को क्यों न प्राप्त करूँगा अर्थात् अवश्य प्राप्त करूँगा।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से हम सुवीर्य को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

चित्रं राधः

अग्ने नेमिरराँइव देवाँस्त्वं परिभूरसि। आ राधश्चित्रमृञ्जसे॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=सर्वाग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **देवान्**=सब देवों को **परिभूः**=व्याप्त करके **असि**=विद्यमान हो रहे हैं, **इव**=जैसे कि **नेमिः**=चक्रवलय **अरान्**=अरों को (spokes) व्याप्त करके विद्यमान होता है। सब देवों को देवत्व आपकी व्याप्ति से ही प्राप्त हो रहा है 'तेन देवा देवतामग्र आयन्'। (२) आप ही उस-उस देव के उस-उस **चित्रं राधः**=अद्भुत ऐश्वर्य को **आ ऋञ्जसे**=सर्वथा प्रसाधित करते हैं। सूर्य आदि को दीप्ति के देनेवाले आप ही हैं। बुद्धिमानों को बुद्धि के दाता, तेजस्वियों के तेज व बलवानों के बल आप ही हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब देवों में व्याप्त होकर उस-उस विभूति श्री व ऊर्ज् को उनमें स्थापित कर रहे हैं।

अगले सूक्त में भी 'सुतम्भर आत्रेय' ही प्रभु का स्तवन करता हुआ कहता है कि—

१४. [चतुर्दशं सूक्तम्]

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हव्या देवेषु नो दधत्

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम्। हव्या देवेषु नो दधत्॥ १॥

(१) हे उपासक! तू **समिधानः**=अपने को ज्ञान से दीप्त करता हुआ **स्तोमेन**=स्तुति के द्वारा **अमर्त्यम्**=उस अविनाशी **अग्निम्**=सर्वाग्रणी प्रभु को **बोधय**=अपने हृदय में समिद्ध कर। प्रभु के प्रकाश को हृदय में देखने के लिये यत्नशील हो। ये प्रभु ही तुझे विषयों के पीछे न मरनेवाला (अमर्त्य) व आगे बढ़नेवाला (अग्नि) बनायेंगे। (२) ये प्रभु **देवेषु**=सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि देवों में **नः**=हमारे लिये **हव्या**=सब हव्य पदार्थों को **दधत्**=धारण करते हैं। इन सूर्यादि से इन हव्य पदार्थों को प्राप्त करके हम अपने जीवनों को दिव्य बना पाते हैं।

भावार्थ—हम स्वाध्याय व स्तुति के द्वारा प्रभु के प्रकाश को देखें। प्रभु हमारे लिये सूर्यादि में हव्य पदार्थों को धारण करते हैं।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

यजिष्ठं मानुषे-जने

तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम्। यजिष्ठं मानुषे जने॥ २॥

(१) **तम्**=उस प्रसिद्ध **अमर्त्यम्**=अमरणधर्मा **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु को **मर्ताः**=मनुष्य **अध्वरेषु**=यज्ञों में **ईडते**=उपासित करते हैं। यज्ञों के द्वारा ही प्रभु का उपासन होता है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' प्रभु यज्ञरूप हैं। यज्ञ के द्वारा ही उपासित होते हैं। इन यज्ञों के करनेवाला भी अमर्त्य=विषयों के पीछे न मरनेवाला व देव=प्रकाशमय जीवनवाला बनता है। (२) उस प्रभु को यज्ञों के द्वारा उपासित करते हैं, जो कि **मानुषे जने**=विचारशील पुरुषों में **यजिष्ठम्**=अधिक

से अधिक संगतिवाले हैं। विचारशील पुरुषों को ही प्रभु की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—प्रभु अमर्त्य हैं, देव हैं। प्रभु का उपासन हम यज्ञों के द्वारा करते हैं। विचारशील बनते हैं, ताकि प्रभु के संग को प्राप्त करें।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

क्रियाशीलता व ज्ञानतत्परता

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता। अग्निं हव्याय वोळ्हवे॥ ३॥

(१) **तं देवम्**=उस प्रसिद्ध प्रकाशमय प्रभु को **शश्वन्तः**=प्लुतगतिवाले, स्फूर्ति से कार्यों को करनेवाले, **घृतश्चुता**=ज्ञानदीप्ति को टपकानेवाली, ज्ञान के प्रवाहवाली, **स्रुचा**=वाणी से (गणी वै स्रुचः श० ३।३।१।८) **हि**=निश्चयपूर्वक **ईडते**=उपासित करते हैं। प्रभु की उपासना क्रियाशीलता व ज्ञानतत्परता से होती है। (२) **अग्निम्**=उस परमात्मा को **हव्याय वोळ्हवे**=हव्य पदार्थों को प्राप्त कराने के लिये उपासित करते हैं। उपासित हुए-हुए वे प्रभु हमारे लिये सब हव्य पदार्थों को देते हैं। सूर्यादि देवों में प्रभु ने इन हव्य पदार्थों को स्थापित किया है। सूर्य आदि से हम इन हव्य पदार्थों को प्राप्त करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—क्रियाशीलता व ज्ञानतत्परता हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराती है। प्रभु हमारे लिये सूर्यादि देवों के द्वारा सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अविन्दद् गाः अपः स्वः

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः। अविन्दद् गा अपः स्वः॥ ४॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **जातः**=चिन्तन व श्रद्धा द्वारा प्रादुर्भूत हुए-हुए **अरोचत**=हमारे हृदयों में दीप्त होते हैं। ये प्रभु **दस्यून्**=दास्यव वृत्तियों को, आसुरीभावों को **घ्नन्**=नष्ट करते हैं और **ज्योतिषा**=अपनी ज्ञान-ज्योति से **तमः**=अज्ञानान्धकार को विनष्ट करते हैं। प्रभु का प्रकाश होते ही सब अज्ञानान्धकार लुप्त हो जाता है। (२) ये प्रभु **गाः**=ज्ञान की वाणियों को, **अपः**=व्यापक कर्मों को यज्ञात्मक लोकहितवाले कर्मों को तथा **स्वः**=मानस आह्लाद को (सुख को) **अविन्दत्**=प्राप्त कराते हैं (अवेदयत् सा०)।

भावार्थ—प्रभु का प्रकाश होते ही आसुरवृत्तियाँ व अज्ञानान्धकार समाप्त हो जाता है। प्रभु हमें मस्तिष्क की दीप्ति के लिये ज्ञानवाणियों को, हाथों के लिये यज्ञात्मक कर्मों को तथा मन के लिये आह्लाद को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञानी व तेजस्वी

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत। वेतु मे शृणवद्धवम्॥ ५॥

(१) **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **सपर्यत**=तुम पूजो। जो प्रभु **ईडेन्यम्**=स्तुति के योग्य हैं। **कविम्**=क्रान्तप्रज्ञ हैं, सर्वतत्वज्ञ हैं। **घृतपृष्ठम्**=दीप्त पृष्ठवाले हैं, अत्यन्त देदीप्यमान हैं। इन प्रभु के उपासन से हम भी कवि व घृतपृष्ठ, ज्ञानी व तेजस्वी बनेंगे। (२) वे प्रभु **मे**=मेरी **हवम्**=पुकार को **वेतु**=चाहें, मेरी पुकार प्रभु के लिये प्रिय हो और वे मेरी प्रार्थना को **शृणवत्**=सुनें। मेरी प्रार्थना प्रिय व श्रवणीय हो। वस्तुतः जब हम प्रार्थनीय वस्तु के लिये पूर्ण पुरुषार्थ करते हैं, तो हमारी प्रार्थना श्रवणीय होती ही है।

भावार्थ—प्रभु के उपासन से हम 'ज्ञानी व तेजस्वी' बनें। पुरुषार्थी बनकर श्रवणीय प्रार्थनावाले हों।

ऋषिः—**सुतम्भर आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्तोमेभिः-घृतेन

अ॒ग्निं घृ॒तेन॑ वावृधुः॒ स्तोमे॑भिर्वि॒श्वच॑र्षणिम्। स्वा॒धीभि॑र्वच॒स्युभिः॑ ॥ ६ ॥

(१) **अग्निम्**=उस अग्निवत् प्रकाशमान प्रभु को **घृतेन**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **वावृधुः**=अपने अन्दर बढ़ाते हैं। जितना-जितना ज्ञान को हम प्राप्त करते हैं, उतना-उतना प्रभु के समीप होते हैं। **विश्वचर्षणिम्**=उस सर्वद्रष्टा परमात्मा को **स्तोमेभिः**=स्तुतियों के द्वारा अपने में बढ़ाते हैं। प्रभु स्तवन करते हुए हम प्रभु से रक्षणीय होते हैं। (२) **स्वाधीभिः**=(शोभनध्यानैः) उत्तम ध्यानशील पुरुषों से तथा **वचस्युभिः**=ज्ञान की वाणियों की कामनावाले पुरुषों से वे प्रभु अपने अन्दर स्थापित किये जाते हैं। ध्यानशील पुरुष स्तवनों के द्वारा तथा वचस्यु पुरुष ज्ञानदीप्ति के द्वारा प्रभु को अपने अन्दर धारण करते हैं।

भावार्थ—हम ध्यानशील बनकर स्तवनों के द्वारा प्रभु का अपने अन्दर वर्धन करें। तथा ज्ञान की वाणियों की कामनावाले होकर ज्ञानदीप्ति से प्रभु को अपने में स्थापित करें।

इस प्रकार स्तोम व घृत द्वारा प्रभु को अपने अन्दर धारण करनेवाला यह व्यक्ति 'धरुण' होता है, प्रभु धारण से ही अंग-प्रत्यंगों में रसवाला होता हुआ 'आंगिरस' होता है। यह 'धरुण आंगिरस' प्रभु का उपासन करता हुआ कहता है—

द्वितीयोऽनुवाकः

१५. [पञ्चदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**धरुण आङ्गिरसः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

रायो धर्ता, धरुणो वस्वः

प्र वे॒धसे॑ क॒वये॒ वेद्या॑य॒ गिरं॑ भरे य॒शसे॑ पू॒र्व्याय॑।
घृ॒तप्र॑सत्तो॒ असु॑रः सु॒शेवो॑ रा॒यो ध॒र्ता ध॒रुणो॒ वस्वो॑ अ॒ग्निः ॥ १ ॥

(१) **वेधसे**=सृष्टि के निर्माता, **कवये**=क्रान्तप्रज्ञ, सर्वतत्वज्ञ, **वेद्याय**=जानने योग्य, **यशसे**=यशस्वी, **पूर्व्याय**=सृष्टि से पूर्वभावी 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' अर्थात् कभी न बननेवाले, सदा से वर्तमान प्रभु के लिये **गिरम्**=स्तुतिवाणियों को **प्रभरे**=प्रकर्षेण धारण करता हूँ। उस प्रभु का सतत स्मरण करता हूँ। सर्वज्ञ होने से उन प्रभु की यह सृष्टि पूर्ण है। इसमें हमें प्रभु को जानने का प्रयत्न करना है। प्रभु के ज्ञान के होने पर ही यह भक्ति पूर्ण होती है। (२) ये प्रभु **घृतप्रसत्तः**=ज्ञानदीप्ति से निर्मल होते हैं। प्रभु 'देदीप्यमान ज्ञान' हैं सो पूर्ण निर्मल हैं, हम भी प्रभु को इस ज्ञानदीप्ति से ही देख सकेंगे। **सुशेवः**=वे प्रभु उत्तम कल्याण करनेवाले हैं। इस कल्याण को प्राप्त कराने के लिये ही **असुरः**=(असून् राति) हमारे में प्राणशक्ति का संचार करते हैं। कल्याण को प्राप्त कराने के लिये ही **रायः धर्ता**=जीवन-यात्रा के लिये आवश्यक धनों के वे धारण करनेवाले हैं। धनों के ही क्या, **वस्वः**=निवास के लिये आवश्यक सब वसुओं के **धरुणः**=धारण करनेवाले हैं। इस प्रकार **अग्निः**=हमें जीवन-यात्रा में आगे और आगे ले-चल रहे हैं।

भावार्थ—वे सृष्टि निर्माता प्रभु ही वेद्य हैं। उन्हीं का हम स्तवन करें। वे ही सब धनों व निवास के लिये आवश्यक पदार्थों के प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—धरुण आङ्गिरसः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

ऋत-यज्ञ-सत्संग

ऋतेन॑ ऋ॒तं ध॒रुणं॑ धारयन्त य॒ज्ञस्य॑ शा॒के प॑र॒मे व्यो॑मन्।
दि॒वो धर्म॒न्ध॒रुणे॑ से॒दुषो॒ नॄञ्जा॒तैरजा॑ताँ अ॒भि ये न॑न॒क्षुः ॥ २ ॥

(१) **ऋतेन**=ऋत के द्वारा, अपने अन्दर ऋत के धारण के द्वारा सब कार्यों को नियमित गति से करने के द्वारा, **परमे व्योमन्**=उत्कृष्ट हृदयाकाश में **यज्ञस्य शाके**=यज्ञ के शक्तिशाली कर्मों के होने पर **ऋतम्**=उस सत्यस्वरूप **धरुणम्**=सबके धारक प्रभु को **धारयन्त**=धारण करते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि हम (क) ऋत का पालन करें, (ख) यज्ञात्मक कर्मों से भोगवृत्ति से ऊपर उठने के द्वारा, हम अपने को शक्तिशाली बनायें। वे प्रभु 'ऋत' हैं, सो ऋत के द्वारा प्राप्त होते हैं। वे 'धरुण' हैं, सो लोक धारण के हेतुभूत यज्ञात्मक कर्मों से प्राप्त होते हैं। (२) प्रभु को धारण वे करते हैं **ये**=जो कि **नॄन्**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोगों की **अभि**=ओर **ननक्षुः**=प्राप्त होते हैं। उनके संग में बैठते हैं जो कि **दिवः धरुणे**=स्वर्ग के धारक **धर्मन्**=यज्ञात्मक (धारणात्मक) कर्मों से **सेदुषः**=स्थित होते हैं, तथा **जातैः**=शक्तियों के प्रादुर्भावों से **अजातान्**=जन्म-मरण चक्र से ऊपर उठनेवाले हैं, जीवन्मुक्त हैं। इन लोगों का संग हमारे जीवनों को पवित्र बनाता है और हम प्रभु को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के तीन मुख्य साधन हैं—(क) ऋत का पालन, सब कार्यों को नियमितरूप से करना, (ख) यज्ञात्मक कर्मों में लगे रहने के द्वारा शक्ति को स्थिर रखना, (ग) उत्तम पुरुषों के संग में रहना।

ऋषिः—धरुण आङ्गिरसः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

पाप से पृथक्

अं॒हो॒युव॑स्त॒न्व॑स्तन्वते॒ वि वयो॑ म॒हद्दु॒ष्टरं॒ पू॒र्व्याय॑।
स सं॒वतो॒ नव॑जातस्तुतुर्या॒त्सिंहं न क्रु॒द्धम॒भित॒ः परि॑ ष्ठुः ॥ ३ ॥

(१) **पूर्व्याय**=उस सृष्टि के पूर्व होनेवाले, कभी न बननेवाले, सदा वर्तमान प्रभु की प्राप्ति के लिये **अंहोयुवः**=पापों से अपने को पृथक् करनेवाले लोग **तन्वः**=शरीर के **महत्**=महान् **दुष्टरम्**=शत्रुओं से अजेय **वयः**=(strength) शक्ति को **वितन्वते**=विस्तृत करते हैं। शक्ति प्राप्ति के द्वारा ही प्रभु की प्राप्ति होती है 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'। पापों में फँस जाने से ही शक्ति का ह्रास होता है। पापवृत्ति को अपने से दूर करने से शक्ति का संग्रह होता है और तभी प्रभु की प्राप्ति होती है। (२) **सः**=वह प्रभु को प्राप्त होनेवाला व्यक्ति **नवजातः**=नवीन अथवा स्तुत्य जीवनवाला बना हुआ **संवतः**=संगत शत्रुओं को, समकाम बनाकर आनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं को **तुतुर्यात्**=हिंसित करता है। ये शत्रु इसको **परि**=(वर्जयित्वा) छोड़कर इस प्रकार दूर **स्थुः**=स्थित होते हैं, **न**=जैसे कि **क्रुद्धं सिंहं अभितः**=क्रुद्ध शेर के चारों ओर दूर भागकर मृग स्थित होते हैं। शेर से भयभीत होकर मृग दूर चले जाते हैं, इसी प्रकार प्रभु प्राप्त व्यक्ति से वासनाएं दूर भाग जाती हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये निष्पाप बनकर शक्ति का संग्रह करना आवश्यक है। इस प्रभु प्राप्त व्यक्ति से वासनाएँ दूर भाग जाती हैं।

सूचना—'संवतः' शब्द का अर्थ आचार्य 'संभजमानः' करते हैं। उन्होंने 'वन संभक्तौ' से इस

शब्द को बनाया है। तब अर्थ इस प्रकार होगा 'प्रभु का सेवन करता हुआ, स्तुत्य जीवनवाला यह व्यक्ति वासनाओं को तैर जाता है'।

ऋषिः—**धरुण आङ्गिरसः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

माता के समान (प्रभु)

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि॥ ४॥

(१) **पप्रथानः**=सर्वत्र विस्तृत होते हुए आप **माता इव**=माता के समान **यद्**=जब **जनं जनम्**=प्रत्येक व्यक्ति को **भरसे**=भरण करते हैं, तो आप सबके **धायसे**=धारण के लिये होते हैं, **च**=और **चक्षसे**=देखने के लिये होते हैं, सबका ध्यान करते हैं। (२) **यद्दधानः**=जब आप सब प्राणियों का धारण करते हैं तो **वयः वयः**=प्रत्येक अन्न को **जरसे**=आप ही जीर्ण (पचा हुआ) करते हैं 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्'। आपके द्वारा ही अन्न के पाचन की व्यवस्था होती है और हमारे जीवनों का धारण होता है। (२) हे प्रभो! आप ही **विषुरूपः**=विविध रूपोंवाले होते हुए **त्मना**=स्वयं **परिजिगासि**=चारों ओर प्राप्त होते हैं। सर्वत्र आपकी ही विभूति दृष्टिगोचर होती है। सूर्य में प्रभा के रूप से, अग्नि में तेज के रूप से, जल में रस, पृथिवी में गन्ध तथा बलवानों में बल के रूप से आप ही विद्यमान हो रहे हैं। सम्पूर्ण जीवन आपके ही कारण है।

भावार्थ—प्रभु ही माता की तरह सब प्राणियों का धारण करते हैं। प्रभु ही हमारे धारण के लिये अन्न का पाचन करते हैं। विविध रूपों से सर्वत्र प्रभु ही प्राप्त हैं। क्या सूर्यादि में, क्या विद्वानों व बलवानों में सर्वत्र प्रभु की ही महिमा दृष्टिगोचर होती है।

ऋषिः—**धरुण आङ्गिरसः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रशस्त अन्न व बल

वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः॥ ५॥

(१) हे **देव**=हमारे लिये सब उत्तमताओं को जीतने की कामनावाले प्रभो! **नु**=अब **ते**=आपका दिया हुआ **वाजः**=यह अन्न **शवसः अन्तम्**=बल के उत्कर्ष का **पातु**=रक्षण करे। जो बल का उत्कर्ष **उरुम्**=विशाल है **दोघम्**=सब कामनाओं का पूरण करनेवाला है तथा **रायः धरुणम्**=धन का धारक है। प्रभु प्रदत्त अन्न हमें उत्कृष्ट बल को प्राप्त कराये, जिस बल से हम सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कर सकें। (२) हे प्रभो! **तायुः न**=एक तस्कर की तरह **पदम्**=अपने चरणों को **गुहा दधानः**=हमारी हृदय गुहा में धारण करते हुए आप, अर्थात् छिपाकर रखते हुए आप (जैसे एक चोर छिपाकर रखता है) **महः राये**=(महते धनाय सा०) महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये **चितयन्**=मार्ग को दिखलाते हुए **अत्रिम्**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठे हुए मनुष्य को **अस्पः**=प्रीणित करते हैं और भवसागर से पार ले जानेवाले होते हैं (स्पृ प्रीणनपारणयोः)।

भावार्थ—प्रभु ने जो अन्न दिये हैं वे हमें उत्कृष्ट बल को प्राप्त कराते हैं। प्रभु ने अपने को छिपाकर हमारी हृदयगुहा में रखा है। वे प्रभु महान् ऐश्वर्य के लिये हमें मार्ग दिखाते हैं और हमें काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठाकर प्रीणित करते हैं।

प्रभु से उत्कृष्ट बल व चेतना को पाकर अपना पूरण करनेवाला यह 'पूरु' बनता है। यह आत्रेय

तो है ही, काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठा हुआ। यह कहता है कि—

१६. [षोडशं सूक्तम्]

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

स्वाध्याय व पूजन (मानवे, देवायाग्रये)

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये। यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः॥ १॥

(१) हम **बृहद् वयः**=अपने इस प्रवृद्ध व विशाल जीवन को **हि**=निश्चय से **भानवे**=उस ज्ञान की दीप्तिवाले प्रभु के लिये अर्पित करें। स्वयं भी प्रभु की तरह ही ज्ञानदीप्त बनने का प्रयत्न करें। इसी से जीवन दीर्घ व प्रवृद्ध बनेगा। (२) हे जीव! तू ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करने के साथ **देवाय**=उस दिव्य गुणों के पुञ्ज सर्वाग्रणी प्रभु के लिये **अर्चा**=अर्चना कर, तू प्रभु की पूजावाला बन। यह प्रभु पूजन तुझे भी दिव्यगुणोंवाला व प्रगतिशील बनायेगा। (३) तू उस प्रभु का पूजन कर **यम्**=जिनको **मित्रं न**=मित्र के समान **मर्तासः**=मनुष्य **प्रशस्तिभिः**=प्रशंसनों व स्तुतियों के द्वारा **पुरः दधिरे**=अपने सामने स्थापित करते हैं। प्रभु को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं। प्रभु दयालु हैं, सो हमने भी दया की वृत्तिवाला बनना है। वे न्यायकारी हैं, हमें भी न्यायप्रिय होना है। इस प्रकार प्रभु का ही छोटा रूप बनने का प्रयत्न करना है।

भावार्थ—हम अपने जीवन को ज्ञानदीप्ति के लिये लगायें। प्रभु पूजन के द्वारा दिव्य गुणों को धारण करते हुए आगे बढ़ें। प्रभु को ही अपना लक्ष्य बनायें।

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ज्ञान-ज्योति व बाहुबल

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः। वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति॥ २॥

(१) **सः अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु! **जनानाम्**=लोगों के लिये **द्युभिः**=ज्ञान-ज्योतियों के साथ **बाह्वोः**=भुजाओं के **दक्षस्य**=बल को **होता**=देनेवाले हैं। हमें ज्ञान व शक्ति प्रभु कृपा से ही प्राप्त होती है। प्रभु कृपा के पात्र वे ही बनते हैं, जो कि 'जन' बनें, अपनी शक्तियों के विकास के लिये यत्नशील हों। (२) वे प्रभु **आनुषक्**=निरन्तर **हव्यम्**=हव्य पदार्थों को **ऋण्वति**=देते हैं (प्रयच्छति)। तथा **भगः न**=ऐश्वर्यशाली के समान **वारम्**=सब वरणीय धनों के देनेवाले हैं। वस्तुतः भुजाओं के बल को देकर वे हमें इस योग्य बना देते हैं कि हम वरणीय धनों का सञ्चय कर सकें तथा ज्ञान को देकर वे हमें इन धनों को हव्य के रूप में प्रयोग करना सिखाते हैं। शक्ति से प्राप्त धन को ज्ञान के कारण हम यज्ञशेष के रूप में ही सेवन करते हैं। धन हमारे यज्ञों के लिये हो जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान देते हैं, शक्ति देते हैं। हम शक्ति से वरणीय धनों का अर्जन करते हैं और ज्ञान से यज्ञों में उनका विनियोग करते हैं।

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

स्तोमे सख्ये च

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः॥ ३॥

(१) हम **अस्य**=इस **मघोनः**=ऐश्वर्यशाली अथवा (मघवतः=मखवतः) महान् यज्ञशाली (यज्ञरूप) प्रभु के **स्तोमे**=स्तुति में स्थित हों। **वृद्धशोचिषः**=अत्यन्त बढ़ी हुई दीप्तिवाले प्रभु की

सख्ये=मित्रता में हों। (२) **यस्मिन् तुविष्वणि**=जिस महान् शब्दोंवाले **अर्ये**=ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभु में **विश्वाः**=सब प्रजाएँ **शुष्मम्**=शत्रु शोषक बल को **सं आदधुः**=सम्यक् धारण करती हैं। प्रभु की उपासना से इस शुष्म की प्राप्ति होती है। इस शुष्म की प्राप्ति के लिये हम भी महान् शब्दोंवाले, खूब स्वाध्यायवाले व स्वामी (अर्य) अपनी इन्द्रियों के अधिष्ठाता बनें।

भावार्थ—हम प्रभु के स्तवन में व प्रभु की मित्रता में चलें। वे प्रभु महान् शब्दोंवाले हैं, अर्य हैं (स्वामी हैं)। उसकी उपासना में स्थित होकर हम शत्रु शोषक बल को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'सुवीर्य के दाता' प्रभु

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना। तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४ ॥

(१) हे **अग्ने**=प्रभो! **अधा**=अब **हि**=ही **एषाम्**=इन उपासकों के **सुवीर्यस्य**=उत्तम शक्ति के **मंहना**=(मंहनायै भव) दान के लिये आप होइये। प्रभु की उपासना से उपासक प्रभु के बल से सम्पन्न होता है। (२) **यह्वं न**=महान् सूर्य के समान **श्रवः**=सब से श्रवणीय ('आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्', 'ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः') **तम्**=उस प्रभु के **रोदसी**=ये द्यावापृथिवी **परि बभूवतुः**=परिग्रह करनेवाले होते हैं (परिगृह्णीतः)। उस प्रभु के आश्रय से ही ये द्यावापृथिवी स्थित हैं।

भावार्थ—प्रभु उपासक को सुवीर्य प्राप्त कराते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उस प्रभु का ही परिग्रह करता है, उसी के आधार से स्थित है।

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्तवन व संग्रामविजय

नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **नु**=निश्चय से **नः**=हमारे लिये **एहि**=प्राप्त होइये। **गृणानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **वार्यम्**=वरणीय धनों को **आभर**=प्राप्त कराइये। (२) **ये**=जो **वयम्**=(वेञ् तन्तुसन्ताने) कर्मतन्तु का विस्तार करनेवाले हैं, **च**=और ये **सूरयः**=जो ज्ञानी हैं, वे **स्वस्ति धामहे**=कल्याणकारक कर्मों का ही धारण करते हैं। आप **सचा एधि**=हमारे साथ होइये, **उत**=और **पृत्सु**=संग्रामों में **नः वृधे**=हमारे वर्धन के लिये होइये। वस्तुतः इन जीवन-संग्रामों में आपने ही हमें विजय प्राप्त करानी है।

भावार्थ—प्रभु ही वरणीय धनों को व संग्रामों में विजयों को प्राप्त कराते हैं। सो हम प्रभु का ही स्तवन करें और कल्याणकारक शुभ कर्मों का धारण करें। शुभ कर्मों का करना ही प्रभु का सच्चा स्तवन है।

'पूरुरात्रेय' ही अगले सूक्त में प्रार्थना करते हैं—

१७. [सप्तदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'यज्ञों के द्वारा उपास्य' यज्ञरक्षक प्रभु

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये। अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥ १ ॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **मर्त्यः**=मनुष्य **इत्था**=सचमुच **यज्ञैः**=यज्ञों के द्वारा **तव्यांसम्**=सब गुणों के दृष्टिकोण से प्रवृद्ध गुणों की चरमसीमा के रूप में आपको **ऊतये**=रक्षण के लिये (आ ह्वयति)=पुकारता है। वस्तुतः आपके रक्षण से ही उसके यज्ञपूर्ण होते हैं। (२) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **पूरुः**=पालनात्मक व पूरणात्मक कर्मों में तत्पर मनुष्य (पृ पालनपूरणयोः) **स्वध्वरे**=उत्तम यज्ञों के **कृते**=करने पर **अवसे**=रक्षण के लिये **ईडीत**=आपका पूजन करता है। यह आपका पूजन ही उसे बल देता है, जिससे कि वह यज्ञों को कर पाता है।

भावार्थ—यज्ञों के द्वारा प्रभु का उपासन होता है। यज्ञों के रक्षण के लिये यह 'पूरु' प्रभु को पुकारता है।

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

आसा-मनीषया (तज्जपः, तदर्थभावनम्)

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे। तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥ २ ॥

(१) हे **स्वयशस्तरः**=अपने कर्मों द्वारा यशवाले जीव! तू **विधर्मन्**=विशिष्टरूप से धारणात्मक यज्ञादि कर्मों में **आसा**=अपने मुख से, वाणी से **हि**=निश्चयपूर्वक **अस्य मन्यसे**=इस प्रभु का स्तवन करता है। इसी के नामों का उच्चारण करता है (तज्जपः)। (२) **तम्**=उस **नाकम्**=सुखस्वरूप (दुःखरहित) **चित्रशोचिषम्**=अद्भुत दीप्तिवाले **मन्द्रम्**=आनन्दमय **परः**=सब अन्धकारों से परे विद्यमान (तमसः परस्तात्) प्रभु को **मनीषया**=बुद्धि से **मन्यसे**=मनन करता है, उसका चिन्तन करता है (तदर्थ भावनम्)। मुख से बोले गये नामों का बुद्धि से अर्थभावन करनेवाला होता है।

भावार्थ—उत्तम यज्ञादि कर्मों में प्रभु के नामों का ही मुख से उच्चारण करें। उन्हीं नामों के बुद्धि द्वारा अर्थभावन से उस आनन्दस्वरूप प्रभु का ही चिन्तन करें।

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

तुजा, गिरा (सामर्थ्य-ज्ञान)

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा। दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३ ॥

(१) **अस्य**=इस अग्नि नामक प्रभु की **अर्चिषा**=ज्ञानज्वाला व दीप्ति से ही **वै**=निश्चयपूर्वक **असौ**=वह जो जीव है वह **उ**=भी **तुजा**=शक्ति से जगद् रक्षण समर्थ बल से तथा **गिरा**=ज्ञान की वाणियों से **आयुक्तः**=युक्त होता है। (२) **दिवः न**=सूर्य के समान **यस्य रेतसा**=जिसकी शक्ति से **बृहत्**=बहुत अधिक **अर्चयः**=दीप्तियाँ **शोचन्ति**=चमकती हैं। प्रकृति के सब पिण्डों में उस प्रभु की ही दीप्ति है जिस जीव को यह दीप्ति प्राप्त होती है वह शक्ति व ज्ञान से चमक उठता है। जिस प्रकृति पिण्ड में यह पहुँचती है, वह दिव्य बन जाता है। संक्षेप में 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'।

भावार्थ—प्रभु की दीप्ति उपासक को सामर्थ्य व ज्ञान से युक्त करती है। प्रकृति पिण्डों को दिव्य बनाती है।

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'विचेताः दस्म' प्रभु का आराधन

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ। अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥

(१) **विचेतसः**=विशिष्ट ज्ञानवाले, सर्वज्ञ, निरतिशय ज्ञानवाले, **दस्मस्य**=दर्शनीय व सब दुःखों के नाशक **अस्य**=इस प्रभु के **क्रत्वा**=सामर्थ्य से, प्रभु द्वारा प्राप्त शक्ति से उपासक लोग

रथे=इस शरीर-रथ में **वसु**=सब वसुओं को, धनों को 'तेज, वीर्य, बल, ओज, ज्ञान व सहस्' रूप सम्पत्ति को **आ** (दधति)=धारण करते हैं। 'तेजोऽसि तेजो मयि धेहि०'। ये प्रभु सर्वातिशायी ज्ञानवाले हैं, इस ज्ञान के द्वारा ही वे हमारे दु:खों को दूर करते हैं। अविद्या ही तो सब क्लेशों की जननी है। (२) **अधा**=अब सब वसुओं को प्राप्त करानेवाले वे प्रभु **हव्यः**=पुकारने योग्य होते हैं, आराधनीय होते हैं। प्रभु से ही सब याचना की जाती है। वे **अग्निः**=हमारी सब प्रकार उन्नतियों के साधक प्रभु **विश्वासु विक्षु**=सब प्रजाओं में **प्रशस्यते**=प्रशंसनीय होते हैं। सब प्रभु का ही शंसन व स्तवन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्रदत्त सामर्थ्य से ही सब वसुओं की प्राप्ति होती है। सो प्रभु ही सदा शंसनीय व आराधनीय होते हैं।

ऋषिः—**पूरुरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

शक्ति-प्राप्ति व संग्राम विजय

नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५ ॥

(१) **नु**=अब **नः सूरयः**=हमारे में से विद्वान्-ज्ञानी-पुरुष **इत् हि**=निश्चय से **वार्यम्**=वरणीय धनों को **आसा**=(आस्येन) स्तुति के द्वारा अथवा **आसा** (आस् उपवेशने)=उपासना के द्वारा **सचन्त**=सेवन करते हैं। स्तुति व उपासना उन ज्ञानियों के लिये सब वरणीय धनों को देनेवाली होती है। (२) **ऊर्जोनपात्**=शक्ति को न गिरने देनेवाले प्रभो! **अभिष्टये**=हमें शत्रुओं पर आक्रमण के लिये **पाहि**=रक्षित करिये और **शग्धि**=शक्तिशाली बनाइये। **उत**=और इस प्रकार **स्वस्तये**=कल्याण के लिये तथा **पृत्सु**=संग्रामों में **नः वृधे**=हमारे वर्धन के लिये **एधि**=होइये।

भावार्थ—प्रभु ही सब वरणीय धनों को देते हैं। प्रभु ही शक्ति को देकर हमें संग्रामों में विजयी बनाते हैं।

प्रभु की उपासना से 'शक्ति व ज्ञान' दोनों का विस्तार करनेवाला यह 'द्वि-त' (द्वौ तनोति) बनता है। अपने इन्द्रियाश्वों को (शक्ति से कर्मेन्द्रियों को, ज्ञान से ज्ञानेन्द्रियों को) शुद्ध बनानेवाला यह 'मृक्त-वाहा' कहलाता है। परिणामत: 'आत्रेय' तो होता ही है, 'काम-क्रोध-लोभ' से परे। यह स्तवन करता हुआ कहता है—

१८. [अष्टादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्रभु पूजन से दिन का प्रारम्भ

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः । विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥

(१) हे **विशः**=प्रजाओ! **प्रातः**=दिन के प्रारम्भ में यह **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **स्तवेत**=तुम्हारे से स्तुति किया जाये। जो प्रभु **पुरुप्रियः**=उत्तमोत्तम वरणीय (हव्य) पदार्थों के द्वारा हमें प्रीणित करनेवाले हैं। **अतिथिः**=(अत सातत्यगमने) हमें सुन्दर प्रेरणाओं को देने के लिये निरन्तर प्राप्त होनेवाले हैं। (२) ये प्रभु वे हैं **यः**=जो कि **अमर्त्यः**=अमरणधर्मा होते हुए **मर्तेषु**=मनुष्यों में **विश्वानि**=सब **हव्या**=हव्य पदार्थों को **रण्यति**=(कामयते) चाहते हैं। हमें प्रभु सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं, यदि हम अपने को उनका पात्र बनाते हैं।

भावार्थ—हम सर्वप्रथम प्रभु का ही स्तवन करें। प्रभु हमारे अतिथि हैं, हमारे लिये सब हव्य

पदार्थों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'द्वित वृक्तवाहस्' को शक्ति की प्राप्ति

द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना। इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥ २ ॥

(१) **द्विताय**=ज्ञान व शक्ति का विस्तार करनेवाले अथवा काम-क्रोध को वश में करनेवाले (द्वौ तरति, तौ हि अस्यपरिवन्धिनौ) किनके लिये, जो कि **मृक्तवाहसे**=इन्द्रियाश्वों को शुद्ध करनेवाला हुआ है, उसके लिये हे प्रभो! आप **स्वस्य दक्षस्य**=अपने बल के **मंहना**=देने के लिये होइये (दानाय भव सा०)। 'द्वित मृक्तवाहस्' को आप अपनी शक्ति दीजिये। यह 'द्वित मृक्तवाहस्' प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न बनता है। (२) हे **अमर्त्य**=अमरणधर्मा प्रभो! **ते स स्तोता**=आपका वह स्तोता **चित्**=निश्चय से **आनुषक्**=निरन्तर **इन्दुम्**=शक्ति को देनेवाले सोम को **धत्ते**=धारण करता है। प्रभु-स्तवन से वासनाओं का आक्रमण नहीं होता और इस प्रकार सोम के रक्षण का संभव होता है। यह सुरक्षित सोम ही वस्तुतः शक्ति-सम्पन्न बनाता है।

भावार्थ—काम-क्रोध को तैरनेवाले शुद्धेन्द्रिय पुरुष को प्रभु की शक्ति प्राप्त होती है। यह प्रभु का स्तोता सोम-रक्षण के द्वारा शक्तिशाली बनता है।

ऋषिः—**द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'दीर्घ-पवित्र-दीप्त' जीवन

तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम्। अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३ ॥

(१) हे प्रभो! **मघोनाम्**=(मघः मख) यज्ञशील पुरुषों के **दीर्घायुशोचिषम्**=दीर्घ जीवन को पवित्र व दीप्त करनेवाले **तं वः** ('युष्मान्'-बहुवचनं आदरार्थं त्वाम्)=उन आपको **गिरा**=इन स्तुतिवाणियों के द्वारा **हुवे**=पुकारता हूँ। हे प्रभो! आपकी आराधना करके मैं भी उन यज्ञशील पुरुषों में होने का प्रयत्न करता हूँ, जिनके कि जीवन को आप 'दीर्घ-पवित्र व दीप्त' बनाते हैं। (२) हे **अश्वदावन्**=इन्द्रियाश्वों को देने व उनका शोधन करनेवाले प्रभो! (दा-दाने, दैप् शोधने) मैं उन यज्ञशील पुरुषों में होने का प्रयत्न करता हूँ **येषाम्**=जिनका **अरिष्टः रथः**=न हिंसित होनेवाला शरीर-रथ रोगों से न आक्रान्त होनेवाला यह शरीर, **वि ईयते**=विशिष्ट रूप से मार्ग पर गतिवाला होता है। इनमें गिना जाने पर मेरा भी शरीर दीर्घ, पवित्र व दीप्त बनेगा ही।

भावार्थ—प्रभु यज्ञशील पुरुषों के जीवन को दीर्घ, पवित्र व दीप्त बनाते हैं।

ऋषिः—**द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ज्ञान-स्तुति-यज्ञ=पवित्रता

चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये। स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

(१) **येषु**=जिनमें **वा**=निश्चय से **चित्रा**=अद्भुत **दीधितिः**=ज्ञानदीप्ति होती है, **ये**=जो **आसन्**=अपने मुखों में **उक्था**=स्तोत्रों को **पान्ति**=रक्षित करते हैं। इन पुरुषों का **स्वर्णरे**=यज्ञों में (स्वः नृ नये) **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदयरूप आसन **स्तीर्णम्**=बिछाया जाता है। मस्तिष्क में ज्ञान और हृदय में स्तुति के होने पर ये हाथों से यज्ञों को करते हुए हृदय को वासनाशून्य (=बर्हिस्) बनाते हैं। (२) ये लोग **परि**=सर्वतः **श्रवांसि**=(fame, glory) यशों को **दधिरे**=धारण करते हैं। ऐसे लोग सर्वत्र यशस्वी होते हैं। वस्तुतः 'मस्तिष्क में ज्ञान, मुख में प्रभु के नाम तथा हाथों में यज्ञ' ये सब चीजें मिलकर हृदय को पूर्ण पवित्र बना देती हैं। यह पवित्र हृदयासन प्रभु के आसीन

होने के योग्य होता है।

भावार्थ—'ज्ञान, स्तुति व यज्ञ' ये सब मिलकर हमारे हृदय को पूर्ण पवित्र बनाते हैं।

सूचना—यहाँ यज्ञ को 'स्वर्णः' कहा है। यज्ञ स्वर्ग का साधन है 'स्वर्गकामो यजेत'। यज्ञों से हमारे घर स्वर्गोपम बनते हैं। 'एष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्'=यज्ञ सब कामनाओं को पूर्ण करता है।

ऋषिः—**द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

पचास वर्ष पर्यन्त माता आदि के संरक्षण में

ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम्॥ ५॥

(१) वैदिक संस्कृति में पच्चीस वर्ष तक 'माता, पिता व आचार्य' देव होते हैं, ये एक बालक को चरित्रवान्, सदाचारी व शिक्षित करके एक सुन्दर युवक बना देते हैं। अब पचास वर्ष तक समय-समय पर आनेवाले अतिथि उस युवक के जीवन को प्रशस्त बनाये रखने का ध्यान करते हैं। इस आश्रम में ये अतिथि ही देव होते हैं। पचास वर्ष के बाद एक वनस्थ प्रभु को ही अपना देव बनाता है। (२) सो कहते हैं कि **ये**=जिन 'माता, पिता, आचार्य व अतिथि' रूप देवों ने **मे**=मेरे लिये **सधस्तुति**=प्रभु के स्तवन के साथ **पञ्चाशतम्**=पचास वर्ष पर्यन्त **अश्वानां ददुः**=इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराया। हे **अग्ने**=अग्रणी **अमृत**=अविनाशी प्रभो! उन **मघोनां नृणाम्**=यज्ञशील पुरुषों के **श्रवः**=ज्ञान को **द्युमत्**=ज्योतिर्मय, **बृहत्**=वृद्धिवाला, **महि**=महान् व **नृवत्**=पौरुषवाला **कृधि**=करिये। वस्तुतः इन यज्ञशील पुरुषों ने ही हमारे इन्द्रियाश्वों को प्रशस्त बनाना है। पचास वर्ष तक इनके संरक्षण में ही हम जीवन के मार्ग पर आगे और आगे बढ़ते हैं तथा भटकते नहीं। ये हमें प्रभु-स्तवन की ओर प्रवृत्त करते हैं। प्रभु-स्तवन ही हमारे इन्द्रियाश्वों को पवित्र करता है।

भावार्थ—माता, पिता, आचार्य व अतिथि पचास वर्ष पर्यन्त हमारे जीवनों को उत्तम बनाने के लिये यत्नशील होते हैं। प्रभु इनके ज्ञान का वर्धन करें, ताकि ये अपने कार्य को अधिक सौन्दर्य से कर सकें।

गत सूक्त के अन्तिम मन्त्र के अनुसार माता, पिता, आचार्य व अतिथियों के उत्तम संरक्षण को प्राप्त करनेवाला यह व्यक्ति जीवन में ठीक ही चुनाव करता है। श्रेय व प्रेय में से श्रेय का ही वरण करता है। 'कृणोति' ठीक चुनाव करता है सो 'वव्रि' कहलाता है। इस ठीक चुनाव के कारण इसका रूप उत्तम बना रहता है, इसलिए भी यह 'वव्रि' कहलाता है (वव्रि=रूपम् नि० ३।८) यह वव्रि 'आत्रेय' है, तीनों काम-क्रोध व लोभ की वृत्तियों से दूर। इसका जीवन अगले मन्त्र में चित्रित हुआ है—

१९. [एकोनविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वव्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तरोत्तर उत्कृष्ट अवस्था

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत। उपस्थे मातुर्वि चष्टे॥ १॥

(१) **वव्रेः**=ठीक चुनाव करनेवाले पुरुष की **अवस्थाः**=अवस्था में **अभि**=लक्ष्य का ध्यान करते हुए **प्रजायन्ते**=प्रकृष्ट प्रादुर्भाववाली होती हैं। पाँच वर्ष तक इसका जीवन चरित्र की शिक्षा का ग्रहण करता हुआ चरित्रवान् बन जाता है। अब यह आठ वर्ष तक शिष्टाचार का पाठ पढ़ता

है और पच्चीस वर्ष तक खूब विद्याभ्यासवाला होता है। इस प्रकार यह **वव्रिः**=उत्तम रूपवाला (वव्रि=रूप) **प्र चिकेत**=खूब ही ज्ञानवाला समझदार बन जाता है। (२) यह गृहस्थ में प्रवेश करने पर भी **मातुः**=वेदमाता की **उपस्थे**=गोद में रहता हुआ, नित्य स्वाध्याय को करता हुआ **विचष्टे**=विशिष्ट ज्ञानवाला बनता है, सब वस्तुओं को ठीक रूप में ही देखता है।

भावार्थ—हम 'वव्रि' बनकर उत्तरोत्तर उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त करें। सदा वेदमाता की गोद में रहते हुए तत्त्वदृष्टि को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वव्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सद्गृहस्थ

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति। आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥ २ ॥

(१) गृहस्थ में आने पर गतमन्त्र के वव्रि **विचितयन्तः**=प्रभु के चिन्तन से व वेदमाता की उपासना से (स्वाध्याय से) विशिष्ट चेतनावाले होते हुए ये **जुहुरे**=सदा अग्निहोत्र करनेवाले होते हैं 'जरामर्यं वा सत्रं यदग्निहोत्रम्'। इस प्रकार ध्यान व यज्ञों में प्रवृत्त ये पुरुष **अनिमिषम्**=बिना किसी प्रमाद के निरन्तर **नृम्णम्**=बल का **पान्ति**=रक्षण करते हैं। (२) इस प्रकार बल का रक्षण करते हुए ये **दृढां पुरम्**=बड़े दृढ़ इस शरीर में **आविविशुः**=प्रविष्ट होते हैं। अपने शरीर को बड़ा दृढ़ बनाये रखते हैं। 'अश्मा भवतु नस्तनूः'। इनका शरीर रोगों के लिये एक दुर्भेद्य दुर्ग के समान होता है, रोग उसमें प्रविष्ट नहीं हो पाते।

भावार्थ—हम ध्यान करें, यज्ञशील हों। अपने बल का रक्षण करें, शरीर को रोगों के लिये दुर्भेद्य दुर्ग बनायें।

ऋषिः—**वव्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'निष्कग्रीव-बृहदुक्थ-वाजयु'

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः। निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥ ३ ॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित **श्वैत्रेयस्य**=(श्वित्रं=शुद्ध हृदयान्तरिक्ष) शुद्ध हृदयान्तरिक्षवाले पुरुष के **जन्तवः**=सन्तान (जायन्ते इति) **द्युमत्**=ज्योतिर्मय होते हुए **आवर्धन्त**=सर्वथा वृद्धि को प्राप्त होते हैं। **कृष्टयः**=ये खूब ही श्रमशील व ज्ञानी होते हैं (कृष्टिः=a learned man)। वस्तुतः माता-पिता के संस्कारों को लेकर ही तो सन्तान होते हैं। (२) यह **श्वैत्रेय** (=शुद्ध हृदयवाला पुरुष)=स्वयं भी **निष्कग्रीवः**=ग्रीवा में स्वर्णहार धारण किये हुए, स्वर्ण हिरण्य=ज्ञान-विज्ञान से अलंकृत गर्दनवाला, **बृहद् उक्थः**=खूब ही स्तोत्रोंवाला **च**=तथा **एना मध्वा**=इस सोम के द्वारा (वीर्यशक्ति के द्वारा) **वाजयुः**=शक्ति को अपने साथ जोड़ने की कामनावाला होता है। यह श्वैत्रेय ज्ञानों को गर्दन में धारण किये हुए, स्तुतिशील व शक्ति-सम्पन्न होता है। तभी तो इसके सन्तान भी ज्योतिर्मय व श्रमशील होते हैं।

भावार्थ—जब माता-पिता 'श्वैत्रेय' (शुद्ध जीवनवाले) होते हैं तो उनके सन्तान ज्योतिर्मय श्रमशील होते हैं। हम अपने जीवन को ज्ञान शक्ति व स्तुति से सम्पन्न बनायें।

ऋषिः—**वव्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

माता-पिता के निरीक्षण में

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा। घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ४ ॥

(१) **जाम्योः सचा**=जन्म देनेवाले माता-पिता के साथ उनके सम्पर्क में रहता हुआ मैं

प्रियम्=प्रीणित करनेवाले **दुग्धं न**=दुग्ध के समान **काम्यम्**=चाहने योग्य ज्ञान को **अजामि**=प्राप्त होता हूँ (अज गतौ)। माता-पिता ने निरीक्षण में रहनेवाला सन्तान अवाञ्छनीय बातों को नहीं सीखता। वह कमनीय ज्ञान को ही प्राप्त करता है। (२) **घर्मः न**=यह (sun-shine) सूर्य के प्रकाश के समान होता है, ज्ञान से चमकता है। **वाजजठरः**=शक्ति को अपने जठर में लिये हुए होता है, शक्तिशाली होता है। **अदब्धः**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं से हिंसित नहीं होता। **शश्वतः**=प्लुतगतिवाला होता है तथा **दभः**=शत्रुओं का हिंसक होता है। वस्तुतः यह निरन्तर क्रियाशीलता ही इसे शत्रुओं का संहार करने में समर्थ करती है।

भावार्थ—माता-पिता के निरीक्षण में रहनेवाला सन्तान उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करता है, प्रशस्त जीवनवाला होता है।

ऋषिः—**वव्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

भस्मना वायुना

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥ ५ ॥

(१) हे **रश्मे**=ज्ञानकिरणस्वरूप प्रभो! **भस्मना**=ज्ञानदीप्ति से तथा **वायुना**=क्रियाशीलता से **संवेविदानः**=सम्यग् ज्ञायमान होते हुए आप **क्रीडन्**=इस संसार की क्रीड़ा को करते हुए **नः आभुवः**=हमारे अभिमुख होइये। हम अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिये निरन्तर स्वाध्यायवाले हों। कभी भी आलस्य को जीवन में स्थान न दें। इस प्रकार आपके (प्रभु के) प्रकाश को देखनेवाले बनें तथा संसार की सब घटनाओं को प्रभु की लीला के रूप में देखें। (२) प्रभु की क्रीड़ा के उस रूप में संसार को देखने पर **ताः**=वे **अस्य**=इस प्रभु की **वक्षणेस्थाः**=अग्नि में स्थित (वक्षणं=in fire) **सुसंशिताः**=अतितीक्ष्ण **धृषजः**=शत्रुओं की धर्षिका **वक्ष्यः**=ज्वालाएँ भी **नतिग्माः**=इसके लिये अतीक्ष्ण **सन्**=हों। इसे अग्नि की ज्वालाओं में भी धर्मरक्षणार्थ जलना पड़े, तो यह उन ज्वालाओं से संतप्त नहीं होता, सहर्ष उनमें अपने शरीर को भस्म होने देता है।

भावार्थ—हम ज्ञानदीप्ति व क्रियाशीलता से प्रभु की लीला को देखनेवाले बनें। हमारे लिये अग्नि की ज्वालाएँ भी शान्त हों। इन्हें भी हँसते-हँसते सह सकें। इनमें भी प्रभु की क्रीड़ा का अनुभव करें।

ये व्यक्ति सदा सात्त्विक अन्न का प्रयोग करते हुए चित्तवृत्ति को राजस नहीं बनने देते। सो 'प्रयस्वन्तः'=प्रकृष्ट भोजनवाले कहलाते हैं, ये **अत्रयः**='अत्रि' (अविद्यमानाः त्रयो यस्य) काम-क्रोध-लोभ से दूर होते हैं। ये प्रार्थना करते हैं कि—

२०. [विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रयस्वन्त आत्रेयाः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

यशस्वी दिव्य ऐश्वर्य

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम्।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ १ ॥

(१) हे **वाजसातम**=अधिक से अधिक शक्ति को देनेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **यं चित्**=जिस भी **रयिम्**=ऐश्वर्य को **मन्यसे**=मान्यता देते हैं, उत्कृष्ट समझते हैं, **तम्**=उस ऐश्वर्य को **नः**=हमारे लिये **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के साथ **पनय**=(प्रापय) प्राप्त कराइये। हम आपकी

कृपा से ज्ञान व ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले हों। (२) हमें आप उस ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये, जो कि **श्रवाय्य**=अत्यन्त यशस्वी है, हमारे यश का कारण बनता है तथा **देवत्रा आ युजम्**=देवों में सम्पर्कवाला है, हमें दिव्य गुणों की ओर ले चलता है। वह ऐश्वर्य जो हमें विलास में फँसानेवाला नहीं तथा जो हमारे अपयश का कारण नहीं बनता। उत्तम साधनों से कमाया जाने के कारण व दानादि में विनियुक्त होने के कारण वह 'श्रवाय्य' हो तथा विलास में व्ययित न होता हुआ वह 'देव युज्' हो।

भावार्थ—हे प्रभो! हमें वह धन दीजिये जो कि यशस्वी व दिव्यगुणों का प्रापक हो।

ऋषिः—**प्रयस्वन्त आत्रेयाः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

द्वेष व कुटिलता से दूर

ये अ॑ग्ने॒ नेर॒यन्ति॑ ते वृ॒द्धा उ॒ग्रस्य॒ शव॑सः। अप॒ द्वेषो॒ अप॒ ह्वरो॒ऽन्यव्र॑तस्य सश्चिरे॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **ये**=जो भी व्यक्ति **न ईरयन्ति**=(ईर् go away) धर्म के मार्ग से, गतमन्त्र में वर्णित 'श्रवाय व देवत्रा युज् रयि की प्राप्ति के मार्ग से' विचलित नहीं होते, **ते**=वे **उग्रस्य शवसः**=शत्रु विनाशक बल के दृष्टिकोण से **वृद्धाः**=बढ़े हुए होते हैं। धर्ममार्ग पर दृढ़ता से चलनेवालों का बल बढ़ता ही है। (२) ये धर्ममार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति **अन्यव्रतस्य**=वेदोपदिष्ट व्रतों से अन्य व्रतवाले, अवैदिक व्रतवाले, पुरुष के **द्वेषः अप सश्चिरे**=द्वेष को अपने से दूर करते हैं, **अप ह्वरः**=कुटिलता व हिंसा को अपने से दूर करते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! हम धर्ममार्ग पर चलते हुए अपने बल को बढ़ाएँ तथा द्वेष तथा कुटिलता से दूर हों।

ऋषिः—**प्रयस्वन्त आत्रेयाः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्रभु का वरण-प्रभु का स्तवन

होता॑रं त्वा वृणीम॒हेऽग्ने॒ दक्ष॑स्य॒ साध॑नम्। य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यं गि॒रा प्रय॑स्वन्तो हवामहे॥ ३॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **दक्षस्य साधनम्**=सब उन्नतियों के सिद्ध करनेवाले, **होतारम्**=सब साधनों के देनेवाले **त्वा**=आपको **वृणीमहे**=हम वरते हैं। प्रभु का वरण हमें शक्ति-सम्पन्न बनाता है और हमें उन्नति-पथ पर ले चलता है। प्रकृति का वरण ही हमारी अवनति व शक्ति ह्रास का कारण बनता है। (२) **प्रयस्वन्तः**=उत्तम भोजनवाले होते हुए हम सात्त्विक वृत्तिवाले बनकर, **गिरा**=स्तुति वाणियों से **यज्ञेषु**=यज्ञों में **पूर्व्यम्**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम प्रभु को **हवामहे**=पुकारते हैं। प्रभु की ही आराधना करते हैं। इस प्रभु की कृपा से ही हमारे यज्ञ पूर्ण होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का वरण करते हैं, प्रभु का ही स्तवन करते हैं। प्रभु कृपा से ही हमें शक्ति प्राप्त होती है और हमारे यज्ञ पूर्ण होते हैं।

ऋषिः—**प्रयस्वन्त आत्रेयाः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

आराधन

इ॒त्था यथा॑ त ऊ॒तये॒ सह॑सावन्दि॒वेदि॑वे।
रा॒य ऋ॒ताय॑ सुक्रतो॒ गोभिः॑ ष्याम सध॒मादो॑ वी॒रैः स्या॑म सध॒मादः॑॥ ४॥

(१) हे **सहसावन्**=शक्ति सम्पन्न प्रभो! **इत्था**=आप ऐसी कृपा करिये कि **यथा**=जिससे हम **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **ते ऊतये**=आपकी रक्षा के पात्र हों, आप से रक्षणीय हों। **राये**=हम

उस धन के लिये हों, जो कि (रा दाने) दानादि उत्तम क्रियाओं में विनियुक्त होता है। **ऋताय**=हम ऋत के लिये हों, अनृत से दूर हों। सब कार्यों को ठीक समय व ठीक स्थान पर करनेवाले हों (ऋत=right)। (२) हे **सुक्रतो**=उत्तम कर्मों व प्रज्ञानोंवाले, शक्ति सम्पन्न प्रभो! (ऋतु=यज्ञ, ज्ञान, शक्ति) हम घरों में यज्ञादि कर्मों को करते हुए, स्वाध्याय द्वारा ज्ञान को बढ़ाते हुए, तथा शक्ति-सम्पन्न होते हुए **गोभिः**=गौओं के साथ **सधमादः**=मिलकर आनन्द को प्राप्त करें तथा **वीरैः**=वीर सन्तानों के साथ **सधमादः स्याम**=मिलकर आनन्द को प्राप्त करें। हमारे घरों में गौवें हों और वीर सन्ताने हों। 'गौ' का अर्थ वेदवाणी भी है। हमारे घरों में वेदवाणी का उच्चारण हो और वीरता बनी रहे। ये ज्ञान और शक्ति हमारे जीवन को आनन्दित करें।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हम प्रभु की रक्षा के पात्र हों। धन को प्राप्त करें। जीवन को ऋतमय बनायें। हमारे घरों में गौवें हों और वीर सन्तान हों।

अगले सूक्त का ऋषि 'ससः' है (ससं इति अन्न नाम नि० २।७), प्रशस्त अन्नवाला (ससं अस्य अस्ति इति)। पिछले सूक्त के ऋषि 'प्रयस्वन्तः' से इसकी भावना मिलती जुलती ही है। उत्तम वानस्पतिक अन्नों का सेवन करता हुआ यह 'सस' आत्रेय होता है, काम-क्रोध-लोभ से दूर। यह आराधना करता है कि—

२१. [एकविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**सस आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

निधीमहि-समिधीमहि

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि। अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **मनुष्वत्**=मनु की तरह एक विचारशील पुरुष की तरह **त्वा**=आपको **निधीमहि**=अपने हृदयों में स्थापित करते हैं। **मनुष्वत्**=एक विचारशील पुरुष की तरह **समिधीमहि**=अपने हृदयों में आपको समिद्ध करते हैं। ध्यान द्वारा आपको हृदयों में स्थापित करने के लिये यत्न करते हैं तो स्वाध्याय द्वारा आपकी ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करके आपके प्रकाश को देखने का प्रयत्न करते हैं। (२) हे **अंगिरः**=हमारे अंग-प्रत्यंग में रस का संचार करनेवाले प्रभो! **मनुष्वत्**=एक विचारशील पुरुष की तरह **देवयते**=दिव्य गुणों की कामनावाले मेरे लिये **देवान् यज**=दिव्य वृत्ति के पुरुषों को आप मेरे साथ संगत करिये ताकि उनके संग से मेरे अन्दर भी दिव्य गुणों का वर्धन हो।

भावार्थ—हम ध्यान द्वारा प्रभु को हृदयों में स्थापित करें, स्वाध्याय द्वारा उनके प्रकाश को देखें। प्रभु कृपा से दिव्य पुरुषों के संग से देववृत्तिवाले बनें।

ऋषिः—**सस आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

स्रुचः-सर्पिः

त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे। स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **हि**=निश्चय से **मानुषे जने**=विचारशील पुरुष में **सुप्रीतः**=उत्तम प्रीतिवाले होते हुए **इध्यसे**=दीप्त होते हैं। विचारशील पुरुष ही अपने हृदय में प्रभु के प्रकाश को देख पाता है। (२) हे **सुजात**=उत्तम प्रादुर्भाव के कारणभूत (शोभनं जातं यस्मात्) प्रभो! **स्रुचः**=स्तुतिवाणियाँ **आनुषक्**=निरन्तर **त्वा**=आपको **यन्ति**=प्राप्त होती हैं। हम सदा आपका स्तवन करते हैं। हे **आसुते**=समन्तात् ऐश्वर्यवाले प्रभो! **सर्पिः**=(सर्पि=उदक=(रेतःकण)

यह शरीर में ही स्थित रेतःकण आपको प्राप्त होते हैं। अर्थात् शरीर में सुरक्षित हुए-हुए ये रेतःकण ज्ञानाग्नि को दीप्त करके मुझे आपका दर्शन कराते हैं।

भावार्थ—हम विचारशील बनें। हमारे मुख से स्तुतिवाणियाँ उच्चरित हों। हम रेतःकणों के रक्षण से ज्ञानाग्नि को दीप्त करके आपको देखनेवाले बनें, समन्तात् आपके ऐश्वर्य का अनुभव करें।

ऋषिः—**सप्त आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु रूप दूत की पूजा (दूत-देव)

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत। सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते॥ ३॥

(१) **विश्वे**=सब **सजोषसः**=मिलकर प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्यों का पालन करनेवाले (जुष्=प्रीति सेवनयोः) **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **त्वाम्**=आपको ही **दूतम्**=ज्ञान-संदेश को प्राप्त करानेवाला **अक्रत**=करते हैं। आपसे ही ज्ञान-सन्देश को सुनते हैं। (२) हे **कवे**=क्रान्तदर्शिन्! सर्वज्ञ प्रभो! **यज्ञेषु**=यज्ञों में, लोकहित के लिये किये जानेवाले श्रेष्ठतम कर्मों में **त्वा सपर्यन्तः**=आपका पूजन करते हुए **देवम्**=प्रकाशमय आपको **ईडते**=आराधित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही ज्ञान-सन्देश को प्राप्त करानेवाले 'दूत' हैं। प्रभु ही हमें यज्ञों में प्रेरित करनेवाले 'देव' हैं (यज्ञस्य देवम्)।

ऋषिः—**सप्त आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'ऋतस्य-ससस्य' योनिमासदः

देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः॥ ४॥

(१) **मर्त्यः**=मनुष्य **वः**=तुम सब के **देवम्**=प्रकाशक **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु को **देवयज्यया**=देवयज्ञ के द्वारा **ईडीत**=उपासित करे। यज्ञों के द्वारा ही प्रभु का उपासन होता है। (२) हे प्रभो! **समिद्धः**=ज्ञान प्राप्ति के द्वारा हृदय में समिद्ध किये गये **शुक्रः**=दीप्तिमय आप **दीदिहि**=प्रकाशित होइये। मेरे हृदय में आपका प्रकाश हो। **ऋतस्य योनिम्**=ऋत के घर में **आसदः**=आप आसीन होइये। **ससस्य योनिम्**=वानस्पतिक भोजन का सेवन करनेवाले के घर में **आसदः**=आप आसीन होइये। प्रभु का निवास वहीं होता है जहाँ सब कार्य 'ऋत' पूर्वक हों तथा जहाँ क्रूरता व हिंसा से प्राप्य भोजनों का स्थान न हो।

भावार्थ—प्रभु को हम यज्ञों द्वारा पूजित करते हैं। ऋत का पालन करते हुए, वानस्पतिक पदार्थों का सेवन करते हुए हम प्रभु को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार 'ऋत का उपासक' 'वानस्पतिक अन्नों का सेवक' यह पुरुष 'विश्वसामा' (विश्व सामयस्य) अत्यन्त शान्त स्वभाव का बनता है। आत्रेय तो होता ही है। यह प्रभु की आराधना इस प्रकार करता है—

२२. [द्वाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्वसामा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

होता-मन्द्रतमः

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे। यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि॥ १॥

(१) हे **विश्वसामन्**=काम व मस्तिष्क में 'काम-क्रोध-लोभ' के विनाश के द्वारा

शान्ति को उत्पन्न करनेवाले! तू **अत्रि-वत्**='काम-क्रोध-लोभ' से रहित पुरुष की तरह **पावकशोचिषे**=पवित्र दीप्तिवाले प्रभु के लिये **प्र अर्चा**=पूजा को करनेवाला हो। तू वासनाओं को विनष्ट करने का प्रयत्न करता हुआ प्रभु-पूजन करनेवाला बन। (२) उस प्रभु का तू पूजन कर **यः**=जो कि **अध्वरेषु**=हिंसारहित कर्मों में **ईड्यः**=उपासना के योग्य हैं। **होता**=सब हव्य पदार्थों के देनेवाले हैं और **विशि**=सब प्रजाओं में **मन्द्रतमः**=स्तुत्यतम हैं।

भावार्थ—हम काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठकर प्रभु का पूजन करें, प्रभु यज्ञों में पूज्य होते हैं, सब कुछ देनेवाले हैं, स्तुत्यतम हैं।

ऋषिः—**विश्वसामा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'ध्यान' व 'निरन्तर यज्ञ'

न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम्। प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥

(१) हे विश्वसामन्! आपको हम **अग्निम्**=अग्रणी, **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ, **देवम्**=प्रकाशमय, **ऋत्विजम्**=प्रत्येक ऋतु में उपासनीय प्रभु को **निदधात**=अपने हृदय में स्थापित करें। (२) **अद्य**=आज हमें **यज्ञः**=यज्ञ **आनुषक्**=निरन्तर **प्र एतु**=प्रकर्षेण प्राप्त हो। यह यज्ञ **देवव्यचस्तमः**= देवों में अधिक से अधिक व्याप्तिवाला है। हमारे जीवनों में दिव्यगुणों का संचार करता हुआ यज्ञ हमें देव बनाता है।

भावार्थ—हम प्रभु का हृदयों में ध्यान करें। यज्ञों को अपनाएँ। ये यज्ञ ही हमारे जीवनों में दिव्यगुणों को उत्पन्न करेंगे।

ऋषिः—**विश्वसामा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु के वरणीय रक्षण का ध्यान

चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये। वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥

(१) **मर्तासः**=मनुष्य **ऊतये**=रक्षण के लिये **चिकित्विन्मनसम्**=ज्ञानयुक्त मनवाले, अथवा हमारे मनों को ज्ञानयुक्त करनेवाले **देवम्**=प्रकाशमय **त्वा**=आपको **इयानासः**=प्राप्त होनेवाले होते हैं। आपकी उपासना ही हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाती है और हम आपके ही छोटे रूप-देवतुल्य बन पाते हैं। (२) **वरेण्यस्य**=वरने के योग्य **ते**=आपके **अवसः**=रक्षण का ही हम **अमन्महि**=मनन करते हैं। किस प्रकार अद्भुत उपायों से आप हमारा रक्षण करते हैं। उस आपके रक्षण का स्मरण करते हुए हम आपके उपासक बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदयों को प्रकाशमय व दिव्यवृत्तिवाला बनाते हैं। प्रभु का रक्षण ही वरणीय है।

ऋषिः—**विश्वसामा आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

स्तोमैः-गीर्भिः

अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ४ ॥

(१) हे **सहस्य**=सहसः सूनो! बल के पुत्र, बल के पुञ्ज, **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **नः**=हमारे **इदम्**=इस **वचः**=स्तुति वचन को आप **चिकिद्धि**=जानिये। हमारा यह स्तुतिवचन आपके लिये प्रिय हो। (२) हे **सुशिप्र**=शोभन हनु वा नासिकावाले! **दम्पते**=गृहपते प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको **अत्रयः**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाले व्यक्ति **स्तोमैः**=स्तुतियों से **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। ये

अत्रयः=अत्रि **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **शुम्भन्ति**=अपने हृदयों में आपको अलंकृत करते हैं। प्रभु को 'सुशिप्र' करने का भाव यह है कि प्रभु स्मरण से हम उत्तम हनु व नासिकावाले बनते हैं। 'शोभने हनू नासिके वा यस्मात्'। प्रभु स्मरण हमें अति भोजन की वृत्ति से दूर करके, असात्त्विक भोजनों से दूर करके, उत्तम जबड़ोंवाला बनाता है तथा प्राणायाम में प्रवृत्त करता है। इस प्रकार प्रभु-स्मरण हमें 'सुशिप्र' बनाता है।

भावार्थ—हम स्तुतियों व ज्ञानवाणियों से प्रभु का अपने में धारण करें। इससे हम 'मितभोजी-प्राणायाम के अभ्यासी व शरीर गृह के रक्षक' बनेंगे।

गतमन्त्र के अनुसार जीवन के होने पर हम ज्ञानज्योतिवाले 'द्युम्न' होंगे, तत्त्वद्रष्टा 'विश्वचर्षणि' बनेंगे। यह द्युम्न विश्वचर्षणि प्रभु की आराधना करता हुआ कहता है—

२३. [त्रयोविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**द्युम्नो विश्वचर्षणिः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

आन्तर व बाह्य शत्रुओं का विजय

अग्ने॒ सह॑न्तमा भ॑र द्यु॒म्नस्य॑ प्रा॒सहा॑ र॒यिम्।
विश्वा॒ यश्च॑र्ष॒णीर॒भ्या॒३॒॑सा वाजे॑षु सा॒सह॑त्॥ १ ॥

(१) **अग्ने**=हे परमात्मन्! **प्रासहा**=प्रकर्षेण शत्रुओं के अभिभावक बल से **सहन्तम्**=शत्रुओं को कुचलते हुए **रयिम्**=ऐश्वर्य को **द्युम्नस्य**=इस ज्ञान-ज्योतिवाले पुरुष के लिये **आभर**=सर्वथा प्राप्त कराइये। वह धन, जो हमें विषयों की ओर न ले जाकर, काम-क्रोध आदि को जीतनेवाला बनाता है, वही अभीष्ट धन है। (२) वह धन, **यः**=जो कि **आसा**=मुख में स्तोत्रों के द्वारा **वाजेषु**=संग्रामों में **विश्वाः**=सब **चर्षणीः**=शत्रुभूत मनुष्यों को **अभि सासहत्**=पराभूत करता है। वस्तुतः पूर्वार्ध में आन्तर शत्रुओं के पराभव का संकेत था, जो उत्तरार्ध में बाह्य शत्रुओं के पराभव का उल्लेख है। हम आन्तर व बाह्य दोनों शत्रुओं को जीतनेवाले बनें।

भावार्थ—हे प्रभो! हमारे लिये उस धन को प्राप्त कराइये, जो कि हमें आन्तर व बाह्य शत्रुओं का विजेता बनाये।

ऋषिः—**द्युम्नो विश्वचर्षणिः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

शत्रुनाशक धन-ज्ञानयुक्त बल

तम॑ग्ने पृतना॒षहं॑ र॒यिं स॑हस्व॒ आ भ॑र। त्वं हि स॒त्यो अद्भु॑तो दा॒ता वाज॑स्य॒ गोम॑तः ॥ २ ॥

(१) हे **सहस्वः**=बलवन् **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **तम्**=उस **रयिम्**=धन को **आभर**=हमारे में सर्वथा धारण करिये जो कि **पृतनाषहम्**=शत्रु सेनाओं को कुचल देनेवाला है। अर्थात् ऐसा धन जो कि विषयों में न फँसकर हमें विषयों से दूर ले जानेवाला है। प्रभु ही हमारे लिये ऐसे धन को प्राप्त कराते हैं। (२) हे प्रभो! **त्वं हि**=आप ही **सत्यः**=सत्यस्वरूप हैं। **अद्भुतः**=अद्भुत हैं, मनुष्य ज्ञान शक्ति व धनवाले हैं। **गोमतः**=ज्ञान की वाणियोंवाले **वाजस्य**=बल के **दाता**=आप देनेवाले हैं। हमारे लिये ज्ञान व बल को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु शत्रु नाशक धन को देते हैं, ज्ञानयुक्त बल को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—द्युम्नो विश्वचर्षणिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

सजोषसः-वृक्तबर्हिषः

विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः। होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु॥ ३॥

(१) **विश्वे**=सब **हि**=ही **सजोषसः**=मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्यों को करनेवाले, **वृक्तबर्हिषः**=(वृक्तं बर्हिः यैः) हृदयों से वासनारूप घास-फूस को उखाड़ देनेवाले **जनासः**=लोग, हे प्रभो! **त्वा**=आप से ही **वार्या**=वरणीय वस्तुओं की **पुरु**=खूब **व्यन्ति**=याचना करते हैं (व्यन्तिः याचन्ते सा०) (२) उन आपसे याचना करते हैं, जो आप **सद्मसु**=हमारे गृहों में **होतारम्**=सब वरणीय वस्तुओं के देनेवाले हैं, तथा **प्रियम्**=प्रीति व तृप्ति को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु का प्रिय बनने के लिये आवश्यक है कि हम मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्य करें, तथा वासनाओं का उद्बर्हण करनेवाले हों। प्रभु होता हैं, प्रिय हैं। वे ही सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—द्युम्नो विश्वचर्षणिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

शत्रु-हिंसक बल-धन-ज्योति

स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दुधे।
अग्ने एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥ ४॥

(१) **सः**=वे **विश्वचर्षणिः**=विश्वद्रष्टा सबका ध्यान करनेवाले प्रभु **हि**=ही **अभिमाति**=शत्रुओं के हिंसक **सहः**=बल को **आ दधे स्म**=हमारे में धारण करते हैं। (२) **अग्ने**=हे अग्रणी प्रभो! आप **एषु क्षयेषु**=गृहों में **रेवत्**=धनयुक्त होकर **नः**=हमारे लिये **दीदिहि**=दीप्त होइये। अर्थात् हमें आवश्यक धनों को प्राप्त कराइये। हे **पावक**=पवित्र करनेवाले, **शुक्र**=दीप्त प्रभो! **द्युमत्**=ज्योतिर्मय होकर हमारे लिये **दीदिहि**=दीप्त होइये।

भावार्थ—प्रभु हमें शत्रु-हिंसक बल, धन व ज्योति प्राप्त करायें।

इस प्रकार शत्रु-हिंसक बल को प्राप्त करके ये 'लौपायन' शत्रुओं का लोप करनेवाले बनते हैं। इन्द्रियों का रक्षण करते हुए 'गौपायन' होते हैं। इनके रक्षण के लिये ही **बन्धुः**=सदा यज्ञादि कर्मों में अपने को बाँधनेवाले, **सुबन्धुः**=उत्तम कार्यों में अपने को बाँधनेवाले होते हैं। ये **श्रुतबन्धु**=शास्त्रज्ञान से अपने को बाँधनेवाले व **विप्रबन्धु**=ज्ञानी पुरुषों के संगवाले बनते हैं। ये प्रार्थना करते है कि—

२४. [चतुर्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा ॥ देवता—अग्निः ॥
छन्दः—साम्नी बृहती ॥ स्वरः—माध्यमः ॥

अन्तमः त्राता

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे **अन्तमः**=(intimate) अन्तिकतम मित्र हैं। **उत**=और **त्राता**=रक्षक हैं। (२) **शिवः भव**=आप हमारा कल्याण करनेवाले होइये। **वरूथ्यः**=आप ही हमारे रक्षकों में सर्वोत्तम हैं। (वरूथ cover) आप से आच्छादित हुए-हुए हम सदा काम-क्रोध आदि से बचे रहते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे अन्तिकतम मित्र रक्षक व कल्याण करनेवाले हैं।

ऋषिः—**बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा**॥ देवता—**अग्निः**॥
छन्दः—**भुरिग्बृहती**॥ स्वरः—**माध्यमः**॥

वसुः अग्निः

वसु॑र॒ग्निर्वसु॑श्रवा॒ अच्छा॑ नक्षि द्यु॒मत्त॑मं र॒यिं दाः॥ २॥

(१) हे प्रभो! आप ही **वसुः**=हमारे बसानेवाले हैं। **अग्निः**=आगे ले चलनेवाले हैं। **वसुश्रवाः**=निवास के लिये उपयोगी ज्ञान को देनेवाले हैं। (२) हे प्रभो! **अच्छा नक्षि**=मैं आपके अभिमुख प्राप्त होता हूँ अथवा आप ही हमें, कृपा करके, आभिमुख्येन प्राप्त होते हैं और **द्युमत्तमं रयिं दाः**=अधिक से अधिक ज्योतिर्मय धन को देते हैं। प्रभु से प्राप्त धन हमें ज्ञान-ज्योति के वर्धन में सहायक होता है।

भावार्थ—प्रभु 'वसु' हैं, 'अग्नि' हैं, 'वसुश्रवाः' हैं। वे हमें उस धन को प्राप्त करायें जो कि हमारे लिये ज्ञान-ज्योति के वर्धन में सहायक हो।

ऋषिः—**बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा**॥ देवता—**अग्निः**॥
छन्दः—**भुरिग्बृहती**॥ स्वरः—**माध्यमः**॥

पाप चाहनेवाले से बचाव

स नो॑ बोधि श्रु॒धी हव॑मुरु॒ष्या णो॑ अघाय॒तः सम॑स्मात्॥ ३॥

१. **सः**=वे आप **नः बोधि**=हमें बोधयुक्त करिए, **हवं श्रुधी**=हमारी पुकार को सुनिए। २. **नः**=हमें **समस्मात्**=सब **अघायतः**=अघ की कामनावाले—हमारे साथ पापों व कष्टों को जोड़ने की कामनावाले—पुरुषों से **उरुष्या**=बचाइए। हम इन अघशंसों के चक्कर में पड़कर पापमय जीवनवाले न हो जाएँ।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञान दें। हमारी इस आराधना को वे सुनें कि हम अघ (पाप) की कामनावाले पुरुषों के चक्कर में न फँस जाएँ।

ऋषिः—**बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा**॥ देवता—**अग्निः**॥
छन्दः—**भुरिग्बृहती**॥ स्वरः—**माध्यमः**॥

सुम्न+सखा

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे॒ सखि॑भ्यः॥ ४॥

१. हे **शोचिष्ठ**=अधिक-से-अधिक हमारे जीवन को पवित्र बनानेवाले, **दीदिवः**=ज्ञान दीप्ति से दीप्त प्रभो! **तं त्वा**=उन आपसे हम **सुम्नाय**=सुखप्राप्ति के लिए **नूनम्**=निश्चय से **ईमहे**=याचन करते हैं। २. इसी दृष्टिकोण से हम **सखिभ्यः**=उत्तम मित्रों की प्राप्ति के लिए याचना करते हैं। इस संसार में जीवनों के निर्माण में मित्रों का भी प्रमुख स्थान है। उत्तम मित्र को प्राप्त करके हम जीवन को उत्तम बना सकें।

भावार्थ—हे प्रभो! शुचिता व पवित्रता को प्राप्त कराके हमारे जीवनों को सुखी करिए तथा उत्तम मित्रों के द्वारा सदा हमारे ज्ञान का वर्धन करिए।

इन मित्रों के सम्पर्क में हम सदा उत्तम वसुओं को प्राप्त करनेवाले 'वसूयु' बनें। 'वसूयु' बनकर 'आत्रेय' हों—सब त्रिविध कष्टों से दूर। इन वसूयु आत्रेयों की प्रार्थना है—

२५. [पञ्चविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

वसुः+ऋतावा

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः। रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः॥ १॥

१. **वः**=तुम्हारे **अग्निम्**=अग्रणी—उन्नति के साधक **देवम्**=उस प्रकाशमय प्रभु की **अच्छा**=ओर तू **अवसे**=रक्षण के लिए आता है **गासि**=उस प्रभु का ही गायन करता है। **सः**=वह प्रकाशमय प्रभु ही **नः**=हमारा **वसुः**=बसानेवाला है। **रासत्**=वही हमारे लिए सब इष्ट पदार्थों को प्राप्त कराता है। २. **ऋषूणाम्**=यह तत्त्वद्रष्टा ज्ञानियों का **पुत्रः** (पुनाति त्रायते)=पवित्र करनेवाला व त्राण करनेवाला है। **ऋतावा**=ज्ञान के द्वारा उन ऋषियों में ऋत का (यज्ञ का—श्रेष्ठतम कर्म का) रक्षण करनेवाला है। यह हमें सब **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं से **पर्षति**=पार करता है।

भावार्थ—हम प्रभु का गायन करें। प्रभु ही हमारा निवास उत्तम बनानेवाले हैं। वे हमें ज्ञान देकर अनृत से दूर करते हैं—द्वेषों से ऊपर उठाते हैं। हमारे जीवन में ऋत का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'होता-मन्द्रजिह्व-विभावसु'

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे। होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम्॥ २॥

१. **सः**=वे प्रभु **हि**=ही **सत्यः**=सत्यस्वरूप हैं, **यम्**=जिनको **पूर्वे**=अपना पालन व पूरक करनेवाले लोग **चित्**=ही **ईधिरे**=अपने हृदयों में दीप्त करते हैं। **यम्**=जिनको **देवासः**=देववृत्तिवाले लोग—ज्ञान से अपने हृदयों को प्रकाशमय बनानेवाले लोग—**चित्**=ही अपने में समिद्ध करते हैं। २. उस परमात्मा को ये पूर्व तथा देव समिद्ध करते हैं, जोकि **होतारम्**=सब-कुछ देनेवाले हैं। **मन्द्रजिह्वम्** (मंदनजिह्वं, मोदमानजिह्वं वा नि० ६.२३)=प्रशंसनीय व आनन्दप्रद वाणीवाले हैं—जिनसे उच्चरित वेदज्ञान स्तुत्य व सुखद है। **इत्**=निश्चय से **सुदीतिभिः**=उत्तम ज्ञानदीप्तियों से **विभावसुम्**=ज्ञानधनवाले हैं।

भावार्थ—हम अपना पालन व पूरण करते हुए देववृत्तिवाले बनकर हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करें। वे प्रभु 'होता-मन्द्रजिह्व व विभावसु' हैं। हमारे लिए भी वे प्रशंसनीय आनन्दप्रद ज्ञानधन को प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

धनों द्वारा 'शुभकर्म, ज्ञानवर्धन, पापवर्जन' (धीति, सुमति, सुवृक्ति)

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या। अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य॥ ३॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिए **रायः**=ऐश्वर्यों को **दिदीहि**=दीजिए। ताकि हम **वरिष्ठया धीती**=श्रेष्ठतम परिचरणात्मक कर्मों को कर सकें (हेतौ तृतीया)। इन वरिष्ठ कर्मों के हेतु से हमें ऐश्वर्यों को दीजिए। ऐश्वर्य को प्राप्त करके हम इन धारणात्मक कर्मों को कर सकें। २. हे **वरेण्य**=वरने योग्य प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **श्रेष्ठया सुमत्या**=श्रेष्ठ सुमति के हेतु से धनों को दीजिए। इसलिए हमें धनों को प्राप्त कराइए ताकि उनके द्वारा ज्ञानसाधनों को जुटाकर हम सुमति का वर्धन कर सकें। **च**=और **सुवृक्तिभिः**=उत्तमता से (अच्छी प्रकार) पापवर्जन के हेतु से हमारे लिए धनों को दीजिए। कहीं दरिद्रता हमें पाप की ओर न ले जाए। (बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्)।

भावार्थ—हमें प्रभु ऐश्वर्य दें ताकि हम उत्तम परिचरणात्मक कर्म कर सकें, (ख) ज्ञानसाधनों को जुटाकर ज्ञान का वर्धन कर सकें तथा (ग) पापों को अपने से दूर रख सकें।

सूचना—वही ऐश्वर्य ठीक है जिससे हमारे हाथ धारणात्मक कर्मों में लगे हों, मन पापवर्जनवाले हों, मस्तिष्क ज्ञानदीप्तिवाले हों।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

हव्यवाहन प्रभु का 'धी' द्वारा उपासन

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन्। अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत॥ ४॥

१. **अग्निः**=यह अग्रणी प्रभु ही **देवेषु**=सूर्य चन्द्र तारे आदि सब देवों में **राजति**=चमक रहा है। उसी की दीप्ति से सब देव दीप्त हो रहे हैं। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'। **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु ही **मर्तेषु**=सब मरणधर्मा प्राणियों में भी **आविशन्**=प्रविष्ट हो रहे हैं। इन मनुष्यों में तो बल, ज्ञान व धन है, वह सब उस प्रभु के कारण ही है 'तेजस्तेजस्विनामहम्' 'बुद्धिबुद्धिमतामस्मि' 'अहं धनानि संजयामि शाश्वतः'। २. **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु ही **नः**=हमारे लिए **हव्यवाहनः**=सब हव्य पदार्थों के प्राप्त करानेवाले हैं। **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **धीभिः**=ज्ञान की वाणियों द्वारा स्तुति करते हुए **सपर्यत**=पूजो। जितना-जितना हम ज्ञान का वर्धन करते हैं व बुद्धि को सूक्ष्म बनाते हैं उतना-उतना ही प्रभु के समीप होते चलते हैं। इसी प्रकार हम प्रभु का सच्चा पूजन कर पाते हैं।

भावार्थ—सर्वत्र देवों में मनुष्यों में प्रभु का ही प्रकाश है। प्रभु ही सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। ज्ञान के द्वारा हम प्रभु का उपासन करें।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

दाश्वान् का पुत्र

अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम्। अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे॥ ५॥

१. **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिए—दान की वृत्तिवाले व प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाले पुरुष के लिए—**पुत्रं ददाति**=उत्तम सन्तान को प्राप्त कराते हैं। जो सन्तान **तुविश्रवस्तमम्**=खूब ही उत्कृष्ट ज्ञानवाला है। **तुविब्रह्माणम्**=(ब्रह्म=स्तोत्र) खूब स्तोत्रोंवाला है—प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला है और अतएव **उत्तमम्**=उत्तम जीवनवाला है। ज्ञान व स्तवन से जो प्रशस्त जीवनवाला बना है। २. उस सन्तान को प्रभु प्राप्त कराते हैं, जो कि **अतूर्तम्**=काम-क्रोध आदि से हिंसित नहीं होता तथा **श्रावयत् पतिम्**=अपने उत्तम कर्मों से अपने रक्षकों (पति=माता-पिता आदि) की कीर्ति को फैलानेवाला है।

भावार्थ—हम दाश्वान् बनें ताकि 'तुविश्रवस्तम, तुविब्रह्मा, उत्तम अतूर्त, श्रावयत् पति' सन्तान को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

कैसा पुत्र?

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः। अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम्॥ ६॥

१. **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **ददाति**=ऐसे पुत्र को देते हैं, जो कि **सत्पतिम्**=सत्कर्मों का रक्षक होता है। **यः**=जो **नृभिः**=मनुष्यों से **युधा**=युद्ध के द्वारा **सासाह**=शत्रुओं का पराभव करनेवाला होता है। २. **अग्निः**=ये अग्रणी प्रभु उस सन्तान को प्राप्त कराते हैं जो कि **अत्यम्**=सततगमनशील

होता है, **रघुष्यदम्**=वेगयुक्त गतिवाला होता है—सब कार्यों को स्फूर्ति के साथ करता है, **जेतारम्**=सदा विजयी होता है, और **अपराजितम्**=कभी पराजित नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें ऐसा पुत्र प्राप्त हो जो कि सत्कर्मों का रक्षक हो। युद्ध में जीतनेवाला हो। क्रियाशील स्फूर्तिसम्पन्न—विजयी व अपराजित हो।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्रभुपूजन व दान

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो। महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ७ ॥

१. **यद् वाहिष्ठम्**=जो भी वस्तु वाहिष्ठ हो—वो दृढ़तम हो—हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचाने के लिए उत्तम हो—**तद्**=उसे **अग्नये**=उस प्रभु के लिए अर्पित करो। हमारे में 'शक्ति धन व ज्ञान' जो भी कुछ उत्कृष्ट रूप में हो, उसे प्रभु के अर्पित करना चाहिए—उसे प्रभुकृपा से प्राप्त समझना चाहिए—उसका गर्व न करना चाहिए। हे **विभावसो**=ज्ञान को धन समझनेवाले उपासक! तू इस प्रकार वाहिष्ठ वस्तु को प्रभु के अर्पण करता हुआ **बृहद् अर्च**=खूब ही प्रभु का पूजन करनेवाला हो। वस्तुतः प्रभु पूजन यही है कि सब जयों को प्रभु की विजय समझना और उसका अहंकार न करना। २. **महिषी इव**=महिषी की तरह—एक पूजा की वृत्तिवाली गृहपत्नी की तरह **त्वद् रयि**=तेरे से धन **उदीरते**=उद्गत होता है, **त्वद् वाजाः**=तेरे से सब अन्न उद्गत होते हैं। जैसे एक उत्तम गृहपत्नी सबको खिलाकर स्वयं खाती है—आये-गये व्यक्तियों के लिए दान देनेवाली होती है, उसी प्रकार विभावसु भी औरों को खिलाकर खानेवाला व दान देनेवाला बनता है। यह सदा यज्ञशेष का सेवन करता है।

भावार्थ—ज्ञानधन व्यक्ति सब विजयों को प्रभु के अर्पण करता है। खूब ही अन्नों व धनों का देनेवाला बनता है।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

उस महान् गुरु के शब्दों को सुनें

तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत्। उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥ ८ ॥

१. हे प्रभो! **तव**=आपकी **अर्चयः**=ज्ञान ज्वालाएँ **द्युमन्तः**=अत्यन्त ज्योतिर्मय है। आप **बृहत्**=सर्वमहान् **ग्रावा इव**=उपदेष्टा (गुरु) की तरह **उच्यते**=कहे जाते हैं 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'। आप ही गुरुओं के गुरु—सर्वप्रथम गुरु हैं। २. आपके ज्ञान को किसी और से प्राप्त नहीं करते। **उत**=और **त्मना दिवः**=स्वयं ज्योतिर्मय ने आपका **स्वानः**=शब्द इस प्रकार **अर्त**=उद्गत होता है **यथा**=जैसे **उ**=निश्चय से **तन्यतुः**=मेघध्वनि हो। मेघध्वनि के समान गर्जनावाले इन शब्दों को भी हम अज्ञानी नहीं सुन पाते।

भावार्थ—उस दीप्तिमय प्रभु के कल्याणकर शब्दों को हम सुननेवाले बनें।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'द्वेष समुद्र तारणी' नाव

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम। स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥ ९ ॥

१. **एवम्**=इस प्रकार **वसूयवः**=सब वसुओं को प्राप्त करने की कामनावाले हम **सहसानम् अग्निम्**=हमारे बल की तरह आचरण करते हुए प्रभु को **ववन्दिम**=वन्दना करते हैं। जब हम प्रभु की वन्दना करते हैं, तो प्रभु के बल से बल सम्पन्न होते हैं। इसी बल के द्वारा हम सब वसुओं

को प्राप्त होनेवाले होते हैं। २. **सः**=वे **सुक्रतुः**=शोभनकर्मा प्रभु **नः**=हमें **विश्वाः**=सब **द्विषः**=द्वेषों से इस प्रकार **अतिपर्षत्**=पार करें, **इव**=जैसे कि **नावा**=नौका से सिन्धु को पार करते हैं। नाव से समुद्र को पार करने के समान हम सुक्रतु प्रभु को द्वेषसागर से पार करने की नाव बनायें।

भावार्थ—हम प्रभु की वन्दना करें। प्रभु हमें शक्तिसम्पन्न बनाकर सब द्वेषों से दूर करें।

अगले सूक्त में 'वसूयवः आत्रेयः' ही ऋषि है, देवता भी 'अग्नि' ही है—

२६. [षड्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'रोचिषा—मन्द्रयाजिह्वया' (ज्ञान+स्तुति)

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

१. हे **पावक**=पवित्र करनेवाले, **अग्ने**=अग्रणी **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **रोचिषा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा तथा **मन्द्रया जिह्वया**=स्तुतिवाली जिह्वा के द्वारा आप **देवान्**=दिव्यगुणों को **आवक्षि**=हमें प्राप्त कराएँ **च**=और उन दिव्य गुणों का ही **यक्षि**=हमारे साथ संगम कराएँ। २. प्रभु हमें पवित्र करें। हमें उन्नति पथ पर आगे ले-चलें। हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाएँ। ज्ञानदीप्ति के द्वारा तथा स्तुतिशब्दों का उच्चारण करनेवाली वाणी के द्वारा प्रभु हमारे जीवनों में दिव्यता का वर्धन करें।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारा झुकाव ज्ञान व स्तुतिमय वाणी की ओर हो। ये दोनों ही चीजें हमें देव बनानेवाली हों।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्रीः** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

देवसम्पर्क से अज्ञानान्धकार का विनाश

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥

१. हे **घृतस्नो**=ज्ञानदीप्ति के प्रेरक, **चित्रभानो**=अद्भुत ज्ञानरश्मियोंवाले प्रभो! **स्वर्दृशम्**=सबके देखनेवाले **तं त्वा**=उन आपको हम **ईमहे**=याचना करते हैं। आप हमें भी ज्ञानदीप्ति प्राप्त कराइए। सब ज्ञानों के प्रेरक आप ही तो हैं। २. **वीतये**=सब अज्ञानान्धकारों को विनाश के लिए **देवान्**='माता, पिता, आचार्य व अतिथि' रूप देवों को **आवह**=हमें प्राप्त कराइए। हम देवों के सम्पर्क में आकर हमारा अज्ञान नष्ट हो और हम ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल जीवनवाले बनें। हमारे जीवन में 'सच्चरित्रता-सदाचार-ज्ञान व यज्ञशीलता' को ये देव उत्पन्न करें। इनके द्वारा हमारा जीवन चमक उठे।

भावार्थ—प्रभु सब ज्ञानों के प्रेरक हैं। प्रभु कृपा से हमें 'उत्तम माता, पिता, आचार्य व अतिथि' रूप देव प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा प्रभु हमारे अज्ञानान्धकार को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्रीः** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

होत्र-ज्ञान-अध्वर

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥

१. हे **कवे**=क्रान्तदर्शिन्—सर्वज्ञ प्रभो! **वीतिहोत्रम्**=कान्त यज्ञोंवाले **द्युमन्तम्**=ज्योतिर्मय **त्वा**=आपको हम अपने हृदयों में **समिधीमहि**=समिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। आपको समिद्ध करने का उपाय यही तो है कि हम कर्मेन्द्रियों को यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रेरित करके 'वीतिहोत्र' बनने का प्रयत्न करें तथा ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञानप्राप्ति में लगाकर 'द्युमान्' बनें। २. हे **अग्ने**=अग्रणी

प्रभो! **बृहन्तम्**=महान्—सदावृद्ध आपको **अध्वरे**=हिंसारहित यज्ञों में दीप्त करने के लिए यत्नशील हों। हम अपने जीवनों में अध्वरात्मक कर्मों में व्यापृत होकर आगे और आगे बढ़ें। इसी प्रकार हम आपको अपने जीवनों में दीप्त कर पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए हम (क) यज्ञप्रिय हों (ख) ज्ञान को बढ़ाएँ (ग) अध्वरात्मक (अहिंसात्मक) कर्मों में व्यापृत हों।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री:** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दिव्यगुणों व प्रभु की प्राप्ति के लिए 'हव्यदाति' बनें

अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये। होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **हव्यदातये**=हव्यों के देनेवाले यज्ञशील पुरुष के लिए **विश्वेभिः देवेभिः**=सब देवों के साथ **आगहि**=प्राप्त होइए। देने के स्वभाववाला यज्ञशील पुरुष दिव्यगुणों को प्राप्त हो और इन दिव्यगुणों का वर्धन करता हुआ अन्ततः आपकी प्राप्ति का पात्र हो। २. हम **होतारम्**=सब-कुछ देनेवाले **त्वा**=आपको ही **वृणीमहे**=वरते हैं। आपकी प्राप्ति में सब प्राप्त हो जाता है। आपके उपासक बनने पर मनुष्य को किसी प्रकार की कमी नहीं रह जाती।

भावार्थ—हम हव्यदाति-यज्ञशील बनें। हमें सब दिव्यगुण प्राप्त होंगे। दिव्यगुणों के साथ हम प्रभु के समीप होते चलेंगे। हम में किसी बात की कमी न रहेगी।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री:** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

यजमान+सुन्वत्

यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह। देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ ॥

१. **यजमानाय**=यज्ञशील और यज्ञशीलता के द्वारा **सुन्वते**=सोम का सम्पादन करनेवाले पुरुष के लिए हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **सुवीर्यम्**=उत्तम बल व पराक्रम को **आवह**=प्राप्त कराइए। यज्ञों में लगे रहने से हम वासनाओं से आक्रान्त नहीं होते और सोमरक्षण के द्वारा सुवीर्य को प्राप्त करते हैं। २. ऐसा होने पर हे प्रभो! आप **बर्हिषि**=हमारे वासनाशून्य हृदयों में **देवैः**=सब दिव्यगुणों के साथ **आसत्सि**=आसीन होते हैं।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। वासनाओं से बचे रहकर सोम का रक्षण करें। यही दिव्यगुणों व प्रभु की प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री:** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

धार्मिक जीवन

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि। देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ६ ॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **समिधानः**=हृदयदेश में समिद्ध किये जाते हुए आप **सहस्रजित्**=सहस्रशः वासनाओं को पराजित करनेवाले हैं। इन काम, क्रोध आदि को आप ही भस्म करते हैं। इन्हें भस्म करके **धर्माणि**='देवपूजा-संगतिकरण-दान' रूप प्रथम धर्मों का **पुष्यसि**=आप ही हमारे जीवनों में पोषण करते हैं। २. **देवानां दूतः**=देववृत्तियों के लिए आप ही ज्ञानसन्देश का वहन करते हैं और आप ही **उक्थ्यः**=स्तुति के योग्य हैं। आपका स्तवन करते हुए हम (क) वासनाओं को पराजित करते हैं (ख) धर्म का अपने में पोषण करते हैं और (ग) ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। वासनाओं से आक्रान्त न होते हुए धर्म में प्रवृत्त रहकर,

ज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री:** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु का धारण

न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम्। दधाता देवमृत्विजम्॥ ७॥

१. **अग्निम्**=उस अग्रगति के साधक **जातवेदसम्**=ज्ञान को हमारे में प्रादुर्भूत करनेवाले (जातः वेदः यस्मात्) **होत्रवाहम्**=हमारे सब यज्ञों का वहन करनेवाले, **यविष्ठ्यम्**=हमारे से बुराइयों को अधिक-से-अधिक दूर करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले प्रभु को **नि दधात**=अपने हृदयमन्दिरों में स्थापित करो। २. उस प्रभु को हृदय में आसीन करो जो कि **देवम्**=प्रकाशमय हैं तथा **ऋत्विजम्**=ऋतु-ऋतु में—समय-समय पर अर्थात् सदा यजनीय (उपासनीय) हैं। यह प्रभु का उपासन ही हमारे जीवनों को उत्तम बनाता है।

भावार्थ—हम प्रभु को अपने हृदयों में आसीन करें। ये हमारे जीवनों को प्रगतिवाला-ज्ञानयुक्त-यज्ञमय बनाएँगे।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री:** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

यज्ञ-दिव्यगुण-प्रभुप्राप्ति

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः। स्तृणीत बर्हिरासदे॥ ८॥

१. **यज्ञः**='देवपूजा-संगतिकरण व दान' रूप यज्ञ हमें **आनुषक्**=निरन्तर **प्र एतु**=प्रकर्षेण प्राप्त हो। यह यज्ञ **अद्य**=आज हमारे लिए **देवव्यचस्तमः**=दिव्यगुणों के अधिक-से-अधिक विस्तार को करनेवाला हो। २. हे यज्ञशील पुरुषो! तुम **आसदे**=प्रभु को बिठाने के लिए **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय को **स्तृणीत**=आच्छादित करो—बिछाओ। इस वासनाशून्य हृदयासन पर ही प्रभु विराजमान होते हैं।

भावार्थ—यज्ञों से दिव्यगुणों का विस्तार होता है। दिव्यगुणोंवाले—निर्वासनं=हृदयों में प्रभु आसीन होते हैं।

ऋषिः—**वसूयव आत्रेयः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री:** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दिव्य जीवन

एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः। देवासः सर्वया विशा॥ ९॥

१. **इदम्**=हमारे इस जीवन में **मरुतः**=प्राण **आ सीदन्तु**=आसीन हों। हम प्राणायाम के द्वारा प्राणशक्ति का वर्धन करते हुए यहाँ प्राणों को स्थापित करें। **अश्विना**=द्यावापृथिवी-ज्ञानदीप्त मस्तिष्क (द्युलोक) तथा दृढ़ शरीर (पृथिवी) हमें प्राप्त हों। **मित्रः**=स्नेह की भावना तथा वसा:=द्वेष का निवारण हमारे जीवन में हो। २. **देवासः**=सब दिव्यगुण **सर्वया विशा**=सब शरीर में प्रवेश के योग्य उत्तम भावनाओं के साथ हमारे जीवन में आसीन हों।

भावार्थ—हमारा जीवन 'प्राणशक्ति-ज्ञान व बल—स्नेह व निर्द्वेषता-तथा दिव्यगुणों व सब उत्तम भावनाओं' से युक्त हो।

यह जीवन में दिव्यता को लानेवाला व्यक्ति (त्रीन् ऋच्छति इति त्र्यरुणः) 'त्र्यरुण' बनता है—'शरीर मन व मस्तिष्क' तीनों को उत्तम बनाता हैं—'त्रैवृष्णः'=तीनों को शक्तिशाली बनाता है। इस व्यक्ति से दास्यव भावनाएँ भयभीत होकर दूर ही रहती हैं—यह 'त्रसदस्यु' होता है, खूब ही वासनाओं का संहार करने के कारण 'पौरुकुत्स्य' कहलाता है। प्रशस्त इन्द्रियों के साथ मेलवाला

यह 'अश्व-मेध' है (मेधृ to meet)—उत्तमता से भरण करने के कारण 'भारत' है—क्राम, क्रोध, लोभ से दूर होने के कारण 'अत्रि' है। इन ऋषियों की आराधना का स्वरूप यह है—

२७. [सप्तविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—त्र्युरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा॥ देवता—अग्निः॥
छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

शरीर शकट

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत॥ १॥

१. **चेतिष्ठः**=निरतिशय ज्ञानवाला व अधिक-से-अधिक चेतना को प्राप्त करानेवाला, **असुरः**=प्राणशक्ति का संचार करनेवाला, **मघोनः**=ऐश्वर्यशाली, **सत्पतिः**=सज्जनों का पालक प्रभु **मे**=मेरे लिए **अनस्वन्ता**=प्रशस्त शरीर रूप शकटवाले **गावा**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप दो बैलों को **मामहे**=देते हैं। प्रभु ने जीवनयात्रा की पूर्ति के लिए यह शरीर शकट दिया है—और इसमें ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप दो बैलों को जोता है। २. हे **अग्ने**=परमात्मन्! **वैश्वानर**=सबको आगे और आगे ले-चलनेवाले प्रभो! इस शरीर रथ में बैठा हुआ **त्रैवृष्णः**=शरीर मन व बुद्धि सभी को शक्तिशाली बनानेवाला यह **त्र्यरुणः**=ज्ञान कर्म व उपासना तीनों की ओर चलनेवाला—तीनों का अपने जीवन में समन्वय करनेवाला—**दशभिः सहस्रैः**=इन ऋग्वेदोपदिष्ट दश सहस्र ऋचाओं से **चिकेत**=ज्ञानवाला बनता है। ऋचाओं की संख्या १०५५२ है। 'दस हज़ार' का भाव यहाँ लगभग दस हज़ार ही है। यहाँ मुख्य प्रयोजन ऋचाओं की संख्या का प्रतिपादन तो है ही नहीं। इन ऋचाओं के द्वारा पदार्थों के तथा अपने शरीर शकट के गुण धर्मों को खूब समझता हुआ पदार्थों के यथायोग से दृढ़ शकटवाला बनकर जीवनयात्रा में आगे बढ़ता है।

भावार्थ—प्रभु ने हमें शरीर शकट दिया है। इसमें कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय रूप दो बैल जुते हैं। ऋचाओं से पदार्थों के गुण धर्मों को जानकर इनके ठीक प्रयोग से हम इस शकट को दृढ़ बनाकर जीवनयात्रा को पूरा करें।

ऋषिः—त्र्युरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा॥ देवता—अग्निः॥
छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

एक सौ बीस वर्ष तक

यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म॥ २॥

१. **यः**=जो **मे**=मेरे लिए **शता च विंशतिं च**=सौ और बीस अर्थात् एक सौ बीस वर्ष तक **गोनाम्**=ज्ञान की वाणियों को **ददाति**=देता है, **च**=तथा **सुधुरा**=उत्तमतया शकट की धुरा को वहन करनेवाले **युक्ता**=शकट में जुते हुए **हरी**=इन्द्रियाश्वों को **ददाति**=देता है। प्रभु हमें १२० वर्ष तक जहाँ ज्ञान देते हैं, वहाँ इस दृढ़ शरीर शकट को प्राप्त कराते हैं, जिसमें उत्तम इन्द्रियाश्व जुते हैं। २. हे **वैश्वानर**=सब नरों का हित करनेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **सुष्टुतः**=अच्छी प्रकार स्तुति किये गये **वावृधानः**=निरन्तर हमारा वर्धन करते हुए आप **त्र्यरुणाय**='शरीर, मन, बुद्धि' तीनों का ध्यान करनेवाले अथवा 'ज्ञान, कर्म, उपासना' तीनों का अपने में समन्वय करनेवाले त्र्यरुण के लिए **शर्म**=कल्याण को **यच्छ**=दीजिए।

भावार्थ—प्रभु हमें १२० वर्ष के जीवन—ज्ञान की वाणियों व उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं। हम प्रभुस्तवन द्वारा अपना वर्धन करते हुए कल्याण को प्राप्त करें।

ऋषिः—**त्र्युरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

त्रसदस्युः-त्र्यरुणः

एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति॥ ३॥

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! **नविष्ठाय**=अत्यन्त स्तुत्य (नु स्तुतौ) **ते**=आपके लिए, आपकी प्राप्ति के लिए **एवा**=इस प्रकार **नवमम्**=(नव गतौ) क्रियामय **सुमतिम्**=कल्याणी बुद्धि को **चकानः**=चाहता हुआ **त्रसदस्युः**=सब वासनाओं को भयभीत करनेवाला बनता है। जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करके ज्ञानपूर्वक कर्मों में लगा रहता है, वही प्रभु प्राप्ति का अधिकारी बनता है। २. प्रभु कहते हैं कि **यः**=जो **तुविजातस्य**=महान् प्रादुर्भाववाले—सर्वत्र ब्रह्माण्ड में प्रकट महिमावाले—**मे**=मेरी **पूर्वीः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली तथा पालन व पूरण करनेवाली **गिरः**=इन ज्ञानवाणियों का **युक्तेन**=एकाग्रमन से **अभिगृणाति**=प्रातः सायं दिन के दोनों ओर उच्चारण करता है। वही **त्र्यरुणः**=उत्तम शरीर, मन व बुद्धि को प्राप्त करता है—वही अपने में ज्ञान, कर्म व उपासना का समन्वय करनेवाला होता है।

भावार्थ—हम प्रभु की कल्याणी मति को प्राप्त करने की कामना करते हुए वासनाओं को भयभीत करनेवाले 'त्रसदस्यु' बनें। प्रभु की ज्ञानवाणियों का प्रातःसायं अध्ययन करते हुए 'त्र्यरुण' बनें।

ऋषिः—**त्र्युरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

सनि-मेधाम् (ददत्)

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये। दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते॥ ४॥

१. **यः**=जो **मे**=मेरे लिए **इति**=इस प्रकार ज्ञान की वाणियों का सृष्टि के प्रारम्भ में **प्रवोचति**= प्रकर्षेण उपदेश करते हैं, वे प्रभु **अश्वमेधाय**=इन्द्रियाश्वों का अपने साथ मेल करनेवाले—इन्द्रियाश्वों को इधर-उधर न भटकने देनेवाले—**सूरये**=उन ज्ञानवाणियों के अनुसार अपने को प्रेरित करनेवाले (षू प्रेरणे), **ऋचा**=(ऋच् स्तुतौ) स्तुतिपूर्वक गति करनेवाले—प्रभुस्मरण के साथ सब कार्यों को करनेवाले—व्यक्ति के लिए **सनिं ददत्**=सम्भजनीय (सेवनीय) धन को देते हैं। २. ये प्रभु ही **ऋतायते**=ऋतपूर्वक सब क्रियाओं को करनेवाले के लिए—ठीक समय व ठीक स्थान पर सब कार्यों को करनेवाले के लिए—**मेधां ददत्**=मेधा बुद्धि को देते हैं। वस्तुतः प्रभु की वाणियों का अध्ययन हमारी बुद्धि को परिष्कृत करनेवाला है।

भावार्थ—स्तुतिपूर्वक गति करते हुए हम सम्भजनीय धन को प्राप्त करते हैं और ऋतपूर्वक आचरण करते हुए हम मेधा (बुद्धि) को प्राप्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**त्र्युरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

अश्वमेध की इन्द्रियाँ

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः। अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः॥ ५॥

१. प्रभु ने इस शरीर शकट में दस इन्द्रिय रूप बैलों को जोता है। जो अश्वमेध बनता है—इन्द्रियाश्वों को अपने साथ जोड़ने का प्रयत्न करता है—इन्हें भटकने नहीं देता—उसका ये कल्याण करनेवाले होते हैं। यदि अश्वमेध नहीं बनता, तो ये इन्द्रिय रूप उक्षा उसके लिए सुखसेचन न कर उसे नरक में गिरानेवाले हो जाते हैं। सो मन्त्र में कहते हैं—**यस्य**=जिस **अश्वमेधस्य**=इन्द्रियाश्वों को अपने साथ जोड़नेवाले—न भटकने देनेवाले **मा**=मेरे लिए **दानाः**=दिये हुए **उक्षणः**=ये शरीर शकट के बैल **परुषाः**=पालन व पूरण करनेवाले हैं। (पृ पालनपूरणयोः) या मार्ग विघ्नकारी शत्रुओं के लिए भयंकर हैं और **शतम्**=शतवर्ष पर्यन्त **उद्धर्षयन्ति**=मेरे उत्कृष्ट उल्लास का कारण बनते हैं। २. ये उक्षा (इन्द्रिय रूप बैल) **सोमाःइव**=सोमकणों की तरह **त्र्याशिरः**=शरीर, मन व बुद्धि तीनों में दोषों का संहार करनेवाले हैं (त्रि+आशॄ)। शरीर में सुरक्षित सोमकण जैसे—शरीर को नीरोग, मन को निर्मल व बुद्धि को तीव्र बनाते हैं, इसी प्रकार अश्वमेध को प्राप्त ये इन्द्रिय रूप उक्षा 'शरीर, मन व बुद्धि' सभी में दोषों का संहार करनेवाले होते हैं। इसी से यहाँ इन्हें 'त्र्याशिरः' कहा है।

भावार्थ—यदि हम इन्द्रियों को भटकने न दें तो ये शतवर्षपर्यन्त हमारे उल्लास का कारण बनती हैं तथा शरीर, मन व बुद्धि में दोषों को उत्पन्न नहीं होने देतीं।

ऋषिः—**त्र्युरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधश्च भारतोऽत्रिर्वा** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥
छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'अश्वमेध' में 'क्षत्र व सूर्य' का स्थापन

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम्। क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम्॥ ६ ॥

१. **शतदाव्नि** (दाप् लवने)=शतवर्षपर्यन्त दोषों का लवन (छेदन) करनेवाले **अश्वमेधे**=इन्द्रियाश्वों से अपना मेल रखनेवाले—इन्हें न भटकने देनेवाले—उपासक में **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देव (सर्वाणि बल कर्माणि इन्द्रस्य, अग्नि=प्रकाश की देवता) **सुवीर्यम्**=उत्कृष्ट वीर्य को **धारयते**=धारण करें। वस्तुतः वीर्यरक्षण का उपाय ही यही है कि हम बल व प्रकाश को प्राप्त करानेवाले कार्यों में लगे रहें। २. ये इन्द्राग्नी **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **क्षत्रम्**=बल को **धारयतम्**=धारण करें तथा **दिवि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में **सूर्यम् इव**=सूर्य के समान **अजरम्**=न जीर्ण होनेवाले ज्ञान को धारण करें। यह वेदज्ञान प्रभु का अजरामर काव्य है, इसे हमारे लिए धारण करें।

भावार्थ—हम बुराइयों का संहार करनेवाले विश्वविजयी—अश्वमेध बनें। सर्वशक्तिसम्पन्न 'इन्द्र' हमारे लिए बृहत् क्षत्र (बल) को धारण कराएँ और अग्निवत् प्रकाशमान प्रभु ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कराएँ।

सब बुराइयों को दूर करके सब अच्छाइयों का ही वरण करनेवाली वृत्ति हमें 'विश्ववारा' बनाती है 'विश्वं भद्रम् एव वृणोति' अथवा 'विश्वं वारयति' अन्दर घुस जानेवाली काम, क्रोध, लोभ की वृत्तियों को निवारित करती हैं, इसीलिए यह 'आत्रेयी' है—'काम-क्रोध-लोभ' तीनों से दूर। यह आराधना करती है—

२८. [अष्टाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**विश्ववारात्रेयी** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विश्ववारा का सुन्दर जीवन

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची॥ १ ॥

१. जीवन को हमें यज्ञात्मक बनाना ही चाहिए। इस **अध्वरे प्रयति**=जीवन यज्ञ के प्रकर्षेण चलने पर—'प्रातः सवन-माध्यन्दिन सवन व तृतीय सवन में' निरन्तर **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु के प्रति **आजुहोत**=अपनी आहुति देनेवाले बनो! प्रभु के प्रति अर्पण करके ही जीवन में चलना चाहिए। **दुवस्यत**=उस प्रभु की ही उपासना करो—यह प्रभु का उपासन ही हमें शक्तिशाली बनाता है। २. **हव्यवाहनम्**=सब हव्य पदार्थों के देनेवाले उस प्रभु का **वृणीध्वम्**=वरण करो। प्रकृति के वरण की अपेक्षा प्रभु का वरण ही कल्याणकर है। प्रकृति वरण में हम प्रभु से दूर हो जाते हैं और प्रकृति के पाँव तले कुचले जाते हैं। प्रभु वरण में जीवन पवित्र बना रहता है और प्रकृति हमारी सेविका बनी रहती है।

भावार्थ—हम जीवनयज्ञ में प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें। प्रभु के ही उपासक हों। यह प्रभु का वरण हमें सब हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाला बनाएगा।

प्रभु का वरण करनेवाला 'गौरिवीति' बनता है (गौरी=वाक्, वीति=भोजन) वाङ्मय शास्त्ररूपी भोजनवाला होता है, विषयों में न फँसने से 'शाक्त्य' शक्ति का पुत्र (शक्ति का पुतला) बनता है (The body of an athlete and the soul of a sage) यह प्रभु की आराधना करता हुआ कहता है—

२९. [एकोनत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

मरुतः पूतदक्षाः

त्र्य॑र्यमा मनु॑षो दे॒वता॑ता॒ त्री रो॑च॒ना दि॒व्या धा॑रयन्त।
अर्च॑न्ति त्वा म॒रुतः॑ पू॒तद॑क्षा॒स्त्वमे॑षा॒मृषि॑रिन्द्रासि॒ धीरः॑ ॥ १ ॥

१. **मनुषः**=विचारशील पुरुष **देवताता**=यज्ञों में—जीवन को यज्ञों में चलाते हुए—**त्री अर्यमा**=तीन (अरीन् यच्छति नि० ११.२३) शत्रुओं के नियमनों को तथा **त्री दिव्या रोचना**=तीन दिव्य दीप्तियों को **धारयन्त**=धारण करते हैं। 'काम' के नियमन के द्वारा शरीर की तेजस्विता को, 'क्रोध' के नियमन के द्वारा मानस आह्लाद को, तथा 'लोभ' के नियमन के द्वारा ज्ञान की प्रचण्ड दीप्ति को ये धारण करनेवाले होते हैं। २. हे प्रभो! **त्वा**=आपको **मरुतः**=मितरावी (कम बोलनेवाले) व प्राणसाधना करनेवाले (मरुतः प्राणाः) **पूतदक्षाः**=पवित्र बलवाले व्यक्ति ही **अर्चन्ति**=पूजते हैं। प्रभु का उपासक (क) कम बोलता है (ख) प्राणायाम का अभ्यासी होता है (३) अपने बल को वासनाओं से मलिन नहीं होने देता। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **एषाम्**=इनके **ऋषिः**=मन्त्रद्रष्टृत्व को देनेवाले हैं तथा **धीरः**=(धियम् ईरयति) बुद्धियों को प्रेरित करनेवाले हैं। ये उपासक प्रभु कृपा से ही 'ऋषि व धीर' बनते हैं।

भावार्थ—'काम, क्रोध, लोभ' को जीतकर हम 'शरीर, मन व मस्तिष्क' की दीप्ति को धारण करें। प्राणसाधना द्वारा पवित्र बलवाले होकर प्रभु के उपासक बनें। प्रभु हमें धीर व ऋषि बनाएँगे।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

क्रियाशीलता व प्रभुप्राप्ति

अनु॒ यदीं॑ म॒रुतो॑ मन्दसा॒नमार्च॒न्निन्द्रं॑ पपि॒वांसं॑ सु॒तस्य॑।
आद॑त्त॒ वज्र॑म॒भि यदहिं॒ हन्न॒पो य॒ह्वीर॑सृज॒त्सर्त॒वा उ॑ ॥ २ ॥

१. **यद्**=जब **ईम्**=निश्चय से **मरुतः**=ये मितरावी व प्राणसाधक पुरुष **मन्दसानम्**=उस

आनन्दमय **सुतस्य**=उत्पन्न सोम के **पपिवांसम्**=हमारे शरीरों में रक्षण करनेवाले **इन्द्रम्**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु को **अनु आर्चन्**=अनुक्रमेण प्रतिदिन पूजते हैं तब यह उपासक **वज्रम् आदत्त**=हाथों में क्रियाशीलता रूप वज्र को ग्रहण करता है। २. **यद्**=जब यह क्रियाशील पुरुष **अहिम्**=इस (आहन्ति) विनाशक वासना को **अभि हन्**=विनष्ट करता है तो **उ**=निश्चय से अपने जीवन में **यह्वीः**=महान् **अपः**=कर्मों को **सर्तवा**=प्रभु की ओर जाने के लिए **असृजत्**=उत्पन्न करता है। वस्तुतः यह क्रियाशील पुरुष ही आगे बढ़ता जाता है।

भावार्थ—क्रियाशीलता द्वारा प्रभु का उपासन होता है। क्रियाशीलता ही वासना को विनष्ट करती है।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ब्रह्माणः मरुतः इन्द्रः

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य॥ ३॥

१. प्रभु कहते हैं कि **ब्रह्माणः**=ज्ञानप्राप्ति में लगे हुए ज्ञानप्रधान व्यक्ति **उत**=और **मरुतः**=मितरावी प्राणसाधक पुरुष तथा **इन्द्रः**=इन्द्रियों को वश में करनेवाला व्यक्ति **मे**=मेरे **अस्य**=इस **सुषुतस्य**=सम्यक् उत्पन्न किये गये **सोमस्य**=सोम का **पेयाः**=पान करें। 'ज्ञानप्राप्ति में लगे रहना, प्राणसाधना तथा जितेन्द्रियता' सोम के पान का साधन हैं। २. **तद्**=वह सोमपान **हि**=ही **हव्यम्**=(आह्वयितुं योग्यः) प्रार्थनीय है। प्रभु से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हम सोम का रक्षण करने में समर्थ हों'। यह सोम **मनुषे**=विचारशील पुरुष के लिए **गाः**=ज्ञान की वाणियों को **अविन्दत्**=प्राप्त कराता है। सोम ही तो ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। इसलिए **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **अहिम्**=वासना को **अहन्**=नष्ट करना है और **अस्य पपिवान्**=इस सोम का पान करनेवाला होता है।

भावार्थ—सोमरक्षण के साधन हैं (क) ज्ञान प्राप्ति में लगे रहना (ख) प्राणसाधना में प्रवृत्त होना तथा (ग) जितेन्द्रिय बनना। सुरक्षित सोम हमारी ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मृगों का पलायन

आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन्॥ ४॥

१. गतमन्त्र के अनुसार सोमरक्षण करनेवाला व्यक्ति **आत्**=सोमरक्षण के साथ शीघ्र ही **रोदसी**=द्यावापृथिवी को—मस्तिष्क व शरीर को—**वितरम्**=खूब ही **विष्कभायत्**=थामता है। मस्तिष्क व शरीर का अच्छी प्रकार धारण करता है। **संविव्यानः**=सम्यक् गति करता हुआ (वेतैर्गतिकर्मणः)—सदा उत्तम कर्मों में लगा हुआ **चित्**=निश्चय से **मृगम्**=काम-क्रोध आदि पशुओं को (कामः पशुः, क्रोधः पशुः) **भियसे कः**=भयभीत करता है—उन्हें अपने से दूर भगाता है। सदा सत्कर्मों में लगा हुआ काम आदि से आक्रान्त नहीं होता। २. **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **जिगर्तिम्**=निगल जानेवाले इन लोभ आदि शत्रुओं को **अपजर्गुराणः**=(ejecting) परे फेंकता हुआ अथवा इनके आच्छादन से अपने को मुक्त करता हुआ **प्रतिश्वसन्तम्**=आक्रमण के लिए फुंकार मारते हुए इन **दानवम्**=असुरभावों को **अवहन्**=सुदूर विनष्ट करता है।

भावार्थ—सोमरक्षक पुरुष काम-क्रोध रूप पशुओं को दूर भगाता है। लोभ द्वारा निगले जाने

से अपने को बचाता है।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण से प्रभुप्राप्ति

अध॒ क्रत्वा॑ मघव॒न्तुभ्यं॑ दे॒वा अनु॒ विश्वे॑ अददुः सोम॒पेय॑म्।
यत्सूर्य॑स्य ह॒रितः॒ पत॑न्तीः पु॒रः स॒तीरुप॑रा एत॑शे॒ कः॥५॥

१. **अध**=अब **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए **क्रत्वा**=ज्ञान व शक्ति की प्राप्ति के हेतु से **विश्वेदेवाः**=सब देव **सोमपेयं**=सोम के पान को **अनु अददुः**=अनुकूलता से प्राप्त कराते हैं। देववृत्तियों के होने पर सोमरक्षण का सम्भव होता है। यही देवों का 'सोमपेय का दान' है। आसुरभाव ही सोम विनाश का कारण बनते हैं। सोमरक्षण के होने पर शक्ति व प्रज्ञान की प्राप्ति होती है। ये शक्ति व प्रज्ञान हमें प्रभु प्राप्ति का पात्र बनाते हैं २. जब हम प्रभु को प्राप्त करते हैं तो यह वह समय होता है **यत्**=जब कि वे प्रभु **सूर्यस्य**=ज्ञानसूर्य की **पतन्तीः**=चारों ओर फैलती हुई **हरितः**=रश्मियों को **पुरःसतीः**=सामने होती हुई तथा **उपराः** (Nearer) अधिक समीप **एतशे**=इस ज्ञानदीप्त (shining) पुरुष के निमित्त **कः**=करते हैं। हम प्रभु को प्राप्त करते हैं, प्रभु हमें ज्ञानरश्मियों को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—दिव्यगुणों को धारण करने के प्रयत्न से हम सोम का रक्षण करते हैं। सोमरक्षण से प्रज्ञान व शक्ति प्राप्त होती है। इससे हम प्रभु प्राप्ति के योग्य बनते हैं। प्रभु हमारे लिए ज्ञानरश्मियों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासनाग्नि का निर्माण

नव॒ यद॑स्य नव॒तिं च॑ भो॒गान्त्सा॒कं वज्रे॑ण म॒घवा॑ वि॒वृश्च॑त्।
अर्च॒न्तीन्द्रं॑ म॒रुतः॑ स॒धस्थे॒ त्रैष्टु॑भेन॒ वच॑सा बाधत॒ द्याम्॥६॥

१. **मघवा**=ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त यह उपासक **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **अस्य**=इस शंवर (ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध) नामक असुर के **नव नवतिं च**=निन्यानवे **भोगान्**=भोगसाधन नगरियों को **साकम्**=एकदम **विवृश्चत्**=काट डालता है। क्रियाशीलता के द्वारा भोगवृत्तियों से ऊपर उठता है। २. इसी शंवर की पुरियों के विनाश के लिए ही **मरुतः**=प्राणसाधना करनेवाले पुरुष **सधस्थे**=आत्मा व परमात्मा के सह-स्थान हृदय में **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **अर्चन्ति**=पूजते हैं। प्रभु पूजन हमें वासनाओं का शिकार नहीं होने देता। **त्रैष्टुभेन वचसा**='काम, क्रोध, लोभ' को रोकनेवाले प्रभु के स्तुतिवचनों से **द्याम्**=(दिव्=fire) वासनाओं की अग्नि को—कामाग्नि को—**बाधत**=बाधित करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हृदय में प्रभु का उपासन करने से शतशः वासनाओं का विनाश होकर वासनाग्नि शान्त हो जाती है।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

महिष् त्रय पचन

सखा॒ सख्ये॑ अपच॒त्तूय॑म॒ग्निर॒स्य क्रत्वा॑ महि॒षा त्री श॒तानि॑।

त्री सा॒कमिन्द्रो॒ मनु॑षः॒ सरां॑सि सु॒तं पि॑बद्वृत्र॒हत्या॑य॒ सोम॑म्॥७॥

१. **सखा**=सर्वमित्र **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **अस्य क्रत्वा**=इस जीव के प्रज्ञान व शक्ति के हेतु से **सख्ये**=अपने मित्रभूत इस जीव के लिए **तूयम्**=शीघ्र ही **शतानि**=शतवर्ष पर्यन्त **त्री**=तीन **महिषा**=महनीय 'ऋग् यजु साम' रूप ज्ञानों को **अपचत्**=परिपक्व करता है। यह परिपक्व ज्ञान ही इस नींव का 'ओदन' (भोजन) बनता है। इस ओदन से परिपुष्ट हुआ-हुआ जीव प्रभु को प्राप्त करता है। २. **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **साकम्**=साथ-साथ **मनुषः**=विचारशील पुरुष के **त्री सरांसि**=इन तीन ज्ञान जलाशयों को **पिबत्**=पीने का प्रयत्न करता है। 'ऋग् यजु साम' इन तीनों का ग्रहण करके वह 'स्थूल, सूक्ष्म व कारण' तीनों शरीरों को पवित्र कर लेता है। ऋचाओं के तालाब में (विज्ञान में) स्थूल शरीर का शोधन हो जाता है। यजु में (यज्ञों में) सूक्ष्म शरीर धुल जाता है तथा साम (उपासना) में कारणशरीर दीप्त हो उठता है। ३. यह **इन्द्र सुतं सोमम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को **वृत्रहत्याय**=वासनाओं के विनाश के लिए **पिबत्**=पीता है। सोमपान के द्वारा ज्ञान की आवरणभूत वासना को यह विनष्ट करता है। इस वृत्र रूप मेघ के हट जाने से इसका ज्ञानसूर्य चमक उठता है।

भावार्थ—प्रभु अपने मित्र जीव के लिए 'ऋग् यजु साम' रूप तीन महनीय ज्ञानों का पचन करते हैं। ये ही तीन सरस्वती के सरस् हैं। विचारशील पुरुष इनमें स्नान करता है। उत्पन्न सोम का रक्षण करता हुआ वासना का विनाश करता है।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

महिषत्रय मांस भक्षण

त्री यच्छ॒ता म॑हि॒षाणा॒मघो॒ मास्त्री सरां॑सि म॒घवा॑ सो॒म्यापाः॑।
का॒रं न विश्वे॑ अह्वन्त दे॒वा भर॒मिन्द्रा॑य॒ यदहिं॑ ज॒घान॑॥ ८॥

१. **यत्**=जब **शता**=शतवर्ष पर्यन्त, अर्थात् आजीवन **त्री महिषाणाम्**=तीनों महनीय 'ऋग् यजु साम' ज्ञानों के **मास्**=तत्त्व को **अघः**=तू खाता है, अर्थात् इनके तत्त्व का तू ग्रहण करता है। उस तत्त्व का जिसमें कि अद्भुत मानस आह्लाद प्राप्त होता है 'मानसम् अस्मिन् सीदति इति' तो **मघवा**=ज्ञानैश्वर्य वाला होता हुआ तू, हे **सौम्य**=सोमपान में उत्तम **सरांसि**=तीनों ज्ञान जलाशयों का **अपाः**=पान करता है। २. **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के व्यक्ति **कारं न**=सब संसार के निर्माण करनेवाले की तरह **भरम्**=संसार का भरण करनेवाले उस प्रभु को **अह्वन्त**=पुकारते हैं। वे प्रभु ही संसार को बनाते हैं, वे ही इसका भरण करते हैं। देववृति के व्यक्ति इस प्रभु को पुकारते हैं **यत्**=क्योंकि ये प्रभु ही **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **अहिम्**=(आहन्ति) विनाशक वासना को **जघान**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—हम सदा तीन महनीय 'ऋग् यजु साम' रूप ज्ञानों के तत्त्व को समझने का प्रयत्न करें—यही तीन महिषों के तत्त्व का भक्षण है। इन तीन ज्ञानसरोवरों का पान करें। प्रभु को पुकारें। प्रभु ही तो हमारी वासना को विनष्ट करेंगे।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः उशना वा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शुष्ण संहार

उ॒शना॒ यत्स॑ह॒स्यै३॒॑रया॑तं गृ॒हमि॑न्द्र जूजुवा॒नेभि॒रश्वैः॑।
व॒न्वा॒नो अत्र॑ स॒रथं॑ ययाथ॒ कुत्से॑न दे॒वैरव॑नोर्ह॒ शुष्ण॑म्॥ ९॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् व सर्वशक्तिमन् प्रभो! आप और **उशनाः**=(कामयमानः) आपकी

प्राप्ति की कामनावाला यह जीवन **यत्**=जब **सहस्यैः**=उत्तमशत्रुमर्षक बलवाले **जूजुवानेभिः**=वेगवान् **अश्वैः**=इन्द्रियाश्वों के साथ **गृहम् अयातम्**=इस शरीर गृह में प्राप्त होते हो तो **वन्वानः**=यह जीव सदा शत्रुओं को जीतनेवाला होता है। प्रभु के सम्पर्क में जीव शत्रुओं से कुचला नहीं जाता। २. हे प्रभो! आप **कुत्सेन** (कुथ हिंसायाम्) इन वासनाओं का विनाश करनेवाले जीव के साथ **अत्र**=यहाँ **सरथम्**=समान रथ में **ययाथ**=गति करते हैं तो आप ही **देवैः**=दिव्य गुणों के द्वारा **शुष्णम्**=सुखा देनेवाले इस काम रूप शत्रु को **ह**=निश्चय से **अवनोः**=(अहिंसीः) हिंसित करते हैं।

भावार्थ—जब जीव प्रभु प्राप्ति की कामनावाला होता हुआ अपने शरीरस्थ में प्रभु के साथ अधिष्ठित होता है तो प्रभु इस के लिए वासना को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञान+धन

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः॥ १०॥

१. हे प्रभो! आप **कुत्साय**=वासनाओं का संहार करनेवाले के लिए **सूर्यस्य**=ज्ञान सूर्य के **अन्यत् चक्रम्**=विलक्षण चक्र को **प्र अवृहः**=प्रकर्षेण बढ़ाइए। जीवनयात्रा की पूर्ति के लिए वह शरीर रथ प्रभु ने दिया है। प्रभु इस रथ में एक चक्र तो ज्ञान का चक्र स्थापित करें। तथा **अन्यत्**=दूसरा **यातवे**=जीवनयात्रा को चलाने के लिए **वरिवः**=धन रूप **चक्र अकः**=करें (बनाएँ)। जीवन यात्रा के लिए धन आवश्यक है। इस धन के ठीक उपयोग के लिए ज्ञान आवश्यक है। शरीर शकट का एक चक्र 'ज्ञान' है तो दूसरा 'धन'। २. हे प्रभो! आप **अनासः**=स्तुति शब्दों से शून्य **दस्यून्**=दास्यव वृत्तिवाले लोगों को **वधेन**=शास्त्रों द्वारा **अमृणः**=कुचल देते हैं। **दुर्योणे**= संग्राम में **मृध्रवाचः**=हिंसक वाणीवाले लोगों को **नि आवृणक्**=छिन्न करनेवाले होते हैं। हमें जीवनसंग्राम में विजय प्राप्ति के लिए स्तुतिवाला-देववृत्तिवाला-तथा अहिंसकवाणी वाला बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

भावार्थ—प्रभु हमारे शरीर शकट को ज्ञान व धन रूप पहियों से सुशोभित करें। हम जीवनसंग्राम में 'स्तुति-दिव्यवृत्ति व मधुरवाणी' को अपनाएँ। न हम 'अनास्' हो न 'दस्यु' और न ही 'मृध्रवाक्'।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

गौरिवीति का सुन्दर जीवन

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम्।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य॥ ११॥

१. 'गौरी' का अर्थ है वाक्, 'वीति' का भोजन। ज्ञान की वाणियाँ ही जिसका भोजन हैं वह 'गौरिवीति' है। हे प्रभो! इस **गौरिवीतेः**=ज्ञान रूप भोजनवाले ज्ञानी पुरुष से किये गये **स्तोमासः**=स्तवन **त्वा**=तुझे **अवर्धन्**=बढ़ानेवाले हों। ज्ञानी भक्त ही तो आप को सर्वाधिक प्रिय है 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'। २. आप इस **वैदथिनाय**=सदा ज्ञानयज्ञ के द्वारा आपका उपासन करनेवाले पुरुष के लिए **पिप्रुम्**=(प्र पूरणे) अपने पेट को ही भरते रहने की वृत्ति को—अत्यन्त स्वार्थ की वृत्ति को—**अरन्धयः**=विनष्ट करते हैं। ज्ञानी पुरुष स्वार्थ से ऊपर उठता है। ज्ञान की कमी ही मनुष्य

को स्वार्थी बनाती है। ३. यह स्वार्थी पुरुष छलछिद्र से चलता है—इसका जीवन कुटिल होता है। इसके विपरीत **ऋजिश्वा**=ऋजुमार्ग से आगे बढ़नेवाला (ऋजुनाश्वयति) ज्ञानी पुरुष **त्वाम्**=हे प्रभो! आप को ही **सख्याय आचक्रे**=मित्रता के लिए करता है। ज्ञानी पुरुष प्रभु का मित्र बनता है। यह **पक्तीः पचन्**=पाँच ज्ञानेन्द्रियों से सम्बद्ध पाँच ज्ञानों के परिपाक को करता है और **अस्य**=इस परमात्मा से उत्पन्न किये हुए **सोमम् अपिबः**=सोम को पीता है। सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखता है। यह सोमरक्षण ही उसे 'दीप्त ज्ञानाग्निवाला—स्वार्थ से ऊपर—प्रभु का मित्र' बनाता है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष ही प्रभु का सच्चा स्तोता है। ये ज्ञानी भक्त स्वार्थ से दूर रहते हैं। सरल मार्ग से चलते हुए ये प्रभु के मित्र होते हैं। ये प्रभु के मित्र ज्ञानौदन का परिपाक करते हैं, सोम का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट् त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'स्तवन' व 'पवित्र दीर्घजीवन'

नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन्॥ १२॥

१. नवम दशक तक—नब्बे साल तक—चलनेवाले 'नवग्व' हैं तथा दशम दशक तक जानेवाले 'दशग्व' हैं। ये **नवग्वासः**=नब्बे वर्ष तक चलनेवाले, **दशग्वासः**=१०० वर्ष तक चलनेवाले **सुतसोमासः**=सोम का (वीर्य का) सम्पादन करनेवाले लोग ही **अर्कैः**=मन्त्रों द्वारा **इन्द्रम्**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु की **अभ्यर्चन्ति**=प्रातः सायं पूजा करते हैं। यह पूजा ही उन्हें वासनाओं के आक्रमण से बचाती है। तभी वे सोम का रक्षण कर पाते हैं और दीर्घजीवी बनते हैं। २. ये **शशमाना**=प्रभु का शंसन करते हुए अथवा प्लुत गति से कार्यों को करते हुए **नरः**= उन्नति पथ पर चलनेवाले लोग **तं**=उस **अपिधानवन्तम्**=वासनाओं के आवरण से आच्छादित **चित्**=भी **गव्यम् ऊर्वम्**=इन्द्रियों के समूह को **चित्**=निश्चय से **अपव्रन्**=आच्छादन रहित करते हैं। शशमान ही इन्द्रियों को विषय वासनाओं से लिप्त होने से बचा पाते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का अर्चन करते हुए दीर्घजीवी बनें, और इन्द्रिय समूह को विषय वासनाओं से आवृत हो जाने से बचाएँ।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट् त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अवर्णनीय महिमा वाले' प्रभु

कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम॥ १३॥

१. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **या वीर्या चकर्थ**=जिन शक्तिशाली कर्मों को आप करते हैं, उन सबको **विद्वान्**=जानता हुआ मैं **नु**=अब **कथो**=कैसे ही **ते परिचराणि**=आपकी उपासना करूँ? आपके कर्म अनन्त हैं, मेरी वाणी की शक्ति सीमित है। सो उसके लिए आपकी महिमा का प्रतिपादन कैसे सम्भव है? आपकी महिमा मेरी वाणी से अतीत है। २. **च**=और **उ**=निश्चय से **या नव्या कृणवः**=जिन स्तुत्य कर्मों को आप करते हैं, हे **शविष्ठ**=शक्तिशालिन् प्रभो! **विदथेषु**=ज्ञानयज्ञों में हम **ते**=आपके **ता**=उन कर्मों का **इत् उ**=अवश्य ही **प्रब्रवाम**=खूब ही प्रतिपादन करें।

भावार्थ—ज्ञानयज्ञों में एक चित्त होकर हम प्रभु के शक्तिशाली कर्मों का प्रतिपादन करें। इस प्रकार इन ज्ञानयज्ञों से ही प्रभु का पूजन करें। वस्तुतः प्रभु की महिमा हमारी वाणी से अतीत है।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट् त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अनन्त शक्ति' प्रभु

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥ १४ ॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **एता विश्वा**=इन सब लोकों को **चकृवान्**=पालन व पोषण के दृष्टिकोण से आपने बनाया है। इन लोकों की प्रत्येक वस्तु ठीक उपयुक्त होने पर **भूरि**=हमारा भरण करनेवाली है। अज्ञानवश अयुक्त व अतियुक्त हुई-हुई वह वस्तु हमारे अकल्याण का कारण बनती है। हे प्रभो! आप **जनुषा वीर्येण**=अपने सहज (जन्मसिद्ध) पराक्रम से अथवा शक्तियों के विकास व पराक्रम से **अपरीतः**=शत्रुओं से कभी घेरे नहीं जाते। २. हे **वज्रिन्**=क्रियाशीलता रूप वज्रवाले प्रभो! आप **दधृष्वान्**=सब शत्रुओं का धर्षण करनेवाले हैं। आप **नु**=जब **या चित्**=जिन भी कर्मों को **कृणवः**=करते हैं, उस समय **ते**=आपकी **तस्याः**=उस **तविष्याः**=शक्ति का **वर्ता**=रोकनेवाला **न अस्ति**=नहीं है। आपकी शक्ति का कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता। आपके कर्मों को कोई विहत नहीं कर सकता।

भावार्थ—प्रभु की शक्ति अनन्त है। प्रभु का कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता।

ऋषिः—**गौरिवीतिः शाक्त्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट् त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वस्त्रा इव+रथं न

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥ १५ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **या**=जिन **ते**=आपके **नव्या**=प्रशस्त (नित्य नये) **ब्रह्म**=स्तोत्रों को **अकर्म**=करते हैं, वे **क्रियमाणा**=किये जाते हुए स्तोत्र, हे **शविष्ठ**=शक्तिशालिन् प्रभो! आपके लिए **जुषस्व**=प्रीतिजनक हों। आप उन स्तोत्रों को प्रीतिपूर्वक ग्रहण करिए। २. मैं **धीरः**=ज्ञान में रमण करनेवाला होकर **स्वपाः**=उत्तम कर्मोंवाला होता हुआ **वसूयुः**=निवास के लिए आवश्यक सब तत्त्वों की कामना वाला **भद्राः**=कल्याणकर **सुकृताः**=अच्छी प्रकार बुने हुए **वस्त्रा इव**=वस्त्रों की तरह उन स्तोत्रों को **अतक्षम्**=करता हूँ। वस्त्र हमें सर्दी गर्मी से बचाते हैं, इसी प्रकार ये स्तोत्र हमारा रक्षण करनेवाले होते हैं। **रथं न**=रथ के समान मैं इन स्तोत्रों को करता हूँ। रथ जैसे यात्रापूर्ति का साधन है, इसी प्रकार ये स्तोत्र हमारी जीवन यात्रा की पूर्ति का साधन बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु के स्तोत्र हमारे लिए वस्त्रों के समान रक्षण करनेवाले तथा रथ के समान जीवनयात्रा की पूर्ति के लिए होते हैं।

इन स्तोत्रों के द्वारा उत्तमता से भरण करनेवाला यह 'बभ्रु' कहलाता है—स्तोत्रों से रक्षित हुआ-हुआ यह 'आत्रेय' तो बनता ही है—काम, क्रोध, लोभ से दूर यह प्रार्थना करता है—

३०. [त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु दर्शन करनेवाला 'वीर'

क्व॑१स्य वी॒रः को अ॑पश्यदिन्द्रं॑ सु॒खर॑थमीय॑मानं॒ हरि॑भ्याम्।
यो रा॒या व॒ज्री सु॒तसो॑ममि॒च्छन्तदोको॒ गन्ता॑ पुरुहूत ऊ॒ती ॥ १ ॥

१. **क्व**=कहाँ है **स्यः**=वह **वीरः**=वीर? **कः**=कौन **अपश्यत्**=देखता है **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को? 'आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम्'। प्रकृति से आकृष्ट न हो जानेवाला कोई विरल वीर पुरुष ही प्रभु का दर्शन करता है। प्राकृतिक चमकीले विषयों से आकृष्ट न होना ही सबसे बड़ी वीरता है। २. उस प्रभु को जो कि **सुखरथम्**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले शरीर रथ को हमारे लिए देते हैं (सुखः रथः यस्मात्), जो रथ **हरिभ्याम्**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों से **ईयमानम्**=गतिवाला हो रहा है। उस प्रभु को हम देखें **यः**=जो कि **वज्री**=क्रियाशीलता रूप वज्रवाले होते हुए **राया**=धन के द्वारा **सुतसोमम्**=सोम का (वीर्य का) सम्पादन करनेवाले पुरुष को **इच्छन्**=चाहते हैं। और **ऊती**=रक्षण के हेतु से जो **पुरुहूतः**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभु **तद् ओकः**=उस सुत सोम पुरुष के घर को **गन्ता**=जानेवाले होते हैं। सुतसोम को प्रभु प्राप्त होते हैं, इसी का वे रक्षण करते हैं। यह सुतसोम पुरुष ही अन्ततः प्रभु का दर्शन करता है।

भावार्थ—प्रभु ने हमें इन्द्रियाश्वों से युक्त यह शरीररथ दिया है। प्रभु ही हमें रक्षण के लिए आवश्यक धन देते हैं। हमारे रक्षण के लिए स्वयं उपस्थित होते हैं। हम सुतसोम बनकर प्रभु के दर्शन करनेवाले वीर बनें।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नर-बुबुधान

अवा॑चचक्षं प॒दम॑स्य स॒स्वरु॒ग्रं नि॑धा॒तुर॒न्वा॑यमि॒च्छन्।
अपृ॑च्छम॒न्याँ उ॒त ते म॑ आहु॒रिन्द्रं॒ नरो॑ बुबुधा॒ना अ॑शेम ॥ २ ॥

१. **अस्य**=इस प्रभु के **सस्वः**=(गुप्तं द०, अन्तर्हित सा०) अन्तर्हित अथवा **स-स्वः**=प्रकाशमय **उग्रम्**=तेजस्वी **पदम्**=रूप को **अवाचचक्षम्**=विषयों से हटकर हृदय के अन्दर देखता हूँ। **निधातुः**=इस संसार के धारण करनेवाले के **अयम्**=आगमन व प्राप्ति को **अनु इच्छन्**=चाहता हुआ मैं **अन्यान् अपृच्छम्**=अन्य विद्वानों से भी जानने का प्रयत्न करता हूँ। **उत**=और **ते**=वे विद्वान् **मे**=मेरे लिए **आहुः**=कहते हैं कि **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले तथा **बुबुधानाः**=ज्ञानवाले होते हुए **अशेम**=प्राप्त करें। अर्थात् प्रभु-प्राप्ति का मार्ग यही है कि 'नर' बनें—बुबुधान बनें।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदयों में ही विद्यमान है। उन्हें देखने के लिए आवश्यक है कि (क) हम उन्नति पथ पर चलनेवाले 'नर' बनें। तथा (ख) निरन्तर ज्ञानज्योति को प्राप्त करनेवाले 'बुबुधान' हों।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जीव हित के लिए सृष्टि के निर्माता 'सर्वसेन मघवा'

प्र नु व॒यं सु॒ते या ते॑ कृ॒तानीन्द्र॒ ब्रवा॑म॒ यानि॑ नो॒ जुजो॑षः।
वेद॒दवि॑द्वाञ्छृ॒णव॑च्च वि॒द्वान्वह॑तेऽयं म॒घवा॒ सर्व॑सेनः ॥ ३ ॥

१. हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभो! **सुते**=इस उत्पन्न जगत् में या **ते कृतानि**=जो आपके कर्म हैं, **यानि**=जिनको **नः**=हमारे लिए **जुजोषः**=आप प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं, **वयम्**=हम **नु**=अब **प्रब्रवाम**=उनका प्रकर्षेण प्रतिपादन करते हैं। आपके उन कर्मों का स्मरण करते हुए आपका साधन करते हैं। २. **विद्वान्**=ज्ञानी पुरुष उन कर्मों को **शृणवत्**=(श्रावयेत्) सुनाए **च**=और **अविद्वान्**=न जानता हुआ उन्हें **वेदत्**=उस ज्ञानी पुरुष से जाने। **अयम्**=यह **मघवा**=सृष्टि रूप महान् यज्ञ (मघ=मख) को करनेवाला प्रभु **सर्वसेनः**=सूर्यचन्द्र अग्नि आदि तैंतीस देवरूप पूर्ण सेनावाला **वहते**=इस सृष्टि का वहन करता है प्रभु ही इस सारे संसार को चला रहे हैं। द्युलोकस्थ ग्यारह देव, अन्तरिक्षस्थ ग्यारह देव, तथा पृथिवीस्थ ग्यारह देव इस प्रकार ये तैंतीस देव उस महादेव के सैनिक हैं। इस देव सैन्य के साथ प्रभु संसार को चला रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु ने इस संसार को हमारे हित के लिए बनाया है। वे प्रभु इस देव सैन्य के साथ संसार का संचालन कर रहे हैं। प्रभु सेनापति हैं, सूर्य आदि देव उनके सैनिक।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

एकाग्रता का लाभ

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्त्रियाणाम्॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **जातः**=गतमन्त्र के अनुसार प्रभु की उपासना से विकसित शक्तियोंवाला होकर **मनः**=अपने मन को **स्थिरम्**=स्थिर (Still) शान्त-विषयों में न भटकनेवाला—**चकृषे**=करता है। मन को स्थिर करके तू **एकः इत्**=अकेला ही **भूयसः चित्**=संख्या में कितने ही अधिक हजारों शत्रुओं के साथ **युधये**=युद्ध के लिए **वेषीत्**=गतिवाला होता है—उनपर आक्रमण के लिए उनकी ओर जाता है। २. **अश्मानं चित्**=इस अविद्या पर्वत को भी **शवसा**=शक्ति के द्वारा **विदिद्युतः**=विच्छिन्न करता है। इस अविद्यापर्वत को विनष्ट करके **उस्त्रियाणाम्**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली **गवाम्**=इस वेदवाणी रूप गौवों के **ऊर्वम्**=समूह को **विदः**=प्राप्त करता है। मन के एकाग्र होने पर इन वेदवाणी रूप धेनुओं का ज्ञानदुग्ध प्राप्त होता ही है।

भावार्थ—उपासना से मन एकाग्र होता है। एकाग्र मन वासनाओं को पराजित करता है। इस मन के द्वारा अविद्या का विनाश होकर खूब ज्ञान की वृद्धि होती है।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

परः-परमः

परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत्।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः॥ ५॥

१. गतमन्त्र के अनुसार **यत्**=जब **त्वम्**=तू **परः**=विषयों से दूर होता हुआ **परमः**=उत्कृष्ट **आजनिष्ठाः**=विकसित शक्तियोंवाला होता है। उस समय जब कि तू **परावति**=उस (दूरात सुदूरे) दूर से दूर प्रदेश में भी वर्तमान प्रभु में **श्रुत्यं नाम**=श्रवणीय नाम को **बिभ्रत्**=धारण करता है। उस प्रभु का तू स्मरण करता है, जिसको कि लाँघने का कभी सम्भव ही नहीं—ऐसे स्थान में पहुँचा ही नहीं जा सकता जहाँ कि प्रभु नहीं। २. **अतः चित् इन्द्रात्**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु से ही **देवाः**=सब सूर्य आदि देव **अभयन्त**=भयभीत होते हैं 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः'। जो प्रभु का स्मरण करता है ये सब देव तेरे भी अनुकूल

होते हैं। उस समय प्रभु तेरे लिए **विश्वाः**=सब **दासपत्नीः**=(दासः पतिः यासां) दास-वृत्र-वासना जिनकी स्वामिनी बन रही थी उन **अपः**=रेतःकणों को **अजयत्**=जीतते हैं। तू रेतःकणों के अपने में सुरक्षित कर पाता है। वस्तुतः प्रभु ही वासना को विनष्ट करते हैं और इन रेतःकणों को हमें प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु का स्मरण करते हुए हम विषयों से परे और उत्कृष्ट विकासवाले बनते हैं। सब देव हमारे अनुकूल होते हैं और हम रेतःकणों को वासनाओं का शिकार नहीं होने देते।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु का अर्चन व वासना का विनाश

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः॥ ६॥

१. हे प्रभो! **तुभ्य इत्**=आपकी प्राप्ति के लिए ही **एते**=ये **मरुतः**=प्राणसाधक पुरुष **सुशेवाः**=उत्तम कल्याणवाले होते हुए—सबके लिए सुखों को पैदा करते हुए **अर्कम् अर्चन्ति**=स्तुतिमन्त्रों को करते हैं—स्तोत्रों के द्वारा अर्चन करते हैं और आपकी प्राप्ति के लिए ही **अन्धः सुन्वन्ति**=अपने अन्दर सोम को उत्पन्न करते हैं। स्तुतिमन्त्रों के द्वारा अर्चन व सोम के रक्षण से हम प्रभु प्राप्ति के पात्र बनते हैं। २. **इन्द्रः**=यह प्रभु का अर्चन करनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष **मायाभिः**=प्रज्ञानों के द्वारा **अहिम्**=इस विनाशक (आहन्ति) वासना को **प्रसक्षत्**=अभिभूत करता है जो वासना **ओहानम्**=(देवान् अपबाधमानम्) दिव्य गुणों का बाधन करती है। **अपः आशयानम्**=रेतःकणों को आवृत करके शयन करती है, अर्थात् हमारे रेतःकणों की स्वामिनी बन जाती है और **मायिनम्**=अत्यन्त माया—छल, छिद्र व कुटिलता—वाली है। यह वासना हमें दिव्यगुणों से दूर—रेतःकणों का भोग में अपव्यय करनेवाला—तथा छलछिद्रमय जीवनवाला बना देती है। प्रभु की अर्चना हमें इस वासना से बचाती है।

भावार्थ—हम प्रभु प्राप्ति के लिए (क) प्राणसाधना करें (मरुतः) सबके जीवन को सुखी बनाने का प्रयत्न करें (सुशेवाः), स्तोत्रों को अपनाएँ (अर्चनमर्कम्) तथा सोम का रक्षण करें (अन्धः सुन्वन्ति)। प्रभु हमारे लिए वासना का विनाश करेंगे।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नमुचि के शिर का उद्वर्तन (उलटना)

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्संचकानः।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन्॥ ७॥

१. हे **मघवन्**=ज्ञानैश्वर्यवाले प्रभो! आप **संचकानः**=स्तूयमान होते हुए **दानम् इन्वन्**=हमारे जीवनों में दानवृत्ति को प्रेरित करते हुए—हमें दानशील (=त्याग की वृत्तिवाला) बनाकर भोगमार्ग से दूर करते हुए—**जनुषा**=अपने जन्म से **मृधः**=हमारा कत्ल करनेवाले इन आसुरभावों को **गवा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **सु**=अच्छी प्रकार **वि अहन्**=नष्ट करते हैं। २. **अत्रा**=इस जीवन में **यद्**=जब आप **दासस्य**=हमारा उपक्षय (विनाश) करनेवाले इस **नमुचेः**=हमारा पीछा न छोड़नेवाले अहंकार के **शिरः**=सिर को **अवर्तयः**=आप उलटा देते हैं, अर्थात् हमारे अहंकार को विनष्ट कर देते हैं तो इस **मनवे**=विचारशील पुरुष के लिए आप **गातुम् इच्छन्**=मार्ग को चाहते हैं, अर्थात् इस विचारशील पुरुष को आप मार्ग से ले चलते हैं। अहंकार ही मनुष्य को मार्ग

भ्रष्ट करता है। विचारशील पुरुष सदा मार्ग पर चलनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञान देकर—त्याग की वृत्तिवाला बनाते हुए वासनाओं से दूर करते हैं। अहंकार को नष्ट करके हमें मार्ग पर ले-चलते हैं।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मस्तिष्क व शरीर रूप दो चक्रोंवाला जीवनशकट

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **माम्**=मुझे **हि**=निश्चय से **युजम् अकृथा**=अपना साथी बनाते हो—मेरे लिए अपनी मित्रता का प्रदान करते हो। **आत् इत्**=और अब शीघ्र ही **दासस्य**=मेरे विनाशकारी (दसु उपक्षये) **नमुचेः**=अहंकार के **शिरः**=सिर को **मथायन्**=कुचल देते हो। २. **स्वर्यम्** (स्वृ उपतापे)=अत्यन्त उपतप्त करनेवाले **वर्तमानम्**=मेरे जीवन में विद्यमान **अश्मानं चित्**=अविद्यापर्वत को भी आप विनष्ट करते हैं। और इन **मरुद्भ्यः**=प्राणसाधना करनेवाले पुरुषों के लिए **रोदसी**=द्यावापृथिवी को—मस्तिष्क व शरीर को—**चक्रिया इव**=जीवन शकट के दो चक्रों की तरह **प्र (अकृथाः)**=प्रकर्षेण कर देते हैं। मस्तिष्क की दीप्ति व शरीर की दृढ़ता से इनका जीवन शकट इन्हें लक्ष्य स्थान पर पहुँचानेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे अहंकार व अज्ञान को नष्ट करते हैं। हमारे जीवन शकट को ज्ञान व शक्ति के चक्रों से युक्त करके हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचने के योग्य करते हैं।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्त्री रूप आयुध

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥

१. **दासः**=हमारा उपक्षय करनेवाला वृत्र (कामदेव) **हि**=निश्चय से **स्त्रियः**=स्त्रियों को **आयुधानि चक्रे**=अपना आयुध (अस्त्र) बनाता है। तपोविद्या के नाश लिए वासनाओं के रूप में ये हमारे पास आती है, परन्तु **अस्य**=इस दास की ये **अबलाः सेनाः**=स्त्री रूप सेनाएँ **मा**=मेरा **किं करन्**=क्या कर सकती हैं। ये मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं। २. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **अस्य**=इस प्रभु की **उभे**=दोनों **धेने** (धेना=वाक्) अपराविद्या व पराविद्या रूप वाणियों को **अन्तः अख्यत्**=अपने अन्दर देखने का प्रयत्न करता है (चक्ष्=to see)। इन धेनाओं को अपने अन्दर देखता हुआ यह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **अथ**=अब **युधये**=युद्ध के लिए **दस्युम्**=उन स्त्रीरूप आयुधों का प्रयोग करनेवाले दस्यु को **उपप्रैत्**=आक्रान्त करता है। ज्ञान द्वारा वासनाओं पर आक्रमण करता है।

भावार्थ—संसार की वासनाओं में 'स्त्री के प्रति आसक्ति' प्रबलतम वासना है। हम ज्ञान द्वारा इस पर विजय पाने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

बछड़े का गौ से मेल

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन्।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥ १० ॥

१. **अत्र**=गतमन्त्र के अनुसार जब हम वासना पर विजय पा लेते हैं तो **गावः**=ये ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणीरूप गौएँ **इह**=इस जीवन में **अभितः**=चारों ओर से **सम् अनवन्त**=सम्यक् गतिवाली होती हैं, वे गौएँ **यद्**=जो **इह**=यहाँ **वत्सैः**=(वदति इति वत्सः) वेदमन्त्रों का उच्चारण करनेवाले पुरुष रूप वत्सों से **वियुताः**=वियुक्त (पृथक्) **आसन्**=थीं। पुरुष का वेदवाणी से मेल तो इस प्रकार है जैसा कि बछड़े का अपनी मातृभूत गौ से मेल हो। २. **ताः**=उन वेदवाणी रूप गौवों को **इन्द्रः**=प्रभु **समसृजत्**=इन वत्सों के साथ संसृष्ट कर देता है। **अस्य**=इस बछड़े की **शाकैः**=शक्तियों के हेतुओं से वे प्रभु ऐसा करते हैं जिस बछड़े को मातृदुग्ध पीने को नहीं प्राप्त होता, वह जैसे निर्बल हो जाता है, इसी प्रकार वेदमाता से पृथक् हुआ-हुआ पुरुष निर्बल हो जाता है। यह सब होता तब है **यद्**=जब **ईम्**=निश्चय से **सुषुताः**=सम्यक् उत्पन्न हुए-हुए **सोमासः**=सोमकण इस सोम रक्षक पुरुष को **अमन्दन्**=आनन्दित करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा प्रभु वत्सतुल्य हम लोगों का गौ के तुल्य वेदवाणी से मेल कर देते हैं। इससे उस वेदवाणी के ज्ञानदुग्ध का पान करके हमारी शक्तियों का पोषण ठीक से होता है।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासना विनाश व ज्ञानदुग्धपान

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद् वृषभः सादनेषु।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम्॥ ११॥

१. **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से **सोमाः**=सोमकण **बभ्रुधूताः**=अपना धारण करनेवाले से शोधित किये हुए **अमन्दन्**=उस बभ्रु के जीवन को आनन्दयुक्त करते हैं, तो यह **वृषभः**=सोमरक्षण से शक्तिशाली बना हुआ मनुष्य **सादनेषु**=अपने गृहों में **अरोरवीत्**=खूब ही प्रभु का स्तवन करता है—प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करता है। सोमरक्षण मनुष्य को प्रभु-श्रवण बनाता है। सोमी पुरुष सदा प्रभु भक्त होता है। २. इस समय **पुरन्दरः**=काम, क्रोध, लोभ आदि असुरों की पुरियों का विदारण करनेवाला, **पपिवान्**=सोम का पान (रक्षण) करनेवाला **इन्द्रः**=शक्तिशाली प्रभु **अस्य**=इस स्तोता को **पुनः**=फिर **उस्रियाणाम्**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली **गवाम्**=वेदवाणी रूप गौओं को **अददात्**=देता है। इस स्तोता के लिए वासनाओं को विनष्ट करके, ज्ञानदुग्धदात्री वेदवाणी रूप गौओं को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से हमारी वृत्ति प्रभुस्तवन की होती है। इस स्तोता को प्रभु वासनाविनाश के साथ ज्ञानदुग्धदात्री वेदवाणीरूप धेनुओं को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऋणञ्चय व रुशम (आचार्य+उपाध्याय)

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम्॥ १२॥

१. 'ऋण' शब्द जल के लिए (rain) प्रयुक्त होता है—ये जल ही शरीर में रेतःकण हैं। इनका संचय करनेवाला—ऊर्ध्वरेता—ही ऋणञ्चय है। एक आचार्य को इसी प्रकार ऊर्ध्वरेता 'ऋणञ्चय' होना ही चाहिए। एक आचार्य कुल में सब उपाध्याय भी 'रुशम' (रुश हिंसायाम्)-काम, क्रोध आदि शत्रुओं के हिंसक होने उचित हैं। ऐसे आचार्यों व उपाध्यायों से शिक्षा ग्रहण करते

हुए ही विद्यार्थी उत्तम ज्ञानयुक्त जीवनवाले बन सकते हैं। सो विद्यार्थी कहते हैं कि **गवाम्**=ज्ञान की वाणियों के **चत्वारि सहस्रा**=चार हजार को यजुर्वेद सामवेद को—**ददतः**=देते हुए **रुशमाः**=वासनाओं का संहार करते हुए उपाध्यायों ने, हे **अग्ने**=प्रभो! **इदं भद्रम् अक्रन्**=यह कल्याण ही किया है। यजुर्वेद के यज्ञों व साम की उपासना द्वारा ही तो वासनाओं का संहार होता है। २. इन उपाध्यायों से इन ज्ञानों को तो हमने ग्रहण किया ही है। साथ ही **नृणां नृतमस्य**=आगे ले-चलनेवालों में सर्वश्रेष्ठ (मनुष्यों के मनुष्य) **ऋणञ्चयस्य**=उर्ध्वरेता आचार्य के **प्रयता**=पवित्र **मघानि**=ज्ञानैश्वर्यों को हमने **प्रत्यग्रभीष्म**=ग्रहण किया है। इन उपाध्यायों व आचार्य ने ही हमें इस ज्ञानदुग्धवाणी वेदवाणीरूप गौ के ज्ञानदुग्ध को पिलाया है।

भावार्थ—हम आचार्य व उपाध्यायों से ज्ञान को ग्रहण करें। इसी प्रकार हम वासनाओं का संहार करनेवाले व ऊर्ध्वरेता बन पाएँगे—'रुशम व ऋणञ्चय बन पाएँगे।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समावर्तन

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥ १३ ॥

१. आचार्य व उपाध्याय विद्यार्थी को ज्ञान देकर सुन्दर जीवनवाला (=सुपेशस्) बनाकर घर में वापिस भेजते हैं। यही समावर्तन है। समावृत्त होता हुआ विद्यार्थी कहता है कि हे **अग्ने**=प्रभो! **रुशमासः**=ये वासनाओं का संहार करनेवाले उपाध्याय **गवां सहस्रैः**=हजारों ज्ञान वाणियों के द्वारा **सुपेशसम्**=उत्तम रूपवाला (उत्तम जीवनवाला) बनाकर **मा**=मुझे **अस्तम् अवसृजन्ति**=घर को प्राप्त करते हैं। आज मुझे सुपेशस् (पेश=Shape) बनाकर घर पर लौटने की अनुमति देते हैं। २. वस्तुतः **परितक्म्यायाः** (परितः तमसा तकति) चारों ओर से अन्धकार से व्याप्त करनेवाली **अक्तोः व्युष्टौ**=अज्ञान रात्रि के समाप्त होने पर—ज्ञान प्रभात के रूप में परिवर्तित हो जाने पर—**इन्द्रम्**=मुझ जितेन्द्रिय पुरुष को **सुतासः**=उत्पन्न हुए **तीव्राः**=प्रबल शक्तिवाले ये सोमकण **अममन्दुः**=आनन्द को देनेवाले हुए हैं। इनके द्वारा ही ज्ञानाग्नि की प्रचण्डता से मेरे लिए ज्ञानग्रहण का भी सम्भव हुआ है और उन्होंने ही मेरे गृहस्थ को सुसन्तति-वाला बनाया है।

भावार्थ—आचार्यों व उपाध्यायों ने ज्ञान देकर मेरे अज्ञानान्धकारवाली रात्रि को समाप्त किया है। मुझे सोमरक्षक बनाकर आनन्दित किया है।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तीन रात्रियों का बीतना

औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम्।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥ १४ ॥

१. 'प्रकृति जीव परमात्मा' के ज्ञान का अभाव ही रात्रि है। इन तीन रात्रियों के बीतने तक विद्यार्थी आचार्य कुल में ही रहता है। ये आचार्य 'ऋणञ्चय' है—शक्तिकणों का शरीर में संचार करनेवाले ऊर्ध्वरेता पुरुष हैं। अन्य उपाध्याय भी वासनाओं का संहार करनेवाले 'रुशम' हैं। ये ऋणञ्चय रुशमों के राजा ही है, सब उपाध्यायों में आचार्य की अद्भुत ही शोभा है—वे अपनी ज्ञानदीप्ति से चमकते प्रतीत होते हैं। **सा परितक्म्या रात्री**=वह चारों ओर से अन्धकार से कांपनेवाली रात **औच्छत्**=आज समाप्त हो गई है (=विवासित हो गई है), **यान्**=जिस रात्रि में

मैंने **रुशमानाम्**=रुशमों के अतीत वासनाओंवाले उपाध्यायवाले उपाध्यायों **राजनि**=राजा **ऋणञ्चये**=ऊर्ध्वरेता आचार्य के समीप रहकर बिताया है। इन्होंने ही अपने ज्ञान के प्रकाश से मेरी अज्ञानान्धकारवाली रात्रि को समाप्त किया है। २. आज यह विद्यार्थी **अत्यः न**=सततगामी अश्व के समान **वाजी**=शक्तिशाली बना है। **रघुः**=खूब तीव्र गतिवाला—आलस्य.....स्फूर्तिमय जीवनवाला हुआ है। **अज्यमानः**=विद्या आदि गुणों से इसका जीवन अलंकृत हुआ है। **बभ्रुः**=यह भरणपोषण में समर्थ बना है। क्योंकि इसने **चत्वारि सहस्रा**=इन चार हज़ार यजु व साम वाणियों का **असनत्**=सम्भजन किया है। यह यज्ञों व उपासना के द्वारा सचमुच 'घर का सुन्दर भरण कर पाएगा'।

भावार्थ—अज्ञानान्धकार दूर होने तक आचार्यकुल में रहकर यह विद्यार्थी स्फूर्तिमय गुणालंकृत जीवनवाला बना है। यह घर का उत्तमता से भरण करनेवाला 'बभ्रु' क्यों न बनेगा? इसने यज्ञों व उपासना का पाठ पढ़ा है। ये यज्ञ व उपासना इसके घर को उत्तम बनाएँगे ही।

ऋषिः—**बभ्रुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्र ऋणञ्चयश्च** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अयस्मय (लोहा दृढ़) शरीर

चतुः॑सह॒स्रं गव्य॑स्य प॒श्वः प्रत्य॑ग्रभीष्म रु॒शमे॑ष्वग्ने।
घ॒र्मश्चि॑त्त॒प्तः प्र॒वृजे॒ य आसी॑दय॒स्मय॒स्तम्वादा॑म॒ विप्राः॑ ॥ १५ ॥

१. उस **पश्वः**=(पश्यति) सर्वद्रष्टा प्रभु के **गव्यस्य**=इन ज्ञानदुग्धदात्री वेदधेनुओं के **चतुः सहस्रम्**=इन यजु साम रूप चार हजार मन्त्रों को हमने **रुशमेषु**=वासनाओं के संहारक उपाध्यायों के चरणों में बैठकर **प्रत्यग्रभीष्म**=ग्रहण किया है। २. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **घर्मः**=यह शक्ति की उष्णतावाला शरीर **चित् तप्तः**=निश्चय से खूब ही तप वाला हुआ है, अर्थात् आचार्यकुल में मैंने तपस्यापूर्वक निवास किया है। अतएव **यः**=जो यह शरीर **प्रवृजे आसीत्**=सब रोगों व बुराइयों के छोड़नेवाला हुआ वह **अयस्मयः**=लोहे का बना हुआ—लोह दृढ़ बना है। हम **विप्राः**=ज्ञानी बनकर **तम् उ**=उस लोहों जैसे दृढ़ शरीर को ही **आदाय**=सदा ग्रहण करनेवाले हों।

भावार्थ—आचार्य कुल में विद्यार्थी ज्ञान को ग्रहण करे और शरीर के तप की अग्नि में तपा कर सब बुराइयों व रोगों से रहित करके अपने शरीर को अयोमय (लोह दृढ़) बनाए।

इस प्रकार ज्ञान व तपस्या द्वारा अपने रक्षण की कामनावाला 'अवस्यु' आत्रेय बनाता है—सब त्रिविध कष्टों से दूर होता है। यह कहता है कि—

३१. [एकत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जितेन्द्रियता-ज्ञानैश्वर्य-उपासना

इन्द्रो॒ रथा॑य प्र॒वतं॑ कृणोति॒ यम॒ध्यस्था॒न्मघ॑वा वाज॒यन्त॑म्।
यू॒थेव॑ प॒श्वो व्यु॑नोति गो॒पा अरि॑ष्टो याति प्रथ॒मः सिषा॑सन् ॥ १ ॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **रथाय**=अपने शरीररथ के लिए **प्रवतम्**=(easy passage) निर्विघ्न मार्ग को **कृणोति**=बनाता है। विषय वासनाओं के टीले ही तो जीवनयात्रा के मार्ग को विषम बनाते हैं। उनसे ऊपर उठता हुआ यह व्यक्ति अपने मार्ग को सुगम बनाता है। उस रथ के मार्ग को सुगम बनाता है। **यम्**=जिस **वाजयन्तम्**=शक्तिशाली की तरह आचरण करते हुए रथ पर **मघवा**=ज्ञानैश्वर्यवाला यह इन्द्र **अध्यस्थात्**=अधिष्ठित होता है। २. **इव**=जैसे **गोपाः**=एक

ग्वाला **पशवः यूथा**=पशुओं के झुण्ड को **व्युनोति**=प्रेरित करता है, उसी प्रकार यह रथाधिष्ठित मघवा **अरिष्टः**=रोगों व वासनाओं से हिंसित न होता हुआ **प्रथमः याति**=सर्वमुख्य होता हुआ आगे बढ़ता है। अपनी इस यात्रा में यह **सिषासन्**=(संभक्तुमिच्छन्) सदा प्रभु की उपासना की कामनावाला होता है। यह प्रभु की उपासना ही इसे प्रथम स्थान प्राप्त करने के योग्य बनाती है। उस प्रभु को अपना गोप बनाकर यह 'काम-क्रोध आदि' पशुओं को ठीक से प्रेरित करने में समर्थ होता है। वशीभूत पशु कल्याणकर हैं। अवारा पशु ही परेशानी का कारण बना करते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रियता (इन्द्रः) व ज्ञानैश्वर्य (मघवा) जीवनयात्रा को सफलता से पूर्ण करने के प्रमुख साधन हैं। जितेन्द्रियता व ज्ञानैश्वर्य के लिए उपासना (सिषासन्) मूल साधन है।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञानग्रहण व ज्ञानप्रदान

आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ॥ २॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले जीव! **आ प्र द्रव**=सब प्रकार से हमारी ओर आनेवाला तू हो अथवा निरन्तर अपने कर्तव्य कर्मों में गति वाला तू हो। **मा विवेनः**=उपासक कामनावाला न होना। सदा वेदाभिराम (ज्ञान-प्राप्ति) की कामनावाला बन तथा वैदिक कर्मयोग (वेदानुकूल कर्मों को करने) की कामनावाला हो। **पिशङ्गराते**=अलंकृत करनेवाले धनवाले। **नः**=हमें **अभि सचस्व**=प्रातः सायं दोनों समय संगत होनेवाला हो, अर्थात् प्रातः सायं ध्यान करने वाला तू बन। २. इस प्रकार करने पर हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **त्वद् अन्यः**=तेरे से भिन्न कोई **अन्यत्**=और **वस्यः**=उत्तम वसुओंवाला है—तूने ही अपने निवास को उत्तम बनाया है। **अमेनान् चित्**=वेदवाणी रूप पत्नी से रहित पुरुषों को **चित्**=भी तू **जनिवतः**=वेदवाणी रूप जायावाला **चकर्थ**=करता है, अर्थात् उनके लिए वेदज्ञान को देनेवाला होता है।

भावार्थ—हमारे में सदा प्रभु प्राप्ति की कामना हो। हम ज्ञानधन से अपने को अलंकृत करें। औरों के लिए भी वेदज्ञान के देनेवाले बनें।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति व ज्ञान के दाता प्रभु

उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः॥ ३॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जीवन बिताने पर **सहसः**=उस शक्तिपुत्र प्रभु से **उद्यत् सहः**=उदय होता हुआ शत्रुनाश बल **आजनिष्ट**=हमारे में प्रादुर्भूत होता है। **इन्द्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **विश्वा इन्द्रियाणि**=सब इन्द्रियों को व बलों को **देदिष्ट**=हमारे लिए देते हैं। २. **वव्रे अन्तः**=हमें आवृत कर लेनेवाले अज्ञानान्धकार के बीच में **सुदुघाः**=उत्तम ज्ञानदुग्ध को पूरित करनेवाली वेदवाणी रूप गौओं को **प्राचोदयत्**=प्रकर्षेण प्रेरित करते हैं और इस प्रकार **ज्योतिषा**=ज्ञान के प्रकाश से **संववृत्वत्**=आवृत कर लेने वाले अन्धकार को **वि अव**=निवारित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही बल देते हैं। प्रभु ही अज्ञानान्धकार को नष्ट करके ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

ते अनवः

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ॥ ४॥

१. हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! **ते अनवः**=तेरे ये प्राणशक्तिसम्पन्न पुरुष **रथम्**=अपने शरीररथ को **अश्वाय**=इन्द्रियाश्वों से सम्पर्क के लिए **तक्षन्**=बनाते हैं, अर्थात् इस रथ में ये घोड़े सदा जुते रहते हैं और इनका जीवन क्रियाशील होता है। यह आपका व्यक्ति **त्वष्टा**=(त्विषेर्दीप्तौ) बड़े दीप्त जीवनवाला होता हुआ **वज्रम्**=अपने क्रियाशीलतारूप वज्र को **द्युमन्तम्**= प्रशस्त ज्योतिर्मय बनाता है। संक्षेप में, प्रभु का व्यक्ति क्रियाशील होता है और इसकी क्रियाएँ ज्ञानपूर्वक होती हैं। २. **ब्रह्माणः**=स्तोतालोक **अर्कैः**=स्तुति मन्त्रों द्वारा **महयन्तः**=पूजन करते हुए **अवर्धयन्**=प्रभु की महिमा को बढ़ाते हैं। **अहये हन्तवा उ**=और (उ) इस प्रभु की महिमा के वर्धन के द्वारा ये वासना को विनष्ट करने में समर्थ होते हैं। वस्तुतः जब हृदय में प्रभु का निवास होता है तो वहाँ वासना का प्रवेश होता ही नहीं। ऐसे हृदय में प्रविष्ट होते ही वासना भस्म के रूप में हो जाती है।

भावार्थ—प्रभु के व्यक्ति क्रियामय होते हैं। इनकी क्रियाएँ ज्ञानपूर्वक होती हैं। ज्ञानयज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन करते हुए ये वासना को विनष्ट कर पाते हैं।

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अन्तःशत्रुओं के विजय से बाह्य शत्रुओं का विजय

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून्॥ ५॥

१. हे प्रभो! **यत्**=जब **वृषणः**=शक्तिशाली पुरुष **वृष्णे ते**=शक्तिशाली आपके लिए **अर्कम् अर्चान्**=स्तुति मन्त्रों के द्वारा पूजन करते हैं। हे **इन्द्र**=हे सर्वशक्तिमन् प्रभो! तब **ये ग्रावाणः**=स्तोता लोग **अदितिः** (अदितयः)=स्वास्थ्यवाले होते हैं तथा **सजोषाः**=मिलकर परस्पर प्रीतिपूर्वक कार्यों को करनेवाले होते हैं। २. **अनश्वासः**=बिना ही घोड़ोंवाले **अरथाः**=रथों से भी रहित **ये**=जो **पवयः**=अपने को पवित्र बनानेवाले लोग हैं, वे **इन्द्रेषिताः**=प्रभु से प्रेरित हुए-हुए **दस्यून् अभ्यवर्तन्त**=दस्युओं पर आक्रमण करनेवाले होते हैं। ये बिना ही रथों व घोड़ों के अपने शत्रुओं को जीतनेवाले होते हैं। अन्तःशत्रुओं के विजय से अपने को शक्तिशाली बनाकर ये बाह्य शत्रुओं पर भी विजय पानेवाले होते हैं। 'इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया'।

भावार्थ—प्रभु के उपासक अपने जीवन को पवित्र बनाकर बाह्य शत्रुओं पर भी विजय पानेवाले होते हैं।

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्रभु के पूर्व व नूतन कर्म

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः॥ ६॥

१. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**=आपके **पूर्वाणि**=हमारा पालन व पूरण करनेवाले

करणानि=कामों को प्रवोचम्=प्रकर्षेण प्रतिपादित करता हूँ—उनके महत्त्व को ज्ञानयज्ञों में कहता हूँ। हे मघवन्! या=जिन नूतना=स्तुत्य कर्मों को आप चकर्थ=करते हैं, उन्हें मैं प्रतिपादित करता हूँ। प्रभु के पालनात्मक पूरणात्मक व स्तुत्य कर्मों का प्रतिपादन करता हुआ मैं प्रभु की उपासना करता हूँ। २. हे शक्तीवः=निरतिशय शक्तिसम्पन्न प्रभो! यद्=जो आप उभे रोदसी=दोनों द्यावापृथिवी को विभराः=विशेष रूप से धारित करते हैं वे आप मनवे=विचारशील पुरुष के लिए दानुचित्राः=(चित्रदानाः सा०) अद्भुत दानवाले, अद्भुत शक्ति को प्राप्त करानेवाले व (दाप् लवने) अद्भुत प्रकार से वासनारूप शत्रुओं का विनाश करनेवाले अपः=कर्मों को जयन्=जीतते हैं। अपने उपासक के द्यावापृथिवी—मस्तिष्क व शरीर का धारण करते हुए आप उसे कर्मशील बनाते हैं। जिससे कि वह सब वासनाओं का विनाश कर पाता है।

भावार्थ—प्रभु के कर्म अद्भुत है। प्रभु द्यावापृथिवी का धारण करते हुए हमें भी उन कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं जो कि हमारी शक्ति का वर्धन करते हैं और हमारी वासनाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'दस्यु नाशक' प्रभु

तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः॥ ७॥

१. हे दस्म=दर्शनीय व दुःखध्वंसक विप्र=हमारा विशेष रूप से पूरण करनेवाले प्रभो! इत् नु=निश्चय से तत्=वह ते=आपका करणम्=महत्त्वपूर्ण कर्म है यत्=कि अहिं घ्नन्=वासना को विनष्ट करते हुए आप अत्र=यहाँ हमारे जीवन में ओजः=शक्ति को मिमीथाः=निर्मित करते हैं। २. शुष्णस्य=इस शोषक 'काम' (=वासना) की मायाः=छलयुक्त प्रपञ्चों को चित्=निश्चय से परि अगृभ्णाः=काबू करते हैं। इसके छलों से हमें बचाते हैं और प्रपित्वं यन्=समीपता को प्राप्त होते हुए दस्यून्=हमारी दास्यववृत्तियों को अप असेधः=सुदूर निषिद्ध करते हैं। दूर से ही इन्हें रोककर हमारे समीप नहीं आने देते।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमारे समीप होते हुए हमारे शत्रुओं को दूर भगाते हैं।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः; इन्द्रः कुत्सो वा; इन्द्रः उशना वा** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुदुघाः अपः अरमयः

त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः॥ ८॥

१. हे इन्द्र=परमैश्वर्यशाली प्रभो! त्वम्=आप यदवे=यत्नशील पुरुष के लिए—सतत उद्योग में लगे हुए व्यक्ति के लिए तथा तुर्वशाय=त्वरा से शत्रुओं को वश में करनेवाले व्यक्ति के लिए अपः=इन रेतःकणों को अरमयः=शरीर में ही रमणवाला सुदुघाः=उत्तमता से प्रपूरण करनेवाले पारः=उसे सब रोगों व वासनाओं से पार करनेवाले होते हैं। इन रेतःकणों बनाते हैं और इस प्रकार के रक्षण से शरीर में रोग नहीं आते तथा मन में वासनाओं का विनाश हो जाता है। इसीलिए इन्हें 'सुदुघाः' कहा है। ये हमारा उत्तम पूरण करते हैं। २. हे इन्द्रः=शत्रु विनाशक प्रभो! आप और कुत्स=(शत्रु विनाशक के लिए यत्नशील पुरुष) उग्रम्=उस अतिप्रबल—शत्रु 'काम' को

अयातम्=आक्रान्त करते हो। उस समय हे प्रभो! आप ही **ह**=निश्चय से **कुत्सम्**=इस शत्रुविनाशक पुरुष को **अवहः**=शत्रु विनाश के द्वारा घर में (ब्रह्मलोक में) प्राप्त कराते हैं। **यद्**=जब **वाम्**=आप दोनों को (इन्द्र और कुत्स को) **उशना देवाः**=प्रभु प्राप्ति की कामनावाले देववृत्ति के व्यक्ति **ह**=निश्चय से **समरन्त**=प्राप्त होते हैं। देववृत्ति के व्यक्ति इन्द्र (प्रभु) की उपासना करते हैं और ज्ञानवर्धन के लिए कुत्स (वासनाओं का विनाश करनेवाले आचार्य) के समीप उपस्थित होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें रेतःकणों को प्राप्त कराके भवसागर के पार ले-जाते हैं। इन रेतःकणों के रक्षण के लिए प्रभु ही हमें 'काम' के विनाश में समर्थ करते हैं। देववृत्ति के व्यक्ति प्रभु की उपासना करते हैं, ज्ञानप्राप्ति के लिए इन कुत्स लोगों के समीप उपस्थित होते हैं।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः कुत्सश्च वा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

हृदय से अन्धकार का निवारण

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु।
निः षीमुद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि॥ ९ ॥

१. 'इन्द्र' प्रभु है—इस प्रभु का उपासक जीव भी जितेन्द्रिय बनकर 'इन्द्र' हो जाता है। उस समय जीव कुत्स होता है—वासनाओं का संहार करनेवाला। हे **इन्द्राकुत्सा**=इन्द्र व कुत्स **रथेन**=इस शरीररथ से **वहमाना**=उह्यमान (ले जाये जाते हुए) **वाम्**=आप को **अत्याः**=ये सततगामी—निरन्तर क्रिया में लगे हुए इन्द्रियाश्व **कर्णे**=उस प्रभु की वाणी को सुनने के स्थान में **अपिवहन्तु**=निश्चय से प्राप्त कराएँ। २. आप दोनों **सीम**=सब ओर से **अद्भ्यः**=प्रजाओं के हित के लिए **मघोनः**=हे परमात्मन्! **निः धमथः**=दुष्टजनों को, बुरे विचारों को निकालो **सधस्थात्**=साथियों के भी **हृदः**=हृदय से **तमांसि**=अन्धकारों को **निः वरथः**=निवारण करो।

भावार्थ—वह परमात्मा हमारे हृदय के अन्धकार को दूर करे, जिससे हमें ज्ञान का प्रकाश मिले।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

कवि-अवस्युः

वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन्॥ १० ॥

हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! जैसे **कविः चित्**=क्रान्तदर्शी **अवस्युः**=गमन का इच्छुक **वातस्य**=वायु के बल से **सुयुजः**=अच्छी प्रकार जुड़नेवाले **युक्तान्**=जुड़े हुए **अश्वान्**=घोड़ों या वाहनों को **अजगन्**=नियन्त्रित कर चलाता है। उसी प्रकार **विश्वे**=सब **अत्र**=यहाँ **मरुतः**=प्राणापान **सखायः**=मित्रभाव से **ब्रह्माणि**=परब्रह्म **ते तविषीम्**=वे प्राणों के साथियों को, यम-नियमों को **अवर्धन्**=बढ़ायें।

भावार्थ—जिस प्रकार एक कुशल चालक अपने घोड़ों को वाहन को नियन्त्रित रखता है, उसी प्रकार योग द्वारा प्राणों को नियन्त्रित करता है।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

क्रतुं भत्

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम्।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः॥ ११ ॥

जिस प्रकार **सूरः चित्**=कोई विद्वान् **रथम्**=शरीररूपी रथ को **परितक्म्यायाम्**=कठिनाइयों में भी **उपरम्**=आगे उन्नति पथ पर **जूजुवांसम्**=वेग से **पूर्वं करत्**=पूरण करता है। गन्तव्य स्थल पहुँचता है। अर्थात् स्थित हुआ-हुआ वह स्फूर्ति से सब कार्यों को करनेवाला होता है। २. यह **एतशः**=शुद्ध जीवन में निवास करनेवाला (एते शेते) **चक्रं भरत्**=दिन भर के कार्यचक्र का भरण करता है। **संरिणाति** (drive out, expel)=इस प्रकार सब वासनाओं को अपने जीवन से पृथक् करता है। इस प्रकार **पुरः दधत्**=इन शरीर नगरियों का धारण करता हुआ—इन्हें रोगों व वासनाओं का शिकार न होने देता हुआ—यह **नः**=हमारे (प्रभु के) **क्रतुम्**=शक्ति व प्रज्ञान को **सनिष्यति**=अवश्य प्राप्त करेगा। जो भी व्यक्ति आलस्यशून्य होकर कर्त्तव्यपालन में प्रवृत्त होगा वह अवश्य ही शक्तिशाली व ज्ञानी बनेगा।

भावार्थ—चारों ओर अन्धकार के होने पर भी ज्ञानी शरीररथ को निरन्तर आगे बढ़ाता है। दिन के कार्यक्रम को सुन्दरता से करता हुआ यह अपने में ज्ञान व शक्ति को भरता है।

सुतसोम अध्वर्यु

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन्।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥ १२ ॥

१. **जनाः**=हे लोगो! **अयम् इन्द्रः**=यह सर्वशक्तिमान्-सर्वैश्वर्यसम्पन्न प्रभु **अभिचक्षे**=तुम्हें देखने के लिए तुम्हारे रक्षण के लिए (Look after) **आजगाम**=आता है। यह इन्द्र **सखायम्**=अपने मित्र **सुतसोमम्**=सोम का सवन करनेवाले को—अपने अन्दर वीर्यशक्ति (सोम) को उत्पन्न करनेवाले को—**इच्छन्**=चाहता है। २. यह **वदन्**=हमारे हृदयों में ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करता हुआ **ग्रावा**=महान् गुरु (स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्) **वेदिम् अवभ्रियाते**=यज्ञवेदी की ओर लाया जाता है, अर्थात् यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त होने पर ही हम उस प्रभु को अपने समीप प्राप्त कराते हैं। उस प्रभु के सान्निध्य को हम प्राप्त करते हैं, **यस्य**=जिसकी **जीरम्**=प्रेरणा को **अध्वर्यवः**=यज्ञप्रणेता लोग **चरन्ति**=कार्यान्वित करते हैं। वस्तुतः प्रभु ने 'सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा' यज्ञों के साथ ही हमें जन्म दिया है और कहा है कि इसके द्वारा तुम फूलो-फलो। इन यज्ञों के द्वारा ही तो प्रभु की उपासना होती है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'। प्रभु यज्ञरूप ही तो हैं।

भावार्थ—प्रभु का मित्र वह है जोकि सोम का (वीर्य का) रक्षण करता है और यज्ञशील होता है ये ही व्यक्ति प्रभु से रक्षणीय होते हैं।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

चाकानन्त-चाकनन्त

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन्।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥ १३ ॥

हे **अमृत**=अमर धर्मन् परमात्मन्! **ये मर्ताः**=जो मरणधर्मा मनुष्य **ते चाकनन्त**=तुझे चाहते हैं, **नू**=निश्चय से **ते**=वे तुझे **चाकनन्त**=सदा चाहते रहें। **ते**=वे मनुष्य **अंहः**=पाप को **मो आरन्**=मत प्राप्त हों। **उत**=और तू **तेषु**=उनमें **ओजः**=तेज **धेहि**=धारण कर, **यज्यून्**=यज्ञ करनेवालों का **वावन्धि**=संग कर जिससे हम **ते स्याम**=तेरे भक्त होवें।

भावार्थ—जो परमात्मा को चाहते हैं वे यज्ञशील होते हुए पाप कर्मों से दूर रहकर परमेश्वर

के भक्त होते हैं।

सुतसोम अध्वर्यु ही मार्ग पर चलनेवाला है। यह 'गातुः' (ठीक मार्ग पर चलनेवाला) कहाता है। मार्ग पर चलने से यह त्रिविध दुःखों से दूर 'आत्रेय' होता है। यह प्रार्थना करता है कि—

३२. [द्वात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासना बन्धन-विनाश

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन्॥ १ ॥

१. हे प्रभो! **त्वम्**=आपने **उत्सम्**=ज्ञान प्रवाह को **अदर्दः**=वासना रूप बाँध के विदारण से खोल डाला है और इस प्रकार **खानि**=इन्द्रियों को **वि असृजः**=विषयों से विसृष्ट (पृथक्) किया है। **बद्बधानान्**=(बाध्यमानान्) वासना से बाधित होते हुए **अर्णवान्**=ज्ञान समुद्रों को, वासना विनाश के द्वारा **अरम्णाः**=फिर रमणवाला (=क्रीड़ावाला) किया है। २. हे **इन्द्र**=वज्र से शत्रुओं का विदारण करनेवाले प्रभो! **यत्**=जो अपने **महान्त पर्वतम्**=इस महान् अविद्यापर्वत (पाँच पर्वोंवाली होने से अविद्या पर्वत है) **विवः**=खोल डाला है और **धाराः**=ज्ञान की धाराओं को **विसृजः**=विसृष्ट किया है—बन्धन से मुक्त किया है। इस प्रकार **दानवम्**=दानव वृत्ति को—आसुरवृत्ति को **अवहन्**=विनष्ट किया है। ज्ञान खड्ग से ही विषयदानव का संहार होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे जीवनों में वासनाबन्धन को विनष्ट करके ज्ञान की धाराओं को प्रवाहित करते हैं।

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अविद्या-रात्रि' का अन्त

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन्।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः॥ २ ॥

१. हे प्रभो! **त्वम्**=आपने **बद्बधानान्**=विषयों से बाँधे जाते हुए **उत्सान्**=ज्ञान प्रवाहों को **ऋतुभिः**=(ऋ गतौ) नियमित गतियों के द्वारा **अरंहः**=फिर से गतिमय किया है। हे **वज्रिन्**=क्रियाशीलता रूप वज्रवाले प्रभो! **पर्वतस्य**=आपने इस अविद्यापर्वत को **ऊधः**=रात्रि को (नि० १.७) **जघन्वान्**=विनष्ट किया है। २. हे **इन्द्र**=शत्रु विदारक प्रभो! **उग्र**=तेजस्विन् प्रभो! **अहिं चित्**=इस विनाशक वासना को भी आप ही नष्ट करते है, जो कि **प्रयुतम्**=हमारे साथ प्रकर्षेण युक्त हो जाती है और **शयानम्**=हमारे में निवास करती है। हे इन्द्र! आप इस वासना को विनष्ट करके **तविषीम्**=बल को **अधत्थाः**=हमारे में धारण करते हैं। वासना विनाश ही बल का जनक है।

भावार्थ—अविद्या की रात्रि को समाप्त करके प्रभु ज्ञानप्रवाह को गतिमय करते हैं। इस ज्ञानप्रवाह से वासना को विनष्ट करके वे हमें सबल बनाते हैं।

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तव्यान् अजनिष्ट

त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान्॥ ३ ॥

१. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **तविषीभिः**=बलों के द्वारा—ज्ञान द्वारा प्राप्त शक्तियों से—**त्यस्य चित्**=उस प्रसिद्ध **महतः**=प्रबल (महान्) **मृगस्य**=पशु के तुल्य बलवान् काम के **वधः**=अस्त्र को **निर्जघान**=नष्ट करता है। काम के अस्त्र को विनष्ट करके यह उसे निरस्त्र (निहत्था) बना देता है। २. **यः**=जो **एकः इत्**=अकेला ही **अप्रतिः**=प्रतिद्वन्द्वियों से रहित **मन्यमानः**=आदरणीय प्रभु हैं। **आत्**=अब **अस्मात्**=इस प्रभु से **अन्यः**=दूसरा जीव भी **तव्यान्**=बड़ा शक्तिशाली **अजनिष्ट**=हो जाता है। प्रभु सम्पर्क से जीव की भी शक्ति बड़ी बढ़ी हुई हो जाती है।

भावार्थ—वासना के विनाश होने पर जीव, उस प्रभु से मेल के कारण, बड़ा शक्तिशाली बन जाता है।

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दानव तेजो हरण

त्वं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम्।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम्॥ ४॥

१. **वज्री**=क्रियाशीलता रूप वज्रवाला जीव **वज्रेण**=इस क्रियाशीलता रूप वज्र के द्वारा **शुष्णम्**=शोषक शत्रुभूत काम को **निजघान**=नष्ट करता है। क्रियामय जीवनवाले को वासना नहीं सताती। **वृषप्रभर्मा**=धर्म (वृष-धर्म) का प्रकर्षेण धारण करनेवाला यह वज्री **दानवस्य**=इस दानव के **भामम्**=तेज को विनष्ट करता है। 'काम' धर्म को नष्ट करता है, 'धर्म' काम को। वृषप्रभर्मा के जीवन में धर्म प्रबल होता है, सो वह काम का ध्वंसक बनता है। २. **त्यं चित्**=उस काम को भी यह विनष्ट करता है जो कि **एषां स्वधया मदन्तम्**=इनके अन्त से ही हर्षित होता है, अर्थात् इन प्राणियों को ही अपना आधार बनाकर विनष्ट कर डालता है—इन्हें ही खा जाता है। **मिहः**=आनन्द की वर्षा को यह **नपातम्**=नहीं गिरने देता। वासना के कारण धर्ममेघ समाधि में पहुँचकर आनन्द की वर्षा के अनुभव करने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। **सुवृधम्**=यह काम सेवित हुआ-हुआ बढ़ता ही जाता है 'हविषा कृणुत वर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते'। **तमोगाम्**=हमें तमोगुण की ओर ले जाता है—हमारे जीवनों में अन्ततः अन्धकार का कारण बनता है।

भावार्थ—धर्म का धारण करनेवाला व्यक्ति क्रियाशीलता रूप वज्र से कामासुर का संहार करता है।

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अन्धकार-निवासी' वृत्र

त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः॥ ५॥

१. 'मर्म' शब्द के दो अर्थ हैं (क) (Truth) सत्य, तथा (Weak point) निर्बलता। वासना में सत्य नहीं, सो यह अमर्म है। चिन्तन करते ही यह नष्ट होती है, सो वही इसकी निर्बलता है, मर्म है। हे **सुक्षत्र**=उत्तम बलवाले इन्द्र **अमर्मणः**=सत्य से रहित **अस्य**=इस वृत्र (वासना) के **त्यम्**=उस **चित्**=निश्चय से **निःषत्तम्**=अन्दर गुप्त रूप से छिपे हुए **मर्म**=मर्मस्थल को **अस्य क्रतुभिः**=इस प्रभु के प्रज्ञानों से—हृदयस्थ प्रभु से दिये हुए प्रज्ञान के द्वारा—**विदद्**=जान लेता है। प्रभु का चिन्तन करते ही यह वासना विनष्ट हो जाती है। २. **यत्**=जब **ईम्**=निश्चय से ऐसा

होता है अर्थात् प्रभु का चिन्तन चलता है तो **यदस्य**=आनन्द को प्राप्त करानेवाले सोम के **प्रभृता**=प्रकर्षेण धारण करने पर **युयुत्सन्तम्**=युद्ध की इच्छावाले इस वृत्र को **तमसि**=अन्धकारमय **हर्म्ये**=घर में **धाः**=तू स्थापित करता है। वृत्र तेरी शक्ति से भयभीत होकर अन्धकारमय स्थान में जा छिपता है। इस वाक्य प्रयोग से यह भी स्पष्ट है कि वासना का निवास वहीं होता है, जहाँ अन्धकार हो। प्रकाश में वासना विनष्ट हो जाती है।

भावार्थ—सत्य से रहित वासना का मर्म (भेद) यही है कि प्रभु का चिन्तन हुआ और यह नष्ट हुई। प्रभु चिन्तन से सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष को छोड़कर यह उन पुरुषों में निवास करती है जिनके हृदयों में प्रभु का प्रकाश नहीं—जहाँ अन्धकार है।

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वासना का वर्धन हमारा विनाशक है

त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम्।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान॥ ६॥

१. **त्यम्**=उस **चित्**=निश्चय से **इत्था**=सचमुच **कत्पयम्**=कुत्सित आप्यायन (वर्धन) वाले—जिसके बढ़ने से हमारा विनाश है, **शयानम्**=हमारे अन्दर ही निवास करनेवाले **असूर्ये**=आसुर भावनाओं के लिए हितकर **तमसि**=अन्धकार में **वावृधानम्**=खूब बढ़ते हुए **तम्**=उस वृत्र को **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **उच्चैः अपगूर्या**=खूब उठाकर पटकता हुआ **जघान**=विनष्ट कर डालता है—ऊँचे उठाकर पटक डालता है। २. वह इन्द्र इस वृत्र को पटक कर नष्ट करता है, जो कि **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए सोम से (सोमेन सा०) **मन्दानः**=आनन्द का अनुभव करता हुआ **वृषभः**=शक्तिशाली बनता है।

भावार्थ—अन्धकार में पनपनेवाली वासना का वर्धन हमारे लिए अत्यन्त हानिकर है। हमें चाहिए कि हम सोम (वीर्य) का रक्षण करते हुए इस वासना को पटककर विनष्ट कर डालें।

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वासना विनाशक' वज्र

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम्।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार॥ ७॥

१. **यत्**=जब **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **महते दानवाय**=इस महान् दानव (राक्षस) 'वृत्र' के विनाश के लिए **अप्रतीतम्**=शत्रुओं से आक्रान्त न होनेवाले **सहः**=शत्रुओं को कुचल देनेवाले **वधः**=क्रियाशीलता रूप वज्र को **उद्यमिष्ट**=उठाता है, और **यद्**=जब **ईम्**=निश्चय से **वज्रस्य**=इस क्रियाशीलतारूप वज्र के **प्रभृतौ**=प्रकर्षेण धारण करने पर **ददाभ**=यह शत्रुओं को हिंसित करता है तो इस वृत्र को **विश्वस्य जन्तोः**=सब प्राणियों के **अधमं चकार**=अधम कर देता है—उनके पाँव तले इस वृत्र को रौंद देता है। २. वृत्र के विनाश के लिए बल प्राप्ति का एक ही मार्ग है कि हम क्रियाशील बने रहें। यह क्रियाशीलता ही वज्र है, जिससे कि वासना का विनाश होता है। वासना को कुचलने का—पाँव तले रौंदने का—यही उपाय है कि हम क्रियामय जीवनवाले हों।

भावार्थ—क्रियाशीलतारूप वज्र से ही वासना का विनाश सम्भव है।

ऋषिः—गातुरात्रेयः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

अपादम् अत्रम्

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम्॥ ८॥

१. **त्यम्**=उस **चित्**=निश्चय से **मधुपम्**=शरीर में सोम का पान (रक्षण) करनेवाले **अर्णम्**=ज्ञान जल को आवृत करके—उस पर परदा डालकर—**शयानम्**=निवास करते हुए, **असिन्वम्**=हमें निरन्तर इधर-उधर फेंकते हुए **वव्रं**=इस **महि**=महान् अति प्रबल वृत्र को—वासना को—**उग्रः**=यह तेजस्वी इन्द्र **आदत्**=पकड़ लेता है—उसे वश में करता है। वासना को काबू करके ही इसका विनाश किया जा सकता है। वस्तुतः वशीभूत काम 'काम' नहीं रहता। यह 'प्रेम' हो जाता है। २. **अपादम्**=कैद हो जाने के कारण गति से रहित हुए-हुए इस **अत्रम्**=खा जानेवाले **मृध्रवाचम्**=ज्ञान वाणियों का हिंसन करनेवाले काम को वह तेजस्वी इन्द्र **महता वधेन**=महान् क्रियाशीलतारूप आयुध के द्वारा **दुर्योण**=इस शरीररूप गृह में अथवा इस शरीर में चलनेवाले वासनाओं के साथ संग्राम में **नि आवृणक्**=निश्चय से छिन्न कर डालता है।

भावार्थ—हम वासना को काबू करें। इसे वशीभूत करके क्रियाशीलतारूप वज्र से विनष्ट कर डालें। अन्यथा यह वासना हमें विनष्ट कर डालेगी। यह 'अत्र' है—खा जानेवाली है (अद् भक्षणे)।

ऋषिः—गातुरात्रेयः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अप्रतिम बलवाले प्रभु

को अस्य शुष्मं तविषीं वराते एको धना भरते अप्रतीतः।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते॥ ९॥

१. **कः**=कौन **अस्य**=इस इन्द्र के **शुष्मम्**=शत्रुओं का शोषण करनेवाले **तविषीम्**=बल को **वराते**=रोक सकता है, अर्थात् इसके बल का प्रतिरोध कोई नहीं कर सकता। **एकः**=यह अद्वितीय प्रभु ही **अप्रतीतः**=किसी भी शत्रु से आक्रान्त न हुआ-हुआ **धना भरते**=हमारे लिए धनों का पोषण करता है। २. **इमे देवी**=ये दिव्य शक्तियोंवाले द्यावापृथिवी प्रभु **चित्**=भी **अस्य ज्रयसः**=इस वेगवान् **इन्द्रस्य**=परमैश्वर्यशाली प्रभु के **ओजसः**=ओज के—बल के—**भियसा**=भय से ही **नु**=निश्चय से **जिहाते**=गति करते हैं। द्यावापृथिवी प्रभु की शक्ति से ही—उस प्रभु के प्रशासन में ही—गति कर रहे हैं। 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः'=प्रभु के भय से सब गतिमय हो रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु का बल अप्रतिम है। प्रभु ही सब प्राणियों में उस-उस धन का धारण करते हैं। द्यावापृथिवी उसी की शक्ति से गतिवाले होते हैं।

ऋषिः—गातुरात्रेयः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

सब प्रभु के प्रति प्रणत होते हैं

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त॥ १०॥

१. आकाश में सारे पदार्थ व लोक-लोकान्तर धारित हो रहे हैं— आकाश 'स्वधिति' है—स्वयं अपना धारण करनेवाला है। यह **देवी**=दिव्य प्रकाशमय **स्वधितिः**=स्वयं अपने को धारण

करनेवाला आकाश **अस्मै इन्द्राय**=इस सर्वशक्तिमान् प्रभु के लिए **निजिहीते**=प्रणत होकर गतिवाला हो रहा है। यह आकाश प्रभु के प्रति प्रणत होता है। **गातुः**=यह गमनशील पृथिवी भी **उशती इव**=कामना करती हुई पत्नी के समान **येमे**=अपने को दे डालती हैं—उसी के प्रशासन में चलती है। २. **यद्**=जब वे प्रभु **अभिः**=इन द्यावापृथिवी में निवास करनेवाली प्रजाओं के साथ **विश्वम् ओजः**=सब बलों को **संयुवते**=मिलाते हैं तो उस समय **क्षितयः**=सब मनुष्य **स्वधाव्ने**=उस शक्तिवाले प्रभु के लिए **अनुनमन्त**=अनुकूलता से नतमस्तक होते हैं। प्रभु ही बल प्राप्त कराते हैं—सभी अन्ततः इस बल के स्वामी प्रभु के प्रति प्रणत होते हैं।

भावार्थ—सब द्यावापृथिवी—व उनमें रहनेवाले मनुष्य प्रभु से ही बल को प्राप्त करते हैं। सो वे प्रभु के प्रति प्रणत होते हैं।

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दिन-रात प्रभु का स्मरण

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम्॥ ११ ॥

१. हे प्रभो! **त्वा**=आपको मैं **जनेषु**=शक्तियों का विकास करनेवाले लोगों में **जातम्**=प्रादुर्भूत हुआ-हुआ **शृणोमि**=सुनता हूँ। वस्तुतः उन लोगों में अमुक-अमुक शक्ति आपके प्रादुर्भाव के कारण ही होती है। मैं आपको **नु**=निश्चय से **एकम्**=अद्वितीय—अनुपम सुनता हूँ। आपकी किसी से उपमा नहीं दी जा सकती। **सत्पतिम्**=आप सज्जनों के रक्षक हैं। **पाञ्चजन्यम्**=पञ्चजनों का हित करनेवाले हैं—'ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र व निषाद' सभी का आप भला करते हैं। **यशसम्**=सम्पूर्ण यश आपका ही है। २. **मे**=मेरी **आशसः**=कामनाएँ **नविष्ठम्**=अत्यन्त स्तुत्य **तम्**=उस प्रभु को ही **जगृभ्रे**=ग्रहण करें। **दोषावस्तोः**=दिन-रात **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **हवमानासः**=हम पुकारनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु ही सर्वश्रेष्ठ हैं। हम प्रभु को ही चाहें—प्रभु को ही दिन-रात पुकारें, अर्थात् प्रभुस्मरण करके ही सब कार्यों को करें।

ऋषिः—**गातुरात्रेयः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सर्वकाम प्रपूरक' प्रभु

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र॥ १२ ॥

१. मैं **एवा**=सचमुच **हि**=ही **त्वाम्**=आपको **ऋतुथा**=उस-उस समय के अनुसार **यातयन्तम्**=प्रेरित करते हुए को **शृणोमि**=सुनता हूँ। आप ही सदा सत्प्रेरणा प्राप्त कराते हैं। आपको ही मैं **विप्रेभ्यः**=अपना विशेष रूप से पूरण करनेवालों के लिए—न्यूनताओं को दूर करनेवाले के लिए—**मघा ददतम्**=ऐश्वर्यों को देते हुए को सुनता हूँ। आप ही विप्रों के लिए सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं। ३. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभो! **ये**=जो **कामम्**=अपनी इच्छा को **त्वाया**=आपकी प्राप्ति की कामना से ही **निदधुः**=स्थापित करते हैं, अर्थात् जिन्हें आपकी प्राप्ति के अतिरिक्त कोई कामना नहीं होती, **ते**=वे **ब्रह्माणः**=ज्ञानी स्तोता **सखायः**=आपके मित्र होते हुए **किं गृहते**=अनिर्वचनीय आनन्द को ग्रहण करनेवाले होते हैं। 'न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते'।

भावार्थ—प्रभु ही समयानुसार प्रेरणा देते हैं—प्रभु ही सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं। प्रभु के उपासक एक अनिर्वचनीय आनन्द को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार जो प्रभु का वरण करता है वह 'संवरण'=उत्तमवरणवाला होता है यह 'प्राजापत्य' (प्रजापतेः अयम्=) प्रभु का ही हो जाता है। सदा प्रभु के कार्यों में प्रवृत्त रहता है—प्रजा के रक्षण में प्रवृत्त होता है। यह प्रार्थना करता है कि—

अथ चतुर्थाष्टके द्वितीयोऽध्यायः

३३. [त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उपासना द्वारा शक्ति व सुमति का लाभ

महिं महे तवसे दीध्ये नॄनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान्।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत॥ १ ॥

१. **अतव्यान्**=अपनी दुर्बलता को जानता हुआ मैं **नॄन्**=अपने शत्रुभूत, मुझे इधर-उधर ले-जानेवाले (नृ नये) काम, क्रोध आदि शत्रुओं को **तवसे**=(तु=Strike) नष्ट करने के लिए **महे तवसे**=उस महान् शक्ति के पुञ्ज **इन्द्राय**=सब शत्रुओं के विदारक प्रभु के दर्शन के लिए **इत्था**=सचमुच **महि दीध्ये**=महान् ज्ञानदीप्ति को अपने अन्दर करने का प्रयत्न करता हूँ। ये प्रभु ही तो मुझे वह बल देंगे जो कि मुझे इन शत्रुओं को जीतने में समर्थ करेगा। २. उस प्रभु को मैं देखने का प्रयत्न करता हूँ **यः**=जो **अर्यः**=सबका स्वामी प्रभु **अस्मै**=इस **जने**=शक्तियों का विकास करनेवाले पुरुष के लिए **वाजसातौ**=संग्राम में **स्तुतः**=स्तुति किया हुआ **सुमतिं संचिकेत**=कल्याणी मति को सम्यक् ज्ञापित करता है। प्रभु से दी गयी इस शुभ मति से ही वस्तुतः हम अपने काम, क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करते हैं। जीवन एक संग्राम है। इसमें हम प्रभु से दी गई कल्याणी मति से ही विजय प्राप्त कर पाते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का ध्यान करते हैं। इससे हमें शक्ति व सुमति प्राप्त होती है और हम शत्रुओं को जीतते हैं।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु रूप सारथि

स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्केर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान्॥ २ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभो! **स त्वम्**=वे आप **अर्केः धियसानः**=मन्त्रों द्वारा ध्यान किये जाते हुए, हे **वृषन्**=शक्तिशाली प्रभो! **नः**=हमारे **हरीणाम्**=इन इन्द्रियाश्वों के **योक्त्रम्**=(नियोजनरज्जु) लगाम को **अश्रेः**=ग्रहण करते हैं—(सेवन करते हैं), अर्थात् आप हमारे सारथि बनते हैं। २. **याः**=जिन प्रजाओं को **इत्थ**=इस प्रकार **अनु जोषम्**=प्रीतिपूर्वक उपासना के अनुसार, अर्थात् जितना-जितना उपासक आपके समीप होता है उतना-उतना, हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **वक्षः**=उन्हें (अवहः) लक्ष्य की ओर ले-चलते हैं और **अर्यः**=स्वामी होते हुए आप **जनान्**=इन शक्ति का विकास करनेवाले लोगों के साथ **प्रसक्षि**=समवेत होते हैं।

भावार्थ—प्रभु उपासक के इन्द्रियाश्वों की बागडोर को थामते हुए उपासक को प्राप्त होते हैं।

उपासक उपास्य में प्रविष्ट हो जाता है।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वे प्रभु के नहीं हैं, जोकि—

न ते त इन्द्राभ्यस्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन्।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् **ऋष्व**=महान् प्रभो! **अस्मद् अभि**=हमारे से भिन्न वे लोग जो **अयुक्तासः**=उपासना द्वारा आपके साथ अपना मेल करनेवाले नहीं और **यद्**=कि वे **अब्रह्मता**=ज्ञानशून्यता में **असन्**=निवास करते हैं **ते न**=आपके नहीं है। प्रभु का प्रिय वही है जो कि उपासना व ज्ञान को अपनाता है। मस्तिष्क में ज्ञान और हृदय में उपासना ही हमें प्रभु का प्रिय बनाती है। २. हे **वज्रहस्त**=निरन्तर क्रियाशील हाथोंवाले 'विश्वतो बाहु' प्रभो! आप हम उपासना व ज्ञान को अपनानेवाले पुरुषों के **तं रथम्**=उस शरीररथ पर **अधितिष्ठ**=होइए और आरूढ़ **देव**=ऐ प्रकाशमय प्रभो! हमारे सब व्यवहारों के साधक प्रभो! **स्वश्वः**=उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले आप ही **रश्मिम्**=उस रथ की लगाम को **आयमसे**=काबू करते हैं।

भावार्थ—उपासना के द्वारा प्रभु से अपना मेल करनेवालों तथा ज्ञान को अपनानेवालों के शरीररथ में उत्तम इन्द्रियाश्वों को जोतते हुए प्रभु ही अधिष्ठित होते हैं और वे ही लगाम को काबू करते हैं।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'उर्वरा बुद्धि' रूप क्षेत्र में ज्ञान धेनु का चरना

पुरु यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित्॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=शत्रुसंहारक प्रभो! **यत्**=जब **ते**=आपके **पुरु उक्था सन्ति**=खूब ही स्तोत्र होते हैं, अर्थात् जब एक व्यक्ति आपकी उपासना में तन्मय होता है तो आप **युध्यन्**=वासनारूप 'वृत्र' से युद्ध करते हुए, अर्थात् ज्ञान के गति बन्धक 'काम' को नष्ट करते हुए **उर्वरासु**=ज्ञानशस्य की उत्पत्ति के लिए उपजाऊ बुद्धियों में—बुद्धि रूप क्षेत्रों में—**गवे**=इन ज्ञानवाणियों रूप धेनुओं के लिए **चकर्थ**=स्थान बनाते हैं। उपासक की बुद्धि खूब ही ज्ञान को प्राप्त करनेवाली होती है। २. **वृषा**=शक्तिशाली आप **स्वे ओकसि**=इस उपासक के शरीर रूप अपने घर में **सूर्याय**=ज्ञान सूर्य के उदय के लिए **दासस्य**=ज्ञान को विनष्ट करनेवाले 'वृत्र' (काम) के **नाम चित्**=नाम को भी **समत्सु**=संग्रामों में **ततक्षे (विनाशयति)**=नष्ट कर देते हैं। वासना का विनाश करके ही तो ज्ञानसूर्य के प्रकाश की प्राप्ति का सम्भव है। प्रभु उपासक की वासना को विनष्ट करके उसके जीवन में ज्ञान के सूर्योदय को करते हैं।

भावार्थ—जब हम प्रभु की उपासना करते हैं, प्रभु हमारी बुद्धि को ज्ञानशस्य के लिए उर्वरा (fertile) बनाते हैं। वहाँ ज्ञानवाणी रूप धेनुएँ चरती है। वासना का विनाश होकर उपासक के जीवन में ज्ञानसूर्य का उदय होता है।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु के हैं, जो कि—

वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥ ५ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभो! **वयं ते**=हम आपके हैं और **ते**=आपके ही हैं, **ये**=जो कि **नरः**=अपने को उन्नतिपथ पर ले-चलने के लिए यत्नशील हैं। **च**=और **शर्धः जज्ञानाः**=अपने अन्दर बल का सम्पादन करनेवाले हैं। **च**=और **याताः**=सदा आपके समीप प्राप्त होनेवाले—आपके उपासक हैं और **रथः**=खूब वेगयुक्त गतिवाले हैं (रंहणशील हैं)। २. 'हम ऐसे ही बन सकें' इसके लिए हमारी आपसे आराधना है कि हे **अहि शुष्म** (अह व्याप्तौ)=सर्वतोव्याप्त बलवाले प्रभो! **अस्मान्**=हमें वह पुरुष **आजगम्यात्**=प्राप्त हो—हमारा सम्पर्क सदा ऐसे ही आचार्य से हो जो कि (क) **सत्वा**=सात्त्विक बलवाला है। (ख) **भगः न**=ऐश्वर्यशाली आपके समान ही **हव्यः**=अर्पण के योग्य है—जिसके प्रति अपना अर्पण करके ही हम अपना कल्याण सिद्ध कर सकते हैं। २. **प्रभृथेषु चारुः**=प्रकृष्ट भरण के कार्यों में खूब गतिशील है, अर्थात् शरीर मन व बुद्धि के भरण में सदा क्रियाशील है।

भावार्थ—हे प्रभो! हम उत्तम पुरुषों के संग में उत्तम जीवनवाले बनकर आपके सच्चे उपासक बन पाएँ।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

बल+धन

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥ ६ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वे हि**=आपमें ही **ओजः**=वह ओज है—बल है जो कि **पपृक्षेण्यम्**=सम्पर्क के योग्य है। **च**=और **नृम्णानि**=वे धन भी आपके ही समीप है, जो कि सचमुच पाने के योग्य है। आपका उपासक इस ओज (बल) को व इन धनों को प्राप्त किया करता है। आप ही **नृतमानः**=इस संपूर्ण संसारनृत्य को कर रहे हैं—आप ही सम्पूर्ण संसार को चला रहे हैं। **अमर्तः**=आप ही अमर हैं। आप का उपासक भी अमरता को प्राप्त करता है। २. **सः**=वे **आप नः**=हमारे लिए, **वसवानः**=हमें अपनी गोद में आच्छादित करते हुए, **एनीं रयिम्**=शुद्ध सम्पत्ति को (श्वेत=छल छिद्र से न कमायी गई सम्पत्ति को) **दा**=दीजिए। **प्र अर्यः**=आप ही प्रकृष्ट स्वामी हैं—सब धनों के स्वामी आप ही तो हैं। **तुविमघस्य**=अनन्त ऐश्वर्यवाले आपके **दानम्**=दान को मैं **स्तुषे**=स्तुत करता हूँ। आपके दान का स्तवन करता हुआ मैं आपने को इस दान का पात्र बनाता हूँ।

भावार्थ—प्रभु ही सब बलों व धनों के स्वामी हैं। हमारा रक्षण करते हुए प्रभु हमें शुद्ध सम्पत्ति प्राप्त कराएँ। हम अपने को प्रभु के दानों का पात्र बनाएँ।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

गृणता कारून् (क्रियाशील स्तोता)

एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून्।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥ ७ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **एवा**=गति के द्वारा **नः**=हमें **ऊतिभिः**=सब प्रकार के रक्षणों के द्वारा **अव**=रक्षित करिए। हमारे शरीरों को रोगों से बचाइए, मनों को मलिनता से दूर करिए, बुद्धियों को मन्दता का शिकार न होने दीजिए। २. हे **शूर**=वासनाओं का संहार करनेवाले प्रभो! आप **गृणतः**=स्तुति करते हुए **कारून्**=कुशलता से कार्यों को करनेवालों को **पाहि**=रक्षित करिए। यह स्तवन व क्रियाशीलता उन्हें वासनाओं से आक्रान्त न होने दे। २. **उत**=और **वाजसातौ**=शक्ति के संभजन (प्रापण) के निमित्त आप **मध्वः पिप्रीहि**=इस मधुर सोम (वीर्य का) हमारे में पूरण करिए जो कि **त्वचम् ददतः**=हमें रक्षक आवरण प्राप्त कराता है—त्वचा की तरह हमारा रक्षक बनाता है—हमें रोगों व वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देता **सुयुतस्य**=उत्तम भोजनों द्वारा उत्पन्न किया जा सकता तथा **चारोः**=जीवन को सुन्दर-ही-सुन्दर बना देता है।

भावार्थ—हम प्रभु के क्रियाशील स्तोता बनें। हमें प्रभु का रक्षण प्राप्त होगा और हम सोम का अपने अन्दर पान (रक्षण) करते हुए जीवन को सुरक्षित मधुर व सुन्दर बना पाएँगे।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

गैरिक्षित के ऋतुओं से युक्त होना

उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे॥ ८॥

१. **उत**=और **त्ये**=वे **मा**=मुझे **दश**=दस **श्येतासः**=उज्ज्वल, विषय-पंक से अलिप्त इन्द्रियाश्व **वहन्तु**=जीवन यात्रा में आगे और आगे ले-चलें। वे इन्द्रियाश्व मुझे ले चलें, जो कि **पौरुकुत्स्यस्य**=खूब ही वासनाओं का संहार करनेवाले को **रराणाः**=दिये गये हैं। **सूरेः**=ज्ञानी पुरुष के लिए दिये गये हैं। **त्रसदस्योः**=जिससे दास्यववृत्तियाँ भयभीत होती हैं—उस त्रसदस्यु को जो दिये गये हैं तथा **हिरणिनः**=(हिरण्यवतः हिरण्यं वै वीर्यम्) वीर्यवान् पुरुष को दिये गये हैं। २. इन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करके **अस्य**=इस **गैरिक्षितस्य**=वेदवाणियों (ज्ञानवाणियों में) निवास करनेवाले के **क्रतुभिः**=प्रज्ञानों-शक्तियों व यज्ञात्मक कर्मों से **नु**=निश्चयपूर्वक **सश्चे**=युक्त व समवेत होता हूँ। वस्तुतः जो 'पुरुकुत्स-सूरि-त्रसदस्यु व हिरणी' बनेगा, उसके इन्द्रियाश्व अवश्य प्रशस्त होंगे। यह उन इन्द्रियों के द्वारा उत्तम कर्मों को करता हुआ प्रज्ञानों को प्राप्त करेगा ही। सदा ज्ञान में निवास करनेवाला बनकर यह वासनाओं से बचा रहेगा और शक्तिशाली होगा।

भावार्थ—हमारे इन्द्रियाश्व शुद्ध हों। हम वासनाओं का संहार करनेवाले (पुरुकुत्स) ज्ञानी (सूरि) दास्यववृत्तियों से दूर (त्रसदस्यु) वीर्यवान् (हिरणी) व सदा ज्ञान में निवास करनेवाले (गैरिक्षित) बनें।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मारुताश्व के शोण अश्व

उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत्॥ ९॥

१. **उत**=और **त्ये**=वे **मा**=मुझे **मारुताश्वस्य**=प्राणसाधना के द्वारा वायुवेगवाले इन्द्रियाश्वोंवाले 'मारुताश्व' के **शोणाः**=तेजस्वी **क्रत्वामघासः**=क्रियाशीलता-शक्ति व प्रज्ञान के द्वारा ऐश्वर्यों को सिद्ध करनेवाले इन्द्रियाश्व (वहन्तु) जीवन यात्रा में ले-चलनेवाले हों। 'वहन्तु' पिछले मन्त्र से अनुवृत्त है। २. **विदथस्य रातौ**=ज्ञानदान के निमित्त **च्यवतानः**=सब बुराइयों को मेरे से च्युत

करनेवाला **अर्यः**=स्वामी प्रभु **मे**=मेरे लिए **सहस्रा**=प्रसन्नता से परिपूर्ण (निर्मल) इन्द्रियाश्वों को **ददानः**=देता हुआ **वपुषे आनूकं न**=शरीर के लिए आभरणों के समान **आर्चत्**=दीप्त करता है। (अर्च् to shine, अन्तर्भावितार्थ)। ज्ञानप्राप्ति में प्रवृत्त निर्मल ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर की प्रबल शोभा का कारण बनती हैं। पूर्वार्ध में कर्मेन्द्रियों का उल्लेख था। वे तेजस्वी होती हुई क्रियाशीलता के द्वारा ऐश्वर्य की वृद्धि का कारण बनती हैं। इस प्रकार इन कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों से शरीर सुशोभित हो उठता है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हमारी कर्मेन्द्रियाँ तेजस्वी व ऐश्वर्य की साधक बनें। ज्ञानेन्द्रियाँ निर्मल होती हुई ज्ञानवृद्धि द्वारा शरीर को सुशोभित करें।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'ध्वन्य व लक्ष्मणय' के ऐश्वर्य

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन्॥ १०॥

१. प्रभु के नामों की ध्वनि में उत्तम यह 'ध्वन्य' है। प्रभु को ही अपना लक्ष्य बनानेवाला यह 'लक्ष्मण्य' है—यह उस लक्ष्यवेध में उत्तम है 'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते'। **उत**=और **त्ये**=वे **मा**=मुझे **ध्वन्यस्य**=प्रभु नामस्मरण करनेवाले के **जुष्टाः**=प्रीतिपूर्वक कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले कर्मेन्द्रियरूप अश्व तथा **लक्ष्मण्यस्य**=प्रभुरूप लक्ष्यवेध में उत्तम लक्ष्मण्य के **सुरुचः**=उत्तम दीप्तिवाले **यतानाः**=सतत यत्नशील ज्ञानेन्द्रियाश्व **अपिग्मन्**=प्राप्त हों। २. **मह्ना**=इन उत्कृष्ट कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों की महिमा से **संवरणस्य ऋषेः**=इस उत्तम वरणवाले प्रभु का (न कि प्रकृति का) वरण करनेवाले—ज्ञानी पुरुष के समीप **प्रयताः रायः**=पवित्र ऐश्वर्य **अपिग्मन्**=प्राप्त हों। इस प्रकार प्राप्त हों **न**=जैसे कि **गावः**=गौएँ **व्रजम्**=बाड़े में प्राप्त होती हैं।

भावार्थ—हमें प्रभु स्मरण करनेवाले की कर्मेन्द्रियाँ प्राप्त हो, अर्थात् हम प्रभु स्मरणपूर्वक कार्यों में प्रवृत्त रहें। प्रभुरूप लक्ष्य का वेध करनेवाले की ज्ञानेन्द्रियाँ प्राप्त हों, अर्थात् हम ज्ञानवृद्धि करते हुए प्रभुदर्शन करनेवाले बनें। इन इन्द्रियों की महिमा से हमें पवित्र ऐश्वर्य प्राप्त हों। हम प्रभु का वरण करें और तत्त्वद्रष्टा बनें।

'संवरण प्राजापत्य' का ही अगला भी सूक्त है—

३४. [चतुस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अजातशत्रु को स्वधा की प्राप्ति

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन॥ १॥

१. **अजातशत्रुम्**=(अजाताः शत्रवः यस्य) जिसमें 'काम-क्रोध-लोभ' रूप शत्रु उत्पन्न ही नहीं होते उस **दस्मम्**=शत्रुओं के विनाशक और अतएव दर्शनीय जीवनवाले पुरुष को **स्वधा**=आत्मधारण-शक्ति **अनु ईयते**=अनुकूलता से प्राप्त होती है। जो आत्मधारणशक्ति **अजरा**=जीर्ण होनेवाली नहीं—अथवा हमें जीर्ण नहीं होने देती, **स्वर्वती**=प्रकाशवाली है—ज्ञान के प्रकाश का कारण बनती है और **अमिता**=असीम है, अर्थात् हमें असीम शक्ति को प्राप्त कराती है। २. इस आत्मधारणशक्ति की प्राप्ति के लिए ही **सुनोतन**=सोम का सम्पादन करो और **पचत**=ज्ञान के भोजन

का परिपाक करो—भृगु बनो (भ्रस्ज पाके)। भृगु को ही तो आत्मविद्या प्राप्त होती है। सोम ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। **ब्रह्मवाहसे**=सब ज्ञानों को प्राप्त करानेवाले **पुरुष्टुताय**=खूब ही स्तुति किये जानेवाले उस प्रभु के लिए—उस प्रभु के आराधन के लिए **प्रतरम् दधातन**=अपने-अपने कर्त्तव्य कर्मों का खूब ही धारण करो।

भावार्थ—अजातशत्रु बनकर हम आत्मधारणशक्ति को प्राप्त करें। उसके लिए हम सोम का सम्पादन व ज्ञान का परिपाक करें। प्रभु के आराधन के लिए कर्तव्य-परायण हों।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

महावधः वधं यमत्

आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत्॥ २॥

१. **यः**=जो **सोमेन**=सोम के द्वारा (वीर्यशक्ति के द्वारा) **जठरम्**=अपने जठर को—शरीर मध्य को—**अपिप्रत्**=पूरित करता है, वह **मघवा**=ज्ञानैश्वर्यवाला होता हुआ **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **अन्धसः**=सोम से **अमन्दत**=आनन्दित होता है। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि का दीपन होकर ज्ञान बढ़ता है और शरीर की नीरोगता होकर आनन्द व उल्लास की प्राप्ति होती है। २. यह तब होता है, **यत्**=जब कि **ईम्**=निश्चय से **महावधः**=महान् क्रियाशीलता रूप वज्रायुधवाला **उशना**=प्रभु प्राप्ति की कामनावाला पुरुष **मृगाय हन्तवे**=(कामः पशुः, क्रोधः पशुः) काम, क्रोध रूप पशुओं को मारने के लिए **सहस्रभृष्टिम्**=हजारों शत्रुओं को भून डालनेवाले **वधम्**=क्रियाशीलता रूप वज्र को **यमत्**=हाथ में ग्रहण करता है। क्रियाशील बनकर ही तो हम शत्रुओं का नाश कर पाते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करके हम आनन्द को प्राप्त करेंगे। सोमरक्षण के लिए हम क्रियाशीलता द्वारा वासना को दूर भगानेवाले हों। यह क्रियाशीलता ही सर्वमहान् वध (आयुध) है।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'ततनुष्टि-तनूशुभ्र व कवासख' न बनना

यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः॥ ३॥

१. **यः**=जो **अस्मै**=इस प्रभु प्राप्ति के लिए **घ्रंसे**=दिन में **उत वा**=और **यः**=जो **ऊधनि**=रात्रि में **सोमं सुनोति**=अपने अन्दर सोम का सम्पादन करता है वह **अह**=निश्चय से **द्युमान् भवति**=ज्योतिर्मय जीवनवाला होता है सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और ज्ञानाग्नि की दीप्ति से प्रभु की प्राप्ति होती है। २. **शक्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु **ततनुष्टिम्**=ततनुष्टि को—(ततं धर्मसन्ततिं नुदति, वष्टि कामयते कामान् सा०) धर्ममार्ग को छोड़कर कामात्मा बन जानेवाले को **अप अप ऊहति**=अपने से दूर और दूर ही करता है। उस व्यक्ति को अपने से दूर करता है, जो कि **तनूशुभ्रम्**=अपने शरीर को शोभित करने में लगा रहता है—जिसे मन व बुद्धि को परिष्कृत करने का ध्यान नहीं होता। प्रभु उसे दूर रखते हैं जोकि **मघवा**=ऐश्वर्यवाला होता हुआ **कवासखः**=कुत्सित पुरुषों का मित्र बनता है। ये मित्र उसे अवनत ही करते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण से हम ज्योतिर्मय जीवनवाले बनकर प्रभु को प्राप्त करेंगे। उस समय हम

'ततनुष्टि-तनूशुभ्र व कवासख' न बनेंगे—धर्ममार्ग को छोड़कर कामात्मा न बन जाएँगे, शरीर को ही सजाने में न लगे रहेंगे—कुत्सित पुरुषों के संग में रहनेवाले न होंगे।

सूचना—'गृह्यपन्तेऽस्मिन् रसा: इति घ्रंस:=दिन,' 'उद्धततरं भवति इति ऊध:=रात्रि:'।

ऋषि:—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्द:—**निचृज्जगती** ॥ स्वर:—**निषादः** ॥

उभयतो वाहिनी चित् नदी

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते।
वेतीद्वस्य प्रयता यतंकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः॥ ४॥

१. 'पापवृत्ति' का **पिता** (जन्मदाता) लोभ है, इसका निर्माण करनेवाली **माता** कामवासना है, तथा इसका भरण करनेवाला भाई (भ्राता) क्रोध है। **यस्य**=जिस पापवृत्ति के **पितरम्**=जन्मदाता लोभ को तथा **यस्य**=जिस पापवृत्ति की **मातरम्**=मातृस्थानापन्न कामवासना को, और **यस्य**=जिस पापवृत्ति के **भ्रातरम्**=भ्रातृतुल्य—भरण करनेवाले—क्रोध को **शक्रः**=वे सर्वशक्तिमान् प्रभु **अवधीत्**=नष्ट करते हैं, वे प्रभु **अतः**=इस पाप से **न ईषते**=भयभीत नहीं होते, अपितु पाप को पराजित करनेवाले होते हैं। २. वे प्रभु **अस्य**=इस पापवृत्ति के **यतंकरः**=नियमनकर्त्ता होते हैं। वे अब इसे पुण्यवृत्ति के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। वे अब इसके द्वारा होनेवाली **प्रयता**=पवित्र हवियों का **इत् उ**=ही **वेति**=चाहते हैं (कामयते)। वे **वस्वः आकरः**=सब वसुओं (धनों) के निधान प्रभु **किल्बिषात्**=पाप से **न ईषते**=डर कर भाग नहीं जाते। उसे वश में करके पुण्य के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। इसीलिए वे वसुओं के कोश बनते हैं। वस्तुतः मनोवृत्ति ही 'काम-क्रोध-लोभ' से आक्रान्त होकर 'पापवृत्ति' बन जाती है। इन काम आदि के नष्ट होने पर यही 'पुण्यवृत्ति' में परिवर्तित हो जाती है।

भावार्थ—प्रभु 'काम-क्रोध-लोभ' को नष्ट करके हमारी मनोवृत्ति को पुण्य के प्रवाहवाली बनाएँ।

ऋषि:—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्द:—**निचृज्जगती** ॥ स्वर:—**निषादः** ॥

नासुन्वता सचेत पुष्यता चन

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे॥ ५॥

१. जो **पञ्चभिः**=अपने पाँचों प्राणों से तथा **दशभिः**=दसों इन्द्रियों से **आरभं न वष्टि**=कर्म करने की कामना नहीं करता, अर्थात् जो आलस्य में पड़ा रहता है, उस **असुन्वता**=यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को न करनेवाले **पुष्यता चन**=धनसम्पत्ति के दृष्टिकोण से खूब पुष्ट मनुष्य के साथ प्रभु **न सचते**=समवाय-(मेल)-वाले नहीं होते। प्रभु 'आलसी, धनी, परन्तु अयज्ञशील पुरुष के मित्र नहीं बनते'। २. मित्र बनना तो दूर रहा, प्रभु इन्हें **जिनाति वा**=निश्चय से क्षीण करते हैं। **इत्**=निश्चय से **अमुया हन्ति वा**=उसको तो नष्ट ही कर डालते हैं। **वा**=अथवा **धुनिः**=इन सबको कम्पित करके दूर करनेवाले होते हैं। इनके विपरीत **देवयुम्**=दिव्यगुणों की प्राप्ति की कामनावाले **जनम्**=मनुष्य को **गोमति व्रजे**=उत्तम ज्ञानधेनुओंवाले बाड़े में **भजति**=भागी बनाता है।

भावार्थ—प्रभु आलसी व अयज्ञशील व्यक्तियों को विनष्ट करते हैं। देवयु पुरुष को ही ज्ञानधेनुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

असुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥ ६ ॥

१. वे प्रभु **समृतौ**=संग्राम में **वित्वक्षणः**=विशेषेण शत्रुओं को छील डालनेवाले हैं। **चक्रम् आसजः**=उस शत्रु के रथचक्र को (आसञ्जयिता, सञ्ज् Sink) पृथिवी में धंसा देनेवाले हैं। **असुन्वतः**=अयज्ञशील पुरुष से प्रभु **विषुणः**=पराङ्मुख हैं। **सुन्वतः वृधः**=यज्ञशील का वर्धन करनेवाले हैं। २. **इन्द्रः**=वे सब असुरों का संहार करनेवाले प्रभु **विश्वस्य दमिता**=सबका दमन करनेवाले हैं। **विभीषणः**=शत्रुओं के लिए भयंकर है। वे **आर्यः**=श्रेष्ठ, सबके स्वामी प्रभु **दासम्**=उपक्षय करनेवाले 'काम' को भी **यथावशं नयति**=वश में करके कार्यों में प्रवृत्त करते हैं।

भावार्थ—अकामता तो व्यर्थ ही है। 'काम' आवश्यक है। इसका वशीभूत होना अत्यन्त आवश्यक है। अवश काम 'विलास' में फँसाकर हमारा नाश करता है वशीभूत हुआ-हुआ यह हमें यज्ञादि कर्मों में ले-चलता है।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'दाश्वान्', नवि 'पणि'

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥ ७ ॥

१. वे प्रभु **पणेः**=वणिक्वृत्तिवाले—यज्ञादि न करके केवल धनसंग्रही पुरुष के **भोजनम्**=भोग-साधन धन को **ईम्**=निश्चय से **मुषे**=चुरा जाने के लिए **सम्भजति**=गतिमय करता है। इस पणि का धन चोरी इत्यादि तामस मार्गों से विनष्ट होता है। **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुषों के लिए—दानशील के लिए—**सूनरम्**=उत्तम पुत्र-पौत्रोंवाले **वसु**=धन को **विभजति**=विभक्त करता है, अर्थात् इन्हें धन देता है और साथ ही उत्तम सन्तान प्राप्त कराता है, जो सन्तान इसके धन को जुआ व शराब आदि में अपव्ययित नहीं करतीं। पणि का धन उसके विकृताचरण सन्तान मिथ्याचरणों में उड़ा देते हैं। २. **यः**=जो विहिताचरण न करते हुए **पुरु जनः**=बहुसंख्यक लोग **अस्य**=इस प्रभु की **तविषीम् अचुक्रुधत्**=शक्ति को उत्तेजित करता है, अर्थात् प्रभु को अप्रसन्न करते हैं, वे **विश्वः**=सब **चन**=निश्चय से **दुर्गे**=दुर्गति में **आध्रियते**=धारण किये जाते हैं। धन को यज्ञादि में विनियुक्त करनेवाले ही प्रभु के प्रिय होते हैं।

भावार्थ—हमें पणि (कृपण) न बनकर दाश्वान् (दाता) बनना चाहिए। दाश्वान् ही प्रभु का प्रिय होता है।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सुधनौ विश्वशर्धसौ

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु।
युजं ह्य१न्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥

१. **यत्**=जब **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **जनौ**=घर के मुख्य पति-पत्नीरूप व्यक्तियों को

सुधनौ=उत्तम मार्ग से कमाये धनवाला तथा **विश्वशर्धसौ**=अन्तः प्रविष्ट बलवाला **सम् अवेत्**=जानता है तो **मघवा**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **हि**=निश्चय से **अन्यम्**=अपने इस मित्र रूप जीव को **शुभ्रिषु गोषु**=ज्ञानदीप्त व तेजस्विता से चमकती हुई इन्द्रियों के होने पर **हि युजं अकृत**=निश्चय से अपने साथ मेलवाला बनाता है, अर्थात् प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम 'सुधन व विश्वशर्धस्' बनें। उत्तम धन को विषयों में व्यथित न करते हुए हम सबल बने रहें। तृतीय मन्त्र के शब्दों में 'कवासख मघवा' न बन जाएँ। २. **प्रवेपनी**=प्रकृष्ट वेपनवाला—शत्रु कम्पक अस्त्रोंवाला (वेपन-Weapon) **धुनिः**=शत्रुकम्पक प्रभु इस अपने साथी के लिए **ईम्**=निश्चयपूर्वक **सत्वभिः**=शक्तियों के साथ **गव्यम्**=इन्द्रियों के समूह को **उत्सृजते**=देता है। यदि हम सुधन होकर प्रभु से दूर नहीं होंगे तो क्यों न उत्कृष्ट शक्तिशाली इन्द्रियों को प्राप्त करेंगे?

भावार्थ—हम उत्तम मार्ग से धनों को कमाएँ, अपने अन्दर शक्तियों को व्याप्त करें। शुद्ध इन्द्रियोंवाले बनकर प्रभु के मित्र बनें। प्रभु कृपा से इन्द्रियों को अधिकाधिक उत्कृष्ट बना पाएँ।

ऋषिः—**संवरणः प्राजापत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आपः पीपयन्त

स॒ह॒स्र॒सामा॑ग्निवेशिं गृणी॒षे शत्रि॑मग्न उप॒मां के॒तुम॒र्यः।
तस्मा॒ आपः॑ सं॒यतः॑ पीपयन्त॒ तस्मि॑न्क्ष॒त्रम॑मवत्त्वे॒षम॑स्तु ॥ ९ ॥

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! मैं **सहस्रसाम्**=सहस्रशः धनों के दाता, **आग्निवेशिम् (अग्निं विशति)**=प्रगतिशील पुरुष में प्रवेश करनेवाले, **शत्रिम्**=शत्रुओं के संहारक, **उपमाम्**=हमारे समीप होकर हमारा निर्माण करनेवाले (उप-माम्), **केतुम्**=ज्ञानस्वरूप आप को **गृणीषे**=स्तुत करता हूँ। २. **तस्मा**=उक्त प्रकार से आपका स्तवन करनेवाले मेरे लिए **संयतः**=शरीर के अन्दर ही सम्यक् गतिवाले **आपः**=रेतःकण **पीपयन्त**=वृद्धि को प्राप्त हों। इस प्रकार इन रेतःकणों के रक्षक मुझ में **अभवत्**= स्थायी (constant) **त्वेषम्**=दीप्त **क्षत्रम्**=क्षत्रों से त्राण का सामर्थ्य **अस्तु**=हो।

भावार्थ—मैं शत्रुसंहारक प्रभु का स्मरण करूँ। इस स्मरण से वासनाशून्य मुझ में रेतःकणों का व्यापन हो। इन रेतःकणों की प्राप्ति से मेरा बल स्थायी व दीप्त हो।

इस स्थायी दीप्त बल को प्राप्त करनेवाला यह 'प्रभूवसु' बनता है। 'प्रभूः च असौ वसु च' शक्तिशाली और उत्तम निवासवाला। यह **आंगिरस**=अंग-अंग में रसवाला होता है। इसकी आराधना है कि—

३५. [पञ्चत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

साधिष्ठः क्रतुः

यस्ते॒ साधि॑ष्ठोऽव॑स॒ इन्द्र॒ क्रतु॒ष्टमा भ॑र। अ॒स्मभ्यं॑ चर्षणी॒सहं॒ सस्निं॒ वाजे॑षु दु॒ष्टर॑म् ॥ १ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः**=जो **ते**=आपका **साधिष्ठः**=हमारे सब कर्तव्यकर्मों को उत्तमता से सिद्ध करनेवाला **क्रतुः**=प्रज्ञान व बल है, **तम्**=उसे **अवसे**=हमारे रक्षण के लिए **आभर**=हमारे में सर्वथा भर दीजिए। इस प्रज्ञान व बल के द्वारा हम अपने कर्त्तव्यों को सम्यक् पूर्ण करते हुए अपना रक्षण कर सकें। २. **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए आप उस क्रतु को भरनेवाले होइए, जो कि **चर्षणीसहम्**=(चर्षणी=a disloyal woman=बन्धकी) बन्धकी स्त्रियों का पराभव

करनेवाला हो, अर्थात् जिस प्रज्ञान व बल के द्वारा हम इन बन्धकी स्त्रियों के कटाक्षों का शिकार न हो जाएँ। **सस्निम्**=जो हमारे जीवन को बड़ा शुद्ध बनाए और जो **वाजेषु दुष्टरम्**=संग्रामों में शत्रुओं से अभिभव के योग्य न हो।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमें वह प्रज्ञान व बल प्राप्त कराइए। जिससे हम स्त्री व्यसन में न फंसकर जीवन को शुद्ध बनाएँ और काम-क्रोध-लोभ से पराजित न हों।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

चार-तीन-पाँच

यदि॑न्द्र ते॒ चत॑स्रो॒ यच्छू॑र॒ सन्ति॑ ति॒स्रः। यद्वा॒ पञ्च॑ क्षिती॒नामव॒स्तत्सु न॒ आ भ॑र॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यत्**=जो **ते**=आपका **चतस्त्रः**=' ज्ञान शक्ति धन व श्रम' इन चारों का रक्षक **अवः**=रक्षण है, **तत्**=उस रक्षण को **नः**=हमारे लिए **सु आभर**=उत्तमता से दीजिए। आप से रक्षित होकर हम मस्तिष्क में ज्ञान को, भुजाओं में शक्ति को, उदर में सप्तधातुमय धन को व टाँगों में श्रम को धारण करनेवाले बनें। २. हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **यत्**=जो आपके **तिस्त्रः**='ज्ञान कर्म व उपासना' इन तीनों को हमारे में सुरक्षित करनेवाले रक्षण है, उन्हें हमारे लिए प्राप्त कराइए। हमारा हृदय उपासनावाला, हाथ कर्मोंवाले व मस्तिष्क ज्ञानवाला बने। २. **यद् वा**=और जो **पञ्च क्षितीनाम्**='ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र व निषाद' इन पाँचों का रक्षक **अवः**=रक्षण है, उसे हमें प्राप्त कराइए। हम भी इन 'पाँचों के रक्षण' को अपना कर्त्तव्य समझें।

भावार्थ—प्रभु के रक्षण में चलते हुए हम अपने में 'ज्ञान शक्ति धन व श्रम' चारों को भरनेवाले हों। हम 'ज्ञान-कर्म-उपासना' तीनों का अपने में समन्वय करें। हम 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निषाद' पाँचों का ही कल्याण करनेवाले हों।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

आभूभिः इन्द्र तुर्वणिः

आ तेऽवो॒ वरे॑ण्यं॒ वृष॑न्तमस्य हूमहे। वृष॑जूति॒र्हि ज॑ज्ञि॒ष आ॒भूभि॑रिन्द्र तु॒र्वणिः॑॥ ३॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **वृषन्तमस्य ते**=अत्यन्त शक्तिशाली आपके **वरेण्यम्**=वरने के योग्य—श्रेष्ठ **अवः**=रक्षण को **आहूमहे**=हम पुकारते हैं। प्रभु का रक्षण ही वरेण्य है। सारा संसार हमारे प्रतिकूल हो, परन्तु प्रभु की अनुकूलता के होने पर कुछ बिगड़ता नहीं। प्रभु प्रतिकूल हों, सारा संसार अनुकूल हो तो भी कुछ सुधरता नहीं। २. हे प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **वृषजूतिः**=शक्तिशाली गमनवाले **जज्ञिषे**=होते हैं। आपकी क्रियाएँ सब बलसम्पन्न हैं। आप **आभूभिः**=शरीर में चारों ओर व्याप्त होनेवाले इन प्राणों के द्वारा **तुर्वणिः**=रोग व वासना रूप शत्रुओं के हिंसक होते हैं।

भावार्थ—प्रभु का रक्षण ही वरणीय है। प्राणों द्वारा प्रभु रोगों व वासनाओं का हिंसन करते हैं।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

स्वक्षत्रं मनः, सत्राहं पौंस्यम्

वृषा॒ ह्यसि॒ राध॑से जज्ञि॒षे वृष्णि॑ ते॒ शवः॑। स्वक्ष॑त्रं ते धृ॒षन्मनः॑ सत्रा॒हमि॑न्द्र॒ पौंस्य॑म्॥ ४॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **वृषा असि**=शक्तिशाली हैं। **राधसे**=हमारे

सब कार्यों की सफलता के लिए **जज्ञिषे**=होते हैं। **ते शवः**=आपका बल **वृष्णि**=हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाला है। २. हे प्रभो! **ते मनः**=आपमें एकाग्र किया हुआ—आपके लिए अर्पित किया हुआ—यह मन **स्व-क्षत्रम्**=आत्मिक बल से सम्पन्न होता है और **धृषत्**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाला होता है। उस समय **पौंस्यम्**=हमारा बल **सत्राहम्**=(संघहन्तृ) शत्रुओं के संघ को भी नष्ट करनेवाला होता है। प्रभु में मन को लगाने पर वह बल प्राप्त होता है, जोकि हमें शत्रुसैन्य को भी समाप्त करने में समर्थ करता है।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति देकर सफलता प्राप्त कराते हैं। प्रभु में लगाया हुआ मन आत्मिक बल सम्पन्न होता है और सम्पूर्ण शत्रुसैन्य को समाप्त करने में हमें समर्थ करता है।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

शत्रुओं का पराजय

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः। सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ ॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **अद्रिवः**=हे वज्रवान् प्रभो! **त्वम्**=आप **तम्**=उस **अमित्रयन्तम्**=हमारे प्रति शत्रुता का आचरण करते हुए **मर्त्यम्**=मनुष्य को **नियाहि**=निश्चय से आक्रान्त करिए—उस पर वज्र प्रहार के लिए हमें प्रेरित कीजिये। आपको ही तो हमारे शत्रुओं का संहार करना है—आपकी सहायता के बिना हम इन शत्रुओं को जीत नहीं सकते। २. हे **शतक्रतो**=सैकड़ों प्रज्ञानों व शक्तियोंवाले **शवसस्पते**=सब बलों के स्वामिन् प्रभो! आप **सर्वरथा**=सम्पूर्ण शरीर रूप रथ से—अर्थात् पूर्ण स्वस्थ शरीर से (Whole) **नियाहि**=हमें प्राप्त होइए। इस स्वस्थ शरीर से हम सदा शत्रुओं के विजेता बनें।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति दें ताकि हम अपने शत्रुओं का पराजय कर सकें।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

पूर्वीषु पूर्व्यम्

त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः। उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥

१. हे **वृत्रहन्तम**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को अधिक-से-अधिक नष्ट करनेवाले प्रभो! **वृक्तबर्हिषः**=जिन्होंने हृदयक्षेत्र से वासनारूप घासफूस को उखाड़ दिया है, ऐसे **जनासः**=अपनी शक्तियों को प्रादुर्भाव करनेवाले पवित्रहृदय लोग **त्वाम् इत्**=आपको ही **हवन्ते**=पुकारते हैं। २. हे **उग्रम्**=तेजस्विन् प्रभो! **पूर्वीषु**=सर्वप्रथम स्थान पर पहुँचनेवाली प्रजाओं में **पूर्व्यम्**=पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम आपको ही **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिए (हवन्ते) पुकारते हैं। आपके सम्पर्क से ही वह शक्ति प्राप्त होती है, जो कि हमें सब शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ करती है।

भावार्थ—हे प्रभो! आप ही हमारी वासना को विनष्ट करते हैं। आप ही हमें शक्ति प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

कैसा रथ?

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु। सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो? **अस्माकम्**=हमारे **दुष्टरम्**=शत्रुओं से आक्रान्त न होने योग्य **रथम्**=शरीर रथ को **अवा**=आप रक्षित कीजिए। उस रथ को, जो कि **आजिषु**=संग्रामों

में **पुरोयावानम्**=आगे चलनेवाला है। २. हमारे उस शरीररथ का आप रक्षण करिए जो कि **सयावानम्**=सबके साथ मिलकर चलनेवाला है, अर्थात् परस्पर विरुद्ध गतिवाला नहीं, अर्थात् परिवार में व समाज में सबके साथ मिलकर चलता है। **धने धने**=प्रत्येक ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त **वाजयन्तम्**=हमें शक्तिशाली बनाता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हम रोगी न हों, जीवनसंग्राम में अग्रगतिवाले हों, सबके साथ मिलकर चलें और सब धनों का विजय करनेवाले हों।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

वार्यं श्रवः, दिवि स्तोमम्

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥ ८ ॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशत्रुसंहारक प्रभो! **अस्माकम्**=हमारे **रथम् इहि**=रथ को प्राप्त होइए। **नः**=(रथं)—हमारे इस शरीररथ को **पुरन्ध्या**=पालक बुद्धि के द्वारा **अवा**=सुरक्षित कीजिए। २. हे **शविष्ठ**=अत्यन्त शक्तिशाली प्रभो! **वयम्**=हम **दिवि**=अपने मस्तिष्क रूप द्युलोक में **वार्यं श्रवः**=वरणीय (श्रेष्ठ) ज्ञान को **दधीमहि**=धारण करें तथा **दिवि**=इस ज्ञान के प्रकाश में **स्तोमं मनामहे**=आपके स्तोत्रों का मनन करनेवाले हैं—ज्ञानवर्धक स्तवन करनेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु बुद्धि देकर हमारा रक्षण करें। इस श्रेष्ठ ज्ञान को धारण करें—ज्ञानपूर्वक प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें।

'प्रभूवयु अंगिरस' ही कहते हैं—

३६. [षट्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दामनः रयीणाम्

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम्।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम्॥ १ ॥

(१) **सः**=वह **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **आगमत्**=हमें प्राप्त हो। **यः**=जो प्रभु **वसूनां दातुम्**=धनों को देने के लिये **चिकेतत्**=जानता है और वस्तुतः **रयीणां दामनः**=सब ऐश्वर्यों को देनेवाला है। वस्तुतः प्रभु ही लक्ष्मी पति हैं, हम प्रभु के अतिथि बनते हैं, तो लक्ष्मी हमारा आतिथ्य करती ही है। (२) **न**=जैसे एक **धन्वचरः**=मरुस्थल में विचरनेवाला **वंसगः**=वननीय (प्रशंसनीय) गतिवाला, अकर्मण्य न होकर खूब तीव्रगति से चलता हुआ **तृषाणः**=प्यासा अतएव **चकमानः**=पानी की प्रबल कामनावाला होता है, उसी प्रकार यहां इस शरीर में **दुग्धं अंशुम्**=प्रभु से प्रपूरित इस सोम को **पिबतु**=पीनेवाला बने। सोमपान की उसमें प्रबल कामना हो। वैसी ही कामना जैसे कि उस रेगिस्तान में तीव्र गति से चलते हुए प्यासे यात्री को पानी की कामना होती है।

भावार्थ—प्रभु ही सब ऐश्वर्यों के दाता हैं। इन ऐश्वर्यों का पात्र वह बनता है, जो कि प्रभु से प्रपूरित सोम को पीने की प्रबल कामनावाला होता है।

ऋषिः—प्रभूवसुराङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सोम का शरीर में आरोहण

आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन्गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे॥ २॥

(१) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **ते हनू**=आपके दिये हुए इन हनुओं में **सोमः आ सहत्**=सोम का आरोहण हो। ये हनु (जबड़े) सदा सौम्य भोजनों का ही सेवन करें। इस सोम्य भोजन के परिणामस्वरूप सोम शरीर में सुरक्षित होकर सब इन्द्रियाश्वों को सशक्त बनाये। हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! यह सोम **शिप्रे**=नासिका-छिद्रों में (आढहत्) आरूढ़ हो। अर्थात् प्राणायाम द्वारा हम इस सोम की ऊर्ध्वगति करनेवाले हों। ऊर्ध्वरेता बनकर हम सब रोग व वासनारूप शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले बनें। **न**=और (न इति चार्थे) यह सोम **पर्वतस्य पृष्ठे**=मेरुदण्ड (मेरुपर्वत) के शिखर पर, अर्थात् मस्तिष्क में आरूढ़ हो। यहाँ यह ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर उसे दीप्त बनानेवाला हो। (२) हे **राजन्**=हमारे जीवनों को इस सोम के द्वारा दीप्त बनानेवाले, **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! **विश्वे**=हम सब **त्वा**=आपके **अनु**=साथ, अर्थात् आपकी उपासना में स्थित हुए-हुए **गीर्भिः**=इन ज्ञान वाणियों से **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें। उसी प्रकार आनन्द का अनुभव करें **न**=जैसे कि **अर्वतः हिन्वन्**=घोड़ों को प्रेरित करता हुआ व्यक्ति लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने पर आनन्द का अनुभव करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण ही सम्पूर्ण आनन्दों के मूल में है। यह सोमी पुरुष ही प्रभु का उपासक बनता है और ज्ञान की वाणियों से आनन्द को प्राप्त करता है।

ऋषिः—प्रभूवसुराङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

अज्ञान का महाभय

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः॥ ३॥

(१) हे **पुरुहूत**=पालक व पूरक है पुकार (आराधन) जिसका ऐसे प्रभो! हे **अद्रिवः**=वज्रवन् अथवा उपासनीय प्रभो (adore), **मे मनः**=मेरा मन **अमतेः**=ज्ञानाभाव के कारण **भिया वेपते इत्**=भय से काँप ही उठता है, इस प्रकार काँप उठता है **न**=जैसे कि **वृत्तं चक्रम्**=परिवर्तित होता हुआ पहिया, चलते हुए पहिये के समान मेरा मन चलायमान हो जाता है। आपका आश्रय ही तो मेरे भय को दूर करेगा, आपका स्मरण ही तो मेरे मन को स्थिर करेगा। (२) सो हे **सदावृध**=सदा से बढ़े हुए **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **जरिता**=स्तोता मैं **रथाद् अधि**=इस रथ पर बैठा-बैठा ही **कुवित् नु**=खूब ही **स्तोषत्**=स्तुति करता हूँ। आप से ही मैं **पुरुवसुः**=पालक व पूरक ज्ञान धन को प्राप्त करके भयरहित होता हूँ।

भावार्थ—प्रभु से दूर हो जाने पर संसार में भय से मनुष्य काँप उठता है। प्रभु का उपासन ही अभय देता है।

ऋषिः—प्रभूवसुराङ्गिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

दायें-बायें हाथों से ऐश्वर्यों के दाता प्रभु

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **एषः**=यह **ग्रावा इव**=(गृणाति) ज्ञानोपदेष्टा की तरह जरित आपका स्तोता **बृहत् आशुषाणः**=उत्कृष्ट ज्ञान का शीघ्रता से संभजन करता हुआ, खूब ज्ञान को प्राप्त करता हुआ **ते वाचं इयर्ति**=आपकी स्तुति वाणियों को अपने में प्रेरित करता है। वस्तुतः हमें प्रभु का 'ज्ञानी भक्त' बनने का प्रयत्न करना चाहिए। (२) हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **सव्येन**=बायें हाथ से **रायः प्रयंसि**=ऐश्वर्यों को देते हैं और **दक्षिणित् प्र (यंसि)**=दाहिने से भी धनों को देते हैं। हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को देनेवाले प्रभो! **मा विवेनः**=हमारे लिये ऐश्वर्यों को न देने की कामनावाले मत होइये। सदा हमारे लिये ऐश्वर्यों को आप प्राप्त कराइये ही।

भावार्थ—हम प्रभु के ज्ञानी भक्त बनें। प्रभु हमारे लिये सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वृषा' प्रभु

वृषा॑ त्वा॒ वृष॑णं वर्धतु॒ द्यौर्वृषा॒ वृष॑भ्यां वहसे॒ हरि॑भ्याम्।
स नो॒ वृषा॒ वृष॑रथः सुशिप्र॒ वृष॑क्रतो॒ वृषा॑ वज्रि॒न्भरे॑ धाः॥ ५॥

(१) हे **सुशिप्र**=हमारे लिये शोभन हनू व नासिकाओं को प्राप्त करानेवाले (शोभने शिप्रये स्मात्) **वृषक्रतो**=सुखों के वर्षक ज्ञानवाले **वज्रिन्**=क्रियाशीलतारूप वज्रवाले प्रभो! **सः**=वे आप ही **नः**=हमारे लिये **वृषा**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। **वृषरथः**=हमें इस शक्ति-सम्पन्न शरीर-रथ को देनेवाले हैं। **वृषा**=शक्तिशाली होते हुए आप **भरे धाः**=इस जीवन-संग्राम में हमारा धारण करिये। (२) यह **वृषा द्यौः**=हमारे लिये सब सुखों का वर्षण करनेवाला द्युलोक **वृषणं त्वा**=शक्तिशाली आपका **वर्धतु**=स्तुति द्वारा वर्धन करे। यह द्युलोक हमारे लिये आपकी महिमा को दर्शानेवाला हो। इस द्युलोक का सूर्य व तारे हमें आपका ही स्तवन करते प्रतीत हों। **वृषा**=शक्तिशाली आप **वृषभ्यां हरिभ्याम्**=इन शक्तिशाली ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों के द्वारा **वहसे**=हमारी जीवन-यात्रा का वहन करते हैं। आपके दिये हुए इन साधनों से हम जीवन-यात्रा में आगे बढ़ पाते हैं।

भावार्थ—यह द्युलोक उस प्रभु की ही महिमा को प्रकट कर रहा है। प्रभु ही हमारे लिये उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं। प्रभु हमारे लिये उत्तम जबड़ों या नासिका-छिद्रों को प्राप्त कराके हमें जीवन-संग्राम में विजयी बनाते हैं। उत्तम जबड़ों से सात्त्विक भोजन का सम्यक् चर्वण करते हुए हम नीरोग बनते हैं। नासिका-छिद्रों द्वारा प्राणायाम से निर्दोष।

ऋषिः—**प्रभूवसुराङ्गिरसः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'श्रुतरथ' प्रभु

यो रोहि॑तौ वा॒जिनौ॑ वा॒जिनी॑वा॒न्त्रिभिः॑ श॒तैः सच॑माना॒वदि॑ष्ट।
यूने॒ सम॑स्मै क्षि॒तयो॑ नमन्तां श्रु॒तर॑थाय मरुतो दुवो॒या॥ ६॥

(१) **यः**=जो प्रभु **वाजिनीवान्**=उत्तम अन्नोंवाले होते हुए **त्रिभिः शतैः सचमानौ**=तीन सौ वर्षों के आयुष्य से युक्त होते हुए **रोहितौ**=बुद्धिशील **वाजिनौ**=इन्द्रियाश्वों को **अदिष्ट**=हमारे लिये देते हैं। **अस्मै**=इस **यूने**=हमारे साथ इन प्रशस्त इन्द्रियाश्वों का मेल करनेवाले प्रभु के लिये **क्षितयः**=सब मनुष्य **संनमन्ताम्**=प्रणत हों। (२) **श्रुतरथाय**=(श्रुतं अस्य अस्ति इति श्रुतः, श्रुतः रथो यस्मात्) ज्ञानयुक्त शरीर रथ को प्राप्त करानेवाले प्रभु के लिये **मरुतः**=सब प्राणसाधक पुरुष

दुवोया=परिचर्या के द्वारा नमन्ताम्=नत हों। प्रभु हमें कितना सुन्दर शरीर-रथ प्राप्त कराते हैं, उस प्रभु ने हमें ये प्राणापान प्राप्त कराये हैं। इनकी साधना के द्वारा जीवन को निर्दोष बनाकर हम सदा प्रभु के प्रति प्रणत हों।

भावार्थ—हम प्रभु के उपासक बनें प्राणसाधना द्वारा जीवन को निर्दोष बनाकर प्रभु की परिचर्या करें। प्रभु हमें दीर्घ-जीवन व उत्तम इन्द्रियाश्व प्राप्त कराते हैं।

उस प्रभु के प्रति परिचर्या से प्रणत होता हुआ यह व्यक्ति 'अत्रि' बनता है, सब त्रिविध कष्टों व वासनाओं से दूर। यह प्रभु की उपासना करता हुआ कहता है कि—

३७. [सप्तत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अत्रि का सुन्दर जीवन

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह॥ १॥

(१) मन्त्र का ऋषि 'अत्रि' (काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाला व्यक्ति) **सूर्यस्य भानुना**=सूर्य की किरण के साथ **संयतते**=सम्यक् यत्नशील होता है, सूर्योदय के साथ ही दैनिक कार्यक्रम में प्रवृत्त हो जाता है। **आजुह्वानः**=अग्निहोत्र के करने के स्वभाववाला होता है। **घृत पृष्ठः**=(घृतं पृष्ठं यस्य) ज्ञान को अपना आधार बनाता है। **स्वञ्चाः**=उत्तम कर्मों द्वारा प्रभु का पूजन करनेवाला होता है (अञ्चू गतिपूजनयोः)। (२) **तस्मा**=उस अत्रि के लिये **अमृध्राः**=अहिंसित होते हुए **उषसः**=उषाकाल **व्युच्छान्**=उदित होते हैं, अन्धकार को दूर करनेवाले होते हैं। ये उषाकाल उसी के लिये अमृध्र होते हैं **यः**=जो कि **इन्द्राय**=उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **सुनवाम**=हम सोम का सवन (उत्पादन) करनेवाले बनें **इति आह**=यह बात बार-बार कहता है। जो अपने को इस सोम-सवन का ही निरन्तर सन्देश देता है। सोम के शरीर में उत्पादन का निश्चय होने पर ही वृत्ति उत्तम बनती है, मनुष्य उस समय वासनाओं से हिंसित नहीं होता।

भावार्थ—हमारा जीवन क्रियाशील हो। हम अग्निहोत्र स्वाध्याय व कर्मों द्वारा प्रभु-पूजन करनेवाले बनें। प्रभु प्राप्ति के लिये सोम के स्तवन का निश्चय करते हुए हम अपने को वासनाओं से हिंसित न होने दें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समिद्धाग्निः वनवत्

समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम्॥ २॥

(१) **समिद्धाग्नि**=अपने अन्दर उस अग्रणी प्रभु को समिद्ध करनेवाला **वनवत्**=विजयी होता है। **स्तीर्णबर्हिः**=वासनाशून्य हृदयासन को बिछानेवाला, **युक्तग्रावा**=(युक्तः च असौ ग्रावा च) चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला और प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाला (गृणाति) **सुतसोमः**=सोम का अपने अन्दर सम्पादन करनेवाला व्यक्ति ही **जराते**=(स्तौति) प्रभु का सच्चा स्तवन करता है। (२) **ग्रावाणः**=स्तोता लोग **यस्य**=जिस प्रभु के **इषिरे**=प्रेरणा देनेवाले इस ज्ञान को **वदन्ति**=अपने जीवन से कहने का प्रयत्न करते हैं, इसी **सिन्धुम्**=ज्ञान के समुद्र प्रभु को **अध्वर्युः**=यज्ञात्मक जीवनवाला पुरुष **हविषा**=हवि के द्वारा, त्यागपूर्वक अदन के द्वारा, **अवअयत्**=भोग-वृत्ति से दूर

होकर (away अब) प्राप्त होता है। वस्तुतः प्रभु का सच्चा स्तोता वही है जो कि हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को क्रिया में अन्वित करे और त्यागपूर्वक अदन करता हुआ भोगवृत्ति से ऊपर उठे।

भावार्थ—अपने अन्दर प्रभुरूप अग्नि को समिद्ध करनेवाला व्यक्ति विजयी बनता है। प्रभु की सच्ची उपासना यही है कि हम प्रभु के ज्ञान के अनुसार जीवन को बनायें और त्यागपूर्वक अदन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वधू का आगमन

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते॥ ३ ॥

(१) वेदवाणी के साथ परिणय का उल्लेख 'परीमे गामनेषत' इस मन्त्रभाग में स्पष्ट है। **इयं वधूः**=यह वहन करने योग्य वेदवाणी रूप युवति **पतिं इच्छन्ती**=अपने रक्षक को चाहती हुई **एति**=आती है। वह पुरुष पति होता है, यह वेदवाणी उसकी पत्नी। पुरुष 'वर' है, वेदवाणी 'वधू'। (२) **यः**=जो **महिषीम्**=अत्यन्त महनीय, आदरणीय **इषिराम्**=निरन्तर कर्मों की प्रेरणा देनेवाली इस वेदवाणी रूप वधू का **ईम्**=निश्चय से **वहाते**=वहन करता है **अस्य**=इसका **रथः**=यह शरीररूप रथ **श्रवस्यात्**=ज्ञान प्राप्ति की प्रबल कामनावाला होता है, **च**=और **आघोषात्**=प्रभु के नामों का खूब ही उच्चारण करता है। अर्थात् इसका मन प्रभु में लगा होता है, इसका मस्तिष्क स्वाध्याय द्वारा ज्ञानोज्वल बनता है। इसका यह रथ इसे **पुरू**=पालक व पूरक **सहस्रा**=हजारों धनों को **परिवर्तयाते**=(प्रापयति) प्राप्त कराता है।

भावार्थ—वेदवाणीरूप वधू का हम वरण करें। जिससे कि हमारा यह शरीररूप रथ ज्ञान के प्रकाशवाला हो, प्रभु के नामों के उच्चारणवाला हो। पालक व पूरक धनों को यह हमें प्राप्त कराये।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

हन्ति वृत्रे, क्षेति क्षितीः

न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम्।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन्॥ ४ ॥

(१) **सः**=वह **राजा**=दीप्त जीवनवाला पुरुष **न व्यथते**=कभी पीड़ित नहीं होता, **यस्मिन्**=जिस पुरुष के जीवन में **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **तीव्रम्**=इन शत्रुओं के संहार के लिये अत्यन्त तीव्र **गोसखायम्**=ज्ञान की वाणियों के मित्र **सोमम्**=सोम को **पिबति**=शरीर में पीता है, अर्थात् व्याप्त करता है। प्रभु की कृपा से ही सोम शरीर में सुरक्षित होता है, मानो प्रभु ही इसका पान करते हैं। (२) वह पुरुष **सत्वनैः**=सब शक्तियों के साथ **आ अजति**=समन्तात् गतिवाला होता है। अपने सब कर्त्तव्य कर्मों को शक्ति के साथ करता है। **वृत्रं हन्ति**=वासना को यह विनष्ट करता है। **क्षितीः क्षेति**=इन शरीरों में उत्तम निवासवाला होता है। **सुभगः**=सौभाग्यवाला होता हुआ **नाम पुष्यन्**=अपने जीवन में प्रभु के नाम का पोषण करता है। सदा प्रभु स्मरणपूर्वक चलता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से सोम का रक्षण होने पर हमारा जीवन दीप्त बनता है, यह सोम हमारे साथ ज्ञान की वाणियों के सम्पर्क को करता है। हमारे बल को यह सोम बढ़ाता है, वासना को विनष्ट करता है और हमें सौभाग्यशाली व प्रभु प्रवण बनाता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

योगक्षेम का ठीक साधन

पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत्॥ ५॥

(१) **यः**=जो **सुतसोमः**=सोम का (वीर्यशक्ति का) सम्पादन करता हुआ पुरुष **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **ददाशत्**=अपने को दे डालता है, वह **सूर्ये प्रियः**=ज्ञान सूर्योदय के होने पर प्रभु का प्रिय **भवाति**=होता है। यह व्यक्ति **अग्नौ**=शरीर में अग्नितत्त्व के ठीक विकास के कारण **प्रियः**=प्रभु का प्रिय होता है। प्रभु का प्रिय स्वस्थ पुरुष है। स्वस्थ वही है, जो कि मस्तिष्क में ज्ञान सूर्यवाला तथा शरीर में अग्नितत्त्ववाला है। (२) यह **क्षेमे पुष्यात्**=कल्याण में पोषित होता है, अर्थात् इस जन्म की समाप्ति पर मोक्ष को प्राप्त करनेवाला होता है और **योगे**=चित्तवृत्ति के निरोध के होने पर **अभिभवाति**=सब वासनाओं का अभिभव करनेवाला होता है। **उभे**=दोनों **वृतौ**='अभ्युदय व निःश्रेयस' जिनका कि वरण किया गया है उन्हें **संयती**=मिलकर चलते हुओं को **सं जयाति**=सम्यक् जीतनेवाला होता है। इसके जीवन में अभ्युदय व निःश्रेयस का मेल होता है। यह केवल अभ्युदय व केवल निःश्रेयस को लेकर नहीं चलता।

भावार्थ—हम अपने जीवन में सोमरक्षण द्वारा 'योगक्षेम' को सिद्ध करें, अभ्युदय व निःश्रेयस का वरण करें सूर्य व अग्नि तत्त्व को सिद्ध करके प्रभु के प्रिय बनें।

कवि ही अगले सूक्त में आराधना करता है कि—

३८. [अष्टात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'बल व ज्ञान' का वर्धक धन

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्, **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञानों व कर्मोंवाले प्रभो! **उरोः**=विशाल **ते**=आपके **राधसः**=कार्यसाधक धन की **रातिः विभ्वी**=राति भी, दान भी व्यापक है। अनन्त आपका ऐश्वर्य है, अनन्त ही आपके दान हैं। (२) हे **विश्वचर्षणे**=सब के द्रष्टा, सब का ध्यान करनेवाले, **सुक्षत्र**=उत्तम धनोंवाले प्रभो (क्षत्रं-धनम्) **अधा**=अब **नः**=हमारे लिये **द्युम्ना**=ज्योतिर्मय धनों को **मंहय**=देने का अनुग्रह कीजिये। 'सुक्षत्र' सम्बोधन में 'क्षत्र' शब्द उस धन का संकेत कर रहा है जो कि बल से युक्त है। 'द्युम्ना' शब्द उस धन का संकेत करता है जो कि ज्योतिवाला है। हमें धन तो प्राप्त हो, पर वह धन जो कि बल व ज्योति से युक्त है, जिस धन के द्वारा हम सबल व ज्योतिर्मय जीवनवाले बनें। विलास का कारण बनकर धन हमारे ज्ञान व बल दोनों का ही विनाश करता है।

भावार्थ—अनन्त ऐश्वर्यवाले प्रभु के अनन्त ही दान हैं। प्रभु हमें वह धन दें, जो कि हमारे बल व ज्ञान का वर्धक हो।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

'श्रवाय्य-दीर्घश्रुत्तम-दुष्टर' अन्न

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे। पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्! **शविष्ठ**=सर्वाधिक बलशालिन् प्रभो! **यत्**=जो **ईम्**=निश्चय से **श्रवाय्यम्**=श्रवणीय अथवा ज्ञानवर्धन के लिये उत्तम **इषम्**=अन्न है, उसे आप हमारे लिये **दधिषे**=धारण करते हैं। (२) हे **हिरण्यवर्ण**=स्वर्ण के समान देदीप्यमान-ज्योतिर्मय रूपवाले प्रभो! वह **दीर्घश्रुत्तम्**=हमें अत्यधिक दीर्घश्रुत बनानेवाला, **दुष्टरम्**=शत्रुओं से अभिभूत न करने योग्य अन्न **पप्रथे**=हमारी शक्तियों के विस्तार का कारण बनता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें वह अन्न प्राप्त हो जो कि 'श्रवाय्य दीर्घश्रुत्तम व दुष्टर' है इस सात्त्विक अन्न के सेवन से हमारे ज्ञान में वृद्धि हो और हमारी शक्तियों का विस्तार हो।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

मेहना केतसापः

शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः। उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३ ॥

(१) हे **अद्रिवः**=वज्रवन् इन्द्र! **ये**=जो **ते**=आपके **शुष्मासः**=बल हैं, आपकी उपासना से प्राप्त होनेवाली शक्तियाँ हैं, वे **मेहना**=(मिह सेचने) सब सुखों का सेचन करनेवाली हैं तथा **केतसापः**=ज्ञान के साथ स्पर्श करनेवाली, अर्थात् ज्ञान को बढ़ानेवाली हैं। (२) **उभौ**=शरीर में बल तथा मस्तिष्क में ज्ञान **देवौ**=ये दोनों देव हमारे सब व्यवहारों के साधक हैं (दिव् व्यवहारे)। ये दोनों मिलकर **अभिष्टये**=हमारे सब इष्टों की प्राप्ति के लिये होते हैं तथा हमारे रोगों व वासनारूप शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले होते हैं। **दिवः**=मस्तिष्क के दृष्टिकोण से **च**=तथा **ग्मश्च**=शरीररूप पृथिवी के दृष्टिकोण से **राजथः**=ये दीप्त होते हैं। ज्ञान व बल हमारे मस्तिष्क व शरीर को उज्ज्वल बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से प्राप्त होनेवाले बल शरीर को सुखी व मस्तिष्क को ज्ञानोज्ज्वल बनाते हैं। ये बल व ज्ञान दोनों मिलकर हमारे सब अभीष्टों को सिद्ध करनेवाले हैं।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

दक्ष-नृम्ण

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन्।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **उतो**=और **नः**=हमारे लिये **अस्य**=इस **कस्यचित्**=अनिर्देश्य, शब्दों से पूरा-पूरा वर्णन न करने योग्य **तव**=आपके **दक्षस्य**=बल का **आभर**=भरण कीजिये। आपकी उपासना के द्वारा वासनाओं से ऊपर उठकर हम उन्नति के साधनभूत बल को प्राप्त करें। (२) **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये आप **नृम्णम्**=बल व धन को **आभर**=भरिये। आप **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये सदा ही **नृमणस्यसे**=धन व बल को देने की कामना करते हैं। आपके इस नृम्ण को पाने के लिये हम पात्र बनें।

भावार्थ—प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करके हमें बल व धन को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सुगोपाः

नू तं आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो। इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥

(१) हे **शतक्रतो**=सैंकड़ों ज्ञानों व कर्मोंवाले प्रभो! **नु**=अब **ते**=आपके **आभिः**=इन **अभिष्टिभिः**=शत्रुओं पर किये गये आक्रमणों से हम **तव शर्मणि**=आपकी शरण में प्राप्त हों। वस्तुतः वासनाओं पर आक्रमण ही हमें प्रभु प्राप्ति के योग्य बनाता है। जितना-जितना हम वासनाओं को जीतने में सफल होते हैं, उतना-उतना प्रभु के समीप पहुँचते जाते हैं। (२) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! आपकी शरण में आकर हम **सुगोपाः**=अपनी इन्द्रियों के उत्तम रक्षक बनें। हे **शूर**=सब शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! हम आपकी शरण में अवश्य ही **सुगोपाः स्याम**=उत्तम गोप बनें, इन्द्रियाश्वों को अच्छी तरह सुरक्षित करनेवाले हों।

भावार्थ—वासनाओं पर आक्रमण हमें प्रभु के समीप करे। यह प्रभु का सान्निध्य हमें इन्द्रियों का उत्तम रक्षक बनाये।

अगले सूक्त में भी 'अत्रि' ही आराधना करते हैं—

३९. [एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

उभयाहस्त्या

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः। राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्! **चित्र**=चायनीय-पूजनीय अथवा अद्भुत **अद्रिवः**=आदरणीय व वज्रवन् प्रभो! **यत्**=जो **त्वादातम्**=आप से देने योग्य धन है वह **मेहना अस्ति**=सब सुखों का सेचन करनेवाला है। (२) हे **विदद्वसो**=सब वसुओं को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **नः**=हमारे लिये **तद् राधः**=उस धन को **उभयाहस्तिः**=दोनों हाथों से आभार प्राप्त कराइये। सब धनों के स्वामी आप ही हैं, आपकी कृपा से हमें जीवन के लिये आवश्यक वसुओं की प्राप्ति हो।

भावार्थ—प्रभु से प्राप्त होनेवाला धन महनीय है। प्रभु हमारे लिये इस धन को खूब ही दें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

द्युक्ष (दीप्त सोम)

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर। विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ २ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **यत्**=जिस **द्युक्षम्**=दीप्त सोम को **वरेण्यम्**=वरणीय व श्रेष्ठ **मन्यसे**=मानते हैं, **तद् आभर**=उसे हमारे लिये प्राप्त कराइये। (२) **वयम्**=हम **तस्य**=उस **अकूपारस्य**=अकुत्सित पारवाले, अत्यन्त प्रशस्त परिणामवाले, इस सोम के **ते दावने**=आपसे दिये जानेवाले दान में **विद्याम**=हों आपकी कृपा से हमें यह सोम प्राप्त हो, जो कि हमारे जीवन में सब शुभ परिणामों को पैदा करता है और जिस सोम के कारण हमारा निवास (क्षि) सदा ज्ञानदीप्ति (द्यु) में होता है।

भावार्थ—सोम हमारे जीवन में सब शुभ परिणामों को पैदा करता है, यह अकूपार है, अकुत्सित पार वाला, शुभ परिणामवाला।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

'दित्सु-प्राध्य-बृहत् श्रुत' मन

यत्ते॑ दि॒त्सु प्रा॒ध्यं॑ मनो॒ अस्ति॑ श्रु॒तं बृ॒हत्। तेन॑ दृ॒ळ्हा चि॑दद्रिव॒ आ वाजं॑ दर्षि सा॒तये॑ ॥ ३ ॥

(१) हे **अद्रिवः**=वज्रवन् व आदरणीय प्रभो! **यत्**=जो **ते**=आपका **दित्सु**=सदा दान देने की कामनावाला, **प्राध्यम्**=प्रकृष्ट आराधना में उत्तम **मनः**=मन **अस्ति**=है, जो मन **बृहत् श्रुते**=खूब ही ज्ञानवाला है **तेन**=उस मन के द्वारा **दृढा चित्**=काम-क्रोध-लोभ के दृढ़ दुर्गों को भी **आदर्षि**=विदीर्ण कर देते हैं। दान देने की कामनावाला मन (दित्सु) 'लोभ' के दुर्ग को विनष्ट करता है। प्रभु की आराधनावाला मन 'काम' के दुर्ग को समाप्त करता है तथा श्रुत मन (खूब ज्ञानवाला मन) क्रोध के दुर्ग को विनष्ट करता है। (२) इन दुर्गों को विदीर्ण करके आप **वाजं सातये**=शक्ति को प्राप्त कराने के लिये होते हैं। काम-क्रोध-लोभ ही तो हमारी शक्तियों को विनष्ट करते हैं। इनको विनष्ट करके हम शक्ति-सम्पन्न बनते हैं।

भावार्थ—हमारा मन 'दित्सु-प्राध्य व बृहत् श्रुत' हो। इस मन से लोभ, काम व क्रोध को नष्ट करके हम शक्ति-सम्पन्न बनें।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—स्वराडुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

'दातृतम' व 'जीवन को दीप्त बनानेवाले' प्रभु

मंहि॑ष्ठं वो म॒घोनां॒ राजा॑नं चर्षणी॒नाम्। इन्द्र॒मुप॒ प्रश॑स्तये पू॒र्वीभि॑र्जुजुषे॒ गिरः॑ ॥ ४ ॥

(१) **गिरः**=स्तोता लोग **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **प्रशस्तये**=जीवन को प्रशस्त बनाने के लिये **पूर्वीभिः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी गयी अथवा हमारा पालन व पूरण करनेवाली वाणियों से **उपजुजुषे**=सेवन करते हैं। इन वेदवाणियों का अध्ययन करते हुए वे अपने ज्ञान को बढ़ाते हैं, इस ज्ञानयज्ञ के द्वारा प्रभु का उपासन करते हैं। इस उपासना से सब वासनाओं का विनाश होकर जीवन प्रशस्त बनता है। (२) उस प्रभु का सेवन करते हैं, जो कि **मघोनाम्**=ऐश्वर्यशालियों में **वः**=तुम्हारे **मंहिष्ठम्**=दातृतम हैं, सर्वाधिक दान देनेवाले हैं। तथा **चर्षणीनां राजानम्**=सब मनुष्यों के जीवन को दीप्त करनेवाले हैं। जो भी श्रमशील बनता है, प्रभु उसको दीप्त जीवनवाला बनाते हैं। वस्तुतः जीवन को दीप्त बनाने के लिये सब आवश्यक चीजों को वे प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम वेदवाणियों द्वारा प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कराते हैं और हमारे जीवनों को दीप्त बनाते हैं।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

गिरः शुम्भन्ति अत्रयः

अ॒स्मा इत्काव्यं॒ वच॑ उ॒क्थमिन्द्रा॑य॒ शंस्य॑म्।
तस्मा॑ उ॒ ब्रह्म॑वाहसे॒ गिरो॑ वर्ध॒न्त्यत्र॑यो॒ गिरः॑ शुम्भ॒न्त्यत्र॑यः ॥ ५ ॥

(१) **अस्मै इन्द्राय इत्**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये ही **उक्थम्**=ऊँचे से उच्चारण के योग्य **काव्यं वचः**=वेदरूप अजरामर काव्य के स्तुतिवचन **शंस्यम्**=शंसित करने चाहिये। इन वेदवचनों के द्वारा प्रभु का स्तवन करना चाहिए। (२) **अत्रयः**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाले अत्रि **तस्मै**=उस **ब्रह्मवाहसे**=ज्ञान को प्राप्त करानेवाले प्रभु के लिये **उ**=ही **गिरः वर्धन्ति**=ज्ञान की वाणियों का वर्धन करते हैं। ये **अत्रयः**=अत्रि लोग **गिरः**=इन ज्ञानवाणियों से ही जीवन को **शुम्भन्ति**=शोभित करते हैं। वस्तुतः प्रभु का सबसे उत्कृष्ट स्तवन यही है कि हम

अपने जीवन को ज्ञान की वाणियों से अलंकृत करें।

भावार्थ—उस प्रभु के लिये इन वेदवाणियों द्वारा शंसन करना चाहिए। उस प्रभु का सच्चा स्तवन यही है कि हम इन ज्ञानवाणियों से जीवन को अलंकृत करें, यही ज्ञानयज्ञ द्वारा प्रभु का उपासन है।

अगले सूक्त में भी अत्रि ही कहते हैं—

४०. [चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'सोमपति' प्रभु

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=सब आसुरवृत्तियों का संहार करनेवाले प्रभो! **आयाहि**=आप हमें प्राप्त होइये। हे **सोमपते**=सोम का (वीर्यशक्ति का) रक्षण करनेवाले प्रभो! **अद्रिभिः**=उपासकों द्वारा **सुतं सोमम्**=शरीर में उत्पन्न किये गये सोम को **पिब**=आप हमारे शरीर में ही व्याप्त करिये। आप हमारे हृदयों में स्थित होंगे, तो वहाँ वासनाओं का प्रवेश न होना और वासनाओं के अभाव में ही सोमरक्षण का सम्भव होता है। (२) हे **वृषन्**=हमारे अन्दर सोम का सेचन करनेवाले, **वृत्रहन्तम**=सोमरक्षण के लिये ही वासनाओं को सर्वाधिक विनष्ट करनेवाले प्रभो! आप **वृषभिः**=इन सोमों के हेतु से ही हमें प्राप्त होइये (वृषा=सोम)। आपने ही हमारे जीवन में सोम का रक्षण करना है।

भावार्थ—हम प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें प्राप्त होंगे और वासना विनाश के द्वारा हमारे सोम का रक्षण करेंगे।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

स्तोता-प्रसन्न व सोमरक्षक

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥ २॥

(१) **ग्रावा**=प्रभु के लिये स्तुति वाणियों का उच्चारण करनेवाला **वृषा**=शक्तिशाली बनता है। **मदः**=सदा आनन्दित रहनेवाला **वृषा**=शक्तिशाली होता है। **अयम्**=यह **सुतः सोमः**=उत्पन्न किया गया सोम **वृषा**=हमें शक्तिशाली बनानेवाला है सो हम 'सोता, प्रसन्न व सोमरक्षक' बनकर शक्तिशाली बनें। (२) हे **इन्द्र**=सब दस्युओं का संहार करनेवाले प्रभो! **वृषन्**=हमारे में सोम का सेचन करनेवाले प्रभो! और, सोमरक्षण के लिये ही **वृत्रहन्तम**=सर्वाधिक वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभो! आप **वृषभिः**=इन हमें शक्तिशाली बनानेवाले सोमों के हेतु से ही हमें प्राप्त हों। आपने ही वासना को विनष्ट करके हमारे जीवन में सोम का रक्षण करना है।

भावार्थ—स्तोता-सदा प्रसन्न रहनेवाला व सोमरक्षक पुरुष ही शक्तिशाली बनता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'सोम का सेचन करनेवाले' प्रभु

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥ ३॥

(१) **वृषा**=अपने अन्दर सोम का सेचन करनेवाला मैं **वृषणं त्वा**=शक्तिशाली आपको **हुवे**=पुकारता हूँ। **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! क्रियाशीलतारूप वज्र से वासनाओं को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **चित्राभिः**=चायनीय (आदरणीय) व अद्भुत **ऊतिभिः**=रक्षणों के हेतु से मैं आपको

पुकारता हूँ। (२) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं के संहार करनेवाले प्रभो! आप ही **वृषन्**=हमारे जीवनों में सोम का सेचन करनेवाले हैं। सोम सेचन के उद्देश्य से ही **वृत्रहन्तम**=अधिक से अधिक वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हैं।

भावार्थ—हमारे शरीरों में सोम के सेचन के द्वारा प्रभु अद्भुत प्रकार से हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ४ ॥

(१) **ऋजीषी**=(ऋजु-इष) सदा सरल मार्ग से चलनेवाला, **वज्री**=क्रियाशीलतारूप वज्रवाला, अर्थात् कभी अकर्मण्य न होनेवाला, अतएव **वृषभः**=शक्तिशाली, **तुराषाट्**=त्वरा से शत्रुओं का पराभव करनेवाला, **शुष्मी**=शत्रुशोषक बलवाला, **राजा**=जीवन को दीप्त बनानेवाला, **वृत्रहा**=वासना का विनाशक, **सोमपावा**=सोम (वीर्य) का रक्षण करनेवाला यह पुरुष **हरिभ्याम्**=इन्द्रियाश्वों से **युक्त्वा**=शरीर रथ को जोतकर **अर्वाङ् उपयासत्**=अन्तर्मुख यात्रावाला प्रभु के समीप प्राप्त हो। (२) **माध्यन्दिने सवने**=जीवन-यात्रा के इस माध्यन्दिन सवन में, गृहस्थाश्रम के काल में, इस प्रकार सोमपावा बनकर **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **मत्सत्**=आनन्द का अनुभव करे। ब्रह्मचर्याश्रम 'जीवन का प्रातःसवन' है। गृहस्थ 'माध्यन्दिन' तथा वानप्रस्थ-संन्यास 'तृतीय सवन' हैं। माध्यन्दिन सवन में भी सोमरक्षण करता हुआ पुरुष जीवन के वास्तविक आनन्द का अनुभव करे।

भावार्थ—हम ऋजुमार्ग से चलते हुए, सोमरक्षण के द्वारा जीवन के वास्तविक आनन्द को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्य पर स्वर्भानु का आक्रमण

यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः। अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥ ५ ॥

(१) हमारे जीवन में ज्ञान के सूर्य का उदय होता है। इस सूर्य की 'स्वर्भानु' (भानु=दीप्ति, वृ=to kill) दीप्ति को नष्ट करनेवाला 'वैषयिक रोग'। यह 'आसुर' है (असु क्षेपणे) हमारी चित्तवृत्ति को इधर-उधर फेंकनेवाला है। हे **सूर्य**=ज्ञानरूप सूर्य! **यत्**=जो **स्वर्भानुः**=दीप्ति को नष्ट करनेवाला **आसुरः**=हमारे चित्तों को विक्षिप्त करनेवाला यह वैषयिक राग **त्वा**=तुझे **तमसा**=अन्धकार से **अविध्यत्**=बींधता है, उस समय यह मनुष्य इस प्रकार मूढ़-सा बन जाता है **यथा**=जैसे एक **अक्षेत्रवित्**=अपने को, अपने ही शरीर रूप क्षेत्र को न समझनेवाला **मुग्धः**=मूढ़-सा होता है। विषय-वासना का पर्दा पड़ते ही मनुष्य अपने को भूल जाता है और कुछ पागलों-सा व्यवहार करने लगता है। (२) उस समय **भुवनानि**=सब लोग **अदीधयुः**=(दीधिति=a religious prayer of devotion) इस प्राणी की स्थिति को देखकर धर्मप्रवण होकर प्रार्थना में प्रवृत्त होते हैं। उस समय प्रार्थना का स्वरूप यही होता है कि इस 'स्वर्भानु' का आक्रमण हमारे जीवनों पर न हो। हमारा जीवन ज्ञान सूर्य से सदा दीप्त रहे हम भी इस अज्ञान के आक्रमण से पागल से न हो जाएँ।

भावार्थ—ज्ञानसूर्य को वैषयिक दागरूप अज्ञान ने ग्रसा तो चित्तवृत्ति अस्थिर हो जाती है, और हम पागल से हो जाते हैं। सो प्रभु से यही आराधना करना कि यह अज्ञान हमारे ज्ञानसूर्य को ग्रसनेवाला न हो।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अत्रिः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्वर्भानु की माया का विनाश

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ ६ ॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **अध**=अब **यद्**=जिस समय तू **स्वर्भानोः**=इस दीप्ति को नष्ट करनेवाले वैषयिक राग अज्ञान की **दिवः**=ज्ञान के **अवः**=नीचे **वर्तमानाः**=होती हुई, अर्थात् ज्ञान पर परदे के रूप आ जाती हुई **मायाः**=मायाओं को **अवाहन्**=नष्ट कर डालता है तभी यह **अत्रिः**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाला व्यक्ति **सूर्यम्**=ज्ञानसूर्य को **अविन्दत्**=प्राप्त करता है। (२) उस सूर्य को प्राप्त करता है जो कि **अपव्रतेन तमसा**=जिसमें सब उत्तम कर्म नष्ट हो गये हैं ऐसे अज्ञानान्धकार से **गूढम्**=छिप गया था। विषय-राग के प्रबल होने पर सब धर्म-कर्म लुप्त हो जाते हैं। यह विषय-रागान्धकार अपव्रत तो है ही। इस सूर्य को अत्रि-काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाला, व्यक्ति **तुरीयेण ब्रह्मणा**=पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोक के परे चतुर्थ लोक में स्थित ब्रह्म से **अविन्दत्**=प्राप्त करता है। प्रभु कृपा से ही माया का परदा हटता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से जब हम माया के परदे को दूर कर पाते हैं, तभी हमारा ज्ञानसूर्य चमकने लगता है। इसकी दीप्ति में ही सब उत्तम यज्ञादि कर्मों का सम्भव होता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अत्रिः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

इरस्या-द्रुग्ध व भय से दूर

मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत्।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥

(१) गतमन्त्र का अत्रि प्रभु से प्रार्थना करता है कि **अत्र**=यहाँ इस जीवन में **इमम्**=इस **तव सन्तम्**=तेरे होते हुए, अर्थात् तेरे उपासक **माम्**=मुझ को **इरस्या**=(ill-will) किसी के भी अशुभ की कामना **द्रुग्धः**=द्रोहवृत्ति (malevolent act) **भियसा**=भय के साथ **निगारीत्**=निगल न जाये। न मेरे में ईर्ष्या व अशुभ इच्छा हो, न द्रोहवृत्ति हो तथा मैं भय से ऊपर उठा रहूँ। (२) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **मित्रः असि**=मुझे प्रमीति से, पाप व मृत्यु से रक्षित करनेवाले हैं, आप मुझे पापों व मृत्यु से बचाते हैं। **सत्यराधाः**=सत्य को आप मेरे में सिद्ध करते हैं अथवा सत्यमार्ग से मुझे धन कमाने के लिये प्रेरित करते हैं। पापों से बचानेवाले आप '**मित्र**' **च**=और **राजा**=मेरे जीवन को दीप्त (राज् दीप्तौ) व व्यवस्थित (regulated) करनेवाला **वरुणः**=(पाशी) व्रतों के बन्धन में बाँधनेवाला '**वरुण**' **तौ**=वे दोनों **मा**=मुझे **इह अवतम्**=यहाँ रक्षित करें। 'मित्र व वरुण' रूप में आपका स्मरण करता हुआ मैं अपने को प्रमीति से बचाऊँ तथा व्यवस्थित व दीप्त जीवनवाला बनूँ। गतमन्त्र के स्वर्भानु की माया का ही परिणाम 'इरस्या, द्रुग्ध व भय' होते हैं। 'मित्र वरुण' की कृपा से इस माया का विनाश होकर मैं इन 'इरस्या' आदि का शिकार नहीं होता।

भावार्थ—मैं प्रभु का उपासक बनूँ। यह उपासना मुझे 'ईर्ष्या, द्रोह व भय' से दूर करेगी। मैं सब के साथ स्नेह करनेवाला व व्रतों के बन्धन में अपने को बाँधकर चलनेवाला बनूँगा।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—अत्रिः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

माया का अपगोहन (निवारण)

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन्।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत्॥ ८॥

(१) **ब्रह्मा**='अत्यन्त सात्त्विक वृत्तिवाला' ज्ञानी पुरुष **ग्राव्णः**=ज्ञानोपदेष्टाओं के साथ (गृणाति इति) **युयुजानः**=सम्पर्क में आता हुआ, **कीरिणा**=(कीर्यते अनेन) वासनाओं को दूर फेंकनेवाले स्तोत्रों से **सपर्यन्**=प्रभु पूजन करता हुआ, **नमसा**=नम्रता के साथ **देवान् उपशिक्षन्**=देवों के समीप शिक्षा को प्राप्त करता हुआ **अत्रिः**=काम-क्रोध-लोभ से दूर रहनेवाला यह पुरुष **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **सूर्यस्य चक्षुः**=ज्ञान सूर्य के प्रकाश को **आधात्**=स्थापित करता है। ज्ञान के प्रकाश की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि (क) हम उपदेष्टाओं के सम्पर्क में रहें, (ख) प्रभु का स्तवन करें, (ग) नम्रता से ज्ञानियों के समीप शिक्षा को प्राप्त करें। (२) ऐसा करने पर ही यह 'अत्रि' **स्वर्भानोः**=ज्ञान विनाशक वैषयिक रागरूप अज्ञान की **मायाः**=मायाओं को **अप अधुक्षत्**=अपने से दूर करता है, अपने से माया को दूर संवृत करता है, इससे आक्रान्त नहीं होता।

भावार्थ—उपदेष्टाओं के सम्पर्क में आना, प्रभु का स्तवन, नम्रता से ज्ञानियों से शिक्षा को प्राप्त करना। ये उपाय हैं जिनसे कि हम ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करते हैं और वैषयिक-रागरूप अज्ञान की माया से बच पाते हैं।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—अत्रिः ॥ छन्दः—स्वराडुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

अत्रि का ज्ञानसूर्य को प्राप्त करना

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः। अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन्॥ ९॥

(१) **वै**=निश्चय से **यं सूर्यम्**=जिस ज्ञानसूर्य को **आसुरः**=चित्तवृत्ति को इधर-उधर फेंकनेवाला **स्वर्भानुः**=प्रकाश को नष्ट करनेवाला वैषयिक राग रूप अज्ञान **तमसा**=अन्धकार से **अविध्यत्**=विद्ध कर डालता है, **तम्**=उस ज्ञानसूर्य को **अत्रयः**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाले पुरुष ही **अन्वविन्दन्**=विषय-राग से ऊपर उठने के बाद (अनु) प्राप्त करते हैं। (२) ज्ञान को प्राप्त करने का अन्य मार्ग नहीं है। **अन्ये**=अत्रियों से भिन्न व्यक्ति **न हि अशक्नुवन्**=इस ज्ञानसूर्य को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुए।

भावार्थ—काम-क्रोध-लोभ में फँसा हुआ पुरुष ज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकता।

'ज्ञान के द्वारा ही सब दिव्यगुणों का जीवन में स्थापन होता है' यह बात अगले सूक्त के देवता 'विश्वेदेवाः' से स्पष्ट हो रही है। अत्रि ही प्रार्थना करता है—

४१. [एकचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

दिव्य व पार्थिव तेज की प्राप्ति

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान्॥ १॥

(१) हे **मित्रावरुणौ**=स्नेह व निर्द्वेषता के देवताओ! **नु**=अब **कः**=कौन **ऋतायन्**=यज्ञ

को चाहता हुआ पुरुष **वाम्**=आपका होता है। कोई विरल पुरुष ही प्रभु की उपासना में प्रवृत्त होता है। प्रभु की उपासना के लिये यज्ञों की कामनावाले पुरुषों की संख्या अत्यन्त विरल है। उस यज्ञशील पुरुष के लिये **दिवः**=द्युलोक के **महः**=तेज को **वा**=तथा **पार्थिवस्य**=पृथिवीलोक के तेज को **वा**=निश्चय से **दे**=देनेवाले होते हैं। मस्तिष्करूप द्युलोक का तेज ज्ञान है और शरीररूप पृथिवी का तेज शक्ति है। यज्ञों द्वारा उपासक के लिये मित्र और वरुण ज्ञान व शक्ति को प्राप्त कराते हैं। (२) हे मित्र और वरुण! आप **ऋतस्य सदसि**=उस शरीर गृह में जिसे कि हम यज्ञों का स्थान बनाते हैं, आप **नः**=हमें **त्रासीथाम्**=रक्षित करें। आप **वा**=निश्चय से **यज्ञायते**=इस यज्ञ की कामनावाले पुरुष के लिये **पशुषः**=(पशून् सा०) पशुओं को, गौ आदि पशुओं को **न**=और (न इति चार्थे) **वाजान्**=अन्नों को प्राप्त करायें। गौ इत्यादि पशुओं के कारण इसे घृत की कमी न रहे और अन्नों से सामग्री की कमी न रहे। इनको प्राप्त करके यह अपने घर को 'यज्ञों का घर' बनाने में समर्थ हो।

भावार्थ—हम यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमारे लिये ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करायें। साथ ही यज्ञों की पूर्ति के लिये घृत व अन्न की हमें कमी न हो।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

किनका संग?

ते नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतो॑ जुषन्त।
नमो॑भिर्वा॒ ये दध॑ते सुवृ॒क्तिं स्तोमं॑ रु॒द्राय॑ मी॒ळ्हुषे॑ स॒जोषाः॑ ॥ २ ॥

(१) **नः**=हमारे साथ **ते**=वे **जुषन्त**=प्रीतिवाले हों, अर्थात् हमारा उन लोगों के साथ प्रेमपूर्वक मित्रता का सम्बन्ध हो जो कि **मित्रः**=सबके मित्र हैं, सबके प्रति स्नेहवाले हैं, **वरुणः**=द्वेष का निवारण करनेवाले हैं, किसी के प्रति द्वेष भावना नहीं रखते, **अर्यमा**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का नियमन करते हैं, **आयुः**=(एति) गतिशील हैं, क्रियाशील, अकर्मण्य नहीं, **इन्द्रः**=जो जितेन्द्रिय हैं, **ऋभुक्षाः**=ज्ञानदीप्ति में निवास करनेवाले हैं, **मरुतः**=प्राणसाधना में प्रवृत्त हैं। (२) **वा**=अथवा हमारा उनके साथ रहन-सहन व उठना-बैठना हो **ये**=जो कि **नमोभिः**=नमन के साथ **मीढुषे**=सर्व सुखों का सेचन करनेवाले **रुद्राय**=सब रोगों का द्रावण करनेवाले प्रभु के लिये **सजोषाः**=परस्पर प्रेमवाले होते हुए मिलकर **सुवृक्तिम्**=अच्छी प्रकार पापों के वर्जन के हेतुभूत **स्तोमम्**=स्तवन को **दधते**=धारण करते हैं। इन उपासकों के साथ हमारा मेल हो। इनके सम्पर्क में आकर हम भी इनके समान जीवनवाले बनें।

भावार्थ—हमारा सम्पर्क 'स्नेही, निर्द्वेष, शत्रुविजयी, गतिशील, जितेन्द्रिय, ज्ञानरुचि, प्राणसाधक व प्रभु के उपासक' पुरुषों के साथ हो। इस सम्पर्क से हम भी इन जैसे बन पायेंगे।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यन्तृतम अश्विनी देवों का आराधन

आ वां॒ येष्ठा॑श्विना हु॒वध्यै॒ वात॑स्य॒ पत्म॒न्रथ्य॑स्य पु॒ष्टौ।
उ॒त वा॑ दि॒वो असु॑राय॒ मन्म॒ प्रान्धां॑सीव॒ यज्य॑वे भरध्वम् ॥ ३ ॥

(१) हे **येष्ठा**=यन्तृतम **अश्विना**=प्राणापानो! अधिक से अधिक चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाले प्राणापानो! मैं **वाम्**=आप दोनों को **आहुवध्यै**=पुकारता हूँ, आप दोनों की आराधना करता हूँ, प्राणायाम द्वारा आपकी साधना में प्रवृत्त होता हूँ। ताकि **वातस्य**=वायुवत् क्रियाशील पुरुष

के **पत्मन्**=मार्ग में **रथ्यस्य पुष्टौ**=शरीर रथ में जुतनेवाले इन्द्रियाश्वों को हम पुष्ट कर सकें। इन इन्द्रियाश्वों की पुष्टि के निमित्त हम प्राणसाधना करते हैं। इस प्राणसाधना से (प्राणायामैर्दहेद् दोषान्) दोषों का दहन होकर इन इन्द्रियाश्वों का पोषण होता है। (२) **उत वा**=और निश्चय से **दिवः**=ज्ञान के द्वारा **असुराय**=प्राणशक्ति का संचार करनेवाले प्रभु के लिये **मन्म**=मननपूर्वक किये जानेवाले स्तोत्रों का **प्रभरध्वम्**=भरण करो। इन स्तोत्रों से हमारे सामने जीवन का लक्ष्य सदा उपस्थित रहेगा। इस 'दिवः असुर' प्रभु के स्तवन में हम अपने जीवनों में ज्ञान व शक्ति के भरण को कभी भूलेंगे नहीं। इस प्रकार प्रभु के लिये स्तवनों को करो **इव**=जैसे कि **यज्यवे**=यज्ञशील प्रभु के लिये **अन्धांसि**=हविर्लक्षण अन्नों का भरण करते हैं। अर्थात् 'यज्यु' प्रभु की प्राप्ति के लिये यज्ञशील बनना आवश्यक है। हविर्लक्षण अन्नों के द्वारा ही हम उस प्रभु का स्तवन करते हैं 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा क्रियाशील जीवन बिताते हुए हम इन्द्रियाश्वों को निर्दोष व पुष्ट बनायें। प्रभु हमें, प्रभु स्तवन के होने पर ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराते हैं। इस यज्यु प्रभु की प्राप्ति के लिये हम हविवाले बनें, सदा दानपूर्वक अदन करनेवाले हों।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जीवन संग्राम में चलनेवाले

प्र स॒क्षणो॑ दि॒व्यः कण्व॑होता त्रि॒तो दि॒वः स॒जोषा॒ वातो॑ अ॒ग्निः।
पू॒षा भगः॑ प्रभृ॒थे वि॒श्वभो॑जा आ॒जिं न ज॑ग्मुरा॒श्व॑श्वतमाः॥ ४॥

(१) **प्र सक्षणः**=(प्रकर्षेण शत्रूणां सोढा) खूब ही काम-क्रोध आदि शत्रुओं का यह पराभव करनेवाला होता है। इस शत्रुओं के पराभव के लिये ही **दिव्यः**=सदा ज्ञान प्रकाश में निवास करनेवाला होता है **कण्वहोता**=(कण्वश्चासौ होता च) मेधावी बनकर दान देनेवाला बनता है। अदान व लोभ ही सब बुराइयों का मूल है। पर अपात्र में दिया हुा दान समाज के लिये हानिकर भी तो होता है। सो यह बड़ी समझदारी से दान देनेवाला बनता है। (२) इस प्रकार यह **त्रितः**='काम-क्रोध-लोभ' इन तीनों को तैरनेवाला और **दिवः**=ज्ञान को प्राप्त करनेवाला बनता है अथवा (दिव् स्तुतौ) प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला बनता है। **सजोषाः**=यह परिवार में व समाज में सब के साथ मिलकर काम करनेवाला तथा **वातः**=वायुवत् क्रियाशील **अग्निः**=प्रगतिशील होता है, सदा उन्नति-पथ पर आगे बढ़ता है। (३) इस जीवन-यात्रा में यह **पूषा**=उचित प्रकार से पोषण करनेवाला होता है, अपने 'शरीर, मन व बुद्धि' सभी का ठीक प्रकार से विकास करता है। इस विकास के लिये ही **भगः**=ऐश्वर्यशाली बनता है, विकास के लिये आवश्यक धन को कमाता ही है। इस बात का ध्यान करता है कि इसका ऐश्वर्य इसके विलास का कारण न बन जाये और अतिरिक्त धन से **प्रभृथे**=प्रकृष्ट भरण के कार्यों में लगा हुआ यह **विश्वभोजाः**=सभी का पालन करता है, उस पालन के कार्य में संकुचित हृदयता के कारण यह 'भेदभाव' के दृष्टिकोण से न देखकर केवल मानवता के दृष्टिकोण से देखता है। (४) ये व्यक्ति इस जीवन-यात्रा में **न**=इस प्रकार चलते हैं जैसे कि **आजिम्**=संग्राम में चल रहे हों। जीवन इनके लिये संग्राम होता है। ये **आशु अश्वतमाः**=शीघ्र गतिवाले उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वोंवाले बनते हैं। इन इन्द्रियाश्वों के द्वारा ही तो इन्होंने जीवन संग्राम में विजय पानी है।

भावार्थ—जीवन को संग्राम समझकर चलनेवाला व्यक्ति निज जीवन को सब तरह से उत्तम बनाकर समाज भरण के कार्यों में प्रवृत्त होता है।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

क्रियाशीलता का महत्त्व

प्र वो॑ र॒यिं यु॒क्ताश्वं॑ भर॒ध्वं रा॒य ए॒षेऽव॑से दधीत॒ धीः।
सु॒शेव॒ ए॒वैरौ॑शि॒जस्य॒ होता॒ ये व॒ एवा॑ मरुतस्तु॒राणा॑म्॥ ५॥

(१) हे जीवो! तुम उस **रयिम्**=धन को **वः**=अपने लिये **प्रभरध्वम्**=प्रकर्षेण धारण करो जो कि **युक्ताश्वम्**=इन्द्रियाश्वों को शरीर रथ में उत्तमता से जोतनेवाला है। जिस धन के कारण तुम आलसी न बनकर क्रियाशील बने रहते हो। इस **रायः**=धन की **एषे**=प्राप्ति के लिये तथा **अवसे**=इन प्राप्त धनों के रक्षण के लिये **धीः**=बुद्धियों को व कर्मों को **दधीत**=धारण करो, बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा ही तुम्हें इन धनों का अर्जन व रक्षण करना है। (२) **औशिजस्य**=(desirous) सबका भला चाहनेवाले प्रभु का **होता**=आह्वाता व उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाला **एवैः**=क्रियाओं से सदा क्रियाशील बने रहने के कारण **सुशेवः**=उत्तम कल्याणवाला होता है। प्रभु स्मरणपूर्वक क्रियाशील व्यक्ति कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता। **वा**=और **ये**=जो व्यक्ति **एवाः**=गतिशील होते हैं वे **तुराणाम्**=हिंसक शत्रुओं के **मरुतः** (मरुद् द्रवन्ति इति वा)=प्रबल आक्रान्ता होते हैं।

भावार्थ—क्रियाशीलता हमें धन के अर्जन व रक्षण के योग्य बनाती है। प्रभु स्मरणपूर्वक क्रिया करनेवाला सदा सुखी रहता है। क्रियाशील पुरुष वासनाओं को आक्रान्त करता है। सो हम उन्हीं धनों को चाहें जो हमें अकर्मण्य न बना दें।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः ॥

अनुकूल पत्नी का होना

प्र वो॑ वा॒युं र॑थ॒युजं॑ कृणुध्वं॒ प्र दे॒वं विप्रं॑ पनि॒तार॑म॒र्कैः।
इ॒षु॒ध्यव॑ ऋत॒साप॒: पुरं॑धी॒र्वस्वी॑र्नो॒ अत्र॒ पत्नी॒रा धि॒ये धुः॥ ६॥

(१) **वायुम्**=वायु देवता को **वः रथयुजम्**=तुम्हारे शरीर रथ से सम्पर्कवाला **प्रकृणुध्वम्**=प्रकर्षेण करो। वायु देवता का शरीर रथ से सम्पर्क का भाव यही है कि तुम निरन्तर क्रियाशील बनो। उस क्रियाशीलता के साथ **देवम्**=प्रकाशमय **विप्रम्**=विशेषरूप से हमारा पूरण करनेवाले (वि-प्रा) **पनितारम्**=स्तुति के योग्य प्रभु को **अर्कैः**=स्तुति साधनभूत मन्त्रों के द्वारा अपने शरीर रथ से युक्त करो। अर्थात् प्रभु का भी सदा स्मरण करो जिससे तुम्हारी क्रियाएँ पवित्र बनी रहें। (२) **इषुध्यवः**=प्रभु की प्रार्थना करनेवाली (implore), **ऋतसापः**=यज्ञों का सेवन करनेवाली, **पुरन्धीः**=पालक व पूरक बुद्धिवाली, **वस्वीः**=घर के निवास को उत्तम बनानेवाली **पत्नीः**=पत्नियाँ **अत्र**=यहां इस गृहस्थ जीवन में **नः**=हमें **धिये**=बुद्धिपूर्वक कर्मों के लिये **आधुः**=स्थापित करें। पत्नियों की अनुकूलता पतियों के मस्तिष्क को स्वस्थ रखने में बड़ी सहायक होती है। पत्नी का जीवन प्रार्थनामय यज्ञशील होगा तथा यदि वे बुद्धिपूर्वक कर्मों को करती हुई घर को उत्तम बनायेंगी तो पुरुष स्वस्थ मस्तिष्क होते हुए उत्तम कर्मों को सम्पन्न कर पायेंगे।

भावार्थ—हम क्रियाशील हों, प्रभु की उपासनावाले हों। अनुकूल पत्नियों को पाकर स्वस्थ मस्तिष्क से उत्तम कर्मों को सम्पन्न करनेवाले हों।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

बल-ज्ञान-यज्ञ

उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्॥ ७॥

(१) हे **यह्वी**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण **उषासानक्ता**=दिन व रात! मैं **वः**=आपके **उप एषे**=समीप प्राप्त होता हूँ। दिन व रात दो हैं, पर प्रतिदिन आने से यहाँ 'वः' इस बहुवचन का प्रयोग है। मैं इन दिन-रात के समीप **वन्द्येभिः**=वन्दनीय **शूषैः**=बलों के हेतु से प्राप्त होता हूँ। तथा **दिवः**=प्रकाश की **चितयद्भिः**=चेतना देते हुए **अर्कैः**=स्तुति साधन मन्त्रों के हेतु से इन दिन-रात को प्राप्त होता हूँ। अर्थात् मेरा प्रयत्न दिन-रात यही होता है कि मैं प्रशंसनीय बल का सम्पादन कर सकूँ तथा उन स्तुति साधन मन्त्रों का उपासन करूँ जो मेरे जीवन को प्रकाशमय करनेवाले हों। संक्षेप में भाव यही है कि मैं दिन-रात बल व ज्ञान के सम्पादन में प्रसित रहूँ। (२) ये दिन व रात **विदुषी इव**=खूब समझदार युवतियों के समान **ह**=निश्चय से **विश्वं यज्ञम्**=सब यज्ञों को **मर्त्याय**=मनुष्य के लिये **आवहोतः**=प्राप्त कराती हैं। अर्थात् हम इन दिन-रातों में सदा यज्ञशील बनने का प्रयत्न करते हैं। यज्ञशीलता की वृत्ति के लिये ही निरन्तर स्वाध्याय को अपनाते हुए बुद्धि को परिष्कृत करते हैं। समझदार पुरुष अवश्य यज्ञशील होता है।

भावार्थ—हम दिन-रात बल व ज्ञान का सम्पादन करते हुए यज्ञशील बनने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यज्ञशीलता का स्वरूप

अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतींरोषधी राय एषे॥ ८॥

(१) गतमन्त्र में संकेतित यज्ञशीलता को ही स्पष्ट करते हुए प्रभु कहते हैं कि मैं **वः**=तुम्हारे में से **पोष्यावतः नॄन्**=पोष्य व्यक्तियों को उत्तम पोषण करनेवाले व्यक्तियों को (मतुप् प्रशंसायाम्) **अभि अर्चे**=आदृत करता हूँ। जो केवल अपना भरण न करके औरों का भी भरण करते हैं वे ही मेरे प्रिय होते हैं। यह केवल अपने लिये न जीना ही वस्तुतः यज्ञशीलता है। इनके लिये **रराणः**=सब आवश्यक पदार्थों को देता हुआ मैं **वास्तोष्पतिम्**=घर के उत्तम रक्षक व **त्वष्टारम्**=निर्माण के कार्यों में लगे हुए पुरुष को मैं आदर देता हूँ। 'वास्तोष्पति व त्वष्टा' बनना ही यज्ञशीलता है। (२) **धन्या**=आवश्यक धनों को प्राप्त करानेवाली, **सजोषाः**=सब के साथ मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्यों को करनेवाली **धिषणा**=बुद्धि **नमोभिः**=नम्रताओं के साथ अथवा प्रभु के प्रति नमस्कार के साथ **वनस्पतीः**=वनस्पतियों को **ओषधीः**=ओषधियों को तथा **रायः**=धनों को **एषे**=प्राप्त करने के लिये होती है। यज्ञशील पुरुष इस बुद्धि को सिद्ध करके वनस्पतियों व ओषधियों का सेवन करता हुआ आवश्यक धनों को भी प्राप्त करता है और उनके द्वारा अपने यज्ञों में प्रगति करनेवाला होता है।

भावार्थ—हम केवलादी बनकर पोष्य व्यक्तियोंवाले बनें, घर को प्रशस्त बनायें, सदा निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त हों। बुद्धि का सम्पादन करके वनस्पति व ओषधियों का सेवन करते हुए यज्ञसाधक धनों का भी अर्जन करें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

किनका सम्पर्क?

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ॥ ९॥

(१) यज्ञशीलता उत्पन्न तभी हो सकती है, यदि बाल्यकाल से ही हमें उत्तम पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त हो। सो प्रार्थना करते हैं कि **नः**=हमारे **तुजे**=पुत्रों के लिये तथा **तने**=पौत्रों के लिये **पर्वताः**=(पर्व पूरणे) जीवन को उत्तमताओं से भरनेवाले आचार्य **स्वैतवः**=स्वयं प्राप्त होनेवाले हों। अर्थात् प्रभु कृपा से हमारे पुत्र-पौत्रों को उत्तम आचार्य प्राप्त हों। वे आचार्य जो कि **न**=जैसे वे **वसवः**=निवास को उत्तम बनानेवाले हैं, वैसे ही **वीराः**=वीर हैं। कायर के सम्पर्क में तो वे बालक कायर ही बनेंगे। (२) **पनितः**=(पनितं अस्य अस्तीति) सदा स्तुतिमय जीवनवाला, **आप्त्यः**=सब औचित्यों से युक्त (आप्ति=propriety) **यज्ञतः**=यज्ञशील पुरुष **सदा**=हमेशा **नः**=हमें **वर्धात्**=बढ़ानेवाला हो। इसके सम्पर्क में आकर हम भी ऐसे ही बनें। **नर्यः**=सब मनुष्यों का हित करनेवाला यह व्यक्ति **अभिष्टौ**=वासनारूप शत्रुओं पर आक्रमण के निमित्त **नः शंसम्**=हमारी स्तवन की वृत्ति को बढ़ानेवाला हो। इसके सम्पर्क में हम भी प्रभु के स्तवन करनेवाले बनें और इस प्रकार काम-क्रोध आदि को पराजित कर सकें।

भावार्थ—हमें उन मनुष्यों का सम्पर्क प्राप्त हो जो अपना पूरण करनेवाले हैं, निवास को उत्तम बनानेवाले हैं, वीर हैं, स्तुतिमय जीवनवाले, सब औचित्यों से युक्त व यज्ञशील हैं। इनके सम्पर्क में हम भी यज्ञशील व स्तोता बनें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उपासना से शक्ति की प्राप्ति व वासना विनाश

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना॥ १०॥

(१) मैं **वृष्णः**=उस शक्तिशाली **भूम्यस्य**=होनेवाले प्राणिमात्र के हितकारी (भवति इति भूमिः) प्रभु का **अस्तोषि**=स्तवन करता हूँ। **त्रितः**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का विकास करनेवाला (त्रीन् तनोति) **गर्भम्**=सब पदार्थों के गर्भ में विचरनेवाले व सब पदार्थों को अपने गर्भ में लेनेवाले प्रभु का **सुवृक्ति**=अच्छी प्रकार सब बुराइयों का वर्जन करनेवाले **गृणीते**=स्तवन को करता है। प्रभु स्तवन से हमारी सब बुराइयों का विनाश होता है। उस प्रभु का यह स्तवन करता है, जो **अपां नपातम्**=(आपः रेतो भूत्वा) इसकी शक्ति का नाश नहीं होने देते। प्रभु-स्तवन से हम वासनाओं को जीतते हैं और वासना-विनाश से शक्ति का संरक्षण होता है। (२) **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **न**=जैसे **एतरी**=गतिशील पुरुष में **शूषैः**=शत्रुशोषक बलों के साथ प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार **शोचिष्केशः**=दीप्त ज्ञानरश्मियोंवाले ये प्रभु **वना**=वासनाओं के वनों को, झाड़ी झंकाड़ों को **निरिणाति**=निश्चय से नष्ट कर देते हैं। प्रभु क्रियामय जीवनवाले उपासकों को, स्वकर्मानुष्ठान द्वारा अर्चन करनेवालों को शक्ति प्राप्त कराते हैं और उनकी वासनाओं को विनष्ट कर देते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें शक्तिशाली बनाती है और हमारी वासनाओं का विनाश करती है।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

प्रभु-स्तवन व ज्ञानयुक्त ऐश्वर्य

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः॥ ११॥

(१) 'रोरुयमाणो द्रवति' इस व्युत्पत्ति से 'रुद्र' स्तोता है, प्रभु का स्मरण करता हुआ वासनाओं पर आक्रमण करता है। प्रभु इन रुद्रों का हित करनेवाले रुद्रिय हैं। **कथा**=कैसे उस **महे**=महान् **रुद्रियाय**=स्तोताओं का हित करनेवाले प्रभु के लिये **ब्रवाम**=हम स्तुति-वचनों का उच्चारण करें! और **कद्**=कब **चिकितुषे**=ज्ञानवाले **भगाय**=सेवनीय (भज सेवायाम्) **राये**=धन के लिये हों। एक भक्त यही कामना करता है कि मैं शीघ्रातिशीघ्र उस महान् प्रभु का स्तोता बनूँ और उस भजनीय ऐश्वर्य को प्राप्त करूँ जो मेरे ज्ञान के ह्रास का कारण न बनकर, ज्ञानवृद्धि का ही हेतु हो। (२) इस ज्ञानवृद्धिवाली सम्पत्ति के परिणामस्वरूप **आपः**=जल **उत**=और **ओषधीः**=ओषधियाँ **नः**=हमें **अवन्तु**=रक्षित करें। धन के द्वारा हम इन्हें प्राप्त कर सकें और ज्ञान के द्वारा हम इनका उचित ही प्रयोग करें। **द्यौः**=यह आकाश, **वना**=सब वन, तथा **वृक्षकेशाः**=वृक्षों को ही केशों के स्थान में धारण करनेवाले **गिरयः**=ये पर्वत-वृक्षों से आच्छादित अद्रि भी हमारा कल्याण करें। वस्तुतः ज्ञान के होने पर सारा संसार हितकर ही होता है। अज्ञान ही कष्ट का कारण बनता है।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन से उस ऐश्वर्य को प्राप्त करें जो हमारी ज्ञानवृद्धि का कारण हो। इस ज्ञान से यह सारा संसार हमारे लिये हितकर हो।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'नीरोग निर्मल शुभ्र' जीवन

शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः॥ १२॥

(१) **ऊर्जां पतिः**=सब बलों व प्राणशक्तियों का स्वामी वह प्रभु **नः**=हमारी **गिरः**=स्तुतिवाणियों को **शृणोतु**=सुने। हम उस प्रभु का स्तवन करें। **सः**=वे प्रभु ही **नभः**=(नह् बन्धने) हमारे साथ प्रकृति के बने इस शरीर को बाँधनेवाले हैं। **तरीयान्**=वे (अतिशयेन तारयिता) ही हमें इस भवसागर से तरानेवाले हैं। **इषिरः**=निरन्तर उत्तम मार्ग की प्रेरणा देनेवाले हैं और **परिज्मा**=सर्वत्र गतिवाले हैं। वे ही सब जगह हमारा रक्षण करते हैं। (२) **आपः** (आपो वै नरसूनवः)=सब प्रजाएँ उस **बवृहाणस्य**=सदा से बढ़े हुए, उपासकों का वर्धन करनेवाले, **अद्रेः**=आदरणीय प्रभु की **स्रुचः**=वाणियों को **परिशृण्वन्तु**=समन्तात् सुनें। (वाग्वै स्रुचः शत० ६।३।१।८) सदा प्रभु की प्रेरणाओं को सुननेवाले बनेंगे, तभी वे **पुरः न**=जैसे अपना पालन व पूरण करनेवाले होंगे, उसी प्रकार **शुभ्राः**=अत्यन्त शुद्ध जीवनवाले बन पायेंगे। (पृ पालनपूरणयोः, पिपर्ति इति पुर्) प्रभु की प्रेरणाओं के अनुसार चलते हुए ये शरीर का पालन व मन का पूरण करते हुए शुभ्र जीवनवाले होंगे।

भावार्थ—हम प्रभु-स्तवन करें, प्रभु प्रेरणा को सुनें और अपने जीवन को नीरोग, निर्मल व शुभ्र बनायें।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

दम-शम

विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥ १३ ॥

(१) प्रभु कहते हैं कि हे मनुष्यो! ये **वः एवाः**=जो तुम्हारे में से गतिशील हैं, **महान्तः**=पूजा की वृत्तिवाले हैं (मह पूजायाम्), **दस्माः**=वासनाओं का उपक्षय करनेवाले हैं व दर्शनीय जीवनवाले हैं, **वार्यं दधानाः**=वरणीय गुणों को धारण करनेवाले हैं वे **ब्रवाम**=जो कुछ हम कहते हैं उसे **चित् नु**=निश्चय से **विद्**=जानें। (२) प्रभु कहते हैं कि **क्षुभा**=(क्षुभ संचलने) क्षोभयुक्त मन से तथा **वधस्नैः**=वासनाओं द्वारा वध करनेवाली इन्द्रियों से **अनुयतम्**=काबू किये हुए, अर्थात् मन व इन्द्रियों के दास बने हुए **मर्तम्**=मनुष्य को **सुभ्वः**=(सुष्ठुभवन्तः) उत्तम स्थिति के कारणभूत **वयः चन**=मार्ग भी **आ अवयन्ति**=सर्वथा छोड़ जाते हैं। (way=वय् गतौ) मन व इन्द्रियों की दासता सदा पतन का कारण बनती है। (२) प्रभु का सर्वमहान् उपदेश यही है कि इन्द्रियों व मन का दास न बनना। यही तुम्हें महान् बनायेगा। तभी दर्शनीय तुम्हारा जीवन होगा और तुम वरणीय वस्तुओं को धारण करनेवाले बनोगे।

भावार्थ—जो व्यक्ति प्रभु के इस उपदेश को सुनते हैं कि 'इन्द्रियों व मन का दास बननेवाला व्यक्ति मार्गभ्रष्ट हो जाता है' वे गतिशील, महान्, दर्शनीय व वरणीय गुणों को धारण करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

प्रभु का आदेश

आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥ १४ ॥

(१) गतमन्त्र में प्रभु ने कहा था कि 'इन्द्रियों व मन का दास न बनना'। अब प्रभु कहते हैं कि मैं **सुमखाय**=इस उत्तम यज्ञशील पुरुष के लिये **आवोचम्**=सर्वथा कहता हूँ कि **दैव्यानि**=देव सम्बन्धी तथा **पार्थिवानि**=इस पृथिवी सम्बन्धी **जन्म**=शक्तियों के विकासों को तथा **अपः**=उत्तम कर्मों को **अच्छ**=(अभिप्राप्तुम्) प्राप्त करने के लिये यत्नशील हो। पार्थिव शक्तियों के विकास वे हैं जो इहलोक के साथ सम्बद्ध हैं, ये 'अभ्युदय' का कारण बनते हैं। दैव्य विकास वे हैं जो परलोक में निःश्रेयस का कारण होते हैं। दैव्य व पार्थिव विकास क्रमशः ज्ञानजनित पवित्रता व बल अथवा ब्रह्म व क्षत्र का विकास ही है। इस ब्रह्म व क्षत्र का विकास करके सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। (२) प्रभु कहते हैं कि तुम्हारे जीवनों में ये **द्यावः**=प्रकाशमय **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ **वर्धन्ताम्**=वृद्धि को प्राप्त करें, वे ज्ञान की वाणियाँ जो **चन्द्राग्राः**=(चदि आह्लादे) आह्लाद को अपने अग्रभाग में लिये हुए हैं। अर्थात् जिनका आगे चलकर आनन्द प्राप्ति ही परिणाम होता है। सो तुम्हारे जीवनों में **उदा अभिषाताः**=ज्ञानजल से परिपूर्ण (अभि सन्=संभक्त-सेवित-युक्त) **अर्णाः**=ज्ञान-नदियाँ (सरस्वती) **वर्धन्ताम्**=वृद्धि को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु का उपदेश है कि—(क) देव बनो, (ख) शक्ति का वर्धन करो, (ग) उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होवो तथा (घ) अपने जीवन में ज्ञान-नदी को प्रवाहित करनेवाले बनो।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

स्तुति-वेदवाणी=(सरलता)

पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥ १५ ॥

(१) प्रभु का उपदेश सुनकर जीव निश्चय करता है कि **पदे पदे**=पग-पग पर **मे**=मेरे से **जरिमा**=स्तुति **निधायि**=अपने में स्थापित की जाती है, मैं सतत स्तुति प्रवृत्त होता हूँ। सब कार्यों को प्रभु-स्तवन के साथ करता हूँ। उस स्तुति को करता हूँ जो **वा**=निश्चय से **वरुत्री**=मेरी सब बुराइओं का निवारण करनेवाली है, **च**=और **या**=जो **पायुभिः**=रक्षणों के द्वारा **शक्रा**=सब मुझे सब उत्तम कर्मों के करने की शक्ति प्राप्त कराती है। स्तुति से जीवन पवित्र होता है और शक्ति-सम्पन्न बनता है। (२) **नः**=हमें यह **माता**=जीवन का निर्माण करनेवाली वेदमाता **सिषक्तु**=प्राप्त हो जो **मही**=पूज्य है, हमारे जीवनों को महत्त्वपूर्ण बनानेवाली है तथा **रसा**=हमारे जीवनों में रस का सञ्चार करनेवाली है। जो **स्मत्सूरिभिः**=प्रशस्त विद्वानों से हमें प्राप्त होती है (स्मत्=प्रप्रास्तार्थे) तथा **ऋजुहस्ता**=हमारे हाथों को ऋजु बनाती है, अर्थात् जिसको प्राप्त करके हम सरलतायुक्त कर्मों को ही करते हैं, **ऋजुवनिः**=जो हमें आर्जव का सेवन करनेवाला बनाती है, इस वेदवाणी से हमारे हृदय निष्कपट होते हैं। यह आर्जव ही तो ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग है। 'आर्जवं ब्रह्मणः पदम्'।

भावार्थ—हम सदा प्रभु-स्मरण के साथ कार्यों को करें, यही पवित्रता व शक्ति प्राप्ति का मार्ग है। हम प्रशस्त विद्वानों से वेदमाता का ज्ञान प्राप्त करें, यह ज्ञान हमें सरल वृत्ति व निष्कपट कर्मोंवाला बनायेगा।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

ज्ञान प्राप्ति व प्रभु-स्मरण

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥ १६ ॥

(१) **कथा**=किसी प्रकार हम **नमसा**=नम्रतापूर्वक तथा **एवया**=क्रियाशीलता के साथ (श्रम की वृत्ति के साथ) **सुदानून्**=उत्तम ज्ञानों के देनेवाले **मरुतः अच्छ**=प्राणसाधक पुरुषों के प्रति **उक्तौ**=ज्ञान प्रवचन के निमित्त **दाशेम**=अपने को दे डालें। **प्रश्रवसः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले **मरुतः अच्छ**=प्राणसाधक पुरुषों के प्रति **उक्तौ**=ज्ञान-प्रवचन के निमित्त अपने को दे डालें। इन पुरुषों के समीप नम्रता व पुरुषार्थ वृत्ति से हम पहुँचेंगे, तो ये हमारे लिये उत्कृष्ट ज्ञान को देनेवाले होंगे। (२) **अहिर्बुध्न्यः**=(बुध्नं=अन्तरिक्षं तत्र भवः, आहन्ति) हृदयान्तरिक्ष में स्थित वासनाओं का विनाशक प्रभु **नः**=ज्ञान प्राप्ति में पूर्ण पुरुषार्थवाले हमको **रिषे**=हिंसा के लिये **मा धात्**=मत धारण करें। ज्ञान को प्राप्त करके हम प्रभु का उपासन करेंगे, तो हम वासनाओं के आक्रमण से अपने को बचा सकेंगे। ये प्रभु **अस्माकम्**=हमारे **उपमातिवनिः**=शत्रुओं के हिंसक **भूत्**=हों। प्रभु-स्मरण से हम अभिमान आदि शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होते।

भावार्थ—हम नम्रतापूर्वक ज्ञानियों के चरणों में उपस्थित होकर श्रम से ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त हों। प्रभु-स्मरण द्वारा वासनाओं व शत्रुओं का संहार कर सकें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वानप्रस्थ बनना

इति॑ चि॒न्नु प्र॒जायै॑ पशु॒मत्यै॒ देवा॑सो॒ वन॑ते॒ मर्त्यो॑ व॒ आ दे॑वासो वनते॒ मर्त्यो॑ वः ।
अत्रा॑ शि॒वां त॒न्वो॑ धा॒सिम॒स्या ज॒रां चि॒न्मे निर्ऋ॑तिर्जग्रसीत ॥ १७ ॥

(१) हे **देवासः**=देवो! **मर्त्यः**=मनुष्य **नु**=शीघ्र ही **इति चित्**=इस प्रकार **पशुमत्यै**=प्रशस्त गवादि पशुओंवाली **प्रजायै**=उत्तम प्रजा के लिये **वः वनते**=आपका आराधन करता है। **मर्त्यः**=मनुष्य **आ**=समन्तात्, **देवासः**=हे देवो! **वः वनते**=आपका उपासन करता है। सामान्यतः मनुष्य धार्मिक प्रवृत्तिवाला होने पर भी प्रजा व पशुओं में ही उलझा रह जाता है। और प्रभु की उपासना का स्थान उसके जीवन में भिन्न-भिन्न देवों का उपासन ही ले-लेता है। चाहिये तो यह कि हम जीवन-यात्रा में गृहस्थ में उत्तम प्रजाओं का निर्माण करके अब उससे ऊपर उठने का प्रयत्न करें। हमारी वृद्धावस्था भी इस गृहस्थ में ही न समाप्त हो जाये। (२) **अत्रा**=इन पशुओं व प्रजाओं में **अस्याः**=इस **तन्वः**=शरीर के **शिवां धासिम्**=कल्याणकर धारण को तथा **मे जरां चित्**=मेरी प्रभु स्तुति को भी (जरा-स्तुति नि० १०।८) **निर्ऋतिः**=दुर्गति ने ग्रस लिया है। हम जीवन के अन्त तक पुत्र-पौत्रों में ही उलझे रहेंगे तो यह कल्याण का मार्ग नहीं है। गृहस्थ से ऊपर उठकर हमें वनस्थ होना ही चाहिए और सतत प्रभु स्मरण के आनन्द को लेने का प्रयत्न करना चाहिए। यह प्रभु-स्मरण हमें सशक्त व स्वस्थ शरीरवाला बनाकर लोकहित के कार्यों को करने के योग्य बनायेगा।

भावार्थ—हम देवों से प्रजा व पशु ही जन्म भर न माँगते रह जायें। गृहस्थ को भली-भान्ति निभाकर वनस्थ हों। प्रभु-स्मरण से अपने को सशक्त बनाकर लोकहित में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुमति व वेदवाणी की ओर

तां वो॑ देवाः सुम॒तिमू॒र्जय॑न्ती॒मिष॑मश्याम वसवः॒ शसा॒ गोः ।
सा नः॑ सु॒दानु॑र्मृ॒ळय॑न्ती दे॒वी प्रति॒ द्रव॑न्ती सुवि॒ताय॑ गम्याः ॥ १८ ॥

(१) हे **देवाः**=ज्ञानी पुरुषो! हम **वः**=आपकी **ताम्**=उस **सुमतिम्**=कल्याणीमति को **अश्याम**=प्राप्त करें तथा **वसवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले देवो! **गोः शसा**=इस वेदवाणी के शंसन के साथ प्रतिदिन इसके अध्ययन के साथ **ऊर्जयन्तीम्**=हमारे में बल व प्राणशक्ति का संचार करनेवाली **इषम्**=प्रेरणा को प्राप्त करें (अश्याम)। (२) **सा**=वह वेदवाणीरूप गौ **नः**=हमारे लिये **सुदानुः**=अच्छी प्रकार बुराइयों का नाश करनेवाली हो (दाप् लवने), **मृडयन्ती**=यह हमारे जीवनों को सुखी करनेवाली हो **देवी**=यह सब प्रकाशों को प्राप्त करानेवाली वेदवाणी **प्रतिद्रवन्ती**=प्रतिदिन हमारी ओर आती हुई अथवा वासनाओं पर आक्रमण करती हुई **सुविताय**=सुवित के लिये, सदाचरण के लिये, सदा शुभ मार्ग पर चलाने के लिये **गम्याः**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—हम देवों की कल्याणी मति को प्राप्त करें। ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त होकर प्रभु प्रेरणा से बल प्राप्त करें। यह ज्ञानवाणी हमें अशुभ से हटाकर शुभ में प्रवृत्त करे और इस प्रकार हमारे लिये कल्याणकर हो।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

बृहद्दिवा उर्वशी

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः॥ १९॥

(१) **इडा**=यह वेदवाणी **नः**=हमारे लिये **अभिगृणातु**=प्रातः-सायं ज्ञानोपदेश करनेवाली हो। हम दोनों समय स्वाध्याय को अवश्य करें। यह **यूथस्य माता**=हमारे इन्द्रिय समूह का निर्माण करनेवाली है। हमारी सब इन्द्रियों को **स्मत् नदीभिः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियों से **वा उर्वशी**=निश्चय से खूब ही वश में करनेवाली है। (२) यह **उर्वशी**=हमारी इन्द्रियों को वश में करनेवाली वेदवाणी **वा**=निश्चय से **बृहद्दिवा**=वृद्धि के कारणभूत ज्ञान के प्रकाशवाली है। **गृणाना**=हमारे लिये ज्ञानोपदेश करती हुई यह **प्रभृथस्य**=गृहस्थ से ऊपर उठकर, वनस्थ की साधना करके, सन्यस्त होकर, प्रकृष्ट भरण के कार्य में लगे हुए **आयोः**=निरन्तर गतिशील इस परिव्राजक की **अभ्यूर्ण्वाना**=आच्छादन करनेवाली यह वेदवाणी है। यह वेदवाणी ही संन्यस्त पुरुष का रक्षण करती है।

भावार्थ—वेदवाणी हमारी इन्द्रियों का उत्तम निर्माण करती है। यह हमारा आच्छादन करती हुई बुराइयों से हमें आक्रान्त नहीं होने देती। इसके द्वारा हम इन्द्रियों को वशीभूत कर पाते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**याजुषीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ऊर्जव्य पुष्टि

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः॥ २०॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित वेदवाणी **नः**=हमारे साथ **ऊर्जव्यस्य**=बल व प्राणशक्ति सम्पन्न **पुष्टेः**=पोषण का **सिषक्तु**=मेल करनेवाली हो। निरन्तर वेदवाणी को अपनाने से विषय वासनाओं से बचे रहकर हम 'स्वस्थ, सबल व सुन्दर' जीवनवाले बने रहें। (२) गतमन्त्र के अनुसार यह हमारे सब यूथों का निर्माण करनेवाली हो। अन्नमयकोश के पंचतत्त्वों को ठीक रखे, प्राणमयकोश के पंच प्राणों को प्रबल बनाये। पाँचों कर्मेन्द्रियों, व पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को कार्यक्षम करे। तथा 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार व हृदय' सब को निर्मल करनेवाली हो। इस प्रकार यह हमारा ठीक पोषण करनेवाली, वास्तविक माता हो।

भावार्थ—हम वेदमाता का उपासन करें। यह हमारा उत्तम पोषण क्यों न करेगी?

अगले सूक्त में भी अत्रि ही प्रार्थना करते हैं कि—

४२. [द्विचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वेदवाणी का जीवन पर क्या प्रभाव है?

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः॥ १॥

(१) यह **शन्तमा**=अत्यन्त शान्ति को देनेवाली **दीधिती**=(bodily lustre, strength) तेजस्विता के साथ **गीः**=ज्ञान की वाणी **नूनम्**=निश्चय से **वरुणम्**=द्वेष के निवारण करनेवाले पुरुष को **प्र अश्याः**=प्रकर्षेण प्राप्त हो। **मित्रम्**=सब के प्रति स्नेहवाले को यह प्राप्त हो। **भगम्**=भजनीय

(सेवनीय) धनवाले को यह प्राप्त हो। **अदितिम्**=(अ-दिति) व्रतों के न तोड़नेवाले, व्रतों का पालन करनेवाले को यह प्राप्त हो। यदि हम ज्ञान की वाणी को प्राप्त करना चाहते हैं तो जीवन में 'निर्द्वेष्यता, मित्रता, पवित्र धन तथा व्रतपालन' की साधना करें। ये बातें हमें अधिकाधिक ज्ञान का पात्र बनायेंगी। (२) **पृषद्योनिः**=(पृषु सेचने) सोम के उत्पत्ति स्थान (योनि) इस शरीर को जो इस सोम से सिक्त करता है, इस सोम को विनष्ट नहीं होने देता, **पञ्चहोता**=जो पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञानयज्ञ को करता है, **अतूर्तपन्थाः**=जो मार्ग को हिंसित नहीं करता, अर्थात् सदा मार्ग पर चलता है **असुरः**=(असु क्षेपणे) वासनाओं को अपने से परे फेंकता है, **मयोभुः**=सब के कल्याण को करनेवाला बनता है, वह इस वेदवाणी को **शृणोतु**=सुने। ज्ञान की वाणियों को सुननेवाला इस प्रकार का बनता है, यह सोम का रक्षण करता है, इसकी ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानयज्ञ में प्रवृत्त रहती हैं, मार्ग से यह विचलित नहीं होता, प्राणशक्ति-सम्पन्न व वासनाओं को परे फेंकनेवाला बनता है और सभी के कल्याण में प्रवृत्त होता है।

भावार्थ—वेदवाणी हमारे जीवन को शान्त व शक्तिमय बनाती है। यह हमें 'निर्द्वेषता, मित्रता, पवित्र धन व व्रतपालन' वाला करती है। इससे हम सोमरक्षण करते हुए, ज्ञान में प्रवृत्त होकर, मार्ग पर चलते हुए, शक्ति-सम्पन्न व सबका कल्याण करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'स्तोम व ब्रह्म' का अदिति द्वारा ग्रहण

प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम्।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु॥ २॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **मे स्तोमम्**=मेरे स्तवन को **अदितिः**=(अ-दिति) व्रतों को न तोड़नेवाला, व्रतपालन करनेवाला व्यक्ति **प्रति जगृभ्यात्**=प्रतिदिन ग्रहण करे। इस प्रकार ग्रहण करे, **न**=जैसे कि **माता सूनुम्**=माता पुत्र को प्रेम से ग्रहण करती है। यह स्तोम उसके लिये **हृद्यम्**=हृदय के लिये प्रीतिकर हो तथा **सुशेवम्**=उत्तम कल्याण करनेवाला हो। वस्तुतः व्रतमय जीवनवाला पुरुष प्रतिदिन प्रभु-स्तवन करता है और अपने अन्दर आनन्द का अनुभव करता है। (२) **यत्**=जो **प्रियम्**=प्रीति को करनेवाला, प्रसन्नता को जन्म देनेवाला, **देवहितम्**=देवों के लिये हितकर, **अहम्**=व्यापक, (सब लोकों में इसी वेदज्ञान का प्रकाश प्रभु ने किया है, सो यह व्यापक तो है ही) यह वेदज्ञान **अस्ति**=है, और **यत्**=जो **मित्रे वरुणे**=सब के प्रति स्नेहवाले निर्द्वेष पुरुष में **मयोभु**=कल्याण को उत्पन्न करनेवाला है, उस वेदज्ञान को यह व्रतमय जीवनवाला पुरुष ग्रहण करे।

भावार्थ—हम व्रतमय जीवनवाले बनकर प्रतिदिन प्रातः-सायं प्रभु-स्तवन करें और ज्ञान को ग्रहण करनेवाले बनें। स्तवन व ज्ञान ही हमारे लिये सुख व कल्याण को सिद्ध करते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु-स्मरण-माधुर्य व ज्ञानदीप्ति

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति॥ ३॥

(१) **कवीनां कवितमम्** (गुरूणां गुरुं)=ज्ञानियों में सर्वातिशायी ज्ञानवाले प्रभु को **उदीरय**=उच्चारित करो। प्रभु के नामों का उच्चारण करो, उन्हीं का भावन करो। **एनम्**=इस

शरीर को **मध्वा**=माधुर्य से तथा **घृतेन**=ज्ञानदीप्ति से **अभि उनत्त**=अच्छी प्रकार सिक्त करो। संक्षेप में, प्रभु का स्मरण करो और जीवन को मधुर व ज्ञानदीप्त बनाओ। (२) ऐसा करने पर **सः**=वह **सविता देवः**=सब का प्रेरक प्रकाशमय प्रभु **नः**=हमारे लिये **वसूनि**=उन धनों को **सुवाति**=उत्पन्न करते हैं, जो **प्रयता**=पवित्र हैं, पवित्र साधनों से कमाये गये हैं, **हितानि**=हितकर हैं, **चन्द्राणि**=आह्लाद को देनेवाले हैं। ये धन हमारे जीवन में उन्नति के लिये साधनभूत होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु-स्मरणपूर्वक जीवन को मधुर व ज्ञानदीप्त बनाने के लिये यत्नशील हों प्रभु हमारे लिये आवश्यक धनों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रशस्त मन व इन्द्रियाँ तथा ज्ञानियों का संग

समि॑न्द्र णो॒ मन॑सा नेषि॒ गोभि॑ः सं सू॒रिभि॑र्हरिव॒ः सं स्व॒स्ति ।
सं ब्रह्म॑णा दे॒वहि॑तं॒ यद॒स्ति सं दे॒वानां॑ सुम॒त्या य॒ज्ञिया॑नाम् ॥ ४ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **नः**=हमें **मनसा**=उत्तम मननशील अन्तःकरण से **संनेषि**=संगत करते हैं, **गोभिः**=ज्ञानेन्द्रियों से युक्त करते हैं। हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **सूरिभिः**=ज्ञानी पुरुषों से **सम्**=हमें संगत करते हैं और इस प्रकार उनके द्वारा ज्ञान को प्राप्त कराके **स्वस्ति**=कल्याणों से **सम्**=हमें संगत करते हैं। मन व इन्द्रियाँ उत्तम हों तथा ज्ञानियों का सम्पर्क प्राप्त हो जाए, तो ज्ञान प्राप्त होकर हमारा कल्याण क्यों न होगा? (२) हे प्रभो! हमें उस **ब्रह्मणा**=वेदज्ञान से **सम्**=संगत करिये **यत्**=जो **देवहितं अस्ति**=देवों के लिये हितकर है अथवा सृष्टि के प्रारम्भ में 'अग्नि, वायु, रवि व अंगिरा' नाम ऋषियों के हृदय में आपके द्वारा स्थापित किया गया है। हमें **यज्ञियानाम्**=यज्ञशील **देवानाम्**=विद्वानों की **सुमत्या**=कल्याणीमति से **सम्**=संगत करिये। इस शुभ बुद्धि को प्राप्त करके ही हम वेदज्ञान को प्राप्त करेंगे और तदनुकूल जीवन बिताते हुए कल्याण को प्राप्त करें।

भावार्थ—हमारा मन उत्तम हो, इन्द्रियाँ प्रशस्त हों। विद्वानों का सम्पर्क प्राप्त हो। यज्ञशील विद्वानों की सुमति को प्राप्त करके हम ज्ञानयुक्त बनें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

देवों का धारण

दे॒वो भग॑ः सवि॒ता रा॒यो अंश॒ इन्द्रो॑ वृ॒त्रस्य॑ सं॒जितो॒ धना॑नाम् ।
ऋ॒भु॒क्षा वाज॑ उ॒त वा॒ पुर॑न्धिरव॑न्तु नो अ॒मृता॑सस्तु॒रास॑ः ॥ ५ ॥

(१) **देवः**=प्रकाशमय जीवनवाला **भगः**=सेवनीय धन का स्वामी, **सविता**=उत्पादक, **रायः अंशः**=धन का विभक्ता, **वृत्रस्य इन्द्रः**=वासना का संहार करनेवाला (इनः सन् द्रावयति) ये सब **नः**=हमारे लिये **धनानां सञ्जितः**=धनों के विजेता हों, अर्थात् हम 'देव' आदि को अपने में धारण करके धनों का विजय करें। इन धनों को हम विभक्त करनेवाले हों, ताकि ये धन हमें वासनाओं में फँसाकर हमारा विनाश का कारण न बन जायें। सदा उत्तम मार्ग से ही, पुरुषार्थ से ही, धनों को कमायें। (२) **ऋभुक्षाः**=ज्ञानदीप्ति में निवास करनेवाला **वाजः**=शक्तिशाली, **उत वा**=तथा **पुरन्धिः**=पालक व पूरक बुद्धिवाला ये सब **नः अवन्तु**=हमारा रक्षण करें। **अमृतासः**=ये हमारे अमृतत्त्व (नीरोगता) का कारण बनें और **तुरासः**=हमारे वासनारूप शत्रुओं का संहार करनेवाले हों। हम 'ऋभुक्षा, वाज व पुरन्धि' बनकर अपने को नीरोग व वासना शून्य हृदयोंवाला

बना पायें।

भावार्थ—हम 'प्रकाशमयता, ऐश्वर्य, निर्माण, धन संविभाग व वासना-विनाश' आदि गुणों का धारण करें। सदा ज्ञानदीप्ति में निवास करें, शक्तिशाली बनें, पालक व पूरक बुद्धिवाले हों। नीरोग व वासना रहित बनें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अद्वितीय प्रभु' का स्मरण

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं नूतनः कश्चनाप॥ ६॥

(१) **मरुत्वतः**=(मरुतः प्राणाः) सब प्राणों की शक्ति के स्वामी, **अप्रतीतस्य**=कभी भी शत्रुओं से अनाक्रान्त, **जिष्णोः**=सदा जयशील, **अजूर्यतः**=कभी जीर्ण न होनेवाले, हे प्रभो! आपके **कृतानि**=लोक निर्माण आदि कार्यों का **प्रब्रवाम**=हम सदा प्रतिपादन करें। आपके इन महान् कार्यों का स्मरण करते हुए हम आपकी महिमा को सर्वत्र देखने का प्रयत्न करें और आपके प्रति श्रद्धान्वित हो आपका उपासन करें। (२) हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् **न**=न तो **पूर्वे**=पूर्वकालीन सृष्टि में होनेवाले कोई व्यक्ति **न अपरासः**=नां ही इस अपर सृष्टि में होनेवाले कोई व्यक्ति **न**=नां ही **नूतनः कश्चन**=आगे आनेवाली सृष्टियों में होनेवाला नया कोई व्यक्ति **ते वीर्यं आप**=आपके पराक्रम को पा सकता है। अर्थात् आपके समान पराक्रमवाला न कोई हुआ, न है और न होगा।

भावार्थ—प्रभु के कर्म महान् हैं। वे अनुपम पराक्रमवाले हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तुवते शंभविष्ठः

उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम्।
यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम्॥ ७॥

(१) हे उपासक! तू **उपस्तुहि**=उस प्रभु का स्तवन कर। जो **प्रथमम्**=(प्रथविस्तारे) निरतिशय विस्तारवाले सर्वव्यापक हैं, **रत्नधेयम्**=सब रमणीय पदार्थों के धारण करनेवाले हैं, **बृहस्पतिम्**=ज्ञान के स्वामी हैं तथा **धनानां सनितारम्**=सब धनों के देनेवाले हैं। (२) उस प्रभु का तू स्तवन कर जो **शंसते**=(शंस् to hurt) वासनाओं का विनाश करनेवाले और अतएव **स्तुवते**=प्रभु-स्तवन करनेवाले के लिये **शम्भविष्ठः**=अधिक से अधिक शान्ति को देनेवाले हैं। ये **पुरुवसुः**=पालक व पूरक धनोंवाले प्रभु **जोहुवानम्**=निरन्तर पुकारनेवाले को **आगमत्**=प्राप्त होते ही हैं। प्रभु अपने उपासक को सब पालक व पूरक धनों की प्राप्ति कराते हैं। प्रभु का उपासक योगक्षेम की कमीवाला नहीं होता।

भावार्थ—हम अपने कर्मों के द्वारा प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें सब आवश्यक धन व शान्ति प्राप्त करायेंगे। प्रभु से दूर होने पर इन धनों में शान्ति नहीं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दानशीलता व धन्यता

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः॥ ८॥

(१) हे **बृहस्पते**=सब आकाशादि बड़े-बड़े लोकों के स्वामिन् (बृहतां पतिः) प्रभो! **तव ऊतिभिः**=आपके रक्षणों से **सचमानाः**=संगत हुए-हुए पुरुष **अरिष्टाः**=रोगों व वासनाओं से हिंसित नहीं होते, **मघवानः**=(मघ, मख) ये यज्ञशील होते हैं, **सुवीराः**=उत्तम वीर होते हैं। (२) आपकी उपासना के परिणामस्वरूप **ये**=जो पुरुष यज्ञशील बनकर **अश्वदाः**=अश्वों के देनेवाले होते हैं, **उत वा**=अथवा **गोदाः**=प्रशस्त गौवों को देनेवाले होते हैं, **ये**=जो **वस्त्रदाः**=वस्त्रों का दान करते हैं, **तेषु**=उन पुरुषों में **रायः**=ऐश्वर्य **सुभगाः**=उत्तम भाग्य का कारण बनते हैं। इन दानशील पुरुषों के जीवन धनों से धन्य बनते हैं। धन इनके सौभाग्य को बढ़ानेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनकर अश्व, गो, वस्त्र दान कर सौभाग्यशाली बनें

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ब्रह्मद्विष की दुर्गति

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व॥ ९॥

ये=जो मनुष्य **नः**=हमारे **उक्थैः**=स्तुति वचनों से प्रेरित होकर भी **अपृणन्तः**=सन्तुष्ट न होते हुये स्वयं ही **भुञ्जते**=भोगते हैं। **एषाम्**=ऐसे मनुष्यों के **वित्तम्**=धन को **विसर्माणम्**=विनाश **कृणुहि**=कर। **प्रसवे**=तेरे शासन में भी **अपव्रतान्**=व्रत से रहितों को **वावृधानान्**=बढ़ते हुओं को **ब्रह्मद्विषः**=वेद विरोधियों को **सूर्यात्**=सूर्य प्रकाश ज्ञान से **यवयस्व**=दूर कर।

भावार्थ—हम व्रती बनकर बाँटकर खायें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

देववीत बनें

य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः॥ १०॥

हे **मरुतः**=मनुष्यो! **यः**=जो **देववीतौ**=विद्वानों से व्याप्त किया **रक्षसः**=दुष्ट प्रवृति के मनुष्यों को **ओहते**=प्राप्त करता है **यः**=जो **वः**=तुम्हारी **शशमानस्य**=प्रशंसित **शमीम्**=कामों की **निन्दात्**=निन्दा करे **सिष्विदानः**=व्यर्थ संलग्न हुआ **तुच्छ्यान्**=तुच्छ विचारवालों के **कामान्**=कामनाओं को **करते**=करे **तम्**=उसके **अचक्रेभिः**=चक्र (पदक) से रहित **नि यात**=निश्चित प्राप्त करे।

भावार्थ—जो विद्वानों के कामों की निन्दा करे उसको पद से हटा देना चाहिए।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'स्विषुः सुधन्वा' प्रभु

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य॥ ११॥

(१) **तं उ**=उस प्रभु को ही **ष्टुहि**=तू स्तुत कर, उस प्रभु का ही स्तवन करनेवाला बन, **यः**=जो **स्विषुः**=उत्तम वाणोंवाला व **सुधन्वा**=उत्तम धनुष्वाला है। जो उत्कृष्ट अस्त्रों को प्राप्त कराके हमें शत्रुओं के विजय के योग्य बनाता है। वस्तुतः हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणाएँ ही उत्तम बाण हैं, प्रभु का 'ओ३म्' नाम ही धनुष है 'प्रणवो धनुः' इनके द्वारा ही सब वासनारूप शत्रुओं

का पराजय कर पाते हैं। (२) उस प्रभु का स्तवन कर **यः**=जो **विश्वस्य**=सब **भेषजस्य**=रोगों के औषध के **क्षयति**=ऐश्वर्यवाले हैं। वस्तुतः प्रभु नाम-स्मरण ही सब रोगों का औषध बन जाता है। जिस समय एकाग्रता से प्रभु नाम-स्मरण चलता है उस समय रोग तो भाग ही जाते हैं। (३) **महे सौमनसाय**=महान् सौमनस्य के लिये मनः प्रसाद की प्राप्ति के लिये **रुद्रं यक्ष्वा**=उस सब रोगों का द्रावण करनेवाले प्रभु की उपासना कर। प्रभु का सम्पर्क चित्तशुद्धि के द्वारा सौमनस्य का साधन बनता है। **नमोभिः**=नमन के द्वारा **असुरम्**=(असु क्षेपणे) सब वासनाओं का विक्षेपण करनेवाले **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु को **दुवस्य**=तू पूजनेवाला बन। प्रभु का पूजन तेरे समीप वासनाओं को न आने देगा।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन ही हमें सब रोगों व वासनाओं से बचाकर मनःप्रसाद प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु के यथार्थ पूजक

दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः॥ १२॥

(१) **वरिवस्यन्तु**=प्रभु का पूजन तो ये करते हैं जो (क) **दमूनसः**=दान्त मनवाले हैं या दमनयुक्त मनवाले हैं, (ख) **अपसः**=कर्मशील हैं, **सुहस्ताः**=कर्मों को कुशलता से करनेवाले हैं, अनाड़ीपन से करनेवाले नहीं। (ग) **वृष्णः पत्नीः**=जो शक्तिशाली पुरुष की पत्नी हैं, अर्थात् जो अपने अवासनात्मक व्यवहार से पति को सशक्त बनाये रखती हैं। **नद्यः**=स्तवन की वृत्तिवाली हैं (नद् शब्दे) **विभ्वतष्टाः**=कुछ उदार हृदय से कार्यों को करनेवाली हैं (तक्ष् धातु से तष्टं) संकुचित हृदयवाली नहीं हैं। (२) वे पत्नियाँ प्रभु की पूजिका हैं जो (घ) **बृहद् दिवः**=बहुत प्रकाशवाली **सरस्वती**=वाग्देवी ही हैं, अर्थात् जिनके सब शब्द समझदारी का परिचय देते हैं। **उत**=और (ङ) **राका**=पूर्ण चन्द्रवाली रात्रि के समान सदा **दशस्यन्तीः**=प्रकाश को देनेवाली हैं और **शुभ्राः**=अत्यन्त शुभ्र जीवनवाली हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमारे जीवन को दान्तमनवाला व कुशलता से कार्यों को करनेवाला बनाती है। उपासना करनेवाली पत्नी का जीवन वासनाशून्य, उदार, प्रकाशमय व शुभ्र होता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मेधा-ज्ञान की वाणी

प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम्।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः॥ १३॥

(१) उस **महे**=महान् **सुशरणाय**=उत्तम रक्षक प्रभु की प्राप्ति के लिये मैं **मेधाम्**=बुद्धि को जो **नव्यसी जायमानाम्**=दिन ब दिन अधिक स्तुत्य होती जाती हैं अथवा 'नव नव उन्मेषशालिनी' है तथा **गिरं**=इस वेदवाणीरूप ज्ञानवाणी को **प्र सु भरे**=खूब अच्छी प्रकार अपने अन्दर भरता हूँ। इस मेधा व इन ज्ञानवाणियों से ही तो मैं प्रभु का दर्शन कर पाऊँगा। (२) उस प्रभु की प्राप्ति के लिये मैं अपने में मेधा का धारण करता हूँ **यः**=जो **आहनाः**=वासनाओं के आहन्ता (विनाशक) होते हुए **दुहितुः**=इस प्रपूरक वेदवाणी की **वक्षणासु**=वृद्धियों में पर **रूपा मिनानः**=हमारे

उत्तम रूपों का निर्माण करने के हेतु से **इदं**=इस जगत् को **नः**=हमारे लिये **अकृणोत्**=करते हैं। प्रभु ने यह सृष्टि इसी उद्देश्य से बनायी है कि जीव इसमें आकर, सब साधनों से सम्पन्न होकर, वासनाओं में न फँसे और वेदज्ञान का अपने में वर्धन करता हुआ उत्कृष्टरूपवाले जीवन का निर्माण करे।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम बुद्धि का सम्पादन करके ज्ञान को प्राप्त करें। प्रभु यह संसार इसीलिए बनाते हैं कि हम वेदज्ञान को अपने अन्दर भरते हुए दिन व दिन उत्कृष्टरूप युक्त जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अन्तर्जगत् व बाह्यजगत्' में प्रभु की गर्जना

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः॥ १४॥

(१) हे **जरितः**=स्तोतः! **नूनम्**=निश्चय से तेरी **सुष्टुतिः**=उत्तम स्तुति उस प्रभु को **प्र अश्याः**=प्रकर्षेण व्याप्त करे, अर्थात् तू उस प्रभु का स्तवन करनेवाला बन जो **स्तनयन्तम्**=तेरे हृदयान्तरिक्ष में 'ऋग्, यजु, सामरूप' तीन वाणियों का गर्जन कर रहे हैं 'तिस्रो वाच उदीरते हरिरेति कनिक्रदत्'। **रुवन्तम्**=जो तुझे निरन्तर ज्ञानोपदेश दे रहे हैं (रु शब्दे) **इडस्पतिम्**=जो ज्ञान की वाणियों के स्वामी हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **अब्दिमान्**=इस बाह्य अन्तरिक्ष में मेघोंवाले हैं, **उदनिमान्**=जलोंवाले हैं तथा **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **विद्युता**=विशिष्ट दीप्ति से **उक्षमाणः**=सिक्त से करते हुए **प्र इयर्ति**=प्रकर्षेण गति कर रहे हैं। प्रभु हृदयान्तरिक्ष को ज्ञान की वाणियों से दीप्त करते हैं और बाह्य अन्तरिक्ष को सूर्य आदि की दीप्ति से दीप्त कर रहे हैं। क्या अन्दर क्या बाहिर है सर्वत्र प्रभु की दीप्ति। इस दीप्ति को इस रूप में देखनेवाला ही प्रभु का सच्चा उपासक है।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदयान्तरिक्ष में ज्ञान की वाणियों का गर्जन कर रहे हैं। बाह्य अन्तरिक्ष में बादलों व विद्युत् की गर्जना को करा रहे हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राणसाधना का महत्त्व

एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः॥ १५॥

(१) **एषः**=यह **स्तोमः**=मेरे से किये जानेवाला स्तुति समूह **मारुतं शर्धः अच्छा**=प्राणों के बल की ओर **उद् अश्याः**=उत्कर्षेण प्राप्त हो। 'मरुत्' प्राण हैं, 'प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान' आदि नामों से प्रसिद्ध इन प्राणों का सैन्य है। मैं इनका स्तवन करूँ, अर्थात् प्राणसाधना करनेवाला बनूँ। उन प्राणों की साधना करूँ जो **रुद्रस्य सूनून्**=उस रुद्र के पुत्र हैं, वस्तुतः सब रोगों की चिकित्सा करनेवाले प्रभु (रुद्र) इन प्राणरूप पुत्रों के द्वारा ही हमारे रोगों का द्रावण करते हैं। **युवन्यून्**=ये प्राण सब बुराइयों को हमारे से पृथक् करनेवाले हैं और अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं। (२) **कामः**=यह इच्छा, **मा**=मुझे राये **हवते**=धन के लिये पुकारती है, अर्थात् मेरा मन बारम्बार इस धन की ओर ही भागता है। **स्वस्ति**=मेरा कल्याण हो। सो हे मेरे मन! तू **पृषदश्वान्**=(पृषु सेचने) शक्ति के द्वारा इन्द्रियाश्वों को सिक्त करनेवाले **अयासः**=निरन्तर गतिशील इन मरुतों को ही **उपस्तुहि**=स्तुत कर। इनकी साधना ही अन्ततः कल्याण करनेवाली

है। सांसारिक धन्धों में उलझकर हम प्राणसाधना रूप अध्यात्म उन्नति के मार्ग से विचलित न हो जाएँ।

भावार्थ—हम प्राणसाधना करते हुए (क) इन्द्रियों को सशक्त बनाएँ, (ख) खूब स्फूर्तिमय जीवनवाले हों, (ग) बुराइयों को दूर कर अच्छाइयों से अपने को युक्त करें कहीं धन के धन्धे में उलझकर प्राणसाधना को न छोड़ दें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दुर्मति से दूर

प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात्॥ १६॥

(१) **एषः स्तोमः**=यह मेरा स्तवन **पृथिवीं अन्तरिक्षम्**=पृथिवी व अन्तरिक्ष को **प्र अश्याः**=प्रकर्षेण व्याप्त करे। मैं सब अन्नों की दात्री इस पृथिवी के महत्त्व को समझूँ। जलवर्षण के द्वारा अन्नों के उत्पादक अन्तरिक्ष के महत्त्व को भी समझूँ। मेरा यह स्तोम **वनस्पतीन्**=वनस्पतियों को और **ओषधीः**=ओषधियों को व्याप्त करे। मैं इन वनस्पतियों व ओषधियों के महत्त्व को समझकर, इनका ठीक प्रयोग करता हुआ **राये**=ऐश्वर्य के लिये होऊँ। इन सब चीजों के ठीक प्रयोग पर ही स्वास्थ्यरूप आन्तर सम्पत्ति व बाह्य सम्पत्ति निर्भर है। (२) **देवः देवः**=सृष्टि का प्रत्येक देव **मह्यम्**=मेरे लिये **सुहवः भूतु**=सुगमता से पुकारने योग्य हो। इन देवों की उचित आराधना से मेरा जीवन 'सत्य, शिव व सुन्दर' बने। यह **माता पृथिवी**=सब अन्नों के देनेवाली मातृस्थानापन्न पृथिवी **नः**=हमें **दुर्मतौ**=दुर्मति में **मा धात्**=मत धारण करे। इससे प्राप्त अन्नों का ठीक प्रयोग करते हुए हम सुमतिवाले ही हों।

भावार्थ—हम पृथिवी अन्तरिक्ष, वनस्पति, ओषधि व अन्य सब सृष्टि के देवों की महिमा को समझते हुए इनके ठीक प्रयोग से ऐश्वर्यशाली बनें व सुमति-सम्पन्न हों।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**याजुषीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विशाल अनिबाध जीवन

उरौ देवा अनिबाधे स्याम॥ १७॥

(१) हे **देवाः**=सृष्टि के सब देवो! गतमन्त्र के अनुसार हम सब देवों का स्तवन करते हुए **उरौ**=विशाल **अनिबाधे**=बाधारहित जीवनमार्ग में **स्याम**=हों। इस 'उरु अनिर्बाध' मार्ग पर आगे और आगे बढ़ते हुए हम लक्ष्य-स्थान पर पहुँचे। (२) 'वासनाओं की बाधा का न होना' ही उन्नति का मार्ग है।

भावार्थ—हमारा जीवन विशालता को लिये हुए हो, वासनाओं की बाधा से रहित हो।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राणसाधना के लाभ

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि॥ १८॥

(१) प्राणसाधना को करते हुए हम **अश्विनोः**=प्राणापान के **अवसा**=रक्षण से **संगमेम**=संगत हों, हमें प्राणापान द्वारा किया जानेवाला रक्षण प्राप्त हो। जो रक्षण **नूतनेन**=अत्यन्त नवीन व स्तुत्य

है (नु स्तुतौ), **मयोभुवा**=कल्याण को उत्पन्न करनेवाला है तथा **सुप्रणीती**=उत्तम मार्ग से हमें ले चलनेवाला है। प्राणसाधक पुरुष कुमार्ग से न गति करके सदा सुमार्ग से चलता है। (२) हे प्राणापानो! आप हमारा सुप्रणयन करते हुए **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=धन को **आवहतम्**=प्राप्त कराइये। **उत**=और **वीरान्**=वीर सन्तानों को **आ** (वहतम्)=प्राप्त कराइये। **विश्वानि**=सब **अमृता**=नीरोगताओं को **आ**=प्राप्त कराइये तथा **सौभगानि**=सब सौभाग्यों से हमारे जीवनों को युक्त करिये।

भावार्थ—प्राणसाधना के फलस्वरूप हम सुमार्ग से चलते हुए 'धन, उत्तम सन्तान, नीरोगता व सौभाग्य' को प्राप्त करेंगे।

'अत्रि' ही प्रार्थना करते हैं—

४३. [त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञान धेनुएँ

आ धेनवः पर्यसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति॥ १॥

(१) ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणियाँ ही यहाँ धेनुएँ हैं। सात छन्दों में इनके मन्त्र हैं, सो इन्हें **'सप्त'**=सात संख्यावाला कहा है। ये **मध्वा पयसा**=मधुर ज्ञानदुग्ध से **तूर्ण्यर्थाः**=शीघ्रता से हमारे प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाली **अमर्धन्तीः**=न हिंसित करती हुईं **धेनवः**=वेदवाणी रूप गौवें **आ**=सर्वथा **नः**=हमें **उपयन्तु**=समीपता से प्राप्त हों। ज्ञान के द्वारा ही हमारे 'धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष' सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं और यह ज्ञान ही हमें वासनाओं से हिंसित होने से बचाता है। (२) **विप्रः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाला **जरिता**=स्तोता **महः राये**=महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये इन **बृहतीः**=वृद्धि की कारणभूत, **सप्त**=सात छन्दों में प्रतिपादित **मयोभुवः**=कल्याण को उत्पन्न करनेवाली वाणियों को, वेदधेनुओं को **जोहवीति**=पुकारता है। इन वेद धेनुएँ के ज्ञानदुग्ध से ही उसकी सब शक्तियों का आप्यायन होना है।

भावार्थ—वेदवाणियों से दिया गया ज्ञान हमारे सब पुरुषार्थों को सिद्ध करता है, वासनाओं से हिंसित होने से हमें बचाता है, महान् ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है और इस प्रकार कल्याणकर होता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पिता-माता व द्यावापृथिवी

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम्॥ २॥

(१) मैं **सुष्टुती**=प्रभु की उत्तम स्तुति के द्वारा तथा **नमसा**=प्रभु के प्रति नमन के द्वारा **अमृध्रे**=अहिंसित **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क व शरीर को **वाजाय**=इस जीवन-संग्राम में सशक्त बनने के लिये **आवर्तयध्यै**=अपनी ओर आवृत्त करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरा मस्तिष्क व शरीर दोनों ही अहिंसित हों, बड़े ठीक होने के लिये **पिता माता**=पिता और माता **मधुवचाः**=अत्यन्त मधुर वचनोंवाले (भद्र वद पुत्रैः), **सुहस्ता**=सदा शोभन कर्मोंवाले, **यशसौ**=यशोयुक्त जीवनवाले होते हुए **भरे भरे**=प्रत्येक संग्राम में, इस प्रारम्भिक जीवन में

चलनेवाले वासना-संग्राम में **नः**=हमारा **अविष्टाम्**=रक्षण करें। मधुर शब्दों से समझते हुए, स्वयं अपने कर्मों से उदाहरण को पेश करते हुए, यशोयुक्त जीवन से हमें भी यशस्वी बनने की प्रेरणा देते हुए वे माता-पिता हमारा रक्षण करते हैं, हमें वासनाओं में फँसने नहीं देते।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन व प्रभु नमन से हमारा मस्तिष्क व शरीर उत्तम हो। उत्तम माता-पिता मधुर शब्दों से प्रेरणा देते हुए हमारे जीवन को उत्तम बनायें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण से आत्मदर्शन व आनन्द प्राप्ति

अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम्।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय॥ ३॥

(१) **अध्वर्यवः**=यज्ञशील पुरुषो! **मधूनि चकृवांसः**=सब मधुर कार्यों को करनेवाले तुम ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध को छोड़कर कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले तुम **वायवे**=आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिये (वा गतौ से 'वायु', अत गतौ से 'आत्मा') **चारु शुक्रम्**=इस सुन्दर वीर्यशक्ति को **प्रभरत**=प्रकर्षेण अपने में धारण करनेवाले बनो। इसके शरीर में भरण से ही 'शरीर नीरोग, मन निर्मल तथा बुद्धि तीव्र' बनेगी और तुम आत्मतत्त्व दर्शन के लिये अपने को पात्र बना पाओगे। (२) प्रभु कहते हैं कि **होता इव**=होता की तरह बनकर, जीवन को सतत यज्ञशील बनाकर **प्रथमः**=अपनी शक्तियों का विस्तार करता हुआ तू **नः**=हमारे से पैदा किये **अस्य**=इस सोम का, शुक्र का **पाहि**=रक्षण कर, इसे शरीर में सुरक्षित करनेवाला हो। हे **देवः**=दिव्य वृत्तिवाले आत्मन् इस **मध्वः**=सोम को **मदाय**=आनन्द की प्राप्ति के लिये **ते ररिम**=तेरे लिये देते हैं। इसे रक्षित करके तू अपने जीवन को उल्लासमय बना पायेगा।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनकर, अर्थात् भोगवृत्ति से ऊपर उठकर, सोम का रक्षण करें। यह सुरक्षित सोम हमें आत्मदर्शन में सहायक होगा और जीवन में हमें उल्लासमय बनायेगा।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण के साधन व फल

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद्दुदुहे शुक्रमंशुः॥ ४॥

(१) **दश क्षिपः**=दसों इन्द्रियों के विषयों को अपने से परे फेंकनेवाले, इन्द्रियों को विषयों में न फँसने देनेवाले, पुरुष **बाहू**=अपनी दोनों भुजाओं को **युञ्जते**=यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगाते हैं। उन भुजाओं को जो **सोमस्य शमितारा**=सोम शक्ति को शान्त रखनेवाली हैं, कार्यों में लगे रहने से सोम शक्ति में वासनाओं का उबाल नहीं आता और जो भुजाएँ **सुहस्ता**=कुशलता से कार्यों को करनेवाली हैं, अनाड़ीपन से नहीं। ये विषयों को अपने से परे फेंकनेवाले पुरुष **अद्रिम्** (युञ्जते)=उस आदरणीय प्रभु का अपने साथ मेल करते हैं, प्रभु की उपासना में प्रवृत्त होते हैं। यह 'प्रभु का उपासन' व 'कर्मों में लगे रहना' ही इन्हें सोमरक्षण के योग्य बनाता है। (२) **सुगभस्तिः**=यह उत्तम बाहुओंवाला, उत्तमता से कार्यों में प्रवृत्त पुरुष **अंशुः**=ज्ञानरश्मियों का पुञ्ज बनता हुआ, निरन्तर स्वाध्याय में प्रवृत्त होता हुआ **गिरिष्ठाम्**=ज्ञान की वाणियों में स्थित होनेवाले, ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर, ज्ञानाग्नि की दीप्ति से इन ज्ञान वाणियों को प्राप्त करानेवाले, **मध्वः रसम्**=मधुरता के रस **भूत**=मधुरता को जन्म देनेवाले **शुक्रम्**=सोम को (वीर्य को) **चनिश्चदत्**=

आह्लादित होता हुआ **दुदुहे**=अपने में प्रपूरित करता है। शरीर में पूरित यह शुक्र जीवन को 'ज्ञानदीप्त, मधुर व आनन्दयुक्त' करता है।

भावार्थ—सोमरक्षण का साधन है 'प्रभु स्मरणपूर्वक कार्यों में लगे रहना'। सोमरक्षण का फल है 'ज्ञानदीप्ति, मधुरता, उल्लास व आनन्द'।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति उन्नति व उल्लास

असा॑वि ते जुजुषा॒णाय॒ सोमः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य बृह॒ते मदा॑य।
हरी॒ रथे॑ सुधुरा॒ योगे॑ अर्वागिन्द्र॑ प्रि॒या कृ॑णुहि हू॒यमा॑नः॥ ५॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **जुजुषाणाय**=प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य कर्मों को सेवन करनेवाले **ते**=तेरे लिये **सोमः असावि**=यह सोम उत्पन्न किया गया है। यह तेरी **क्रत्वे**=शक्ति के लिये, **दक्षाय**=(growth) उन्नति के लिये तथा **बृहते मदाय**=महान् उल्लास के लिये होता है। (२) इस सोमरक्षण के लिये **हूयमानः**=पुकार-पुकार कर कहा जाता हुआ तू, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **रथे**=शरीर रथ में **योगे**=मेल के होने पर **सुधुरा**=उत्तमता से धुराओं का वहन करनेवाले **हरी**=इन्द्रियाश्वों को **अर्वाक्**=अन्तर्मुखी वृत्तिवाला **कृणुहि**=कर। ये इन्द्रियाश्व सदा बाहिर ही न भटकते रहें। बाहिर भटकते हुए ये तुम्हें विषयों में फँसाकर सोमरक्षण के अयोग्य कर देंगे।

भावार्थ—प्रीतिपूर्वक कर्मों में लगे रहकर व इन्द्रियाश्वों को इधर-उधर न भटकने देकर हम सोम का रक्षण करें। यह हमारी 'शक्ति, उन्नति व उल्लास' का कारण बनेगा।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

निरन्तर स्वाध्याय द्वारा सोमरक्षण

आ नो॑ म॒हीम॒रम॑तिं स॒जोषा॒ ग्नां दे॒वीं नम॑सा रा॒तह॑व्याम्।
मधो॒र्मदा॑य बृह॒तीमृ॑त॒ज्ञामाग्ने॑ वह प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **सजोषाः**=प्रीतिपूर्वक उपासित हुए-हुए **नः**=हमारे लिये **देवीं ग्नाम्**=(ग्ना=वाक् नि० १।११) इस प्रकाशमयी वेदवाणी को **देवयानैः पथिभिः**=देवताओं से चलने योग्य मार्गों के हेतु से **आवह**=प्राप्त कराइये। इस वेदवाणी को प्राप्त करके हम शुभ मार्गों पर ही चलनेवाले बनेंगे। इसके 'छन्द' हमारा छादन करते हैं और हमें अशुभ वासनाओं के आक्रमण से बचाते हैं। आप उस वेदवाणी को हमें प्राप्त कराइये जो **महीम्**=अत्यन्त महनीय है, जीवन को महत्त्वपूर्ण बनाती है। **अ-रमतिम्**=विषयों में रण से हमें दूर करती है। **नमसा रातहव्याम्**=प्रभु के प्रति नमन के साथ सब हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाली है, हमें यह प्रभु के प्रति झुकाववाला बनाती है और सब यज्ञिय पदार्थों को, पवित्र पदार्थों को प्राप्त कराती है। (२) हे प्रभो! **मधोः मदाय**=सोम के उल्लास के लिये, सोमरक्षण से प्राप्त होनेवाले आनन्द के लिये, आप हमें इस वेदवाणी को प्राप्त कराइये। जो **बृहतीम्**=सदा हमारी वृद्धि की कारणभूत है (बृहि वृद्धौ) तथा **ऋतज्ञाम्**=ऋत को जाननेवाली है, अर्थात् जिसके होने पर अनृत रहता ही नहीं, जो अनृत को तो जानती ही नहीं। इस वेदवाणी से ऋतमय जीवनवाले बनकर ही हम, हे अग्ने! आपको प्राप्त कर पायेंगे।

भावार्थ—हम निरन्तर स्वाध्याय की वृत्ति को अपनाएँ। यह ज्ञान प्राप्ति हमें देवयान मार्ग से चलने के लिये प्रेरित करेगी और सोमरक्षण करते हुए हम जीवन को उल्लासमय बना पायेंगे।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु प्राप्ति के साधन

अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि॥ ७॥

(१) **वपावन्तं न**=शक्ति व ज्ञान के बीज को हमारे में बोनेवाले के समान **यम्**=जिस प्रभु को **न**=अब (अस्युपमार्थस्य संप्रत्यर्थे प्रयोगः सा०) **प्रथयन्तः**=अपनी शक्तियों का विस्तार करते हुए, **विप्राः**=अपना पूरण करनेवाले, न्यूनताओं को दूर करनेवाले, **अग्निना तपन्तः**=ज्ञानाग्नि से अपने को दीप्त करते हुए लोग **अञ्जन्ति**=प्राप्त होते हैं। प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम (क) अपनी शक्तियों का विस्तार करें, (ख) अपने पूरण में प्रवृत्त हों, (ग) ज्ञानाग्नि से अपने को दीप्त करें। (२) **न**=जैसे **पितुः**=पिता का **प्रेष्ठः**=प्रियतम **पुत्रः**=पुत्र **उपसि**=उसकी गोद में स्थित होता है, उसी प्रकार उस परम पिता की उपासना में स्थित हुआ-हुआ **घर्मः**=सोम के रक्षण के द्वारा शक्ति का पुञ्ज बना हुआ, **ऋतयन्**=यज्ञों की ही कामना करता हुआ पुरुष **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **आ असादि**=सब प्रकार से अपने हृदयासन पर आसीन करता है। प्रभु की प्राप्ति के लिये हम (क) उपासनामय जीवनवाले हों, (ख) सोमरक्षण द्वारा शक्ति के पुञ्ज बनें, (ग) यज्ञों की सदा कामनावाले हों।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग है, (क) शक्तियों का विस्तार करना, (ख) अपनी न्यूनताओं को दूर करना, (ग) ज्ञानाग्नि से अपने को दीप्त करना, (घ) उपासना, (ङ) सोमरक्षण, (च) यज्ञों में प्रवृत्त रहना।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'शरीर रथ की नाभि के कील-भूत' प्राणापान

अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम्॥ ८॥

(१) **मही**=महनीय, हमारे जीवनों को महत्त्वपूर्ण बनानेवाली, **बृहती**=वृद्धि की कारणभूत, **शन्तमा**=अत्यन्त शान्ति को देनेवाली **गीः**=ज्ञान की वाणी **दूतः न**=दूत के समान **अश्विनौ अच्छा**=प्राणापान के प्रति **हुवध्यै**=पुकारने के लिये **गन्तु**=जाये। 'ज्ञान की वाणी' का 'प्राणापान को पुकारने के लिये जाने' का भाव यह है कि यह वाणी मानो यह कह रही है कि हे प्राणापानो! तुम्हारी साधना पर ही हमारा जीवन आश्रित है। प्राणसाधना शक्ति की ऊर्ध्वगति को करती है। यह शक्ति ज्ञानाग्नि का ईंधन बनती है। ज्ञानाग्नि की दीप्ति के होने पर ही इस वेदवाणी का प्रकाश होता है। (२) यह वेदवाणी कहती है कि **सरथा**=मेरे साथ एक ही शरीर रथ पर आरूढ़ होनेवाले आप दोनों **मयोभुवा**=सब कल्याण का भावन करनेवाले हो। **अर्वाग् यातम्**=आप दोनों यहाँ शरीर रथ के अन्दर प्राप्त होवो। वहाँ शरीर रथ में प्राप्त होकर **निधिम्**=ज्ञान के कोश को **गन्तम्**=प्राप्त होवो। **न**=जैसे कि **धुरं नाभिम्**=सब शकटभार का वहन करनेवाली चक्रनाभि को **आणिः**=कील प्राप्त होता है। कील के बिना नाभि रथ वहन नहीं कर पाती। इसी प्रकार आपकी साधना के बिना ज्ञाननिधि की प्राप्ति होना सम्भव नहीं। आपके द्वारा ही सोम का रक्षण व ज्ञानाग्नि का दीपन होकर यह ज्ञानानिधि प्राप्त होती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से ही यह शरीररथ सुन्दर गतिवाला होता है। यह प्राणसाधना शरीर

रथ की धुरा का वहन करनेवाली चक्रनाभि में कील के समान है। इस प्राणसाधना से बुद्धि की तीव्रता होकर ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पूषा व वायु का आराधन

प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन्॥ ९॥

(१) **अहम्**=मैं **तव्यसः**=अत्यन्त बलशाली **तुरस्य**=शत्रुओं के विनाशक **पूष्णः**=पूषा के, सूर्य के तथा **वायोः**=वायु के **नम उक्तिम्**=नमन के साथ स्तोत्र को **अदिक्षि**=(आदिशामि) करता हूँ। मैं पूषा व वायु का आराधन करता हूँ। पूषा का आराधन यही है कि यथासम्भव सूर्य सम्पर्क में जीवन को बिताते हुए सूर्य की तरह ही क्रियाशील होते हुए, अपनी प्राणशक्ति को बढ़ाना। वायु के आराधन का भाव है कि वायु की तरह निरन्तर गतिवाला होना, अकर्मण्यता व आलस्य से सदा परे रहना। एवं पूषा व वायु का आराधन करता हुआ व्यक्ति 'तव्यान् व तुर्' बनता है, शक्तिशाली व शत्रुओं का संहार करनेवाला। (२) मैं उन 'पूषा व वायु' का आराधन करता हूँ **या**=जो **राधसा**=मुझे जीवन में सफल बनानेवाले हैं (राध सिद्धौ), **मतीनां चोदितारौ**=मेरे अन्दर सद्बुद्धियों को प्रेरित करनेवाले हैं। **उत**=और **त्मन्**=स्वयं **वाजस्य द्रविणोदौ**=शक्ति के धन को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—हम यथासम्भव सूर्य सम्पर्क में जीवन को बिताते हुए शक्तियों के पोषण का पूर्ण ध्यान करें। यही 'पूषा' का उपासन है। हम निरन्तर गतिशील होते हुए 'वायु' की आराधना करें। यह आराधना हमें सफलता, सद्बुद्धि व शक्ति को देगी। सूर्य सम्पर्क से दूर व अकर्मण्य पुरुष 'असफल, मूर्ख व निर्बल' हो जाता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ज्ञानी स्तोता' का 'सर्वदेवमय' जीवन

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती॥ १०॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **नामभिः आहुवानः**='सत् चित् आनन्द' आदि नामों से सदा पुकारे जाते हुए आप **विश्वान्**=सब **मरुतः**=देवों को **रूपेभिः**=प्रत्यक्ष रूपों से **आवक्षि**=आप हमारे लिये प्राप्त कराते हैं। देवों का प्रत्यक्षरूप से प्राप्त होने का भाव है, 'उस-उस देव के गुण का जीवन में स्थापन'। आप उन-उन देवों के गुणों को हमारे जीवन में स्थापित करते हुए हमारे जीवन को सर्वदेवमय कर डालते हैं। (२) **गिरः**=इस ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले पुरुष के **यज्ञम्**=जीवनयज्ञ को **विश्वे मरुतः**=सब देव **गन्त**=प्राप्त हों। यह ज्ञानी ज्ञानयज्ञ को करता हुआ दिव्य जीवनवाला बने। **च**=और **जरितुः**=इस स्तोता की **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **विश्वे**=सब देव **ऊती**=रक्षण के साथ **गन्त**=प्राप्त हों। स्तवन के होने पर सब देव इस स्तोता का रक्षण करनेवाले हों और यह उनसे रक्षित हुआ-हुआ वासनाओं से पराभूत न हो।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारा जीवन सर्वदेवमय बने। हम ज्ञान व स्तुति में प्रवृत्त होकर देवों से अभिगमनीय व रक्षणीय हों।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

पर्वत से सरस्वती का प्रवाह

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम्।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥ ११ ॥

(१) **नः**=हमारे **यज्ञम्**=इस जीवनयज्ञ में **दिवः**=प्रकाशमय, **बृहतः**=गुण प्रवृद्ध, **पर्वतात्**=अपना पूरण करनेवाले आचार्य से **सरस्वती**=यह वाग्देवी, ज्ञान की अधिष्ठातृ देवता **आगन्तु**=सर्वथा प्राप्त हो। हम ज्ञानी गुरुओं से ज्ञान को प्राप्त करें। यह सरस्वती सचमुच **यजता**=उपासनीय है। सरस्वती की आराधना ही हमें प्रभु का प्रिय बनाती है 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतः'। यह **देवी**=प्रकाशमय सरस्वती **हवम्**=हमारी पुकार को **जुजुषाणा**=प्रीतिपूर्वक सेवन करती हुई **नः**=हमारे लिये **घृताची**=ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करानेवाली है यह **उशती**=हमारे हित को चाहती हुई **शग्माम्**=सुखकारी **वाचम्**=इस प्रभु की वाणीरूप वेदवाणी को **शृणोतु**=सुने। अर्थात् सरस्वती की कृपा से सदा हम ज्ञान की वाणियों को सुनने में प्रवृत्त हों। ये ज्ञानवाणियाँ ही अन्ततः हमारा कल्याण करनेवाली होती हैं।

भावार्थ—हम ज्ञानी आचार्यों से ज्ञान का प्राप्त करें। सदा ज्ञान की वाणियों का श्रवण करें। यह श्रवण ही हमारे लिये सुखकर होगा। आचार्य 'पर्वत' है, ज्ञान का पूरण करनेवाला है। उससे विद्यार्थी की ओर ज्ञान का प्रवाह ही 'सरस्वती का प्रवाह' है।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

बृहस्पति की पूजा

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम्।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥ १२ ॥

(१) उस प्रभु को **सदने**=इस शरीर गृह में, हृदयरूप आसन पर **आसादयध्वम्**=बिठाओ। जो प्रभु **वेधसम्**=सारे ब्रह्माण्ड के निर्माता हैं। **नीलपृष्ठम्**=(नीडपृष्ठं) जिनकी पीठ सारे प्राणियों को आधार देनेवाली है, सारे प्राणी इस प्रभु रूप 'नीड' में ही आश्रय पाते हैं। **बृहन्तम्**=जो अत्यन्त बढ़े हुए है। **बृहस्पतिम्**=सब ज्ञानों के स्वामी हैं। (२) हम **अरुषम्**=उस आरोचमान प्रभु का **सपेम**=पूजन करें, जो **सादद् योनिम्**=इस शरीर गृह में निवास करते हैं 'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः'। **दमे**=इस शरीर गृह में **आदीदिवांसम्**=सर्वतः दीप्ति को करनेवाले हैं और **हिरण्यवर्णम्**=ज्योतिर्मय वर्णवाले हैं (आदित्यवर्णम्) सूर्य की तरह दीप्त रूपवाले हैं, वस्तुतः प्रकाश ही प्रकाश हैं।

भावार्थ—प्रभु को हमें सदा इस रूप में उपासन करना चाहिये कि वे ही निर्माता हैं, धारण करनेवाले हैं, महान् हैं, ज्ञान के स्वामी हैं। शरीरों में स्थित हुए-हुए हमें दीप्ति को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'धर्णसि' प्रभु (ग्राः ओषधीः वसानः)

आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः।
ग्रा वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥ १३ ॥

(१) वे प्रभु **धर्णसिः**=सब के धारक हैं। **बृहद्दिवः**=अत्यन्त प्रवृद्ध दीप्तिवाले हैं। **रराणः**=सर्वत्र

रममाण हैं व हमारे लिये सब कुछ देनेवाले हैं। **हुवानः**=पुकारे जाते हुए वे प्रभु **विश्वेभिः**=सब **ओमभिः**=रक्षणों से **आगन्तु**=हमें प्राप्त हों। (२) वे प्रभु हमें **ग्राः**=वेदवाणियों से **वसानः**=आच्छादित करते हैं तथा **ओषधीः**=ओषधियों को हमारे लिये प्राप्त कराते हैं। **अमृध्रः**=अहिंसित हैं। वस्तुतः जो भी मनुष्य इन वेदवाणियों के ज्ञान को प्राप्त करता है तथा ओषधियों का सेवन करता है, वह अहिंसित ही होता है। **त्रिधातु शृंगः**='धन, शक्ति व ज्ञान' तीनों धारणीय वस्तुओं के वे प्रभु शृंग हैं। तीनों की दृष्टिकोण से सर्वोन्नत है। 'सर्वैश्वर्यवाले सर्वशक्तिमान् व सर्वज्ञ हैं। **वृषभः**=शक्तिशाली हैं व सब सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। **वयोधा**=उत्कृष्ट जीवन का हमारे लिये धारण करानेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु का उपासन करने से ही हमारा जीवन उत्कृष्ट बनता है। प्रभु ही धारक हैं, प्रकाशक हैं, सर्वप्रद हैं, सब प्रकार से रक्षा करनेवाले हैं। हमारे लिये वेदवाणियों को (मस्तिष्क के लिये) व ओषधियों को (शरीर के लिये) प्राप्त कराते हैं। शरीर, मन व बुद्धि के दृष्टिकोण से हमें उन्नत करके सुखी व सुन्दर जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विपन्यवः-रास्पिरासः

मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन्।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे॥ १४॥

(१) **आयोः**=गतिशील पुरुष के **मातुः**=निर्माण करनेवाले प्रभु के **परमे**=सर्वोत्कृष्ट **शुक्रे**=निर्मल-शुद्ध **पदे**=स्थान में **विपन्यवः**=स्तुति करनेवाले व **रास्पिरासः**=(रा=धन, स्पृ=give) धनों का दान करनेवाले लोग **अग्मन्**=जाते हैं। निर्माता प्रभु हैं, प्रभु उसी के जीवन का निर्माण करते हैं जो स्वयं भी गतिशील हो। इस प्रभु के सर्वोत्कृष्ट पद को दान देनेवाले स्तोता लोग ही प्राप्त करते हैं। (२) **नमसा**=नमन के साथ **रात हव्याः**=हव्य पदार्थों का दान करनेवाले लोग **सुशेव्यम्**=उत्तम सुख को प्राप्त करानेवाले **शिशुम्**=हमारी बुद्धियों को सूक्ष्म बनानेवाले प्रभु का **मृजन्ति**=शोधन करते हैं, हृदयस्थ प्रभु को हृदय में आ जानेवाले राग-द्वेष के मल को हटाकर देखने का प्रयत्न करते हैं। यही प्रभु का शोधन है। इसी प्रकार प्रभु का परिमार्जन करते हैं **न**=जैसे कि **आयवः**=गतिशील मनुष्य **वासे**=गृह में **शिशुम्**=बच्चे को। मणि के ऊपर आवरण आ जाने से हम मणि को नहीं देख पाते, हृदय पर राग-द्वेष का परदा पड़ जाने से हम हृदयस्थ प्रभु को नहीं देख पाते। जिस प्रकार माता-पिता प्रेम से बच्चे के शरीर को परिमार्जित करते हैं, उसी प्रकार हम प्रभु के शरीरभूत इस हृदय को पवित्र करें। इसके पवित्र होने पर ही प्रभु का दर्शन होगा।

भावार्थ—दानशील स्तोता लोग ही प्रभु के परम पद पर पहुँचते हैं, प्रभु दर्शन के लिये बड़ी प्रीति से हृदय का शोधन करना आवश्यक है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'धियाजुरः मिथुनासः सचन्त'

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात्॥ १५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **धियाजुरः**=बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा आपका उपासन करनेवाले **मिथुनासः**=पति-पत्नी **बृहते तुभ्यम्**=सदा से बढ़े हुए आपकी प्राप्ति के लिये **बृहद वयः**=दीर्घ

जीवन को अपने साथ **सचन्त**=समवेत करते हैं, अर्थात् सदा इस दीर्घ जीवन में बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा आपकी उपासना के लिये यत्नशील होते हैं। (२) इस प्रकार का जीवन बीतने पर **देवः देवः**=प्रत्येक देव **मह्यम्**=मेरे लिये **सुहवः**=सुगमता से पुकारने योग्य **भूतु**=हो। वस्तुतः माता-पिता का सुन्दर प्रभु परायण जीवन सन्तानों में सब सद्गुणों को जन्म देता ही है। यह **पृथिवी माता**=हमारे लिये माता के समान सब भोजनों को प्राप्त करानेवाली यह भूमि माता **नः**=हमें **दुर्मतौ मा धात**=दुर्बुद्धि में मत स्थापित करे। भूमि माता से प्राप्त होनेवाले वानस्पतिक पदार्थों का सेवन करता हुआ मैं सदा सद्बुद्धि से युक्त रहूँ, मेरे अन्दर औरों के विनाश की भावना पैदा ही न हो।

भावार्थ—बुद्धिपूर्वक कर्म करते हुए माता-पिता प्रभु के उपासक हों। ऐसा होने पर सन्तान दिव्यगुणोंवाले व सद्बुद्धि-सम्पन्न होंगे।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**याजुषीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विशाल अनिबाध जीवन

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १६ ॥

४२.१७ पर अर्थ द्रष्टव्य है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राणसाधना के लाभ

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ १७ ॥

४२.१८ पर अर्थ द्रष्टव्य है।

अगला सूक्त 'अवत्सार' ऋषि का है जो कि अपने सार (बल, वीर्यशक्ति) का रक्षण करते हैं। अतएव काश्यप ज्ञानी हैं। बीच-बीच में अन्य ऋषियों का भी स्थान है। मुख्यतया 'अवत्सार काश्यप' प्रार्थना करते हैं—

४४. [चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु स्तवन व विजय

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥ १ ॥

(१) **तम्**=उस प्रभु को **प्रत्नथा**=पुराण सनातन पुरुष के रूप में (=पुराण पुरुष की तरह), **पूर्वथा**=पालन व पूरण करनेवाले के रूप में, **विश्वथा**=सर्वत्र प्रविष्ट-सर्वव्यापक के रूप में, **इमथा**=सदा वर्तमान के रूप में (प्रभु के लिये सब वर्तमानकाल ही है, वस्तुतः प्रभु ही 'काल' हैं) **गिरा**=स्तुति के द्वारा **दोहसे**=अपने अन्दर प्रपूरित करता है। उन स्तुतियों के द्वारा **यासु**=जिनमें **अनुवर्धसे**=तू दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। अधिकाधिक स्तुति करता हुआ तू प्रभु को अपने अन्दर प्रपूरित कर रहा है। यह प्रभु को अपने अन्दर भरना ही स्तुति का सच्चा लाभ है, प्रभु जैसा बनना। (२) उस प्रभु को जो **ज्येष्ठतातिम्**=सर्वश्रेष्ठ हैं। **बर्हिषदम्**=वासनाशून्य हृदय में आसीन होते हैं। वहाँ स्थित होकर **स्वर्विदम्**=सम्पूर्ण प्रकाश को प्राप्त करानेवाले हैं।

प्रतीचीनं=हमारी ओर आनेवाले हैं, जितना-जितना हमारा ज्ञान बढ़ता है, उतना-उतना हम प्रभु को प्राप्त करते हैं। **वृजनम्**=बल के पुञ्ज हैं। जो प्रभु को प्राप्त करता है, वह प्रभु के बल से बलवान् होता है। **आशुम्**=सर्वत्र व्याप्त होनेवाले व शीघ्रता से कार्यों को करनेवाले हैं, सदा **जयन्तम्**=विजयशील हैं। उपासक को वह-वह विजय इस उपास्य प्रभु से ही प्राप्त होती है। उपासक के शत्रुओं को ये प्रभु ही पराजित करते हैं।

भावार्थ—हम सदा प्रभु-स्तवन करें। यही ज्ञान शक्ति व विजय प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥
स्वरः—**निषादः** ॥

सोमरक्षण व ज्योतिर्मय जीवन

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥ २ ॥

(१) **अचोदते**=(अप्रेरयते) शरीर में सोम को सुरक्षित रखनेवाले के लिये, सोम को विलासमय जीवन के द्वारा बाहिर न प्रेरित करनेवाले के लिये, हे प्रभो! आप **ककुभाम्**=शिखरों के **स्वः**=प्रकाश को **विरोचमानः**=दीप्त करनेवाले होते हैं। इन सोमी पुरुषों का जीवन इस प्रकार प्रकाशमय होता है जैसे कि बादलों से घिरे मध्यभाग से ऊपर पर्वत शिखर सूर्य की चमक से चमक रहा होता है। इन व्यक्तियों के जीवन में आप उन ज्योतियों को दीप्त करते हैं, **याः**=जो **उपरस्य**=(nearer) आपके उपासक की **सुदृशीः**=सुन्दर दर्शनवाली ज्योतियाँ **श्रिये**=शोभा के लिये होती हैं। जो ज्योतियाँ उपासक के जीवन को अलंकृत करती हैं, उन्हीं से इस सोमरक्षक पुरुष का जीवन शोभावाला होता है। (२) हे **सुक्रतो**=उत्तम 'प्रज्ञान, कर्म व शक्ति' वाले प्रभो! आप **सुगोपाः असि**=हमारे उत्तम रक्षक हैं। **न दभाय**=आप इन सोमरक्षक पुरुषों को हिंसित नहीं होने देते। **मायाभिः**=सब मायाओं से आप **परः**=परे हैं। **ऋते**=ऋत में, सत्य में **ते**=आपका **नाम आस**=शत्रुओं को झुकानेवाला (नामकं बलम्) बल है। आप सत्यस्वरूप हैं, आप कभी शत्रुओं से पराजित नहीं होते। शत्रुओं की माया प्रभु को आक्रान्त नहीं कर पाती। प्रभु का उपासक भी इस माया का शिकार नहीं होता।

भावार्थ—सोमरक्षण के होने पर उपासक के जीवन को प्रभु ज्योतिर्मय करते हैं। प्रभु से रक्षित हुआ-हुआ यह संसार की मायाओं से आक्रान्त नहीं होता।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥
स्वरः—**निषादः** ॥

सोमरक्षक का सुन्दर जीवन

अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥ ३ ॥

(१) गतमन्त्र का सोमरक्षक पुरुष **अत्यं हविः**=निरन्तर गतिशील हवि का **सचते**=सेवन करता है, अर्थात् सदा अग्निहोत्र आदि यज्ञों का करनेवाला होता है। यह हवि **सत् च**=सत्य तो है ही, यह जीवन को सत्यमय बनाती है, **धातु च**=और धारण करनेवाली होती हैं। वृष्टि के द्वारा अन्न को पैदा करके यह हमारा धारण करती है। यह **अरिष्टगातुः**=अहिंसित मार्गवाला है, सदा मार्ग पर चलता है। **सः होता**=यह यज्ञशील पुरुष **सहोभरिः**=अपने में शत्रुओं को कुचलनेवाले

बल को धारण करता है। (२) **बर्हिः अनु**=वासनाशून्य हृदय के अनुसार **प्रसस्त्राणः**=यह खूब ही क्रियाशील होता है। इसकी सब क्रियाएँ वासनाओं से प्रेरित होकर नहीं होती। सदा क्रियाशीलता के कारण यह **वृषा**=शक्तिशाली है। **शिशुः**=अपनी बुद्धि को तीव्र करनेवाला है। **मध्ये**=जीवन के माध्यन्दिन सवन में **युवा**=यह बुराइयों का अपने से अमिश्रण व अच्छाइयों का अपने में मेल करनेवाला है। **अजरः**=जीर्ण नहीं होता। **विस्रुहाहितः**=(ओषधीनां मध्ये निहितः सा०) यह ओषधियों में स्थापित होता है, अर्थात् सदा ओषधियों का ही सेवन करता है।

भावार्थ—सोमरक्षक पुरुष 'यज्ञशील, अपने में शक्ति को भरनेवाला, वासनाशून्य क्रियाओंवाला, युवा, अजर व वानस्पतिक भोजन का सेवन करनेवाला' बनता है।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'क्रिविः नामानि प्रवणे मुषायति'

प्र वं एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति॥ ४॥

(१) **वः एते**=गतमन्त्र में वर्णित तुम्हारे में से ये सोमरक्षक पुरुष **सुयुजः**=अच्छी प्रकार इन्द्रियाश्वों को शरीर रथ में जोतनेवाले होते हैं। **यामन्**=ये जीवनमार्ग में **इष्टये**=यज्ञों के लिये होते हैं। **अमुष्मै**=उस सोमरक्षक के लिये **नीचीः**=नम्रता से युक्त **यम्यः**=संयमवाली चित्तवृत्तियाँ **ऋतावृधः**=ऋत व सत्य का वर्धन करनेवाली होती हैं। (२) **सुयन्तुभिः**=उत्तम नियमनवाली, **सर्वशासैः**=सबका शासन करनेवाली **अभीशुभिः**=लगाम रूप चित्तवृत्तियों से **क्रिविः**=सदा उत्तम कर्मों में तत्पर यह सोमी पुरुष **प्रवणे**=(modestly, humble) नम्र हृदय में **नामानि**=प्रभु के नामों को **मुषायति**=चुपके-चुपके ग्रहण करता है, बिलकुल मौनरूप से वह इन नामों का जप करता है।

भावार्थ—सोमरक्षक पुरुष इन्द्रियों व चित्तवृत्तियों को वशीभूत करके कार्यों में लगता है। वह कार्यों में प्रवृत्त हुआ-हुआ चुपके-चुपके ही प्रभु के नामों का स्मरण करता है।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सुस्वरुः

संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे॥ ५॥

(१) **तरुभिः**=वनस्पतियों के द्वारा **सुतेगृभम्**=शक्तियों की उत्पत्ति के निमित्त (सुते) ग्रहणीय (गृभं) **वयाकिनम्**=(वयाकः=a creeper) बेलोंवाले, अर्थात् लताओं से उत्पन्न पदार्थों के सेवन से पैदा हुए-हुए सोम को **संजर्भुराणः**=धारण करता हुआ व्यक्ति **चित्तगर्भासु**=(चित्तग्राहिणीषु) मन को आकृष्ट करनेवाली अतएव मन को एकाग्र करनेवाली स्तुतियों के होने पर **सुस्वरुः**=(स्वृ=to kill) अच्छी प्रकार रोग व वासनारूप शत्रुओं का विनाश करनेवाला होता है। हम वृक्षों व लताओं से उत्पन्न पदार्थों का सेवन करते हुए, उत्पन्न सोम को प्रभु-स्तवन द्वारा अपने में सुरक्षित करते हुए, रोगों व वासनाओं का संहार करनेवाले बनें। (२) ऐसा करने पर **धारवाकेषु**=ज्ञानवाणियों को धारण करनेवालों में **ऋजुगाथ**=ऋजुमार्ग से गमन करनेवाले जीव!

शोभसे=तू शोभा को पाता है। **जीवः**=जीवन शक्ति से परिपूर्ण हुआ-हुआ तू **अध्वरे**=इस जीवनयज्ञ में **पत्नी अभिवर्धस्व**=इन वेदवाणीरूप पत्नियों की ओर बढ़नेवाला हो। इनके साथ ही तेरा परिणय हो और तू इनके द्वारा अपने ज्ञान के प्रकाश को निरन्तर बढ़ानेवाला बन।

भावार्थ—हम तरु व लताओं से उत्पन्न पदार्थों का सेवन करते हुए, उनसे उत्पन्न सोम का रक्षण करते हुए, प्रभु स्तवन में प्रवृत्त हुए-हुए रोगों व वासनाओं का विनाश करें। ज्ञान की वाणियों की ओर निरन्तर गतिवाले हों।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सिध्रया छायया

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥ ६ ॥

(१) **यादृग्**=जैसा **एव**=ही **ददृशे**=देखा जाता है, **तादृग्**=वैसा **उच्यते**=कहा जाता है। प्रभु को हम जिस रूप में अनुभव करते हैं, वैसा ही उसका स्तवन करते हैं। **अप्सु**=कर्मों में **सिध्रया**=सफलता (सिद्धि) को प्रदान करनेवाली **छायया** (छो छेदने)=शत्रुओं का छेदन-भेदन करनेवाली शक्ति से **संदधिरे**=उस प्रभु का ये उपासक धारण करते हैं। वस्तुतः प्रभु की उपासना यही है कि हम सदा कर्मों में प्रवृत्त रहते हुए काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश करें। (२) उपासित प्रभु **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **महीम्**=महनीय **उरुषाम्**=सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विशाल सामग्री को देनेवाली (बहुदात्री) संपत्ति को देते हैं। **उरुज्रयः**=खूब ही वेग, क्रियाशीलता को देते हैं। **बृहत्**=सदा वृद्धि को प्राप्त होनेवाले **सुवीरम्**=उत्तम वीर सन्तान को प्राप्त कराते हैं तथा **अनपच्युतं सहः**=शत्रुओं से आक्रान्त न किये जा सकनेवाले बल को देते हैं।

भावार्थ—हम कर्त्तव्य कर्मों में तत्पर होकर, काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करते हुए, प्रभु की सच्ची उपासना करें। प्रभु हमें महनीय ऐश्वर्य, स्फूर्ति, उत्तम सन्तान तथा शत्रु-विनाशक बल प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्य-कवि

वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥ ७ ॥

(१) **अग्रुः**=आगे और आगे बढ़ने की वृत्तिवाला **जनिवान्**=शक्तियों के विकासवाला यह **वा**=निश्चय से **स्पृधः**=शत्रुओं को **अतिवेति**=लाँघ जाता है। काम-क्रोध आदि शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता। यह **समर्यता**=इन शत्रुओं के साथ संग्राम की कामनावाले **मनसा**=मन से **सूर्यः**=निरन्तर गतिवाला व **कविः**=क्रान्तदर्शी बनता है। काम-क्रोध आदि के विनाश से ही शरीर में शक्ति के कारण गति बनी रहती है और मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति हो पाती है। (२) **अस्माकम्**=हमारे में से जो भी व्यक्ति **स्वावसुः**=आत्मधनवाला बनता है वह **घ्रंसं परि रक्षन्तम्**=दिनों का परि रक्षण करते हुए, अर्थात् दीर्घायुष्य का कारण बनते हुए, **विश्वतः गयम्**=सब ओर से प्राणशक्ति के साधक **शर्म**=गृह को **वनवत्**=प्राप्त करता है (गयाः प्राणाः श० १४।८।१५।७) आत्मा को ही

हम मुख्य धन समझेंगे तो भौतिकवृत्ति से बचेंगे। इस वैषयिक वृत्ति से बचने का यह परिणाम होगा कि हम (क) दीर्घायुष्य को प्राप्त करेंगे, (ख) हमारी प्राणशक्ति क्षीण न होगी।

भावार्थ—हम वासनाओं के साथ संग्राम करते हुए गतिशील व ज्ञानी (सूर्य-कवि) बनें। 'आत्मा' को मुख्य धन समझें। परिणामतः 'दीर्घ व प्राणशक्ति-सम्पन्न' जीवनवाले होंगे।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

क्रियाशील ज्ञानी पुरुष द्वारा प्रभु स्तवन

ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत्॥ ८॥

(१) **अस्य**=इस **यतुनस्य**=यत्नशील पुरुष के **केतुना**=ज्ञान से, अर्थात् यत्नशील व ज्ञानी बनकर यह **ज्यायांसम्**=अतिप्रशस्त (प्रशस्य को ज्य आदेश है) **ऋषिस्वरम्**=ऋषियों-सी की जानेवाली स्तुति को **चरति**=करता है। उन ऋषि स्तुतियों को यह करता है **यासु**=जिन में **ते नाम**=तेरे प्रति नमन होता है। नम्रता की भावना से युक्त स्तुतियों में यह प्रवृत्त होता है। (२) इस स्तोता का मन **यादृश्मिन् धायि**=जैसी कामना में स्थापित होता है, **तम्**=जो **अपस्यया**=कर्मों में लगने की वृत्ति से **विदत्**=प्राप्त करता है। यह स्तोता उस-उस कामना को क्रियाशील बनकर पूर्ण कर पाता है। इस प्रकार **यः**=जो **उ**=निश्चय से **स्वयं वहते**=अपने कर्त्तव्य कर्मों का अपने आप धारण करता है, **सः**=वही **अरं करत्**=अपने को अलंकृत करनेवाला होता है। अर्थात् क्रियाशीलता ही जीवन को सद्गुणों से सुभूषित करती है।

भावार्थ—यत्नशील व ज्ञानी बनकर हम नम्रता से प्रभु का स्तवन करें। पुरुषार्थ से सब कामनाओं को सिद्ध करनेवाले हों। क्रियाशील बनकर जीवन को सद्गुणों से अलंकृत करें।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

पूतबन्धनी मति

समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी॥ ९॥

(१) **आसाम्**=गतमन्त्र में संकेतित स्तुतियों में **अग्रिमा**=(अल्पेतं श्रेष्ठा) अतिशयेन श्रेष्ठ स्तुति **समुद्रम्**=उस आनन्दमय प्रभु के समीप **अवतस्थे**=स्थित होती है। **यस्मिन्**=जिस भी पुरुष में **आयता**=इस स्तुति का विस्तार होता है, उसमें **सवनम्**=यज्ञ **न रिष्यति**=हिंसित नहीं होता। अर्थात् प्रभु का स्तवन करनेवाला व्यक्ति सदा यज्ञशील होता है। वस्तुतः इन यज्ञादि कर्मों का करना ही सच्चा स्तवन होता है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'। (२) **अत्रा**=इस स्तुति के होने पर **श्रवणस्य**=इस स्तुतिकर्ता का **हार्दि**=हृदयगत प्रभु प्राप्ति का भाव **न रेजते**=विचलित नहीं होता। इसे प्रभु प्राप्ति की कामना सदा बनी ही रहती है। **यत्रा**=जिस प्रभु प्राप्ति की कामना में **मतिः**=बुद्धि **पूतबन्धनी**=सदा पवित्र विचारों को अपने में बाँधनेवाली **विद्यते**=होती है। प्रभु प्राप्ति की कामना बनी रहने पर बुद्धि सदा पवित्र विचारों को ही करनेवाली होती है इसका झुकाव वैषयिक बातों की ओर नहीं रहता।

भावार्थ—हम सदा प्रभु स्तवन की रुचिवाले बनें। ऐसा बनने पर हम यज्ञों के प्रति रुचिवाले व बुद्धि से पवित्र विचारों को करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'क्षत्र-मनस-एवावद-यजत-सध्रि-अवत्सार'

स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम्॥ १०॥

(१) **सः**=वह प्रभु **हि**=ही **विदुषा चित्**=ज्ञानी पुरुषों से भी **अर्ध्यम्**=अपने अन्दर समृद्ध करने योग्य **शविष्ठं वाजम्**=खूब क्रियाशील (शवतिर्गतिकर्मा) शक्ति को उपासक में (स्पृणोति=grant, bestow) भरता है। प्रभु उपासक को ज्ञानी व शक्ति सम्पन्न बनाता है। (२) हम सब इस प्रकार प्रभु उपासना के द्वारा **क्षत्रस्य**=क्षतों से त्राण करनेवाले रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले, **मनसस्य**=विचारशील, **एवावदस्य**=सदा सत्य बोलनेवाले, जैसी चीज है वैसा ही कहनेवाले, **यजतस्य**=यज्ञशील, **सध्रेः**=सब के साथ मिलकर चलनेवाले, **अवत्सारस्य**=सारभूत सोम शक्ति का रक्षण करनेवाले पुरुष के **रण्वभिः**=रमणीय **चित्तिभिः**=विचारों के साथ उस बल को (शविष्ठं वाजम्) **स्पृणवाम**=अपने में पूरित करें (पूरयाम सा०)। हम रमणीय विचारोंवाले व बलशाली बनकर 'क्षत्र, मनस, एवावद, यजत, सध्रि व अवत्सार' बनें। ऐसा बनना ही हमारे जीवन का लक्ष्य हो। यदि हम प्रभु स्तवन करते हुए ऐसा नहीं बनते, तो अवश्य हमारे स्तवन में कहीं न कहीं त्रुटि है।

भावार्थ—हम प्रभु स्तवन से शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करके (क) सबका रक्षण करनेवाले हों, (ख) विचारशील हों, (ग) सत्य बोलें, (घ) यज्ञशील हों, (ङ) सब के साथ मिलकर चलें, (च) शक्ति का रक्षण करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'विषाण-परिवान' प्रभु

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते॥ ११॥

(१) **आसाम्**=इन प्रजाओं में **श्येनः**=शंसनीय गतिवाला पुरुष **अदितिः**=(अ-दिति) अखण्डित स्वास्थ्यवाला होता है। **कक्ष्यः**=उत्तम कटिबन्धनवाला, अर्थात् दृढ़ निश्चयी होता है। (one who has girded up to one's loins) **मदः**=आनन्दमय जीवनवाला होता है। (२) ये व्यक्ति **विश्ववारस्य**=सब से वरने के योग्य **यजतस्य**=पूज्य **मायिनः**=प्रज्ञावाले प्रभु के **एतवे**=प्राप्त करने के लिये **अन्यं अन्यम्**=एक दूसरे को **समर्थयन्ति**=समर्थित करते हैं। प्रेरणा आदि के द्वारा परस्पर प्रभु प्राप्ति के लिये सहायक होते हैं। **ते**=वे परस्पर प्रभु प्रेरणा को देनेवाले व्यक्ति **विषाणम्**=(वि-सन्) उस सब सुखों के दाता **परिपानम्**=सर्वतः रक्षक प्रभु को **अन्तिविदुः**=समीप ही, हृदयों में, जान पाते हैं।

भावार्थ—हम शंसनीय गतिवाले, स्वस्थ, दृढ़ निश्चयी व प्रसन्न वृत्तिवाले बनकर परस्पर प्रभु प्राप्ति के लिये एक दूसरे को प्रेरित करनेवाले हों। प्रभु हमें सब सुखों के देनेवाले हैं तथा हमारे रक्षक होते हुए हमारे ही हृदयों में ही स्थित हैं।

ऋषिः—अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—जगती ॥
स्वरः—निषादः ॥

उभा स वरा प्रत्येति

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥ १२ ॥

(१) **सदापृणः**=हमेशा दान की वृत्तिवाला, **यजतः**=यज्ञशील पुरुष **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को **विवधीत्**=सुदूर विनष्ट करता है। **बाहुवृक्तः**=(बाह प्रयत्ने) भुजाओं से कर्मों में व्यापृत हुआ-हुआ वासनाओं को छिन्न करनेवाला होता है। **श्रुतवित्**=ज्ञान का वेत्ता, अतएव **तर्यः**=वासनाओं को तैर जानेवाला, **वः सचा**=तुम सबके साथ मिलकर चलनेवाला होता है। (२) **सः**=वह **उभा वरा**=दोनों 'अभ्युदय व निःश्रेयस' रूप श्रेष्ठ वस्तुओं की ओर **प्रत्येति**=आता है **च**=और **भाति**=दीप्त होता है। 'इहलोक व परलोक' दोनों का समन्वय उसके जीवन को दीप्त बना देता है। **यद्**=जब कि यह **ईम्**=निश्चय से **सुप्रयावभिः**=उत्तम कर्मों के द्वारा **गणम्**=इन्द्रियादि के गणों का **भजते**=सेवन करता है। उत्तम कर्मों से अपनी सब इन्द्रियों को ठीक बनाते हुए ये लोग इहलोक के अभ्युदय व परलोक के निःश्रेयस को सिद्ध करते हैं।

भावार्थ—हम दानशील, यज्ञशील, पुरुषार्थी व ज्ञानी बनकर इन्द्रियों को प्रशस्त बनाते हुए 'अभ्युदय व निःश्रेयस' को सिद्ध करें।

ऋषिः—अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—विराट्जगती ॥
स्वरः—निषादः ॥

सुतम्भरः-सत्पतिः

सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥ १३ ॥

(१) जो व्यक्ति **यजमानस्य**=सृष्टि यज्ञ के प्रवर्तक उस महान् प्रभु के **सुतम्भरः**=यज्ञों का भरण करता है और **सत्पतिः**=उत्तम कर्मों का रक्षक है, **सः**=वह **विश्वासाम्**=सब **धियाम्**=बुद्धियों का **ऊधः**=उसी प्रकार आधार बनता है, जैसे कि गौ का **ऊधस्**=दुग्ध का आधार है। यह इन बुद्धियों का **उदञ्चनः**=(ऊर्ध्वं उद् गमयिता सा०) उद्गमन करनेवाला होता है। (२) **धेनुः**=ज्ञानदुग्धदात्री इस वेदवाणीरूप गौ का यह **भरत्**=भरण करता है। यह उस धेनु के **रसवत् पयः**=रसयुक्त दूध का **शिश्रिये**=सेवन करता है ज्ञानदुग्ध का पान करता है। **अनुब्रुवाणः**=सदा इसका उच्चारण करता हुआ **अध्येति**=इसका स्मरण करता है। **न स्वपन्**=इस अध्ययन कार्य में यह कभी सोता नहीं, अप्रमत्त होकर नियमपूर्वक इसका अध्ययन करता है।

भावार्थ—प्रभु भक्त यज्ञों को करता हुआ अपनी बुद्धियों को उत्कृष्ट करने का प्रयत्न करता है। वेदवाणी के अध्ययन में कभी प्रमाद नहीं करता।

ऋषिः—अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

यो जागार

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १४ ॥

(१) **यः जागार**=जो गतमन्त्र के अनुसार इन ज्ञान की वाणियों के अध्ययन में 'न स्वपन्' न प्रमाद करता हुआ सदा जागरित होता है, सदा सावधान (जागरूक) होता है, **तम्**=उसको **ऋचः**=सब विज्ञान की वाणियाँ **कामयन्ते**=चाहती हैं, वही सब विज्ञानों को प्राप्त करता है। **यः जागार**=जो जागता है, **तं उ**=उसको ही **सामानि यन्ति**=सब उपासनाएँ प्राप्त होती हैं (सामवेद=उपासना वेद), अर्थात् जागरूक होकर अपने कर्त्तव्य कर्मों को करनेवाला व्यक्ति ही सच्चा उपासक होता है। (२) **यः जागार**=जो जागता है **तम्**=उसे **अयं सोमः**=ये शान्त प्रभु **आह**=कहते हैं कि **अहम्**=मैं **तव सख्ये**=तेरी मित्रता में **न्योकाः**=निश्चित निवासवाला हूँ। आलसी के प्रभु मित्र नहीं होते।

भावार्थ—जागरूकता में ही विज्ञान की प्राप्ति है, इसी में सच्ची उपासना है। जागरूक के ही प्रभु मित्र होते हैं।

ऋषिः—**अवत्सारः काश्यप अन्ये च दृष्टलिङ्गाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥
स्वरः—**धैवतः** ॥

अग्निः जागार

अ॒ग्निर्जा॑गार॒ तमृचः॑ कामयन्ते॒ऽग्निर्जा॑गार॒ तमु॒ सामा॑नि यन्ति।
अ॒ग्निर्जा॑गार॒ तम॒यं सोम॑ आह॒ तवा॒हम॑स्मि स॒ख्ये न्यो॑काः ॥ १५ ॥

(१) **अग्निः जागार**=प्रगतिशील जीव ही जागरित है। संसार का नियम है या उन्नति अथवा अवनति (either progress or regress) जागरूक पुरुष अवनति के मार्ग पर न जाकर सदा उन्नति के मार्ग पर चलेगा। एवं यह अग्नि होगा। यह अग्नि सदा जागता है। **तम्**=उस अग्नि को **ऋचः**=सब विज्ञान **कामयन्ते**=चाहते हैं, इस अग्नि को ही सब विज्ञान प्राप्त होते हैं। (२) **अग्निः जागार**=यह अग्नि ही जागता है, प्रमत्त ही अवनति के मार्ग पर जाया करता है। **तम्**=उस अग्नि को **उ**=ही **सामानि**=सब उपासनाएं **यन्ति**=प्राप्त होती हैं। अग्नि ही प्रभु का सच्चा उपासक होता है। (३) **अग्निः जागार**=प्रगतिशील जीव ही जागरित है। **तम्**=उसे **अयं सोमः**=ये शान्त प्रभु **आह**=कहते हैं कि **अहम्**=मैं तब **सख्ये**=तेरी मित्रता में **न्योकाः**=निश्चित निवासवाला **अस्मि**=हूँ तेरा ही मैं स्थिर मित्र हूँ।

भावार्थ—जो जागरूक होता है वह अवश्य उन्नतिपथ पर बढ़ता हुआ विज्ञान, उपासना व प्रभु की मित्रता को प्राप्त करता है।

यह प्रभु का मित्र सदापृण=सदा देनेवाला बनता है। इस निरन्तर त्याग से पवित्र जीवनवाला बना हुआ यह 'आत्रेय' होता है, त्रिविध कष्टों से दूर। यह प्रार्थना करता है कि—

अथ चतुर्थोऽनुवाकः

४५. [पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सनया व स्वाध्या

वि॒दा दि॒वो वि॒ष्यन्नद्रि॑मु॒क्थैरा॑य॒त्या उ॒षसो॑ अ॒र्चिनो॑ गुः।
अपा॑वृत व्र॒जिनी॒रुत्स्व॑र्गा॒द्वि दुरो॒ मानु॑षीर्दे॒व आवः॑ ॥ १ ॥

(१) **उक्थैः**=स्तोत्रों के द्वारा **अद्रिम्**=अविद्या पर्वत को **विष्यन्**=दूर फेंकता हुआ (अस्यति)

अथवा अविद्या पर्वत का अन्त करता हुआ (षोऽन्तकर्मणि) **दिवः विदा**=ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करता है। **आयत्याः उषसः**=प्रत्येक आनेवाली उषा की **अर्चिनः**=रश्मियाँ **गुः**=उस स्वाध्यायशील व्यक्ति को प्राप्त होती हैं। प्रति दिन प्रातः उठकर स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए, उससे ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होना आवश्यक है। (२) यह व्यक्ति **व्रजिनीः**=तमः पुञ्जवाली, अर्थात् अज्ञाननिद्रावृत इन्द्रियों को **अपावृत**=अज्ञान के आवरण से पृथक् करता है। इसके जीवन में **स्वः**=प्रकाश **उद्गात**=उदित होता है। यह **देवः**=प्रकाशमय जीवनवाला बनकर **मानुषीः दुरः**=मनुष्य सम्बन्धी इन इन्द्रिय द्वारों को **वि आवः**=अन्धकार के घेरे से बाहिर करता है, अज्ञान के परदों से बाहिर ले आता है।

भावार्थ—हमें प्रातः उठकर उपासना से अविद्या पर्वत को विनष्ट करने के लिये यत्न करना चाहिये। स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करना चाहिए।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अमति-श्री (रूप-ऐश्वर्य)

वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात्।
धन्वर्णसो नद्य१: खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥ २ ॥

(१) **सूर्यः**=निरन्तर गतिशील पुरुष **अमतिं न**=रूप की तरह **श्रियम्**=ज्ञानैश्वर्य को **वि सात्**=विशेषरूप से सेवित करता है। तेजस्विता से सम्पन्न शरीर रूप वाला प्रतीत होता है और इसका मस्तिष्क ज्ञान सम्पन्न होता है। **ऊर्वात्**=इन्द्रिय समूह से **गवां माता**=ये ज्ञान की वाणियों का निर्माण करनेवाली वेदवाणी **जानती**=इसे ज्ञान सम्पन्न करती हुई **आगात्**=प्राप्त होती है। अर्थात् इसकी इन्द्रियाँ निरन्तर स्वाध्याय प्रवृत्त होकर इसके ज्ञान को बढ़ानेवाली होती हैं। (२) **धन्वर्णसः**=(धन्वन्ति गच्छन्ति) ज्ञान-जलों के प्रवाहवाली **नद्यः**=ज्ञान-नदियाँ **खादो अर्णाः**=शत्रुभक्षक ज्ञानजलवाली होती हैं। ज्ञान से वासनारूप शत्रुओं का विनाश तो होता ही है। इस प्रकार ज्ञान नदियों के प्रवाहों के होने पर **स्थूणा इव**=गृह के आधारभूत स्तम्भ की तरह **सुमिता**=अच्छी प्रकार निर्मित हुआ-हुआ **द्यौः**=मस्तिष्करूप द्युलोक **दृंहत**=दृढ़ होता है। यह मस्तिष्क जीवन का आधार बनता है।

भावार्थ—हम निरन्तर गतिशील बनकर तेजस्विता व ज्ञानैश्वर्य का सम्पादन करें। यह ज्ञान वासनाओं का विनाश करेगा और हमारे मस्तिष्क रूप द्युलोक को दृढ़ बनायेगा।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अविद्या पर्वत का विचलन

अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥ ३ ॥

(१) **अस्मै**=इस **महीनां जनुषे**=महनीय स्तुतियों के उत्पन्न करनेवाले **उक्थाय**=स्तोता के लिये **पर्वतस्य**=अविद्या पर्वत का **गर्भः**=मध्य भाग, मध्य भाग ही क्या? **पर्वतः**=अविद्या पर्वत ही **विजिहीत**=विचलित हो जाता है। **पूर्व्याय**=पूर्व विद्वानों के उपदेश से इस स्तोता का अज्ञान नष्ट हो जाता है। जब हम प्रभु की स्तुति की वृत्तिवाले बनते हैं तो हमारा अज्ञान नष्ट होने लगता है और प्रकाश की वृद्धि होती चलती है। यह अज्ञान के नष्ट होने का प्रारम्भ ही यहाँ 'अविद्या पर्वत के गर्भ का हिलना' कहलाया है तथा धीमे-धीमे यह पर्वत ही विचलित हो जाता है। (२)

इस स्तोता के लिये **द्यौः साधत**=प्रकाश सिद्ध होता है। **आविवासन्तः**=सदा प्रभु की परिचर्या करते हुए ये लोग **भूम**=खूब ही **दसयन्त**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं का विनाश करते हैं।

भावार्थ—स्तोता के लिये अविद्या पर्वत का विनाश होकर प्रकाश प्राप्त होता है। इस प्रकाश में काम-क्रोध आदि का विलोप हो जाता है।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'इन्द्र-अग्नि' का स्तवन

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति॥ ४॥

(१) 'इन्द्र' बल का प्रतीक है, 'अग्नि' प्रकाश था। मैं **नु**=अब **इन्द्रा अग्नी**=इन्द्र व अग्नि को **देवजुष्टैः**=देवों से सेवित **वः**=आपके, इन्द्राग्नी के **सूक्तेभिः वचोभिः**=उत्तम स्तुति-वचनों से **हुवध्यै**=पुकारता हूँ। **अवसे**=अपने रक्षण के लिये मैं इन्द्र और अग्नि का आराधन करता हूँ। शक्ति व प्रकाश ही जीवन की रक्षा के लिये आवश्यक तत्त्व हैं। (२) **उक्थेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा **आविवासन्तः**=परिचर्या करते हुए **कवयः**=ज्ञानी, **सुयज्ञाः**=उत्तम यज्ञोंवाले लोग **मरुतः**= प्राणसाधक अथवा मितरावी पुरुष **हि ष्मा**=निश्चय से **जयन्ति**=इन्द्र और अग्नि का अपने साथ सम्पर्क करते हैं। मस्तिष्क को ज्ञान प्राप्ति में लगाना, हाथों का यज्ञों में प्रवृत्त रखना, मन को प्राणसाधना से स्थिर करना ही मार्ग है जिससे कि हम अपने जीवनों में शक्ति व प्रकाश को भरते हैं।

भावार्थ—'हम 'कवि, सुयज्ञ व मरुत्' बनकर अपने जीवनों को शक्ति व प्रकाश से परिपूर्ण करते चलें' यही अपने रक्षण का मार्ग है।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

क्या करें, किधर चलें?

एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ॥ ५॥

(१) **नु**=अब, **अद्य**=आज **एत उ**=आओ ही, **सुध्यः**=उत्तम ध्यानवाले व उत्तम बुद्धियोंवाले **भवाम**=हों **दुच्छुना**=दुरितों को (टु=शुन=गतौ) दुष्ट आचरणों को **वरीयः**=अत्यन्त **प्र मिनवाम**=नष्ट कर डालें। दुरितों को अपने से दूर भगा दें। (२) **द्वेषांसि**=द्वेष की भावनाओं को **आरे**=सुदूर **सनुतः**=अन्तर्हित रूप में **दधाम**=स्थापित करें, ये हमारे तक लौट ही न सकें। इस प्रकार निर्द्वेष होकर **यजमानं अच्छ**=उस सृष्टि यज्ञ के महान् होता प्रभु की ओर **प्राञ्चः**=आगे और आगे बढ़ते हुए **अयाम**=गतिवाले हों।

भावार्थ—सुधी बनकर बुराइयों को दूर करें। द्वेषों को परे फेंक कर प्रभु की ओर चलें।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्॥ ६॥

(१) हे **सखायः**=मित्रो! **एता**=आओ, **धियं कृणवाम**=हम बुद्धि का सम्पादन करें।

या=जो बुद्धि मातान्=ज्ञान का निर्माण करनेवाले गोः व्रजम्=ज्ञानेन्द्रिय समूह को अप ऋणुत=वासना के आवरण से दूर करती है। वासना के आवरण के हटने पर ही इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति का साधन बनती हैं। (२) हम उस बुद्धि का सम्पादन करें यया=जिससे कि मनुः=ज्ञानी पुरुष विशिशिप्रम्=वृत्र को, सदा हनुओं में, जबड़ों में ही प्रविष्ट, हर समय खान-पान की वृत्तिवाली इस वासना को जिगाय=पराजित करता है। यया=जिस बुद्धि से वङ्कुः=गतिशील वणिक्=व्यवहारी पुरुष पुरीषम्=पालक व पूरक धन को आप=प्राप्त करता है।

भावार्थ—उस बुद्धि का हम सम्पादन करें जिससे कि ब्राह्मण बनकर ज्ञानेन्द्रिय समूह को वासना के आवरण से रहित करके हम ज्ञानवृद्धि को करें, क्षत्रिय होते हुए वासनारूप शत्रुओं को पराजित करें, तथा वैश्य होते हुए पुरुषार्थ से धन का सम्पादन करें।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

हस्त-यतः अद्रिः अनूनोत्

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार॥ ७॥

(१) **अत्र**=यहाँ इस जीवन में **हस्तयतः**=संयत हाथोंवाला, अर्थात् संयमपूर्वक कर्मों को करनेवाला **अद्रिः**=उपासक (one who adores) **अनूनोत्**=प्रभु का स्तवन करता है। स्तोता के सब कार्य बड़े संयमपूर्वक किये जाते हैं। यह संयमपूर्वक कार्यों को करना वह मार्ग है **येन**=जिससे **नवग्वाः**=स्तुत्य गतियोंवाले **दश मासः**=दसों इन्द्रियों से उस-उस कर्त्तव्य को मापनेवाले, नपे-तुले कार्यों को करनेवाले, **आर्चन्**=प्रभु की अर्चना करते हैं। (२) इन उपासकों की **सरमा**=सब ज्ञानों में विचरण करनेवाली बुद्धि **ऋतं यती**=सत्यमार्ग पर चलती हुई, सत्य की ओर जाती हुई, **गाः अविन्दत्**=ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करती है। **अंगिराः**=यह अंग-प्रत्यंग में रसवाला उपासक **विश्वानि सत्या चकार**=अपने सब कर्मों को इस बुद्धि के द्वारा सत्ययुक्त करता है, इसका कोई कर्म असत्य नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु की उपासना संयमयुक्त कर्मों द्वारा होती है। इन उपासकों की बुद्धि सत्यज्ञान को प्राप्त करती हुई, इनके सब कर्मों को भी सत्य कर देती है।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उषा का उदय व स्वाध्याय

विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः॥ ८॥

(१) **विश्वे**=सब **अंगिरसः**=गतिशील पुरुष (अगि गतौ) **अस्याः**=इस **माहिनायाः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उषा के **व्युषि**=उदित होने पर अन्धकार को दूर करने पर **यद्**=जब **गोभिः**=ज्ञान की वाणियों से **सं नवन्त**=संगत होते हैं, तो **आसाम्**=इन ज्ञानवाणियों का **उत्सः**=ज्ञानदुग्ध का उत्स्राव (बहाव) इन अंगिरसों को **परमे सधस्थे**=सर्वोत्कृष्ट सहस्थान में, परमात्मा व जीवात्मा के मिलकर रहने के स्थान में ले जानेवाला होता है। अंगिरा लोग प्रातः उठकर स्वाध्याय में प्रवृत्त होते हैं। यह स्वाध्याय उन्हें प्रभु के समीप प्राप्ति में सहायक होता है। (२) इन अंगिरसों की **सरमा**=बुद्धि **ऋतस्य पथा**=ऋत के मार्ग से **गाः**=इन ज्ञानवाणियों को **विदत्**=प्राप्त करती है। 'ऋत का पथ' यही है कि सब कार्यों को सूर्य व चन्द्रमा की गति के अनुसार नियम से करना।

यह नियमितता हमारी बुद्धि को तीव्र बनाती है और हमें ज्ञान के उपादान में क्षम करती है।

भावार्थ—हम उषा के होते ही स्वाध्याय प्रवृत्त होकर, सब कार्यों को नियमित गति से करते हुए, ज्ञान प्राप्ति में लगें।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'स्वाध्याय व सोमरक्षण' द्वारा दीप्त जीवन

आ सूर्यो॑ यातु स॒प्ताश्वः॒ क्षेत्रं॒ यद॑स्योर्वि॒या दीर्घया॒थे ।
र॒घुः श्ये॒नः प॑तय॒दन्धो॒ अच्छा॒ युवा॑ क॒विर्दी॑दय॒द् गोषु॒ गच्छ॑न् ॥ ९ ॥

(१) **सप्ताश्वः**=सर्पणशील (क्रियाशील) इन्द्रियाश्वोंवाला **सूर्यः**=यह गतिशील पुरुष **आयातु**=प्रभु के समीप प्राप्तिवाला हो। **यद्**=जब **अस्य**=इसका **क्षेत्रम्**=ज्ञान का क्षेत्र **उर्विया**=विस्तृत और विस्तृत होता जाता है। **दीर्घयाथे**=इस लम्बी जीवन-यात्रा में, दीर्घजीवन में यह **रघुः**=शीघ्रगतिवाला होता है और **श्येनः**=शंसनीय गतिवाला होता है। यह स्फूर्तिमयी उत्तम गति उसे प्रभु के समीप प्राप्त कराती है। (२) **अन्धः अच्छा**=शरीरस्थ सोमशक्ति की ओर **पतयत्**=गतिवाला होता हुआ यह **युवा**=दोषों को अपने से दूर करनेवाला व अच्छाइयों को अपने से मिलानेवाला होता है। **कविः**=क्रान्तदर्शी होता हुआ, **गोषु गच्छन्**=ज्ञान की वाणियों में गति करता हुआ, स्वाध्याय में प्रवृत्त होता हुआ यह **दीदयत्**=दीप्त होता है। दीप्त जीवनवाला बनकर ही तो यह उस दीप्त प्रभु को प्राप्त करेगा।

भावार्थ—हम स्वाध्याय द्वारा उत्तरोत्तर अपने ज्ञान को बढ़ायें। सोमरक्षण द्वारा उत्तम बुद्धि व गतिवाले होकर दीप्त जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः**: ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'क्रियाशीलता व अन्तर्मुखी वृत्ति' द्वारा ज्ञान प्राप्ति

आ सूर्यो॑ अरुहच्छु॒क्रमर्णोऽयु॑क्त॒ यद्ध॒रितो॑ वी॒तपृ॑ष्ठाः ।
उ॒द्ना न नाव॑मनयन्त॒ धीरा॑ आशृ॒ण्वतीरापो॑ अर्वागतिष्ठन् ॥ १० ॥

(१) **सूर्यः**=यह गतिशील पुरुष **शुक्रम्**=शुद्ध **अर्णः**=ज्ञानजल पर **आ अरुहत्**=आरूढ़ होता है, अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञान का अधिष्ठाता बनता है। इसलिये ज्ञान को प्राप्त कर पाता है, **यत्**=क्योंकि **वीतपृष्ठाः**=कान्त पृष्ठवाले, तेजस्वी, **हरितः**=इन्द्रियाश्वों को **अयुक्त**=यह शरीर-रथ में जोतता है। इन्द्रियों को निर्मल बनाकर क्रियाशील बने रहें, तो ज्ञानेन्द्रियाँ हमें उत्कृष्ट ज्ञान को क्यों न प्राप्त करायेंगी? (२) **उद्ना न नावम्**=जैसे उदक के हेतु से, पानी को पार करने के हेतु से **नावम्**=नाव को **अनयन्त**=प्राप्त कराते हैं, इसी प्रकार **धीराः**=ज्ञान में रमण करनेवाले लोग (धिवि रमते) तेजस्वी इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में प्राप्त कराते हैं। इनके द्वारा ही वे ज्ञान को प्राप्त करनेवाले होते हैं। इस प्रकार ज्ञान प्रवृत्तिवाले **आपः**=लोग (आपो वै नरसूनवः) **आशृण्वतीः**=हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणाओं को सुनते हुए, **अर्वाग् अतिष्ठन्**=अन्तर्मुख वृत्तिवाले होकर ठहरते हैं। ये सदा ध्यान की वृत्तिवाले बनकर ही तो वस्तुतः ज्ञान को प्राप्त कर पाते हैं।

भावार्थ—हम गतिशील बनकर निर्मल इन्द्रियों को शरीर-रथ में जोतनेवाले बनें। इस प्रकार क्रियाशील बनकर ही हम ज्ञान को प्राप्त कर पायेंगे। अन्तर्मुखी वृत्ति भी इस ज्ञान प्राप्ति में सहायक होती है।

ऋषिः—**सदापृण आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उत्कृष्ट बुद्धि

धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥ ११ ॥

(१) मैं **वः**=तुम्हारे लिये **अप्सु**=कर्मों में **स्वर्षाम्**=प्रकाश को देनेवाली **धियम्**=बुद्धि को **दधिषे**=धारण करता हूँ उस बुद्धि को देता हूँ जो कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक करने में समर्थ होती है। उस बुद्धि को मैं तुम्हारे लिये देता हूँ **यया**=जिससे कि **नवग्वाः**=स्तुत्य गतिवाले (नु स्तुतौ) **दशमासः**=दस इन्द्रियों को (मीयन्ते विषयाः यैः) **अतरन्**=तैर जाते हैं। इस बुद्धि के द्वारा, मनीषा के द्वारा मन का शासन करते हुए वे इन्द्रियों का दमन कर पाते हैं। (२) **अया धिया**=इस बुद्धि के द्वारा हम **देवगोपाः**=दिव्यगुणों के रक्षक हों और **अया धिया**=इस बुद्धि के द्वारा **अंहः**=पाप को **अतितुतुर्याम**=तैर जाएँ। बुद्धि हमें दिव्य गुणों के रक्षण के योग्य बनायेगी और पापों से हमें पार करेगी।

भावार्थ—प्रभु हमें कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेकक्षम बुद्धि देते हैं। इससे हम (क) इन्द्रियों को वश में कर पाते हैं, (ख) दिव्य गुणों का रक्षण करते हैं और (ग) पाप से पार हो जाते हैं।

इस बुद्धि के द्वारा सब पापों से मोर्चा लेनेवाले व उनसे मुकाबिला करनेवाले हम 'प्रतिक्षत्र' बनते हैं। 'प्रतिक्षत्र' बनकर 'आत्रेय' तो होते ही हैं, 'काम-क्रोध-लोभ' तीनों से दूर। इस प्रतिक्षत्र का जीवन इस प्रकार का होता है—

४६. [षट्चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रतिक्षत्र आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

निरन्तर क्रियाशीलता

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥ १ ॥

(१) **विद्वान्**=ज्ञानी पुरुष **हयः न**=गतिशील अश्व के समान स्वयं **धुरि अयुजि**=अपने आप प्रसन्नता से कार्य में युक्त होता है। कार्यधुरा में अपने को प्रसन्नतापूर्वक जोतता है। मैं भी **ताम्**=उस कार्यधुरा को **वहामि**=धारण करता हूँ। यह **प्रतरणीम्**=मुझे तरानेवाली है और **अवस्युवम्**=मेरे रक्षण की कामनावाली है। (२) मैं **अस्याः**=इस कर्त्तव्य धुरा के **न विमुचम्**=न तो खोलने को व न पुनः **आपृतम्**=ना ही फिर-फिर धारण करने को **वश्मि**=चाहता हूँ। बारम्बार कार्य को छोड़ देना व फिर शुरु करना मैं नहीं चाहता। मैं तो कर्त्तव्यकर्म को करता ही हूँ। **विद्वान्**=वह ज्ञानी प्रभु **पुरः एता**=हमारा पुरतो गन्ता होता है, मार्गदर्शक होता है और वह **पथः**=मार्गों को **अजु**=(अकुटिलं यथा स्यात्तथा) अकुटिलता के साथ **नेषति**=प्राप्त कराता है। अर्थात् हमें सरल मार्गों से ले चलता है।

भावार्थ—निरन्तर कर्त्तव्यकर्मों में लगे रहना ही विषय-वासनाओं के समुद्र से तैरने व अपना रक्षण करने का मार्ग है। प्रभु ही हमारे मार्ग-दर्शक हों, हमें छलछिद्र शून्य सरल जीवन को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**प्रतिक्षत्र आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'सबल व ज्ञान प्रधान' जीवन

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=प्रकाशस्वरूप, **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन्, **वरुण**=पापनिवारक, **मित्र**=प्रमीति (मृत्यु) से बचानेवाले प्रभो! **देवाः**=हे दिव्य वृत्तिवाले पुरुषो! **शर्धः**=बल को **प्रयन्त**=(प्रापयत) प्राप्त कराओ। **मारुत**=हे प्राणसमूह, **उत**=और **विष्णो**=सर्वव्यापक प्रभो! आप हमारे लिये बल को दीजिये। वास्तविक शक्ति लाभ के लिये 'अग्नि' आदि नामों से सूचित भावनाओं को अपने में धारण करना आवश्यक है। हम आगे बढ़ने की वृत्तिवाले हों दिन व दिन अपने प्रकाश को बढ़ायें (अग्नि), जितेन्द्रिय बनें (इन्द्र), पापों से दूर हों (वरुण), नीरोग बनें (मित्र) दिव्य भावनाओंवाले हों (देवाः), प्राणसाधना करें (मारुत) और हृदय को कुछ विशाल बनायें (विष्णु)। यही शक्ति प्राप्ति का मार्ग है। (२) **उभा नासत्या**=दोनों अश्विनी देव, प्राण और अपान **जुषन्त**=हमारे साथ प्रीतिवाले हों, अर्थात् हम प्राणसाधना करें। **रुद्रः**=सब रोगों को दूर भगानेवाला प्रभु हमारे साथ प्रीतिवाला हो, हम पूर्ण नीरोग बनें। **अध**=अब **ग्नाः**=ये छन्दोमयी वेदवाणियाँ हमारे लिये प्रीतिवाली हों, हम इनके स्वाध्याय में रुचिवाले हों। **पूषा भगः**=पोषक ऐश्वर्य हमारे प्रति प्रीतिवाला हो, अर्थात् हम उतना धन अवश्य प्राप्त करें जो हमारे पोषण के लिये आवश्यक हो। **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठातृ देवता हमारे प्रति प्रीतिवाली हो। हमारा जीवन ज्ञान प्रधान हो।

भावार्थ—हम अग्नि आदि देवों की भावना को जीवन में धारण करते हुए सबल बनें। प्राणायाम के द्वारा नीरोग व ज्ञान-सम्पन्न बनें। पोषण के लिये पर्याप्त धन का अर्जन करते हुए ज्ञानप्रधान जीवनवाले हों।

ऋषिः—**प्रतिक्षत्र आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सत्रह देवों का आह्वान

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये॥ ३॥

(१) मैं **ऊतये**=अपने रक्षण के लिये **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवों को **हुवे**=पुकारता हूँ। इन्द्र की उपासन करता हुआ अपने को सबल बनाता हूँ, अग्नि की उपासना से अपने जीवन को प्रकाशमय। इन्द्राग्नी की उपासना के बाद मैं **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुण को पुकारता हूँ। सामाजिक जीवन में 'मित्र' की उपासना करता हुआ सब के प्रति प्रेमवाला होता हूँ और 'वरुण' की आराधना करता हुआ द्वेष का निवारण करता हूँ। 'स्नेह व निर्द्वेषता' मेरे सामाजिक जीवन का सूत्र बन जाता है। **अदितिं**=मैं अदिति, स्वास्थ्य को अखण्डन का उपासक बनता हूँ और **स्वः**=प्रकाश का आराधक होता हूँ। 'शरीर स्वस्थ व मस्तिष्क प्रकाशमय' यही तो आदर्श पुरुष का लक्षण है। **पृथिवीं द्याम्**=शरीर रूप पृथिवी को मैं पुकारता हूँ, तो मस्तिष्क रूप द्युलोक का भी पूरा ध्यान करता हूँ। (२) **मरुतः**=प्राणों को **पर्वतान्**=अंग-प्रत्यंग में शक्ति के पूरण को (पर्व to fill) तथा **अपः**=रेतःकणों को पुकारता हूँ। प्राणसाधना से ही रेतःकणों की ऊर्ध्वगति होती है और सब अंग शक्ति से परिपूर्ण बनते हैं। अपने को शक्ति से परिपूर्ण बनाकर **विष्णुम्**=उस सर्वव्यापक प्रभु को पुकारता हूँ। व्यापक प्रभु की उपासना करते हुए व्यापक बनने का प्रयत्न करता

हूँ। **पूषणम्**=सर्वपोषक प्रभु का उपासन करता हुआ पोषण करनेवाला होता हूँ। **ब्रह्मणस्पतिम्**=ज्ञान के स्वामी को पुकारता हुआ ऊँचे से ऊँचे ज्ञान को प्राप्त करता हूँ। **भगम्**=ऐश्वर्यवाले प्रभु का उपासन करता हुआ सत्पथ से धनार्जन करता हूँ। **नु**=और निश्चय से **शंसम्**=उस स्तुत्य प्रभु का शंसन करता हूँ। यह शंसन ही मुझे अवद्य उपायों से धनार्जन से रोकेगा। अन्ततः इन सोलह देवों के आराधन के बाद मैं **सवितारम्**=उस प्रेरक प्रभु को पुकारता हूँ। यह प्रभु की प्रेरणा ही वस्तुतः मेरा रक्षण करेगी।

भावार्थ—हम सत्रह देवों का आह्वान करते हुए यजमान के रूप में अठारहवीं संख्या को पूरा करते हुए, जीवन यज्ञ का प्रणयन करें।

ऋषिः—**प्रतिक्षत्र आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

कल्याण प्राप्ति व धनार्जन

उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत्।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥ ४ ॥

(१) **उत**=और **विष्णु**=यह सर्वव्यापक प्रभु **नः**=हमारे लिये **मयः करत्**=कल्याण को करें। **उत**=और **वातः**=निरन्तर क्रियाशील वायु **अस्रिधः**=अहिंसक होती हुई हमारा कल्याण करे। **द्रविणोदाः**=धन का दाता वह प्रभु कल्याण करें। **उत**=और **सोमः**=शान्त प्रभु हमारा कल्याण करे। वस्तुतः कल्याण के लिये 'हृदय की उदारता (विष्णु) क्रियाशीलता (वात) दानवृत्ति (द्रविणोदा) तथा शान्त स्वभाव (सोमः)' की आवश्यकता है। (२) **उत**=और **ऋभवः**=ऋत के द्वारा दीप्त होनेवाले देव **राये**=ऐश्वर्य के लिये **नः**=हमें **अनुमंसते**=(अनुमन्यन्ताम्) अनुकूल मति दें। ऋभु बनकर हम धनार्जन करें। **उत**=और **अश्विना**=प्राणापान हमें धन के लिये अनुकूल बुद्धि प्राप्त करायें। प्राणसाधना हमें धनार्जन के योग्य करे। **उत**=और **त्वष्टा**=निर्माण की देवता हमें धन के लिये अनुमति दे। निर्माण करते हुए हम धन कमायें। **उत**=और **विभ्वा**=विशिष्ट सामर्थ्यवाला देव हमें धनार्जन के लिये क्षम करे।

भावार्थ—हम 'व्यापक, क्रियाशील, त्यागवृत्ति व शान्त' बनकर कल्याम को प्राप्त करें। 'ऋत से दीप्त=व्यवस्थित जीवनवाले, प्राणसाधक, निर्माता या विशिष्ट सामर्थ्यवाले बनकर धनार्जन करें।'

ऋषिः—**प्रतिक्षत्र आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

बृहस्पति-पूषा

उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ५ ॥

(१) **उत**=और **नः**=हमारे लिये **त्यत्**=वह प्रसिद्ध **मारुतं शर्धः**=प्राणसम्बन्धी बल **आगमत्**=प्राप्त हो। प्राणसाधना द्वारा प्राप्त होनेवाला बल हमें मिले। वह बल जो **दिविक्षयम्**=ज्ञान के प्रकाश में निवास करनेवाला है, अर्थात् जो बल ज्ञान के प्रकाश से युक्त है और अतएव **यजतम्**=आदरणीय व संगतिकरण योग्य है। जो बल **बर्हिः आसदे**=वासना शून्य हृदय में निवास के लिये होता है। (२) **बृहस्पतिः**=ज्ञान के स्वामी प्रभु **नः**=हमारे लिये **वरूथ्यम्**=सब कष्टों के निवारण में उत्तम **शर्म**=कल्याण को **यमत्**=दें **उत**=और **पूषा**=पोषण की देवता हमारे लिये कल्याण को प्राप्त कराये। अर्थात् उस कल्याणयुक्त स्थिति में हम सदा रहें जहाँ मस्तिष्क ज्ञान से परिपूर्ण है और शरीर के सब अंग-प्रत्यंग ठीक पोषणवाले हैं। अब **वरुणः मित्रः अर्यमा**=द्वेष निवारण की

देवता, स्नेह की देवता तथा शत्रुओं के नियमन (अरीन् यच्छति) की देवता हमारा कल्याण करे। हम 'निर्द्वेष, स्नेहपूर्ण व संयमी' बनकर सुखी हों।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हम ज्ञान व पवित्रता से युक्त बल को प्राप्त करें। हमारा मस्तिष्क ज्ञान से तथा शरीर उचित पोषण से मुक्त हो। हमारा जीवन 'स्नेह, निर्द्वेषता व संयम' वाला हो।

ऋषिः—**प्रतिक्षत्र आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

पर्वतासः-नद्यः

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन्।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम्॥ ६॥

(१) **उतः**=और **त्ये**=वे **पर्वतासः**=अपने में ज्ञान का पूरण करनेवाले आचार्य **नः**=हमारे लिये **सुशस्तयः**=ज्ञानों का उत्तम शंसन करनेवाले हों। **सुदीतयः**=उत्तम ज्ञान को देनेवाली **नद्यः**=ज्ञान-नदियाँ **स्त्रामणे**=हमारे रक्षण के लिये **भुवन्**=हों। उत्कृष्ट आचार्यों से उत्कृष्ट ज्ञान को हम प्राप्त करें। (२) **विभक्ता**=संविभाग को करनेवाला **भगः**=ऐश्वर्य का अधिष्ठातृदेव **शवसा**=बल के साथ व **अवसा**=रक्षण के साथ **आगमत्**=हमें प्राप्त हो। अर्थात् हमें ऐश्वर्य मिले। उस ऐश्वर्य का हम संविभागपूर्वक सेचन करनेवाले हों और इस प्रकार हमारा बल बढ़े और हम विषयों से बचे रहें। (३) **उरुव्यचाः**=सब अंगों की शक्ति के खूब (उस) विस्तारवाली (व्यचस्) **अदितिः**=स्वास्थ्य की देवता **मे हवम्**=मेरी पुकार को **श्रोतु**=सुने, अर्थात् मैं खूब स्वस्थ बनूँ।

भावार्थ—हम ज्ञानी आचार्यों से ज्ञान को प्राप्त करें। संविभागपूर्वक धनों का सेवन करें। स्वस्थ रहें।

ऋषिः—**प्रतिक्षत्र आत्रेयः** ॥ देवता—**देवपत्न्यः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

तुजये वाजसातये

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत॥ ७॥

(१) **उशतीः**=हमारे हित की कामना करती हुई **देवानां पत्नीः**=देवों की पत्नियाँ **नः अवन्तु**=हमारा रक्षण करें। देवों की पत्नियाँ 'देवशक्तियाँ' ही हैं, ये हमारा कल्याण करें। ये **नः**=हमारा **प्रावन्तु**=प्रकर्षेण रक्षण करें और **तुजये**=वासनाओं के संहार के लिये हों तथा **वाजसातये**=शक्ति के लाभ के लिये हों। (२) **याः**=जो भी **देवीः**=देवपत्नियाँ **पार्थिवासः**=पृथिवी के साथ सम्बद्ध हैं, इस स्थूल शरीररूप पृथिवी के भिन्न-भिन्न भुवनों (अंगों) में कार्य करनेवाली हैं, **याः**=वे **नः**=हमारे लिये **सुहवाः**=सुगमता से पुकारने के योग्य हों। **याः**=जो **देवीः**=दिव्यशक्तियाँ **अपाम्**=रेतःकणों के **व्रते अपि**=रक्षणात्मक व्रत में निवास करनेवाली हैं, वे हमारे लिये **शर्म यच्छत**=सुख को दें। रेतःकणों का रक्षण करती हुई वे हमें सुखी बनायें।

भावार्थ—दिव्य गुणों का धारण हमारे जीवन में वासनाओं का संहार करे और हमें शक्ति-सम्पन्न बनाये। हम शरीर के अंग-प्रत्यंगों को ठीक रखते हुए रेतःकणों का रक्षण करनेवाले हों।

ऋषिः—**प्रतिक्षत्र आत्रेयः** ॥ देवता—**देवपत्न्यः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

देवपत्नियों का आगमन

उत ग्रा व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥ ८॥

(१) **उत**=और **ग्नाः**=छन्दोमयी वेदवाणियाँ जो **देवपत्नीः**=देव पुरुषों की पत्नियों के समान हैं, वे **व्यन्तु**=हमारे जीवन में दीप्त हों (वी to shine)। **इन्द्राणी**=इन्द्र पत्नी, **अग्नायी**=अग्निपत्नी, **अश्विनी**=अश्विदेवों की पत्नी **राट्**=राजमाना हो। इन्द्र, अग्नि, अश्विदेवों की शक्ति हमारे जीवन में दीप्त हो। इन्द्र बनकर हम बल के कर्मों को करनेवाले हों, सब आसुरभावों का संहार कर सकें। अग्नि बनकर अपने जीवन को प्रकाशमय बनायें। अश्विदेवों की आराधना से हम प्राणशक्ति-सम्पन्न हों। (२) **रोदसी**=रुद्र पत्नी, **वरुणानी**=वरुण की पत्नी **आश्रृणोतु**=हमारी पुकार को सुनो। 'रुद्र' रोगों का द्रावण करनेवाला है तथा 'वरुण' पापों का निवारण करनेवाला है। हमारे जीवन में न रोग हों, न पाप हों। इस प्रकार **देवीः**=ये सब देवपत्नियाँ **व्यन्तु**=हमारे जीवनों में दीप्त हों। हमारे जीवन में **जनीनाम्**=इन देवपत्नियाँ का **यः ऋतुः**=जो काल है, वह दीप्त हो। अर्थात् हमारे जीवन में वह समय आये जब ये सब देवपत्नियाँ हमारे जीवन को शोभायमान करें।

भावार्थ—हमारा जीवन छन्दोमयी वेदवाणियों से तथा दिव्यशक्तियों से सुशोभित हो।

देवपत्नियों से जीवन को अलंकृत करके यह 'प्रतिरथ' बनता है, सब शत्रुओं से मुकाबिला करने में समर्थ होता है। शत्रुओं को जीतकर यह 'आत्रेय' होता है। यह वेदमाता को पुकारता हुआ कहता है कि—

अथ चतुर्थाष्टके तृतीयोऽध्यायः

४७. [सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रतिरथ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उषा का आगमन

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना॥ १ ॥

(१) हमारे जीवनों में यह उषा **एति**=आती है। **प्रयुञ्जती**=हमें यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगाती हुई, **दिवः ब्रुवाणा**=ज्ञान का उपदेश करती हुई, **मही**=उपासनामयी (मह पूजायाम्), **माता**=हमारे जीवन का निर्माण करनेवाली, **दुहितुः**=प्रभु की दुहिता इस वेदवाणी का **बोधयन्ती**=बोध प्राप्त कराती हुई यह उषा आती है। अर्थात् हम उषा में जागरित होकर यज्ञ आदि उत्तम कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, स्वाध्याय करते हैं, प्रभु की उपासना में लगते हैं। (२) **आविवासन्ती**=हमारे जीवनों से अन्धकार को दूर करती हुई, यह उषा **युवतिः**=बुराइयों को पृथक् करती है और अच्छाइयों को हमारे साथ मिलाती है। यह उषा **मनीषा**=मननपूर्वक प्रभु स्तवन करती हुई (स्तुतिमती सा०) **पितृभ्यः**=कर्मों के पालक पुरुषों के लिये **सदने**=गृह में **आजोहुवाना**=पुकारी जाती है। इस उषा के आने पर ही ये रक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्त होनेवाले लोग कर्मप्रवृत्त हुआ करते हैं।

भावार्थ—उषा होते ही हम उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हों, प्रभु की उपासना में लगें, स्वाध्याय का आरम्भ करें। इस प्रकार प्रवृत्त होने पर ही हम पितृकोटि में प्रविष्ट होनेवाले होंगे।

ऋषिः—**प्रतिरथ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पितृकोटि के पुरुषों का लक्षण

अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम्।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः॥ २ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार पितृकोटि में पहुँचनेवाले लोग **अजिरासः**=(agile) क्रियाशील होते हैं। **तद् अपः ईयमानाः**=उस-उस कर्म के प्रति गतिवाले होते हैं, समयानुसार प्राप्त कर्म को करनेवाले होते हैं। **अमृतस्य नाभिम्**=अमृत के केन्द्र प्रभु में **आतस्थिवांसः**=स्थित होनेवाले होते हैं। प्रभु स्मरणपूर्वक कर्मों को करते हैं। (२) **अनन्तासः**=कर्मों को बीच में ही समाप्त नहीं कर देते, सदा कर्म प्रवृत्त रहते हैं। **उरवः**=विशाल हृदय होते हैं। कर्मों को उदार हृदय से करते हैं। 'उदार धर्ममित्याहुः' इस बात को भूलते नहीं कि संकोच में अपवित्रता है, उदारता ही धर्म है। ये **पन्थाः**=पतनशील-क्रियाशील होते हुए **सीम्**=निश्चय से **विश्वतः**=सब दृष्टिकोणों से **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्करूप द्युलोक व शरीर रूप पृथिवी के **परियन्ति**=चारों ओर गति करनेवाले होते हैं। इस बात का सदा ध्यान करते हैं कि उनके किसी कर्म का उनके मस्तिष्क व शरीर पर अवाञ्छनीय प्रभाव न हो। उनके सब कार्य शरीर को तेजस्वी व मस्तिष्क को दीप्त बनानेवाले होते हैं। संक्षेप में, इन पितरों का जीवन क्रियाशील कर्त्तव्यपरायण होता है, प्रभु का इन्हें विस्मरण नहीं होता। कार्यों को बीच में छोड़ देनेवाले नहीं होते। विशाल हृदयता से कर्म करते हुए ये शरीर व मस्तिष्क दोनों को तेज व ज्ञान से दीप्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु स्मरणपूर्वक अपने कर्त्तव्य कर्मों को सदा करनेवाले बनें। हमारे कर्म इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए हों कि उनसे हमारा शरीर तेजस्वी व मस्तिष्क ज्ञानदीप्त बने।

ऋषिः—**प्रतिरथ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आदर्श पुरुष

उ॒क्षा स॑मु॒द्रो अ॑रु॒षः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरा वि॑वेश।
मध्ये॑ दि॒वो निहि॑तः॒ पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑॥ ३॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार पितृकोटि में प्रवेश करनेवाला और ऊँचा उठ करके 'देव' बनता है। यह **उक्षा**=शक्ति का शरीर में सेचन करनेवाला होता है। यह शरीर में शक्ति का रक्षण ही इसकी सम्पूर्ण उन्नति का मूल है। इस शक्ति रक्षण के कारण यह **समुद्रः**=ज्ञान का समुद्र बनता है अथवा 'स-मुद्' सदा आनन्दमयी वृत्तिवाला होता है। **अरुषः**=क्रोध रहित होता है। **सुपर्णः**=उत्तमता से अपना पालन व पूरण करता है। **पूर्वस्य पितुः**=परमपिता-सर्वमुख्य पिता, प्रभु के **योनिं आविवेश**=गृह में प्रवेश करनेवाला होता है, अर्थात् सब ब्रह्म में निवास करता है। (२) **दिवः मध्ये निहितः**=यह सदा ज्ञान के प्रकाश के मध्य में स्थित होता है, प्रतिक्षण ज्ञान प्राप्ति में लगा होता है। **पृश्निः**=(संस्पृष्टो मासा नि० २।१४) ज्ञान ज्योति से संस्पृष्ट होता है और **अश्मा**=शरीर में पत्थर के समान दृढ़ होता है। **विचक्रमे**=विशिष्ट गतिवाला होता है, सदा विक्रम के कार्यों को करनेवाला होता है। **रजसः**=रजोगुण के **अन्तौ**=सिरों को **पाति**=बचाता है, अर्थात् रजोगुण की एक सीमा तो वह है जहाँ से इसका प्रारम्भ होता है, नहीं अभी क्रिया न्यूनतम रूप में है। इसका दूसरा सिरा वह है जहाँ क्रिया अति उग्ररूप में है। यह क्रिया के न्यूनतम व उग्रतम दोनों रूपों को छोड़कर, दोनों से अपने को बचाकर, नपी-तुली क्रियावाला होता है। प्रत्येक कार्य को यह युक्तरूप में करता है।

भावार्थ—हम शक्ति का रक्षण करते हुए सदा ज्ञान की वृद्धि करें और शरीर को दृढ़ बनायें। आदर्श पुरुष का यही लक्षण है 'ज्ञानी-सुदृढ़'। हमारी सब क्रियाएँ नपी-तुली हों।

ऋषिः—**प्रतिरथ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

त्रिधातवः गावः

चत्वारं ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान्॥ ४॥

(१) **ईम्**=निश्चय से **चत्वारः**=चारों वेदों के मन्त्र (विचार) **क्षेमयन्तः**=कल्याण करते हुए इसका **बिभ्रति**=धारण करते हैं। **गर्भम्**='दिवः मध्येनिहितः' ज्ञान के बीच में गर्भरूप से रहनेवाले इस पुरुष को **चरसे**=संसार में ठीक विचरण के लिये **दश धापयन्ते**=दसों दिशाओं में स्थित पदार्थों के ज्ञानदुग्ध का पान कराते हैं। इन पदार्थों के ठीक ज्ञान से इसकी क्रियाएँ उत्तम होती हैं। (२) **परमाः गावः**=ये उत्कृष्ट वेदवाणियाँ या प्रभु का ज्ञान देनेवाली (परः मीयते याभिः) वेदवाणियाँ **अस्य**=इस गतमन्त्र के आदर्श पुरुष के **त्रिधातवः**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का धारण करनेवाली होती हैं। इसके जीवन में **सद्यः**=शीघ्र ही ये **दिवः अन्तान्**=ज्ञान के अन्तिम तत्त्वों को **परिचरन्ति**=प्राप्त करानेवाली होती हैं। इसे ये वेदवाणियाँ तत्त्वज्ञानी बना देती हैं।

भावार्थ—चारों वेद पुरुष का धारण करते हैं। ये दसों दिशाओं का ज्ञान देकर उसको ठीक रूप में क्रियाशील बनाते हैं। ये वेदवाणियाँ 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का धारण करनेवाली होती हैं और ज्ञान के अन्तिम तत्त्वों को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**प्रतिरथ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

नद्यः-आपः

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या३ सबन्धू॥ ५॥

(१) **जनासः**=लोग **इदम्**=इस **निवचनम्**=स्तुत्य **वपुः**=शरीर की ओर **चरन्ति**=गतिवाले होते हैं। **यत्**=जिस शरीर को **नद्यः**=ज्ञान की नदियाँ तथा **आपः**=रेतःकण **तस्थुः**=अधिष्ठित करते हैं। वह शरीर ही वस्तुतः स्तुत्य है जिसमें कि ज्ञान व रेतःकणों की स्थिति होती है। (२) **द्वे**=ज्ञान व रेतःकण ये दोनों **यद्**=जब **ईम्**=निश्चय से **बिभृतः**=धारण करते हैं तो **मातुः**=उस निर्माता के ये दोनों ही **अन्ये**=विलक्षण पदार्थ हैं **इह इह जाते**=ये दोनों शरीर व मस्तिष्क में (इस-इस स्थान में) विकसित होते हैं। **यम्या**=हैं ये युगल इकट्ठे ही रहनेवाले और **सबन्धू**=समानरूप से शरीर को बाँधनेवाले। इन दोनों के होने पर ही जीवन उत्तम होता है। जिस समय शरीर में ज्ञान व शक्ति मिलकर बन्धुभाव से रहते हैं, तो यह शरीर बड़ा स्तुत्य हो जाता है।

भावार्थ—हमारे शरीर में ज्ञान-नदियों के प्रवाह बहें और रेतःकण सुरक्षित हों तभी हमारा यह शरीर प्रशंसनीय रूपवाला होगा।

ऋषिः—**प्रतिरथ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृषणो मोदमानाः

वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ॥ ६॥

(१) **अस्मा**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिये **धियः**=बुद्धियों को **अपांसि**=और कर्मों को **वितन्वते**=विस्तृत करते हैं, बुद्धिपूर्वक किये गये कर्म प्रभु-पूजन का साधन बनते हैं। जिस प्रकार

मातरः=माताएँ **पुत्राय**=पुत्र के लिये **वस्त्रा**=वस्त्रों को **वयन्ति**=बुनती हैं, उसी प्रकार उपासक प्रभु प्राप्ति के लिये बुद्धियों व कर्मों का विस्तार करता है। (२) **उपप्रक्षे**=उस प्रभु के सम्पर्क में ये **वृषणः**=शक्तिशाली बनते हैं और **मोदमानाः**=आनन्द का अनुभव करते हैं। **वध्वः**=कर्मों का वहन करनेवाले **दिवस्पथा**=ज्ञान के मार्ग से गति करते हुए **अच्छ यन्ति**=उस प्रभु की ओर जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये उपासक का मार्ग यही है कि बुद्धियों व कर्मों का विस्तार करे। बुद्धिपूर्वक कर्मों से ही प्रभु-पूजन होता है। प्रभु सम्पर्क से शक्ति व आनन्द की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**प्रतिरथ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शं योः गाधं प्रतिष्ठाम्

तद॑स्तु मित्रावरुणा तद॑ग्ने शं योर॒स्मभ्य॑मि॒दम॑स्तु श॒स्तम्।
अ॒शी॒महि॑ गा॒धमु॒त प्र॑ति॒ष्ठां नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते साद॑नाय॥ ७॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओ! **तत्**=वह **शम्**=शान्ति **अस्तु**=हो। हमें स्नेह व निर्द्वेषता के धारण से शान्ति का लाभ हो। हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **तद्**=वह **योः**=भयों का यावन (अमिश्रण) **अस्तु**=हो। **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **इदम्**=यह शान्ति व निर्भयता का जीवन **शस्तं अस्तु**=प्रशंसनीय हो। (२) हम 'मित्र, वरुण व अग्नि' की आराधना करते हुए **गाधम्**=(प्रतिष्ठा) स्थिति को प्राप्त करें अथवा (लिप्सा) प्राप्त करने के लिये इष्ट वस्तु को **अशीमहि**=प्राप्त करनेवाले हों। **उत**=और **प्रतिष्ठाम्**=यश व कीर्ति को प्राप्त करें। इस प्रकार का जीवन बनाकर उस **दिवे**=प्रकाशमय **बृहते**=महान् **सादनाय**=आश्रय के लिये **नमः**=नमस्कार करें। यह प्रभु का स्मरण ही हमें निरभिमान बनायेगा।

भावार्थ—हम 'स्नेह, निर्द्वेषता व प्रगति की भावना' को धारण करें। इससे हमें शान्ति, निर्भयता, इष्टवस्तुलाभ व प्रतिष्ठा की प्राप्ति होगी। ऐसा होने पर निरभिमान बने रहने के लिये हम प्रभु के प्रति नतमस्तक हों।

यह प्रभु की उपासना से दीप्ति को प्राप्त करके 'प्रतिभानु' बनता है, दीप्त प्रत्येक इन्द्रियवाला। यह आत्रेय तो होता ही है, 'काम-क्रोध-लोभ' से दूर। यह प्रार्थना करता है—

४८. [अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रतिभानुरात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तेजस्विता व प्रज्ञा

कदु॑ प्रि॒याय॒ धाम्ने॑ मनामहे॒ स्वक्ष॑त्राय॒ स्वय॑शसे म॒हे व॒यम्।
आ॒मे॒न्यस्य॒ रज॑सो॒ यद॒भ्र आँ अ॒पो वृ॑णा॒ना वि॑त॒नोति॑ मा॒यिनी॑॥ १॥

(१) **कत् उ**=वह शुभ दिन कब होगा जब कि **वयम्**=हम **धाम्ने**=तेजस्विता के लिये **मनामहे**=स्तवन करेंगे? जो तेजस्विता **प्रियाय**=प्रीतिजनक है, **स्वक्षत्राय**=स्वयं क्षतों से त्राण करने में समर्थ है तथा **स्वयशसे**=अपने यश का कारण बनती है और **महे**=महनीय व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। (२) वह समय कब होगा **यत्**=जब **अभ्रे**=बादल के होने पर भी वासनारूप मेघों के प्रज्ञान सूर्य को आच्छादित करने पर भी **मायिनी**=यह प्रज्ञावती बुद्धि (मायाः प्रज्ञा) **आमेन्यस्य**=समन्तात् मातव्य, जिसका अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त करना चाहिए उस **रजसः**=लोक समूह के **अपः**=ज्ञान जलों को **आवृणाना**=सर्वथा वरण करती हुई हमारे जीवनों में **वितनोति**=प्रकाश को फैलाती है। इस

लोक समूह का बुद्धि से ज्ञान प्राप्त करके, इसके यथायोग से ही कल्याण सम्भव है।

भावार्थ—हमारे जीवन का लक्ष्य यही हो कि हम 'तेजस्विता व प्रज्ञा' का सम्पादन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**प्रतिभानुरात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वयुनं वीर वक्षणम्

ता अंत्नत वयुनं वीरवंक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः॥ २॥

(१) गतमन्त्र में 'मायिनी'=प्रज्ञावती मेधा का उल्लेख था। **ताः**=वे मेधा बुद्धियाँ **वयुनम्**=प्रज्ञान को **अत्नत**=विस्तृत करती हैं, जो प्रज्ञान **वीरवक्षणम्**=वीरों की उन्नति का साधन बनता है (वक्ष्=to grow)। ये बुद्धियाँ **विश्वं रजः**=सम्पूर्ण लोक को **समान्या**=समानरूप से **वृतया**=आच्छादित करनेवाली दीप्ति से **आ** (अत्नत)=विस्तृत करती हैं। बुद्धि के द्वारा प्रज्ञान प्राप्त होता है और हम सब लोकपदार्थों को ठीक रूप में देखने लगते हैं। (२) यह **देवयुः जनः**=प्रभु प्राप्ति की कामनावाला मनुष्य **अपराः**=(अ-पराः) जो वस्तुतः पराये नहीं है अथवा (अ-प्रभु) प्रभु प्राप्ति के साधनभूत हैं उन **अपाचीः**=सामान्यतः हमारे से दूर जानेवाले **अपः**=रेतःकणों को **अपेजते**=फिर वापिस प्रेरित करता है। नीचे जाने के स्वभाववाले इन रेतःकणों को ऊर्ध्वमुख करके ऊर्ध्वरेता बनाता है। तथा **पूर्वाभिः**=इन पालन व पूरण करनेवाले रेतःकणों से **प्रतिरते**=जीवन को दीर्घ बनाता है।

भावार्थ—हम बुद्धि के द्वारा वीरतायुक्त प्रज्ञान को प्राप्त करें। रेतःकणों का रक्षण करते हुए दीर्घजीवी बनें।

ऋषिः—**प्रतिभानुरात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृत्र पर वज्र प्रहार

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा॥ ३॥

(१) 'माया' का अर्थ है छल-कपट। 'मायी' वृत्र का नाम है, जो अद्भुत छली है। इस **मायिनि**=मायावाले वृत्र पर **ग्रावभिः**=स्तुतियों के द्वारा, **अहन्येभिः**=(अ-हन्) एक-एक क्षण को न नष्ट करने के द्वारा, एतत उत्तम क्रियाओं के द्वारा तथा **अक्तुभिः**=प्रकाश की किरणों के द्वारा **वरिष्ठम्**=श्रेष्ठ **वज्रम्**=वज्र को **आजिघर्ति**=दीप्त करता है (brandishes, waives his sword brilliantly)। वृत्र, अर्थात् वासना को नष्ट करने का उपाय यही है कि (क) प्रभु के स्तवन में प्रवृत्त होना, (ख) सतत यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में लगे रहना, (ग) तथा स्वाध्याय द्वारा प्रकाश को प्राप्त करना। (२) उस **मायी**=वृत्र पर वज्र का प्रहार करना है, **यस्य**=जिस वृत्र के, वासना के **शतम्**=सैकड़ों रूप **स्वे दमे**=इस अपने शरीररूप गृह में **संवर्तयन्तः**=प्रलय मचाते हुए (संवर्तः=प्रलयः) **च**=तथा **अहा**=दिनों को **विवर्तयन्**=विरुद्ध मार्गों पर ले जाते हुए **प्रचरन्**=गतिवाले होते हैं। वासना नानारूपों में प्रकट होती है और जीवन में प्रलय-सा मचा देती है तथा दिनों को उलट-पुलट बातों में ही बरबाद कर देती है। इस वासना को नष्ट करना आवश्यक ही है।

भावार्थ—जीवन को विनष्ट करनेवाली वासना पर हम उस वज्र का प्रहार करें जो 'प्रभु स्तवन, उत्तम कर्म व स्वाध्याय' द्वारा बना हुआ है।

ऋषि:—प्रतिभानुरात्रेय: ॥ देवता—विश्वे देवा: ॥ छन्द:—निचृज्जगती ॥ स्वर:—निषाद: ॥

रमणीय वस्तुओं का धारण

तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पस:।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे॥ ४॥

(१) **अस्य**=गतमन्त्र में वर्णित इस वज्र की **तां रीतिम्**=उस गति को **परशो: इव**=कुल्हाड़े की गति की तरह **प्रत्यनीकम्**=वासनारूप शत्रुसैन्य के प्रति **अख्यम्**=देखता हूँ। जैसे कुल्हाड़ा झाड़ी झंकाड़ों का सफाया कर देता है, उसी प्रकार यह वज्र वासनाओं का विनाश करता है। इस प्रकार यह वज्र **अस्य वर्पस:**=इसके तेजस्वीरूप के **भुजे**=पालन के लिये होता है। (२) वासनाओं के विनष्ट होने पर यह तेजस्वी पुरुष प्रभु को प्राप्त करनेवाला होता है। और **यदि**=अगर **सचा**=यह उपासक प्रभु के साथ अपने को समवेत कर पाता है, जो प्रभु इस **भरहूतये**=संग्राम में वासनारूप शत्रुओं को ललकारनेवाले **विशे**=मनुष्य के लिये **पितुमन्तं क्षयं इव**=रक्षक अन्न से परिपूर्ण घर की तरह **रत्नं दधाति**=रमणीय वस्तुओं का धारण करता है।

भावार्थ—हम क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा वासनाओं का विनाश करें। प्रभु हमारे मित्र होंगे और हमारे लिये रमणीय वस्तुओं का धारण करेंगे।

ऋषि:—प्रतिभानुरात्रेय: ॥ देवता—विश्वे देवा: ॥ छन्द:—निचृज्जगती ॥ स्वर:—निषाद: ॥

चारु वसान:

स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भग: सविता दाति वार्यम्॥ ५॥

(१) **स:**=गतमन्त्र के अनुसार वज्र के द्वारा वासनाओं का विनाश करनेवाला वह उपासक **जिह्वया**=वाणी के द्वारा **चतुरनीक:**=चतुर्मुख, चारों वेदों के ज्ञानरूप बलवाला होकर **ऋञ्जते**=अपने जीवन को प्रसाधित करता है **चारु वसान:**=यह सब सुन्दर गुणों व ज्ञानों को धारण करता है। **वरुण:**=सब पापों का निवारण करता हुआ **अरिं यतन्**=वासनारूप शत्रुओं को (उद्धरन्) उखाड़ फेंकता है। (२) **वयम्**=हम **तस्य**=उस प्रभु के **पुरुषत्वता**=पौरुष को **न विद्म**=पूरा-पूरा ज्ञान नहीं पाते **अत:**=क्योंकि वह **भग:**=ऐश्वर्य का पुञ्ज **सविता**=सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभु **वार्यं दाति**=सब वरणीय पदार्थों को देता है। अनन्त प्राणियों के लिये अनन्त वरणीय वस्तुओं की प्राप्त को कराते हुए उस प्रभु के पौरुष की कल्पना करनी कठिन है।

भावार्थ—हम वेदज्ञान प्राप्त करें, वरणीय बातों का ग्रहण व त्याज्य का परित्याग करें। वे अनन्त दानोंवाले प्रभु हमें सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करायेंगे।

शत्रुओं को उखाड़कर फेंकता हुआ यह व्यक्ति प्रत्येक इन्द्रिय को प्रभा सम्पन्न बना पाता है सो 'प्रतिप्रभ' कहलाता है। यह आत्रेय है, काम-क्रोध-लोभ से परे। यह प्रार्थना करता है—

४९. [एकोनपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषि:—प्रतिप्रभ आत्रेय: ॥ देवता—विश्वे देवा: ॥ छन्द:—भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वर:—धैवत: ॥

'सवितादेव, भग व अश्विनीदेवों' का आराधन

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायो:।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन्॥ १॥

(१) **अद्य**=आज **वः सवितारम्**=तुम सब के प्रेरक **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु को **आ ईषे**=(उपगच्छामि) समीपता से प्राप्त होता हूँ, प्रेरक प्रभु की उपासना करता हूँ। **च**=और प्रभु की उपासना के साथ **भगम्**=ऐश्वर्य की देवता का भी आराधन करता हूँ, जो **आयोः**=गतिशील पुरुषों को **रत्नं विभजन्तम्**=रमणीय वस्तुओं को विभागपूर्वक प्राप्त कराते हैं। 'सवितादेव' की उपासना मुझे अध्यात्म दृष्टिकोण से उन्नत करता है और 'भग' की उपासना मेरी भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। 'सवितादेव' की उपासना ही परमात्मा की अर्चना है। (२) हे **नरा**=मुझे उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले, **पुरुभुजा**=खूब ही मेरा पालन करनेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! मैं **सखीयन्**=प्रभु की मित्रता की कामना करता हुआ **वाम्**=आप दोनों को **दिवे दिवे चित्**=प्रतिदिन ही **आ ववृत्याम्**=अपने अभिमुख करने का प्रयत्न करूँ। यह प्राणापान की साधना ही वस्तुतः हमें प्रभु की मित्रता को प्राप्त कराती है।

भावार्थ—हम सवितादेव, भग व अश्विनीदेवों की आराधना करनेवाले बनें।

ऋषिः—**प्रतिप्रभ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सब धनों के विजेता' प्रभु

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः॥ २॥

(१) **प्रति प्रयाणम्**=जीवन-यात्रा की प्रत्येक मंज़िल में अथवा प्रत्येक कार्य में (गति में) **असुरस्य विद्वान्**=उस प्राणशक्ति का संचार करनेवाले प्रभु को जानता हुआ तू **सूक्तैः**=उत्तम कथनों से, गुणकीर्तन से **देवम्**=प्रकाशमय **सवितारम्**=प्रेरक प्रभु की **दुवस्य**=परिचर्या कर। प्रभु स्मरण के साथ ही प्रत्येक कार्य को करनेवाला हो। (२) **विजानन्**=ज्ञानी पुरुष **नमसा**=नमन के साथ **ज्येष्ठम्**=उस सर्वश्रेष्ठ प्रभु के **उपब्रुवीत**=नामों का व स्तोत्रों का उच्चारण करे। उस प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करे जो **आयोः**=गतिशील पुरुष के लिये **रत्नं विभजन्तम्**=रमणीय धन को प्राप्त कराते हैं। 'हमारे लिये सब धनों का विजय प्रभु ही तो करते हैं, ऐसा स्मरण रहने पर मनुष्य धनाभिमान से बचा रहता है।

भावार्थ—हम सब कार्यों को प्रभु स्मरण के साथ करें। इस बात को न भूलें कि हमारे लिये धनों का विजय भी प्रभु ही करते हैं।

ऋषिः—**प्रतिप्रभ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सब दिनों की भद्रता

अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः॥ ३॥

(१) **पूषा**=वह सबका पोषण करनेवाला, **भगः**=ऐश्वर्यशाली **अदितिः**=स्वास्थ्य को नष्ट न होने देनेवाला प्रभु **अदत्रया**=(अदनीदाति) खाने के योग्य **वार्याणि**=वरणीय वस्तुओं को **दयते**=देता है। इन वरणीय वस्तुओं को देकर ही वे प्रभु हमारा पोषण करते हैं और हमें स्वस्थ बनाते हैं। **उस्रः**=प्रकाश की किरणों के पुञ्ज वे प्रभु **वस्ते**=हमें इन प्रकाश की किरणों से आच्छादित करते हैं। यह प्रकाश की किरणें ही हमारे कवच के रूप में होती हैं और हमें वासनाओं के आक्रमण से बचाती हैं। (२) **इन्द्रः**=जितेन्द्रियता, **विष्णुः**=व्यापकता, **मित्रः**=स्नेह, **वरुणः**=निर्द्वेषता (द्वेष का निवारण) **अग्निः**=प्रगतिशीलता ये प्रकार के सब दिव्य भाव **दस्माः**=दर्शनीय

हैं व हमारे कष्टों का उपक्षय करनेवाले हैं। ये **अहानि**=हमारे जीवन के दिनों को **भद्रा**=कल्याणकर व उत्तम **जनयन्त**=बनाते हैं। 'जितेन्द्रियता' से शरीर की शक्ति स्थिर रहती है, 'उदारता, स्नेह व निर्द्वेषता' मन को पवित्र रखती हैं। 'प्रकाश' मस्तिष्क को दीप्त बनाता है। एवं 'शरीर, मन व बुद्धि' का स्वास्थ्य हमारे सब दिनों को शुभ बना देता है।

भावार्थ—प्रभु हमें पोषण के लिये आवश्यक वरणीय धनों को देते हैं। हमें प्रकाश का वस्त्र धारण कराते हैं। जितेन्द्रियता आदि के द्वारा हमारे सब दिनों को शुभ बना देते हैं।

ऋषिः—**प्रतिप्रभ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रायः पतयः-वाजरत्नाः

तन्नो॑ अन॒र्वा स॑वि॒ता वरू॑थं॒ तत्सिन्ध॑व इ॒षय॑न्तो॒ अनु॑ ग्मन्।
उप॒ यद्वोचे॑ अध्व॒रस्य॒ होता॑ रा॒यः स्या॑म॒ पत॑यो॒ वाज॑रत्नाः ॥ ४ ॥

(१) **अनर्वा**=किसी से भी हिंसित न होनेवाला **सविता**=सबका प्रेरक प्रभु **नः**=हमारे लिये **तत्**=उस **वरूथम्**=कष्टों के निवारक धन (wealth) को दे। **इषयन्तः**=हमारे लिये उत्तम प्रेरणा को देती हुई **सिन्धवः**=ज्ञान की नदियाँ **तत्**=उस धन को **अनुग्मन्**=अनुकूलता से प्राप्त करायें। (२) **यत्**=जब मैं **अध्वरस्य होता**=इस जीवन यज्ञ का होता बनता हूँ, तो **उप वोचे**=यही प्रार्थना करता हूँ कि हम सब **रायः पतय स्याम**=धनों की स्वामी हों। धनों के दास न बन जाएँ। धन के दास बनते ही सब यज्ञ समाप्त हो जायेंगे और हमारा जीवन पापमय हो जाएगा। **वाजरत्नाः**=हम शक्तिरूप रमणीय धनवाले हों। धन के स्वामी बनकर विषयों में न फँसेंगे तो यह शक्तिरूप धन भी हमारे जीवन को रमणीय बनायेगा ही।

भावार्थ—हमें प्रभु आवश्यक धन प्राप्त करायें। कर्मों में प्रेरक ज्ञान भी हमें धन दे, अर्थात् ज्ञानपूर्वक कर्मों को करते हुए हम धनार्जन करें। इस जीवन यज्ञ में हम धनों के दास न बन जाएँ और शक्तिरूप रमणीय धनवाले हों।

ऋषिः—**प्रतिप्रभ आत्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

क्या करें, क्या पायें?

प्र ये वसु॑भ्य॒ ईव॒दा नमो॒ दुर्ये मि॒त्रे वरु॑णे सू॒क्तवा॑चः।
अवै॒त्वभ्वं॑ कृणु॒ता वरी॑यो दि॒वस्पृ॑थि॒व्योरव॑सा मदेम॥ ५ ॥

(१) हम वे बनें, **ये**=जो **वसुभ्यः**=निवास के लिये आवश्यक धनों की प्राप्ति के लिये **ईवत्**=(गमनवत्) क्रियायुक्त **प्रनमः**=प्रकृष्ट नमस्कार को करनेवाले हैं। हम प्रभु की उपासना करें, पर वह उपासना स्वकर्म-पालन के द्वारा हो रही हो। प्रभु की सर्वोत्कृष्ट उपासना प्रभु के आदेश के अनुसार कर्मों में प्रवृत्त होना ही तो है। (२) हम **मित्रे**=स्नेह की देवता में अथवा प्रमीति (मृत्यु) से त्राण करनेवाली देवता में तथा **वरुणे**=निर्द्वेषता की देवता में, पाप-निवारण की देवता में **सूक्तवाचः**=मधुरवाणियोंवाले हों। सब के प्रति स्नेह व निर्द्वेषतावाले होकर सदा मधुर ही शब्द बोलें। (३) इस प्रकार हमें **अभ्वम्**=महान् तेज **अवैतु**=प्राप्त हो। हे देवो! आप हमारे लिये **वरीयः**=उत्कृष्ट धन को **कृणुता**=करिये। हम **दिवस्पृथिव्योः**=द्युलोक व पृथिवीलोक के **अवसा**=रक्षण से **मदेम**=हर्ष का अनुभव करें। मस्तिष्करूप द्युलोक तथा शरीररूप पृथिवीलोक का रक्षण हमारे लिये आनन्द का कारण बने। सर्वोत्तम जीवन यही है कि 'मस्तिष्क व शरीर दोनों स्वस्थ हों'।

भावार्थ—धन प्राप्ति के लिये हम ज्ञानपूर्वक कर्मों द्वारा प्रभु के उपासक बनें। स्नेह व निर्द्वेषता को अपनाकर मधुर ही शब्द बोलें। इस प्रकार हम तेजस्वी हों, उत्कृष्ट धनवाले हों, स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मस्तिष्कवाले हों।

गतमन्त्र के अनुसार जीवन को बनाकर हम 'स्वस्ति'=जीवन में उत्तम स्थितिवाले हों, 'आत्रेय'=त्रिविध कष्टों से दूर हों। इस 'स्वस्ति' का कथन है कि—

५०. [पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु की मित्रता का वरण

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्। विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॑॥ १ ॥

(१) **विश्वः मर्तः**=इस संसार में प्रविष्ट हुआ-हुआ प्रत्येक मनुष्य **नेतुः देवस्य**=संसार के प्रणेता, सब व्यवहारों के साधकर (दिव् व्यवहारे) प्रभु की **सख्यम्**=मित्रता को **वुरीत**=वरे। इसी में कल्याण है। जब प्रभु को भूलकर प्रकृति की ओर झुकते हैं, तो उस प्रकृति के पाँव तले रौंदे जाते हैं। (२) पर यह बात है बड़ी विचित्र कि **विश्वः**=सब कोई **राये**=धन के लिये **इषुध्यति**=याचना करता है। धन आवश्यक है, पर इस धन में ही तो आनन्द नहीं रखा। यह धनासक्ति ही हमारे सब कष्टों का कारण बनती है। इसलिए **द्युम्नम्**=ज्ञानधन का ही **वृणीत**=वरण करो, **पुष्यसे**=यदि अपना ठीक पोषण करना है तो अपने उत्तम पोषण के लिये हमें ज्ञान का ही वरण करना चाहिए, जीवन-यात्रा के लिये आवश्यक धन तो प्राप्त हो ही जायेगा।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता का वरण करें। अपने ठीक पोषण के लिये ज्ञान-धन का वरण करें। आवश्यक बाह्य धन तो प्राप्त हो ही जाता है।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

धन-प्रभु सम्पर्क व उत्तम मित्र

ते ते॑ देव नेत॒र्ये चे॒माँ अ॑नु॒शसे॑। ते रा॒या ते ह्या३॒पृचे॒ सचे॑महि सच॒थ्यैः॥ २ ॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय **नेतः**=सारे संसार के संचालक प्रभो! **ते**=हम तेरे हैं और **ते**=तेरे ही हैं। **च**=और **ये**=जो हम **इमान् अनुशसे**=इन आधि-व्याधियों को नष्ट करने के लिये होते (शसति to kill, to destroy) वस्तुतः प्रभु के बनने पर हम प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होते हैं और वासनाओं को विनष्ट कर पाते हैं। (२) **ते**=वे हम **राया**=जीवन-यात्रा के लिये आवश्यक धन से **सचेमहि**=संयुक्त हों। **ते**=वे हम **हि**=निश्चय से **आपृचे**=आपके सम्पर्क के लिये हों और **सचथ्यैः**=मेल में उत्तम मित्रों के साथ (सचेमहिः) मेलवाले हैं। हमारा साथ सदा उत्तम मित्रों के साथ हो। इस साथ का ही तो हमारे जीवन पर महान् प्रभाव होता है।

भावार्थ—हम प्रभु के बनकर रोग व वासनाओं को विनष्ट करें। हम धन को प्राप्त करें, प्रभु के साथ सम्पर्कवाले हों, उत्तम मित्रों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

नृन् अथिथीन् पत्नीः

अतो॑ न॒ आ नॄनति॑थी॒नतः॒ पत्नी॒र्दश॑स्यत। आ॒रे विश्वं॑ पथे॒ष्ठां द्वि॒षो यु॑योतु॒ यूयु॑विः॥ ३ ॥

(१) **अतः**=इस जीवन के निर्माण के हेतु से **नः**=हमारे लिये **नॄन्**=आगे ले चलनेवाले 'माता,

पिता व आचार्यों' को **दशस्यत**=दो। **अतिथीन्**=उत्तम अतिथियों को प्राप्त कराओ। **अतः**=इस जीवन के निर्माण के हेतु से **पत्नीः**=उत्तम पत्नियों को प्राप्त कराओ। माता, पिता, आचार्य व अतिथि तो हमारे जीवन निर्माण में हिस्सा लेते ही हैं, सब से महत्त्वपूर्ण भाग पत्नियों का होता है। (३) **यूयुविः**=वह सब बुराइयों से हमें पृथक् करनेवाला प्रभु **विश्वम्**=सब **पथेष्ठाम्**=मार्ग में प्रतिबन्धक रूप से स्थित **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को **आरे**=दूर **युयोतु**=पृथक् करे। द्वेष से ऊपर उठकर ही अध्यात्म उन्नति होना सम्भव होता है।

भावार्थ—हमें उत्तम माता, पिता, आचार्य व अतिथियों का सम्पर्क मिले। पत्नी उत्तम हो। प्रभु हमारे से द्वेष को दूर करें।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

कैसा घर?

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः। नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥

(१) **यत्र**=जहाँ **वह्निः**=यज्ञ की अग्नि **अभिहितः**=दिन में दोनों बार, प्रारम्भ व अन्त में प्रातः व सायं स्थापित हुई है। जिस घर में यज्ञ नियमपूर्वक होते हैं। (२) जहाँ **द्रोण्यः**=द्रोण भर दूध देनेवाले। (३२ सेर) **पशुः**=गवादिक पशु **दुद्रवत्**=खूब दौड़ता फिरता है। जहां उत्तम गौ स्वतन्त्रता से विचरती है। (३) **नृमणा**=जिसका मनुष्यों में मन है, अर्थात् जहाँ सब सन्तानों के निर्माण का पूरा ध्यान होता है। व्यर्थ की चीजों की जहाँ झुकाव नहीं। अतएव **वीरपस्त्यः**=जहाँ वीरों का ही निवास है। (४) **अर्णा**=अरण कुशल गति में कुशल, कर्मों को कुशलता से करनेवाली **धीरा इव**=एक धैर्यवाली स्त्री की तरह सब कोई **सनिता**=संभक्ता होता है, प्रभु का भजन करनेवाला व संविभागपूर्वक खानेवाला होता है।

भावार्थ—उत्तम घर वह है जहाँ कि (क) यज्ञ नियम से होता है, (ख) खूब दूध देनेवाला पशु (गौ) विद्यमान है, (ग) जहाँ मनुष्यों के निर्माण का ध्यान है, (घ) जहाँ सब वीर हैं, (ङ) और संविभागपूर्वक सब खाते हैं।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

शं राये, शं स्वस्तये

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥ ५ ॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **एषः**=यह मैं **ते**=तेरा ही हूँ। आप ही **नेता**=मेरा नेतृत्व करनेवाले हैं **रथस्पतिः**=मेरे रथ के रक्षक हैं। **रयिः**=आपसे दिया हुआ धन **शम्**=हमारे लिये शान्तिकर हो। (२) हम **इषः स्तुतः**=उस एषणीय (चाहने योग्य) प्रभु के स्तोता बनकर **राये**=धन के लिये व **शम्**=शान्ति के लिये **मनामहे**=याचना करते हैं। **स्वस्तये**=उत्तम स्थिति के लिये व **शम्**=शान्ति के लिये **देवस्तुतः**=उस प्रकाशमय प्रभु के स्तोता हम **मनामहे**=याचना करते हैं।

भावार्थ—प्रभु के स्तोता बनने पर ही हम सुखकर धन को व शान्तिमय उत्तम स्थिति को प्राप्त कर पाते हैं।

अगला सूक्त भी 'स्वस्ति आत्रेय' का ही है—

५१. [एकपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु द्वारा रक्षित होकर 'सोमपान' करना

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि। देवेभिर्हव्यदातये॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **सुतस्य पीतये**=शरीर में उत्पन्न सोम के पान (=रक्षण) के लिये आप **विश्वैः**=सब **ऊमेभिः**=रक्षणों के साथ **आगहि**=हमें प्राप्त होइये। आप ही हमें वासनाओं से बचायेंगे और तब ही सोम का शरीर में रक्षण होगा। (२) **देवेभिः**=दिव्यगुणों के हेतु से आप हमारे लिये **हव्यदातये**=सब हव्य पदार्थ को देने के लिये होइये। ये हव्य पदार्थ ही हमारे जीवन में दिव्यता का वर्धन करेंगे।

भावार्थ—परमात्म स्मरण के द्वारा वासनाओं से बचते हुए हम सोम का शरीर में रक्षण करनेवाले हों। हव्य पदार्थों के सेवन से दिव्य गुणों का वर्धन करें।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ऋतधीतयः-सत्यधर्माणः

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम्। अग्नेः पिबत जिह्वया॥ २॥

(१) **ऋतधीतयः**=ऋत की regularity (व्यवस्था) का धारण करनेवाले व **सत्यधर्माणः**=सत्य का पोषण करनेवाले तुम **अध्वरं आगत**=इस हिंसारहित यज्ञात्मक कर्म को प्राप्त होवो। हम अपने जीवनों में 'ऋत और सत्य' का पोषण करते हुए जीवन को यज्ञमय बनायें। (२) और जीवनयज्ञ में **अग्नेः जिह्वया**=अग्नि की जिह्वा से, अर्थात् उस अग्रणी प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाली जिह्वा से **पिबत**=सोम का पान करो। प्रभु का स्मरण करेंगे तो वासनाओं से आक्रान्त न होंगे। यह वासनाओं का अनाक्रमण हमें सोम को पान करने के योग्य बनायेगा।

भावार्थ—ऋत व सत्य का धारण करते हुए हम जीवन को यज्ञमय बनायें। प्रभु का स्मरण करते हुए सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विप्र-सन्त्य

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि। देवेभिः सोमपीतये॥ ३॥

(१) प्रभु कहते हैं कि—हे **विप्र**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले **सन्त्य**=सम्भजन में उत्तम पुरुष! तू **प्रातः यावभिः**=प्रातः काल से ही कर्त्तव्यकर्मों में गतिवाले **विप्रेभिः**=ज्ञानी अपना पूरण करनेवाले **देवेभिः**=देव वृत्तिवाले पुरुषों के साथ **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिये **आगहि**=हमारे समीप आनेवाला हो। (२) सोमरक्षण के लिये आवश्यक है कि (क) हमारे में न्यूनताओं को दूर करने की भावना हो, (ख) प्रभु भक्ति की ओर हमारा झुकाव हो, (ग) क्रियाशील, ज्ञानी पुरुषों के साथ हमारा संग हो।

भावार्थ—हम सोमरक्षण के लिये कटिबद्ध हों। विप्र बनें, सन्त्य बनें तथा देवों के संगवाले हों।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्द्राय वायवे प्रियः

अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते। प्रिय इन्द्राय वायवे॥ ४॥

(१) **अयं सोमः**=यह सोम (वीर्य) **चमू सुतः**=द्यावापृथिवी के **निमित्त**=मस्तिष्क व शरीर के रक्षण के निमित्त उत्पन्न किया गया है। यह **अमत्रे**=इस शरीररूप पात्र में ही **परिषिच्यते**=चारों ओर सिक्त किया जाता है। शरीर में सुरक्षित हुआ-हुआ ही यह सोम शरीर को शक्तिशाली व मस्तिष्क को दीप्त बनाता है। (२) यह सोम **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये तथा **वायवे**=गतिशील पुरुष के लिये **प्रियः**=प्रीति का जनक होता है। जितेन्द्रियता व गतिशीलता ही सोम रक्षण का साधन बनती हैं। सुरक्षित सोम प्रीति को पैदा करता है।

भावार्थ—सोम का उत्पादन शरीर को तेजस्वी व मस्तिष्क को दीप्त बनाने के लिये हुआ है। जितेन्द्रियता व क्रियाशीलता द्वारा सोम का रक्षण होता है।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

आनन्द की ओर

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये। पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः॥ ५॥

(१) प्रभु कहते हैं कि—**वायो**=हे क्रियाशील जीव! तू **वीतये**=(वी-असने) अन्धकार को परे फेंकने के लिये **आयाहि**=हमारे समीप प्राप्त हो। यह उपासना तेरे अज्ञानान्धकार को विनष्ट करेगी। (२) **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक अपने कर्त्तव्यकर्मों का सेवन करता हुआ तू **हव्यदातये**=उत्तम पदार्थों के दान के लिये हो। (३) **सुतस्य**=उत्पन्न हुए-हुए **अन्धसा**=इस सोम का तू **पिबा**=पान करनेवाला बन, सोम को अपने अन्दर सुरक्षित कर और **प्रयः अभि**=(delight) आनन्द की ओर गतिवाला हो।

भावार्थ—प्रभु उपासना से ही अन्धकार नष्ट होता है। प्रीतिपूर्वक कर्मों को करते हुए हम सदा दानशील हों। भोगवृत्ति से ऊपर उठकर सोम का पान करें, यही आनन्द प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

इन्द्र और वायु

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः। ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः॥ ६॥

(१) हे **वायो**=क्रियाशील जीव! तू **च**=और **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **एषाम्**=इन **सुतानाम्**=उत्पन्न हुए सोमकणों के **पीतिं अर्हथः**=पान के योग्य हो। वस्तुतः सोमपान के दो ही मुख्य साधन हैं, (क) क्रियाशीलता व (ख) जितेन्द्रियता। (२) **अरेपसौ**=क्रियाशीलता व जितेन्द्रियता से निर्दोष बने हुए तुम **तान्**=उन सोमकणों को **जुषेथाम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करो। और **प्रयः अभि**=आनन्द की ओर चलनेवाले होवो।

भावार्थ—क्रियाशीलता व जितेन्द्रियता से जीवन निर्दोष बनता है, तभी हम सोम का रक्षण कर पाते हैं और जीवन को आनन्दमय बना पाते हैं।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

निम्नं न यन्ति सिन्धवः

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः। निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः॥ ७॥

(१) **सुताः**=उत्पन्न हुए-हुए **सोमासः**=सोमकण **इन्द्राय**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये तथा **वायवे**=क्रियाशील पुरुष के लिये **दध्याशिरः**=धारण करनेवाले (दधि) व चारों ओर बुराई को शीर्ण करनेवाले हैं। सुरक्षित सोम रोगकृमियों को नष्ट करके हमारा धारण करते हैं और वासनाओं को शीर्ण करके हमें पवित्र बनाते हैं। (२) ये सोमकण **निम्नम्**=नम्रतायुक्त पुरुष को **यन्ति**=प्राप्त

होते हैं, **न**=जैसे कि **सिन्धवः**=बहनेवाले जल निम्न प्रदेश की ओर गतिवाले होते हैं। ये सोमरक्षक पुरुष **अभि प्रयः**=आनन्द की ओर गतिवाले होते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रिय व क्रियाशील पुरुष में सुरक्षित हुए-हुए सोमकण बल का धारण करनेवाले व वासनाओं को शीर्ण करनेवाले होते हैं। ये नम्रतायुक्त पुरुष को प्राप्त होते हैं और उसके जीवन को आनन्दित करते हैं।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'देवेभिः, अश्विभ्यां, उषसा' सजूः

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥ ८॥

(१) **विश्वेभिः देवेभिः सजूः**=सब दिव्यगुणों से संगत हुआ-हुआ तथा **अश्विभ्याम्**=प्राणापान से संगत हुआ-हुआ तथा **उषसा**=उषाकाल से संगत हुआ-हुआ तू **आयाहि**=अपने कर्त्तव्यकर्मों में गतिवाला हो। दिव्यगुणों को धारण करने का प्रयत्न कर, प्राणसाधना में प्रवृत्त हो और उषाकाल में जाग। (२) इस प्रकार हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू कर्त्तव्यकर्मों को कर और **अत्रिवत्**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठा हुआ (प्रातः जागरण 'काम' को पराजित करता है, प्राणसाधना 'क्रोध' को तथा दिव्यवृत्ति 'लोभ' को विनष्ट करती है) तू **सुते**=इस सोम के सम्पादित होने पर **रण**=आनन्द का अनुभव कर।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये 'देववृत्ति, प्राणसाधना तथा प्रातः जागरण' सहायक हैं।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'मित्र वरुण सोम विष्णु' से मैत्री

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥ ९॥

(१) **मित्रावरुणाभ्याम्**=स्नेह की देवता व निर्द्वेषता की देवता से **सजूः**=संगत हुआ-हुआ तथा **सोमेन**=सौम्यत-शान्तवृत्ति से तथा **विष्णुना**=व्यापकता व उदारता से **सजूः**=संगत हुआ-हुआ **आयाहि**=तू समन्तात कर्त्तव्यकर्मों में गतिवाला हो। (२) इस प्रकार 'प्रेय, निर्द्वेषता, शान्ति व उदारता' से युक्त होकर, हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **अत्रिवत्**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठे हुए पुरुष की तरह **सुते**=सोम के उत्पन्न होने पर **रण**=आनन्द का अनुभव कर।

भावार्थ—'मित्रता, निर्द्वेषता, सौम्यता व उदारता' सोमरक्षण में सहायक हैं।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'आदित्य वसु इन्द्र व वायु' बनना

सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥ १०॥

(१) **आदित्यैः**=सब स्थानों से अच्छाई का आदान करनेवाले **वसुभिः**=उत्तम निवासवाले पुरुषों से **सजूः**=संगत हुआ-हुआ तथा **इन्द्रेण**=जितेन्द्रियता तथा **वायुना**=क्रियाशीलता से संगत हुआ-हुआ **आयाहि**=तू समन्तात् गतिवाला हो। (२) इस प्रकार 'आदित्य, वसु, इन्द्र और वायु' के गुणों से युक्त होकर, हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **अत्रिवत्**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठे हुए पुरुष के समान **सुते**=उत्पन्न-उत्पन्न हुए-हुए सोम में **रण**=आनन्द का अनुभव कर।

भावार्थ—'आदित्य, वसु, इन्द्र व वायु' का आराधन हमें सोमरक्षण में समर्थ करता है। अच्छाइयों का आदान-निवास को उत्तम बनाना, जितेन्द्रिय बनना व क्रियाशील होना ही सोमरक्षण के लिये आवश्यक है।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना

स्व॒स्ति नो॑ मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑ ।
स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृ॒थि॒वी सु॑चे॒तुना॑ ॥ ११ ॥

(१) **नः**=हमारे लिये **अश्विना**=प्राणापान **स्वस्ति**=कल्याण व क्षेम को **मिमीताम्**=निर्मित करें। प्राणायाम द्वारा प्राणसाधना करते हुए हम दोषों को दग्ध करके जीवन को कल्याणमय बनायें। **भगः**=ऐश्वर्य **स्वस्ति**=हमारा कल्याण करे। जीवन-यात्रा की आवश्यक सामग्री को जुटाने में सहायक होता हुआ यह ऐश्वर्य हमारा क्षेम-कारक हो। **देवी अदितिः**=यह प्रकाशमयी स्वास्थ्य की देवता **स्वस्ति**=क्षेम करनेवाली हो। स्वास्थ्य व प्रकाश हमें आनन्द प्राप्त करायें। **अनर्वणः**=(अ प्रति ऋतः) शत्रुओं से आक्रान्त न होनेवाला, वासनारूप शत्रुओं से पराजित न होनेवाला, **असुरः**=शत्रुओं का निरसिता (परे फेंकनेवाला) अथवा प्राणशक्ति का संचार करनेवाला **पूषा**=पोषण का देव **नः**=हमारे लिये **स्वस्ति दधातु**=कल्याण को धारण करे। (२) **द्यावापृथिवीम्**=द्युलोक से पृथिवीलोक तक सब पदार्थ **सुचेतुना**=उत्तम ज्ञान के द्वारा **स्वस्ति**=हमारा कल्याण करनेवाले हों। प्रभु ने वस्तुतः सब पदार्थ हमारे हित के लिये ही बनाये हैं। उनका हमें जब ठीक ज्ञान नहीं होता, तभी उनके अयोग व अतियोग से हम अकल्याण के भागी होते हैं। उन सब पदार्थों का ठीक ज्ञान हमें उनके यथायोग के द्वारा कल्याण प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—हमारे लिये 'प्राणापान, ऐश्वर्य, स्वास्थ्य व पोषण' सुख को देनेवाले हों। सब पदार्थ ज्ञानपूर्वक यथोपयुक्त हुए-हुए कल्याण को करनेवाले हों।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

कैसे आचार्य?

स्व॒स्तये॑ वा॒युमुप॑ ब्रवामहै॒ सोमं॑ स्व॒स्ति भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॑ ।
बृह॒स्पतिं॒ सर्व॑गणं स्व॒स्तये॑ स्व॒स्तय॑ आदि॒त्यासो॑ भवन्तु नः ॥ १२ ॥

(१) हम **स्वस्तये**=कल्याण के लिये **वायुम्**=वायुवत् क्रियाशील आचार्य को **उपब्रवामहै**= पुकारते हैं। **सोमम्**=सोम स्वभाववाले को अथवा 'स उमा' ब्रह्मविद्या से युक्त आचार्य को। यह आचार्य **स्वस्ति**=हमारे कल्याण के लिये हो, **यः**=जो **भुवनस्य पतिः**=ब्रह्माण्ड की सब विद्याओं का पति (master) है। (२) **बृहस्पतिम्**=इस वेदज्ञान के पति 'ब्रह्मणस्पति', **सर्वगणम्**= पूर्ण स्वस्थ गणोंवाले (whole स्वस्थ=सर्व) जिसके पञ्चभूत, पञ्चप्राण, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ व 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और हृदय' का पञ्चक सब स्वस्थ हैं, उस आचार्य को **स्वस्तये**=कल्याण के लिये पुकारते हैं। **आदित्यासः**='प्रकृति, जीव व परमात्मा' के ज्ञान का आदान करनेवाले आदित्य विद्वान् **नः**=हमारे **स्वस्तये**=कल्याण के लिये **भवन्तु**=हों।

भावार्थ—आचार्य 'वायु, सोम, भुवनपति, बृहस्पति, सर्वगण व आदित्य' हों। ऐसे ही आचार्य राष्ट्र का कल्याण करते हैं।

सूचना—'भुवनपति' अपराविद्या के पति हैं, 'बृहस्पति' पराविद्या के पति हैं। आचार्य 'ज्ञान-विज्ञान' दोनों में निपुण होने ही चाहिएँ।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

कैसा जीवन?

विश्वे॑ दे॒वा नो॑ अ॒द्या स्व॒स्तये॑ वैश्वान॒रो वसु॑र॒ग्निः स्व॒स्तये॑।
दे॒वा अ॑वन्त्वृ॒भवः॑ स्व॒स्तये॑ स्व॒स्ति नो॑ रु॒द्रः पा॒त्वंह॑सः॥ १३॥

(१) **विश्वेदेवाः**=सब दिव्यगुण **अद्या**=आज **नः**=हमारे **स्वस्तये**=कल्याण के लिये हों। **वैश्वानरः**=सब मनुष्यों का हित करनेवाला **वसुः**=निवास को उत्तम बनानेवाला **अग्निः**=अग्नितत्त्व (जाठराग्नि) **स्वस्तये**=हमारे कल्याण के लिये हो। वैश्वानर अग्नि पाचन क्रिया को ठीक से करती हुई हमें नीरोग बनाती है और सब दिव्यगुण हमें मानस स्वास्थ्य प्राप्त कराते हैं। (२) **ऋभवः**=(ऋतेन भान्ति) सत्य ज्ञान से दीप्त होनेवाले **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **अवन्तु**=हमारा रक्षण करें और **स्वस्तये**=हमारे क्षेम के लिये हों। और अन्त में, **रुद्रः**=सब रोगों का द्रावण करनेवाला (रुत् द्र) अथवा पाप कर्मों का दण्ड देकर रुलानेवाला (रोदयति) प्रभु **नः**=हमारे लिये **स्वस्ति**=कल्याण करे। इस कल्याण के लिये वह हमें **अंहसः पातु**=सब कष्टों से बचाये।

भावार्थ—हमारे मनों में दिव्यगुण हों, शरीर में वैश्वानर अग्नि स्वास्थ्य का कारण बने। हमें ज्ञानी देव पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त हो। रुद्ररूप में प्रभु का स्मरण पापों से बचाये।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'स्नेह निर्द्वेषता सुधन बल प्रकाश व स्वास्थ्य'

स्व॒स्ति मि॑त्रावरुणा स्व॒स्ति प॑थ्ये रेवति।
स्व॒स्ति न॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ स्व॒स्ति नो॑ अदिते कृधि॥ १४॥

(१) **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता (द्वेष निवारण) की देवताएँ **स्वस्तिः**=हमारा कल्याण करें। हम सबके प्रति स्नेहवाले हों और किसी से द्वेष न करें। हे **रेवति**=उत्तम ऐश्वर्यवाली **पथ्ये**=मार्ग की देवते! तू **स्वस्ति**=हमारा कल्याण कर। उत्तम मार्ग से धन को कमाते हुए हम अपना कल्याण सिद्ध करें। (२) **नः**=हमारे लिये **इन्द्रः च**=बल की देवता **अग्निः च**=और प्रकाश की देवता **स्वस्ति**=कल्याण करे। हमारा जीवन बल व प्रकाश के समन्वयवाला हो। हे **अदिते**=स्वास्थ्य की देवते! तू **नः**=हमारे लिये **स्वस्ति कृधि**=कल्याण को कर। स्वस्थ पुरुष ही आनन्द का अनुभव कर पाता है।

भावार्थ—हम 'स्नेह, निर्द्वेषता, उत्तम मार्ग से धन प्राप्ति, बल प्रकाश व स्वास्थ्य' को प्राप्त करके आनन्दलाभ करें।

ऋषिः—**स्वस्त्यात्रेयः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

नियमितता व सत्संग

स्व॒स्ति पन्था॒मनु॑ चरेम सूर्याचन्द्र॒मसा॑विव। पुन॒र्दद॒ताघ्न॑ता जान॒ता सं ग॑मेमहि॥ १५॥

(१) जीवन दो भागों में बटा हुआ है। शरीर संबद्ध जीवन 'भौतिक' जीवन है, आत्मसम्बद्ध जीवन ही अध्यात्म जीवन है। 'द्वौ इमौ (द्वा विमौ) पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च, क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते' क्षरांश से सम्बद्ध जीवन ही भौतिक जीवन है। इस जीवन में हम स्वस्ति पन्थां अनुचरेम=कल्याण के मार्ग का अनुसरण करें, **सूर्याचन्द्रमसौ इव**=सूर्य और चन्द्रमा की तरह सब भौतिक क्रियाओं को नियमित गति से करें। जैसे सूर्य और चन्द्रमा की गति पूर्ण ऋत को लिये हुए होती है, इसी प्रकार हमारी सब भौतिक क्रियाएं नियमित गति को लिये हुए हों।

यह नियमितता ही स्वास्थ्य का कारण बनती है। (२) अध्यात्म जीवन में उन्नति के लिये हम **पुनः**=फिर **संगमेमहि**=उन्हीं पुरुषों के संग में आएँ, जो **ददता**=देने की वृत्तिवाले हों, जिनमें कृपणता न हो, **अघ्नता**=जो शक्ति के मद में औरों का हनन न करते हों तथा **जानता**=ज्ञानी हों। दानी वैश्य, वीरता से रक्षण करनेवाले क्षत्रिय, तथा उत्कृष्ट ज्ञानी ब्राह्मण ही हमारे संगी-साथी हों। इनके संग में हम अपने जीवन को भी 'दान, उत्कृष्ट वीरता व ज्ञान' वाला बनाएँ।

भावार्थ—नियमितता हमारे भौतिक जीवन को स्वस्थ बनाये। उत्तम संग हमारे अध्यात्म जीवन को परिष्कृत करे।

इस स्वस्थ व सद्गुणोंवाले जीवन के लिये ही हम 'श्यावाश्व' बनें, गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाले बनें। आत्रेय हों, 'काम-क्रोध-लोभ' से दूर। ऐसा बनने के लिये हम 'मरुतों' की, प्राणों की, साधना में प्रवृत्त हों—

५२. [द्विपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्राणसाधना व शत्रुधर्षण

प्र श्या॑वाश्व धृष्णु॒याऽर्चा॑ म॒रुद्भि॒र्ऋक्व॑भिः। ये अ॑द्रो॒घम॑नुष्व॒धं श्रवो॒ मद॑न्ति य॒ज्ञियाः॑ ॥ १ ॥

(१) प्रभु कहते हैं कि हे **श्यावाश्व**=गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाले जीव! तू **धृष्णुया**=शत्रुओं के धर्षण के दृष्टिकोण से **ऋक्वभिः**=इन स्तुति के योग्य **मरुद्भिः**=प्राणों से **प्र अर्चा**=खूब ही प्रभु की अर्चना करनेवाला बन। प्राणसाधना ही सब अध्यात्म उन्नति का मूल है, सो प्राण अतिशयेन स्तुत्य हैं। प्राणायाम के होने पर चित्तवृत्ति का निरोध होकर हम प्रभु के उपासक बन पाते हैं। यह उपासना हमारे सब अध्यात्म शत्रुओं का संहार करती हैं। (२) उन प्राणों से तू अर्चना करनेवाला बन, **ये**=जो प्राण **अद्रोघम्**=द्रोहशून्य **अनुष्वधम्**=आत्मधारण के अनुकूल **श्रवः**=ज्ञान को प्राप्त करके **मदन्ति**=आनन्द का लाभ करते हैं। अतएव जो प्राण **यज्ञियाः**=यज्ञिय हैं, आदरणीय हैं। प्राणसाधना से अशुद्धियों का क्षय होकर वह ज्ञान प्राप्त होता है, जो ज्ञान हमें द्रोहशून्य बनाता है तथा आत्मतत्त्व का धारण कराता है।

भावार्थ—प्राणायाम द्वारा प्राणसाधना के होने पर हमारे दोष दूर होते हैं, हिंसावृत्ति नष्ट होती है, हम आत्मतत्त्व की ओर झुकते हैं। इस प्रकार जीवन वास्तविक आनन्द को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

स्थिरस्य शवसः सखायः

ते हि स्थि॒रस्य॒ शव॑सः॒ सखा॑यः॒ सन्ति॑ धृष्णु॒या।
ते याम॒न्ना धृ॑ष॒द्विन॒स्त्मना॑ पान्ति॒ शश्व॑तः ॥ २ ॥

(१) **ते**=वे प्राण **हि**=निश्चय से **स्थिरस्य**=स्थिर **शवसः**=बल के **सखायः**=मित्र **सन्ति**=हैं। प्राणसाधना से सोमशक्ति का रक्षण होकर हमें स्थिर बल की प्राप्ति होती है। **धृष्णुया**=ये प्राण शत्रुधर्षण के दृष्टिकोण से हमारे लिये इस स्थिर बल को प्राप्त कराते हैं। (२) **ते**=वे प्राण **यामन्**=इस जीवनमार्ग में **आ**=समन्तात् **धृषद्विनः**=शत्रुओं को कुचलनेवाले होते हैं। ये **त्मना**=स्वयं ही **शश्वतः**=(शश प्लुतगतौ) क्रियाशील पुरुषों का **पान्ति**=रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से स्थिर बल की प्राप्ति होती है, जीवनयात्रा में हमारे शत्रुओं का

धर्षण करते हुए ये प्राण हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'स्पन्द्रासः न उक्षणः' मरुतः

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे॥ ३॥

(१) **ते**=वे प्राण **न**=जैसे **स्पन्द्रासः**=शरीर में गतिवाले होते हैं, (स्पदि किञ्चिच्चलने) जितनी-जितनी इनकी गति सूक्ष्म होती है उतना-उतना ही ये **उक्षणः**=हमारे जीवनों में शक्ति का सेचन करनेवाले होते हैं। ये प्राण **शर्वरीः**=अन्धकार रूप रात्रियों को **अतिस्कन्दन्ति**=लाँघ जाते हैं, अर्थात् जीवन में से अन्धकार को दूर भगा देते हैं। (२) **अधा**=अब हम **मरुताम्**=इन प्राणों के **महः**=तेज को **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **च**=और **क्षमा**=इस शरीररूप पृथिवी में **मन्महे**=स्तुत करते हैं। इन प्राणों के कारण ही मस्तिष्क ज्ञान सूर्य से दीप्त हो उठता है और इन्हीं के कारण शरीर तेजस्विता से दृढ़ बन जाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा प्राणों की गति सूक्ष्म होने पर सब अन्धकार दूर हो जाएगा। तब मस्तिष्क दीप्त बनेगा, शरीर शक्ति सिक्त होकर दृढ़ होगा।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषुः॥ ४॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **वः**=तुम्हें हम **मरुत्सु**=इन प्राणों में **दधीमहि**=धारण करते हैं। ये प्राण ही तुम्हारी जीवन-यात्रा के मुख्य आधार हैं। इन प्राणों के शक्तिशाली होने पर **धृष्णुया**=शत्रुओं के धर्षण के द्वारा **स्तोमम्**=प्रभु स्तवन को **यज्ञं च**=और श्रेष्ठतम कर्मों को हम तुम्हारे अन्दर स्थापित करते हैं। (२) उन प्राणों में हम तुम्हें स्थापित करते हैं **ये**=जो **विश्वे मानुषा युगा**=सब मानुष युगों में, अर्थात् जीवन के 'प्रातः, मध्याह्न व तृतीय' सवन में, **मर्त्यम्**=मनुष्य को **रिषुः पान्ति**=हिंसा से बचाते हैं। ये प्राण न तो रोगों से और नां ही वासनाओं से मनुष्य को हिंसित होने देते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर हम प्रभु स्तवन में व श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। ये प्राण मनुष्य को सदा रोगों व वासनाओं से हिंसित होने से बचाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्राणशक्ति के लिये प्रभु का अर्चन

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः॥ ५॥

(१) **ये**=जो प्राण **अर्हन्तः**=पूजा के योग्य हैं, **सुदानवः**=सब उत्तमताओं को देनेवाले हैं अथवा अच्छी तरह (सु) बुराइयों को काटनेवाले हैं (दाप् लवने), **नरः**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हैं, **असामिशवसः**=पूर्ण बलवाले हैं, **दिवः**=प्रकाशमय हैं, ज्ञान वृद्धि के कारणभूत हैं, उन **यज्ञियेभ्यः**=संगतिकरण योग्य **मरुद्भ्यः**=प्राणों के लिये **यज्ञम्**=उस उपासनीय प्रभु को

प्र अर्चा=प्रकर्षेण पूज। (२) यह प्रभु-पूजन तेरी प्राणशक्ति की वृद्धि का कारण होगा। बढ़ी हुई प्राणशक्ति तेरी सब प्रकार की उन्नति को सिद्ध करेगी।

भावार्थ—प्रभु अर्चना से हम प्राणशक्ति का वर्धन करें। ये हमें पूर्ण बल व ज्ञान प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उत्तम आयुधों की प्राप्ति

आ रुक्मैरा युधा नर॑ ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वे॑नाँ अह॑ विद्युतो॑ मरुतो॒ जज्झ॑तीरिव भानुरर्त॒ त्मना॑ दि॒वः ॥ ६ ॥

(१) **ऋष्वाः**=महान् ये मरुत (प्राण) **नरः**=हमें जीवन-यात्रा में आगे और आगे ले चलनेवाले हैं। ये मरुत् **रुक्मैः**=देदीप्यमान ज्ञान-ज्योतियों के द्वारा तथा **युधा**=रोगों के साथ युद्ध के द्वारा **ऋष्टीः**=आयुध विशेषों को, जीवन-यात्रा के लिये आवश्यक इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि रूप अस्त्रों को **आ असृक्षत**=सर्वत्र उत्पन्न करते हैं। प्राणसाधना के द्वारा ये अस्त्र शक्तिशाली व दीप्त बनते हैं। (२) **अह**=निश्चय से **एनान् मरुतः अनु**=इन प्राणों के अनुसार ही **जज्झतीः इव**=जलों की तरह, रेतःकणों की तरह **विद्युतः**=विशिष्ट दीप्तियाँ तथा **दिवः भानुः**=ज्ञान का प्रकाश **त्मना अर्त**=स्वयं प्राप्त होता है। प्राणसाधना के परिणामस्वरूप रेतःकणों की ऊर्ध्वगति होती है तथा ज्ञानदीप्ति बढ़ती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' निर्दोष बनते हैं। रेतःकणों की ऊर्ध्वगति होकर ज्ञानाग्नि दीप्त होती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

त्रिलोकी व नाड़ी संस्थान का स्वास्थ्य

ये वा॑वृधन्त॒ पार्थि॑वा॒ य उ॒रावन्तरि॑क्ष॒ आ । वृ॒जने॑ वा न॒दीनां॑ स॒धस्थे॑ वा म॒हो दि॒वः ॥ ७ ॥

(१) शरीर में प्राण ४९ भागों में विभक्त होकर विविध कार्यों को करते हैं। उनमें कई शरीररूप पृथिवीलोक में, कई अन्तरिक्ष स्थानीय हृदय में तथा कई मस्तिष्करूप द्युलोक में कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त कई नाड़ी संस्थान में गतिवाले होते हैं। इनमें **ये**=जो प्राण **पार्थिवाः**=शरीररूप पृथिवी में स्थित हैं वे **वावृधन्त**=खूब ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं। **ये**=जो **उरौ**=विशाल **अन्तरिक्षे**=हृदयान्तरिक्ष में हैं वे भी **आ** (आवृधन्त)=समन्तात् वृद्धि का कारण होते हैं। (२) **वा**=अथवा जो प्राण **नदीनाम्**=इस नाड़ी संस्थान के **वृजने**=बल के निमित्त होते हैं अथवा **महः दिवः**=महान् मस्तिष्क रूप द्युलोक के **सधस्थे**=उस प्रभु के साथ मिलकर बैठने के स्थान में होते हैं, वे प्राण (वावृधन्तः) खूब ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—प्राण ही इस शरीर की त्रिलोकी को शरीर, हृदय व मस्तिष्क को तथा नाड़ी संस्थान को ठीक रखते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'सत्यशवस्' मरुद्गण

शर्धो॒ मारु॑तमुच्छंस स॒त्यश॑वस॒मृभ्व॑सम् । उ॒त स्म॒ ते शु॒भे नरः॒ प्र स्प॒न्द्रा यु॑जत॒ त्मना॑ ॥ ८ ॥

(१) हे मनुष्य! तू **मारुतम्**=प्राणसम्बन्धी **शर्धः**=बल का **उत् शंस**=उत्कर्षेण शंसन कर। यह प्राणों का बल **सत्यशवसम्**=सत्य के बलवाला है, मनों में सत्य का संचार करता है। प्राणसाधक असत्य नहीं बोलता। **ऋभ्वसम्**=यह बल महान् है, ऋत से दीप्त होता है। यह

प्राणसाधक ऋतमय जीवनवाला होता है। (२) **उत**=और **ते**=वे **स्पन्द्राः**=शरीर में सूक्ष्म गतिवाले प्राण **शुभे**=शुभ कार्यों में **स्म**=निश्य से **प्र युजत**=प्रकर्षेण युक्त करते हैं और अन्ततः **त्मना**=आत्मा से हमारा योग करानेवाले होते हैं। 'शुभ्' शब्द का अर्थ 'दीप्ति, आनन्द व रेतःकणरूप जल' भी है। ये प्राण 'ज्ञानदीप्ति, नीरोगता के आनन्द व उर्ध्वरेतस्कता' को भी प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्राणों का बल हमें सत्यवादी व महान् बनाता है। ये प्रवण 'ज्ञानदीप्ति, आनन्द व ऊर्ध्वरेतस्कता' को प्राप्त कराके हमें प्रभु सम्पर्क को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

परुष्णी में स्नान

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः। उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥

(१) **उत स्म**=और निश्चय से **ते**=वे प्राणसाधना करनेवाले मनुष्य **परुष्ण्याम्**=पालन व पूरण करनेवाली इस ज्ञान नदी में **शुन्ध्यवः**=अपने जीवन का शोधन करनेवाले, निष्णात बननेवाले **ऊर्णाः**=आच्छादक कवचों को **वसत**=धारण करते हैं 'ब्रह्म वर्म ममान्तरम्'। यह ज्ञानकवच उन्हें संसार की विषय-वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देता। (२) ऐसी स्थिति में ये **मरुत्**=प्राणसाधक पुरुष **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **रथानां पव्या**=इन शरीर रथों की पवि, नेमि व चक्र से **अद्रिं भिन्दन्ति**=पर्वत तुल्य दृढ़ शत्रुओं को भी विदीर्ण कर देते हैं। अर्थात् प्रबल रोगों के भी विनाशक होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करके वह साधक परुष्णी (पालन व पूरण करनेवाली ज्ञान नदी) में स्नान करता है। इस स्नान से वह शुद्ध जीवनवाला बनता है। शरीर में ओजस्विता को धारण कराके प्रबल रोगों को भी विदीर्ण करनेवाला होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'जीवन-यज्ञ के वाहक' प्राण

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः। एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥

(१) शरीर में प्राण विविध रूपों में गति कर रहे हैं। उनमें 'व्यान' 'सर्वशरीरग' कहलाता है। इन व्यान के प्रकार के मरुतों को यहाँ '**आपथयः**' समन्तात् पथवाले, शरीर में चारों ओर गतिवाले। 'उदान' विविध मार्गों से जीव को ले जाता है। इस उदान के प्रकार के मरुतों को '**विपथयः**' कहा है, विविध मार्गोंवाले। 'समान' वायु शरीर के अन्दर स्थित हुआ-हुआ समगति का कारण होता है, ये '**अन्तस्पथाः**' हैं, शरीर के मध्य में गतिवाले। 'प्राण और अपान' '**अनुपथाः**' कहे गये हैं, अनुकूल मार्गोंवाले। इनमें अपान शोधन करता है और प्राण शक्ति का संचार करता है। (२) **एतेभिः नामभिः**=इन नामों से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए-हुए **विष्टारः**=विविध कार्यों को विस्तार करनेवाले मरुत् **मह्यम्**=मेरे लिये **यज्ञम्**=इस जीवन-यज्ञ को **ओहते**=वहन करते हैं।

भावार्थ—विविध रूपों में कार्यों को करते हुए ये मरुत्-प्राणभेद हमारे जीवन यज्ञ का वहन करते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

चित्रारूपाणि दर्श्या

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते। अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥

(१) **अध**=अब **नरः**=शरीर-यज्ञ का प्रणयन करनेवाले ये प्राण **नि ओहते**=निश्चय से जीवन भर का वहन करते हैं। **अधा**=और **नियुतः**=सब इन्द्रियाश्वों का **ओहते**=ये ही वहन करते हैं, सब इन्द्रियों में ये ही शक्ति का स्थापन करते हैं। (२) **अधा**=अब ये **पारावताः**=दूर-दूर देश में ले जानेवाले होते हैं, इस शरीर को छोड़ने पर ये ही जीव को सुदूर देश में किसी अन्य शरीर में प्राप्त कराते हैं। 'उदान' वायु का तो कार्य यह ही माना गया है। **इति**=इस प्रकार इन प्राणों के **रूपाणि**=रूप **चित्रा**=अद्भुत हैं और **दृश्या**=दर्शनीय हैं।

भावार्थ—प्राण हमें उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाले हैं, ये ही इन्द्रियों को शक्ति देते हैं, ये ही सुदूर देशों में ले जाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

न तायवः

छन्दः स्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥ १२ ॥

(१) **छन्दः स्तुभः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा सब वासनारूप शत्रुओं को रोक देनेवाले (स्तुभ्=stop) **कुभन्यवः**=शरीर को शक्ति से सिक्त करनेवाले (कुभिरुन्दवकर्मा), **उत्सं कीरिणः**=स्तवन करनेवाले ये मरुत् उत्सम्=उस ज्ञान व आनन्द के स्रोत प्रभु को **आनृतुः**=हमारे जीवन में (आनीतवन्तः सा०) लाते हैं। हम इन मरुतों की कृपा से प्रभु का दर्शन करनेवाले होते हैं। (२) **ते**=वे प्राण **मे**=मेरे लिये **केचित्**=अवर्णनीय-अद्भुत **ऊमाः**=रक्षक हैं। **न तायवः**=ये चोर नहीं हैं, हमारे जीवन के प्रहरी हैं। ये प्राण **दृशि**=ज्ञान के निमित्त होते हैं, प्रभु दर्शन करानेवाले होते हैं तथा **त्विषे आसन्**=दीप्ति के लिये, तेजस्विता के लिये होते हैं।

भावार्थ—प्राण ज्ञान वृद्धि द्वारा वासनाओं को रोकते हैं। शरीर को ये शक्ति से सिक्त करते हैं। हमें स्तवन की वृत्तिवाला बनाते हैं। इस प्रकार ये हमें ज्ञानी व तेजस्वी बनानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्राणोपासना

य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः । तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥

(१) **ये**=जो मरुत (प्राण) **ऋष्वाः**=दर्शनीय है, **ऋष्टि विद्युतः**='इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप आयुधों से द्योतमान हैं, **कवयः**=क्रान्तदर्शी हैं तथा **वेधसः**=शरीर के अंग-प्रत्यंगों का सुन्दर निर्माण करनेवाले हैं, हे **ऋषे**=तत्त्वद्रष्टः पुरुष! **तं मारुतं गणम्**=उस प्राणों के गण को **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **रमया**=शरीर में क्रीडा करा और **नमस्य**=पूजित कर। (२) प्राणों की शक्ति अद्भुत है, वे अपनी शक्ति के कारण दर्शनीय हैं। ये 'इन्द्रिय, मन, बुद्धि' रूप आयुधों को विद्योतित करते हैं। बुद्धि को तीव्र बनाते हैं। सब अंगों की शक्ति के विधाता हैं। ज्ञान प्रधान जीवन बिताने से प्राणशक्ति का पोषण होता है। यही प्राणों का पूजन है। भोग-विलास का जीवन बिताना ही प्राणों का निरादर है।

भावार्थ—प्राणसाधना से जीवन दर्शनीय-सूक्ष्म बुद्धिवाला व पुष्ट अंगोंवाला बनता है। हम ज्ञान प्रधान जीवन बिताते हुए प्राणों का पोषण व पूजन करें।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

दाना-योषणा

अच्छं ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥

(१) हे **ऋषे**=तत्त्वद्रष्टः पुरुष! **दाना**=दान के द्वारा, त्यागवृत्ति को अपनाने के द्वारा तथा **योषणा**=स्तुति के द्वारा **मित्रं न**=मित्र के समान **मारुतं गणम्**=इन प्राणों के समूह की **अच्छ**=ओर आनेवाला हो। हम प्राणों की आराधना करें। इस आराधना के लिये आवश्यक है कि (क) त्यागवृत्ति को अपनाएँ और (ख) प्रभु की स्तुतिवाले हों। (२) हे **दिवः**=प्रकाशमय **वा**=तथा **ओजसा धृष्णवः**=ओज से (बल से) शत्रुओं का धर्षण करनेवाले प्राणो! **स्तुताः**=स्तुति किये गये आप **धीभिः**=बुद्धियों के साथ **इषण्यत**=हमारे इस जीवन-यज्ञ में प्राप्त होवो।

भावार्थ—प्राणसाधना में त्यागवृत्ति व प्रभु-स्तवन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्तुति किये गये प्राण हमारे जीवन को प्रकाशमय-शत्रुधर्षणवाला तथा बुद्धि-सम्पन्न बनाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

दाना-नवक्षणा

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा। दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥

(१) **नु**=अब **एषां**=इन प्राणों का **मन्वानः**=स्तवन करता हुआ **देवान् अच्छा**=दिव्य गुणों की ओर चलता है, प्राणस्तवन हमारे अन्दर दिव्य गुणों का वर्धन करता है। (२) **न वक्षणा**=(by not waxing in riches) धनों में न बढ़ते हुए, अपितु **दाना**=दानवृत्ति से, अर्थात् दानवृत्ति के द्वारा धनों का ढेर न लगाते हुए इन प्राणों के साथ **सचेत**=संगत हो। उन प्राणों के साथ जो **सूरिभिः**=विद्वान् हैं, हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाले हैं। **यामश्रुतेभिः**=अपने वेग के कारण प्रसिद्ध हैं, स्फूर्ति को पैदा करनेवाले हैं और **अञ्जिभिः**=हमारे जीवनों को दिव्यगुणों से अलंकृत करनेवाले हैं।

भावार्थ—दानवृत्ति व धनसंग्रह की वृत्ति का न होना प्राणसाधना में सहायक है। ये प्राण हमारे 'ज्ञान-वेग तथा सद्गुणालंकृति' का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

गां, मातरं, पितरम्

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम्।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥

(१) **ये**=जो प्राण **मे**=मेरे लिये **बन्धु एषे**=बन्धु उस मित्रभूत प्रभु के अन्वेषण के लिये **गाम्**=इस ज्ञान की वाणी का **प्रवोचन्त**=उपदेश करते हैं। जो प्राण हैं, वे **सूरयः**=ज्ञान को प्रेरित करनेवाले होते हुए इस **पृश्निम्**=ज्योतियों के स्पर्शवाली **मातरम्**=मातृभूत वेदवाणी का **प्रवोचन्त**=उपदेश करते हैं। (२) **अधा**=अब **शिक्वसः**=हमें शक्तिशाली बनानेवाले ये प्राण **इष्मिणम्**=हृदयस्थरूपेण प्रेरणा को देनेवाले **रुद्रम्**=सब रोगों के द्रावक उस प्रभु का जो **पितरम्**=हमारे रक्षक हैं, उनका **वोचन्त**=प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर हमारा ज्ञान बढ़ता है (गाम्), हमारा वेद माता से परिचय

होता है (मातरं), हम हृदयस्थ प्रेरक पिता प्रभु को जान पाते हैं (पितरं)। इस प्रकार ये प्राण हमारी शक्ति को बढ़ाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'गव्यं अश्वयं' राधः

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे॥ १७॥

(१) शरीर में प्राण ४९ भागों में विभक्त होकर कार्य कर रहे हैं। ये **सप्त सप्त**=सात गुणा सात, अर्थात् ४९ प्राण **मे**=मेरे लिये **शाकिनः**=शक्ति का संचार करनेवाले हैं। **एकं एका**=इनमें से एक-एक **शता ददुः**=मेरे लिये सौ वर्ष के आयुष्य को देनेवाले होते हैं। सब प्राण ठीक हों, तभी सौ वर्ष का जीवन प्राप्त होता है। (२) **यमुनायां अधि**=संयम नदी के प्रवाह के होने पर, अर्थात् ठीक संयम के होने पर मैं **श्रुतम्**=ज्ञान को, जो **गव्यम्**=ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी **उद्राधः**=उत्कृष्ट धन है, **मृजे**=शुद्ध करता हूँ। प्राण संयम के होने पर ज्ञानाग्नि दीप्त होती ही है। मैं इस प्राण संयम के होने पर **अश्व्यं राधः**=कर्मेन्द्रिय सम्बन्धी ऐश्वर्य को भी **मृजे**=शुद्ध करता हूँ। अर्थात् प्राणसाधना से परिमार्जित हुई-हुई कर्मेन्द्रियाँ भी उत्कृष्ट कर्मोंवाली होती हैं।

भावार्थ—प्राण हमें शक्तिशाली बनाते हैं। शतवर्ष के जीवन को प्राप्त कराते हैं। ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को परिमार्जित कर ज्ञान व यज्ञों को प्राप्त कराते हैं।

अगला सूक्त भी इन्हीं मरुतों का उल्लेख करता है—

५३. [त्रिपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिग्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्राणायामैर्दहेद् दोषान्

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम्। यद्युयुज्रे किलास्यः॥ १॥

(१) **कः**=कोई विरला पुरुष ही **एषां जानं वेद**=इन प्राणों के प्रादुर्भाव व विकास को जानता है। अर्थात् विरला व्यक्ति ही प्राणसाधना में प्रवृत्त होते हैं और प्राणशक्ति का विकास करते हैं। **वा**=अथवा **कः**=कोई ही **पुरा**=सब से प्रथम **मरुताम्**=इन प्राणों के **सुम्नेषु**=स्तवनों में **आस**=स्थित होता है। अर्थात् विरला व्यक्ति ही प्राणसाधना को सर्वप्राथमिकता देते हैं। सामान्यतः इस प्राणसाधना में प्रवृत्त ही नहीं होते और यदि कोई प्रवृत्त होते भी हैं, तो वे इस प्राणसाधना को सर्वमहत्त्वपूर्ण कार्य नहीं समझते। (२) **यद्**=जब कोई विरला पुरुष इस प्राणसाधना को महत्त्व देता है, तो **किलास्यः**=ये इन्द्रियरूप वडवायें (घोड़ियाँ) **युयुज्रे**=इस शरीर-रथ में जोती जाती हैं, कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ सदा ज्ञानप्राप्ति में लगी रहती हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना में विरले ही मनुष्य प्रवृत्त होते हैं। जब प्रवृत्त होते हैं, तो उनके इन्द्रियाश्व यज्ञों व ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त रहते हैं। एवं प्राणायाम से इन्द्रियदोषों का दहन हो जाता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्राणों के गति-विज्ञान की चर्चा को सुनना

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह॥ २॥

(१) **रथेषु**=शरीर-रथों में **आतस्थुषः**=स्थित हुए-हुए **एतान्**=इन प्राणों को **कः शुश्राव**=कौन सुनता है? कोई विरले पुरुष ही इन प्राणों की कथा को सुनने का प्रयत्न करता है कि **कथा ययुः**=ये किस प्रकार शरीर में गति करते हैं? प्राणों के गति विज्ञान को समझकर ही इन प्राणों की साधना से कोई पुरुष उन्नति को प्राप्त होता है। (२) **सुदासे**=उत्तम दान की वृत्तिवाले अथवा (दसु उपक्षये) वासनाओं का क्षय करनेवाले पुरुष में **आपयः**=बन्धुभूत ये प्राण **इडाभिः सह**=ज्ञान की वाणियों के साथ **वृष्टयः**=सुखों की वर्षा करनेवाले होते हुए **कस्मै**=उस आनन्दस्वरूप प्रभु की प्राप्ति के लिये **अनुसस्त्रुः**=अनुकूलता से गतिवाले होते हैं। प्राणसाधना ज्ञान को बढ़ाती है, नीरोगता के द्वारा आनन्द का कारण बनती है और हमें प्रभु की ओर ले चलती है।

भावार्थ—विरल पुरुष ही प्राणों के गति विज्ञान की बात को सुनता है। ये प्राण वासनाओं को विनष्ट करनेवाले पुरुष के लिये बन्धुभूत होते हैं, उसे ज्ञान व स्वास्थ्य का आनन्द प्राप्त कराते हैं और प्रभु की ओर ले चलते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्राण क्या कहते हैं?

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे। नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि॥ ३॥

(१) **ये**=जो प्राण **द्युभिः**=ज्ञान-ज्योतियों के द्वारा तथा **विभिः**=गतिमय इन्द्रियाश्वों के द्वारा **मदे**=हमारे उल्लास के निमित्त **उपाययुः**=हमें समीपता से प्राप्त होते हैं, **ते**=वे प्राण **मे आहुः**=मुझे कहते हैं कि (क) **नरः**=ये प्राण आगे और आगे ले चलनेवाले हैं, (ख) **मर्याः**=मनुष्यों का हित करनेवाले हैं तथा (ग) **अरेपसः**=निर्दोष हैं, सब दोषों को हमारे जीवन से दूर करनेवाले हैं। **इमान्**=हम इन प्राणों को **इति पश्यन्**=इस प्रकार देखते हुए **स्तुहि**=स्तुत करें। प्राणों के इन गुणों का स्मरण करते हुए प्राणसाधना में प्रवृत्त हों।

भावार्थ—प्राण हमें ज्ञान व उत्तम इन्द्रियाश्व प्राप्त कराके आनन्दित करते हैं। ये हमें आगे ले चलनेवाले हैं, मनुष्यों का हित करनेवाले हैं तथा निर्दोष हैं।

उन प्राणों का स्तवन कर, जो—

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

हम ज्ञानवान का स्तवन करें

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु। श्राया रथेषु धन्वसु॥ ४॥

(१) **ये**=जो प्राण **अञ्जिषु**=(अञ्जू गतौ) यज्ञादि कर्मों की प्रवृत्तियों में **स्वभानवः**=आत्म दीप्तिवाले **श्रायाः**=आश्रयणीय होते हैं, उन प्राणों का तू स्तवन कर। **ये**=जो **वाशीषु**=ज्ञान की वाणियों में आश्रयणीय होते हैं उनका स्तवन कर। (२) **स्रक्षु**=(सृज्) निर्माणात्मक कार्यों में, **रुक्मेषु**=ज्ञान दीप्तियों में (रुच् दीप्तौ) तथा **खादिषु**=शस्त्रों में व वासनाओं को विनष्ट करने में **श्रायाः**=आश्रयणीय होते हैं। इनकी साधना से ही मनुष्य निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है, वह ज्ञान को दीप्त कर पाता है और शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ होता है। ये प्राण **रथेषु**=इन शरीर रथों को उत्तम रखने के निमित्त आश्रयणीय होते हैं तथा **धन्वसु**='प्रणव' रूप धनुष को प्राप्त करने के निमित्त आश्रयणीय होते हैं। अर्थात् हमारे शरीरों को ठीक रखते हुए ये प्राण हमें प्रभु-प्रवण करते हैं।

भावार्थ—प्राण हमें गतिशील व ज्ञानदीप्त बनाते हैं। वे हमें निर्माणात्मक कार्यों में, ज्ञान प्राप्ति

में व वासनाविनाश में प्रवृत्त करते हैं। इनके कारण शरीर रथ दृढ़ बनता है और मनुष्य प्रभु के नाम का जप करनेवाला होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

मरुतः जीरदानवः

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः। वृष्टी द्यावो यतीरिव॥ ५॥

(१) हे **जीरदानवः**=उत्तम जीवन का प्रदान करनेवाले प्राणो! **मुदे**=आनन्द प्राप्ति के लिये **युष्माकम्**=तुम्हारे **रथान्**=शरीर-रथों को **अनुदधे स्म**=अनुकूलता से धारण करता हूँ। (२) उन प्राणों को मैं धारण करता हूँ जो **वृष्टी** (वृष्ट्यां)=वृष्टि के होने के समय **यतीः द्यावः इव**=गतिशील ज्योतियों के समान हैं। वस्तुतः प्राणसाधन के होने पर आनन्द की वृष्टि होती है और साथ ही ज्ञानदीप्ति का प्रसार होता है।

भावार्थ—प्राण हमें जीवन देते हैं। प्राणसाधनावाला शरीर रथ हमारे आनन्द के लिये होता है। आनन्द की वृष्टि में वे प्राण ज्ञानदीप्ति का संचार करते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वृष्टिवाहक वायुएँ

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः॥ ६॥

(१) आधिदैविक क्षेत्र में 'मरुतः' का अर्थ है 'वृष्टिप्रद वायुयें'। ये वृष्टिवाहक वायुयें **नरः**=मेघों को आगे और आगे ले चलनेवाली हैं। **सुदानवः**=ये वृष्टि द्वारा उत्तम अन्नादि पदार्थों को देनेवाली हैं। ये **ददाशुषे**=हवि को देनेवाले, यज्ञशील-प्रजावर्ग के लिये **यम्**=जिस **कोशम्**=जल के कोशभूत मेघ को **दिवः**=अन्तरिक्षलोक से **आचुच्यवुः**=क्षरित करते हैं, उस **पर्जन्यम्**=मेघ को **रोदसी**=द्यावापृथिवी की **अनु**=अनुकूलता से **विसृजन्ति**=उत्पन्न करते हैं। पृथिवीस्थ जल जब द्युलोकस्थ सूर्य की किरणों से वाष्पीभूत होकर ऊपर जाता है, तभी पर्जन्य का निर्माण होता है। उसी समय **धन्वना**=उदक के साथ **वृष्टयः**=वृष्टि को करनेवाले ये मरुत् **यन्ति**=गति करते हैं (गच्छता उदकेन सह वृष्टिप्रद मरुतो यन्ति सा०)। इन मरुतों से उस-उस स्थान में प्राप्त कराये गये ये मेघ वृष्टि को करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—मरुत्, अर्थात् वृष्टिवाहक वायुयें मेघों से वृष्टि को कराके यज्ञशील प्रजावर्ग के लिये उत्तम अन्नों को देनेवाली होती हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

धेनवः यथा-अश्वाः इव

ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा।
स्यन्ना अश्वाइवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः॥ ७॥

(१) **ततृदानाः**=मेघों का विदारण करते हुए **सिन्धवः**=वहनेवाले ये वृष्टिवाहक वायु **क्षोदसा**=उदक से, पानी से **रजः**=अन्तरिक्ष में **प्रसस्रुः**=गतिवाले होते हैं, अन्तरिक्ष में आगे और आगे बढ़ते हैं। यथा जैसे **धेनवः**=गौवें दूध के साथ बछड़े की ओर बढ़ती हैं। उस दूध से जैसे बछड़े का आप्यायन होता है, इसी प्रकार इन वृष्टिजलों से प्राणियों का आप्यायन होता है। (२)

स्यन्ना अश्वाः=शीघ्र गतिवाले अश्व **इव**=जैसे **अध्वनः विमोचने**=प्राणियों के मार्गविमोक के लिये, रास्ते को तय करने के लिये, होते हैं, इसी प्रकार **यद्**=जब **एन्यः**=नदियाँ **विवर्तन्ते**=विविध मार्गों में चलती हैं तो प्राणियों की जीवन-यात्रा की पूर्ति के लिये होती हैं। मरुत् ही वृष्टि द्वारा इन नदियों को प्रवाहित करते हैं और इस प्रकार हमारी जीवन-यात्रा की पूर्ति करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—मरुतों से बरसाये गये वृष्टिजल हमारा आप्यायन करते हैं और नदियों के प्रवाहों से अन्नादि को देकर ये हमारी जीवन-यात्रा को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'द्युलोक-अन्तरिक्षलोक व पृथिवीलोक'

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत। माव स्थात परावतः॥ ८॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **दिवः**=द्युलोक के हेतु से, मस्तिष्करूप द्युलोक को ठीक रखने के लिये **आयात**=प्राप्त होवो। प्राणसाधना से मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति होती ही है 'योगाङ्गानुष्ठानाद् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः'। **अन्तरिक्षाद् आ** (यात)=इस हृदयान्तरिक्ष के हेतु से तुम प्राप्त होवो। प्राणसाधना ही दोषों का उपक्षय करता है। **उत**=और **अमात्**=इस हमारे गृहभूत पार्थिव शरीर के हेतु से तुम हमें प्राप्त होवो। इस शरीर में होनेवाले सब रोग-कृमियों को प्राणों ने ही तो नष्ट करना है। (२) हे प्राणो! **परावतः**=दूरदेश में **मा अवस्थात**=हमारे से परे मत ठहरो। अर्थात् हम सदा प्राणसाधना करनेवाले बनें। प्राणसाधना से हम दूर न हों।

भावार्थ—प्राणसाधना हमारे मस्तिष्क हृदय व शरीर तीनों को स्वस्थ बनायेगी।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

रसा-सिन्धु-सरयुः

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत्।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः॥ ९॥

(१) हे मरुतो प्राणो! **वः**=तुम्हें यह **रसा**=अंग-प्रत्यंग में रसवाला, लोचलचकवाला, खूब स्वस्थ शरीर, जो **अनितभा**=(न+इत+भा) अप्राप्त ज्ञानदीप्तिवाला है अथवा **कुभा**=कुत्सित ज्ञानदीप्तिवाला अथवा अत्यल्प ज्ञानदीप्तिवाला है, वह शरीर **मा निरीरमत्**=मत आनन्दित करे। अर्थात् ये प्राण केवल शरीर को ही स्वस्थ बनानेवाले न हों। (२) **वः**=तुम्हें यह **क्रुमुः**=अत्यन्त श्रमशील इधर-उधर गतिवाला **सिन्धुः**=हृदयान्तरिक्ष भी **मा**=मत रोक ले। तुम केवल हृदय को ही निरुद्ध करने में न लगे रहो। (२) और हे प्राणो! यह **पुरीषिणी**=ज्ञान-जल से परिपूर्ण **सरयुः**=सब विषयों में गतिवाली, सब विषयों का ज्ञान देनेवाली, ज्ञान-नदी भी, बुद्धि भी **मा**=मत **वः**=तुम्हें **परिष्ठात्**=चारों ओर से घेर ले। अर्थात् तुम केवल बुद्धि के चारों ओर ही न लगे रहो। तुम्हारे द्वारा होनेवाला परिमार्जन का काम 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को ही अपना विषय बनाएँ। तुम्हारी साधना से जहाँ शरीर स्वस्थ व नीरोग बने, वहाँ मन संयत व निर्दोष हो तथा बुद्धि ज्ञानजल से परिपूर्ण व सब विषयों में गतिवाली हो। इस प्रकार हे प्राणो! **अस्मे**=हमारे लिये **वः**=तुम्हारे से दिया जानेवाला **सुम्नम्**=आनन्द **अस्तु**=हो। हमारा जीवन त्रिविध उन्नति से पूर्ण आनन्द को प्राप्त करे।

भावार्थ—हमारी प्राणसाधना 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का व्यापन करती हुई हमें सुख व आनन्द प्राप्त कराये।

ऋषि:—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'स्वास्थ्य और इन्द्रिय दीप्ति' से प्राप्य आनन्द

तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम्। अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥

(१) हे प्राणो! **वः**=आपके **नव्यसीनाम्**=स्तुति के योग्य (नु स्तुतौ) **रथानाम्**=शरीर-रथों के **तं मारुतं शर्धम्**=उस प्राण सम्बन्धी बल को तथा **त्वेषं गणम्**=दीप्त इन्द्रिय समूह को **अनु**=लक्ष्य करके, अर्थात् उसके अनुसार **वृष्टयः**=आनन्द की वर्षाएँ **प्रयन्ति**=प्रकर्षेण प्राप्त होती हैं। (२) प्राणसाधना से शरीर-रथ सबल व दृढ़ बनता है तथा इन्द्रिय समूह खूब दीप्त होता है। ऐसी स्थिति में ही आनन्द की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारा शरीर शक्ति-सम्पन्न हो, इन्द्रियाँ दीप्त हों। तभी आनन्द होगा।

ऋषि:—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

शर्ध-व्रात-गण

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः। अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥

(१) हम **एषाम्**=इन प्राणों के **शर्धं शर्धम्**=अंग-प्रत्यंग में होनेवाले उस-उस बल को **अनुक्रामेम**=अनुक्रमेण प्राप्त हों। इन प्राणों के द्वारा हमारे सब अंग सबल हो। (२) हम इन प्राणों के **व्रातं व्रातम्**=प्रत्येक व्रतसमूह को **सुशस्तिभिः**=उत्तम शंसनों-स्तुतियों के साथ प्राप्त हों। प्रभु स्तवन करते हुए हम प्राणसाधना के द्वारा व्रतमय जीवनवाले हों। (३) **गणं गणम्**=प्रत्येक गण को (group) 'कर्मेन्द्रिय पञ्चक, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, प्राण पञ्चक व अन्तःकरण पञ्चक' (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हृदय) आदि गणों को **धीतिभिः**=उत्तम कर्मों के द्वारा (अनुक्रामेम) अनुकूलता से प्राप्त करें।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा हमारा जीवन 'सबल, व्रती व उत्तम इन्द्रियादिगणोंवाला' हो।

ऋषि:—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आनन्दमय-उत्तम प्रादुर्भाववाला-त्यागमय जीवन

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः। एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥

(१) गतमन्त्र में कहा था कि हम प्राणसाधना के द्वारा जहाँ बल को प्राप्त करते हैं, वहाँ हमारा जीवन व्रतमय होता है और हमारे इन्द्रियादि के गण उत्तम बनते हैं। **एना**=इस 'बल, व्रत व उत्तम इन्द्रिय आदि के गणोंवाले' **यामेन**=मार्ग से **मरुतः**=प्राण-प्राणसाधना करनेवाले पुरुष, **अद्य**=आज **कस्मै**=उस आनन्दस्वरूप, **सुजाताय**=उत्तम प्रादुर्भाववाले, **रातहव्याय**=सब हव्य पदार्थों को देनेवाले प्रभु के लिये **प्रययुः**=प्रकर्षेण गतिवाले होते हैं। (२) प्राणसाधना से अन्ततः 'विवेकख्याति' प्राप्त होती है, यह विवेकख्याति प्रभु-दर्शन का साधन बनती है।

भावार्थ—प्राण हमें आनन्दस्वरूप, उत्तम प्रादुर्भाववाले, हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले प्रभु की ओर ले चलते हैं। हमारे जीवनों को भी ये आनन्दमय, उत्तम प्रादुर्भाववाला व त्यागमय व यज्ञशील बनाते हैं।

ऋषि:—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'विश्वायु सौभग' धन

येन तोकाय तनयाय धान्यं१ बीजं वहध्वे अक्षितम्।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥ १३ ॥

(१) हे मरुतो-प्राणो! आप **येन**=जिस धन के द्वारा **तोकाय तनयाय**=हमारे पुत्र-पौत्रों के लिये **अक्षितम्**=न क्षीण होनेवाले **धान्यम्**=धान्य व **बीजम्**=बीजों को **वहध्वे**=प्राप्त कराते हो, **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **तत्**=उस **राधः**=धन को **धत्तन**=धारण करो। (२) **वः**=आपके **यद्**=जिस धन को **ईमहे**=हम माँगते हैं वह हमारे लिये **विश्वायु**=पूर्ण जीवन को प्राप्त करानेवाला हो, हमारे 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को ठीक करनेवाला हो तथा **सौभगम्**=यह हमारे सौभाग्य का कारण हो। यह हमें उन धान्यों व बीजों को प्राप्त करने के सक्षम करे, जिनसे कि हमारे पुत्र-पौत्रों का धारण हो पाये।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें उस धन को प्राप्त करने के योग्य बनाये, जो हमारे लिये 'विश्वायु व सौभग' हो तथा परिवार पालन के लिये धान्य व बीज की कमी न होने दे।

सूचना—यहाँ 'धान्य बीज' शब्द का प्रयोग 'अमांसाहार' का स्पष्ट निर्देश कर रहा है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

अनिष्ट परिहार-इष्ट प्राप्ति

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! हम **अवद्यम्**=पापों को **अरातीः**=काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं को **हित्वा**=छोड़कर **स्वस्तिभिः**=कल्याणकर मार्गों से चलते हुए **तिरः**=अन्तर्हित रूप में प्राप्त, अन्दर ही अन्दर उत्पन्न हो जानेवाले, **निदः**=निन्दनीय भावों को **अतीयाम**=लाँघ जाएँ। प्राणसाधना द्वारा हम अशुभों का परिहार कर सकें। (२) **वृष्ट्वी**=प्राणसाधना से प्रेरित आनन्द की वर्षा के होने पर अथवा सर्वत्र शरीर में शक्ति का सेचन होने पर **शम्**=शान्ति को, **योः**=भयों के यावन को, **आपः**=रेतःकणों को **उस्रि**=प्रकाश की किरणों को व **भेषजम्**=रोगनिवारक परम औषध को (वीर्य को) **सह स्याम**=साथ-साथ प्राप्त हों। ये शान्ति आदि इष्ट बातें हमें मिलें।

भावार्थ—प्राणसाधना से अनिष्ट परिहार व इष्ट प्राप्ति होती है, सब निन्दनीय दूर होकर प्रशंसनीय प्राप्त होता है। अशुभ से दूर शुभ के हम समीप होते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

सुदेवः सुवीरः

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः। यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **यं त्रायध्वे**=आप जिसका रक्षण करते हैं, **ते स्याम**=हम वे बनें। अर्थात् हम सदा प्राणसाधना करते हुए इन प्राणों के द्वारा रक्षणीय हों। (२) हे **नरः**=हमें उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले मनुष्यो! **स मर्त्यः**=आप से रक्षणीय मनुष्य **सुदेवः**=उत्तम देववृत्तिवाला, **समह**=तेजस्विता से सम्पन्न ('समह' में विभक्ति का लुक् है) व **सुवीरः**=उत्तम वीर **असति**=होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना करनेवाला प्राणों से रक्षित पुरुष 'उत्तम देव' व तेजस्विता सम्पन्न 'सुवीर' बनता है। प्राण शरीर को नीरोग बनाकर साधक को 'वीर' बनाते हैं। मन को नीरोग बनाकर उसे 'सुदेव' बनाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पूर्व सखा

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे।
यतः पूर्वाँइव सखींरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥

(१) इन **भोजान्**=पालन करनेवाले, शरीर, मन व बुद्धि का रक्षण करनेवाले तथा **स्तुवतः**=प्रभु का स्तवन करनेवाले प्रभु की ओर हमारा झुकाव करनेवाले, प्राणों का **स्तुहि**=प्रशंसन करो। इन प्राणों की महिमा का स्मरण करो। **अस्य**=इस प्राणगण के **यामनि**=मार्ग में **गावः रणन्**=ज्ञान की वाणियाँ रमण करती हैं **न**=जैसे गौवें **यवसे**=घास में रमण करती हैं। प्राणसाधक के जीवन में ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। (२) **यतः**=इन गतिशील मरुतों को **पूर्वान्**=पालन व पूरण करनेवाले **सखीन् इव**=मित्रों के समान **अनु ह्वयः**=पुकार से प्राण ही सर्वप्रथम मित्र हैं। इन **कामिनः**=सदा भला चाहनेवाले प्राणों को **गिरा**=इन ज्ञानवाणियों से **गृणीहि**=स्तुत कर। प्राणसाधना करते हुए हम ज्ञान को बढ़ायें, इस ज्ञान को देकर ही ये प्राण हमारा उत्कृष्ट हित करते हैं।

भावार्थ—प्राण (क) हमारा पालन करते हैं, (ख) हमें प्रभु स्तवन की ओर झुकाते हैं, (ग) हमारे ज्ञान को बढ़ाते हैं। एवं ये प्राण ही हमारे सर्वप्रथम मित्र हैं।

अगले सूक्त में भी श्यावाश्व मरुतों का आराधन करता है—

५४. [चतुःपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'मरुत् शर्ध' का स्तवन

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत॥ १ ॥

(१) **मारुताय**=प्राण-सम्बन्धी **शर्धाय**=बल के लिये **इमां वाचम्**=इस स्तुतिवाणी को **प्र अनज**=प्रकर्षेण प्राप्त कराओ जो मारुत बल **स्वभानवे**=आत्म दीप्तिवाला है और **पर्वतच्युते**=अविद्या पर्वत को विनष्ट करनेवाला है। (२) उस प्राणों के बल के लिये तुम स्तवन करो जो **घर्मस्तुभे**=शरीर में गर्मी को, उचित शक्ति की उष्णता को, थामनेवाला है और **दिवः**=ज्ञान के द्वारा **पृष्ठयज्वने**=यज्ञशील पुरुषों के लिये पृष्ठ (back bone) के समान बनते हैं। ये प्राणसाधना करनेवाले पुरुष यज्ञशील होते हैं, भोगवृत्ति से दूर होकर ये यज्ञियवृत्तिवाले होते हैं। (३) **द्युम्नश्रवसे**=देदीप्यमान ज्ञान के प्रकाश की प्राप्ति के लिये **महि नृम्णम्**=प्राणों के इस महान् बल की **अर्चत**=अर्चना करो। प्राण-सम्बन्धी बल बुद्धि को सूक्ष्म बनायेगा और देदीप्यमान ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करायेगा।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) आत्मज्ञान की दीप्ति प्राप्त होती है, (ख) अविद्या नष्ट होती है, (ग) शरीर में शक्ति का उचित संरक्षण होता है, (घ) जीवन यज्ञमय बनता है और (ङ) देदीप्यमान ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'वयोवृधः-अश्वयुजः' मरुतः

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः॥ २ ॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **वः**=तुम्हारे **तविषाः**=बल **उदन्यवः**=इन रेतःकण रूप जलों की कामनावाले होते हैं प्राणसाधना से इन रेतःकणों की ऊर्ध्वगति होती है। ये रेतःकणों के रक्षण के द्वारा **वयोवृधः**=आयुष्य को बढ़ानेवाले हैं। **अश्वयुजः**=इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में जोतनेवाले हैं, अर्थात् हमें सदा क्रियाशील बनानेवाले हैं और **परिज्रयः**=उन-उन कार्यों में चारों ओर गतिवाले होते हैं। (२) ये प्राणों को बल **प्र विद्युता**=विशिष्ट ज्ञानदीप्ति के साथ **संदधति**=हमारा मेल करते हैं। इन प्राणों के बल से ही **आपः**=रेतःकण (आपः रेतो भूत्वा०) **अवना**=इस शरीररूप पृथिवी में **परिज्रयः**=परितः गतिवाले होते हैं और **स्वरन्ति**=रोगकृमिरूप शत्रुओं का संहार करते हैं (स्वृ to kill)। इन प्राणों के बल से ही **चितः**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों का विकास करनेवाला यह प्राणसाधक पुरुष **वाशति**=प्रभु को पुकारता है (to call), प्रभु का स्तवन करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर में शक्तिकणों का रक्षण होता है, आयुष्य की वृद्धि होती है, गतिशीलता आती है, ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'रभसा उदोजसः' मरुतः

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः॥ ३॥

(१) हे **मरुतः**=प्राण **विद्युन्महसः**=अत्यन्त दीप्त तेजवाले हैं, **नरः**=हमें तेजस्विता के द्वारा उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हैं। **अश्मदिद्यवः**=पाषाणवत् दृढ़ आयुधोंवाले हैं, 'इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप जीवन-संग्राम के आयुधों को दृढ़ बनानेवाले हैं। **वातत्विषः**=प्राप्त दीप्तिवाले हैं और **पर्वतच्युतः**=अविद्या पर्वत को विनष्ट करनेवाले हैं। (२) **अब्दया चित्**=(अप् दा) ये प्राण निश्चय से रेतःकणरूप जलों को देनेवाले हैं। इन रेतःकणों के द्वारा ही **ह्रादुनीवृतः**=ज्ञान की वाणीरूप अशनियों के प्रवर्तक हैं। रेतःकण ही तो ज्ञानाग्नि के ईंधन बनते हैं। **स्तनयदमाः**=(अम=बल) गर्जना करते हुए बलवाले हैं। इन प्राणों के द्वारा मनुष्य शक्ति-सम्पन्न बनता है और प्रभु-स्तवन करता है। **रभसाः**=ये प्राण राभस्यवाले, वेगायुक्त बलवाले व **उदोजसः**=उत्कृष्ट ओजस्वी हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें ज्ञान, बल व वेग को बढ़ाकर उन्नतिपथ पर ले चलती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'रुद्राः शिक्वसः' मरुतः

व्य१क्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ॥ ४॥

(१) **रुद्राः**=(रुत् द्र) रोगों का द्रावण करनेवाले (मरुत्) प्राणो! **अक्तून्**=रात्रियों में **वि अजथ**=विशिष्ट गतिवाले होते हो। **अहानि**=दिनों में भी **वि** (अजथ)=विशिष्ट गतिवाले होते हो। ये प्राण दिन-रात चलते हैं। हे **शिक्वसः**=शक्तिशाली प्राणो! **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष में **वि**=विशिष्ट गतिवाले होते हो। **रजांसि**=(gloom darkness) अन्धकारों को **विधूतयः**=कम्पित करके दूर करनेवाले हो। (२) हे **मरुतः**=प्राणो! **यत्**=जब **अज्रान्**=शरीर रूप क्षेत्रों में **वि** (अजथ)=गतिवाले होते हो **यथा**=जैसे **नावः**=नौकाएँ **ईम्**=निश्चय से समुद्र में गतिवाली होती हैं, तो **दुर्गाणि**=सब दुर्गों व कष्टों को **वि** (अजथ)=दूर करते हो और **अह**=निश्चय से **न रिष्यथ**=हिंसित नहीं होते हो।

भावार्थ—प्राण दिन-रात गतिवाले होते हुए अन्धकार को दूर करते हैं। शरीर क्षेत्रों में गति करते हुए ये प्राण सब कष्टों को दूर करते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

एताः न यामे (गति में मृगों के समान)

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम्।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम्॥ ५॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **वः**=आपका **तद्**=वह **वीर्यम्**=वीर्य **महित्वनम्**=अतिशयित महिमावाला है। **सूर्यः न**=सूर्य की तरह वह वीर्य **दीर्घं ततान**=बहुत अधिक विस्तारवाला होता है। **योजनम्**=यह वीर्य ही सब इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में जोतनेवाला है। (२) तुम्हारे इस वीर्य से ही ये इन्द्रियाश्व **यामे**=गमन में **एताः न**=मृगों के समान होते हैं, मृगों की तरह स्फूर्तिवाले होते हैं। **अगृभीतशोचिषः**=इन इन्द्रियरूप अश्वों की दीप्ति विषय-वासनाओं से निगृहीत नहीं होती। यह सब होता तब है **यद्**=जब कि **अनश्वदाम्**=इन्द्रियरूप अश्वों को न प्राप्त करानेवाले **गिरिम्**=अविद्यापर्वत को **नि अयातन**=आप निहत (विनष्ट) करते हो। प्राणसाधना से अविद्या विनष्ट होती है। इस अविद्यानाश से इन्द्रियाँ विषय-व्यासक्त न होकर अपने-अपने कार्यों में लगती हैं और अपनी तेजस्विता को खोती नहीं।

भावार्थ—प्राणों की शक्ति की महिमा से ही अविद्या का नाश होकर इन्द्रियाश्वों की स्फूर्ति व दीप्ति बनी रहती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वासना-विनाश व प्रभु-प्राप्ति

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम्॥ ६॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! आपका **शर्धः**=बल **अभ्राजि**=दीप्त हो उठता है, **यत्**=जब **अर्णसम्**=समुद्र को, 'कामो हि समुद्रः०' इस काम (वासना) रूप समुद्र को **मोषथा**=नष्ट कर डालते हो, चुरा लेते हो। उसी प्रकार **इव**=जैसे कि **कपना**=घुण आदि कृमि **वृक्षम्**=वृक्ष को खोखला कर देते हैं। प्राणसाधना से वासना उसी प्रकार जीर्ण हो जाती है, जैसे कि घुणों से वृक्ष। (२) हे **वेधसः**=हमारे जीवन का निर्माण करनेवाले प्राणो! **अध**=अब **स्म**=निश्चय से **नः**=हमारे लिये **सजोषसः**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हुए तुम **चक्षुः इव**=आँख की तरह **अरमतिं यन्तम्**=उस (अ-रमति) अनासक्त (असक्तं सर्वभृच्चैव) सबका धारण करते हुए भी, इस सब में न फँसे हुए, प्रभु की ओर जाते हुए **सुगम्**=शोभन मार्ग को **अनुनेषथ**=अनुकूलता से प्राप्त कराओ। प्राणसाधना से हम निर्दोष जीवनवाले बनकर प्रभु की ओर चलें और प्रभु का दर्शन करनेवाले हों।

भावार्थ—प्राणसाधना से वासना का विनाश होता है और प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ऋषि व राजा

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ॥ ७॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! आप **यम्**=जिस भी **ऋषिं वा**=तत्त्वद्रष्टा-ज्ञानी ब्राह्मण को अथवा **राजानं वा**=अपने जीवन का संयम करनेवाले तेजस्वी क्षत्रिय को **सुषूदथ**=उत्तम मार्ग पर प्रेरित करते हो **सः**=वह **न जीयते**=वासनाओं से पराजित नहीं होता और अतएव **न हन्यते**=नष्ट नहीं होता। (२) यह प्राणसाधना में तत्पर 'ऋषि व राजा' मस्तिष्क के दृष्टिकोण से ऋषि, तथा शरीर के दृष्टिकोण से राजा, ज्ञानी तेजस्वी पुरुष **न सेधति**=नष्ट जीवनवाला नहीं होता **न कथते**=अतएव रोग आदि से पीड़ित नहीं होता और **न रिष्यति**=विनाश की ओर नहीं जाता।

भावार्थ—प्राणसाधना से हम 'ऋषि व राजा', तत्त्वद्रष्टा व तेजस्वी बनते हैं। उस समय हम न वासनाओं से पराजित होते हैं, नां ही रोगों से आक्रान्त।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नियुत्वन्तः-ग्रामजितः

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कवन्धिनः।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८ ॥

(१) **मरुतः**=प्राण **नियुत्वन्तः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले हैं, इन्द्रियों के दोषों को दग्ध करके ये उन्हें उत्तम बनाते हैं। **ग्रामजितः**=ये इन्द्रिय समूह को जीतनेवाले हैं। प्राणसाधक पुरुष जितेन्द्रिय बनता है। ये प्राण **अर्यमणः न नरः**=(अरीन् यच्छति) शत्रु विजेता मनुष्यों के समान **यथा**=जिस प्रकार **कवन्धिनः**=(क-बन्ध्) रेतःकणरूप जलों को शरीर में बाँधनेवाले हैं। उसी प्रकार उस **पिन्वन्ति**=ये हमारे ज्ञानस्रोत को परिपूर्ण करनेवाले होते हैं। रेतःकणों के रक्षण के अनुपात में ही ज्ञान स्रोत का वर्धन होता है। (२) **यत्**=जब **इनासः**=इन्द्रियादि के स्वामी होते हुए ये प्राण **अस्वरन्**=प्रभु-स्तवन करनेवाले बनते हैं, अर्थात् जब प्राणसाधना से हमारी वृत्ति प्रभु स्तवन की बनती है, तब **पृथिवीम्**=इस शरीररूप पृथिवी को **मध्वः**=इस सारभूत सोम के **अन्धसा**=भोजन से **व्युन्दन्ति**=विरोधरूप से सिक्त कर देते हैं। प्राणसाधना से प्रभु की ओर झुकाव होता है और उससे शरीर में सोम का सर्वत्र सेचन होता है। वासना-विनाश के द्वारा सोम शरीर में ही सुरक्षित रहता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से इन्द्रियाँ निर्दोष बनती हैं, पुरुष जितेन्द्रिय बनकर प्रभु स्तवन की ओर झुकता है और सोम का रक्षण कर पाता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रवत्वती

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥ ९ ॥

(१) **इयं पृथिवी**=यह पृथिवीरूप शरीर **मरुद्भ्यः**=इन प्राणों के लिये **प्रवत्वती**=(elevation) उत्कर्षवाला होता है। प्राणसाधना के होने पर शरीर बड़ा स्वस्थ व सबल हो जाता है। इन **प्रयद्भ्यः**=प्रकृष्ट गतिवाले प्राणों के लिये **द्यौः**=मस्तिष्करूप द्युलोक भी **प्रवत्वती**=उत्कर्षवाला होता है। प्राणसाधना से मस्तिष्क भी खूब शक्तिशाली बनता है और उत्कृष्ट ज्ञान से परिपूर्ण होता है। (२) **अन्तरिक्ष्यः पथ्याः**=हृदयान्तरिक्ष के मार्ग भी इन प्राणों के लिये **प्रवत्वतीः**=उत्कर्षवाले हों। प्राणसाधना से हृदय के अन्दर कोई अशुभ भाव उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार ये **मरुत्**=प्राण हमारे लिये **प्रवत्वन्तः**=उत्कर्षवाले हों, हमें उन्नत स्थिति में प्राप्त कराएँ, **पर्वताः**=ये हमारा पूरण

करनेवाले हों तथा **जीरदानवः**=(क्षिप्रदानाः) शीघ्रता से सब वसुओं के देनेवाले हों।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर, मस्तिष्क व हृदय सब उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं। ये प्राण उत्कर्ष को प्राप्त कराते हुए हमारा पूरण करते हैं और शीघ्रता से सब वसुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अध्वनः पारं अश्नुथ

यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥ १० ॥

(१) **यत्**=जब हे **मरुतः**=प्राणो! **सभरसः**=बल से युक्त **स्वर्णरः**=प्रकाश की ओर ले चलनेवाले तुम **सूर्ये उदिते**=ज्ञान सूर्य के उदय होने पर **मदथा**=सोमपान के आनन्द का अनुभव करते हो। अर्थात् प्राणसाधना के होने पर शरीर सबल बनता है, मस्तिष्क प्रकाशमय। उस समय शरीर में शक्ति की ऊर्ध्व गति होकर जीवन उल्लासमय बनता है। हे प्राणो! आप **दिवः**=प्रकाशमय हो, **नरः**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हो। (२) हे प्राणो! **वः**=तुम्हारे **अश्वाः**=ये इन्द्रियरूप अश्व **न श्रथयन्त**=ढीले नहीं पड़ते हैं, **अह**=निश्चय से **सिस्रतः**=(सरन्तः) ये सदा गतिवाले होते हैं। इस प्रकार हे प्राणो! तुम **सद्यः**=शीघ्र **अस्य अध्वनः**=इस मार्ग के **पारं अश्नुथ**=पार को प्राप्त कराते हो। प्राणसाधना के द्वारा जीवन-यात्रा ठीक से पूरी होती है।

भावार्थ—प्राण शरीर में बल को व मस्तिष्क में ज्ञान को प्राप्त कराते हुए हमें निरन्तर क्रियाशील बनाते हैं और जीवन-यात्रा को सफलता से पूर्ण कराते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वीर सैनिक

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥ ११ ॥

(१) 'मरुत्' का आधिभौतिक अर्थ सैनिक है। उसका चित्रण करते हुए कहते हैं कि **वः**=तुम्हारे **अंसेषु**=कन्धों पर **ऋष्टयः**=आयुधविशेष हैं, **पत्सु**=पाँवों में **खादयः**=कटक हैं, **वक्षः सु**=छातियों पर **रुक्मा**=स्वर्ण के देदीप्यमान हार हैं। हे प्राणो! इस प्रकार तुम **रथे शुभः**=इन शरीर-रथों में शोभावाले हो। (२) **अग्निभ्राजसः**=अग्नि के समान दीप्तिवाले, **गभस्त्योः**=बाहुओं में **विद्युतः**=विशेषरूप से दीप्त होनेवाले हो। **शीर्षसु**=तुम्हारे सिरों पर **हिरण्ययीः**=स्वर्ण की बने हुए **शिप्राः**=सिरस्त्राण **वितताः**=विस्तृत हैं। इस प्रकार वीरवेश में सुसज्जित यह सैनिक देशरक्षा के लिये मर जाता है पर पीठ नहीं दिखाता सो सदा मरुत् है।

भावार्थ—अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक देशरक्षा के लिये प्राणों को छोड़ता हुआ सचमुच 'मरुत्' है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अगृभीतशोचिषं नाकं, रुशत् पिप्पलम्

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ १२ ॥

(१) हे **अर्यः**=(अभिगन्तारः) शत्रुओं (रोगों व वासनाओं) पर आक्रमण करनेवाले

मरुतः=प्राणो! आप **तम्**=उस **अगृभीतशोचिषम्**=(अगृहीततेजस्कं) जिसकी दीप्ति का निग्रह नहीं होता उस **नाकम्**=(आदित्यं) ज्ञान के सूर्य को तथा **रुषत् पिप्पलम्**=देदीप्यमान रेतःकणरूप जल को **विधूनुथ**=(विविधं चालयथ) शरीर के अंग-प्रत्यंग में गतिवाला करते हो। प्राणसाधना से मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञान सूर्य का उदय होता है और शरीर के अंग-प्रत्यंगों में सुरक्षित रेतःकणों की शक्ति कार्य करती है। (२) उस समय **वृजना**=सब बल **सं अच्यन्त**=संगत होते हैं, **अतित्विषन्त**=ज्ञान दीप्तियाँ चमक उठती हैं, **यत्**=जब कि **ऋतायवः**=यज्ञों की कामनावाले पुरुष **विततं घोषम्**=विस्तृत स्तुति का **स्वरन्ति**=उच्चारण करते हैं। जीवन में यज्ञशील बनकर सदा प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला बनना ही वह मार्ग है जिससे कि सोम का रक्षण हो पाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा यज्ञ व स्तुति का अपनाने से सोम का रक्षण होता है। उससे जहाँ ज्ञान दीप्त होता है, वहाँ अंग-प्रत्यंग शक्तिशाली बनता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ज्ञान व आयुष्य' का वर्धक धन

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम्॥ १३॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! हम **रथ्यः**=शरीर रथ के स्वामी होते हुए **युष्मादत्तस्य**=आपसे **मरुतः सहस्रिणम्**=दिये हुए **विचेतसः**=विशिष्ट ज्ञानवाले तथा **वयस्वतः**=उत्कृष्ट आयुष्यवाले **रायः**=धन के **स्याम**=स्वामी हों। प्राणसाधना द्वारा वह धन हमें प्राप्त हो जो हमें उत्कृष्ट ज्ञान व उत्कृष्ट आयुष्य प्राप्त कराने में सहायक होता है। (२) हम उस धन के स्वामी हो **यः**=जो उसी प्रकार हमारे से **न युच्छति**=च्युत नहीं होता है, **यथा**=जैसे कि **दिवः**=आकाश से **तिष्यः**=आदित्य। हे **मरुतः**=प्राणो! **अस्मे**=हमारे में **सहस्रिणम्**=सहस्र संख्याक धन को **रारन्त**=(रमयत) रमणवाला करो। हम खूब ही धन का पोषण करते हुए ज्ञान व आयुष्य का वर्धन करें।

भावार्थ—प्राणसाधक पुरुष ज्ञान व आयुष्य के वर्धक ज्ञान को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सामविप्र-ऋषि

यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम्।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम्॥ १४॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **यूयम्**=तुम **स्पार्हवीरम्**=स्पृहणीय वीर पुत्रोंवाले **रयिम्**=धन को **अवथ**=हमारे में सुरक्षित करते हो। प्राणसाधना द्वारा वह धन प्राप्त होता है जो वीर पुत्रों से युक्त होता है। **यूयम्**=तुम **सामविप्रम्**=उपासना द्वारा व शान्तिपूर्वक विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले **ऋषि**=तत्त्वद्रष्टा को **अवथ**=रक्षित करते हो। अर्थात् प्राणसाधक पुरुष 'सामविप्र ऋषि' बनता है। (२) हे प्राणो! **यूयम्**=तुम **भरताय**=इस अपना ठीक से भरण करनेवाले के लिये **अर्वन्तम्**=शत्रुओं का संहार करनेवाली **वाजम्**=शक्ति को **धत्थ**=धारण करते हो, उस शक्ति को **यूयम्**=तुम देते हो जो **राजानम्**=उस साधक के जीवन को दीप्त बनाती है तथा **श्रुष्टिमन्तम्**=सुखवाली है। यह शक्ति उसके जीवन को नीरोगता आदि प्राप्त कराके सुखी बनाती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से हम वीर सन्तानोंवाले धन को व शक्ति को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

तत् द्रविणम्

तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄँरभि।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥ १५ ॥

(१) हे **सद्य ऊतयः**=शीघ्रता से रक्षण करनेवाले **मरुतः**=प्राणो! **वः**=आपसे **तत् द्रविणम्**=उस धन को **यामि**=माँगता हूँ, **येन**=जिसके द्वारा **नॄन् अभि**=मनुष्यों की ओर **स्वः न**=सूर्य के समान **ततनाम**=प्रकाश को हम फैलानेवाले बनें। प्राणसाधना के द्वारा वासनाओं से बचकर हम उस ज्ञानधन को प्राप्त करें जिसके द्वारा हम लोगों के लिये भी प्रकाश को देनेवाले बनें। (२) हे प्राणो! **मे**=मेरे **इदम्**=इस **वचः**=स्तुतिवचन को आप **सु हर्यता**=(हर्य गतौ) उत्तमता से प्रेरित करो, अर्थात् आपकी साधना से मैं स्तुति की वृत्तिवाला बनूँ। **यस्य तरसा**=जिन स्तुतिवचनों के बल से, स्तुति से प्राप्त शक्ति के द्वारा **शतं हिमाः**=सौ वर्षों को, शतवर्ष के दीर्घ जीवन को **तरेम**=हम तैरनेवाले हों। शतवर्ष के दीर्घजीवन में यह स्तुति ही हमें वासनाओं से तरायेगी।

भावार्थ—प्राणसाधना से ज्ञानधन को प्राप्त करके हम लोगों के लिये प्रकाश को देनेवाले हों। इस प्राणसाधना से स्तुति में प्रवृत्त होकर हम १०० वर्ष तक, वासनाओं से आक्रान्त न होते हुए, जीनेवाले बनें।

श्यावाश्व ही प्राणस्तवन करते हुए कहते हैं—

५५. [पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'प्रयज्यवः-भ्राजदृष्टयः' मरुतः

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १ ॥

(१) 'मरुत्' आधिभौतिक जगत् में राष्ट्र रक्षक क्षत्रिय हैं। ये **प्रयज्यवः**=राष्ट्र रक्षणरूप प्रकृष्ट यज्ञ को करनेवाले **मरुतः**=राष्ट्र के लिये (म्रियन्ते) प्राणों को त्यागने के लिये उद्यत सैनिक **भ्राजत् ऋष्टयः**=देदीप्यमान आयुधोंवाले होते हैं। ये **रुक्मवक्षसः**=देदीप्यमान वक्षःस्थलोंवाले क्षत्रिय अथवा दीप्त हारों व पदकों (medals) को धारण किये हुए वक्षःस्थलोंवाले वीर सैनिक **बृहद्वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधिरे**=धारण करते हैं। (२) ये **सुयमेभिः**=अच्छी प्रकार नियन्त्रित **आशुभिः**=शीघ्र गतिवाले **अश्वैः**=अश्वों से **ईयन्ते**=राष्ट्र में रक्षण कार्यों के लिये गतिवाले होते हैं। **शुभं यातामू**=सदा धर्म्ययुद्ध की ओर जाते हुए, शुभ की ओर जाते हुए इन मरुतों के **रथाः**=रथ **अनु अवृत्सत**=अनुकूल गतिवाले होते हैं।

भावार्थ—क्षत्रियों की राष्ट्र-रक्षणरूप कार्य को ही अपना यज्ञ समझना, उसके लिये आयुधों को दीप्त रखना और वाहनों को सुनिश्चित व तीव्र गतिवाला रखना। इनके रथ सदा अनुकूल गतिवाले हों।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ज्ञान-बल-विशाल हृदयता

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २ ॥

(१) हे मरुतो! **यथा विद**=जैसे तुम ज्ञानवाले होते हो, उसी प्रकार **स्वयम्**=अपने आप **तविषीम्**=बल को **दधिध्वे**=धारण करते हो। ये राष्ट्र रक्षक पुरुष ज्ञान व शक्ति का धारण करते हैं। **महान्तः**=(मह पूजायाम्) पूजा की वृत्तिवाले होते हुए, **उर्विया**=(उरवः) विशाल हृदयवाले होकर **बृहत् विराजथ**=खूब ही शोभायमान होते हो। (२) **उत**=और **ओजसा**=ओजस्विता के द्वारा **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को भी **विममिरे**=विशिष्टरूपवाला बनाते हो। ओजस्विता के कारण तुम्हारे हृदय में निम्न भावनाएँ (meanness) नहीं आ पातीं। तुम स्वार्थ से ऊपर उठकर परार्थ की भावना से धर्म्ययुद्धों में प्राण त्याग के लिये उद्यत होते हो। **शुभं याताम्**=शुभ मार्ग पर चलनेवाले आप लोगों के **रथाः**=रथ **अनु अवृत्सत**=सदा अनुकूल वर्तनवाले होते हैं।

भावार्थ—राष्ट्ररक्षक क्षत्रिय ज्ञान व बल का धारण करते हुए अपने हृदय को भी स्वार्थ की भावना से रहित व विशाल बनाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

साकं जाताः, साकमुक्षिताः

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ३॥

(१) **साकं जाताः**=ये वीर क्षत्रिय साथ-साथ प्रादुर्भाववाले हैं, लगभग साथ-साथ ही इनका जन्म हुआ है, ये समान वयः वाले हैं। **सुभ्वः**=उत्तमता से अपने कार्यों में ये होनेवाले हैं (सुष्ठु भवन्ति) **साकमुक्षिताः**=साथ-साथ ही आचार्यों द्वारा ये विद्या से सिक्त होकर स्नातक हुए हैं। **श्रिये**=शोभा के लिये **चित्**=निश्चय से **प्रतरम्**=खूब ही **आवावृधुः**=बढ़े हैं। **नरः**=अपने को आगे और आगे प्राप्त करानेवाले हैं। (२) **सूर्यस्य रश्मयः इव**=सूर्य की किरणों की तरह ये **विरोकिणः**=विशेषरूप से दीप्त होनेवाले हैं। **शुभं याताम्**=शुभ की ओर जानेवाले इन क्षत्रियों के **रथाः**=रथ **अनु अवृत्सत**=सदा अनुकूल गतिवाले हैं।

भावार्थ—ये क्षत्रिय साथ-साथ ही उत्पन्न हुए-हुए, साथ-साथ ही शिक्षित हुए-हुए सूर्य-रश्मियों की तरह द्युतिवाले हैं। सेना के विभागों में बहुत अन्तर युक्त आयुवाले व्यक्ति नहीं होते।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

आभूषेण्यं-दिदृक्षेण्यम्

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ४॥

(१) गतमन्त्र के वीर क्षत्रियों की तरह प्राण भी इस शरीर में (साकं जाताः, साकं उक्षिताः) साथ-साथ ही उत्पन्न हुए हैं और साथ-साथ ही इनके द्वारा शरीर में वीर्य का सेचन हुआ है। हे **मरुतः**=प्राणो! **वः**=आपकी **महित्वनम्**=महिमा **आभूषेण्यम्**=समन्तात् शरीर को शोभित करनेवाली (स्तुत्य) व शरीर में सामर्थ्य को पैदा करनेवाली है। आपके द्वारा प्राप्त कराया गया **चक्षणम्**=ज्ञानचक्षु **सूर्यस्य इव**=सूर्य की तरह **दिदृक्षेण्यम्**=दर्शन के योग्य है। प्राण शरीर में शक्ति का संचार करते हैं, तो मस्तिष्क में ज्ञान के सूर्य का उदय करते हैं। (२) **उत**=और **उ**=निश्चय से **अस्मान्**=हमें **अमृतत्वे**=अमृतत्व में, नीरोगता में **दधातन**=धारण करो। प्राणशक्ति ही रोगों को उत्पन्न नहीं होने देती। हे प्राणो! **शुभं याताम्**=शुभ मार्ग की ओर चलते हुए आपके **रथाः**=ये शरीर-रथ **अनु अवृत्सत**=अनुकूल वर्तनवाले हों। अर्थात् यह शरीर-रथ ठीक रहता हुआ निरन्तर

शुभ की ओर बढ़नेवाला हो।

भावार्थ—प्राण शरीर को शक्ति-सम्पन्न तथा मस्तिष्क को ज्ञान-सम्पन्न बनाते हैं। ये हमें नीरोगता प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'पुरीषिणः' मरुतः

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ५॥

(१) यहाँ आधिदैविक जगत् के मरुत् 'वृष्टि वाहक' वायु हैं। हे **मरुतः**=वृष्टिवाहक वायुयो! **यूयम्**=तुम **समुद्रतः**=समुद्र से **वृष्टिम्**=वृष्टि को **उद् ईरयथ**=उत्कर्षेण प्रेरित करते हो। इन वायुयों के द्वारा ही समुद्र से वाष्पीभूत हुआ-हुआ जल वाष्प इधर-उधर ऊपर आकाश में ले लाया जाता है। हे **पुरीषिणः**=जलोंवाले मरुतो! **यूयम्**=तुम ही **वृष्टिं वर्षयथा**=इस वृष्टि को करते हो। (२) **वः**=तुम्हारे ये **दस्राः**=दर्शनीय व शत्रुनाशक **धेनवः**=पृथिवी को जलों से प्रीणित करनेवाले मेघ **न उपदस्यन्ति**=नहीं नष्ट होते हैं, ये सदा वृष्टि को करनेवाले होते हैं। हे वायुयो! **शुभं याताम्**=बड़ी उत्तमता से गति करते हुए आपके **रथाः**=रथ **अनु अवृत्सत**=सदा अनुकूल गतिवाले होते हैं।

भावार्थ—वृष्टि को लानेवाले वायु मेघों द्वारा वृष्टि को करके सम्पूर्ण पृथिवी को प्रीणित करनेवाले हों।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

हिरण्यय कवचधारी सैनिक

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ६॥

(१) **यद्**=जब **पृषतीः** (to hurt, injure)=शत्रुओं का संहार करनेवाले **अश्वान्**=अश्वों को **धूर्षु**=रथ धुराओं में **अयुग्ध्वम्**=जोतते हो। और **हिरण्ययान्**=हितरमणीय अथवा स्वर्णवत् देदीप्यमान **अत्कान्**=कवचों को **प्रत्यमुग्ध्वम्**=धारण करते हो, तो उस समय **मरुतः**=वीर सैनिको! तुम **विश्वाः इत्**=सब ही **स्पृधः**=संग्रामों को (नि० २।१७) **व्यस्यथ**=परे फेंकते हो, सब संग्रामकारी शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले होते हो। (२) **शुभम्**=शुभ धर्म्ययुद्ध की ओर **याताम्**=जाते हुए आपके **रथाः**=रथ **अनु अवृत्सत**=अनुकूल वर्तनवाले हों। ये रथ संग्राम विजय में आपके सहायक हों।

भावार्थ—हमारे सैनिक घोड़ों को रथों में जोते हुए तथा कवचों को धारण किये हुए सदा धर्म्ययुद्ध के लिये तैयार हों।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'अप्रतिहत गतिवाले' सैनिक

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ७॥

(१) हे **मरुतः**=सैनिको! **न पर्वताः**=न तो पर्वत **न नद्यः**=ना ही नदियाँ **वः**=तुम्हें

वरन्त=रोक पाती हैं **यत्र**=जहाँ **अचिध्वम्** (जानीथ संकल्पयथ सा०)=जानते हो, चाहते हो **तत्**=उस स्थान को **गच्छथ इत् उ**=जाते ही हो। इन वीर सैनिकों को उनकी वीरयात्रा में कोई भी रुकावट रोक नहीं पाती। (२) हे मरुतो! तुम तो **उत**=निश्चय से **द्यावापृथिवी परियाथन**=द्युलोक व पृथिवीलोक में चारों ओर गतिवाले होते हो। सर्वत्र तुम्हारी पहुँच होती है और **शुभं यातामम्**=शुभ धर्म्य मार्ग पर गति करते हुए आपके **रथाः**=रथ **अनु अवृत्सत**=अनुकूल वर्तनवाले होते हैं। आपके रथ आपको यथेष्ट स्थान पर पहुँचानेवाले होते हैं।

भावार्थ—धर्म्ययुद्ध में आगे बढ़ते हुए वीर सैनिकों को नदियाँ व पहाड़ भी रोक नहीं पाते। सब विघ्नों को जीतकर इनके रथ आगे ही बढ़ते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

शरीरस्थ प्राण तथा ज्ञान प्राप्ति

यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ८॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **यत् पूर्व्यम्**=जो ज्ञान सृष्टि के पूर्व में, प्रारम्भ में दिया जानेवाला है अथवा जो पालन व पूरण करने में उत्तम है। **यत् च नूतनम्**=और जो ज्ञान सदा नवीन है, कभी जीर्ण नहीं होता 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'। **यत् उद्यते**=जो हृदयस्थ प्रभु से उच्चरित होता है 'तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात् शुक्रमुच्चरत्'। **यत् च शस्यते**=जिस ज्ञान का देवों के लिये शंसन किया जाता है। **विश्वस्य तस्य**=उस सब सत्य विद्याओं के अवगाहन करनेवाले ज्ञान के आप **नवेदसः**=ज्ञाता **प्रवथा**=होते हो। उस ज्ञान को ये प्राण ही हमें प्राप्त कराते हैं। प्राणसाधना से शरीर में सोमशक्ति की ऊर्ध्वगति होती है, यह सोमशक्ति ज्ञानाग्नि का ईंधन बनती है। इस प्रकार तीव्र बुद्धि से हमें वेदार्थ का स्पष्टीकरण होता है। (२) हे प्राणो! **शुभं यातामम्**=शुभ ज्ञान की ओर गति करते हुए आपके **रथाः**=ये शरीर रथ **अनु अवृत्सत**=अनुकूल वर्तनवाले हों। शरीर भी स्वस्थ हो, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास हुआ करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा हम तीव्र बुद्धि बनकर प्रभु से दिये जानेवाले ज्ञान को प्राप्त करें और इस ज्ञान प्राप्ति में स्वस्थ शरीर हमारे लिये सहायक हो।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्राण हमें प्रभु का स्तोता व मित्र बनाएँ

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥ ९॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **नः मृडत**=हमें सुखी करो। **मा वधिष्टन**=हमें रोगों से हिंसित मत होने दो। प्राणसाधना द्वारा हम नीरोग शरीरवाले बनें। हे प्राणो! इस प्रकार नीरोगता प्राप्त कराके **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **बहुलं शर्म**=खूब ही सुख को **वियन्तन**=प्राप्त कराओ। (२) हे प्राणो! आप **स्तोत्रस्य**=प्रभु स्तवन का तथा **सख्यस्य**=प्रभु के साथ मैत्री का **अधिगातन**=आधिक्येन प्राप्त करनेवाले होओ। आपकी साधना से हमारा झुकाव प्रभु स्तवन की ओर हो और हम प्रभु की मैत्री को प्राप्त करनेवाले हों। **शुभं यातामम्**=इस प्रकार शुभ मार्ग की ओर चलते हुए आपके **रथाः**=ये शरीरस्थ **अनु अवृत्सत**=अनुकूल वर्तनवाले हों। वस्तुतः प्रभु स्तवन व प्रभु की मैत्री हमें भोग मार्ग से ऊपर उठाती है और हम क्षीण-शक्तिवाले न होकर सदा स्वस्थ शरीरवाले बने रहते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से हम रोगाक्रान्त न होकर सुखी बने रहते हैं। यह प्राणसाधना हमें स्तवन की वृत्तिवाला तथा प्रभु का मित्र बनाती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वस्यो अच्छा, निरंहतिभ्यः

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ १०॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **यूयम्**=तुम **अस्मान्**=हमें **वस्यः अच्छ**=उत्कृष्ट वसुओं (धनों) की ओर **नयत**=ले चलो। तुम्हारी साधना के द्वारा हम उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करें। हे प्राणो! **गृणानाः**=हमारे लिये बुद्धि को तीव्र बनाकर ज्ञानोपदेश करते हुए आप हमें **अंहतिभ्यः निः** (नयत)=पापों से बाहर व परे ले चलो। प्राणसाधना से सब दोष दूर होते हैं। (२) हे **यजत्रा**=संगतिकरण योग्य प्राणो! **नः**=हमारे लिये **हव्यदातिम्**=हव्यों के देने को, यज्ञशीलता को **जुषध्वम्**=प्रीतिपूर्वक सेवनीय करो। प्राणों के द्वारा हम यज्ञशील बनें। ये प्राण इसी से तो 'यजत्र' हैं। इन यज्ञों को कर सकने के लिये **वयम्**=हम **रयीणाम्**=धनों के **पतयः स्याम**=स्वामी हों। इन धनों के दास बनने पर ये धन यज्ञों में विनियुक्त नहीं हो पाते। प्राणसाधना ही हमें धनों के लोभ से ऊपर उठायेगी और हम सुपथ से धनार्जन करते हुए यज्ञशील होंगे।

भावार्थ—प्राणसाधना से उत्कृष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होगी, पापों से हम दूर होंगे तथा यज्ञशील बनेंगे। अगले सूक्त में भी श्यावाश्य मरुतों का आराधन करते हैं—

५६. [षट्पञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

शत्रुविनाश व ज्ञानदीप्ति

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! मैं मरुतों-प्राणों के **गणम्**=समूह को **आ** (ह्वये)=पुकारता हूँ, प्राणों के गण को प्राप्त करने के लिये आपकी आराधना करता हूँ, जो प्राणों का गण **शर्धन्तम्**=शत्रुओं का प्रसहन (अभिभव) कर रहा है, सब काम-क्रोध आदि शत्रुओं को कुचलनेवाला है और जो प्राणों का गण **अंजिभिः**=जीवन को कान्त (सुन्दर) बनानेवाली, जीवन को सुभूषित करनेवाली (अञ्जू to decorate) **रुक्मेभिः**=देदीप्यमान ज्ञान-ज्योतियों से **पिष्टम्**=(युक्तम् सा०) शोभित है। वस्तुतः प्राणसाधना से रोग व वासनारूप शत्रु कुचले जाते हैं और ज्ञानदीप्ति चमक आती है। (२) मैं **अद्य**=आज **मरुतां विशः**=प्राणों की प्रजा को, प्राणों के इस गण को **दिवः रोचनात्**=प्रकाश की दीप्ति के हेतु से **अधि अव ह्वये**=खूब ही अपने सम्मुख पुकारता हूँ। प्राणसाधना करता हुआ मैं ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करता हूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना से रोग व वासनाएँ कुचली जाती हैं और ज्ञान दीप्त हो उठता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'भीमसंदृशः' मरुतः

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः। ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसंदृशः॥ २॥

(१) प्रभु कहते हैं कि हे प्रगतिशील जीव! **यथा**=जिस प्रकार **चित्**=निश्चय से **हृदा**=हृदय से **मन्यसे**=तू इन प्राणों का मनन करता है, **तद्**=सो **इत्**=निश्चय से ये **मे**=मेरे **आशसः**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाला प्राण **जग्मुः**=तेरे शरीर में गतिवाले होते हैं। जितना-जितना इन प्राणों के महत्त्व को हम समझते हैं उतना-उतना ही इनकी साधना में प्रवृत्त होते हैं। (२) हे जीव! **ये**=जो प्राण **ते हवनानि**=तेरी पुकारों के **नेदिष्ठम्**=अत्यन्त समीप **आगमन्**=प्राप्त होते हैं, **तान्**=उन **भीमसन्दृशः**=शत्रुओं के लिये अतिभयंकर दर्शनवाले प्राणों को **वर्ध**=तू बढ़ा। जब हम इन प्राणों की साधना करेंगे, तो ये हमें समीपता से प्राप्त होंगे। हमारे समीप होते हुए ये हमारे शत्रुओं के लिये अतिभयंकर होंगे। ये प्राण रोगों को भी दूर भगाते हैं, वासनाओं को भी।

भावार्थ—हम हृदयों में प्राणों के महत्त्व का मनन करें। प्राणसाधना से इन्हें अपना मित्र बनाएँ जिससे ये हमारे शत्रुओं का संहार करनेवाले हों।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराटपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्राणों का दुध्र बल

मी॒ळ्हुष्म॑तीव पृथि॒वी परा॑हता॒ मद॑न्त्ये॒त्य॒स्मदा।
ऋक्षो॒ न वो॑ मरुतः॒ शिमी॑वाँ॒ अमो॑ दु॒ध्रो गौरि॑व भीम॒युः ॥ ३ ॥

(१) **मीढुष्मती पृथिवी इव**=सब सुखों का सेचन करनेवाली पृथिवी के समान **पर-अहता**=रोगों व वासनारूप शत्रुओं से न आक्रान्त हुई-हुई **मदन्ती**=आनन्द को प्राप्त करानेवाली यह मरुत् पंक्ति **अस्मत् आ एति**=हमें सर्वथा प्राप्त होती है (अस्मत्=अस्मान् सा०)। प्राणसमूह जीवन को आनन्दित करनेवाला है, यह शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता और हमें सुखी करता है। (२) हे **मरुतः**=प्राणो! **वः**=तुम्हारा **अमः**=बल **ऋक्षः न**=एक सितारे (सूर्य) के समान है। **शिमीवान्**=यह बल शान्तभाव से अपना कर्म करनेवाला है और **दुध्रः**=शत्रुओं से दुर्धर है। **गौः इव**=एक महावृषभ (सांड) की तरह **भीमयुः**=शत्रुओं के प्रति भयंकरता से गतिवाला होता है।

भावार्थ—प्राणों का गण शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता। इनकी साधना से यह पृथिवीरूप शरीर अंग-प्रत्यंग में शक्ति से सिक्त होता है। प्राणों का बल हमें क्रियाशील बनाता है और हमारे रोगरूप शत्रुओं के लिये भयंकर होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'रोगों व अविद्या' का विनाश

नि ये रि॒णन्त्योज॑सा॒ वृथा॒ गावो॒ न दु॒र्धुरः॑।
अश्मा॑नं चित्स्व॒र्यं१ पर्व॑तं गि॒रिं प्र च्या॑वयन्ति॒ याम॑भिः ॥ ४ ॥

(१) **ये**=जो प्राण **ओजसा**=अपनी शक्ति के द्वारा **वृथा**=अनायास ही **निरिणन्ति**=शत्रुओं को हिंसित कर डालते हैं, वे **गावः न**=महावृषभों की तरह **दुर्धुरः**=बड़ी कठिनता से हिंसित करने योग्य हैं (धुर्व् हिंसायाम्)। प्राणों के साथ रोगकृमिरूप शत्रु टक्कर लेने पर नष्ट ही हो जाते हैं। (२) ये प्राण केवल रोगकृमिरूप शत्रुओं को ही नष्ट करें ऐसी बात नहीं, ये **अश्मानं चित्**=पत्थर के समान दृढ़ अथवा (अश् व्याप्तौ) सर्वत्र व्याप्तिवाले, **स्वर्यम्**=(स्वृ उपतापे) संतापों के कारणभूत **पर्वतम्**=पाँच पर्वोंवाले (अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश) **गिरिम्**=अविद्या पर्वत को **चित्**=भी **यामभिः**=अपने गमनों से **प्रच्यावयन्ति**=प्रच्युत करते हैं। प्राणसाधना से अशुद्धि क्षय होकर इस अविद्या पर्वत का विनाश होता है और ज्ञानदीप्ति होती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीरस्थ रोग तथा अविद्या का विनाश होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

सर्वश्रेष्ठ पद पर प्राणों का अभिषेक

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्। मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये॥ ५ ॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि **उत्तिष्ठ**=तू उठ खड़ा हो, आलस्य को छोड़कर उत्साहमय जीवनवाला हो। **नूनम्**=निश्चय से **एषाम्**=इन **स्तोमैः**=स्तुतियों के द्वारा **समुक्षितानाम्**=शरीर में सम्यक् अभिषिक्त **मरुताम्**=प्राणी के शरीर में प्राण ही सर्वश्रेष्ठ हैं, इनका मानो सर्वश्रेष्ठ पद पर अभिषेक होता हो, **सर्गम्**=उत्पादन (creation) को **ह्वये**=पुकारता हूँ। (२) इन प्राणों के उत्पादन को इस प्रकार करता हूँ **इव**=जैसे कि **पुरुतमम्**=अतिशयेन पालक व पूरक **अपूर्व्यम्**=अद्भुत **गवां सर्गम्**=इन्द्रियों के उत्पादन को। एक-एक इन्द्रिय अद्भुत रचनावाली हो। परन्तु प्राण इन इन्द्रियों के द्वारा भी स्तुति के योग्य होते हैं। इन्द्रियों में जो भी श्रेष्ठता है, वह सब इन प्राणों के कारण है। इन्द्रियाँ अपने सर्वश्रेष्ठ पद पर इन प्राणों का अभिषेक करती हैं।

भावार्थ—प्रभु शरीर में इन्द्रियों को निर्मित कर उनके सर्वश्रेष्ठ पद पर प्राणों को स्थापित करते हैं। जीव को चाहिये कि उठे और इनकी साधना में प्रवृत्त हो।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अरुषी-अजिरा-वहिष्ठा

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे॥ ६ ॥

(१) हे प्राणो! तुम **रथे**=इस शरीर-रथ में **हि**=निश्चय से **अरुषी**=आरोचमान, खूब दीप्त, ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों को **युङ्ध्वम्**=जोतो। **रथेषु**=इन शरीर रथों में **रोहितः**=वृद्धिशील अश्वों को **युङ्ध्वम्**=जोतो। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ दिन व दिन उन्नतिशील हों। (२) **हरी**=उन इन्द्रियाश्वों को **धुरि**=रथधुरा में **युङ्ध्वम्**=जोतो, जो **अजिरा**=खूब गतिशील हैं तथा **वोढवे**=रथ को लक्ष्य स्थान पर पहुँचाने के लिये होते हैं। उन इन्द्रियाश्वों को **धुरि**=रथधुरा में जोतो जो **वहिष्ठा**=रथ वहन में सर्वोत्तम हैं तथा **वोढवे**=रथ को लक्ष्य-स्थान पर ले जाने के लिये होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से इन्द्रियों के दोषों का दहन होकर, वे चमक उठती हैं। ये इन्द्रियाश्व तेजस्वी व गतिशील बनते हैं। लक्ष्य-स्थान पर ये पहुँचानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्राणसाधना

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत॥ ७॥

(१) हे प्राणो! **उत**=और **स्यः**=वह **वाजी**=शक्तिशाली, **अरुषः**=आरोचमान, **तुविष्वणिः**=महान् स्तुति शब्दोंवाला, **दर्शतः**=दर्शनीय यह अन्तःकरण **इह**=यहाँ इस शरीर में **स्म**=निश्चय से **धायि**=धारण किया जाता है। प्राणसाधना से ही वस्तुतः मन 'शक्तिशाली, ज्ञानदीप्त व प्रभु स्तवनवाला' बनता है। (२) हे **मरुतः**=प्राणो! यह मन **वः यामेषु**=तुम्हारी गतियों के होने पर

मा चिरं करत्=बाहर विषयों में देर तक भटकता न रहे। यह शीघ्र ही विषय-व्यावृत्त होकर शरीर में निरुद्ध हो। **तम्**=उस मन को आप **रथेषु**=इन शरीर-रथों में ही **प्रचोदत**=प्रकर्षेण प्रेरित करो। ये भटके नहीं।

भावार्थ—प्राणसाधना से मन शरीर में ही निरुद्ध होकर 'शक्तिशाली, आरोचमान व खूब स्तुतिवाला' बनता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

मरुतों का श्रवस्यु रथ

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी॥ ८॥

(१) **नु**=अब **वयम्**=हम **मारुतम्**=प्राणों के **श्रवस्युम्**=हमारे साथ ज्ञान को जोड़नेवाले **रथम्**=रथ को **आहुवामहे**=पुकारते हैं। यह शरीररूप रथ, प्राणसाधना के द्वारा केवल सुदृढ़ ही नहीं बनता, यह प्रकाशमय भी होता है। प्राणसाधना से बुद्धि की तीव्रता होकर, ज्ञानदीप्ति की प्राप्ति होती है। (२) हम प्राणों के उस रथ को पुकारते हैं **यस्मिन्**=जिसमें **सुरणानि**=उत्तम रमणीय ज्ञानों को **बिभ्रती**=धारण करती हुई, **मरुत्सु सचा**=प्राणों के साथ निवास करनेवाली, **रोदसी**=द्यावापृथिवी हृदय तथा शरीर में प्रभु की यह वेदवाणी **आतस्थौ**=स्थित होती है। प्राणसाधना के द्वारा बुद्धि तीव्र होकर वेदज्ञान को ग्रहण करनेवाली बनती है। यह वेदवाणी प्रभु ज्ञान है। प्रभु इसे माता के रूप में हमारे लिये प्रस्तुत करते हैं 'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्'। यह तभी होता है जब कि हम प्राणसाधना द्वारा बुद्धि को तीव्र करने के लिये यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—यह शरीर सम्बन्धी रथ प्राणसाधना द्वारा दृढ़ व प्रकाशमय बनता है। इसमें रमणीय ज्ञानों को धारण करती हुई बुद्धि स्थित होती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'सुजाता-सुभगा-मीढुषी' बुद्धि

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी॥ ९॥

(१) हे प्राणो! **वः**=आपके **तम्**=उस **रथेशुभम्**=रथ में शोभा के कारणभूत, **त्वेषम्**=दीप्त **पनस्युम्**=स्तुति के योग्य-प्रशंसनीय **शर्धम्**=बल (गण) को **आहुवे**=पुकारता हूँ। **यस्मिन्**=जिस बल में **मीढुषी**=सब सुखों का सेचन करनेवाली, **मरुत्सु सचा**=प्राणों के साथ समवेत होनेवाली, प्राणसाधना से उत्पन्न होनेवाली **सुभगा**=उत्तम ज्ञानैश्वर्यवाली **सुजाता**=उत्तम प्रादुर्भाव व विकासवाली बुद्धि **महीयते**=पूजित होती है। (२) प्राणों का बल (गण) शरीर-रथ को शोभावाला दीप्त व स्तुत्य बनाता है। इस प्राणों के गण की साधना के होने पर हमें वह बुद्धि प्राप्त होती है जो कि उत्तम विकास का कारण होती हुई उत्तम ज्ञानैश्वर्यवाली होती है और हमारे जीवन में सब सुखों का वर्षण करनेवाली होती है।

भावार्थ—प्राणों का समूह इस शरीर-रथ को दीप्त बनाता है और तीव्र बुद्धि को प्राप्त कराता है।

अगले सूक्त में भी इन्हीं मरुतों का ही आराधन है—

अथ पञ्चमोऽनुवाकः

५७. [सप्तपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सुविताय गन्तन

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे॥ १॥

(१) हे **रुद्रासः** (रुत् द्र)=सब रोगों का द्रावण करनेवाले! शरीरों को नीरोग बनानेवाले, **इन्द्रवन्तः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभुवाले, प्रभु की प्राप्ति के साधनभूत, **सजोषसः**=शरीर में मिलकर कार्यों को करनेवाले (सब प्राणों का कार्य पृथक्-पृथक् होता हुआ भी, एक दूसरे के लिये सहायक है) **हिरण्यरथाः**=शरीररूप रथ को ज्योतिर्मय बनानेवाले प्राणो! आप **सुविताय**=उत्तम गमन के लिये, सद् आचारण के लिये, **गन्तम**=हमें प्राप्त होवो। (२) **इयम्**=यह **अस्मत्**=हमारी **मतिः**=बुद्धि **वः प्रतिहर्यते**=तुम्हारी ही कामनावाली होती है। उस प्रकार तुम्हारी कामनावाली होती है, **न**=जिस प्रकार **तृष्णजे**=प्यासे **उदन्यवे**=उदक के इच्छु पुरुष के लिये **दिवः उत्साः**=आकाश से टपकनेवाले जलस्रोत (वृष्टिजल) इष्ट होते हैं। प्यासा जैसे जलों की कामना करता है, उसी प्रकार हम इन प्राणों की कामना करते हैं। इनकी साधना ने ही तो हमें सन्मार्ग पर ले चलना है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर-रथ सुन्दर बनता है और सदा सन्मार्ग पर आगे बढ़नेवाला होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वीर योद्धा

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम्॥ २॥

(१) आधिभौतिक जगत् में 'मरुत्' वीर योद्धा हैं। ये **वाशीमन्तः**=शत्रुओं के तक्षण के साधनभूत अस्त्रोंवाले हैं (वाशी=axe, spear), कुल्हाड़े व भालेवाले हैं। **ऋष्टिमन्तः**=उत्तम तलवारवाले हैं। **मनीषिणः**=समझदार हो। **सुधन्वानः**=उत्तम धनुषवाले हैं। **इषुमन्तः**=प्रशस्त बाणोंवाले हो तथा **निषङ्गिणः**=तरकसवाले हैं। (२) **स्वश्वाः**=उत्तम अश्वोंवाले व **सुरथाः**=उत्तम रथवाले **स्थ**=हैं। **पृश्निमातरः**=('इयं पृथिवी वै पृश्नि' तै० १।४।१।५) इस पृथिवी को माता के समान समझनेवाले हैं। **स्वायुधाः**=उत्तम आयुधोंवाले होते हुए **मरुतः**=हे वीर योद्धाओ! तुम **शुभं याथना**=बड़ी शोभा के साथ संग्राम में गतिवाले होते हो।

भावार्थ—राष्ट्र के वीर सैनिक सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हुए-हुए, पृथ्वी को माता समझनेवाले होकर उसकी रक्षा के लिये संग्राम में शुभ गतिवाले हों।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वीरों द्वारा 'पर्वत-वन-पृथिवी' कम्पन

धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम्॥ ३॥

(१) हे **पृश्निमातरः**=इस पृथिवी को अपनी माता समझनेवाले वीरो! आप **द्यां पर्वतान्**=द्युलोक

व पर्वतों को **धूनुथ**=कम्पित कर देते हो। वीर क्षत्रिय योद्धा जब गति करते हैं तो सारा आकाश ही मानो हलचलवाला हो जाता है और पर्वत भी काँप उठते हैं। ये वीर योद्धा ही **दाशुषे**=मातृभूमि के लिये दान करनेवालों के लिये **वसु** (धूनुथ)=धनों को प्राप्त कराते हैं। जो लोग देशरक्षा के लिये धनों को देते हैं, उनके लिये ये वीर योद्धा शत्रुओं को परास्त करके धनों को प्राप्त करानेवाले होते हैं। **वः**=हे मरुतो! तुम्हारे **यामनः भिया**=गमन के भय से **वना**=सब वन **निजिहते**=निम्न गतिवाले हो जाते हैं। ये वीर सैनिक मार्ग में आये वानों को काटकर मार्गों को बना लेते हैं। (२) हे मरुतो! **यद्**=जब **उग्राः**=तेजस्वी व शत्रु भयंकर आप **पृषतीः**=अपने घोड़ों को **अयुग्ध्वम्**=जोतते हो और **शुभे**=देशरक्षणरूप शुभ कार्य में गतिवाले होते हो तो **पृथिवीं कोपयथ**=सम्पूर्ण पृथिवी को कम्पित कर देते हो, सम्पूर्ण पृथिवी को क्षुब्ध कर डालते हो।

भावार्थ—वीर जब देश-रक्षण के लिये गति करते हैं तो द्युलोक, पृथिवीलोक, पर्वतों व वनों सभी को कम्पित करते हुए आगे बढ़ते हैं और देश के लिये त्याग करनेवालों के लिये वसुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'वर्षनिर्णिजो' मरुतः

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः॥ ४॥

(१) **मरुतः**=ये वीर सैनिक **वातत्विषः**=(वातेन त्विट् येषां) गति के द्वारा दीप्तवाले हैं। **वर्षनिर्णिजः**=देश का शोधन करनेवाले हैं। शत्रुओं को नष्ट करके देश को मानो शत्रु मलशून्य कर देते हैं। ये सैनिक **यमाः इव**=एक साथ उत्पन्न होनेवालों के समान **सुसदृशः**=परस्पर समान प्रतीत होते हैं अपने वेश में एक जैसे लगते हैं। **सुपेशसः**=बड़ी उत्तम आकृतिवाले हैं। (२) **पिशंगाश्वाः**=(reddish) रक्तवर्ण के घोड़ोंवाले **अरुणाश्वाः**=अरुण वर्ण के तेजस्वी घोड़ोंवाले **अरेपसः**=लोभ व कायरता आदि दोषों से शून्य **प्रत्वक्षसः**=शत्रुओं को छील डालनेवाले ये मरुत् **महिना**=अपनी महिमा से **द्यौः इव उरवः**=द्युलोक के समान विशाल हैं। इनकी महिमा सर्वत्र फैल जाती है।

भावार्थ—समान वेशवाले वायुवत् तीव्र गतिवाले वीर सैनिक शुत्रओं को नष्ट करके देश को शुद्ध कर डालते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'पुरुद्रप्साः' मरुतः (अमृतं नाम भेजिरे)

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे॥ ५॥

(१) **पुरुद्रप्साः**=(द्रप्स=सोमकण drops) खूब सोमकणों से युक्त जीवनवाले, वीर्यवान्, **अञ्जिमन्तः**=अपने अंग-प्रत्यंग को शक्ति से सुभूषित करनेवाले, **सुदानवः**=शत्रुओं को सम्यक् काटनेवाले (दाप् लवने), **त्वेष सन्दृशः**=दीप्तरूपवाले, **अनवभ्रराधसः**=अनष्ट धनोंवाले, **जनुषा**=जन्म से ही **सुजातासः**=उत्तम शक्तियों के विकासवाले, **रुक्मवक्षसः**=दीप्त छातियोंवाले, स्वर्ण-हारयुक्त छातियोंवाले, **दिवः अर्काः**=उस प्रकाशस्वरूप प्रभु के पूजक ये मरुत् **अमृतं नाम**=निश्चय से अमरता को **भेजिरे**=प्राप्त होते हैं। (२) देशरक्षा के लिये प्रभु स्मरणपूर्वक युद्ध

करनेवाले ये वीर सैनिक युद्ध में प्राण त्याग करके अमर हो जाते हैं।

भावार्थ—देशरक्षा के लिये प्रभु स्मरणपूर्वक युद्ध करते हुए ये वीर योद्धा अमर हो जाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ओजस्वी वीर योद्धा

ऋष्टयो॑ वो मरुतो॒ अंस॑यो॒रधि॒ सह॒ ओजो॑ बा॒ह्वोर्वो॒ बलं॑ हि॒तम्।
नृम्णा शी॒र्षस्वायु॑धा॒ रथे॑षु वो॒ विश्वा॑ व॒: श्रीरधि॑ त॒नूषु॑ पिपिशे ॥ ६ ॥

(१) हे **मरुतः**=वीर सैनिको! **वः अंसयोः**=तुम्हारे दोनों कन्धों पर **ऋष्टयः**=तलवारें व अस्त्र विशेष हैं **वः**=तुम्हारी **बाह्वोः**=बाहुवों में **सहः**=शत्रुओं का मर्षण करनेवाला **ओजः**=ओज व **बलम्**=बल **अधिहितम्**=आधिक्येन निहित है, तुम्हारी भुजाएँ खूब ही बल-सम्पन्न हैं। (२) **शीर्षसु**=तुम्हारे सिरों में भी **नृम्णा**=(courage, strength) उत्साह व शक्ति है, तुम्हारा दिमाग भी शक्ति के भावों से भरा है। **वः रथेषु**=तुम्हारे रथों पर **आयुधा**=अस्त्र रखे हैं। **वः तनूषु**=तुम्हारे शरीरों पर **विश्वा**=सम्पूर्ण **श्रीः**=शोभा **अधिपिपिशे**=आधिक्येन शोभायमान होती है। इन सैनिकों का मस्तिष्क व शरीर तेजस्विता व उत्साह से भरा हुआ है।

भावार्थ—वीरों के कन्धों पर अस्त्र हैं, बाहुवों में बल, मस्तिष्क में उत्साह व शरीर में शोभा ही शोभा है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राणों का दिव्य रक्षण

गोम॒दश्वा॑व॒द्रथ॑वत्सु॒वीरं॑ च॒न्द्रव॒द्राधो॑ मरुतो ददा नः।
प्रश॑स्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भ॒क्षीय॑ वोऽवसो॒ दैव्य॑स्य ॥ ७ ॥

(१) प्रस्तुत मन्त्र शरीरस्थ मरुतों (प्राणों) का उल्लेख करता है। हे **मरुतः**=प्राणो! **नः**=हमारे लिये उस **राधः**=ऐश्वर्य को **ददा**=दीजिये, जो **गोमत्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाला है, **अश्वावत्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाला है तथा **रथवत्**=उत्तम शरीररूप रथवाला है। **सुवीरम्**=उत्तम वीर सन्तानोंवाला है तथा **चन्द्रवत्**=आह्लाद से युक्त है। प्राणसाधना से धन प्राप्त करने की क्षमता तो प्राप्त होती ही है। साथ ही धन के कारण होनेवाले दुर्गुण हमारे जीवन में नहीं आते। (२) हे **रुद्रियासः**=दुःखों के द्रावक (रुद्र) प्रभु के पुत्रो! **नः**=हमारी **प्रशस्तिम्**=प्रशस्ति को, प्रशंसनीय जीवन को **कृणुत**=करो। 'स प्राणमसृजत्' इन शब्दों में प्रभु ने सबसे प्रथम प्राणरूप कला को ही उत्पन्न किया। सो ये प्राण 'रुद्रिय' हैं। ये हमारे जीवन को दोषदहन के द्वारा प्रशस्त बनाते हैं। हे प्राणो! मैं **वः**=आपके **दैव्यस्य अवसाः**=दिव्य रक्षण का **भक्षीय**=उपभोग करूँ। प्राण हमें सब रोगों व मालिन्यों से बचाते हैं। सब दोषों का दहन करके ये हमारे जीवन को दिव्य बनाते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से हम जीवन को उत्कृष्ट बनानेवाले ऐश्वर्य का अर्जन करते हैं। प्राण जीवन को प्रशस्त बनाते हैं और दिव्य रक्षण को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राष्ट्र के प्रधान शासक लोग

हु॒ये नरो॒ मरु॑तो मृ॒ळता॑ न॒स्तुवी॑मघासो॒ अमृ॑ता॒ ऋत॑ज्ञाः।
स॒त्य॑श्रुत॒: कव॑यो॒ युवा॑नो॒ बृह॑द्गिरयो बृ॒हदु॒क्षमा॑णाः ॥ ८ ॥

(१) **हये**=हे **नरः**=राष्ट्र को उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले **मरुतः**=(मितराविणः) कम बोलनेवाले शासक पुरुषो! **नः मृडता**=राष्ट्र के उत्तम शासन के द्वारा हमारे जीवनों को सुखी करिये। **तुवीमघासः**=आप महान् ऐश्वर्यवाले हो। **अमृताः**=रोगों से आक्रान्त न होनेवाले हो। **ऋतज्ञाः**=ऋत के ज्ञानवाले हो, ऋत के अनुसार ही राष्ट्र का शासन करते हो। (२) **सत्यश्रुतः**=आप सत्य ज्ञानवाले हो, **कवयः**=क्रान्तदर्शी हो, तत्त्वज्ञानवाले हो। **युवानः**=राष्ट्र से बुराइयों को दूर करनेवाले हो और अच्छाइयों को मिलानेवाले हो। **बृहद् गिरयः**=खूब ही प्रभु का स्तवन करनेवाले हो और **बृहद् उक्षमाणाः**=खूब ही राष्ट्र को सुखों से सिक्त करनेवाले हो।

भावार्थ—राष्ट्र को वे ही शासक सुखी कर सकते हैं, जो ऋत व सत्य को अपनानेवाले हैं, और जो खूब ज्ञान होते हुए प्रभु स्मरण से शक्ति का लाभ करनेवाले हैं।

अगले सूक्त में भी मरुतों का ही उल्लेख है—

५८. [अष्टपञ्चाशं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'तविषीमान्' मारुतगण

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम्।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित **एषाम्**=इन शासकों के, जो **नव्यसीनाम्**=(नु स्तुतौ) स्तुति के योग्य हैं इनके **तविषीमन्तम्**=दीप्तिवाले **तम्**=उस **मारुतं गणम्**=मरुद् गण को **नूनं उ**=निश्चय से **स्तुषे**=स्तुत करता हूँ। शासक वर्ग के ये लोग सचमुच प्रशंसनीय जीवनवाले हैं। शौर्य व तेजस्विता से ये दीप्त हैं। (२) **ये**=जो शासक लोग **आशु अश्वः**=शीघ्रगामी अश्वोंवाले हैं, कार्य संचालन के लिये इधर-उधर जाने के लिये जिन के पास तीव्रगामी यान विद्यमान हैं। ये शासक **अमवद्**=बलवान् होते हुए **वहन्ते**=राष्ट्रधुरा का वहन करते हैं। **उत**=और ये शासक लोग **स्वराजः**=अपने जीवन को व्यवस्थित (regulated) करते हुए **अमृतस्य**=नीरोगता के **ईशिरे**=ईश्वर होते हैं। स्वस्थ जीवनवाले होते हुए ये प्रजा का उत्तम शासन कर पाते हैं।

भावार्थ—शासक गण दीप्तिवाला, शीघ्रगामी अश्वोंवाला व नियमित जीवन से नीरोगतावाला होकर राष्ट्रधुरा को सबलता से धारण करता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धुनिव्रत-खादिहस्त

त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम्।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥ २ ॥

(१) हे **विप्रः**=ज्ञानी पुरुष! तू इस **गणम्**=शासकवर्ग का **वन्दस्व**=स्तवन कर, इनकी प्रशंसा के द्वारा इन्हें प्रेरणा देनेवाला हो। जो शासकगण **त्वेषम्**=तेजस्विता से दीप्त है, **तवसम्**=शक्तिशाली है, **खादिहस्तम्**=हाथों में शत्रुओं के विनाशक वज्र को लिये हुए है, **धुनिव्रतम्**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले कर्मोंवाला है, **मायिनम्**=प्रज्ञावान् है, तथा **दातिवारम्**=प्रजाओं के लिये वरणीय वस्तुओं के देनेवाला है। 'त्वेषं' आदि विशेषणों से शासकवर्ग के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन हुआ है। उन्हें अपने जीवनों में 'त्वेषं' आदि विशेषणों को चरितार्थ करने का प्रयत्न करना चाहिये। (२) **ये**=जो शासक **मयोभुवः**=प्रजाओं के कल्याण का भावन करनेवाले हैं, **महित्वा**=अपनी महिमा

से **अमिताः**=सीमित व संकुचित नहीं हैं, विशाल महिमावाले हैं। उन **तुविराधसः**=खूब ही कार्यों को सिद्ध करनेवाले **नॄन्**=नेताओं को (वन्दस्व)=उचित आदर प्राप्त कराओ। वस्तुतः शासकों का मूल कर्त्तव्य प्रजाओं का कल्याण ही है। ये शासक महान् कार्यों को सिद्ध करनेवाले होते हैं। इनका आदर करना ही चाहिए।

भावार्थ—शासक लोग तेजस्वी, शत्रुविनाशक व प्रजाओं का कल्याण करनेवाले हों।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अग्निहोत्र व वृष्टि

आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः॥ ३॥

(१) **ये**=जो **विश्वे**=सब **मरुतः**=वृष्टि को लानेवाले वायु **वृष्टिं जुनन्ति**=वृष्टि को प्रेरित करते हैं, वे **उदवाहासः**=जलों को प्राप्त करानेवाले वायु **अद्य**=आज **वः**=तुम्हें **आयन्तु**=प्राप्त हों। (२) **अयम्**=यह **यः**=जो **मरुतः**=वृष्टिवाहक वायु का **अग्निः**=अग्नि **समिद्धः**=अग्निहोत्र के लिये अग्निकुण्ड में प्रदीप्त किया गया है, **एतम्**=इसको हे **कवयः**=ज्ञानी **युवानः**=बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों को अपने साथ संगत करनेवाले पुरुषो! तुम **जुषध्वम्**=प्रीतिपूर्वक सेवित करनेवाले होवो। अग्निहोत्र को करने से ही इन वृष्टियों का सम्भव होता है 'यज्ञाद् भवति पर्जन्यः' इसी उद्देश्य से यहाँ अग्नि को मरुतों का कहा है। यह अग्नि मरुतों का है, मरुतों को प्रेरित करनेवाला है 'अग्निहोत्रं सव्यं वर्षम्'।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुषों को चाहिये कि घरों में नियमपूर्वक अग्निहोत्र करें। इसी से वृष्टि का नियमित ऋतु में होने का सम्भव होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मुष्टिहा बाहुजूतः' राजा

यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः॥ ४॥

(१) हे **यजत्राः**=यज्ञशील, परस्पर संगतिकरणवाले पुरुषो! **यूयम्**=तुम **जनाय**=प्राजाजन के लिये, लोकहित के लिये **राजानम्**=राजा को, राष्ट्रशासक पुरुष को **जनयथा**=प्रादुर्भूत करो, चुनकर उसे सिंहासनारूढ़ करो, जो **इर्यम्**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाला है तथा **विभ्वतष्टम्**=(विभ्वन्=supreme ruler) मुख्य शासक बनने के योग्य है। (२) हे **मरुतः**=परिमित बोलनेवाले वीर पुरुषो! **युष्मत्**=तुम्हारे में से ही यह **मुष्टिहा**=मुक्के से ही शत्रुओं का संहार करनेवाला, **बाहुजूतः**=भुजाओं से सदा वेगयुक्त, सतत क्रियाशील राजा **एति**=प्राप्त होता है। **युष्मत्**=तुम्हारे में से ही यह **सदश्वः**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला **सुवीरः**=उत्तम वीर प्राप्त होता है।

भावार्थ—राजसिंहासन पर उस व्यक्ति को बिठाया जाए जो 'शत्रुकम्पक, क्रियाशील, उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला व उत्तम वीर' हो।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'महोभिः अकवाः' मरुतः

अराइवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः॥ ५॥

(१) गतमन्त्र में वर्णित राजा के साथ रहनेवाले **मरुतः**=मितरावी वीर पुरुष **इत्**=निश्चय से **अराः इव**=रथचक्र के अरों के समान **अचरमाः**=अगले व पिछले नहीं हैं। जैसे सभी अरों का समान महत्त्व है, इसी प्रकार इन सब मरुतों का समान महत्त्व है। ये सब मरुत् समानरूप से महिमावाले हैं। ये **महोभिः**=तेजस्विताओं से **अकवाः**=अनल्प **प्र प्र जायन्ते**=होते हैं। अर्थात् खूब ही तेजस्वी होते हैं। (२) **पृश्नेः पुत्राः**=ये इस मातृभूमि के पुत्र हैं। **उपमासः**=परस्पर उपमा देने योग्य हैं, अर्थात् सभी वीर हैं। **रभिष्ठाः**=रभस्‌वाले, वेगयुक्त बलवाले हैं। ये **मरुतः**=मरुत् राष्ट्ररक्षा करनेवाले वीर सैनिक, **स्वया मत्या**=अपनी बुद्धि से, अर्थात् विचारपूर्वक **संमिमिक्षुः**=शत्रुओं पर शरवर्षण करते हैं। इस प्रकार शत्रुओं को शीर्ण करते हुए ये मातृभूमि की रक्षा करते हैं।

भावार्थ—राष्ट्र के वीर क्षत्रिय छोटे-बड़े की भावना से रहित होकर खूब तेजस्विता के साथ बुद्धिपूर्वक शत्रुओं पर शरवर्षण करनेवाले हों।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वीरों की रण-यात्रा

यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्त्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥

(१) हे **मरुतः**=वीर सैनिको! **यत्**=जब आप **पृषतीभिः**=अपने अन्दर शक्ति का सेवन करनेवाले शक्तिशाली **अश्वैः**=घोड़ों से तथा **वीडुपविभिः**=दृढ़ रथनेमियोंवाले **रथेभिः**=रथों से **प्रायासिष्ट**=शत्रु पर आक्रमण के लिये गतिवाले होते हो तो **आपः**=नदियों के जल **क्षोदन्ते**=क्षुब्ध हो उठते हैं, **वनानि रिणते**=वन हिंसित हो जाते हैं और यह **उस्त्रियः**=सूर्य-किरणों से रोशन **वृषभः**=वर्षा को करनेवाला **द्यौः**=द्युलोक **अवक्रन्दतु**=मानो रो उठता है, अर्थात् सारा जगत् ही भयभीत-सा हो जाता है। सब में भय से हलचल हो उठती है। (२) वीर क्षत्रिय अपने शक्तिशाली घोड़ों व दृढ़ रथों से जब रण-यात्रा प्रारम्भ करते हैं तो सारे संसार को हिला-सा देते हैं। उनको नदियाँ व वन रोक नहीं पाते, चमकती हुई धूप व बरसता हुआ आकाश उनको रोकनेवाला नहीं होता। सब विघ्न-बाधाओं को दूर करते हुए वे आगे बढ़ते हैं और विजयी होते हैं।

भावार्थ—वीर क्षत्रियों के मार्ग में नदियाँ, वन, धूप व वर्षा कोई भी रुकावट नहीं बन पाता।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

(१) **एषाम्**=इन मरुतों की **यामन्**=गति के होने पर **पृथिवी चित्**=यह पृथिवी भी **प्रथिष्ट**=फैल जाती है, अर्थात् इनको यह पृथिवी खुला मार्ग देनेवाली होती है। **इव**=जैसे **भर्ता**=पति **गर्भम्**=गर्भ को धारण करता है, अपनी पत्नी में गर्भ की स्थापना करता है, उसी प्रकार ये वीर सैनिक **इत्**=निश्चय से **स्वं शवः**=अपने बल का **धुः**=इस पृथिवी में स्थापन करते हैं। इनकी गति से सम्पूर्ण देश ओजस्वी हो उठता है। (२) ये सैनिक **वातान्**=वायुसमवेगवाले **अश्वान्**=घोड़ों को **हि**=निश्चय से **धुरि**=रथधुरा में **आयुयुज्रे**=जोतते हैं और ये **रुद्रियासः**=शत्रुओं को रुलानेवाले (रोदयन्ति) वीर सैनिक **वर्षम्**=सम्पूर्ण देश को **स्वेदं चक्रिरे**=श्रमजनित पसीने से तरबतर कर देते हैं। इन वीर सैनिकों के कार्यों से उत्साहित होकर सारा देश श्रमशील हो उठता है, वह मातृभूमि

के लिये पसीना बहाने को तैयार हो जाता है। इसके विपरीत सैनिक ही कायर होकर भागने लगें तो प्रजा में भी अकारण भय का संचार हो जाता है।

भावार्थ—वीर क्षत्रियों की वीरतापूर्ण गति देश को ओजस्वी बनाती है और इसके विपरीत इनकी कायरता लोगों में अकारण-भय का संचार करनेवाली होती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शासकवर्ग कैसा?

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः॥ ८॥

मन्त्र संख्या ५७.८ पर अर्थ द्रष्टव्य है।

अगला सूक्त भी मरुतों का ही वर्णन करता है—

५९. [एकोनषष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'ज्ञान-विज्ञान' की प्राप्ति

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे।
अक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः॥ १॥

(१) हे मरुतो (प्राणो)! **स्पट्**=यह द्रष्टा ज्ञानी पुरुष **वः**=आपको **प्र अक्रन्** (क्रन्दति)=प्रकर्षेण पुकारता है। जिससे **सुविताय**=सुवित के लिये, दुरितों से दूर होने के लिये तथा **दावने**=दान व त्याग की भावना के निमित्त वह आपका स्तवन करता है। प्राणसाधना से मनुष्य दुरितों से बचता है और त्यागशील बनता है। **प्र अर्चा**=वह आपकी अर्चना करता है **दिवे**=ज्ञान के प्रकाश के लिये तथा **पृथिव्याः**=इस शरीररूप पृथिवी के **ऋतं भरे**=ऋत को भरने के निमित्त (भरणं भरः)। शरीर के सब अंगों को ठीक करने के निमित्त वह आपका आह्वान करता है, प्राणसाधना से ही ज्ञान व शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। (२) प्राणसाधक **अश्वान्**=इन्द्रियाश्वों को **उक्षन्ते**=शक्ति से सिक्त करते हैं। **रजः**=रजोगुण को **आ तरुषन्ते**=तैर जाते हैं और **स्वं भानुम्**=आत्म प्रकाश को **अर्णवैः**=विज्ञान समुद्रों से **अनु श्रथयन्ते**=अनुश्लिष्ट करते हैं, ज्ञान को विज्ञान के साथ जोड़नेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'सुवित, त्यागवृत्ति, प्रकाश व स्वास्थ्य' प्राप्त होता है। इससे शक्ति का सेचन-सत्त्वगुण में स्थिति तथा ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

शत्रु-कम्पन व ज्ञानयज्ञ प्रणयन

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः॥ २॥

(१) **एषाम्**=इन मरुतों-प्राणों के **अमात्**=बल से **भियसा**=भय के कारण **भूमिः एजति**=यह पृथिवीरूप शरीर काँप उठता है। इस शरीर में प्राणों के कारण वह हलचल उत्पन्न होती है, जो शरीरस्थ सब रोग व वासनारूप शत्रुओं को कम्पित करके दूर कर देती है। यह **व्यथिः**=शत्रुओं को पीड़ित करनेवाली **यती**=गति करती हुई शरीर-भूमि इस प्रकार से कम्पन में होती है, **न**=जैसे

कि **पूर्णा नौः**=जल से पूर्ण नाव **क्षरति**=नदी में गतिवाली होती है। (२) ये प्राण **दूरेदृशः**=आँखों से ओझल हैं, परन्तु **ये**=जो प्राण **एमभिः चितयन्त**=अपनी गतियों से जाने जाते हैं, वे **नरः**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राण **महे विदथे अन्तः**=महान् ज्ञानयज्ञ में **येतिरे**=यत्नशील होते हैं। इन प्राणों के कारण ही जीवन में ज्ञानयज्ञ चलता है। प्राणसाधना से सोम की ऊर्ध्वगति होकर ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और ज्ञान यज्ञ चलता है।

भावार्थ—प्राणों द्वारा इस शरीर भूमि में हलचल द्वारा शत्रु कम्पित हो उठते हैं। इस प्राणसाधना के परिणामस्वरूप ही ज्ञानयज्ञ चलता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'शक्ति व चेतना' द्वारा शोभा वृद्धि

गवांमिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने।
अत्यांइव सुभ्व१श्चारंवः स्थन मर्यांइव श्रियसें चेतथा नरः ॥ ३ ॥

(१) हे **नरः**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणो! आप **गवां उत्तमं शृंगं इव**=गौवों के उत्तम सींगों की तरह **स्थन**=हो और इसीलिये **श्रियसे**=शोभा के लिये होते हो। गौओं के सींग जैसे शत्रुओं के विदारण के लिये होते हैं, इसी प्रकार प्राण रोगकृमि आदि शत्रुओं को दूर करके शरीर की शोभा को बढ़ानेवाले हैं। (२) हे प्राणो! आप **सूर्यः न**=सूर्य के समान, **रजसः विसर्जने**=रजोगुण के दूर करने के लिये **चक्षुः**=मार्गदर्शक आँख के समान हो। सूर्य जैसे अन्धकार को दूर करता है, इसी प्रकार ये प्राण राजस वृत्ति को दूर करके हमें सत्त्वगुण का प्रकाश प्राप्त कराते हैं। (२) हे प्राणो! आप **अत्याः इव**=सततगामी अश्वों के समान **सुभ्वः**=उत्तम स्थितिवाले **चारवः**=खूब वेगवाले (चर गतौ) **स्थन**=हो। प्राण शरीर की उत्तम स्थिति का कारण होते हैं और निरन्तर गतिवाले होते हैं। **मर्याः इव**=मनुष्यों की तरह **चेतथा**=ज्ञानवाले होते हो और इस चेतना से **श्रियसे**=शोभा के लिये होते हो। ज्ञान से ही तो मनुष्य की शोभा बढ़ती है।

भावार्थ—प्राण 'शत्रु-विनाशक शक्ति, प्रकाश, गति व चेतना' के द्वारा हमारी शोभा का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'यश, ज्ञान, शक्ति, सदाचार व त्याग'

को वो महान्ति महतामुदंश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुवितायं दावनें॥ ४॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **कः**=कोई विरला पुरुष ही **महतां वः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आपके **महान्ति**=महनीय यशों को **उदश्नवत्**=अपने में व्याप्त करता है। अर्थात् प्राणसाधना करता हुआ कोई विरला पुरुष ही यशस्वी जीवनवाला बनता है। **कः**=कोई ही **काव्या**=वेद ज्ञानों को व्याप्त करता है **कः ह**=और कोई ही निश्चय से **पौंस्या**=शक्तियों को व्यापता है। प्राणसाधना से 'यश, ज्ञान व शक्ति' सभी का वर्धन होता है। (२) हे प्राणो! **यूयम्**=आप ही **ह**=निश्चय से **भूमिम्**=इस शरीररूप पृथिवी को, **किरणं न**=ज्ञान की किरणों के समान **रेजथ**=दीप्त करते हो। प्राणसाधना से शरीर तेजस्विता से दीप्त होता है और मस्तिष्क ज्ञानदीप्त बनता है। हे प्राणो! **यद्**=जब आप **प्रभरध्वे**=प्रकर्षेण भरण करते हो तो **सुविताय**=सुवित के लिये होते हो और **दावने**=त्याग के लिये होते हो। प्राणसाधना से हमारे दुरित दूर होते हैं और हमारी वृत्ति त्याग की बनती है।

भावार्थ—प्राणसाधना हमारे जीवन में 'यश, ज्ञान, शक्ति, सदाचार व त्याग' को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

विज्ञानमय कोश से भी ऊपर

अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥ ५ ॥

(१) ये प्राण **अश्वाः इव**=सततगामी अश्वों के समान **अरुषासः**=आरोचमान हैं। प्राणों के कारण शरीर में गति व दीप्ति है। **उत**=और **प्रयुधः शूराः इव**=प्रकृष्ट युद्ध करनेवाले शूरों के समान ये प्राण **प्र युयुधुः**=शरीर में रोगों व वासनाओं से खूब ही युद्ध करते हैं। (२) **सुवृधः**=उत्तमताओं का वर्धन करनेवाले **मर्याः इव**=मनुष्यों के समान ये **नरः**=उन्नति पथ पर ले चलनेवाले प्राण **वावृधुः**=खूब ही वृद्धिवाले होते हैं। शरीर में सब वृद्धि इन प्राणों के कारण है। ये प्राण **वृष्टिभिः**=आनन्द के वर्षणों के द्वारा **सूर्यस्य चक्षुः**=सूर्य के प्रकाश को भी **प्रमिनन्ति**=छोटा कर देते हैं (मिनन्ति=diminish), अर्थात् विज्ञानमयकोश से भी हमें ऊपर उठाकर आनन्दमयकोश में प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्राण सब गतियों का कारण हैं। ये ही शत्रुओं का विनाश करते हैं। वृद्धि का कारण बनते हुए ये प्राण हमें विज्ञानमयकोश से ऊपर उठाकर आनन्दमयकोश में प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

तेजस्विता-ज्ञानप्रकाश-प्रभु प्राप्ति

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥ ६ ॥

(१) शरीरस्थ प्राण ४९ भागों में बटे हुए हैं। **ते**=वे प्राण **अज्येष्ठाः अकनिष्ठासः**=न छोटे हैं न बड़े हैं, अर्थात् इन प्राणों में कोई छोटा बड़ा नहीं है। सभी प्राणों का समानरूप से महत्त्व है। **अमध्यमासः**=इन में कोई भी मध्यम श्रेणी का नहीं है। **उद्भिदः**=सब के सब शत्रुओं का उद्भेदन करनेवाले हैं। **महसा विवावृधुः**=तेजस्विता से खूब ही वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं। (२) **सुजातासः**=उत्तम प्रादुर्भाववाले ये प्राण **जनुषा**=अपने प्रादुर्भाव से **पृश्निमातरः**=ज्ञानरश्मियों का (पृश्नि=a ray of light) निर्माण करनेवाले हैं। प्रभु कहते हैं कि हे **दिवः मर्याः**=प्राणसाधना द्वारा प्रकाशमय जीवनवाले मनुष्यो! **नः अच्छा**=हमारी ओर **आजिगातन**=आओ। प्राणसाधना करके हम जीवन को प्रकाशमय बनायें और निरन्तर प्रभु की ओर गतिवाले हों।

भावार्थ—शरीर में सब प्राणों का महत्त्व है। ये हमें तेजस्वी व ज्ञान के प्रकाशवाला बनाते हैं। ज्ञान को प्राप्त करके हम प्रभु की ओर बढ़ते हैं। तेजस्विता व ज्ञान ही हमें प्रभु प्राप्ति का पात्र बनाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पर्वतस्य नभनूनु अचुच्यवुः

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ७ ॥

(१) **वयः श्रेणीः न**=पक्षियों की पंक्तियों की तरह **ये**=जो मरुत् (प्राण) **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **बृहतः**=विशाल **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक के **सानुनः**=शिखर के **अन्तान् परि** (परितः)=अन्तों के चारों ओर **पप्तुः**=गतिवाले होते हैं। प्राणसाधना में प्राणों का शरीर के विविध स्थानों में निरोध होता है। इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निरोध मस्तिष्करूप द्युलोक के शिखर में है, यही स्थान ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है। जैसे पक्षी उड़कर ऊपर आकाश में जाता है, मानो उसी प्रकार ये प्राण इस मस्तिष्करूप द्युलोक के शिखर पर जाते हैं। (२) **एषाम्**=इन मरुतों के **उभये**=दोनों प्रकार के **अश्वासः**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व **यथा**=जिस प्रकार **विदुः**=ज्ञान प्राप्ति वाले होते हैं (कर्मेन्द्रियाँ भी जब ज्ञान प्राप्ति के साधक कर्मों में प्रवृत्त होती हैं) तो **पर्वतस्य**=अविद्या पर्वत के **नभनून्**=(hurling) हिंसनों व क्लेशों को **प्र अचुच्यवुः**=क्षरित व नष्ट करते हैं। अविद्या ही सब क्लेशों की जननी है। प्राणसाधना से इन्द्रियों के दोष दग्ध होकर ज्ञानवृद्धि होती है और अविद्या जनित क्लेशों का विनाश हो जाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना में प्राणों का ब्रह्मरन्ध्र में नियमन करने पर इन्द्रियाँ पूर्ण निर्दोषवाली होती हैं। उस समय अविद्या पर्वत का विनाश हो जाता है। अविद्या जनित क्लेशों का प्रश्न ही नहीं रहता।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राणसाधना व ज्ञानवृद्धि

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः॥ ८॥

(१) प्राणसाधना के होने पर **द्यौः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक **मिमातु**=(roar) ज्ञान के शब्दों की गर्जनावाला हो। अर्थात् मस्तिष्क में ज्ञान के शब्द ही गूँजें। **अदितिः**=अखण्डित स्वास्थ्यवाली यह शरीर भूमि **नः**=हमारी **वीतये**=(वी गति प्रजनन) गति व शक्ति विकास के लिये हो। प्राणसाधना मस्तिष्क को ज्ञानमय बनाती है, तो शरीर को यह गति व शक्ति के विकास से युक्त करती है। प्राणसाधना से हमारे जीवन में **उषसः**=उषाकाल **दानुचित्राः**=अद्भुत दानोंवाले होकर **संयतन्ताम्**=सम्यक् यत्नवाले हों। हम उषाकालों में आलस्यशून्य होकर आसन प्राणायामादि में प्रवृत्त होंगे तो ये उषाकाल हमारे लिये अद्भुत शक्तियों के दानवाले होंगे। (२) हे **ऋषे** **तत्त्वद्रष्टः**=पुरुष! **एते**=ये **रुद्रस्य**=ज्ञानोपदेश के देनेवाले प्रभु के **मरुतः**=प्राण **गृणानाः**=स्तवन करते हुए, हमें स्तवन की वृत्तिवाला बनाते हुए, **दिव्यं कोशम्**=विज्ञानमय कोश को **आचुच्यवुः**= हमारे में क्षरित करते हैं। प्राणसाधना से यह विज्ञानमयकोश निरन्तर विज्ञान की वृद्धिवाला बनता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारा मस्तिष्क व शरीर सुन्दर बनते हैं। हमारी उषाएँ अच्छी व्यतीत होती हैं। दिव्यकोश का वर्धन होता है।

अगले सूक्त का देवता मरुत् व अग्नि हैं। ऋषि तो 'श्यावाश्व आत्रेय' ही हैं—

६०. [षष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतो वाग्निश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु-स्मरण-प्राणायाम

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम्॥ १॥

(१) मैं **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **नमोभिः**=नमस्कारों द्वारा **ईडे**=उपासित करता हूँ। उस प्रभु को जो **स्ववसम्**=उत्तम रक्षणवाले हैं। प्रभु के रक्षण में रक्षित हुआ-हुआ ही मैं सब कर्मों को कर पाता हूँ। वे प्रभु **इह**=यहाँ हमारे हृदयों में **प्रसत्तः**=प्रकर्षेण स्थित हुए-हुए **ना कृतम्**=हमारे कर्मों को **विचयत्**=पूरा-पूरा जान रहे हैं 'यो वेदिता कर्मणः पापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि वर्द्धो संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः'। (२) मैं उस प्रभु के निरीक्षण में **वाजयद्भिः**=(वाजं कुर्वद्भिः) संग्राम को करते हुए **रथैः इव**=रथों से ही **प्रभरे**=उत्कृष्ट कार्यों का भरण करता हूँ। शरीर-रथ के द्वारा जीवन-संग्राम में उत्कृष्ट कार्यों का करनेवाला होता हूँ। **प्रदक्षिणित्**=सरल व उदार दक्षिण मार्ग से नकि उलटे (वाम) मार्ग से, गतिकरता हुआ **मरुतां स्तोमम्**=प्राणों के स्तवन को **ऋध्याम्**=समृद्ध करूँ, खूब ही प्राणसाधना करता हुआ जीवन को निर्दोष बनाने का प्रयत्न करूँ।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन करूँ तथा सरल मार्ग से चलता हुआ प्राणसाधना में प्रवृत्त होऊँ।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतो वाग्निश्च** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'इन्द्रियों व शरीर' की निर्दोषता

आ ये त॒स्थुः पृष॑तीषु श्रु॒तासु॑ सु॒खेषु॑ रु॒द्रा म॒रुतो॒ रथे॑षु।
वना॑ चिदुग्रा जिहते॒ नि वो॑ भि॒या पृ॑थि॒वी चि॑द्रेजते॒ पर्व॑तश्चित्॥ २॥

(१) **ये**=जो **मरुतः**=प्राण **श्रुतासु**=खूब ज्ञान-सम्पन्न **पृषतीषु**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले इन्द्रियाश्वों में **आतस्थुः**=स्थित होते हैं और जो मरुत् **सुखेषु**=उत्तम इन्द्रिय-छिद्रोंवाले **रथेषु**=शरीर-रथों में स्थित होते हैं, अर्थात् प्राण इन्द्रियों को ज्ञान-सम्पन्न व शक्ति सिक्त करते हैं तथा शरीर-रथों को निर्दोष अंगोंवाला बनाते हैं। ये प्राण **उग्रा चित्**=अत्यन्त प्रबल तेजोमय **वना**=ज्ञानरश्मियों को **निजिहते**=निश्चय से प्राप्त होते हैं। (२) हे मरुतो! उस समय **वः भिया**=तुम्हारे भय से **पृथिवी चित्**=यह शरीररूप पृथ्वी निश्चय से **रेजते**=कम्पित हो उठती है इसके सब रोग व वासना रूप शत्रु हड़बड़ा जाते हैं और **पर्वतः चित्**=अविद्या-पर्वत भी कम्पित होकर नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से इन्द्रियाँ व शरीर स्वस्थ शक्ति-सम्पन्न बनते हैं। इस साधना से वे ज्ञानरश्मियाँ प्राप्त होती हैं, जो शरीर को निर्दोष बनाती हैं और अविद्या पर्वत को विलीन कर देती हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतो वाग्निश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

महान् वृद्ध पर्वत का भयभीत होना

पर्व॑तश्चिन्महि॑ वृ॒द्धो बि॑भाय दि॒वश्चि॒त्सानु॑ रेजत स्व॒ने वः॑।
यत्क्रीळ॑थ मरुत ऋष्टिमन्त॒ आप॑इव स॒ध्र्य॑ञ्चो धवध्वे॥ ३॥

(१) हे प्राणो! **वः स्वने**=आपका स्वन (शब्द) होने पर, प्राणसाधना में होनेवाली 'ह' व 'स' इस ध्वनि के होने पर, **महि वृद्धः**=अत्यन्त बढ़ा हुआ **चित्**=भी यह **पर्वतः**=अविद्या का पर्वत **बिभाय**=भयभीत हो जाता है, अविद्या का विनाश हो जाता है तथा **दिवः**=ज्ञान का **सानु**=शिखर **चित्**=निश्चय से **रेजत**=चमक उठता है (रेज् to shine) (२) हे **मरुतः**=प्राणो! **यत्**=जब **ऋष्टिमन्तः**=शत्रु-विनाशक आयुधोंवाले तुम **क्रीळथ**=क्रीड़ा करते हो तो **सध्र्यञ्चः आपः इव**=मिलकर गति करनेवाले जलों की तरह **धवध्वे**=सब शत्रुओं को कम्पित कर डालते

हो (धू) अथवा शोधन कर डालते हो (धाव, धवध्वे=धावध्वे) प्राणसाधना से सब दोष कम्पित होकर दूर हो जाते हैं और जीवन की शुद्धि हो जाती हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर अविद्या का विनाश होकर विद्या का प्रकाश होता है। शत्रुओं का विनाश होकर जीवन का शोधन हो जाता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतो वाग्निश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शरीरस्थालंकृति

वराइवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु॥ ४॥

(१) **इव**=जिस प्रकार **रैवतासः**=धनवान् **वराः**=विवाह योग्य युवक **हिरण्यैः**=स्वर्णाभरणों से तथा **स्वधाभिः**=(स्वधा=उदक० १।१२ नि०) उत्तम अन्नों व जलों से **इत्**=निश्चयपूर्वक **तन्वः**=शरीरों को **अभिपिपिश्रे**=अलंकृत कर लेते हैं। इसी प्रकार **श्रेयांसः**=ये श्रेष्ठ मरुत् भी, प्राण भी **श्रिये**=शोभा के लिये होती हैं। प्राणसाधना से भी शरीर उसी प्रकार चमक उठता है। (२) ये **तवसः**=बलवान् प्राण **तनूषु रथेषु**=इन शरीररूप रथों में **सत्रा**=सदा सचमुच **महांसि**=तेजस्विताओं का **चक्रिरे**=सम्पादन करते हैं। प्राणसाधना सोम की ऊर्ध्वगति होकर अंग-प्रत्यंग तेजस्वी बनता है।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीर-रथों को तेजस्विता व दृढ़ता से सुशोभित कर देती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतो वाग्निश्च** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सब प्राणों की समानता

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥ ५॥

(१) शरीर में ये प्राण ४९ भागों में बटकर कार्य करते हैं। **एते**=ये **अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः**=कोई बड़ा व कोई छोटा नहीं है, कोई प्राण पहले व कोई पीछे पैदा होनेवाला नहीं है। ये सब **भ्रातरः**=शरीर का भरण करनेवाले भाइयों के समान **सौभगाय सं वावृधुः**=शरीर के सौभाग्य (सौन्दर्य) के लिये मिलकर बढ़नेवाले होते हैं। (२) सामान्यतः १० प्राणों (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय) व आत्मा को ग्यारह रुद्रों के रूप में स्मरण किया जाता है। ये ११ शरीर को छोड़ते हुए रुलाते हैं, सो 'रुद्र' हैं। शरीरस्थ होते हुए ये रोगों का द्रावण करनेवाले होने से 'रुद्र' हैं। **एषाम्**=इन प्राणों का **पिता**=रक्षक यह आत्मा **युवा**=बुराई को पृथक् करनेवाला व अच्छाई को जोड़नेवाला है। **स्वधाः**=सदा उत्तम कर्मोंवाला है। वस्तुतः प्राणों का रक्षण ही हमें 'युवा व स्वधा' बनाता है। उस समय **मरुद्भ्यः**=इन प्राणों के द्वारा **पृश्निः**=प्रकाश की किरण **सुदुघा**=हमारे लिये सुख दोह्य होती है, अर्थात् प्राणसाधना से हम प्रकाश को आसानी से पाते हैं और **सुदिना**=यह प्रकाश हमारे लिये दिनों को उत्तम बनानेवाला होता है।

भावार्थ—सब प्राण समानरूप से महत्त्ववाले हैं, ये शरीर के सौभाग्य को बढ़ाते हैं। आत्मा इनका रक्षक होता हुआ उत्तम कर्मोंवाला होता है, इनके द्वारा प्रकाश की किरण हमें प्राप्त होती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतो वाग्निश्च** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'उत्तम मध्यम अवम' द्युलोक

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वर्स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम॥ ६॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! आप **यत्**=जो **उत्तमे दिवि**=सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मज्ञान के प्रकाश में, **मध्यमे वा**=जीव के कर्त्तव्यों के ज्ञान के प्रकाश में **यद् वा**=अथवा जो **अवमे दिवि**=इस अपर प्रकृति के ज्ञान के प्रकाश में **ष्ठ**=कारणरूप से स्थित होते हो, इससे **सुभगासः**=जीवन को आप उत्तम ज्ञानैश्वर्यवाला बनाते हो। (२) **अतः**=इसलिए हे **रुद्राः**=प्राणो! **उत वा**=अथवा **अग्ने**=हे अग्रणी प्रभो! आप **नु**=निश्चय से **अस्य वित्तात्**=इसको जानिये, अर्थात् इस बात का ध्यान करिये **यत्**=कि हम **हविषः यजाम**=सदा हवि का अपने साथ मेल करें। प्राणसाधना व प्रभु-स्मरण के द्वारा हमारा जीवन यज्ञमय बने। हम हवि से कभी दूर न हों। वस्तुतः इस हवि से ही तो सच्चा प्रभु-पूजन होना है।

भावार्थ—प्राणसाधना ही 'प्रकृति, जीव व परमात्मा' के ज्ञान में साधन बनती है। प्राणसाधना व प्रभु-स्मरण ही हमारे जीवन को यज्ञमय बनाते हैं। 'ब्रह्मज्ञान' उत्तम द्युलोक है, 'जीवविज्ञान' मध्यम द्युलोक है और 'प्रकृति विज्ञान' ही अवम द्युलोक है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतो वाग्निश्च** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु-स्मरण व प्राणसाधना

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते॥ ७॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रणी परमात्मा **च**=और **मरुतः**=प्राण **यत्**=क्योंकि **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण धनोंवाले हैं। प्रभु स्मरण व प्राणसाधना हमारे जीवन में सब ऐश्वर्यों का कारण बनते हैं। ये अग्नि और मरुत् **उत्तराद् दिवः**=उत्कृष्ट द्युलोक के **ष्णुभिः**=शिखरों से **अधिवहध्वे**=हमारा वहन करते हैं, अर्थात् ये हमें उत्कृष्ट द्युलोक के शिखर पर पहुँचानेवाले होते हैं। ज्ञान की चरमसीमा ही 'उत्कृष्ट द्युलोक' है। प्रभु-स्मरण व प्राणसाधना से हम इस उत्कृष्ट द्युलोक में पहुँचते हैं। (२) **ते**=वे **मन्दसानाः**=हमारे जीवनों को आनन्दमय बनाते हुए, **धुनयः**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले, **रिशादसः**=शत्रुओं को खा जानेवाले प्राणो! आप **सुन्वते**=सोम का सम्पादन करनेवाले **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिये **वामं धत्त**=सुन्दर धनों को धारण करो। प्रभु-स्मरण व प्राणसाधना से हमारा जीवन निर्दोष व यज्ञमय बने और सुन्दर धनों का धारण करनेवाला हो।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण व प्राणसाधना ही हमें पृथिवी से अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष से द्युलोक में व द्युलोक के शिखर पर पहुँचाते हैं। ये हमें निर्दोष व यज्ञशील बनाकर उत्तम धनों से धन्य बनाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतो वाग्निश्च** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'प्रभु-स्मरण व प्राणसाधना' द्वारा सोम का पान

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः॥ ८॥

(१) हे **वैश्वानर**=विश्वनर हित **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **प्रदिवा, केतुना** व उस सनातन ज्ञान से **सजूः**=संगत हुए-हुए **मरुद्भिः**=इन प्राणों के द्वारा **मन्दसानः**=हमें आनन्दित करते हुए **सोम पिब**=हमारे शरीर में सोम का पान करिये। प्रभु हमें ज्ञान प्रवण बनायें और प्राणसाधना में प्रवृत्त करके हमें सोमरक्षण के योग्य करें। यहाँ पर स्पष्ट है कि सोमरक्षण प्रभु-कृपा से होगा। उसके लिये आवश्यक है कि हम उत्कृष्ट ज्ञान के अध्ययन में प्रवृत्त हों और प्राणसाधना करनेवाले बनें। (२) उन प्राणों के द्वारा सोम का पान होना है जो **शुभयद्भिः**=हमारे जीवन को शोभायुक्त करते हैं। **ऋक्वभिः**=हमें स्तुति-प्रवण बनाते हैं। **गणश्रिभिः**=शरीरस्थ सब इन्द्रियगणों की शोभा को बढ़ानेवाले हैं। **पावकेभिः**=हमारे जीवनों को पवित्र बनानेवाले हैं। **विश्वं इन्वेभिः**=सब अंगों को प्रीणित करनेवाले हैं उन्हें प्रवृद्ध शक्तिवाला बनाते हैं और **आयुभिः**=जीवन हैं, दीर्घायुष्य का कारण होते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण व प्राणसाधना द्वारा शरीर में सोम का रक्षण होकर सब शोभा की वृद्धि होती है।

'श्यावाश्व आत्रेय' ऋषि का ही अगला सूक्त भी है—

६१. [एकषष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'श्रेष्ठतम' प्राण

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय। परमस्याः परावतः ॥ १ ॥

(१) 'प्राण शरीर में किस प्रकार अद्भुत ढंग से कार्य करते हैं? किस प्रकार हमें उन्नतिपथ पर ले चलते हुए सर्वोच्च स्थिति में पहुँचाते हैं, द्युलोक के भी चरम-स्थान (शिखर) पर ये हमें ले जानेवाले हैं।' इस बात का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि हे प्राणो! **नरः**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले आप **के ष्ठा**=कौन हो? आपका स्वरूप पूरा-पूरा समझना बड़ा कठिन है। हाँ, आप **श्रेष्ठतमाः**=श्रेष्ठतम हो। सब इन्द्रियाँ थक जाती हैं। पर आप दिन-रात जागकर इस जीवनयज्ञ के प्रहरी बनते हो। सब इन्द्रियों में वस्तुतः आप की ही शक्ति काम करती है। वाणी को आप ही वसिष्ठ बनाते हैं, चक्षु में प्रतिष्ठात्व आपके कारण है, श्रोत्र की सम्पत्ति का आप ही मूल हो और प्राण को आप ही आयतन बनाते हो। (२) **ये**=जो आप **एकः एकः**=एक-एक **परमस्याः परावतः**=दूर-से-दूर लोक में हमें प्राप्त कराने के हेतु से **आयय**=आते हो। इन प्राणों की साधना से ही पृथिवी से हम अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष से द्युलोक में, द्युलोक की भी चरमसीमा पर पहुँचा करते हैं। प्राणसाधना से ही हम तमस् से रजस् में, रजस् से सत्व में पहुँचते हैं। यह साधना ही हमें नित्य सत्वस्थ बनाकर अन्ततः निस्त्रैगुण्य बनाती है।

भावार्थ—'प्राण' अद्भुत शक्ति-सम्पन्न हैं। ये हमें उत्कृष्ट, उत्कृष्टतर व उत्कृष्टतम स्थिति में पहुँचाते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सर्वाधार' प्राण

क्व१ वोऽश्वाः क्वा३भीशवः कथं शेक कथा यय। पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥ २ ॥

(१) हे प्राणो! **क्व**=कहाँ **वः**=आपके **अश्वाः**=अश्व हैं, **क्व: अभीशवः**=कहाँ लगाये हैं? **कथं शेक**=किस प्रकार आप शक्तिशाली बनते हो, उस-उस कार्य को करने में समर्थ होते

हो! **कथा यय**=किस प्रकार गति करते हो। यह सब ही रहस्यमय है। प्राणों के कार्यक्रम को पूरा-पूरा समझ सकना सम्भव नहीं। (२) हमें सामान्यतः इनके विषय में इतना ही पता है कि **पृष्ठे सदः**=प्रत्येक इन्द्रिय के कार्य के मूल में इनका अधिष्ठान है। प्राणों के आधार से ही सब कार्य चलते हैं। और **नसोः यमः**=नासिका छिद्रों में आपका नियमन होता है। जिस समय नासिका के दक्षिण छिद्र में आपकी गति होती है तो अग्नितत्त्व का वर्धन होता है, वामछिद्र में गति होने पर जलतत्त्व का विकास दिखता है। एवं अग्नि व जल दोनों तत्त्वों का ठीक-ठीक नियमन करते हुए ये प्राण हमारे जीवन को सुन्दर बनाते हैं। ये दायें-बायें छिद्र ही योग में सूर्यस्वर व चन्द्रस्वर कहलाते हैं।

भावार्थ—प्राणों का कार्यक्रम रहस्यमय है। हम इतना ही जानते हैं कि सब कार्यों के मूल में यह प्राणशक्ति है और नासिका छिद्रों में इनका नियमन कार्य चलता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गति-संयम-सत्सन्तान

जघने चोदं एषां वि सक्थानि नरो यमुः। पुत्रकृथे न जनयः ॥ ३ ॥

(१) **जघने**=गमन के साधनभूत जघन प्रदेश में **एषाम्**=इन प्राणों की ही **चोदः**=प्रेरणा कार्य करती है प्राणशक्ति से ही जघन प्रदेश सबल होकर हमें दूर-दूर जाने में समर्थ करते हैं। **नरः**=ये हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राण ही **सक्थानि**=हमारे ऊरु प्रदेशों के **वियमुः**=विशेषरूप से संयमवाला बनाते हैं। (२) इस प्रकार हमारे जीवनों को गतिशील व संयमी बनाकर ये प्राण **पुत्रकृथे**=उत्तम सन्तानों के निर्माण में **जनयः न**=उत्तम पत्नियों के समान होते हैं। वस्तुतः प्राणसाधना से ही पति-पत्नी उत्तम सन्तानों को जन्म देनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें गतिशील, संयमी व सत्सन्तानवाला बनाती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वीर, मर्य, भद्रजानि व अग्नितप' प्राण

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः। अग्नितपो यथासथ ॥ ४ ॥

(१) हे **वीरासः**=शत्रुओं को विशेषरूप से ईरित (कम्पित) करनेवाले, **मर्यासः**=मनुष्यों के लिये हित करनेवाले, **भद्रजानयः**=कल्याण व सुख को जन्म देनेवाले प्राणो! **परा एतन**=दूर-दूर तक, इस शरीर भुवन के सुदूर प्रान्त भागों तक, गतिवाले होवो। (२) प्राणायाम के द्वारा उस-उस अंग में पहुँचकर ये प्राण वहाँ के मलों को दग्ध करते हैं और उन्हें दीप्त करते हैं। सो कहते हैं कि तुम शरीर में सर्वत्र पहुँचो, **यथा**=जिससे **अग्नितपः असथ**=अग्नि से तप्त ताम्र आदि की तरह तुम अंग-प्रत्यंग को दीप्त करनेवाले होवो। प्राणसाधक पुरुष को ये प्राण अग्निदीप्त बनानेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राण 'शत्रुओं को कम्पित करके हमारा हित करनेवाले हैं। कल्याण को जन्म देनेवाले व अग्नि के समान हमें दीप्त बनानेवाले हैं।'

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**शशीयसी तरन्तमहिषी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्राणशक्ति (तरन्तमहिषी)

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम्। श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥

(१) शत्रुओं को नष्ट करनेवाले व तरनेवाले प्राण 'तरन्त' हैं, इनकी शक्ति 'तरन्त-महिषी'

है। **सा**=यह प्राणशक्ति **अश्वयं पशुम्**=अश्व सम्बन्धी पशुओं को **सनत्**=प्राप्त कराती है। कर्मेन्द्रियाँ ही अश्व पशु हैं, ये कर्मों में व्यापनवाली हैं। **उत**=और **गव्यम्**=गो सम्बन्धी पशुओं को भी यह प्राप्त कराती है। ये पशु ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, 'गमयन्ति, अर्थात् इति गावः'=ये अर्थों का ज्ञान देती हैं। यह 'तरन्त महिषी' **शतावयम्**=शतवर्ष के दीर्घजीवन को प्राप्त कराती है (शत-वयस्) (२) यह प्राणशक्ति **श्यावाश्वस्तुताय**=क्रियाशील इन्द्रियोंवाले व स्तुतिमय जीवनवाले **वीराय**=वीर पुरुष के लिये **दोः**=अपनी भुजा को **उपबर्बृहत्**=उपबर्ह के रूप में, तकिये के रूप में प्राप्त कराती है। अर्थात् श्यावाश्वस्तुत की यह प्राणशक्ति आश्रय देनेवाली होती है।

भावार्थ—प्राणशक्ति से उत्तम कर्मेन्द्रियाँ, उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ व शतवर्ष का दीर्घजीवन मिलता है। क्रियाशील स्तुतिमय वीर पुरुष की यह प्राणशक्ति बलवान् बनती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**शशीयसी तरन्तमहिषी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्त्री यः पुरुष?

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी। अदेवत्रादराधसः॥ ६॥

(१) **उत**=और **त्वा**=वह एक **शशीयसी**=प्लुतगतिवाली, निरन्तर कार्यों में प्रवृत्त, आलस्यशून्य स्त्री **पुंसः**=उस पुरुष से **वस्यसी**=वही उत्तम निवासवाली है, जो पुरुष कि **अदेवत्रात्**=(येन देवाः न त्रायन्ते) जो अपने अन्दर दिव्यगुणों का रक्षण नहीं करता और **अराधसः**=जो दान योग्य धन से रहित, अर्थात् लोभी है। (२) यदि एक पुरुष है जो न किसी दिव्यगुण से युक्त है और लोभी है, और एक स्त्री है, जो निरन्तर कर्त्तव्य कर्मों में प्रवृत्त है तो इन दोनों में स्त्री ही निवास को उत्तम बनाती है।

भावार्थ—प्रभु हमें दिव्यगुणों से दूर लोभीवृत्तिवाला पुरुष न बनाकर कर्त्तव्यकर्मपरायणा स्त्री का ही शरीर दें जिससे हम अपने निवास को उत्तम बनानेवाले हों।

अगले मन्त्र में इस शशीयसी का चित्रण देखिये—

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**शशीयसी तरन्तमहिषी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कौन-सी स्त्री 'वस्यसी' होती है?

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम्। देवत्रा कृणुते मनः॥ ७॥

(१) गतमन्त्र की 'कर्त्तव्यकर्मपरायणा' (शशीयसी) स्त्री का चित्रण करते हुए कहते हैं कि यह वह है **या**=जो **जसुरिम्**=(जसु उपक्षेपणे) मन को उपक्षिप्त करनेवाले, मन की वृत्ति को अशान्त करनेवाले क्रोध को, **विजानाति**=कभी नहीं अपनाती (ज्ञा=to recognise as one's own, वि=विपरीत)। **तृष्यन्तम्**=सदा तृष्णावाले, कभी न तृप्त होनेवाले लोभ को भी **वि**=नहीं अपनाती, अपना नहीं बनाती। **कामिनम्**=कामवासना में फँसी स्थिति को **वि**=न अपनाकर अपने से दूर रखती है। (२) यह शशीयसी स्त्री **देवत्रा**=देवों के विषय में **मनः कृणुते**=अपने मन को करती है। 'क्रोध, लोभ व काम' से ऊपर उठकर ही हम किन्हीं भी दिव्य गुणों को धारण कर पाते हैं।

भावार्थ—कर्त्तव्यपरायणा स्त्री का जीवन 'क्रोध-लोभ-काम' से ऊपर उठकर दिव्यगुणों में प्रीतिवाला होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**शशीयसी तरन्तमहिषी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पुरुष का लक्षण (कौन पुरुष है)

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः। स वैरदेय इत्समः॥ ८॥

(१) **उत घा**=और फिर जो **नेमः**=अपनी पत्नी का अर्धांग बनता है, पत्नी को ही अर्धांगिनी न समझता हुआ स्वयं भी अर्धांग बनने का प्रयत्न करता है, अर्थात् पतिव्रता के यशोगान को ही सदा न करता हुआ स्वयं भी एक पत्नीव्रत बनने का प्रयत्न करता है। **अस्तुतः**=सदा अपनी ही स्तुति (प्रशंसा) नहीं करता रहता **पणिः**=सदा प्रभु-स्तवन करनेवाला होता है। यह ही **'पुमान्' इति**='पुरुष' इस नाम से **ब्रुवे**=कहा जाता है, 'पुमान्', अर्थात् अपने जीवन को पवित्र करनेवाला। (२) **सः**=वह **वैरदेये**=वीरों से किये जानेवाले धन दान के कर्म में **इत्**=निश्चय से **समः**=समवृत्ति का होता है। पक्षपात से कभी इस दानक्रिया को नहीं करता। सबका भला चाहता हुआ यज्ञशील होता है।

भावार्थ—पुरुष वही है जो (१) पत्नी का अर्धांग बनता है, (२) घमण्ड नहीं करता रहता, (३) प्रभु स्तवन की वृत्ति रखता है तथा (४) दान कर्म में समवृत्ति को अपनाता है, पक्षपात नहीं करता।

सूचना—ऐसा जीवन प्राणसाधना से ही तो बनेगा इसीलिए मरुतों के प्रकरण में यह सब उल्लेख हुआ है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**पुरुमीळ्हो वैददश्विः** ॥ छन्दः—**सतोबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

दीर्घयशा विप्र (पुरुमीढ वैददश्विः)

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम्।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे॥ ९॥

(१) **उत**=निश्चय से **श्यावाय**=(श्यैङ् गतौ), गतिशील **मे**=मेरे लिये **युवतिः**=बुराइयों को दूर करनेवाली, अच्छाइयों को प्राप्त करानेवाली, **प्रति ममन्दुषी**=इसे अपनानेवाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को आनन्दित करनेवाली यह वेदवाणी **वर्तनिं अरयत्**=मार्ग का प्रतिपादन करती है। हम इस वेदवाणी का अध्ययन करते हैं, यह हमारी आँख बनती है और हमारे लिये मार्ग को दिखलाती है। (२) **पुरुमीढाय**=प्राणसाधना द्वारा खूब ही अपने अन्दर शक्ति का सेचन करनेवाले **दीर्घयशसे**=खूब ही प्रभु का यशोगान (स्तवन) करनेवाले **विप्राय**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले यशस्वी जीवनवाले पुरुष के लिये **रोहिता**=तेजस्वी ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व **वियेमतुः**=शरीर-रथ में धारण किये जाते हैं। इस पुरुष को तेजस्वी इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं। इनके द्वारा यह जीवन-यात्रा में आगे और आगे बढ़ता है।

भावार्थ—गतिशील पुरुष को वेदवाणी मार्गदर्शन कराती है। इस मार्ग पर चलता हुआ यह उत्कृष्ट इन्द्रियों को प्राप्त करता है। अपने में शक्ति का सेचन करता हुआ यह यशस्वी व ज्ञानी बनता है। कर्मेन्द्रियों के दृष्टिकोण से यशस्वी, ज्ञानेन्द्रियों के दृष्टिकोण से ज्ञानी। अपने में शक्ति का सेचन करने से यह 'पुरुमीढ' है, उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करने से 'वैददश्वि' है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**तरन्तो वैददश्विः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वैददश्विः तरन्तः

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत्। तरन्तइव मंहना॥ १०॥

(१) **यः**=जो प्रभु **मे**=मेरे लिये **धेनूनाम्**=ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदवाणीरूप गौओं को **शतम्**=शतवर्ष पर्यन्त **यथा**=ठीक-ठीक 'याथातथ्यतः' **ददत्**=देते हैं, वे प्रभु मेरे लिये 'वैददश्विः'= उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले हैं। इन इन्द्रियों से ही तो मैं उस ज्ञानदुग्ध को ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त करता हूँ। (२) वे प्रभु **मंहना**=महनीय धनों को शतवर्ष पर्यन्त मेरे लिये देते हुए

तरन्तः इव=मुझे भवसागर से तरानेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें शतवर्षपर्यन्त ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेद धेनुओं को तथा मंहनीय धनों को प्राप्त कराते हैं। वेद धेनुओं से हम उस सर्वव्यापक प्रभु (अश् व्याप्तौ) को जानते हुए 'वैददश्वि' बनते हैं और धनों से सांसारिक आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए 'तरन्त' बनते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्राणसाधना के तीन लाभ

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु। अत्र श्रवांसि दधिरे॥ ११॥

(१) ये प्राण (मरुत्) वे हैं **ये**=जो **ईम्**=निश्चय से **आशुभिः**=शीघ्रगामी इन्द्रियाश्वों से **वहन्ते**=हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं। प्राण इन्द्रियों के दोषों को दग्ध करके उन्हें निर्मल बना देते हैं। ये इन्द्रियाश्व हमारे शरीर-रथ को लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले होते हैं। (२) ये प्राण **मदिरम्**=उल्लास के जनक **मधु**=सब ओषधियों के सारभूत सोम (वीर्यशक्ति) को **पिबन्तः**=शरीर के अन्दर ही पीते हुए, **अत्र**=इस जीवन में **श्रवांसि**=ज्ञानों को **दधिरे**=धारण करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के तीन लाभ हैं—(१) निर्मल इन्द्रियाश्वों से यह शरीर-रथ लक्ष्य-स्थान पर पहुँचनेवाला होता है, (२) उत्पन्न हुए-हुए सोम का शरीर में व्यापन होता है, (३) रक्षित सोम से ज्ञानाग्नि का दीपन होकर ज्ञानवृद्धि होती है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सूर्य के समान दीप्त 'रथ'

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा। दिवि रुक्मइवोपरि॥ १२॥

(१) **येषाम्**=जिन प्राणों की **श्रिया**=श्री से, शोभा से **रोदसी**=द्यावापृथिवी **अधि**=अधिष्ठित होते हैं। वे प्राण **रथेषु**=इन शरीर-रथों में **आ**=समन्तात् **विभ्राजन्ते**=दीप्त होते हैं। प्राण ही मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानदीप्ति प्राप्त कराते हैं, प्राण ही शरीररूप पृथिवी को तेजस्विता से दृढ़ करते हैं। प्राणसाधना से सोमरक्षण होकर यह सब कार्य होता है। (२) ये प्राण शरीर-रथ में इस प्रकार दीप्त होते हैं, **इव**=जैसे **उपरि दिवि**=ऊपर द्युलोक में **रुक्मः**=यह देदीप्यमान आदित्य चमकता है। प्राणसाधना से सारा शरीर सूर्य के समान चमक उठता है। प्राणसाधना से सुरक्षित सोम अन्नमयकोश को 'तेजस्वी', प्राणमय के समान चमक उठता है। प्राणसाधना से सुरक्षित सोम अन्नमयकोश को 'तेजस्वी', प्राणमय को 'वीर्यवान्' मनोमय को 'ओजस्वी व बलवान्', विज्ञानमय को 'ज्ञानदीप्त' (मन्युमय) तथा आनन्दमय को 'सहस्वान्' बनाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से सारा शरीर दीप्त हो उठता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

त्वेषरथः अनेद्यः

युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः। शुभंयावाप्रतिष्कुतः॥ १३॥

(१) **सः**=वह **मारुतः गणः**=प्राणों का गण **युवा**=बुराइयों को पृथक् करनेवाला व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाला है। **त्वेषरथः**=इस मारुत-गण से ही यह शरीर-रथ दीप्त बनता है। शरीर के एक-एक कोश को यह मारुतगण तेजोदीप्त बना देता है। **अनेद्यः**=यह अनिन्दनीय है। इन प्राणों की साधना से कोई भी निन्द्यभाव हमारे मनों में नहीं रहता। (२) यह मारुतगण **शुभंयावा**=शुभ गतिवाला है, अर्थात् प्राणसाधना से अशुभवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं,

हमारे सब कार्य शुभ ही शुभ होते हैं। **अप्रतिष्कुतः**=यह मारुतगण शत्रुओं से अनभिगत होता है, शत्रुओं का इस पर आक्रमण नहीं होता। उपनिषदों में हम पढ़ते हैं कि असुरों ने जब प्राणों पर आक्रमण किया तो ऐसे नष्ट हो गये जैसे कि पत्थर से टकराकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है। सो यह प्राणगण 'अप्रतिष्कुत' है।

भावार्थ—प्राणसाधना से सब बुराइयाँ दूर होती हैं, शरीर-रथ दीप्त बनता है, जीवन अनिन्द्य होता है, सदा हम शुभ आचरणवाले बनते हैं और शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होते।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ऋतजाताः-अरेपसः

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः। ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥

(१) **एषाम्**=इन प्राणों के स्वरूप व स्थान को **नूनम्**=निश्चय से **कः वेद**=कोई विरला ही जानता है? **यत्रा**=जिन स्थानों में स्थित हुए-हुए **धूतयः**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले ये प्राण **मदन्ति** (मादयन्ति)=जीवन को उल्लासमय बनाते हैं। शरीरस्थ प्राण अपनी क्रियाओं से शरीर की व्याधियों व मन की आधियों को विनष्ट करते हैं। पर कोई विरला पुरुष ही इन प्राणों की साधना में प्रवृत्त होता है। (२) ये प्राण **ऋतजाताः**=ऋत का अनुभव होने के लिये ही प्रादुर्भूत हुए हैं (ऋते जाताः), इनके कारण अनृत का विनाश होकर ऋत का विकास होता है। **अरेपसः**=ये प्राण दोषरहित हैं। प्राणसाधना से सब दोषों का दहन होकर जीवन निर्दोष व दीप्त बनता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से (१) जीवन निर्दोष बनता है, (२) ऋत व सत्य का जीवन में विकास होता है। (३) सब मलों का परिहार होने से आनन्द का अनुभव होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सत्यमार्ग पर ले-चलनेवाले' प्राण

यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया। श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥

(१) हे **विपन्यवः**=(पन स्तुतौ) विशिष्ट स्तुतिवाले प्राणो! **यूयम्**=आप **मर्तम्**=मनुष्य को **इत्था धिया**=सत्य बुद्धि से **प्रणेतारः**=उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हो। प्राणायाम से चित्तवृत्ति का निरोध होकर प्रभु-स्तवन की वृत्ति जागती है, इस स्तवन से सत्य बुद्धि प्राप्त होती है, सत्य बुद्धि से हम उन्नतिपथ पर आगे बढ़ पाते हैं। (२) ये प्राण **यामहूतिषु**=(यामः मार्गाः, तदर्थं हूतिषु) मार्गों के लिये आह्वानों के होने पर में **श्रोतारः**=हमारी पुकारों को सुननेवाले हैं। अर्थात् जब हम मार्गों को जानने के लिये पुकार करते हैं तो ये प्राण हमारे लिये ठीक मार्ग का ज्ञान देनेवाले होते हैं। प्राणसाधना से होनेवाली ज्ञानदीप्ति मार्गदर्शन कराती ही है।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें (१) प्रभु-स्तवन की ओर झुकाती है, (२) इससे सत्यबुद्धि उत्पन्न होती है और हम ठीक मार्ग पर आगे बढ़नेवाले होते हैं। (३) ये प्राण हमारी पुकार को सुनते हैं और मार्गदर्शन कराते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पुरुश्चन्द्राः रिशादसः

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः। आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

(१) हे प्राणो! आप **पुरुश्चन्द्राः**=पालक व पूरक हैं अतएव आह्लादजनक धनोंवाले हो। **रिशादसः**=शत्रुओं को समाप्त करनेवाले हो और **यज्ञियासः**=उत्तम कर्मों में हमें सदा

प्रवृत्त करनेवाले हो। (२) **ते**=वे आप **नः**=हमारे लिये **काम्या**=कमनीय, चाहने योग्य **वसूनि**=निवास के लिये साधनभूत धनों को **आववृत्तन**=आवृत्त करो, निरन्तर प्राप्त होनेवाला करो।

भावार्थ—प्राण हमारे लिये सब आह्लादजनक तेजस्विता आदि धनों को प्राप्त कराते हैं, काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं को नष्ट करते हैं, उत्तम कर्मों में हमें प्रवृत्त करते हैं। ये सब वसुओं को हमारे लिये दें।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दार्भ्य को स्तोम की प्राप्ति

एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह। गिरो देवि रथीरिव॥ १७॥

(१) 'ऊर्मि' शब्द प्रकाश (light) का वाचक है। उस प्रकाश के लिये हितकर होने से वेदवाणी 'ऊर्म्या' है, प्रकाश को देनेवाली होने से यह 'देवी' है। 'दृभ्' धातु का अर्थ है 'to fear, to be afraid of' भयभीत होना। पापों से भयभीत होनेवाला यह व्यक्ति 'दार्भ्य' है। यह प्रार्थना करता है कि हे **अर्म्ये**=ज्ञान-प्रकाश को प्राप्त कराने में उत्तम वेदवाणि! तू **दार्भ्याय**=पापों से सदा भयभीत होकर दूर रहनेवाले **मे**=मेरे लिये **एतं स्तोमम्**=इस मन्त्रसमूह को **परावह**=(परा=towards) प्राप्त करा। पापों से अपने को बचानेवाला व्यक्ति ही ज्ञान को प्राप्त कर पाता है। (२) हे **देवि**=प्रकाश को देनेवाली वेदवाणि! **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को तू प्राप्त करा, **इव**=जैसे कि **रथीः**=एक रथवान् रथ पर स्थापित करके विविध वसुओं को हमारे लिये प्राप्त कराता है। यह देवी हमें ज्ञान प्राप्त कराये।

भावार्थ—पापों से भयभीत होनेवाला पुरुष ही ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सुतसोम-रथवीति

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ। न कामो अप वेति मे॥ १८॥

(१) गतमन्त्र की **ऊर्म्या**=प्रकाश की किरणों में उत्तम वेदवाणी **उत**=निश्चय से **मे**=मुझे **वोचतात्**=उपदेश करे **इति**=कि **सुतसोमे**=(सुतः सोमो येन) सोम (वीर्यशक्ति) का सम्पादन करनेवाला तथा **रथवीतौ**=शरीर-रथ को कान्त (सुन्दर) बनानेवाला होने में **मे कामः**=मेरी कामना **न अपवेति**=दूर नहीं होती है। (२) मुझे इस वेदवाणी से प्रेरणा प्राप्त हो और मैं सदा सोम (वीर्यशक्ति) का सम्पादन करूँ तथा अपने शरीर-रथ को सुन्दर ही सुन्दर बना डालूँ। सुरक्षित सोम ने ही तो इसे सौन्दर्य प्रदान करना है।

भावार्थ—वेद से प्रेरणा प्राप्त करके हम 'सुतसोम रथवीति' बनें, वीर्य का सम्पादन करनेवाले, कान्त शरीरवाले।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मघवा (ज्ञानैश्वर्यवाला) रथवीति

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु। पर्वतेष्वपश्रितः॥ १९॥

(१) **एषः**=यह **रथवीतिः**=अपने शरीर-रथ को कान्त बनानेवाला **गोमतीः अनु**=ज्ञान की वाणियोंवाली इन वेदमाताओं के अनुसार जीवन को बनाता हुआ और अतएव **मघवा**=ज्ञानैश्वर्यवाला होकर **क्षेति**=निवास को उत्तम बनाता हुआ गति करता है। (२) इस प्रकार जीवन को व्यतीत करता हुआ यह **पर्वतेषु**=अविद्या पर्वतों में **अपश्रितः**=अपाश्रित होता है। यह अविद्या से सदा

दूर रहता है। 'अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश' इन पाँच पर्वोंवाली यह अविद्या 'पर्वत' है। 'रथवीति' इससे सदा दूर रहता है और ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करनेवाला 'मघवा' होता है।

भावार्थ—ज्ञान की वाणियोंवाली वेदमाता के अनुसार चलकर हम ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करें, अविद्या पर्वत से सदा दूर रहें। तभी हमारा यह शरीर-रथ कान्त बनेगा और हमारा जीवन उत्तम होगा।

यह वेदानुकूल जीवन बितानेवाला व्यक्ति 'श्रुतिवद्' कहलाता है, श्रुति का ज्ञाता। यह आत्रेय होता है, काम-क्रोध-लोभ से परे। यह मित्र व वरुण की आराधना करता हुआ कहता है—

६२. [द्विषष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्रुतविदात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

देव शरीर

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥ १॥

(१) 'मित्र' की आराधना का भाव है 'सब के प्रति स्नेहवाला होना'। 'वरुण' की आराधना का भाव है 'द्वेष-निवारणवाला होना, किसी के प्रति द्वेष का न होना'। एवं 'सब के साथ स्नेह, किसी के प्रति द्वेष नहीं' यही 'मित्रावरुण' का आराधन है। इस आराधन के होने पर **ध्रुवम्**=निश्चय से **वाम्**=आपके लिये, मित्र व वरुण के लिये, **ऋतेन**=ऋत से **ऋतम्**=ऋत ही **अपिहितम्**=आच्छादित है, अर्थात् जीवन ऋतमय बन जाता है। अनृत मात्र 'द्वेष' का परिणाम है, द्वेष गया तो अनृत भी गया। यह वह जीवन बनता है **यत्र**=जहाँ **सूर्यस्य अश्वान्**=सूर्य के अश्वों के **विमुचन्ति**=राक्षसी आक्रमणों से मुक्त करते हैं। अनृत के चले जाने पर सब इन्द्रियाश्व इस प्रकार दीप्त हो उठते हैं, जैसे कि वे सूर्य के अश्व हों। (२) **दश शता**=हजारों सूर्यरश्मियाँ **सह**=साथ-साथ **तस्थुः**=स्थित होती हैं, शतश=ज्ञान-किरणों से जीवन-गगन दीप्त हो उठता है। मैं भी मित्र व वरुण की आराधना करके **वपुषां देवानाम्**=(वपुष्मता) श्रेष्ठ शरीरवाले देवों के **तत् एकं श्रेष्ठम्**=उस एक श्रेष्ठ शरीर को **अपश्यम्**=देखूँ, अपने शरीर को देवों का शरीर बना पाऊँ।

भावार्थ—'मित्र-वरुण' की आराधना से (१) जीवन ऋतमय हो जाता है, (२) इन्द्रियाश्व सूर्य की तरह चमक उठते हैं, (३) जीवन ज्ञानसूर्य से चमक उठता है, (४) हमारा शरीर देव शरीर बन जाता है।

ऋषिः—**श्रुतविदात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मित्र-वरुण' का रथ

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त॥ २॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता की भावनाओ! **वाम्**=आपका **तत्**=वह **सु**=उत्तम **महित्वम्**=महत्त्व है कि **ईर्मा**=यह सततगन्ता सूर्य **अहभिः**=दिनों से, अर्थात् दिन प्रतिदिन **तस्थुषीः**=स्थिर शक्तियों को **दुदुह्रे**=हमारे जीवन में प्रपूरित करता है। अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता को अपनाने पर सूर्य-सम्पर्क में जीवन स्थिर शक्तियों से परिपूर्ण होता चलता है। (२) हे मित्र व वरुण आप **विश्वाः**=सब **स्वसरस्य**=स्वयं अपने सब कार्यों में गतिवाले उस सर्वशक्तिमान् प्रभु की **विश्वा धेनाः**=सब ज्ञानवाणियों को **पिन्वथः**=हमारे में आप्यायित करते हो। प्रभु से दिये

गये वेदज्ञान को हम प्राप्त करनेवाले बनते हैं। हे मित्र व वरुण इस प्रकार स्थिर शक्तियों व ज्ञानों से परिपूर्ण होकर **वाम्**=आप दोनों का **एकः पविः**=अद्वितीय रथ (पवि=चक्र=रथ) **अनु आववर्त**=अनुक्रमेण गतिवाला होता है। इसकी सब क्रियाएँ नित्यपूर्वक होती हैं।

भावार्थ—'मित्र-वरुण' की आराधना से जीवन शक्ति व ज्ञान से युक्त होकर नियमित गतिवाला होता है।

ऋषिः—**श्रुतविदात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पृथिवी व द्युलोक का धारण

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥ ३ ॥

(१) हे **मित्र वरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! आप **राजाना**=जीवन को दीप्त करनेवाले हो। आप **महोभिः**=तेजस्विताओं के द्वारा **पृथिवीम्**=इस शरीररूप पृथिवी को **उत**=और **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **अधारयतम्**=धारण करते हो। निर्द्वेषता व स्नेह से शरीर व मस्तिष्क दोनों का स्वास्थ्य प्राप्त होता है। (२) हे मित्र-वरुण आप **ओषधीः**=भोजनजनित आनन्दों को **वर्धयतम्**=बढ़ाते हो 'ओषधयो वै मुदः, ओषधिभिर्हि इदं सर्वं मोदते' श० ९।४।१।७ स्नेह की भावना के होने पर खाया गया भोजन भी उत्कृष्ट रस आदि धातुओं को पैदा करके हमें आनन्दित करता है। द्वेष की भावना में खाया गया भोजन भी विषों को ही पैदा करता है। उत्तम धातुओं को जन्म देकर आप **गाः**=इन्द्रियों को **पिन्वतम्**=आप्यायित करते हो। **जीरदानू**=क्षिप्र दानोंवाले आप **वृष्टिं अवसृजतम्**=धर्ममेध समाधि में होनेवाले आनन्द के वर्षण को करते हो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता 'शरीर व मस्तिष्क' दोनों का धारण करते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता से खाये हुए भोजन से उत्तम रस आदि का उत्पादन होकर आनन्द की प्राप्ति होती है, इन्द्रियशक्ति का वर्धन होता है और समाधि में आनन्द की वर्षा का अनुभव होता है।

ऋषिः—**श्रुतविदात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्रियों की अन्तर्मुखता

आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक्।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥ ४ ॥

(१) हे मित्र और वरुण! **वाम्**=आपके **सुयुजः**=शरीर-रथ में उत्तमता से जुते हुए **अश्वासः**=इन्द्रियाश्व **आवहन्तु**=हमें सर्वथा लक्ष्य-स्थान पर ले जानेवाले हों। **यतरश्मयः**=जिनकी लगाम काबू में की गई है, वे इन्द्रियाश्व **अर्वाक्**=अन्दर की ओर **उपयन्तु**=प्राप्त हों। इन्द्रियों की वृत्ति बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी हो जाये। (२) **घृतस्य**=ज्ञानदीप्ति का **निर्णिक्**=शुद्ध रूप **वां अनुवर्तते**=आपका ही अनुवर्तन करता है। जितना-जितना हम स्नेह द्वेषाभाव को धारण कर पाते हैं, उतना-उतना ही दीप्त ज्ञानवाले बनते हैं। आपकी आराधना के होने पर **प्रदिवि**=इस प्रकृष्ट मस्तिष्करूप द्युलोक में **सिन्धवः**=ज्ञान-नदियाँ **उप क्षरन्ति**=प्रवाहित होती है, वस्तुतः ईर्ष्या-द्वेष बुद्धि की विकृति का महान् कारण बनते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता की आराधना से इन्द्रियाँ हमें लक्ष्य-स्थान की ओर ले जायेंगी ये विषयों में न भटकेंगी, हमारी ज्ञान दीप्ति बढ़ेगी, मस्तिष्क में ज्ञानप्रवाह बहेंगे।

ऋषिः—**श्रुतविदात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नमस्वन्ता-धृतदक्षा

अनु॑ श्रु॒ताम॒मतिं॒ वर्ध॑दु॒र्वीं ब॒र्हिरि॑व॒ यजु॑षा॒ रक्ष॑माणा।
नम॑स्वन्ता धृतद॒क्षाधि॒ गर्ते॒ मित्रास॑थे व॒रुणेळा॑स्व॒न्तः ॥ ५ ॥

(१) हे **मित्र वरुण**=स्नेह व निर्द्वेषता के भाव को आप **श्रुताम्**=ज्ञान-सम्पन्न **उर्वीम्**=हृदय की विशालतावाले **अमतिम्**=उत्कृष्टरूप को **अनुवर्धत्**=बढ़ाते हुए हो। इन मित्र-वरुण की आराधना से मस्तिष्क में ज्ञान की वृद्धि होती है, हृदय विशाल बनता है और तेजस्विता के कारण शरीर का रूप भी दीप्त होता है। ये मित्र-वरुण रूप को इस प्रकार बढ़ाते हैं, **इव**=जैसे कि **यजुषा**='देवपूजा, संगतिकरण व दान' से **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय का **रक्षमाणाः**=रक्षण करते हैं। (२) **नमस्वन्ता**=प्रभु का नमन करते हुए, **धृतदक्षा**=बल को धारण करनेवाले ये मित्र-वरुण **इडासु अन्तः**=वेदवाणी के अन्दर स्थित हुए-हुए **अधिगर्ते**=इस शरीर-रथ में **आसाथे**=आसीन होते हैं, अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता की भावना के होने पर जीवन वेदानुकूल बनता है।

भावार्थ—मित्र-वरुण की आराधना (क) ज्ञान को बढ़ाती है, (ख) हृदय को विशाल बनाती है, (ग) रूप को तेजोदीप्ति करती है। (घ) यह आराधना नम्रता व बल को बढ़ाती हुई जीवन को वेदानुकूल बनाती है।

ऋषिः—**श्रुतविदात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अक्रविहस्ता परस्पा

अक्र॑विहस्ता सु॒कृते॑ पर॒स्पा यं त्रासा॑थे व॒रुणेळा॑स्व॒न्तः।
राजा॑ना क्ष॒त्रमहृ॑णीयमाना स॒हस्र॑स्थूणं बिभृथः स॒ह द्वौ ॥ ६ ॥

(१) हे **वरुण**=मित्र और वरुण, **यम्**=जिसको आप **इडासु अन्तः**=वेदवाणियों के अन्दर **त्रासाथे**=रक्षित करते हो उसके लिए **अक्रविहस्ता**=अकृपण हाथोंवाले, दानशूर होते हो, उस **सुकृते**=पुण्यशाली के लिये **परस्पा**=शत्रुओं से रक्षा करनेवाले होते हो। मित्र व वरुण की आराधना हमें सब उत्तम गुणों को प्राप्त कराती है और शत्रुओं से हमारा रक्षण करती है। (२) **राजाना**=हमारे जीवन को दीप्त करनेवाले, **अहृणीयमाना**=क्रोध न करते हुए ये मित्र और वरुण **सह द्वौ**=साथ-साथ मिले हुए दोनों **क्षत्रम्**=बल को तथा **सहस्रस्थूणम्**=शतशः स्तम्भोंवाले इस शरीरगृह को **बिभृथः**=धारण करते हो। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव से शरीर का बल ठीक बना रहता है और शरीर का धारण करनेवाले सब अंग अविकृत बने रहते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता का भाव (१) हमें शत्रुओं से रक्षित करता है, (२) हमारे बल को स्थिर रखता है, (३) शरीर के अंग-प्रत्यंग को सुदृढ़ बनाता है।

ऋषिः—**श्रुतविदात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दीप्त व अशुष्क शरीर

हिर॑ण्यनिर्णि॒गयो॑ अस्य॒ स्थूणा॒ वि भ्रा॑जते दि॒व्य१॒॑श्वाज॑नीव।
भ॒द्रे क्षेत्रे॒ निमि॑ता॒ तिल्वि॑ले वा स॒नेम॒ मध्वो॒ अधि॑गर्त्य॒स्य ॥ ७ ॥

(१) मित्र व वरुण का रथ **हिरण्यनिर्णिक्**=स्वर्ण के रूपवाला होता है, अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता से शरीर-रथ सोने के समान चमकता है। **अस्य**=इस रथ के **स्थूणा**=स्तम्भ **अयः**=(अयो

विकारा:) लोहे के बने होते हैं। अर्थात् इस शरीर-रथ के स्तम्भ अत्यन्त सुदृढ़ होते हैं। यह रथ इस प्रकार **विभ्राजते**=चमकता है, **इव**=जैसे कि **दिवि**=द्युलोक में **अश्वाजनी**=विद्युत् (अश्वा: व्यापनशीला: मेधा:, तान् अजति गच्छति) (२) इस शरीर-रथ की स्थूणा **भद्रे क्षेत्रे**=कल्याणकर शरीर क्षेत्र में, **वा**=अथवा **तिल्विले**=(तिलु इला यस्य) स्निग्ध-अशुष्क-शरीर में **निमिता**=बनी है। अर्थात् यह शरीर न तो किसी रोग आदि अभद्र स्थिति से आक्रान्त है और नां ही शक्तिशून्यता के कारण शुष्क हो गया है। हम **अधिगर्त्यस्य**=शरीर-रथ के लिये हितकर **मध्व:**=सोम का (वीर्यशक्ति का) **सनेम**=संभजन करें, सम्यक् सेवन करें। इस सोम को शरीर में ही सुरक्षित करें।

भावार्थ—मित्र व वरुण की आराधना से शरीर 'दीप्त, दृढ़, भद्र व स्निग्ध' बना रहता है।

ऋषि:—**श्रुतविदात्रेय:** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्द:—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवत:** ॥

हिरण्यरूपम् अय: स्थूणं (गर्तम्)

हिर॑ण्यरूपमु॒षसो॒ व्यु॑ष्टा॒वय॑:स्थूण॒मुदि॑ता॒ सूर्य॑स्य।
आ रो॑हथो वरुण मित्र॒ गर्त॒मत॑श्चक्षाथे॒ अदि॑तिं॒ दिति॑ं च॥ ८॥

(१) **उषस: व्युष्टौ**=उषा के निकलने पर, **सूर्यस्य उदिता**=सूर्य के उदय होने पर **वरुण मित्र**=हे मित्र और वरुण (स्नेह व निर्द्वेष के भावो)! आप **गर्तम्**=शरीर-रथ पर **आरोहथ:**=आरोहण करते हो उस शरीर-रथ पर जो **हिरण्यरूपम्**=ज्योतिर्मय दीप्त रूपवाला है और **अय: स्थूणम्**=लौह स्तम्भोंवाला, अर्थात् अत्यन्त दृढ़ है। (२) हे मित्र व वरुण! आप **अत:**=इस शरीर-रथ पर स्थित होकर **अदितिं दितिं च**=अदिति और दिति को **चक्षाथे**=देखते हो। 'क्या तो खण्डित होने का कारण है क्या खण्डित नहीं होने का' इस को आप देखते हो। अदिति को अपनाते हो, और दिति को अपने से दूर करते हो। अदिति को अपनाने से आप आदित्यों (देवों) वाले बनते हो और दिति के परिहार से आप दैत्यवृत्तियों से बचे रहते हो।

भावार्थ—मित्र और वरुण शरीर को 'हिरण्यरूप अय: स्थूण' बनाते हैं। अदिति को अपनाते हैं, दिति का परिहार करते हैं। आदित्यों (देवों) से युक्त व दैत्यों से दूर होते हैं।

ऋषि:—**श्रुतविदात्रेय:** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्द:—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवत:** ॥

सिषासन्त:-जिगीवांस:

यद्बंहि॑ष्ठं॒ नाति॒विधे॑ सुदानू॒ अच्छि॑द्रं॒ शर्म॑ भुवनस्य गोपा।
तेन॑ नो मित्रावरुणावविष्टं॒ सिषा॑सन्तो जिगी॒वांस॑: स्याम॥ ९॥

(१) **मित्रा वरुणा**=हे मित्र और वरुण देवो, स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! आप **सुदानू**=उत्तमताओं के देनेवाले हो अथवा बुराइयों को अच्छी प्रकार काटनेवाले हो (दाप् लवने)। बुराइयों को काट करके **भुवनस्य गोपा**=सब भुवन के रक्षक हो। वस्तुत: आज मित्र और वरुण की आराधना प्रचलित हो जाए तो युद्धों की इतिश्री ही हो जाये। वैयक्तिक जीवन में भी रोगों की कमी होकर दीर्घजीवन की प्राप्ति सम्भव हो जाये। इन मित्र-वरुण से आराधना करते हुए कहते हैं कि आपका जो **शर्म**=सुख है **तेन**=उसके द्वारा **न: अविष्टम्**=हमारा रक्षण करो। उस सुख के द्वारा **यद्**=जो **बंहिष्ठम्**=(बहु नाम) बहुत अधिक है, बहुत बढ़ा हुआ है, अधिक से अधिक प्राणियों का अधिक से अधिक कल्याण करनेवाला है। **न अतिविधे**=औरों के बहुत पीड़न का कारण नहीं बनता हमारे सुख में दूसरे को कुछ श्रम तो होता ही है। बिना किसी दूसरे के श्रम किये मुझे सुख कैसे मिलेगा! परन्तु मैं अपने सुख के लिये औरों को अतिशयेन विद्ध करनेवाला न हो जाऊँ। और जो सुख

'अच्छिद्र'=निर्दोष है। कई तात्कालिक सुख भविष्य के कष्टों का कारण बन जाते हैं। ये सब 'सच्छिद्र' हैं, 'अच्छिद्र' नहीं। मित्र वरुण से दिया जानेवाला सुख 'अछिद्र' है। (२) हे मित्र वरुण! हम आपकी आराधना से सदा **सिषासन्तः**=(संभक्तुमिच्छन्तः) धनों को बाँटकर खाने की कामनावाले व **जिगीवांसः**=सदा विजय की कामनावाले हों। संविभाग ही विजय का हेतु है। 'धनों को बाँटकर खाने की वृत्ति' में तो सदा विनाश है। लोभ के विनाश में सब शत्रुओं का जय है। सो विजय ही विजय है।

भावार्थ—मित्र और वरुण 'सुदानु' व 'गोप' हैं। इन से दिया गया सुख 'बंहिष्ठ व अछिद्र' है, यह सुख औरों के वेधन का हेतु नहीं बनता। इनकी आराधना से हम 'संविभाग व विजय' वाले बनते हैं।

प्रभु की उपासना करनेवाला 'अर्चनाना' अगले सूक्त का ऋषि है—

अथ चतुर्थाष्टके चतुर्थोऽध्यायः

६३. [त्रिषष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ऋत-सत्य=आनन्द वृष्टि

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः॥ १॥

(१) **मित्रावरुणा**=हे मित्र और वरुण! (स्नेह व निर्द्वेषता) आप **ऋतस्य गोपौ**=जीवन में ऋत के रक्षक हो, स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर जीवन में अनृत का प्रवेश नहीं होता। ऋत का वर्धन करते हुए अन्त में आप **परमे व्योमनि**=परम व्योम, अर्थात् हृदयाकाश में **सत्यधर्माणा**=सत्यस्वरूप प्रभु का धारण करनेवाले हैं। मित्र और वरुण के कारण भौतिक जीवन में 'ऋत' तथा अध्यात्म जीवन में 'सत्य' की स्थिति होती है। (२) इस प्रकार हे मित्रावरुणा! **युवम्**=आप **अत्र**=इस जीवन में **यम्**=जिसको **अवथः**=जिसको रक्षित करते हैं, **तस्मै**=उसके लिये **दिवः**=द्युलोक से **वृष्टिः**=होनेवाली वर्षा–धर्ममेध समाधि में होनेवाली आनन्द की वृष्टि **मधुमत्**=माधुर्यवाली होती है **पिन्वते**=सेचन करती है। उसका निरन्तर वर्धन करती है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव के होने पर भौतिक जीवन में 'ऋत' होता है, अध्यात्म जीवन में सत्य तथा तब आनन्द की वृष्टि का अनुभव होता है।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

राधः-अमृतत्वम्

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः॥ २॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओ! आप **अस्य भुवनस्य**=इस लोक के **सम्राजौ**=सम्राट् हो। आपके कारण ही यह भुवन दीप्त बनता है। हे मित्र और वरुण! **विदथे**=इस जीवनयज्ञ में आप **स्वर्दृशा**=स्वर्ग को देखनेवाले हो। स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर जीवन स्वर्ग बन जाता है। (२) **वाम्**=आपसे हम **वृष्टिम्**=आनन्द के वर्षण को **ईमहे**=माँगते हैं। **राधः**=कार्यसाधक धनों व सफलता की याचना करते हैं। **अमृतत्वम्**=शरीर में नीरोगता की आपसे याचना

करते हैं। आपकी **तन्यवः**=विस्तृत रश्मियाँ व शक्तियाँ द्यावापृथिवी **विचरन्ति**=द्युलोक व पृथिवीलोक में, मस्तिष्क व शरीर में विचरन्ति=प्रसृत होती हैं। स्नेह व निर्द्वेषता से ही मस्तिष्क व शरीर दीप्त बनते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता जीवन में 'दीप्ति, सुख (स्वः) आनन्दवृष्टि, सफलता व नीरोगता' को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

दिवस्पती-पृथिव्याः विचर्षणी

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया॥ ३॥

(१) **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुण (=स्नेह व निर्द्वेषता) के भाव **सम्राजा**=हमारे जीवनों को दीप्त बनानेवाले हैं। **उग्रा**=तेजस्वी हैं। **वृषभा**=सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। **दिवस्पती**=द्युलोक के व ज्ञान के रक्षक हैं। ये मित्र और वरुण **पृथिव्याः**=शरीररूप पृथिवी के **विचर्षणी**=विशेषरूप से ध्यान करनेवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता से ज्ञान का भी वर्धन होता है और शरीर भी स्वस्थ बनता है। (२) हे मित्र और वरुण! आप **चित्रेभिः**=अद्भुत व ज्ञानयुक्त **अभ्रैः**=(अभ्र=अप्-भृ) कर्मों के भरण से **रवम्**=प्रभु-स्तवन में **उपतिष्ठथः**=उपस्थित होते हो। स्नेह व निर्द्वेषता को धारण करनेवाला पुरुष ज्ञानयुक्त कर्मों को करता हुआ प्रभु का स्तवन करता है। हे मित्रवरुण! आप **असुरस्य**=प्राणशक्ति का संचार करनेवाले प्रभु की **मायया**=प्रज्ञा से, प्रभु से प्राप्त ज्ञान के द्वारा **द्यां वर्षयथः**=प्रकाश का वर्षण करते हो अथवा धर्ममेध समाधि में होनेवाली आनन्द की वर्षा का कारण बनते हो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भावों से शरीर व मस्तिष्क दोनों सुन्दर बने रहते हैं।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ज्योति व आनन्द वृष्टि

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते॥ ४॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **वाम्**=आपकी, अर्थात् आपकी उपासना से उत्पन्न, **माया**=प्रज्ञा **दिवि श्रिता**=मस्तिष्करूप द्युलोक में आश्रित होती है। उस द्युलोक में **सूर्यः ज्योतिः**=ज्ञानसूर्य प्रकाशमय होता है। उस समय यह ज्ञानसूर्य **चित्रं आयुधम्**=अद्भुत आयुध होता है। यह सारे अज्ञानान्धकार को नष्ट करके हमारे जीवन को काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं से रहित करता है। (२) हे मित्र और वरुण! आप **तम्**=उस सूर्य-ज्योति को **अभ्रेण**=धर्ममेध समाधि में विकसित होनेवाले मेघ से और **वृष्ट्या**=आनन्द के वर्षण से **दिवि**=इस द्युलोक में **गूहथः**=संवृत करते हो, सुरक्षित करते हो। स्नेह व निर्द्वेष के भाव से ही हम इस धर्ममेघ समाधि की स्थिति तक पहुँचते हैं और आनन्द के वर्षण का अनुभव करते हुए ज्ञान को सुरक्षित कर पाते हैं। हे **पर्जन्य**=धर्ममेघ समाधि के मेघ! इस तुरीयावस्था **मधुमन्तः**=अत्यन्त माधुर्यवाले **द्रप्साः**=आनन्दवृष्टि के कण **ईरते**=हमारे जीवन में गतिमय होते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव जीवन को ज्योतिर्मय व आनन्दवर्षण से युक्त करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सुखं रथम्

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम्॥ ५॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! आपके अनुग्रह से **शूरः न**=एक शूरवीर के समान **मरुतः**=प्राण **शुभे**=जीवन को शुभ बनाने के निमित्त **सुखं रथम्**=शोभन इन्द्रियोंवाले (सु-खं) **रथम्**=शरीर-रथ को **युञ्जते**=जोतते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर प्राणसाधना के द्वारा शरीर-रथ में उत्तम इन्द्रियाश्व जुतते हैं, इन्द्रियाँ बड़ी निर्दोष बनकर शरीर-रथ को आगे और आगे ले चलती हैं। (२) उस समय **गविष्टिषु**=ज्ञानयज्ञों में (गो-इष्टि) **तन्यवः**=विस्तृत ज्ञान रश्मियाँ **चित्रा रजांसि**=अद्भुत लोकों में, शरीररूप पृथिवीलोक में, हृदयरूप अन्तरिक्षलोक में तथा मस्तिष्करूप द्युलोक में **विचरन्ति**=प्रसृत होती हैं। सारा जीवन ही उस समय प्रकाशमय हो उठता है। **दिवः सम्राजा**=हे ज्ञान के सम्राट् मित्र और वरुम देवो! आप **नः**=हमें **पयसा**=ज्ञानदुग्ध से **उक्षतम्**=सींच डालो। हमारा जीवन ज्ञानमय हो जाए, ज्ञान हमारे जीवन को आप्यायित करनेवाला हो।

भावार्थ—मित्र व वरुण की कृपा से हमारा जीवन स्वास्थ्य से युक्त होकर (सुखं रथं) ज्ञान से प्रकाशमय हो उठता है।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'इरावती-चित्रा-त्विषीमती' वाक्

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम्।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम्॥ ६॥

(१) 'पर्जन्यो व उद्गाता' श० १२।१।१।३ के अनुसार महान् प्रदाता प्रभु ही यहाँ पर्जन्य हैं। हे **मित्रावरुणौ**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! आपके होने पर **पर्जन्यः**=वे (परां तृप्तिं जनयति) परतृप्ति के जनक महान् उद्गाता प्रभु **वाचम्**=वेदवाणी का **सुवदति**=उत्तम उच्चारण करते हैं जो वाणी **इरावतीम्**=प्रशस्त अन्नों को प्राप्त करानेवाली है, हमें जीविका प्राप्ति में क्षम करती है। **चित्राम्**=अद्भुत है (चित्) ज्ञान को देनेवाली है और **त्विषीमतीम्**=हृदय को दीप्त करनेवाली हैं। (२) इस वाणी के उच्चरित होने पर **मरुतः**=प्राणसाधक पुरुष **सुमायया**=उत्तम ज्ञान से **अभ्रा वसत**=धर्ममेध समाधि में प्रादुर्भूत होनेवाले मेघों को धारण करते हैं। हे मित्र और वरुण! आप कृपा करके **अरुणाम्**=तेजस्विता से युक्त **अरेपसम्**=निर्दोष **द्यां वर्षयतम्**=ज्ञान प्रकाश से सुख का वर्षण कराओ। हमारे जीवन में ज्ञान-ज्योति जगमगाये और आनन्द की वर्षा हो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर हृदय में प्रभु की वह 'इरावती-चित्रा-त्विषीमती' वाणी सुन पड़ती है। उस समय ज्ञान के प्रकाश व आनन्द को वर्षण का अनुभव होता है।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'व्रत-ऋत-प्रकाश' से युक्त जीवन

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम्॥ ७॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! आप **विपश्चिता**=हमें ज्ञानी बनानेवाले हो। **धर्मणा**=अपने धारणात्मक कर्म से तथा **असुरस्य**=उस सर्वत्र प्राणशक्ति का संचार करनेवाले प्रभु की **मायया**=प्रज्ञा से **व्रता रक्षेथे**=हमारे व्रतों का आप रक्षण करते हो। (२) वस्तुतः ये मित्र और वरुण सब अव्रतों को दूर करते हैं और **ऋतेन**=ऋत के द्वारा **विश्वं भुवनम्**=सम्पूर्ण भुवन को **विराजथः**=दीप्त करते हो। **दिवि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में **सूर्यम्**=ज्ञानसूर्य को **आधत्थः**=धारण करते हो और इस ज्ञानसूर्य से उदय से **चित्र्यम्**=ज्ञान के प्रकाशवाले, चेतनावाले **रथम्**=शरीर-रथ को आप धारण करते हो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता हमें व्रतमय, ऋतमय तथा प्रकाशमय बनाते हैं।

अगला सूक्त भी 'अर्चनाना' ऋषि का ही है—

६४. [चतुःषष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'रिशादस्' वरुण और 'स्वर्णर' मित्र

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे। परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम्॥ १॥

(१) **वः**=तुम्हारे लिये **रिशादसम्**=शत्रुओं के खा जानेवाले, शत्रुओं को समाप्त कर देनेवाले, **वरुणम्**=वरुण को, निर्द्वेषता के भाव को तथा **स्वर्णरम्**=स्वर्ग में, स्वर्गतुल्य स्थिति में प्राप्त करानेवाले, **मित्रम्**=मित्र को, स्नेह के भाव को हम **ऋचा**=(ऋच् स्तुतौ) स्तुति के द्वारा निन्दात्मक शब्दों को छोड़कर मधुर भाषण के द्वारा **हवामहे**=पुकारते हैं। निर्द्वेषता शत्रुओं को समाप्त कर देती है, प्रेम घरों व समाज को स्वर्ग बना देता है। (२) ये मित्र और वरुण **बाह्वोः परिजगन्वांसा**=(बाहृ प्रयत्ने) प्रयत्नों में प्राप्त होनेवाले हैं। 'अभ्युदय व निःश्रेयस' के लिये किये जानेवाला प्रयत्न भी दो भागों में बटा हुआ है, सो यहाँ (बाह्वोः) द्विवचन है। जब यह द्विविध प्रयत्न चलता है, तभी मित्र व वरुण की प्राप्ति होती है, तभी हम स्नेह व निर्द्वेषता को अपना पाते हैं। ये मित्र वरुण इन प्रयत्नों के होने पर इस प्रकार प्राप्त होते हैं, **इव**=जैसे कि **व्रजा**=गोयूथ बाड़ों में प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—हम स्नेह व निर्द्वेषता की आराधना करें, इसी से हम घर को स्वर्ग बना पायेंगे और शत्रुओं को समाप्त कर सकेंगे। इन 'मित्र और वरुण' के लिये हम 'अभ्युदय व निःश्रेयस' के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ज्ञानपूर्वक क्रिया व स्तुत्य सुख

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते। शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे॥ २॥

(१) **ता**=वे आप दोनों मित्र और वरुण! **अस्मा अर्चते**=इस आपका आराधन करनेवाले के लिये **सुचेतुना**=उत्तम ज्ञानवाले **बाहवा**=प्रयत्न से **शेवम्**=सुख को **प्रयन्तम्**=दीजिये (यमिरत्र दानकर्मा सा०) स्नेह के अभाव में, द्वेष से भरे होने पर क्रियाएँ समझदारी से नहीं होती। स्नेह व निर्द्वेषता हमें कभी भी बदले लेने की भावना से गलत कर्मों में नहीं जाने देती। इससे जीवन सुखी बना रहता है। (२) **वाम्**=आपका मित्र और वरुण का **शेवम्**=सुख **हि**=निश्चय से **जार्यम्**=स्तुति के योग्य होता है। यह सुख **विश्वासु क्षासु**=सब भूमियों में **जोगुवे**=गायन के योग्य होता है, प्रशंसनीय होता है। संसार में सर्वत्र इस सुख का शंसन होता है। स्नेह व निर्द्वेषता

से उत्पन्न प्रेम सर्वत्र शंसनीय है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर हमारी सब क्रियाएँ समझदारी से की जाती हैं। इनसे उत्पन्न सुख सर्वत्र शंसनीय होता है।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

गति मात्र 'मित्र' के मार्ग से हो

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा। अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे॥ ३॥

(१) **यत्**=जब **नूनम्**=निश्चय से **गतिं अश्याम्**=गति को प्राप्त करूँ, तो **मित्रस्य पथा**=स्नेह करनेवाले के मार्ग से **यायाम्**=जाऊँ। अर्थात् मेरी सारी गति एक मित्र की ही गति हो। मेरा कोई भी कार्य द्वेषभाव से प्रेरित होकर न किया जाये। (२) **अस्य**=इस **प्रियस्य**=सब की प्रीति के कारणभूत **अहिंसानस्य**=किसी की हिंसा न करनेवाले मित्र की **शर्मणि**=शरण में **सश्चिरे**=सब संगत हो जाते हैं (cling to)। 'मित्र' देवता का आराधन सबको एक बना देता है। 'सश्च' का अर्थ to worship=पूजा करना भी है। प्रभु का सच्चा पूजन भी यही है कि हम सब परस्पर स्नेह व निर्द्वेषता से चलें।

भावार्थ—मेरे सब कार्य मित्र के मार्ग से चलते हुए हों। यह स्नेह व निर्द्वेषता से चलना ही प्रभु का सच्चा पूजन है।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

अनुपम धन लाभ

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा। यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे॥ ४॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **युवाभ्याम्**=आपके द्वारा **ऋचा**=स्तुति शब्दों का, मधुर सुखमयी वाणी का ही प्रयोग करने के द्वारा **उपमम्**=उपमा देने योग्य, अद्भुत-धन को **धेयाम्**=धारण करूँ। उस धन को धारण करूँ जो उपमा देने योग्य हो, जिसके लिये लोग यह कहें कि 'धन हो तो, ऐसा हो'। (२) उस धन को मैं धारण करूँ **यत्**=जो **ह**=निश्चय से **मघोनाम्**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों के **च**=और **स्तोतॄणाम्**=स्तोताओं के **क्षये**=गृह में **स्पूर्धसे**=स्पर्धा के लिये होता है। इसी प्रकार स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को धारण करने पर हमारे घरों में निवास के लिये धनों में मानो स्पर्धा होगी। सब धन हमारे घरों में निवास करना चाहेंगे।

भावार्थ—मित्र व वरुण की आराधना हमारे घरों को उत्तम धनों से भरपूर कर देती है।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

यज्ञशील व सखा पुरुष

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ। स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे॥ ५॥

(१) हे **मित्र**=स्नेह! तू **वरुणः च**=और यह निर्द्वेषता का भाव **सुदीतिभिः**=उत्तम दीप्तियों के साथ **सधस्थे**=जीवात्मा व परमात्मा के मिलकर रहने के स्थान हृदय में **आ** (गच्छतम्)=प्राप्त हो और **आ**=अवश्य ही प्राप्त हो। (२) आप दोनों **मघोनाम्**=यज्ञशील पुरुषों के **सखीनां च**=मित्रभूत पुरुषों के **स्वेक्षये**=अपने घर में **वृधसे**=वृद्धि के लिये होते हो। यज्ञशील पुरुषों का व सखाओं का घर मित्र और वरुण का अपना घर होता है। ये मित्र और वरुण इनकी वृद्धि का कारण बनते हैं।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुषों व सखिभूत पुरुषों का घर मित्र और वरुण देवता का घर होता

है, अर्थात् इन घरों में स्नेह व निर्द्वेषता का राज्य होता है। परिणामतः ये घर सदा बढ़ते हैं।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

शक्ति-सम्पत्ति-सुस्थिति

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः। उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये॥ ६॥

(१) हे **वरुण**=मित्र और वरुण (वरुण से मित्र का भी अध्याहार करता है, तभी 'युवं' यह द्विवचन ठीक होगा) **युवम्**=आप दोनों **नः**=हमारे **येषु**=जिन पुरुषों में **क्षत्रम्**=बल, **बृहत् च**=और ब्रह्म, अर्थात् ज्ञान को **बिभृथः**=धारण करते हो। (२) इस बल व ज्ञान को **नः**=हमारे लिये **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **राये**=ऐश्वर्य लाभ के लिये और **स्वस्तये**=उत्तम कल्याण के लिये **कृतम्**=करिये। मित्र व वरुण की आराधना से प्राप्त होनेवाला बल व ज्ञान (क्षत्र व ब्रह्म) हमें 'शक्ति ऐश्वर्य व कल्याण' प्राप्त कराता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर क्षत्र व ब्रह्म की वृद्धि से 'शक्ति-सम्पत्ति व सुस्थिति' प्राप्त होती है।

ऋषिः—**अर्चनाना आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दिव्य बल व दीप्त ज्ञानरश्मियाँ

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम्॥ ७॥

(१) **उच्छन्त्याम्**=उषा के द्वारा अन्धकार को दूर करने पर, अर्थात् होते ही **मे**=मेरे द्वारा **यजता**=पूज्य व संगतिकरण योग्य मित्र और वरुण देवो! स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **देवक्षत्रे**=देवों के बल के निमित्त तथा **रुशद्गवि**=देदीप्यमान ज्ञानरश्मियों के निमित्त **सुतम्**=उत्पन्न हुए-हुए **सोमम्**=सोम को **न**=अब (न=संप्रति सा०) **हस्तिभिः**=प्रशस्त हाथोंवाले कर्मों से तथा गति के साधनभूत पावों से, अर्थात् निरन्तर क्रियाशीलता व गति के द्वारा **आधावतम्**=शुद्ध कर दीजिये। सोमरक्षण के दो साधन हैं—क्रियाओं को कर्मों में प्रवृत्त रखना तथा सदा गतिमय बने रहना। रक्षित सोम हमें दो वस्तुएं प्राप्त करायेगा—दिव्य बल तथा दीप्त ज्ञानरश्मियाँ। ऐसी स्थिति के लिये हमें दो देवों का आराधन करना है—मित्र और वरुण का। (२) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! आप **अर्चनानसम्**=इस अपने उपासक को **बिभ्रतौ**=धारण करते हो। वस्तुतः इस संसार को सुन्दर बनाने के लिये आपका अर्चन ही साधन है।

भावार्थ—हम स्नेह व निर्द्वेषता को धारण करते हुए, क्रियाशील व गतिमय जीवन में सोमरक्षण के द्वारा दिव्य बल व दीप्त ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करें।

यह मित्र और वरुण का आराधक 'रातहव्य' बनता है, हव्यों को देनेवाला, यज्ञशील। इस यज्ञशीलता से यह आत्रेय होता है, काम-क्रोध-लोभ से दूर। यह मित्र व वरुण का आराधन करता हुआ कहता है—

६५. [पञ्चषष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'स्नेह व निर्द्वेषता का उपासक' उपदेष्टा

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः। वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः॥ १॥

(१) **यः चिकेत**=जो ज्ञानी है **सः**=वह **सुक्रतुः**=शोभनकर्मा होता है। ज्ञान उसके कर्मों को पवित्र करनेवाला होता है। **सः**=वह पवित्र कर्मा ज्ञानी पुरुष **नः**=हमारे लिये **देवत्रा**=देवों के विषय में **ब्रवीतु**=उपदेश दे। (२) वह ज्ञानी हमें उपदेश दे **यस्य**=जिसकी **गिरः**=स्तुतिवाणियों को **दर्शतः**=दर्शनीय, सुन्दर, **वरुणः**=वरुण-निर्द्वेषता का भाव, **वा**=तथा **मित्रः**=मित्र-स्नेह की देवता **वनते**=प्राप्त करती है। अर्थात् वह ज्ञानी हमारा उपदेष्टा हो जो 'मित्र और वरुण' का उपासक है, स्नेह व निर्द्वेषता के भाववाला है। मनु ने इसीलिए लिखा है कि—'अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्। वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्माभिधूता'। अर्थात् धर्मोपदेष्टा ने सदा मधुर-अकर्कश वाणी के द्वारा ही धर्मोपदेश करना है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष सुकर्मा होता है। यह मित्र व वरुण का उपासक होता हुआ देवों (दिव्य भावों) के विषय में उपदेश करता है।

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

श्रेष्ठ वर्चस्वाले 'मित्र और वरुण'

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा। ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने॥ २॥

(१) **ता**=वे, गतमन्त्र में वर्णित मित्र और वरुण=स्नेह व निर्द्वेषता **हि**=निश्चय से **श्रेष्ठवर्चसा**=उत्तम वर्चस् (शक्ति) वाले हैं, **राजाना**=जीवन को दीप्त बनानेवाले हैं, **दीर्घश्रुत्तमा**=(दॄ विदारणे) अज्ञानान्धकार के विदारक अतिशयित ज्ञानवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता से हमें 'शक्ति, दीप्ति व ज्ञान' प्राप्त होता है। (२) **ता**=वे मित्र और वरुण **जनेजने**=जितना-जितना इनका प्रादुर्भाव होता है उतना-उतना **सत्पती**=उत्तम कर्मों का हमारे में रक्षण करनेवाले हैं, **ऋतावृधः**=ऋत का, यज्ञ का वर्धन करनेवाले हैं और **ऋतावाना**=ऋत का, जो भी ठीक बात है, उसका रक्षण करनेवाले हैं। अनृत से ये हमें दूर करते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता का भाव हमें 'शक्ति-सम्पन्न, दीप्त, ज्ञानी, सत्कर्मकुशल व ऋतमय' बनायेगा।

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'उत्तम इन्द्रियाँ, ज्ञान, शक्ति'

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा। स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्रदावने॥ ३॥

(१) **ता**=उन **वाम्**=आप दोनों को, मित्र और वरुण को **अवसे**=रक्षण के लिये **इयानः**=मैं प्राप्त होता हूँ। आपने ही मेरा रक्षण करना है। **पूर्वा**=पालन व पूरण करनेवाले आपको **सचा**=साथ-साथ **उपब्रुवे**=स्तुत करता हूँ। 'स्नेह व निर्द्वेषता' की साथ-साथ उपासना करता हुआ ही मैं शरीर का पालन व मन का पूरण कर पाता हूँ। (२) **स्वश्वासः**=आपकी उपासना से उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाले हम **सु चेतुना**=उत्तम ज्ञान के साथ **वाजान् अभि**=शक्तियों का लक्ष्य करके **प्रदावने**=प्रकृष्ट दान में स्थित हों। यह दान क्रिया 'मित्र और वरुण' की उपासना का क्रियात्मकरूप है। यह दान क्रिया ही हमें उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला बनाती है, उत्तम ज्ञान व शक्ति देती है। ज्ञानेन्द्रियाँ इसी से ज्ञानवर्धनवाली व कर्मेन्द्रियाँ शक्ति-सम्पन्न बनती हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता हमारा रक्षण करते हैं, हमारा पालन व पूरण करते हैं। 'उत्तम इन्द्रियाँ-ज्ञान व शक्ति' प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—रातहव्य आत्रेयः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते। मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः॥ ४॥

(१) **मित्रः**=यह सब के साथ स्नेह करनेवाला, मित्र व वरुण का उपासक **आत्**=मित्र वरुण की उपासना से 'उत्तम इन्द्रियों–ज्ञान व शक्ति' को प्राप्त करने के बाद (आत्=अनन्तरम्) **अंहोः चित्**=कुटिल पापी पुरुष के भी **क्षयाय**=उत्तम निवास व गति के लिये **उरु गातुम्**=विशाल मार्ग को **वनते**=सेवन करता है। विशाल हृदय को धारण करता हुआ यह 'मित्र' का आराधक कुटिल को भी भला बनाने के लिये उदारता के मार्ग का अवलम्बन करता है। (२) इस **मित्रस्य**=सर्व-स्नेही पुरुष की **हि**=निश्चय से **सुमतिः अस्तिः**=सदा कल्याणीमति होती है। इस मित्र की, जो **प्रतूर्वतः**=बुरे भावों को प्रकर्षेण हिंसित कर रहा है तथा **विधतः**=प्रभु का सच्चा पूजन कर रहा है।

भावार्थ—'मित्र' का आराधक कुटिल के सुधार के लिये भी उदार मार्ग का अवलम्बन करता है। यह सबके लिये कल्याणीमति का धारण करता है। यही इसका सच्चा प्रभु-पूजन है।

ऋषिः—रातहव्य आत्रेयः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—भुरिगुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

वरुण के सन्तानों का परस्पर प्रेम भाव

वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे। अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः॥ ५॥

(१) **वयम्**=हम **मित्रस्य**=स्नेह की देवता के **सप्रथस्तमे**=अत्यन्त विस्तारवाले **अवसि**=रक्षण में **स्याय**=हों। स्नेह को जीवन का सूत्र बनाकर अपने जीवन का रक्षण करनेवाले बनें। द्वेष से शरीर में विष ही तो उत्पन्न होते हैं। (२) **त्वा उतयः**=हे मित्र! तेरे से रक्षित हुए-हुए हम **अनेहसः**=निष्पाप हों। स्नेह हमें पाप की ओर नहीं ले जाता। ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध के कारण ही सामान्यतः पापों को जन्म मिलता है और हम परस्पर विरोध में लड़नेवाले हो जाते हैं। हम तो **वरुणशेषसः**=वरुण के सन्तान (शेष=सन्तान) बनकर, निर्द्वेषता को जीवन में धारण करके **सत्रा**=साथ ही हों, मिलकर ही चलनेवाले बनें।

भावार्थ—स्नेह की भावना हमारे जीवन का रक्षण करती हैं, इसी में शक्तियों का विस्तार होता है। निर्द्वेषता हमें परस्पर समीप लाती है। निर्द्वेषता में ही झगड़ों का अभाव होकर सब प्रकार की उन्नति है।

ऋषिः—रातहव्य आत्रेयः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

ऋषीणां गोपीथेन उरुष्यतम्

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः।
मा मघोनः परिख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम्॥ ६॥

(१) हे **मित्र**=मित्र और वरुण **युवम्**=आप दोनों **इमं जनम्**=इस मुझ स्तोता को **यतथः**=यत्नशील बनाते हो। स्नेह व निर्द्वेषता को धारण करके मैं कर्त्तव्यकर्मों में यत्नशील होता हूँ। **च**=और आप मुझे **संनयथः**=सम्यक् ठीक मार्ग पर ले चलते हो। स्नेह व निर्द्वेषता से होनेवाली क्रियाएँ पापशून्य ही होती हैं। (२) **मघोनः**=हम यज्ञशील पुरुषों को **मा परिख्यतम्**=आप छोड़ मत जाओ। हम आप से सुरक्षित हुए-हुए सदा यज्ञों को करते रहें। (२) **मा उ**=और नां ही **अस्माकम्**=हमारे लोगों को आप छोड़ जाओ। हम भी स्नेह व निर्द्वेषता के भाववाले हों, हमारे

परिवार व समाज के लोग भी इन भावनाओं को अपनाएँ। हे मित्र और वरुण! आप **ऋषीणाम्**=वेदों के (ऋषिर्वेदः) प्रभु से दिये गये ज्ञान के **गोपीथेन**=इन्द्रियों द्वारा पान के द्वारा **उरुष्यतम्**=हमारा रक्षण करो। हमारी इन्द्रियाँ इस ज्ञान का ग्रहण करें और इस प्रकार आप हमारा रक्षण करो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर हम यत्नशील होते हैं, हमारे यत्न उत्तम मार्ग से होते हैं। हम यज्ञशील व ज्ञानयज्ञ को करनेवाले बनते हैं।

अगला सूक्त भी 'रातहव्य' ऋषि का ही है—

६६. [षट्षष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

चिकितान मर्त (समझदार मनुष्य)

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा। वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे॥ १॥

(१) हे **चिकितान मर्त**=समझदार मनुष्य! तू **सुक्रतू**=शोभन कर्मोंवाले, **देवौ**=प्रकाशमय, **रिशादसा**=शत्रुओं के हिंसक मित्र और वरुण को, स्नेह व निर्द्वेषता के भाव को **आदधीत**=धारण करनेवाला हो। ये मित्र और वरुण ही तेरे जीवन को प्रकाशमय बनायेंगे, तेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करेंगे और तुझे उत्तम कर्मोंवाला बनायेंगे। (२) **ऋतपेशसे**=जीवन में ऋत का, सत्य का निर्माण करनेवाले **वरुणाय**=निर्द्वेषता के भाव के लिये तू **दधीत**=अपने को धारण कर, निर्द्वेष बन। जिससे तू **प्रयसे**=प्रकृष्ट यत्न करनेवाला हो और **महे**=महत्त्वपूर्ण जीवनवाला बन सके।

भावार्थ—मित्र और वरुण हमारे जीवन को उत्तम कर्मोंवाला प्रकाशमय व काम-क्रोध आदि से रहित बनाते हैं। निर्द्वेषता से जीवन ऋतमय, यत्नशील व महत्त्वपूर्ण बनता है।

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'अकुटिल-असुरविघाति' बल

ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य१माशाते। अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम्॥ २॥

(१) **ता**=वे दोनों मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **क्षत्रम्**=बल को सम्यक् **आशाते**=सम्यक् व्याप्त करते हैं। उस बल को व्याप्त करते हैं, जो **अविह्रुतम्**=कुटिलता से रहित है तथा अहिंस्य है, जिस बल से युक्त होकर हम औरों के साथ कुटिलता से नहीं वरतते और स्वयं रोगों से हिंसित नहीं होते। तथा जो बल **असुर्यम्**=आसुर भावनाओं को विरत करनेवाला है, इस बल के होने पर आसुरभावों का जन्म नहीं होता। वीरता के साथ virtues (गुणों) का ही तो सम्बन्ध है, अवीरता ही तो evil है। (२) **अध**=अब इस क्षत्र के धारण के उपरान्त **मानुषम्**=मनुष्य के लिये हितकर **व्रता इव**=कर्मों की तरह, **स्वः न**=सूर्य के समान **दर्शतम्**=दर्शनीय सुन्दर ज्ञान (प्रकाश) **धायि**=हमारे में धारण किया जाता है। मित्र और वरुण के बल से सम्पन्न होकर हम मानवहित कर कर्मों को ही करते हैं और देदीप्यमान ज्ञानवाले होते हैं। मानवहितकारी कर्मों को करनेवाले हम 'वैश्वानर' हैं। सूर्य समान ज्ञानवाले हम 'प्राज्ञ' होते हैं। क्षत्र को धारण करनेवाले हम 'तैजस' बनते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता का भाव हमारे अन्दर 'अकुटिल बल, आसुरभावनाशून्य बल' प्राप्त कराते हैं। इस बल से सम्पन्न होकर हम मानवहितकारी कर्मों को व दीप्त ज्ञान को धारण करते हैं।

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

उर्वी गव्यूति (विशाल मार्ग)

ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम्। रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे॥ ३॥

(१) **एषां रथानाम्**=इन शरीर-रथों के **उर्वीं गव्यूतिम्**=विशाल मार्गों को **एषे**=(गन्तुम्) जाने के लिये **ता वाम्**=उन आप दोनों को, मित्र व वरुण को स्नेह व निर्द्वेषता के भाव को **मनामहे**=हम स्तुत करते हैं। मित्रता व निर्द्वेषता ही हमें विशाल मार्ग पर ले चलती हैं। इनके अभाव में स्वार्थपरता हमें अत्यन्त संकुचित वृत्ति का बना देती है। (२) हम **रातहव्यस्य**=(दत्तहविष्क्रस्य) यज्ञशील पुरुष सम्बन्धी **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **दधृक् स्तोमैः**=धर्षक स्तोमों के द्वारा, वासना विनाशक स्तुतियों के द्वारा (मनामहे) करनेवाले होते हैं। जैसे एक यज्ञशील पुरुष यज्ञरूप उत्तम स्तुति को करता है, इसी प्रकार हम भी उत्तम स्तुति को करनेवाले बनते हैं। ये यज्ञात्मक कर्म, स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर ही सम्भव होते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव को धारण करके हम विशालता के मार्ग पर ही चलते हैं, यज्ञशील होते हैं।

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

काव्या-पूतदक्षसा

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता। नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा॥ ४॥

(१) **अधा**=अब **हि**=निश्चय से **युवम्**=आप दोनों मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **काव्या**=कविकर्मकुशल, अर्थात् खूब ज्ञानी हो। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे ज्ञान का वर्धन करते हैं। आप **दक्षस्य**=बल के **पूर्भिः**=पूरणों के द्वारा **अद्भुता**=अद्भुत हो। हे मित्र वरुणो! आप हमारे जीवन में अद्भुत बल का संचार करते हो। (२) आप **जनानाम्**=लोगों के **केतुना**=प्रज्ञान से **निचिकेथे**=जाने जाते हो। अर्थात् जितना-जितना कोई ज्ञानी होता है, उतना-उतना ही वह आपकी आराधना से ही वैसा बना होता है। आप **पूतदक्षसः**=उसके बल को भी पवित्र करनेवाले हो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव ही हमें ज्ञान व शक्ति को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'ऋतं बृहत्' श्रवः

तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम्। ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः॥ ५॥

(१) हे **पृथिवि**=हमारी शक्तियों का व ज्ञानों का विस्तार करनेवाली भूमि मातः! मैं **ऋषीणाम्**=तत्त्वद्रष्टा पुरुषों के **तत्**=उस **ऋतम्**=सत्य **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **श्रवः**=ज्ञान को **एषे**=चाहता हूँ। (२) **ज्रयसानौ**=(to conquer, to go) हमारे काम-क्रोधरूप शत्रुओं के जीतते हुए तथा गतिशील होते हुए आप मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **यामभिः**=अपनी गतियों से **अरम्**=जीवन को अलंकृत करनेवाले **पृथु**=विस्तृत ज्ञान को **अतिक्षरन्ति**=(क्षरतः) अतिशयेन प्राप्त कराते हो। हम मित्र और वरुण का आराधन करें। यह आराधन हमें ज्ञान के प्रकाश को देनेवाला होगा।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव काम-क्रोध को जीतकर हमें उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**रातहव्य आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'बहुपाप्य व्यचिष्ठ' स्वराज्य

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः। व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥ ६॥

(१) **मित्र**=हे मित्र और वरुण! आप **ईयचक्षसा**=गतिशील ज्ञानवाले हो। आपके कारण हमारा जीवन गतिशील बनता है और वह सब गति ज्ञानपूर्वक होती है। (२) **वयं च**=और हम आपके द्वारा **सूरयः**=ज्ञानी बनकर **स्वराज्ये**=स्वराज्य के विषय में **यतेमहि**=यत्नशील हों। हम अपना शासन स्वयं करनेवाले हों, विषय वासनाओं के हम गुलाम न हों। यह गुलामी हमें राजनैतिक दृष्टिकोण से भी परतन्त्र बना देगी। हम उस आत्मशासन के लिये यत्नशील हों जो **व्यचिष्ठे**=शक्तियों का अधिक से अधिक विस्तार करनेवाला है तथा **बहुपाय्ये**=बहुत ही रक्षण करनेवाला है या अधिक से अधिक लोगों का रक्षण करनेवाला है। जब मैं अपना अधिष्ठाता होता हूँ, तो मेरे कार्य अधिक-से-अधिक लोगों का कल्याण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—मित्र और वरुण की आराधना से हम ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाले हों। इस प्रकार आत्मशासन करते हुए हम अपनी शक्तियों को बढ़ाएँ और अधिक से अधिक लोगों का हित करनेवाले हों।

इस 'बहुपाप्य स्वराज्य' के लिये यत्नशील व्यक्ति 'यजत' बनता है, सब के साथ संगतिकरण (मेल) वाला। यह कहता है—

६७. [सप्तषष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'निष्कृत-यजत-बृहत्' क्षत्र

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत्। वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे॥ १॥

(१) हे **देवा**=द्योतमान-प्रकाशमान **आदित्या**=अदिति के पुत्रों (अ-दिति=खण्डन) पूर्ण स्वास्थ्य से उत्पन्न होनेवाले **वरुण**=निर्द्वेषता के भाव तथा **अर्यमन्**=शत्रुओं के नियन्तः **मित्र**=स्नेह के देव! आप दोनों **बट्**=सचमुच **इत्था**=(इदानीं) अब **क्षत्रम्**=बल का **आशाथे**=व्यापन करते हो। हम अस्वस्थ होते हैं, तभी ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध में चलने लगते हैं। ये मित्र और वरुण हमारे जीवन को प्रकाशमय बना देते हैं। (२) ये मित्र और वरुण उस बल को हमें प्राप्त कराते हैं, जो **निष्कृतम्**=हमारे जीवन को बड़ा परिष्कृत बनाता है। **यजतम्**=परस्पर मेल की भावना को बढ़ाता है (संगतिकरण)। **बृहत्**=वृद्धि का कारण बनता है और **वर्षिष्ठम्**=अतिशयेन बढ़ा हुआ है। अहंकार युक्त शक्ति हमारे जीवन को परिष्कृत नहीं बनाती, वह हमें आपस में मिलानेवाली नहीं होती और अन्ततः हमारे ह्रास का कारण बनती है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव से हमें वह शक्ति प्राप्त होती है, जो हमें पवित्र, मेल की भावनावाला व गुणों की दृष्टिकोण से बढ़ा हुआ बनाती है।

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

हिरण्यय योनि

आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः। धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा॥ २॥

(१) हे **वरुण**=निर्द्वेषता के भाव! **मित्र**=स्नेह के देव! आप **यद्**=जो **हिरण्ययं योनिम्**=ज्योतिर्मय शरीर-गृह में **आसदथः**=आसीन होते हो। वस्तुतः मित्र और वरुण का आसीन होना

ही इस शरीर-गृह को ज्योतिर्मय बनाता है। (२) आप दोनों **चर्षणीना**=इन श्रमशील व्यक्तियों के **धर्तारा**=धारण करनेवाले होते हो। और **रिशादसा**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले आप **सुम्नं यन्तम्**=सुख व आनन्द को प्राप्त कराओ (कुरुतम् सा०)। स्नेह व निर्द्वेषता से हमारा जीवन गतिशील व स्वस्थ बना रहता है। ये मित्र और वरुण हमें 'ईर्ष्या-द्वेष-क्रोध' से ऊपर उठाकर सुखी बनाते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से (१) शरीर-गृह ज्योतिर्मय बनता है, (२) इनसे हमारा धारण होता है, (३) ये हमारे जीवन को सानन्द करते हैं।

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'वरुण-मित्र व अर्यमा' का विश्ववेदस्त्व

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा। व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ३ ॥

(१) **वरुणः**=द्वेष निवारण का देव, **मित्रः**=स्नेह का देव तथा **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध के नियन्त्रण की देवता, ये **विश्वे**=सब **हि**=ही, **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण धनोंवाले हैं। अर्थात् हमें 'वरुण-मित्र-अर्यमा' हमारे अन्नमय आदि सब कोशों को उस-उस धन को प्राप्त कराते हैं। 'तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु व सहस्' ये सब धन 'वरुण-मित्र-अर्यमा' से ही प्राप्त होते हैं। (२) **इव**=जैसे **पदा**=गतिशीलताओं को **व्रता**=सब पुण्यकर्म **सश्चिरे**=(to cling to, pervade) व्याप्त करते हैं, उसी प्रकार ये वरुण-मित्र-अर्यमा **मर्त्यम्**=मनुष्य को **रिषः**=शत्रु से **पान्ति**=रक्षित करते हैं, हम गतिशील बनते हैं तो अवश्य हमें पुण्यकर्म प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार स्नेह व निर्द्वेषता हमें काम-क्रोध आदि से ऊपर उठाते हैं।

भावार्थ—'स्नेह व निर्द्वेषता व शत्रु संयम' हमें तेजस्विता आदि सब धनों को प्राप्त कराते हैं। ये हमें शत्रुओं से बचाते हैं।

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'सत्या ऋतस्पृशः' (वरुण-मित्र-अर्यमा)

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने। सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥

(१) **ते**=वे, गतमन्त्र में वर्णित 'वरुण, मित्र और अर्यमा' **हि**=ही **सत्याः**=सत्यस्वरूप हैं **ऋतस्पृशः**=ऋत का स्पर्श करनेवाले हैं। जीवन के अन्दर ऋत का धारण करते हैं। ये **जने जने**=प्रत्येक व्यक्ति में **ऋतावानः**=ऋत का रक्षण करनेवाले हैं। इन के कारण मन में असत्य का प्रवेश नहीं होता और शरीर की सब क्रियाएँ ऋतवाली होती हैं। (२) ये 'वरुण-मित्र-अर्यमा' **सुनीथासः**=उत्तम मार्ग से ले चलनेवाले हैं, **सुदानवः**=बुराइयों को अच्छी प्रकार काटनेवाले हैं। और **अंहोः चित्**=कुटिल व्यक्ति से भी **उरु चक्रयः**=विशाल कर्मों को करानेवाले होते हैं। वस्तुतः ये उसकी कुटिलता को दूर करके उसके जीवन को पवित्र बना देते हैं।

भावार्थ—'स्नेह, निर्द्वेषता व शत्रु संयम' से मन में सत्य व शारीरिक क्रियाओं में ऋत की स्थिति होती है।

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सर्वस्तुत्य 'मित्र और वरुण'

को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम्। तत्सु वामषेते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥ ५ ॥

(१) हे **मित्र**=स्नेह की देवता! **वाम्**=आप दोनों स्नेह व निर्द्वेषता में से **कः**=कौन, हे मित्र!

तुम वरुण **वा**=या निर्द्वेषता की देवता **तनूनाम्**=शरीर धारियों का **अस्तुतः नु**=निश्चय से अस्तुत होता है। सब शरीरधारी आप दोनों का ही स्तवन करते हैं। आपके कारण ही शरीर का पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होता है। (२) **तत्**=सो **वाम्**=आप दोनों के प्रति ही **मतिः**=मननपूर्वक की गई स्तुति **सु एषते**=सम्यक् गतिवाली होती है अर्थात् सब आपका ही स्तवन करते हैं। **अत्रिभ्यः**='काम-क्रोध-लोभ' इन तीनों से ऊपर उठनेवालों से **मतिः**=मननपूर्वक की जानेवाली स्तुति **एषते**=आपकी ओर ही आती है। आपके द्वारा ही वस्तुतः वे अत्रि बन पाते हैं। 'काम-क्रोध-लोभ' का स्थान जब 'स्नेह व निर्द्वेषता' ले लेते हैं तो मनुष्य सब कष्टों से ऊपर उठ जाता है।

भावार्थ—'स्नेह व निर्द्वेषता' सभी से शंसनीय हैं।

'यजत' ऋषि का ही अगला भी सूक्त है—

६८. [अष्टषष्टीतमं सूक्तम्]

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

क्षत्र-ऋत

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा। महिक्षत्रावृतं बृहत्॥ १ ॥

(१) ये मनुष्यो! **वः**=तुम (यूयम् सा०) **मित्राय**=स्नेह की देवता के लिये **विपा**=स्तुतियों के द्वारा (विप् praise) तथा **गिरा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **गायत**=गायन करो। इसी प्रकार **वरुणाय**=निर्द्वेषता के लिये गायन करो। इन दोनों को ही तुम धारण करनेवाले बनो। (२) ये मित्र और वरुण **महिक्षत्रौ**=तुम्हारे लिये महान् बल को धारण करनेवाले होंगे। ये तुम्हारे जीवनों में 'बृहत् ऋतम्'=वृद्धि की कारणभूत नियमितता को अथवा यज्ञिय भावना को उत्पन्न करेंगे।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से हमारा जीवन (१) बल-सम्पन्न होता है तथा (२) नियमित व यज्ञभावना युक्त बनता है।

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सम्राजा घृतयोनी

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च। देवा देवेषु प्रशस्ता॥ २ ॥

(१) **या मित्रः च वरुणः च**=ये जो मित्र और वरुण हैं, ये **उभा**=दोनों स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **सम्राजा**=हमारे जीवनों को दीप्त करनेवाले हैं। **घृतयोनी**=ये ज्ञानदीप्ति व मल विनाश-निर्मलता को उत्पन्न करनेवाले हैं। (२) **देवा देवेषु**=जो जीवनों को दिव्यगुण-सम्पन्न बनानेवाले हैं और **प्रशस्ता**=अत्यन्त प्रशंसनीय है। इनका हम स्तवन करें और इन्हें धारण करने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के धारण से हमारा जीवन दीप्त, ज्ञानयुक्त व दिव्यगुण सम्पन्न बनेगा।

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'दिव्य व पार्थिव' ऐश्वर्य

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य। महि वां क्षत्रं देवेषु॥ ३ ॥

(१) **ता**=वे दोनों मित्र और वरुण **नः**=हमारे लिये **पार्थिवस्य**=शरीररूप पृथिवी-सम्बन्धी **महः रायः**=महत्त्वपूर्ण ऐश्वर्य के, अर्थात् शक्ति के तथा **दिव्यस्य**=मस्तिष्करूपी द्युलोक सम्बन्धी महान् ऐश्वर्य, अर्थात् ज्ञान के **शक्तम्**=देने में समर्थ हैं। स्नेह व निर्द्वेषता से शरीर में शक्ति व

मस्तिष्क में ज्ञान का संचार होता है। (२) **वाम्**=आप दोनों का, स्नेह व निर्द्वेषता का **देवेषु**=सब देववृत्ति के पुरुषों में **महिक्षत्रम्**=महनीय बल होता है। सब देव इन्हीं से बल-सम्पन्न बनते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से ही शक्ति व ज्ञान की प्राप्ति भी होती है।

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'इषिर' दक्ष

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते। अद्रुहा देवौ वर्धेते॥ ४॥

(१) ये मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता की देवताएँ **ऋतम्**=यज्ञादि उत्तम कर्मों को **ऋतेन सपन्ता**=ठीक प्रकार से सपन्ता=(सम् to do, perform) करनेवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर ही सदा श्रेष्ठ कर्मों का सम्भव होता है। ये हमारे अन्दर **इषिरं दक्षम्**=क्रियाशील बल को **आशाते**=व्याप्त करते हैं। मित्र व वरुण देव हमारे अन्दर शक्ति का वर्धन करते हैं, उस शक्ति से हमारी क्रियाशीलता बनी रहती है। यह क्रियाशीलता ही यज्ञादि उत्तम कर्मों में अभिव्यक्त होती है। (२) **अद्रुहा**=द्रोह न करनेवाले, हिंसा की वृत्ति से दूर रहनेवाले, **देवौ**=ये स्नेह व निर्द्वेषता के दिव्यगुण **वर्धेते**=हमारे जीवन में सब प्रकार की वृद्धि का कारण बनते हैं।

भावार्थ—मित्र और वरुण की आराधना से 'ऋत-इषिर दक्ष तथा अद्रोह की भावना' का वर्धन होता है।

ऋषिः—**यजत आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वृष्टिद्यावा रीत्यापा

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः। बृहन्तं गर्तमाशाते॥ ५॥

(१) ये मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के भाव, **वृष्टिद्यावा**=वर्षणशील द्युलोकवाले होते हैं। इनके होने पर मस्तिष्करूप द्युलोक में आनन्द की वृष्टि का हम अनुभव करते हैं। **रीत्यापा**=(रीतिः=गतिः रेषणं वा roaring) रीति ही इनकी आपा-अभिमन प्राप्ति होती है। अर्थात् ये गतिशील होते हैं तथा हृदय में प्रभु से उच्चरित होनेवाली वाणियों को सुनते हैं दुःखहर्ता प्रभु गर्जना करते हुए हमें प्राप्त होते हैं और हमारे हृदयों में 'ज्ञान, कर्म व उपासना' की तीन वाणियाँ उच्चरित होती हैं। इन वाणियों को द्वेष आदि की दुर्भावनाओं में हम सुन नहीं पाते। इनके सुनने पर हम सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं। (२) ये मित्र और वरुण ही वस्तुतः **इषः**=उस प्रभु प्रेरणा के **पती**=हमारे अन्दर रक्षण करनेवाले हैं, जो प्रेरणा **दानुमत्याः**=(दाप् लवने) आसुरभावनाओं के लवन (छेदन) वाली है। इस प्रकार इस प्रभु प्रेरणा से पवित्र बने हुए **बृहन्तम्**=गुणों के दृष्टिकोण से बढ़े हुए **गर्तम्**=शरीर-रथ को **आशाते**=ये मित्र और व्याप्त करते हैं, अर्थात् मित्र वरुण की आराधना से हमारा शरीर-रथ सब प्रकार से उन्नत व ठीक स्थिति में रहता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के द्वारा (१) आनन्द के वर्षण का अनुभव होता है, (२) हमारा जीवन प्रभु प्रेरणा से गतिमय बनता है। (३) यह प्रभु प्रेरणा हमारे जीवन में सब बुराइयों के विनष्ट करती है।

प्रभु प्रेरणा के अनुसार गतिमय जीवनवाला यह 'उरुचक्रि' बनता है, खूब क्रियाशील। यह क्रियाशीलता उसे त्रिविध दुःखों से दूर 'आत्रेय' बनाती है। यह 'उरुचक्रि' 'मित्र वरुण' का स्तवन करता हुआ कहता है—

६९. [एकोनसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**उरुचक्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अक्षीणता

त्री रो॑च॒ना व॑रुण॒ त्रीँरु॒त द्यून्त्रीणि॑ मित्र धारयथो॒ रजां॑सि।
वा॒वृ॒धा॒नाव॒मतिं॑ क्ष॒त्रिय॒स्यानु॑ व्र॒तं रक्ष॑माणावजु॒र्यम्॥ १॥

(१) हे **वरुण मित्र**=निर्द्वेषता व स्नेह की देवताओ! आप ही **त्री रोचना**=तीन ज्ञानदीप्तियों को **धारयथः**=हमारे में धारित करते हो। 'प्रकृति, जीव व आत्मा' के ज्ञान का सम्भव मित्र व वरुण के द्वारा ही होता है। ईर्ष्या-द्वेष में अज्ञान का ही वर्धन होता है। (२) **उत**=और **त्रीन्**=तीनों **द्यून्**=दिवसों तक आप ही हमारा धारण करते हो। बाल्यकाल, यौवनकाल तथा वार्धक्य ही जीवन के तीन दिन हैं। इनमें ये मित्र और वरुण ही हमारा धारण करते हैं। (३) हे मित्र और वरुण! **त्रीणि रजांसि**=स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीररूप तीनों लोकों को आप ही **धारयथः**=धारण करते हो। मित्र और वरुण से ही सब शरीरों का स्वास्थ्य प्राप्त होता है। (४) आप ही हमारे जीवनों में **क्षत्रियस्य**=एक शक्तिशाली क्षत्रिय के **अमतिम्**=रूप का **वावृधानौ**=वर्धन करनेवाले होते हो। आपके द्वारा ही हम क्षात्रबल से सम्पन्न होते हैं। **अनुव्रतम्**=आपके व्रत के अनुसार, अर्थात् जितना-जितना हम स्नेह व निर्द्वेषता का व्रत धारण करते हैं उतना-उतना आप **अजुर्यम्**=अजीर्णता-अक्षीणता का **रक्षमाणौ**=हमारे में रक्षण करते हो। मित्र व वरुण की आराधना हमें अजीर्ण शक्तिवाला बनाती है। इस आराधना से हम सदा युवा बने रहते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से हमें (१) 'प्रकृति, जीव, परमात्मा' का त्रिविध ज्ञान प्राप्त होता है। (२) हम बाल्य, यौवन, वार्धक्य में चलते हुए पूर्ण जीवन को प्राप्त करते हैं। (३) हमारे 'स्थूल, सूक्ष्म व कारण' तीनों शरीर ठीक रहते हैं। (४) हमें क्षात्रबल प्राप्त होता है और हम अजीर्ण शक्ति बने रहते हैं।

ऋषिः—**उरुचक्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तीन स्थानों में तीन देव

इरा॑वतीर्वरुण धे॒नवो॑ वां॒ मधु॑मद्वां॒ सिन्ध॑वो मित्र दुह्रे।
त्रय॑स्तस्थुर्वृष॒भास॑स्तिसृ॒णां धि॒षणा॑नां रेतो॒धा वि द्यु॒मन्तः॑॥ २॥

(१) हे **वरुण**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **इरावतीः**=ज्ञानदुग्ध रूप इरावाली **धेनवः**=ये वेदवाणीरूप गौवें **वाम्**=आपकी ही हैं। मित्र व वरुम की आराधना ही हमें इन वेदवाणियों को समझने की योग्यता देती है। (२) हे **मित्र**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **सिन्धवः**=ये ज्ञान-प्रवाह **मधुमत्**=अत्यन्त माधुर्य से पूर्ण ज्ञान को **वां दुह्रे**=आपके लिये प्रपूरित करते हैं। निर्द्वेषता में ही ज्ञान हमारे जीवन को मधुरता से भरनेवाला होता है। (३) स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर **त्रयः**=तीनों 'अग्नि, विद्युत् व सूर्य' **तस्थुः**=हमारे अन्दर स्थित होते हैं। ये **वृषभासः**=हमें शक्तिशाली बनाते हैं। ये **तिसृणां धिषणानाम्**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोकरूप तीन स्थानों के **रेतोधाः**=शक्ति का आधान करनेवाले हैं। **विद्युमन्तः**=उन लोकों को ज्योतिर्मय बनानेवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर शरीर में अग्नितत्त्व ठीकरूप से होकर उसे तेजोमय बनाता है। हृदयरूप अन्तरिक्ष में **विद्युत्**=सब बुराइयों को भस्म करनेवाली होती है तथा मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य दीप्ति को करनेवाला होता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर ही हम ज्ञानवाणियों को ठीकरूप में समझते हैं। ये ही हमें शरीर में अग्नि तत्त्ववाला, हृदय में विद्युत्वाला व मस्तिष्क में सूर्यवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**उरुचक्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मित्र वरुण' की महिमा

प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥

(१) मैं **प्रातः**=उषाकाल में **उदिता सूर्यस्य**=सूर्य के उदय के अवसर पर तथा **मध्यन्दिने**=मध्याह्नकाल में भी **देवीम्**=दिव्यगुणमयी **अदितिम्**=अदीना देवमाता को **जोहवीमि**=पुकारता हूँ। 'देवी अदिति' की उपासना से सब दिव्यगुणों का मेरे में जन्म होता है। वस्तुतः **अदिति**=अ-दिति (खण्डन) स्वास्थ्य की देवता है। यह हमारे में सब अच्छाइयों को उत्पन्न करती है। स्वस्थ पुरुष में ही स्नेह व निर्द्वेषता के भाव पनपते हैं और सब दिव्यगुणों को उत्पन्न करते हैं। (२) यहाँ 'सायं' का उल्लेख ही नहीं किया। जीवन के सायंकाल में मनुष्य अनुभव से ही द्वेष की व्यर्थता को जान जाता है और यदि मैं जीवन की सन्ध्यावेला ही में निर्द्वेष बनने के संकल्पवाला हुआ तो उसका मुझे उतना लाभ न होगा। तो कहते हैं कि जीवन सूर्य का उदय होते ही हम निर्द्वेष बनें। (३) मैं **राये**=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये, **सर्वताता**=सब गुणों के विस्तार के लिये, **तोकाय तनयाय**=उत्तम पुत्र-पौत्रों के लिये तथा **शं योः**=शान्ति व निर्भयता (भयों का यापन) के लिये **मित्रावरुणा ईडे**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवता का आराधन करता हूँ।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता में ही 'ऐश्वर्य, सद्गुण विस्तार, उत्तम सन्तति, शान्ति व निर्भयता' है।

ऋषिः—**उरुचक्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

देवों के अमृतत्व का रहस्य

या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥ ४ ॥

(१) **या**=ये जो **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवताएँ हैं, ये **रोचनस्य रजसः**=देदीप्यमान मस्तिष्करूप द्युलोक के **धर्तारा**=धारण करनेवाले हैं। स्नेह व निर्द्वेषता ही मस्तिष्क को दीप्त करते हैं। **उत**=और ये ही **आदित्या**=(आदान्वत्) सब दिव्यगुणों का आदान करनेवाले हैं, **दिव्य**=जीवन को दिव्य बनानेवाले हैं। **पार्थिवस्य**=इस शरीररूप पृथिवीलोक का भी ये धारण करते हैं। इन्हीं से शरीर स्वस्थ बना रहता है। (२) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओ! **न वाम्**=आपके **ध्रुवाणि व्रतानि**=स्थिर व्रतों को **देवाः**=देव, दिव्य भावनाओंवाले पुरुष **न आमिनन्ति**=हिंसित नहीं करते। वस्तुतः इसी से **अमृताः**=वे अमर बने रहते हैं। ईर्ष्या-द्वेष मनुष्य को क्षीण शक्ति व रोगी बना देते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता मस्तिष्क को ज्ञान की रोचनावाला करते हैं, हृदय को दिव्य गुण सम्पन्न बनाते हैं और शरीर का धारण करते हैं। इन्हीं की उपासना से देव अमर बनते हैं।

अगले सूक्त में भी 'उरुचक्रि' ही आराधना करता है—

७०. [सप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**उरुचक्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रक्षण व सुमति

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण। मित्र वंसि वां सुमतिम्॥ १॥

(१) हे **वरुण मित्र**=निर्द्वेषता तथा स्नेह की देवते! **नूनं चित् हि**=निश्चय से ही **वाम्**=आपका **अवः**=रक्षण **पुरूरुणा** (पुरू उरु)=पालक व पूरक तथा विशाल है। आपका रक्षण शरीरों का पालन करता है, यह रक्षण हमारे में ज्ञानों का पूरण करता है तथा हमारे हृदयों को यह विशाल बनाता है। स्नेह व निर्द्वेषता के होने पर सारा नाड़ी संस्थान उत्तम बना रहता है। परिणामतः शरीर, मन व बुद्धि भी ठीक रहते हैं। (२) हे मित्र वरुण! **वाम्**=आपकी **सुमतिम्**=कल्याणी बुद्धि को **वंसि**=मैं प्राप्त करूँ (संभजेय)। स्नेह व निर्द्वेषता से मेरी बुद्धि सदा शुभ बनी रहे।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से हमारा पूर्ण रक्षण होता है और हमें शुभ बुद्धि प्राप्त होती है।

ऋषिः—**उरुचक्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अद्रुह्वाणा-रुद्रा

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे। वयं ते रुद्रा स्याम॥ २॥

(१) हे **मित्र वरुण**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओ! **ता वाम्**=वे आप दोनों **सम्यक्**=पूर्णतया **अद्रुह्वाणा**=अद्रोग्धा हैं, द्रोह न करनेवाले हैं। आपकी उपासना मुझे सब हिंसनों से बचाती है। (२) आपके द्वारा प्रसन्न हृदय में हम **धायसे**=धारण के लिये **इषं अश्याम**=प्रभु की प्रेरणा को प्राप्त करें। यह प्रभु प्रेरणा हमें मार्ग दिखाये। हे **रुद्रा**=प्रभु प्रेरणा को प्राप्त कराने के द्वारा सब (रुत्) रोगों के (द्रावयितारौ) भगानेवाले प्राणापानो! **वयम्**=हम **ते**=(तब) आपके **स्याम**=हों। हम सदा रोगों को दूर रखनेवाले हों। वस्तुतः मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति स्वस्थ बनता ही है।

भावार्थ—मित्र और वरुण द्रोहशून्य हैं। ये सब रोगों के दूर करनेवाले हैं।

ऋषिः—**उरुचक्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दस्यु विनाश

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा। तुर्याम दस्यून्तनूभिः॥ ३॥

(१) हे **रुद्रा**=(रुद् द्रावयितारौ) दुःखों को दूर भगानेवाले मित्र और वरुण! **नः**=हमें **पायुभिः**=अपने रक्षणों के द्वारा **पातम्**=रक्षित करो। **उत**=और **सुत्रात्रा**=उत्तम रक्षण करनेवाले आप **त्रायेथाम्**=हमें सब बुराइयों से बचाओ। आन्तर शत्रुओं से भी आप हमारा त्राण करें तथा बाह्यशत्रुओं के शातन की भी शक्ति दें। (२) आपके द्वारा **तनूभिः**=अपनी शक्तियों के विस्तार को करते हुए हम **दस्यून्**=सब दास्यव वृत्तियों को **तुर्याम**=हिंसित करें। वस्तुतः स्नेह व निर्द्वेषता की पवित्र भूमि में ही सब दिव्यगुणों की उत्पत्ति होती है।

भावार्थ—ये मित्र और वरुण हमारा रक्षण करते हैं। ये हमें शक्ति विस्तार के द्वारा दास्यव वृत्तियों के विनाश के लिये तैयार करते हैं।

ऋषिः—**उरुचक्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आत्मना भुजमश्नुताम्

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः। मा शेषसा मा तनसा॥ ४॥

(१) हे मित्रावरुणा! आप **अद्भुतक्रतू**=आश्चर्यजनक शक्ति व प्रज्ञानवाले हो? हम आपके द्वारा शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त करके **कस्य**=किसी के भी **यक्षम्**=पूजित धन को **तनूभिः**=अपने शरीरों से **मा भुजेम**=भोगनेवाले न हों। **शेषसा मा**=अपने सन्तानों के द्वारा भी हम किसी दूसरे के धन का उपभोग न करें। **मा तनसा**=पौत्रों के द्वारा भी परपिण्डोपजीवी न बनें। (२) हमारे कुल में कोई भी दूसरे के धन से अपना पालन करनेवाला न हो। सब कोई 'आत्मना भुजं अश्नुताम्'=अपने पुरुषार्थ से अपना भोग प्राप्त करनेवाला बने। वस्तुतः स्नेह व निर्द्वेषता का सम्भव ऐसी वृत्ति के होने पर ही होता है।

भावार्थ—हम अपने पुरुषार्थ से अपना भोग प्राप्त करें और सदा स्नेह व निर्द्वेषता का अपने में पोषण करें।

अपने पुरुषार्थ से अपने भोगों को प्राप्त करनेवाला यह 'बाहुवृक्त' बनता है, बाहु से, प्रयत्न से वर्जन किया है पाप का जिसने। यह आत्रेय है, काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठा हुआ है। यह मित्र और वरुण की आराधना करता हुआ कहता है—

७१. [एकसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**बाहुवृक्त आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रिशादसा-बर्हणा

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा। उपेमं चारुमध्वरम्॥ १॥

(१) हे **रिशादसा**=शत्रुओं के विनष्ट करनेवाले **वरुण मित्र**=निर्द्वेषता व स्नेह के भावो! आप **नः**=हमारे इस **चारुम्**=सुन्दर **अध्वरम्**=हिंसारहित जीवन-यज्ञ में **आगन्त**=आओ। वस्तुतः आपने ही इस जीवन-यज्ञ को चारुता प्रदान करनी है। (२) **बर्हणा**=(निबर्हणौ) शत्रुओं के विनष्ट करनेवाले आप **इमं उप**=इस यज्ञ को समीपता से प्राप्त होवो। जिस जीवन में स्नेह व निर्द्वेषता का स्थान बन जाता है, वहां काम-क्रोध-लोभ आदि आसुरभावों का समापन ही हो जाता है।

भावार्थ—जिस जीवन में स्नेह व निर्द्वेषता का स्थान होता है वहाँ आसुरभावों का विनाश हो जाता है। जीवन यज्ञमय बन जाता है।

ऋषिः—**बाहुवृक्त आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रचेतसा-ईशाना

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः। ईशाना पिप्यतं धियः॥ २॥

(२) हे **वरुणामित्र**=निर्द्वेषता व स्नेह के देवो! आप **प्रचेतसा**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हो। **हि**=निश्चय से **विश्वस्य**=सम्पूर्ण अच्छाइयों के **राजथः**=स्वामी हो। वरुण व मित्र की आराधना हमें सब उत्तम गुणों को प्राप्त करानेवाली होती है। (२) **ईशाना**=सबके ईश आप! **नः धियः**=हमारी बुद्धियों को **पिप्यतम्**=आप्यायित करनेवाले होवो। वैर तथा द्वेषभाव बुद्धि को मलिन करनेवाले हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से सब उत्तमताएँ प्राप्त होती हैं, बुद्धि आप्यायित होती है।

ऋषिः—**बाहुवृक्त आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मित्र वरुण का सोमपान

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः। अस्य सोमस्य पीतये॥ ३॥

(१) हे **वरुण मित्र**=निर्द्वेषता व स्नेह के भावो! आप **नः**=हमारे **सुतम्**=उत्पन्न हुए-हुए इस सोम को **उप आगतम्**=समीपता से प्राप्त होवो। जिसमें सोम (वीर्य) का उत्पादन हुआ है, वह जीवनयज्ञ 'सुत' है। (२) आप **दाशुषः**=दानशील पुरुष के **अस्य**=इस **सोमस्य**=सोम के **पीतये**=पान के लिये होवो। वस्तुतः वैर-द्वेष आदि के भाव सोमरक्षण की अनुकूलतावाले नहीं। निर्द्वेष पुरुष ही सोम का रक्षण कर पाता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता का धारण करता हुआ मैं सोम का रक्षण कर सकूँ।

बाहुवृक्त ही कहते हैं—

७२. [द्विसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**बाहुवृक्त आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

यज्ञशीलता व सोमरक्षण

आ मि॒त्रे वरु॑णे व॒यं गी॒र्भिर्जु॑हुमो अत्रि॒वत्। नि ब॒र्हिषि॑ सदतं॒ सोम॑पीतये॥ १॥

(१) **वयम्**=हम **मित्रे**=स्नेह के होने पर तथा **वरुणे**=निर्द्वेषता के होने पर **अत्रिवत्**='काम-क्रोध-लोभ' इन तीनों से ऊपर उठे हुए पुरुष की तरह **आजुहुमः**=सर्वत्र दानपूर्वक अदनवाले बनते हैं। यज्ञों को करके यज्ञशेष का सेवन करनेवाले हम अत्रि बनते हैं और मित्र व वरुण के उपासक होते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता को धारण करनेवाला व्यक्ति कभी अकेला खानेवाला नहीं बनता। यह इस तत्त्व को समझता है कि 'केवलाघो भवति केवलादी'=अकेला खानेवाला पापी है। (२) हे मित्र और वरुण! आप **सोमपीतये**=मेरे सोम (वीर्य) के रक्षण के लिये **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **निसदतम्**=निश्चय से आसीन होते हो। ये मित्र वरुण ही हमें सोम के पान (रक्षण) के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता का उपासक 'यज्ञशील' होता है तथा सोम (वीर्य) का रक्षण कर पाता है।

ऋषिः—**बाहुवृक्त आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

ध्रुवक्षेमा-यातयज्जना

व्र॒तेन॑ स्थो ध्रु॒वक्षे॑मा॒ धर्म॑णा यात॒यज्ज॑ना। नि ब॒र्हिषि॑ सदतं॒ सोम॑पीतये॥ २॥

(१) हे मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! आप **व्रतेन**=पुण्य कर्मों से **ध्रुवक्षेमा**=निश्चित कल्याण करनेवाले हो। स्नेह के होने पर हम अशुभ हिंसादि कर्मों में प्रवृत्त नहीं होते। (२) आप **धर्मणा**=धारणात्मक कर्मों के हेतु से ही **यातयज्जना**=लोगों को कर्मों में प्रवृत्त करते हो। सो आप **सोमपीतये**=सोम के रक्षण के लिये **बर्हिषि**=हमारे वासनाशून्य हृदयों में **निसदतम्**=आसीन होवो।

भावार्थ—मित्र व वरुण का उपासक पुण्य कर्मों द्वारा कल्याण करनेवाला व धारणात्मक कर्मों में ही प्रवृत्त होनेवाला होता है।

ऋषिः—**बाहुवृक्त आत्रेयः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

इष्ट प्राप्ति

मि॒त्रश्च॑ नो॒ वरु॑णश्च जु॒षेतां॑ य॒ज्ञमि॒ष्टये॑। नि ब॒र्हिषि॑ सदतं॒ सोम॑पीतये॥ ३॥

(१) **मित्रः च वरुणः च**=स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **नः**=हमारे यज्ञ का **जुषेताम्**=

प्रीतिपूर्वक सेवन करें, जिससे **इष्टये**=हम सदा इष्ट सुखों को प्राप्त करनेवाले हों। यज्ञ की भावना हमारे चित्तों को निर्मल करती है। यज्ञात्मक कर्म हमारे घरों व समाज को स्वर्गोपम बना देते हैं। (२) हे मित्र वरुण! आप **सोमपीतये**=सोम रक्षण के लिये **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **निसदतम्**=निश्चय से आसीन होइये।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता हमें यज्ञों में प्रवृत्त कराके इष्टसाधक होते हैं।

यह प्राणसाधना के द्वारा अपने शरीररूप पुर को सुन्दर बनानेवाला 'पौर' है। यह प्राणसाधना में प्रवृत्त होता है। प्राणसाधना ही इसे समाज में स्नेह व निर्द्वेषता से चलने के योग्य बनायेगी। यह कहता है कि—

अथ षष्ठोऽनुवाकः

७३. [त्रिसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

परावति-अर्वावति

यद॒द्य स्थः प॑रा॒वति॒ यद॑र्वा॒वत्य॑श्विना। यद्वा॑ पु॒रू पु॑रुभुजा॒ यद॒न्तरि॑क्ष॒ आ ग॑तम्॥ १ ॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **यद्**=यदि **अद्य**=आज **परावति स्थः**=आप सुदूर स्थान में हो, मस्तिष्करूप द्युलोक में आपका निवास है। अथवा **यद्**=यदि **अर्वावति**=यहाँ समीप में, शरीररूप पृथिवीलोक में आपका निवास है, तो आप **आगतम्**=हमें प्राप्त होवो। वस्तुतः मस्तिष्करूप द्युलोक व शरीररूप पृथिवीलोक को प्राणापान ने ही निर्दोष बनाना है। (२) **यद् न**=अथवा यदि **पुरू**=शरीर के अन्य बहुत से प्रदेशों में **पुरुभुजा**=खूब ही पालन करनेवाले हो और **यद्**=यदि **अन्तरिक्षे**=हृदयरूप अन्तरिक्ष में आपका निवास है तो वहाँ से हमें प्राप्त होवो। वस्तुतः प्रभु ने शरीर में सर्वप्रथम मस्तिष्क, अर्थात् विज्ञानमयकोश की दीप्ति के लिये इन प्राणापान की स्थापना की है (परावति)। इधर अन्नमयकोश का स्वास्थ्य भी इन्हीं पर निर्भर करता है (अर्वावति)। शरीर के अन्य अंगों को ये प्राण ही शक्ति देते हैं (पुरुभुजा) तथा हृदयान्तरिक्ष को, मनोमयकोश को इन्होंने ही पवित्र करना है (अन्तरिक्षे)।

भावार्थ—प्राणापान मेरे शरीर की त्रिलोकी को व अन्य सब अंगों को पवित्र करनेवाले हों।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'तुविष्टमा' अश्विनौ

इ॒ह त्या पु॑रु॒भूत॑मा पु॒रू दंसां॑सि॒ बिभ्र॑ता। व॒र॒स्या या॒म्यध्रि॑गू हु॒वे तु॒विष्ट॑मा भु॒जे॥ २ ॥

(१) **इह**=इस जीवन में **त्या**=उन **पुरु-भू-तमा**=खूब ही विभव को प्राप्त करानेवाले (भावयितृतम) अश्विनी देवों को, प्राणापान को **यामि**=समीपता से प्राप्त होता हूँ। ये प्राणापान शरीर में सोम रक्षण के द्वारा सब अन्नमय आदि कोशों को तेज आदि वैभवों से युक्त करते हैं। **पुरू दंसांसि बिभ्रता**=ये पालक व पूरक कर्मों को धारण करनेवाले हैं। अतएव **वरस्या**=वरणीय हैं, चाहने योग्य हैं। ये प्राणापान **अध्रिगू**=अधृतगमन हैं, इनकी शक्ति किसी से प्रतिहत नहीं होती (२) इन **तुविष्टमा**=(तुविः=strength, intellect) प्रचण्ड शक्ति व तीव्र ज्ञानवाले इन प्राणापान को **भुजे**=मस्तिष्क व शरीर के पालन के लिये **हुवे**=पुकारता हूँ। ये प्राणापान ही शरीर में शक्ति का संचार करते हैं और मस्तिष्क को ज्ञान से दीप्त करते हैं। और इस प्रकार ये हमारा पालन करते हैं।

भावार्थ—प्राणापान ही शरीर के सब कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं, हमारे जीवन में पालक व पूरक कर्मों का धारण करते हैं। हमें शक्ति व ज्ञान-सम्पन्न करके हमारा पालन व पूरण करते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

अश्विनी देवों के रथ के दो चक्र

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः। पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः॥ ३॥

(१) हे **अश्विनी देवो**=प्राणापानो! आप अपने **रथस्य**=रथ के **अन्यत्**=एक **ईर्म**=सब ग्रन्थियों को (glands को) गतिमय करनेवाले **वपुषे**=शरीर के लिये **वपुः**=सब शक्तियों के बीजों का वपन करनेवाले **चक्रम्**=चक्र को, प्राणरूप चक्र को **येमथुः**=नियमित करते हो। अश्विनी देवों के रथ का एक चक्र प्राण है, तो दूसरा अपान। प्राण सब ग्रन्थियों को क्रियाशील करता हुआ शरीर में शक्ति का संचार करता है। सो प्राण चक्र को 'वपुषे वपुः' कहा है। (२) इस अश्विनी देवों के रथ का दूसरा चक्र 'अपान' है। **अन्या मह्ना**=इस दूसरे के महत्त्व से (अत्यस्र्य महिम्ना) **नाहुषा युगा**=इन मानव दम्पतियों के, पति-पत्नी के **रजांसि**=मलों को **परिदीयथः**=शरीर में सर्वत्र विनष्ट करते हो। मलों को दूर करके उनके शरीरों को नीरोग बना देते हो।

भावार्थ—अश्विनी देवों के रथ का एक 'प्राण' रूप चक्र सब ग्रन्थियों को क्रियाशील बनाकर शक्ति का संचार करता है और दूसरा 'अपान' रूप चक्र मलों को दूर करके शरीर को नीरोग बनाता है।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

निर्दोषता व प्रभु प्राप्ति

तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे। नाना जातावरेपसा सम॒स्मे बन्धुमेयथुः॥ ४॥

(१) हे **विश्वा**=शरीर में प्रविष्ट होनेवाले प्राणापानो! **तद्**=वह **वाम्**=आपका गतमन्त्र में वर्णित् 'प्राणशक्ति संचार व रजा संहार' रूप कार्य **ऊ**=निश्चय से **एना**=इस प्रकार **सुकृतम्**=अच्छी प्रकार किया जाये **यत्**=कि **वाम्**=आपका मैं **अनुष्टवे**=प्रतिदिन स्तवन करनेवाला बनूँ। (२) **नाना**=पृथक्-पृथक् कार्य करते हुए आप **अरेपसा जातौ**=हमारे जीवनों को निर्दोष बनानेवाले हो गये हो। हमारे जीवनों को निर्दोष बनाकर **अस्मे**=हमारे लिये **बन्धुम्**=उस महान् मित्र प्रभु को **समेयथुः**=संगत करते हो।

भावार्थ—प्राणापान हमारे जीवनों को निर्दोष बनाकर हमें प्रभु को प्राप्त करानेवाले होते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

तथेन्द्रियाणां दरुयन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्

आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा। परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः॥ ५॥

(१) हे अश्विनी देवो! **यद्**=जब **वां रघुष्यदम्**=तीव्र गतिवाले **रथम्**=रथ पर **सूर्या**=सूर्य-पुत्री-सूर्यवत् देदीप्यमान ज्ञानदीप्ति सदा **आतिष्ठत्**=सदा स्थित होती है। प्राणसाधना के द्वारा यह शरीर-रथ शक्ति-सम्पन्न व गतिशील बनता है और मलिनताओं का विनाश होकर हमारा ज्ञान दीप्त हो उठता है। यही अश्विनी देवों के रथ पर सूर्या का अधिष्ठान है। (२) उस समय हे प्राणापानो! **वाम्**=आपको **वयः**=(वि=horse) वे इन्द्रियाश्व **परिवरन्ते**=वरण करते हैं, जो **अरुषाः**=आरोचमान हैं **घृणाः**=दीप्त हैं और **आतपः**=सब शत्रुओं के संतापक हैं। वस्तुतः प्राणसाधना इन्द्रियों को

निर्दोष बनाकर उन्हें आरोचमान व दीप्त बना देती है। इस स्थिति में ये इन्द्रियाश्व आक्रामक 'विषय-वासना' रूप शत्रुओं का विनाश करनेवाले होते हैं, अर्थात् इन्द्रियाँ विषयों में फँसती नहीं।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर-रथ गतिमय व प्रकाशवाला बनता है। इस रथ में इन्द्रियाश्व आरोचमान दीप्त व शत्रु-संतापक होते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

अरेपस् घर्म

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा। घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥

(१) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! **अत्रिः**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठा हुआ पुरुष **सुम्नेन**=(joy, happiness) आनन्दयुक्त **चेतसा**=चित्त से **युवोः चिकेतति**=आप दोनों को जानता है। आपकी साधना से चित्त आनन्दयुक्त होता है, वह आनन्दयुक्त चित्त आपकी महिमा का स्मरण कराता है। (२) हे **नासत्या**=सब असत्यों को हमारे से दूर करनेवाले प्राणापानो! **यद्**=जो **वाम्**=आपकी **अरेपसम्**=निर्दोष **घर्मम्**=शक्ति की उष्णता है, उसे **आस्ना**=आस्य निष्पन्न स्त्रोत्र के द्वारा, अर्थात् ऊँचे-ऊँचे आपका स्तवन करता हुआ यह साधक **भुरण्यति**=प्राप्त करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से चित्त निर्मल होकर आनन्दयुक्त होता है। ऊँचे-ऊँचे स्तवन करते हुए हम उस स्तवन में होनेवाली प्राणसाधना के परिणामस्वरूप दोषशून्य शक्ति की उष्णता को प्राप्त करते हैं।

सूचना—शराब इत्यादि के पीने से उत्पन्न उष्णता सदोष है। प्राणसाधना जनित उष्णता निर्दोष है।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

तेजस्विता-उन्नति व गतिशीलता

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः। यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आप दोनों का **सन्तनिः**=शक्तियों के विस्तारवाला यह रथ **यामेषु**=जीवन-यात्रा के मार्गों में **उग्रः**=तेजस्वी **ककुहः**=उन्नत (शिखर स्थित) **ययिः**=निरन्तर गतिवाला **शृण्वे**=सुन पड़ता है, अर्थात् प्राणापान हमें तेजस्वी उन्नत व गतिशील बनाते हैं। (२) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! **यद्**=जब **अत्रिः**=काम-क्रोध-लोभ से ऊपर उठनेवाला व्यक्ति **दंसोभिः**=उत्तम कर्मों के हेतु से **वाम्**=आपको **आववर्तति**=पुनः-पुनः आवृत्त करता है, अर्थात् दीर्घ श्वासोच्छ्वास द्वारा आपके आवर्तन को करता है, दीर्घश्वास प्रश्वास होने से शोधन होता है। यह शोधन हमारे कर्मों की पवित्रता का कारण बनता है और हमें उन्नत करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें तेजस्वी उन्नत व गतिशील बनाती है।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

समुद्र सन्तरण

मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी। यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥

(१) हे **मधुयुवः**=माधुर्य का हमारे साथ मिश्रण करनेवाले, **रुद्रा**=(रुत् द्र) सब रोगों का द्रावण करनेवाले प्राणापानो! **उ**=निश्चय से **मध्वः**=माधुर्य को **पिप्युषी**=आप्यायन (वर्धन) को प्राप्त

करती हुई स्तुति **सुसिषक्ति**=आपका उत्तम सेवन करती है। जितना-जितना हम प्राणसाधना में प्रवृत्त होते हैं, उतना-उतना ही हमारे जीवन में माधुर्य बढ़ता है। इस माधुर्य के बढ़ने से हम और अधिक प्राणों का स्तवन करनेवाले बनते हैं। (२) हे प्राणापानो! **यत्**=जब आप **समुद्रा अतिपर्षथः**=(कामो हि समुद्रः) काम-क्रोध के समुद्र को पार करते हो, तो **पक्वाः पृक्षः**=वृक्षों व अग्नि पर पके हुए अन्न फल ही **वां भरन्त**=आपका भरण करते हैं। अर्थात् इन प्राणापान का उपासक वानस्पतिक भोजन को ही ग्रहण करनेवाला होता है। इस प्रकार सात्त्विक आहार के साथ जब प्राणसाधना चलती है तो हम काम-क्रोध के समुद्रों को पार करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम सात्त्विक अन्नों का सेवन करते हुए प्राणायाम करें यह प्राणसाधना हमें (१) काम-क्रोध से पार करेगी, (२) और हमारे जीवन में माधुर्य का संचार करेगी।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

मयोभुवा-मृडयत्तमा

सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा। ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवाम्**=आपको साधक लोग **सत्यम्**=सचमुच **इत् वा उ**=ही निश्चय से **मयोभुवा**=‘कल्याण के उत्पन्न करनेवाले’ इस रूप में **आहुः**=कहते हैं। आपके द्वारा सब रोगों का निरास होकर वस्तुतः हमारा कल्याण होता है। (२) इसीलिए **ता**=वे प्राणापान **यामन्**=इस जीवन यज्ञ में **यामहूतमा**=आने के लिये अधिक से अधिक आह्वातव्य होते हैं। वे प्राणापान **यामन्**=इस जीवन यज्ञ में **आ**=सर्वथा **मृडयत्तमा**=अत्यन्त सुख को देनेवाले होते हैं। ये दीर्घ व नीरोग जीवन को प्राप्त कराके हमें सुखी करते हैं।

भावार्थ—प्राणापान (१) हमें नीरोग करते हैं, (२) अतिशयेन सुखी करते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्रभु स्तोत्रोच्चारण

इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा। या तक्षाम रथाँइवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥

(१) **इमा**=ये **ब्रह्माणि**=स्तोत्र **अश्विभ्याम्**=प्राणापान के द्वारा **वर्धना सन्तु**=हमारा वर्धन करनेवाले हों और **शन्तमा** (सन्तु)=हमें अधिक से अधिक शान्ति के देनेवाले हों। प्राणसाधना से चित्तवृत्ति निर्मल होती है, हमारा झुकाव प्रभु की ओर होता है। उस समय हमारे जीवन में स्तोत्र अनायास उच्चरित होते हैं। ये हमारी वृद्धि व शान्ति का कारण बनते हैं। (२) ये स्तोत्र वे हैं, **या**=जिन्हें हमने इस प्रकार **तक्षाम**=बनाया है, **इव**=जैसे कि एक रथकार **रथान्**=रथों को बनाता है। इस प्राणसाधना से पवित्र-हृदय होकर हम उस प्रभु के लिये **बृहन्नमः**=खूब ही नमन के वचनों को **अवोचाम**=उच्चरित करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से हमारा झुकाव प्रभु-स्तवन की ओर होता है और हमारे मुख से अनायास ही प्रभु स्तोत्र उच्चरित होने लगते हैं।

अगले सूक्त का भी ऋषि ‘पौर आत्रेय’ ही है—

७४. [चतुःसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

मनावसू-वृषण्वसू

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू। तच्छ्रवो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥

(१) हे **देवौ**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! आप **कूष्ठः**=इस शरीरूप पृथिवी में स्थित होते हो और **आद्या**=आज यहाँ स्थित होकर **दिवः**=मस्तिष्करूप द्युलोक के **मनावसू**=ज्ञानरूप धनवाले होते हो। प्राणसाधना से ही बुद्धि की तीव्रता होकर ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है। (२) हे **वृषण्वसू**=धनों का वर्षण करनेवाले प्राणापानो! **तत् श्रवथः**=आपका उस ज्ञान का श्रवण करनेवाले होते हो अतएव **अत्रिः**=यह काम-क्रोध व लोभ से ऊपर उठनेवाला व्यक्ति **वां आविवासति**=आपकी परिचर्या करता है। प्राणापान ही आराधनीय हैं। इन्हीं पर टकराकर आसुरभावनाएँ चूर्णीभूत हुआ करती हैं।

भावार्थ—प्राणापान इस शरीर में स्थित होकर जीवन को प्रकाशमय बनाते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

दिवि देवा नासत्या

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या। कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥

(१) **कुह**=कहाँ **त्या**=वे प्रसिद्ध प्राणापान निवास करते हैं। शरीर में कहाँ प्राण का स्थान है और कहाँ अपान का? **नु**=अब **कुह**=किस कार्यक्षेत्र में **श्रुता**=ये प्रसिद्ध हैं? उत्तर देते हुए कहते हैं कि **दिवि**=ये मस्तिष्करूप द्युलोक में रहते हैं। वस्तुतः शरीर में स्थित सब देवों का कार्यालय यह मस्तिष्करूप द्युलोक ही है। ये **देवा**=प्रकाशमय हैं, **नासत्या**=शरीर को असत्य से रहित करते हैं। प्राण प्रकाश को देता है, तो अपान असत्य को दूर करता है। (२) प्राणापान के महत्त्व को न समझने के कारण कोई विरला व्यक्ति ही इनकी साधना करता है। **कस्मिन् जने**=किसी एक आध व्यक्ति के जीवन में ही हे प्राणापानो! आप **आयतथः**=यत्न करते हो। जब वह व्यक्ति प्राणसाधना करता है, तो वह **कः**=कोई विरला व्यक्ति ही **वाम्**=आपकी **नदीनाम्**=ज्ञानवाणियों को **सचा**=अपने में समवेत करनेवाला होता है प्राणसाधना से अशुद्धि क्षय होकर ज्ञानदीप्ति होती ही है।

भावार्थ—जिस मनुष्य के जीवन में प्राणों की साधना चलती है, वहाँ ज्ञान की वाणियाँ भी विकसित होती हैं। प्राणापान का मुख्य कार्य जीवन को प्रकाशमय बनाना ही है। ये जीवन से असत्य को दूर कर देते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्रभु की ओर

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम्।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥

(१) हे प्राणापानो! आप **कं याथः**=उस आनन्दमय प्रभु की ओर जाते हो और **ह**=निश्चय से **कं गच्छथः**=उस आनन्दमय प्रभु के साथ संगत होते हो। **कं अच्छा**=उस आनन्दमय प्रभु को लक्ष्य करके ही **रथं युञ्जाथे**=आप इस शरीर-रथ को इन्द्रियाश्वों से जोतते हो। प्राणसाधना द्वारा ये इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होकर प्रभु दर्शन के लिये अनुकूलता को प्राप्त करती हैं। इनके प्राण ही अन्तर्मुख करनेवाले होते हैं। (२) हे प्राणापानो! आप **कस्य**=उस आनन्दमय प्रभु के **ब्रह्माणि**=इन ज्ञान वचनों में **रण्यथः**=रमण करते हो। आपकी साधना से ही हमारी बुद्धि तीव्र होकर ज्ञानवाणियों का ग्रहण करनेवाली बनती है। सो **वयम्**=हम **वाम्**=आपको **इष्टये**=सब इष्टों की प्राप्ति के लिये **उश्मसि**=कामना करते हैं। सब शुभों की प्राप्ति इन प्राणापानों से ही होती है।

भावार्थ—यह प्राणसाधना हमें प्रभु की ओर ले जाती है। प्राणसाधना से ही हमारी बुद्धि ज्ञानवाणियों में रमण करनेवाली बनती है। हम प्राणसाधना की कामनावाले हों।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

पौर

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः। यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

(१) **पौर**=(पौरौ) हे शरीररूप पुर के हित करनेवाले अश्विनी देवो! **उदप्रुतम्**=रेत:कणरूप जलों की ओर गतिवाले, इसके रक्षण के द्वारा **पौरम्**=इस शरीररूप पुरी का ध्यान करनेवाले इस साधक को **पौराय**=सम्पूर्ण पुर के हित के लिये **चित् हि**=निश्चय से **जिन्वथः**=प्रेरित करते हो। प्राणसाधना से रेत:कणों की ऊर्ध्वगति होती है और इनके रक्षण से यह शरीररूप पुरी बड़ी ठीक बनी रहती है। इसको इस प्रकार ठीक रखनेवाला व्यक्ति सारे पुर का (नगर का) हित करनेवाला होता है। (२) हे अश्विनी देवो! आप **यद्**=जब **ईम्**=निश्चय से **गृभीततातये**='ग्रहण किया है यज्ञ विस्तार को जिसने' उस पुरुष के लिये प्राप्त होते हो तो इस प्रकार उसके रोग व वासनारूप शत्रुओं का विनाश करनेवाले होते हो, **इव**=जैसे कि **द्रुहस्पदे**=द्रोह (हिंसा) के स्थानभूत अरण्य में **सिंहम्**=शेर को विनष्ट करते हैं। इस शरीररूप वन में काम-क्रोध आदि ही हिंस्रपशु हैं। इनका विनाश ये प्राणापान ही करते हैं।

भावार्थ—प्राणापान हमारे शरीरस्थ शत्रुओं का विनाश करके हमें उत्कृष्ट शरीररूप पुरवाला बनाते हैं। ऐसे बनकर हम सर्वहित में प्रवृत्त होते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

जीर्ण का पुनः युवा होना

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः। युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ ॥

(१) हे प्राणापानो! आप **च्यवानात्**=जिसकी शक्तियाँ च्युत होती जा रही हैं, अतएव **जुजुरुषः**=जो जीर्ण-शीर्ण-सा हो गया है, उस पुरुष से **वव्रिम्**=(रूप नाम नि० ३।७) उसके जीर्णरूप को **प्रमुञ्चथः**=मुक्त कर देते हो उसको जीर्णरूप से इस प्रकार पृथक् कर देते हो, **न**=जैसे कि **अत्कम्**=कवच को उतार देते हैं। प्राणसाधना के द्वारा एक वृद्ध पुरुष भी अपने जीर्णरूप को छोड़कर पुनः सुरूपता को प्राप्त करता है। (२) **यद्**=जब, **ई**=निश्चय से **पुनः**=फिर, इसे **युवा कृथः**=आप युवा कर देते हो, तो यह **वध्वः**=कार्यभार के वहन (वहतेः वधूः) की **कामम्**=इच्छा को **ऋण्वे**=प्राप्त करता है। प्राणसाधना से शक्तिशाली बनकर एक व्यक्ति कार्यभार को सहर्ष उठाने को उद्यत होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से वार्धक्य के चिह्न दूर होकर शक्ति की सुरूपता प्राप्त होती है और मनुष्य उत्साह के साथ कार्यभार को उठाने के लिये उद्यत होता है।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'शक्ति व श्री' की प्राप्ति

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये। नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥

(१) हे अश्विनौ! **हि**=निश्चय से **इह**=इस जीवन में **वाम्**=आपका ही सब कोई स्तोता **अस्ति**=स्तवन करनेवाला है। आपके स्तवन से ही सब उत्तमताएँ प्राप्त होती हैं। हम **वाम्**=आपके **सन्दृशि**=सन्दर्शन में **स्मसि**=हों। आपके सन्दर्शन में **श्रिये**=हम श्री की प्राप्ति के लिये हों। (२)

नु=अब **मे श्रुतम्**=मेरे आह्वान को आप **श्रुतम्**=सुनिये और **अवोभिः**=रक्षणों के साथ **आगतम्**=मुझे प्राप्त होइये। **वाजिनीवसू**=आप ही हमारे लिये शक्तिरूप धनवाले हैं (वाजिनम्=strength)। आप ने ही हमें शक्ति प्राप्त करानी है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शक्ति प्राप्त होती है, हमारा जीवन भी सम्पन्न बनता है।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**विराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

विप्रता व यज्ञशीलता

को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम्। को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू॥ ७॥

(१) **पुरूणाम्**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **मर्त्यानाम्**=मनुष्यों में **कः**=कोई विरला ही **अद्य**=आज **वाम्**=आपका **आवव्ने**=सर्वतः भजन करता है। प्राणसाधना की ओर विरले पुरुष प्रवृत्त होते हैं। (२) हे **विप्रवाहसा**=ज्ञानियों का धारण करनेवाले प्राणापानो! **कः विप्रः**=कोई विरला ही ज्ञानी पुरुष आपका उपासन करता है। हे **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनवाले प्राणापानो! **कः**=कोई विरला व्यक्ति ही **यज्ञैः**=यज्ञों के हेतु से आपका उपासन करता है। आपकी उपासना जीवन को यज्ञमय बनाती है।

भावार्थ—प्राणसाधना (१) हमारा पालन व पूरण करती है (पुरूणाम्), (२) यह हमें विप्र (ज्ञानी) बनाती है। (३) इससे हम यज्ञशील बनते हैं, 'प्रभु पूजन, परस्पर संगतिकरण व दान' की वृत्तिवाले होते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

(रथानां रथः) अश्विनी देवों का 'येष्ठ' रथ

आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना। पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा॥ ८॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आपका **येष्ठः**=उत्तम गमनवाला **रथानां रथः**=रथों में श्रेष्ठ रथ **आयातु**=हमें सर्वथा प्राप्त हो। प्राणसाधना द्वारा यह शरीर-रथ खूब गतिवाला बनकर हमें प्राप्त हो। (२) यह **अस्मयुः**=हमारे हित की कामनावाला 'येष्ठ' रथ **पुरू चित्**=बहुत भी शत्रुओं को **तिरः**=तिरस्कृत करनेवाला होता है और इसीलिए **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **आ**=सर्वतः **आंगूषः**=स्तुत्य होता है प्राणसाधना से यह शरीर-रथ ऐसा सुदृढ़ व गतिशील बनता है कि सब रोग व वासनारूप शत्रुओं का विनाश करनेवाला होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से यह शरीर-रथ 'येष्ठ'=गतिशील बनता है और (तिरः) शत्रुओं का तिरस्कर्ता होता है। अतएव यह अश्विनी देवों का रथ स्तुत्य होता है।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

मधूयुवा-विचेतसा

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः। अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम्॥ ९॥

(१) हे **मधूयुवा**=हमारे साथ माधुर्य का सम्पर्क करनेवाले प्राणापानो! **वाम्**=आपकी **चर्कृतिः**=पुनः-पुनः की जाती हुई स्तुति **अस्माकम्**=हमारे लिये **ऊ षु**=निश्चय से **शं अस्तु**=शान्ति को देनेवाली हो। हम जितना-जितना आपका स्तवन करें, उतना ही शान्ति को प्राप्त होनेवाले हों। (२) **विचेतसा**=विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त करानेवाले आप **अर्वाचीना**=हमें समीपता से प्राप्त होनेवाले होवो। **विभिः**=(वि=to rein) लगामों से (अभीशुभिः) **श्येना इव**=अत्यन्त शंसनीय गतिवाले होते हुए आप **दीयतम्**=हमें प्राप्त होवो प्राणसाधना द्वारा इन्द्रियाश्व लगामों से युक्त हो जाते हैं,

ये इन्द्रियाँ आत्मवश्य हो जाती हैं। इन आत्मवश्य इन्द्रियों से सब कार्य उत्तम ही होते हैं। इस प्रकार ये प्राणापान अत्यन्त शंसनीय गतिवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से (१) माधुर्य प्राप्त होता है, (२) शान्ति प्राप्त होती है, (३) हम विशिष्ट ज्ञानवाले बनते हैं, (४) शंसनीय गतिवाले होते हैं।

ऋषिः—**पौर आत्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्राणसाधना व वसुओं की प्राप्ति

अश्विना यद्ध कर्हिं चिच्छुश्रूयातमिमं हवम्।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः॥ १०॥

(१) **अश्विना**=हे प्राणापानो! **यद् ह**=यदि **कर्हिचित्**=किसी प्रकार आप **इमं हवम्**=इस मेरी पुकार को **शुश्रुयातम्**=सुन लो, तो **वाम्**=आपके **वस्वीः**=अत्यन्त प्रशस्य=निवास को उत्तम बनानेवाले, **भुजः**=पालन करनेवाले धन **उ**=निश्चय से **सु पृञ्चन्ति**=हमारे साथ उत्तम सम्पर्कवाले होते हैं। अर्थात् यदि हम प्राणसाधना कर पाते हैं तो हम उन वसुओं को, अध्यात्म धनों को प्राप्त करनेवाले होते हैं, जो हमारे जीवन को अतिप्रशस्त कर देते हैं। (२) ये धन हमें **वाम्**=आपके प्रति **सु पृचः**=उत्तम सम्पर्कवाला करते हैं। हम इन धनों की प्राप्ति के लिये आपकी ओर झुकते हैं। प्राणायाम में प्रवृत्त होना ही अश्विनी देवों की ओर झुकना है।

भावार्थ—जब हम प्राणसाधना की ओर झुकते हैं तो वे उत्कृष्ट धन हमें प्राप्त होते हैं जिनसे कि हमारा जीवन उत्तम बनता है और हम और अधिक इन प्राणापान की साधना में प्रवृत्त होते हैं।

प्राणसाधना द्वारा अपना रक्षण करनेवाला 'अवस्यु आत्रेय' अगले सूक्त का ऋषि है। वह कहता है कि—

७५. [पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'प्रियतम-वसुवाहन' रथ

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम्।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ १॥

(१) हे **अश्विनौ**=प्राणापानो! **स्तोता**=स्तवन करनेवाला **ऋषिः**=गतिमय जीवनवाला, स्तुति के अनुसार क्रिया को करनेवाला यह आपका साधक **वां रथम्**=आपके इस शरीररूप रथ को **स्तोमेन**=स्तुति-समूह से **प्रति भूषति**=अलंकृत करता है। उस रथ को जो **प्रति प्रियतमम्**=प्रतिदिन हमें प्रीणित करनेवाला है, स्वस्थ व सुदृढ़ होता हुआ प्रसन्नता का कारण बनता है। **वृषणम्**=शक्तिशाली है। **वसुवाहनम्**=उत्तम वसुओं का वहन (धारण) करनेवाला है। प्राणसाधना से यह शरीर-रथ 'प्रिय-सशक्त व वसुसंपन्न' बनता है। (२) हे **माध्वी**=मेरे जीवन को मधुर बनानेवाले प्राणापानो! **मम**=मेरी **हवम्**=पुकार को **श्रुतम्**=सुनिये। मैं प्राणसाधना करता हुआ शरीर को स्वस्थ सुदृढ़ व सुन्दर बनाकर प्रीति का अनुभव करूँ। ये प्राणापान मेरे जीवन को मधुर बनानेवाले हों।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर शक्तिशाली व वसु-सम्पन्न, उत्तम निवास के तत्त्वोंवाला बनता है। इस प्रकार ये प्राणापान हमारे जीवन को मधुर बनाते हैं।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दस्रा हिरण्यवर्तनी

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ २॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **अति आयातम्**=हमें आप अतिशयेन प्राप्त होइये। **अहम्**=मैं शत्रुओं को **सना**=सदा **तिरः**=तिरस्कृत करनेवाला होऊँ। (२) आप ही तो **दस्रा**=इन शत्रुओं का उपक्षय करनेवाले हैं। इनको नष्ट करके आप ही **हिरण्यवर्तनी**=हमारे जीवन के मार्ग को ज्योतिर्मय बनाते हैं। मार्ग को उत्तम बनाकर आप **सुषुम्ना**=उत्तम धनों व आनन्दों को प्राप्त कराते हैं और **सिन्धुवाहसा**=हमारे जीवन में ज्ञान समुद्र का वहन करनेवाले होते हैं। इस प्रकार **माध्वी**=मेरे जीवन को मधुर बनानेवाले प्राणापानो! आप **मम**=मेरी **हवम्**=पुकार को **श्रुतम्**=सुनो। मेरी आराधना सफल हो और प्राणसाधना करता हुआ मैं जीवन को मधुर बनाऊँ।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हम 'काम-क्रोध-लोभ' आदि सब शत्रुओं का तिरस्कार करें और जीवन को प्रशस्त व मधुर बनायें।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'रुद्रा वाजिनीवसू'

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम्।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ ३॥

(१) **नः**=हमारे लिये हे **अश्विना**=प्राणापानो! **रत्नानि**=रमणीय स्वास्थ्य आदि धनों को **बिभ्रतौ**=धारण करते हुए **युवम्**=आप दोनों **आगच्छतम्**=आओ। आपकी साधना से ही हमें 'स्वास्थ्य, निर्मलता व बुद्धि की तीव्रता' आदि रत्नों की प्राप्ति होती है। (२) आप **रुद्रा**=सब रोगों का द्रावण करनेवाले हो। **हिरण्यवर्तनी**=जीवन मार्ग को ज्योतिर्मय बनानेवाले हो। **जुषाणा**=प्रीतिपूर्वक सेवित होते हुए आप **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनवाले हो। आपकी आराधना से ही यह शक्तिरूप धन प्राप्त होता है। **माध्वी**=मेरे जीवन को मधुर बनानेवाले आप **मम हवं श्रुतम्**=मेरी पुकार को सुनो, मैं आपकी सदा आराधना करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना से सब रमणीय धन प्राप्त होते हैं। इससे रोग दूर होते हैं और शक्ति मिलती है।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ककुहः-मृगः-वापुषः

सुष्टुभो वां वृषणवसू रथे वाणीच्याहिता।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ ४॥

(१) हे **वृषणवसू**=वसुओं को जीवनधनों का वर्षण करनेवाले, प्राणापानो! **सुष्टुभः**=उत्तमता से स्तवन करनेवाले मेरी **वाणीची**=स्तुति वाणी **वां रथेः**=आपके इस शरीर-रथ में **आहिता**=स्थापित होती है। अर्थात् मैं आपका आराधन करता हूँ। आपने ही मुझे सब वसुओं को प्राप्त कराना है। आपके द्वारा ही यह शरीर-रथ सुन्दर बनता है। मेरी वाणी आपके गुणों का ही स्तवन करती है। (२) **उत**=और **वाम्**=आपका यह स्तोता **ककुहः**=उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होनेवाला बनता

है। **मृगः**=यह अपने गुण-दोषों का अन्वेषक होता है। **पृक्षः कृणोति**=हविरूप अन्नों को करनेवाला होता है, अर्थात् यज्ञशील बनता है। **वापुषः**=उत्तम शरीरवाला होता है। सो **माध्वी**=मेरे जीवन को मधुर बनानेवाले आप **मम**=मेरी **हवं श्रुतम्**=पुकार को सुनो। मैं आपका आराधक बनूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा सब वसुओं की प्राप्ति से यह शरीर-रथ उत्तम बनता है। हम श्रेष्ठ, आत्मान्वेषी, यज्ञशील व उत्तम शरीरवाले होते हैं।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

रथ्या-इषिरा

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **बोधिन्मनसा**=मन को ज्ञानयुक्त करते हो। **रथ्या**=शरीर-रथ के लिये हितकर हो। **इषिरा**=शीघ्रगतिवाले होते हुए, शरीर में स्फूर्ति को पैदा करते हुए **हवनश्रुता**=प्रभु की पुकार को सुननेवाले हो, आपकी आराधना से ही मन की निर्मलता होकर प्रभु प्रेरणा सुनाई पड़ती है। (२) **विभिः**=(to rein) आप इन्द्रियाश्वों के लिये लगामों से इस **च्यवानम्**=आपकी आराधना से पूर्व मार्ग विचलित होते हुए पुरुष को **नि याथः**=निश्चय से प्राप्त होते हो। आपकी आराधना उसे सब इन्द्रियाश्वों को लगामों द्वारा संयत करनेवाला बनाती है **अद्वयाविनम्**=माया व छल-कपट से रहित करती है। आपकी कृपा से ही वह अद्वयावी बनता है। **माध्वी**=इस प्रकार जीवन को मधुर बनानेवाले आप **मम हवं श्रुतम्**=मेरी पुकार को सुनो।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'ज्ञान, स्वस्थ शरीर व निर्मल प्रभु प्रेरणा को सुननेवाला मन' प्राप्त होता है। यह साधना हमें इन्द्रियाश्वों को रोकने में समर्थ करके निष्कपट जीवनवाला बनाती है।

ऋषिः—**अवस्युरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'संयत-दीप्त व शीघ्रगतिवाले' इन्द्रियाश्व

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥

(१) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आपको **अश्वासः**=ये इन्द्रियाश्व **पीतये**=सोम के पान के लिये **आवहन्तु**=प्राप्त करायें। जो इन्द्रियाश्व **मनोयुजः**=मन रूप लगाम से युक्त हैं, **प्रुषितप्सवः**=(प्रुषित=burning) दीप्तरूपवाले हैं तथा **वयः**=शीघ्र गतिवाले हैं। वस्तुतः प्राणसाधना ही इन इन्द्रियाश्वों को ऐसा बनाती है। प्राणसाधना से ये इन्द्रियाश्व 'संयत दीप्त व शीघ्र गतिवाले' बनते हैं। ऐसा होने पर ही शरीर में सोम का रक्षण होता है। (२) इस प्रकार हे प्राणापानो! आप **सुम्नेभिः सह**=प्रभु-स्तवनों के साथ **माध्वी**=मेरे जीवन को मधुर बनानेवाले हो। आप **मम हवं श्रुतम्**=मेरी पुकार को सुनो। मैं प्राणसाधना करता हुआ प्रभु का स्तोता व मधुर जीवनवाला बनूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना से इन्द्रियाँ 'संयत, दीप्त व शीघ्र गतिवाली' बनती हैं। प्राणसाधक प्रभु का स्तोता व मधुर जीवनवाला बनता है।

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

नासत्या-अदाभ्या

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ ७॥

(१) **अश्विनौ**=हे प्राणापानो! **इह**=इस हमारे जीवनयज्ञ में **आगच्छतम्**=आप आवो। हम सदा आपकी आराधना करें। हे **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! आप **मा विवेनतम्**=हमारे प्रति अपगत कामनावाले मत होवो। हम कभी भी प्राणसाधना से विमुख न हों। (२) **अर्यया** (अर्यौ सा०)=हमारे जीवन यज्ञ के स्वामी होते हुए आप **तिरः चित्**=दूर देश से भी **वर्तिः परियातम्**=हमारे शरीर-गृह को प्राप्त होवो। हम अन्य सब कार्यों को छोड़कर प्राणसाधना को अवश्य करें ही। **अदाभ्या**=आप हिंसित होनेवाले नहीं। आपकी साधना के होने पर शरीर रोगों से व मन वासनाओं से आक्रान्त व हिंसित नहीं हो पाता इस प्रकार हमारे जीवन को **माध्वी**=मधुर बनानेवाले आप **मम हवं श्रुतम्**=मेरी पुकार को सुनो। अर्थात् मैं सदा आपकी आराधना करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना को हम अवश्य करें ही। पर हमारे जीवन को 'असत्य से शून्य, रोगों व वासनाओं से अहिंसित तथा मधुर' बनायेगी।

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

शुभस्पती

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ ८॥

(१) **अस्मिन् यज्ञे**=इस जीवनयज्ञ में **अदाभ्या**=न हिंसित होनेवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **जरितारम्**=स्तोता को **अवस्युम्**=रक्षण की कामनावाले को तथा **गृणन्तम्**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले को **उप भूषथः**=समीपता से प्राप्त होते हो। आप **शुभस्पती**=(शुभस् beauty, radiance, happiness, victory, water, a brilliant chariot) शरीर के सौन्दर्य का कारण बनते हो, ज्ञान की दीप्ति को प्राप्त कराते हो, जीवन को आनन्दमय बनाते हो, रोगों व वासनाओं पर हमें विजय प्राप्त कराते हो। रेतःकण रूप जलों के रक्षक होते हो, शरीर-रथ को तेजस्विता से दीप्त करते हो। आपके द्वारा ही प्रभु स्तवन की वृत्ति, रोगों से रक्षण तथा ज्ञानरुचि प्राप्त होती है (जरितारं, अवस्युं, गृणन्तम्) (२) इस प्रकार **माध्वी**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाले आप **मम हवं श्रुतम्**=मेरी पुकार को सुनो। मैं सदा आपकी आराधना में प्रवृत्त होऊँ।

भावार्थ—प्राणापान हमारे जीवन में 'शुभस्पती' हैं। ये सब शुभों को हमें प्राप्त कराते हैं। इनको प्राप्त कराके वे हमारे जीवन को मधुर बनाते हैं।

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—विराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

ध्यान-यज्ञ-प्राणायाम

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः।
अयोजि वां वृषणवसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम्॥ ९॥

(१) **उषाः अभूत्**=उषा हुई है जिसमें **रुशत् पशुः**=(bright रुशत्, supreme

spirit पशु) आत्मतत्त्व की दीप्ति देखी गयी है। ध्यान के द्वारा इस उषा में प्रभु के दर्शन का प्रयत्न होता है। (२) वह **अग्निः**=यज्ञ की अग्नि **आ अधायि**=चारों ओर घरों में अग्निकुण्ड में स्थापित हुआ है, जो **ऋत्वियः**=ऋतुओं की अनुकूलता को जन्म देनेवाला है। सर्वत्र अग्निहोत्र होने से ऋतुओं का प्रादुर्भाव बड़ी अनुकूलता के साथ होता है। (३) हे **दस्त्रौ**=शत्रुओं का विनाश करनेवाले व **वृषण्वसू**=जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं (धनों) का वर्षण करनेवाले प्राणापानो! **वाम्**=आपका **रथः**=यह शरीर-रथ **अयोजि**=उत्तम इन्द्रियाश्वों से युक्त होता है और **अमर्त्यः**=यह रोगों का शिकार होकर असमय में नष्ट होनेवाला नहीं होता। इस प्रकार हम नियम से प्राणसाधना में प्रवृत्त होते हैं और हे प्राणापानो! आप **माध्वी**=हमारे जीवन को मधुर बनाते हो। **मम हवं श्रुतम्**=मेरी पुकार को आप सुनो।

भावार्थ—हम प्रतिदिन प्रातः 'ध्यान, यज्ञ व प्राणायाम' में प्रवृत्त हों। यही प्रभु दर्शन ऋतुओं की अनुकूलता व दुःखक्षय का मार्ग है।

सब दुःखों से ऊपर उठा हुआ 'अत्रि' (तीनों दुःखों से परे) अगले सूक्त में प्राणापान का आराधन करता है—

७६. [षट्सप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पीपिवांसं घर्ममच्छ

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ॥ १॥

(१) **उषसाम्**=उषाकालों का **अनीकम्**=मुखरूप, अर्थात् उषाओं में सर्वप्रथम प्रबुद्ध किया जानेवाला **अग्निः**=अग्नि **आभाति**=दीप्त होता है। उस समय **विप्राणाम्**=ज्ञानी पुरुषों की **देवयाः वाचः**=उस देव की ओर हमें ले जानेवाली वाणियाँ **उद् अस्थुः**=उत्थित होती हैं। अर्थात् ज्ञानी पुरुष अग्निहोत्र के लिये अग्नि को समिद्ध करते हैं और प्रभु के स्तवन के लिये ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हैं। (२) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **नूनम्**=निश्चय से **इह**=यहाँ **अर्वाञ्चा**=हमारे अभिमुख **यातम्**=प्राप्त होवो। **रथ्या**=आप इस शरीर-रथ को उत्तम बनानेवाले हो। आप हमें **पीपिवांसम्**=आप्यायित होती हुई **घर्मं अच्छ**=शक्ति की उष्णता की ओर ले चलते हो।

भावार्थ—हम प्रातः अग्निहोत्र करें, प्रभु का स्तवन करें और प्राणायाम में प्रवृत्त हों। यह प्राणायाम हमारी शक्ति का वर्धन करे और हमारे शरीर-रथ को उत्तम बनानेवाला हो।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शम्भविष्ठा

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा॥ २॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **संस्कृतम्**=शरीर, मन व बुद्धि के परिष्कार को **न प्रमिमीतः**=हिंसित नहीं करते हो **उपस्तुता**=स्तुत हुए-हुए आप **नूनम्**=निश्चय से **इह**=इस जीवन में **अन्ति गमिष्ठा**=समीपता से प्राप्त होते हो। **दिवा अभिपित्वे**=(अभिपतने) दिन के निकलते ही **अवसा**=रक्षण के हेतु से **आगमिष्ठा**=आप हमें प्राप्त होते हो। (२) हमें प्राप्त होकर आप **अवर्तिं प्रति**=सब दौभाग्यों पर (गमिष्ठा) आक्रमण करनेवाले होते हो। शरीरस्थ सब दौर्भाग्यों

को आप दूर करते हो। सब दौर्भाग्यों को दूर करके **दाशुषे**=दाश्वान् के लिये, आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिये आप **शंभविष्ठा**=अधिक से अधिक शान्ति को देनेवाले होते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से 'शरीर, मन व बुद्धि' का संस्कार ठीक बना रहता है। सब प्रकार के दौर्भाग्यों का दूरीकरण होकर शान्ति प्राप्त होती है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दिव्य गुणों का रक्षण

उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान॥ ३॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **उत**=निश्चय से **संगवे**=(संगच्छन्ते गावः दोहनभूमिम् यदा) सायं दोहन काल में, **अह्नः प्रातः**=दिन के प्रातःकाल में **मध्यन्दिने**=मध्याह्न में **सूर्यस्य उदिता**=सूर्योदय के समय आप **आयातम्**=हमें प्राप्त होवो। उल्लिखित चारों समयों में हम आपका आराधन करनेवाले बनें। (२) इनके अतिरिक्त **दिवानक्तम्**=दिन-रात **शन्तमेन अवसा**=अत्यन्त शान्ति को देनेवाले रक्षण के साथ आप हमें प्राप्त होवो। जब भी हमें सुविधा हो हम प्राणसाधना करनेवाले बनें और अपने जीवन में सुरक्षा व शान्ति को प्राप्त करें। हे प्राणापानो! **इदानीम्**=अब **पीतिः**=अन्य देवों का रक्षण आपके बिना **न ततान**=विस्तृत नहीं होता। प्राणसाधना के द्वारा ही सब देवों का रक्षण होता है।

भावार्थ—जब सुविधा हो हम प्राणायाम का अभ्यास करें। प्राणसाधना ही सुरक्षा व शान्ति का साधन है। इसी से सब दिव्य गुणों का रक्षण होता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ओकः-गृहाः-दुरोणम्

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम्।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता॥ ४॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **इदम्**=यह **हि**=निश्चय से **वाम्**=आपका **प्रदिवि स्थानम्**=प्रकृष्ट द्युलोक में, मस्तिष्करूप द्युलोक में जो स्थान है, वही **ओकः**=आपका समवाय स्थान है। **इमे गृहाः**=यह हमारा शरीर ही आपका घर है। **इदं दुरोणम्**=यही आपका दुरोण (गृह) है। इस शरीर में ही प्रभु से मेल इन प्राणापाणों के द्वारा होता है, सो यह 'ओक' है। यहीं दिव्य गुणों का संग्रह होता है, सो यह 'गृहाः' हैं। इन प्राणापान के द्वारा यहां से सब बुराइयों का अपनयन होता है सो यह दुरोण है (दुर् ओम=अपनयन) (२) हे प्राणापानो! आप **नः**=हमें **आयातम्**=प्राप्त होवो। **बृहतः दिवः**=वृद्धि के कारणभूत ज्ञान के हेतु से प्राप्त होवो तथा **पर्वतात्**=सब उत्तमताओं के पूरण के हेतु से प्राप्त होवो (पर्व पूरणे)। **अद्भ्यः**=रेतःकणरूप जलों के हेतु से तुम हमें प्राप्त होवो। प्राणसाधना से ही ज्ञानाग्नि दीप्त होती है, सब कमियाँ दूर होती हैं तथा रेतःकणों का रक्षण होता है। हे प्राणापानो! आप हमारे लिये **इषम्**=प्रेरणा को तथा **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **वहन्ता**=प्राप्त करानेवाले होवो। प्राणसाधना से निर्मल हृदय में हम प्रभु प्रेरणा को सुनते हैं और उस प्रेरणा को क्रिया में परिणत करने के लिये शक्ति को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से (१) इस शरीर में हम प्रभु से मेल को प्राप्त करते हैं। सो यह 'ओक' बनता है (उच समवाये)। (२) यहां हम गुणों का ग्रहण करते हैं। सो यह 'गृहाः'

कहलाता है। (३) तथा सब बुराइयों को दूर करके ये इसे 'दुरोण' बनाते हैं। (४) प्राणसाधना से ही 'ज्ञान, पूर्ति व सोमरक्षण' होता है।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

नूतन अवस्

सम॒श्विनो॒रव॑सा॒ नूत॑नेन मयो॒भुवा॑ सु॒प्रणी॑ती गमेम।
आ नो॑ र॒यिं व॑हत॒मोत वी॒राना विश्वा॑न्यमृ॒ता॒ सौभ॑गानि ॥ ५ ॥

(१) हम **अश्विनोः**=प्राणापान के **अवसा**=रक्षण से **सुप्रणीती**=उत्तम मार्ग पर चलने के द्वारा **संगमेम**=संगत हों। उस रक्षण से संगत हों, जो **नूतनेन**=अत्यन्त स्तुति के योग्य है (नु स्तुतौ) तथा **मयोभुवा**=कल्याण को पैदा करनेवाला है। (२) हे प्राणापानो! आप **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=धन को **आवहतम्**=प्राप्त कराओ। **उत**=और **वीरान् आ**=वीर सन्तानों को प्राप्त कराओ। **विश्वानि**=सब **अमृता**=नीरोगताओं को प्राप्त कराओ। इन नीरोगताओं के द्वारा **सौभगानि**=हमें सब सौभाग्यों के आप प्राप्त करानेवाले होवो।

भावार्थ—प्राणसाधना हमारा अद्भुत रक्षण करती है। यह हमें 'ऐश्वर्य, वीर सन्तानें व सब सौभाग्यों' के देनेवाली है।

'अत्रि' ऋषि ही कहता है—

७७. [सप्तसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्रातर्यावाणा प्रथमा

प्रा॒त॒र्यावा॑णा प्रथ॒मा य॑जध्वं पु॒रा गृध्रा॒दर॑रुषः पिबातः।
प्रा॒तर्हि य॒ज्ञम॒श्विना॑ द॒धाते॒ प्र शं॑सन्ति क॒वयः॑ पूर्व॒भाजः॑ ॥ १ ॥

(१) **प्रातर्यावाणा**=प्रातःकाल से ही गतिवाले **प्रथमा**=शक्तियों का विस्तार करनेवाले इन अश्विनी देवों का **यजध्वम्**=उपासन करो। प्राणापान हमें निरन्तर गतिशील बनाते हैं और हमारी शक्तियों का विस्तार करते हैं। **पुरा**=पूर्व इसके कि **गृध्रात्**=लोभ की वृत्ति और **अररुषः**=अपार (कृपणता) की वृत्ति **पिबातः**=हमारी शक्तियों को पी जायें, हम इन प्राणापान की आराधना करें। इनकी आराधना से ये लोभ व कृपणता की वृत्तियाँ हमारे में पनपेंगी ही नहीं। लोभ आदि वृत्तियों के अभाव में सोम का रक्षण सुगम होता है। (२) **अश्विना**=ये प्राणापान **प्रातः**=सवेरे-सवेरे ही **हि**=निश्चय से **यज्ञं दधाते**=यज्ञ का धारण करते हैं। प्राणसाधना से हमारी वृत्ति यज्ञिय बनती है। इन प्राणों के साथ टकराकर सब आसुरभाव चकनाचूर हो जाते हैं। इसीलिए **पूर्वभाजः**=पूर्वता के, पूरणता के उपासक **कवयः**=ज्ञानी लोग **प्रशंसन्ति**=इन प्राणापान का शंसन करते हैं। वस्तुतः इस प्राणसाधना के द्वारा ही वे अपना पूरण करते हैं और इसी से ज्ञानवृद्धि को भी प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना सब आसुरभावों को विनष्ट करके हमें सोमरक्षण के योग्य बनाती है। इससे हमारी वृत्ति यज्ञिय बनती है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रातः-सायं प्राणायाम व यज्ञ करना

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम्।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान्॥ २॥

(१) **प्रातः**=प्रातःकाल **अश्विना**=प्राणापान का **यजध्वम्**=उपासन करो तथा **हिनोत**=हवियों को भेजनेवाले होवो। अर्थात् प्रातः हम प्राणायाम व अग्निहोत्र अवश्य करें। **सायम्**=सायंकाल भी **देवयाः**=देवताओं के प्रति जानेवाली यह हवि **अजुष्टं न अस्ति**=असेवित नहीं होती। सायं भी हमें इसी प्रकार प्राणायाम व अग्निहोत्र करना है। पर प्रातः व सायं की साधना में प्रातः की साधना का महत्त्व अधिक है। (२) **उत**=और **अस्मत् अन्यः**=हमारे से भिन्न जो कोई भी **यजते**=इन प्राणापान का उपासन करता है, **च**=और **वि अवः**=विशेषरूप से देवों का प्रीणित करता है, हवि से तृप्त करता है, अर्थात् अग्निहोत्र आदि यज्ञों को करता है, तो **पूर्वः पूर्वः यजमानः**=पहला-पहला यज्ञशील व्यक्ति **वनीयान्**=सम्भजनीय व आदरणीय है। जो कोई भी हमारे से आयुष्य में बड़ा है और यज्ञशील है वह हमारे आदर का पात्र है ही। उसका आदर करते हुए हम यज्ञशीलता का आदर करते हैं और इस प्रकार यज्ञशील बनने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम प्रातः-सायं प्राणसाधना व यज्ञ करें। प्रातः प्राणसाधना को अधिक महत्त्व दें। यज्ञशील पुरुषों का आदर करें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मनोजवा वातरंहा

हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम्।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा॥ ३॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **वां रथः**=आपका यह शरीर रूप रथ **पृक्षः वहन्**=हविरूप अन्नों को धारण करता हुआ **आवर्तते**=चारों ओर गतिवाला होता है, अपने कर्त्तव्य कर्मों में प्रवृत्त होता है। यह **हिरण्यत्वक्**=सोने की तरह चमकती हुई त्वचावाला है, अर्थात् तेजस्विता से दीप्त है। **मधुवर्णः**=अत्यन्त मधुर वर्णवाला है, अर्थात् बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है। **घृतस्नुः**=दीप्ति को प्रस्नुत करनेवाला है, चमक ही चमक इससे टपकती है। (२) यह रथ **मनोजवाः**=मन के समान वेगवाला है, **वातरंहाः**=वायु के समान गतिवाला है। अर्थात् दृढ़ होता हुआ यह विचारशील व गतियुक्त है। 'मनोजवाः' विशेषण विचार का द्योतक है और 'वातरंहाः' गति का। यह रथ वह है **ये न**=जिससे **विश्वा दुरितानि**=सब दुरितों को आप **अतियाथः**=पार कर जाते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से यह शरीर-रथ तेजस्विता से चमकता हुआ अतिदृढ़, विचारशील व प्रभु के समान तीव्र गतियुक्त बनकर हमें सब दुरितों से पार ले जाता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राणायाम-सात्त्विक अन्न का सेवन

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात्॥ ४॥

(१) **यः**=जो **नासत्याभ्याम्**=इन प्राणापानों के लिये **भूयिष्ठम्**=अत्यधिक **विवेष**=व्याप्तिवाला

होता है, अर्थात् जो प्राणापान को साधना के लिये अधिकाधिक समय को देता है तथा **विभागे**=हविर्विभागवाले यज्ञादि कर्मों के होने पर **पित्वः चनिष्ठम्**=अन्नों में उत्तम अन्नों को इनके लिये **ररते**=देता है। अर्थात् यज्ञशेष के रूप में सात्त्विक अन्नों का सेवन करता है। **सः**=वह व्यक्ति **अस्य तोकम्**=इस अपने शरीरस्थ की वृद्धि को **पीपरत्**=पालित करता है। अर्थात् प्राणायाम व यज्ञशिष्ट सात्त्विक अन्न के सेवन से उसका यह शरीर सब दृष्टियों से उन्नत ही उन्नत होता है। (२) यह प्राणसाधक पुरुष **शमीभिः**=शान्त भाव से किये जानेवाले कर्मों से **अनूर्ध्वभासः**= अतेजस्विताओं को (न ऊर्ध्व भास्) अथवा अयज्ञिय भावनाओं को जिनमें यज्ञाग्नि का प्रज्वलन नहीं होता, उन वृत्तियों को **सदं इत्**=सदा ही **तुतुर्यात्**=विनष्ट करता है, अर्थात् यह तेजस्वी व यज्ञशील बनता है।

भावार्थ—प्राणायाम करने व सात्त्विक यज्ञशिष्ट अन्न के सेवन से यह शरीर वृद्धि को प्राप्त करता है। हम तेजस्वी व यज्ञशील बनते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अमृत-सौभग

सम॒श्विनो॒रव॑सा॒ नूत॑नेन मयो॒भुवा॑ सु॒प्रणी॑ती गमेम।
आ नो॑ र॒यिं व॑हत॒मोत वी॒राना विश्वा॑न्यमृता॒ सौभ॑गानि॥ ५॥

(१) मन्त्र व्याख्या ७६.५ पर द्रष्टव्य है।

'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सातों को वश में करनेवाला 'सप्तवध्रि' प्राणापान की आराधना करता हुआ कहता है—

७८. [अष्टसप्ततितमं सूक्तम्]

ऋषिः—सप्तवध्रिरात्रेयः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

हंसौ इव

अश्वि॑ना॒वेह ग॑च्छतं॒ नास॑त्या॒ मा वि वे॑नतम्। हं॒सावि॑व पतत॒मा सु॒ताँ उप॑॥ १॥

(१) **अश्विनौ**=हे प्राणापानो! **इह**=यहाँ हमारे जीवन में **आगच्छतम्**=तुम आओ। हम सदा आपकी आराधना करनेवाले हों। हे **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! आप **मा विवेनतम्**=अपगत कामनावाले मत होवो। हमारे प्रति आपका प्रेम बना रहे। हमें सदा प्राणायाम की रुचि प्राप्त हो। (२) हे प्राणापानो! **हंसौ इव**=हंसों की तरह **सुतान् उप**=उत्पन्न हुए-हुए सोमों के प्रति **आपततम्**=तुम सर्वथा प्राप्त होवो। 'हन्ति पापमानं इति हंसः' पाप को नष्ट करनेवाला 'हंस' है। ये प्राणापान हंस हैं। पापों को नष्ट करनेवाले हैं। वासनाओं को विनष्ट करके, सब असत्यों को दूर करके आप शरीर में उत्पन्न सोमों का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—हम सदा प्राणायाम की रुचिवाले हों। ये प्राणापान सब असत्यों व पापों को दूर करके शरीर में सोमों का रक्षण करनेवाले हों।

ऋषिः—**सप्तवध्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

हरिणौ इव, गौरौ इव

अश्वि॑ना हरि॒णावि॑व गौ॒रावि॒वानु॒ यव॑सम्। हं॒सावि॑व पतत॒मा सु॒ताँ उप॑॥ २॥

(१) **अश्विना**=हे प्राणापानो! **हरिणौ इव**=आप हरिणों की तरह हो, सब दुःखों का हरण

करने के कारण (हरति) 'हरिण' हो। **गौरौ इव**=आप गौर मृगों की तरह हो (गुहते उद्युङ्क्ते) शरीर में सब उद्योगों को करनेवाले हो जैसे वे हरिण और गौर **यवसं अनु**=घास के प्रति जाते हैं उसी प्रकार आप शरीर में **सुतान् उप**=उत्पन्न इन सोमों के प्रति प्राप्त होवो। (२) आप **हंसौ इव**=(हन्तिपाप्मानम्) पापों को नष्ट करनेवाले के समान 'हंस' बनकर **सुतान् उप आपततम्**=इन उत्पन्न सोमों के प्रति प्राप्त होवो। इन प्राणापान के द्वारा ही शरीर में सोमकणों की ऊर्ध्वगति होती है।

भावार्थ—प्राणापान 'हरिण' हैं, दुःखों का हरण करनेवाले हैं। ये 'गौर' हैं, शरीर में सब उद्योगों का कारण बनते हैं। 'हंस' हैं, सब पापों को नष्ट करते हैं। प्राणापान और व हरिण हैं। ये जैसे घास के प्रति जाते हैं, उसी प्रकार प्राणापान सोमकणों के प्रति।

ऋषिः—**सप्तवध्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

वाजिनीवसू

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये। हंसाविव पततमा सुताँ उप॥ ३॥

(१) **अश्विना**=हे प्राणापानो! आप **वाजिनीवसू**=शक्तिरूप धनवाले हो, आप ही सब अंग-प्रत्यंगों को शक्ति देते हो। आप **यज्ञं जुषेथाम्**=हमारे जीवनयज्ञ का सेवन करते हो और **इष्टये**=सब इष्टों की प्राप्ति के लिये होते हो। प्राणसाधना से जीवन में सब अभीष्ट तत्त्वों की प्राप्ति होती है। (२) हे प्राणापानो! आप **हंसौ इव**=पापों को नष्ट करनेवालों की तरह **सुतान् उप**=उत्पन्न सोमकणों के प्रति **आपततम्**=सर्वथा प्राप्त होते हो वस्तुतः प्राणापान ही वासनाओं के विनष्ट करके सोमकणों का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्राणापान ही हमें शक्तिरूप धन को प्राप्त कराते हैं। इन्हीं से जीवनयज्ञ सब इष्ट प्राप्ति करानेवाला बनता है। ये प्राणापान ही सोमकणों का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**सप्तवध्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अन्धकार गर्त से ऊपर

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन॥ ४॥

(१) **ऋबीसम्**=(अपगतभासम्) अन्धकारमय गर्त में **अवरोहन्**=उतरता हुआ **अत्रिः**=(अद्यते त्रिभिः) काम-क्रोध-लोभ से खाया जाता हुआ **यद्**=जब कभी ठोकर लगने पर चेतना में आता है और **वाम्**=हे प्राणापानो! आप दोनों को, **नाधमाना योषा इव**=याचना करती हुई स्त्री की तरह, अर्थात् अत्यन्त नम्र भाव से **अजोहवीत्**=पुकारता है। मनुष्य संसार में विषयों में फँसने पर अधिक और अधिक अन्धकारमय गर्त में पहुँचता जाता है। कभी जरा चेतता है, तो अपनी दुर्गति से दुःखी होकर उस दीन अवस्था में प्राणापान को रक्षण के लिये पुकारता है। (२) पुकारे जाने पर हे **अश्विना**=प्राणापानो! आप **श्येनस्य**=शंसनीय गतिवाले बाज के **चित्**=निश्चय से **जवसा**=वेग से **अगच्छतम्**=उसे प्राप्त होते हो। यह आपका वेग उस अत्रि के लिये **नूतनेन**=नवीन जीवन का कारण बनता है तथा **शन्तमेन**=उसे अधिक से अधिक शान्ति प्राप्त कराता है। इस प्राणसाधना से काम-क्रोध आदि इस प्रकार नष्ट किये जाते हैं, जैसे कि चिड़ियाँ बाज से। अब यह प्राणसाधना करता हुआ अत्रि 'अद्यते त्रिभिः' न रहकर 'अविद्यमानाः त्रयो यस्य' हो जाता है। यह काम-क्रोध-लोभ से पीड़ित नहीं होता, इसके जीवन से काम-क्रोध-लोभ का विलोप हो जाता है। परिणामतः

यह अद्भुत शान्ति का अनुभव करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से अन्धकार गर्त में पड़ा हुआ व्यक्ति भी ऊपर उठता है और नवीन शान्त जीवन को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**सप्तवध्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सप्तवध्रि' बनना

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्याइव। श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्॥ ५॥

(१) **इव**=जैसे **सूष्यन्त्याः**=बच्चे को जन्म देनेवाली युवति की **योनिः**=जननाङ्ग प्रदेश विवृत होता है, उसी प्रकार हे **वनस्पते**=ज्ञानरश्मियों के स्वामिन्! आप **विजिहीष्व**=हमारे लिये विवृत होइये। जैसे वह जननाङ्ग एक बालक को जन्म देती है, इसी प्रकार आप हमारे लिये ज्ञानरश्मियों को प्रकट करिये। इन ज्ञानरश्मियों के अनुसार हम कार्यों को करनेवाले बनें। यह सब प्राणसाधना के द्वारा ही तो होता है। सो प्राणापान से प्रार्थना करता हुआ सप्तवध्रि कहता है कि—(२) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **मे हवं श्रुतम्**=मेरी पुकार को सुनो। मैं सदा आपकी साधना में प्रवृत्त होऊँ। **च**=और मुझ **सप्तवध्रिम्**=दो कानों, दो नासिका-छिद्रों, दो आँखों व मुख को वशीभूत करनेवाले को आप **मुञ्चतम्**=विषयों के बन्धन से मुक्त करो। प्राणसाधना के द्वारा ही वस्तुतः हम सप्तवध्रि बनकर इन्द्रियों की दासता से मुक्त होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा हम इन्द्रियों को वश में करेंगे तो हमारे लिये आचार्य की ज्ञानरश्मियों का द्वार खुल जायेगा।

ऋषिः—**सप्तवध्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु के भयवाला जीवन

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये। मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः॥ ६॥

(१) हे **अश्विना**=प्राणापानो! **युवम्**=आप **मायाभिः**=प्रज्ञानों के साथ **वृक्षम्**=इस मेरे 'ऊर्ध्वमूल अधशाख अश्वत्थ' (पीपल) वृक्ष को, अर्थात् शरीर को **सं अचथः**=सम्यक् प्राप्त होते हैं, **च**=और **वि अचथः**=विविध अंग-प्रत्यंगों में प्राप्त होते हो। प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में सर्वत्र प्राणापान की ठीक गति होती है। और ये प्राणापान हमें प्रज्ञानों को प्राप्त कराते हैं। (२) उस मेरे लिये प्रज्ञानों को प्राप्त कराते हैं, जो मैं **भीताय**=प्रभु की उपस्थिति को अनुभव करता हुआ पापों से भयभीत रहता हूँ। **नाधमानाय**=जो मैं सदा प्रभु से याचना करनेवाला बनता हूँ। **ऋषये**=(ऋष गतौ) गतिशील होता हूँ और **सप्तवध्रये**=सातों इन्द्रियों को (दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँख, मुख) वशीभूत करता हूँ।

भावार्थ—जब प्राणापान हमारे शरीर वृक्षों में सर्वत्र सम्यक् गतिवाले होते हैं, तो हमें प्रज्ञान प्राप्त होता है। हमारा जीवन 'प्रभु से भयवाला, प्रार्थनामय, गतिशील व जितेन्द्रियतावाला' बनता है।

ऋषिः—**सप्तवध्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राणसाधना से सहज सन्तानोत्पत्ति

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः। एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः॥ ७॥

(१) **यथा**=जैसे **वातः**=वायु **पुष्करिणीम्**=कमलोंवाले तालाब को **सर्वतः**=सब ओर से **समिङ्गयति**=गतिवाला करता है। **एवा**=इसी प्रकार **ते गर्भः**=तेरा गर्भ **एजतु**=कम्पित हो और

दशमास्यः=दस मास के आयुष्यवाला यह बालक **निरैतु**=गर्भ से बाहर आ जाये। (२) एक युवति यदि प्राणसाधना में चलती है तो उसे सन्तान को जन्म देने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। प्राणसाधना उसके जननाङ्गों के समुचित विकास को करनेवाली बनती है। गर्भस्थ बालक का पोषण भी इस प्राणसाधना से ठीक रूप में होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से गर्भिणी के गर्भ का कम्प इस रूप में होता है जैसे कि वायु से पुष्करिणी के जलस्थ कमलों का। इस बालक के जन्म देने में माता को कष्ट नहीं होता।

ऋषिः—**सप्तवध्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वातः वनं समुद्रः

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति। एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥

(१) **यथा वातः**=जैसे वायु स्वाभाविक गतिवाली होती है, **यथा वनम्**=जैसे वायु के चलने पर वन गतिवाला होता है और **यथा समुद्रः एजति**=जैसे समुद्र कम्पित हो उठता है। **एवा**=इस प्रकार, हे **दशमास्य**=गर्भ में दस मास तक शान्तभाव से रह चुके कुमार! **त्वम्**=तू **जरायुणा सह**=गर्भ वेष्टन जेर के साथ **आ इहि**=बाहिर आजा (२) वायु, वन व समुद्र जैसे स्वाभाविक गति में होते हैं, इसी प्रकार गर्भस्थ बालक स्वाभाविक गति से बाहिर आनेवाला हो।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर गर्भस्थ बालक में समय पर स्वाभाविक गति होकर बाहिर आने की प्रवृत्ति होती है।

ऋषिः—**सप्तवध्रिरात्रेयः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जीवः-जीवन्त्याः

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि। निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥

(१) **कुमारः**=कुमार **दश मासान्**=दस महीनों तक **मातरि अधि**=मातृ गर्भ में **शशयानः**=अच्छी प्रकार प्रसुप्त-सी अवस्था में रहता हुआ **जीवः**=जीवन को धारण करनेवाला **निरैतु**=ना हि आनेवाला हो। मातृ गर्भ में सम्यक् पोषित होकर यह जीवन को बिताने के लिये बाहिर आये। (२) यह **अक्षतः**=अविक्षत अंग-प्रत्यंगोंवाला हो। **जीवः**=जीवनी शक्ति से परिपूर्ण हो। **जीवन्त्याः अधि**=जीवित माता से ही यह बाहिर आये बालक भी जीवित हो, उसकी माता भी।

भावार्थ—प्राणसाधना से गर्भस्थ बालक के सब अंग-प्रत्यंग अविक्षत होते हैं तथा माता भी कष्टों से मृत नहीं होती।

इस प्राणसाधना से उत्तम कर्मोंवाला यह 'सत्यश्रवाः' बनता है—'सत्यानि श्रवांसि यस्य' (praiseworthy actions) यह तीनों प्रकार के कष्टों से दूर 'आत्रेय' बनता है। यह उषाकाल से ही उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होने की कामना रखता हुआ कहता है—

७९. [एकोनशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**स्वराड्ब्राह्मीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥

(१) हे **उषः**=उषाकाल की देवते! **नः**=हमें **अद्य**=आज **महे राये**=महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये **बोधय**=उद्बुद्ध कर। वस्तुतः प्रातः जागरण सात्त्विक वृत्ति को उत्पन्न करके हमारे शरीर में नीरोगिता व मन को प्रकाशमय करता है। एवं उषा हमें 'स्वास्थ्य व ज्ञान' रूप ऐश्वर्यों को देनेवाली है। (२) हे उषः! तू **दिवित्मती**=प्रकाशवाली है। तू **सत्यश्रवसि**=सत्य कीर्तिवाले, सच्चे कीर्तिकर कर्मों में प्रेरित होनेवाले **वाय्ये**=कर्मतन्तु का सन्तान (विस्तार) करनेवालें **सुजाते**=उत्तम निवासवाले **अश्वसूनृते**=(अशूव्याप्तौ) कर्मों में व्याप्त सत्य वाणीवाले मेरे में उषः! तू ऐसा कर **यथा**=जिससे **चित्**=निश्चयपूर्वक **नः**=हमें **अबोधयः**=जागरित कर। उषःकाल का जागरण ही हमें उत्कृष्ट ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—हम उषाकाल में जागें। यह जागरण हमें सात्त्विक वृत्तिवाला बनाकर नीरोगिता व ज्ञान के ऐश्वर्य को प्राप्त करायेगा।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

उषा जागरण का जीवन पर सुन्दर प्रभाव

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥

(१) हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का पूरण करनेवाली उषे! **या**=जो तू **सुनीथे**=उत्तम वाणीवाले (नीथा=वाणी) उत्तम ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करनेवाले में तथा **शौचद्रथे**=शरीर रथ को शुचि (पवित्र) बनानेवाले में **व्यौच्छः**=अन्धकार को दूर करती है। **सा**=वह तू **सहीयसि**=शत्रुओं का सहन (मर्षण=अभिभव) करनेवाले मुझ में **व्युच्छ**=उदित हो, अन्धकार को दूर करनेवाली हो। (२) हे उषः! तू **सत्यश्रवसि**=सत्य कीर्तिकर कर्मों को करनेवाले, **वाय्ये**=कर्मतन्तु का सन्तान करनेवाले, **सुजाते**=उत्तम विकासवाले, **अश्वसूनृते**=कर्मों में व्याप्त प्रिय सत्य वाणीवाले मुझ में उदित हो। अर्थात् तू मेरे जीवन को ऐसा बनानेवाली हो।

भावार्थ—उषाकाल में जागने से हम 'सुनीथ, शौचद्रथ, सहीयान्, सत्यश्रवा, वाय्य, सुजात व अश्वसूनृत' बनते हैं।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

आभरद्वसुः

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

(१) हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का (प्रकाश का) प्रपूरण करनेवाली उषे! तू **आभरद्वसुः**=सब वसुओं का भरण करनेवाली है, जीवन के लिये आवश्यक तत्त्वों से परिपूर्ण है। **सा**=वह तू **नः**=हमारे लिये **अद्य**=आज **व्युच्छा**=अन्धकार को दूर करनेवाली हो। (२) तू वह है **या उ**=जो निश्चय से **सहीयसि**=शत्रुओं को कुचलनेवाले, **सत्यश्रवसि**=सत्य कीर्तियुक्त कर्मोंवाले, **वाय्ये**=कर्मतन्तु का विस्तार करनेवाले, **सुजाते**=उत्तम विकासवाले, **अश्वसूनृते**=कर्मों में व्याप्त सूनृत वाणीवाले पुरुष में **व्यौच्छः**=सदा उदित हुई है, अन्धकार को दूर करनेवाली हुई है। वस्तुतः तूने ही उसे 'सहीयान्' इत्यादि सार्थक नामोंवाला बनाया है।

भावार्थ—उषा सब वसुओं का भरण करनेवाली है। यह हमें शत्रुमर्षण आदि कार्यों में समर्थ करती है।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

धन-आत्मनियन्त्रण व दान

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४ ॥

(१) हे **विभावरि**=प्रकाशवाली उषे! **ये**=जो भी व्यक्ति **त्वा अभि**=तेरा लक्ष्य करके **स्तोमैः**=स्तुतियों से **गृणन्ति**=तेरे गुणों का उच्चारण करते हैं, तेरे महत्त्व का शंसनत्व स्मरण करते हैं वे **वह्नयः**=अपने कर्त्तव्यभार का सुन्दरता से वहन करनेवाले होते हैं। प्रातःकाल में उठनेवाला व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों को सुचारुरूपेण कर पाता है। (२) हे **मघैर्मघोनि**=उत्तम ऐश्वर्यों से ऐश्वर्यवाली उषे! **सुजाते**=उत्तम विकास को देनेवाली व **अश्वसूनृते**=कर्मों में व्याप्त प्रिय सत्य वाणीवाली उषे, अर्थात् हमें ऐसा बनानेवाली उषे! वे तेरा शंसन करनेवाले उषर्बुध लोग **सुश्रियः**=उत्तम श्रीवाले होते हैं **दामन्वन्तः**=दान की वृत्तिवाले होते हैं अथवा (दाम=रज्जु) आत्म-नियन्त्रण की वृत्तिवाले होते हैं और **सुरातयः**=उत्तम दानवाले होते हैं। धन के साथ आत्मनियन्त्रण होने पर दानवृत्ति पनपाती ही है।

भावार्थ—प्रातः जागरण हमें कर्त्तव्यभार का वहन करनेवाला 'धन, आत्मनियन्त्रण व दान की वृत्तिवाला' बनाता है।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अलज्जाकर धन' और 'दान'

यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥ ५ ॥

(१) हे **सुजाते**=हमारा उत्तम विकास करनेवाली **अश्वसूनृते**=कर्मों में व्याप्त प्रिय सत्यवाणी-वाली, हमें ऐसा बनानेवाली उषे! **ते इमे गणाः**=तेरा ये संख्यान करनेवाले, अर्थात् तेरे सेवक, तेरे उदय से पूर्व ही जागरित होनेवाले **यत् चित् हि**=जो कुछ भी **छदयन्ति**=(to cover) अपने अन्दर धारण करते हैं वह सब **मघत्तये**=धन के दान के लिये ही करते हैं। ये **वष्टयः**=सर्वहित की कामनावाले **चित्**=निश्चय से **परिदधुः**=धनों को सब ओर धारण करते हैं, लोकहित के लिये उन धनों का विनियोग करते हैं। (२) ये व्यक्ति सदा **अह्रयम्**=अलज्जावह, अर्थात् न लज्जा के कारणभूत उत्तम साधनों से कमाये हुए **राधः**=धन को **ददतः**=देते हुए होते हैं, इनकी यह दान प्रक्रिया निरन्तर चलती ही है।

भावार्थ—प्रातः जागरणवाले उत्तम मार्गों से धनों को कमाते हैं और दानशील होते हैं।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दान व वीर सन्तान

एषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६ ॥

(१) हे **मघोनि**=ऐश्वर्योंवाली **उषः**=उषे! **एषु**=इन प्रातः जागरणशील ज्ञानी व्यक्तियों में **वीरवत्**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले **यशः**=यशस्वी धन को **आ धाः**=स्थापित कर। (२) हे **सुजाते**=उत्तम विकास की कारणभूत **अश्वसूनृते**=कर्मों में व्याप्त प्रिय सत्यवाणीवाला हमें बनानेवाली

उषे! **नः**=हमारे में से **ये**=जो भी व्यक्ति **अह्रया**=अक्षीयमाण **राधांसि**=धनों को **अरासत**=देते हैं, अर्थात् सदा दानशील होते हैं वे ही **मघवानः**=ऐश्वर्यशाली बनते हैं। इनके ऐश्वर्य दानादि उत्तम कर्मों में विनियुक्त होते हुए इनके जीवनों में विलास को नहीं उत्पन्न होने देते।

भावार्थ—हम प्रातः जागें। उत्तम ऐश्वर्यों को कमाते हुए दानशील हों वीर सन्तानों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

द्युम्न-बृहद् यशः

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७ ॥

(१) हे **मघोनी**=ऐश्वर्यशालिनी **उषः**=उषे! तू **तेभ्यः**=उनके लिये **द्युम्नम्**=(power, strength) शक्ति को और **बृहद्**=अत्यन्त प्रवृद्ध **यशः**=कीर्ति को **आवह**=प्राप्त करा। **ये**=जो **नः**=हमारे में से **सूरयः**=ज्ञानी लोग **अश्व्या**=कर्मेन्द्रिय-सम्बन्धी तथा **गव्या**=ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी **राधांसि**=सफलता को देनेवाले धनों को **भजन्त**=सेवित करते हैं। जो ज्ञानेन्द्रियों के ऐश्वर्य 'ज्ञान' को तथा कर्मेन्द्रियों के ऐश्वर्य 'कर्मशक्ति' को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होते हैं, उनके लिये यह उषा शक्ति व कीर्ति को देनेवाली होती है। (२) हे उषः! तू **सुजाते**=उत्तम प्रादुर्भाववाली है, उत्तम विकास का कारण बनती है। **अश्वसूनृते**=तू कर्मों में व्याप्त होनेवाली सत्यवाणीवाली है। उषाकाल में जागनेवाला व्यक्ति कर्मों में व्याप्त रहता है और सूनृत वाणी को बोलनेवाला होता है।

भावार्थ—उषा जागरण शक्ति व कीर्ति का कारण बनता है।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सूर्योदयकाल में व अग्नीन्धनकाल में

उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८ ॥

(१) हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का पूरण करनेवाली उषे! **उत**=और **नः**=हमारे लिये **गोमतीः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **आवहा**=प्राप्त करा। उषा जागरण ज्ञानवृद्धि व प्रभु प्रेरणा प्राप्ति में सहायक होता है। (२) हे **सुजाते**=उत्तम विकास की कारणभूत, **अश्वसूनृते**=कर्मों में व्याप्त सूनृत वाणीवाली उषे! तू **सूर्यस्य रश्मिभिः साकम्**=सूर्य की किरणों के साथ तथा **शुक्रैः**=दीप्त **शोचद्भिः**=पवित्रता को करनेवाली **अर्चिभि**=अग्नि की ज्वालाओं के साथ हमें इन प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाली प्रभु प्रेरणाओं को प्राप्त करानेवाली हो। यहाँ 'सूर्य रश्मियों के साथ' का संकेत 'सूर्याभिमुख होकर ध्यान में बैठने से' है, तथा 'अग्नि की ज्वालाओं के साथ' का संकेत 'अग्निहोत्र करने से' है। एवं 'उषा जागरण, सूर्याभिमुख होकर सन्ध्या व अग्निहोत्र' ये तीन बातें ज्ञानयुक्त प्रेरणाओं की प्राप्ति का साधन बनती हैं।

भावार्थ—हम उषा में प्रबुद्ध होकर, नित्य कार्यों से निवृत्त होकर, सूर्योदय होते ही सन्ध्या में स्थित हों तथा अग्निहोत्र करनेवाले बनें। यह जीवन हमें ज्ञान प्रवण करेगा और प्रभु प्रेरणा को सुनने योग्य बनायेगा।

ऋषिः—सत्यश्रवा आत्रेयः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

उषा व नित्यकर्म निवृत्ति (Completion)

व्यु॑च्छा दुहितर्दिवो॒ मा चि॒रं त॑नुथा॒ अपः॑ ।
नेत्त्वा॑ स्ते॒नं यथा॑ रि॒पुं तपा॑ति॒ सूरो॑ अ॒र्चिषा॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥ ९ ॥

(१) हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का हमारे जीवनों में पूरण करनेवाली उषे! **व्युच्छा**=तू अन्धकार को दूर करनेवाली हो। **अपः**=हमारे कर्मों का लक्ष्य करके **चिरं मा तनुथाः**=देर को मत कर, अर्थात् तेरे उदित होते ही हम अपने नित्य कर्मों में प्रवृत्त हो जाएँ। **नेत् त्वा**=नहीं ही तुझे **सूरः**=सूर्य **अर्चिषा**=अपनी दीप्त किरण ज्वालाओं से उसी प्रकार **तपाति**=संतप्त करता है **यथा**=जैसे कि **स्तेनं रिपुम्**=चोररूप शत्रु को। सूर्य की किरणों के दीप्त होने पर चोर भी अपने कार्य करने में असमर्थता के कारण व पकड़े जाने के भय से सन्तप्त होता है, इसी प्रकार ये सूर्य किरणें उषा को भी समाप्त कर देती हैं। हम उषा की समाप्ति से पूर्व ही अपने कार्यों को समुचितरूप से कर चुकें। (२) हे उषे! **सुजाते**=तू सुजाता है, उत्तम विकास का कारण बनती है। तेरे में उद्बुद्ध होनेवाले व्यक्ति विकसित शक्तियोंवाले बनते हैं। **अश्वसूनृते**=तू अश्वसूनृता है, कर्मों में व्याप्त सत्य वाणीवाली है। तेरे में उद्बुद्ध होनेवाले व्यक्ति सदा कर्मों में व्याप्त रहते हैं और प्रिय सत्य वाणी का प्रयोग करते हैं।

भावार्थ—उषा उदित होते ही हम सूर्योदय से पूर्व ही नित्यकर्मों से निवृत्त हो जाएँ।

ऋषिः—सत्यश्रवा आत्रेयः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—स्वराड्बृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

विभावरी

ए॒ताव॒द्वेदु॑ष॒स्त्वं भूयो॑ वा॒ दातु॑मर्हसि ।
या स्तो॒तृभ्यो॑ विभावर्यु॒च्छन्ती॒ न प्र॒मीय॑से॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥ १० ॥

(१) हे **उषः**=उषे! **त्वम्**=तू **एतावत् वा इत्**=गतमन्त्रों में प्रार्थित इतनी वस्तुओं के तो अवश्य ही **दातुम्**=देने के लिये **अर्हसि**=योग्य है। **भूयः वा**=प्रार्थित वस्तुओं से अधिक अप्रार्थित भी आवश्यक वस्तुओं को तू हमें देनेवाली हो। (२) जो तू **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये **विभावरी**=प्रकाश को प्राप्त करानेवाली **उच्छन्ती**=अन्धकार को दूर करती हुई **न प्रमीयसे**=हिंसित नहीं करती। प्रकाश को देकर तू हमें हिंसित होने से बचाती है। हे उषः! **सुजाते**=तू सुजाता है, उत्तम विकास का कारण बनती है। **अश्वसूनृते**=तू अश्वसूनृता है, हमें कर्मों में व्याप्त सत्य वाणीवाला बनाती है।

भावार्थ—उषा प्रकाश को देकर हमें हिंसित होने से बचाती है। यह सब इष्ट मनोरथों को पूर्ण करती है।

सत्यश्रवा आत्रेय ही अगले सूक्त में भी उषा का आराधन करता है—

८०. [अशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—सत्यश्रवा आत्रेयः ॥ देवता—उषाः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सत्य-तेजस्विता-प्रकाश

द्यु॒तद्या॑मानं बृह॒तीमृ॒तेन॑ ऋ॒ताव॑रीमरु॒णप्सुं॑ वि॒भा॒तीम् ।
दे॒वीमु॒षसं॒ स्व॑रा॒वह॑न्तीं॒ प्रति॒ विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्जरन्ते ॥ १ ॥

(१) **विप्रासः**=अपने जीवन का विशेषरूप से पूरण करनेवाले ज्ञानी पुरुष **मतिभिः**=मननपूर्वक की गई स्तुतियों से **स्वः आवहन्तीम्**=प्रकाश को प्राप्त कराती हुई, **देवीम्**=दिव्यगुणों को जन्म देनेवाली **उषसम्**=उषा को **प्रतिजरन्ते**=प्रतिदिन स्तुत करते हैं। प्रातः प्रबुद्ध होकर किया जानेवाला प्रभुलवन हमें प्रकाश व दिव्यगुणों को प्राप्त कराता है। (२) ये विप्र उस उषा का स्तवन करते हैं जो **द्युतद् यामानम्**=देदीप्यमान रथवाली है, **बृहतीम्**=वृद्धि का कारण बनती है, **ऋतेन ऋतावरीम्**=यज्ञादि उत्तम कर्मों से जीवन को ऋतमय बनानेवाली है, **अरुणप्सुम्**=तेजस्वीरूपवाली है और **विभातीम्**=प्रकाशमयी है। यह उषा हमारे शरीर-रथों को दीप्त बनाती है, शक्तियों का वर्धन करती है, हमें ऋतमय तेजस्वी व प्रकाशमय करती है। उषा में जागरण से मन में ऋत, शरीर में तेजस्विता व मस्तिष्क में प्रकाश प्राप्त होता है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष प्रतिदिन उषा में जागरित होकर प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होते हैं। यह उषा उन्हें सत्यमनवाला, तेजस्वी शरीरवाला व दीप्त मस्तिष्कवाला बनाती है।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सत्पथ प्रवृत्ति-शक्ति-ज्योति

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम्॥ २॥

(१) **एषा**=यह **दर्शता**=दर्शनीय उषा **जनं बोधयन्ती**=सोये हुए जनों को प्रबुद्ध करती हुई और **पथः**=मार्गों को **सुगान्**=सुगमता से जाने योग्य **कृण्वती**=करती हुई **अग्रे याति**=आगे बढ़ती है। उषा जागने की प्रेरणा देती है, सत्पथ पर आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करती हुई चलती है। (२) यह **बृहद्रथा**=बढ़ी हुई शक्तियोंवाले शरीर-रथवाली, **बृहती**=वृद्धि की कारणभूत **उषा**=उषा **विश्वमिन्वा**=(इन्व invigorate, gladden) सबको शक्तिशाली बनाती हुई **अह्नां अग्रे**=दिन के अग्रभाग में ही **ज्योतिः यच्छति**=प्रकाश को देती है।

भावार्थ—उषा हमें सत्पथ प्रवृत्त करती है, शक्तिशाली बनाती है और ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कराती है। मन सत्पथ की रुचिवाला, शरीर शक्तिवाला व मस्तिष्क ज्ञान के प्रकाशवाला इस उषा से ही बनता है।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अप्रायुरयि

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्त्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति॥ ३॥

(१) **एषा**=यह उषा **अरुणेभिः गोभिः**=तेजस्वी इन्द्रियों से **युजाना**=शरीर-रथ को युक्त करती हुई, **अस्त्रेधन्ती**=किसी प्रकार से हिंसित न करती हुई, **अप्रायु**=अविचलित स्थिर **रयिम्**=रयि को, ऐश्वर्य को **चक्रे**=करती है। उषाकाल का जागरण (क) इन्द्रियों को तेजस्वी बनाता है, (ख) शरीर को हिंसित नहीं होने देता, (ग) सब कोशों को उस-उस ऐश्वर्य से युक्त करता है। (२) **सुविताय**=सुवित के लिये, दुरित से दूर होने के लिये, **पथः रदन्ती**=मार्गों का निर्माण करती हुई यह उषा **देवी**=प्रकाशमयी है, हमारे जीवन को प्रकाशमय करती है। **पुरुष्टुता**=खूब ही स्तुतिवाली है, इसमें प्रबुद्ध होनेवाले व्यक्ति खूब ही प्रभु का स्तवन करते हैं। **विश्ववारा**=सब वरणीय वस्तुओंवाली है। सब वरणीय वस्तुओं को हमारे लिये देती हुई यह उषा **विभाति**=खूब

ही चमकती है।

भावार्थ—उषा जागरण से (१) इन्द्रियाँ तेजस्वी होती हैं, (२) सब अन्नमय आदि कोशों का ऐश्वर्य प्राप्त होता है, (३) सत्पथ प्रवृत्ति होती है, (४) प्रभु-स्तवन करते हुए हम सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

द्विबर्हाः

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति॥ ४॥

(१) **एषा**=यह उषा **व्येनी**=प्रकाश के कारण विशिष्ट श्वैत्यवाली होती है। **पुरस्तात्**=पूर्व दिशा में **तन्वम्**=अपने रूप को **आविष्कृण्वाना**=प्रकट करती हुई **द्विबर्हाः**=शक्ति व ज्ञान दोनों का वर्धन करनेवाली होती है। उषा जागरण से शक्ति व ज्ञान दोनों बढ़ते हैं। (२) यह उषा **ऋतस्य पन्थाम्**=ऋत के, सत्य के मार्ग का **साधु अन्वेति**=सम्यक् अनुसरण करती है। प्रातः प्रबुद्ध होनेवाला व्यक्ति सत्य मार्ग का अनुसरण करनेवाला होता है। यह उषा **प्रजानती इव**=जानती ही हुई **दिशः**=दिशाओं को **न मिनाति**=हिंसित नहीं करती। दिशाओं को प्रकाशित करती हुई यह हमें मार्ग पर चलने का संकेत करती है।

भावार्थ—उषा जागरण से (१) शक्ति व ज्ञान बढ़ते हैं, (२) ऋत के मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति बढ़ती है, (३) मनुष्य ठीक दिशा में चलता है।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'द्वेष व अज्ञान' का निराकरण

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्॥ ५॥

(१) **एषा**=यह उषा **नः दृशये**=हमारे दर्शन के लिये **अस्थात्**=ऊपर स्थित होती है, **न**=जैसे कि कोई **शुभ्रा**=शुभ्र वर्णवाली युवति **तन्वः विदाना**=अपने शरीर को प्रज्ञापित करती हुई **स्नाती**=स्नान करती हुई **इव**=जैसे **ऊर्ध्वः**=जलाशय से ऊपर आती है। उषा उस शुभ्रवर्णा युवति के ही समान है। यह अपने शुद्ध स्वरूप को जागनेवालों के लिये प्रकट करती है। (२) **द्वेषः**=द्वेषों को **अपबाधमाना**=हमारे से दूर रोकती हुई, **तमांसि**=अन्धकारों को भी दूर करती हुई **उषा दिवः**=ज्ञान का प्रपूरण करनेवाली होती है। यह **ज्योतिषा**=ज्ञान की ज्योति के साथ **आगात्**=हमें प्राप्त होती है।

भावार्थ—इस उषा-जागरण से द्वेष व अज्ञानान्धकार दूर होता है और जीवन ज्योतिर्मय बनता है।

ऋषिः—**सत्यश्रवा आत्रेयः** ॥ देवता—**उषाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वार्य वस्तुओं की प्राप्ति

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः॥ ६॥

(१) **एषा**=यह **दिवः दुहिता**=ज्ञान का प्रपूरण करनेवाली उषा **नॄन् प्रतीची**=मनुष्यों के

अभिमुख आती हुई, **भद्रा योषा इव**=एक मंगलमयी कल्याणवेषा स्त्री के समान **अप्सः निरिणीते**=अपने रूप को प्रकट करती है। यह उषा **दाशुषे**=अपने प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिये **वार्याणि**=सब वरणीय धनों को **व्यूर्ण्वती**=प्रकट करती है, देती है। (२) यह **युवतिः**=सब बुराइयों को दूर करनेवाली, अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाली उषा **पुनः**=फिर **पूर्वथा**=पहले की तरह **ज्योतिः अकः**=प्रकाश को करती है। यह उषा सदा से प्रकाश को देती आयी है, यह हमारे लिये प्रकाश को करनेवाली होती है।

भावार्थ—उषा हमारे लिये वरणीय वस्तुओं को देती है और प्रकाश को करती है।

उषा से प्रकाश को प्राप्त करके यह व्यक्ति 'श्यावाश्व' बनता है, गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाला होता है। यह तीनों दुःखों से ऊपर 'आत्रेय' होता है। यह सविता की आराधना करता हुआ कहता है—

८१. [एकाशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु में मन व बुद्धि को अर्पित करना

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १ ॥

(१) प्रकृति के दृष्टिकोण से प्रभु सविता इसलिए हैं कि सारे संसार को जन्म देते हैं और जीव के दृष्टिकोण से सविता इसलिए हैं कि हृदयस्थरूपेण उसे प्रेरणा दे रहे हैं। 'षू' धातु के दोनों ही अर्थ हैं (क) उत्पन्न करना, (ख) प्रेरणा देना। **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष उस **बृहतः**=महान् **विप्रस्य**=सबका पूरण करनेवाले **विपश्चितः**=ज्ञानी (सर्वज्ञ) प्रभु के प्रति **मनः**=अपने मन को **युञ्जते**=लगाते हैं, **उत**=और **धियः**=अपनी बुद्धियों को भी **युञ्जते**=उसमें ही लगाते हैं। उस प्रभु में ही अर्पित मन व बुद्धिवाले होते हैं। प्रभु प्राप्ति की ही प्रबल कामना करते हैं और प्रभु की ही महिमा का विचार करते हैं। (२) वह **वयुनावित्**=सब प्रज्ञानों को जाननेवाला **एकः**=अद्वितीय प्रभु ही **होत्राः**=सब वाणियों को, इन वेदरूप ज्ञानवाणियों को **विदधे**='अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा' आदि ऋषियों के हृदय में स्थापित करते हैं। **इत्**=वस्तुतः **देवस्य**=उस प्रकाशमय **सवितुः**=निर्माता व प्रेरक प्रभु की **परिष्टुतिः**=सर्वत्र होनेवाली स्तुति **मही**=महान् है। एक-एक पदार्थ में प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होती है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष अपने मन व बुद्धि को उस सर्वज्ञ प्रभु में अर्पित करते हैं। प्रभु ही ज्ञान की वाणियों को ऋषियों के हृदयों में स्थापित करते हैं। उस प्रभु की महिमा महान् है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'सर्वाधार' व 'भद्र प्रसविता'

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति॥ २॥

(१) **कविः**=वह सर्वज्ञ प्रभु **विश्वारूपाणि**=सब रूपों को, रूपवाले पदार्थों को **प्रतिमुञ्चते**=(आत्मनिबध्नाति-धारयति) अपने में धारण करता है, वह प्रभु ही सर्वाधार हैं। वे ही **द्विपदे**=दो पाँवाले मनुष्यों के लिये और **चतुष्पदे**=चौपाये पशुओं के लिये **भद्रम्**=कल्याणकर पदार्थों को **प्रासावीत्**=उत्पन्न करते हैं। सब पदार्थ कल्याणकर हैं। उनका अयोग व अतियोग ही

अकल्याणकर हेतु होता है। (२) वह **सविता**=उत्पादक व प्रेरक प्रभु ही **वरेण्यः**=वरणीय है। प्रकृति के वरण से प्रभु का वरण ही श्रेष्ठ है। वे प्रभु अपना वरण करनेवालों के लिये **नाक**=मोक्षलोक को **वि अख्यत्**=प्रकाशित करते हैं। **उषसः प्रयाणं अनु**=उषा के प्रकृष्ट यान के अनुसार वे प्रभु **विराजति**=हमारे जीवन में दीप्त होते हैं। जितना-जितना उषा के समय करने योग्य कार्यों को हम ठीक प्रकार करते हैं, उतना-उतना ही प्रभु की दीप्ति को अपने हृदयों में देखनेवाले बनते हैं। सूर्य उषा के प्रयाण के बाद उदित होता है। ठीक इसी प्रकार हमारे जीवन में भी उषा के आने के बाद प्रभु आते हैं। उषा के आने का भाव यही है कि अज्ञानान्धकार आदि दोषों का दग्ध होना (उष दाहे)।

भावार्थ—प्रभु सर्वाधार हैं। सब के लिये भद्र पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। मोक्ष लोक को प्रकाशित करते हैं। हमारे जीवन उषा के चुकने पर दीप्त होते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविताः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वह 'एतश' देव

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य इद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा।
यः पार्थि॑वानि वि॒म॒मे स एत॑शो॒ रजां॑सि दे॒वः स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना ॥ ३ ॥

(१) **यस्य देवस्य प्रयाणं अनु**=जिस प्रकाशमय प्रभु की प्रकृष्ट प्राप्ति के अनुसार **अन्ये देवाः**=अन्य सूर्य आदि देव **ओजसा**=ओजस्विता के साथ **महिमानम्**=महत्त्व को **इद् ययुः**=निश्चय से प्राप्त होते हैं। जहाँ प्रभु का जितना-जितना तेज का अंश होता है वह पदार्थ उतना-उतना ही विभूतिवाला प्रतीत होता है। (२) **यः सविता देवः**=जो उत्पादक व प्रेरक प्रकाशमय प्रभु हैं वे **पार्थिवानि रजांसि**=सब पार्थिव लोकों को **महित्वना**=अपनी महिमा से **विममे**=बनाते हैं। **सः**=वे प्रभु **एतशः**=शुभ्र हैं, सूर्य की तरह देदीप्यमान हैं। इस प्रभु की दीप्ति से ही सर्वत्र दीप्ति होती है।

भावार्थ—सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविताः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

जन्माद्यस्य यतः

उ॒त या॑सि सवित॒स्त्रीणि॑ रोच॒नोत सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॒ समु॑च्यसि।
उ॒त रात्री॑मुभ॒यतः॒ परी॑यस उ॒त मि॒त्रो भ॑वसि देव॒ धर्म॑भिः ॥ ४ ॥

(१) हे **सवितः**=सकल जगत् के उत्पादक प्रभो! आप **उत**=निश्चय से **त्रीणि रोचना**='सूर्य, विद्युत् व अग्नि' रूप तीनों दीप्तियों को **यासि**=प्राप्त करते हो। वस्तुतः इन तीनों दीप्त पिण्डों में आपकी ही दीप्ति काम करती है। **उत**=और आप **सूर्यस्य**=सूर्य की **रश्मिभिः**=किरणों से **समुच्यसि**=समवेत होते हैं, इन सूर्य-किरणों में सब प्राणशक्ति को आप ही स्थापित करते हैं। (२) **उत**=और **रात्रीम्**=रात्री को, प्रलयकालीन रात्री को **उभयतः**=दोनों ओर से **परीयसे**=व्याप्त करते हैं। इस रात्रि के प्रारम्भ में भी आप ही होते हैं, अर्थात् इस रात्री को लानेवाले आप ही हैं। सृष्टि का प्रलय आप ही करते हैं। और इस रात्रि की समाप्ति पर भी आप ही होते हैं। अर्थात् प्रलयकाल की समाप्ति पर आप ही फिर से सृष्टि का निर्माण करते हैं। **उत**=और सृष्टि के निर्माण के बाद, हे **देव**=सब व्यवहारों के साधक प्रभो! आप ही **धर्मभिः**=धारणात्मक कर्मों के द्वारा **मित्रः भवसि**=सब के मित्र होते हैं।

भावार्थ—'सूर्य, विद्युत् व अग्नि' को प्रभु ही दीप्त करते हैं। सूर्य-किरणों में प्रभु ही प्राणशक्ति को स्थापित करते हैं। प्रभु ही इस सृष्टि का प्रलय, निर्माण व धारण करनेवाले हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविता:** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

श्यावाश्व ही स्तोता है

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे॥ ५॥

(१) **देव**=हे सब व्यवहारों के साधक प्रभो! **त्वम्**=आप **एकः इत्**=अकेले ही **उत**=निश्चय से **प्रसवस्य**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के **ईशिषे**=ईश हैं, सारे ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने में समर्थ हैं। **उत**=और हे देव! आप **यामभिः**=अपनी गतियों से **पूषा भवसि**=सब का पोषण करनेवाले हैं। (२) **उत**=और **इदं विश्वं भुवनम्**=इस सम्पूर्ण भुवन को आप ही **विराजसि**=दीप्त करते हैं, आप के ही शासन में यह व्यवस्थित (regulated) होता है 'इन्द्रो विश्वस्य राजति'। हे **सवितः**=उत्पादक व प्रेरक प्रभो! **श्यावाश्वः**=गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाला पुरुष ही **ते स्तोमम्**=आपकी स्तुति का **आनशे**=व्यापन करता है। आपका सच्चा स्तोता वही है जो इन्द्रियाश्वों द्वारा सदा गतिशील बना रहता है।

भावार्थ—प्रभु ही उत्पादक व धारक हैं। प्रभु ही सब संसार के राजा हैं। हम गतिशील बने रहकर प्रभु के उपासक होते हैं। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' यही तो प्रभु का आदेश है।

अगले सूक्त में भी 'श्यावाश्व आत्रेय' ही सविता की आराधना करते हैं—

८२. [द्व्यशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविता:** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

देवस्य भोजनम्

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि॥ १॥

(१) **वयम्**=हम **सवितुः**=उस उत्पादक **देवस्य**=प्रकाशमय सर्वव्यवहार साधक प्रभु के **तत्**=प्रसिद्ध **भोजनम्**=पालक धन को **वृणीमहे**=वरते हैं। उस प्रभु से दिये जानेवाले धन का ही चुनाव करते हैं। प्रभु से दिये जानेवाला यह धन सदा सुपथ से अर्जित होता है। हम अपने कर्त्तव्य कर्मों में अभियुक्त होते हैं और प्रभु हमें योगक्षेम (भोजन) प्राप्त कराते हैं। इसी योगक्षेम का ही हम वरण करते हैं। (O, God! Give me my daily bread; Bible) (२) इस **भगस्य**=सब के उपास्य ऐश्वर्यों के स्वामी के इस धन को हम प्राप्त करके **धीमहि**=धारण करते हैं। यह धन **'श्रेष्ठं'**=श्रेष्ठ है, प्रशस्यतम है, सुपथ से कमाया जाने के कारण प्रशंसनीय है। **सर्वधातमम्**=यह यज्ञों में विनियुक्त होने के कारण सबका धारण करनेवाला है। **तुरम्**=यह धन शत्रुओं का विहिंसक है, इस धन से हम विषयवासनारूप शत्रुओं का शिकार नहीं होते।

भावार्थ—कर्त्तव्य कर्मों में नित्याभियुक्त होकर हम प्रभु से दिये जानेवाले धन की याचना करते हैं। यह धन हमारे जीवन को श्रेष्ठ बनाता है, सबका धारण करता है, इससे हम विषयवासनारूप शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होते।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविताः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'स्वयशस्तरं प्रियं' (धन)

अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम्। न मिनन्ति स्वराज्यम्॥ २॥

(१) **अस्य**=इस **सवितुः**=सकलोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु के **स्वयशस्तरम्**=अतिशयेन अपने यश के विस्तार करनेवाले **कच्चन**=किसी अद्भुत **प्रियम्**=प्रीति के जनक **स्वराज्यम्**=स्वयं दीप्त ऐश्वर्य को **हि**=निश्चय से **न मिनन्ति**='काम-क्रोध-लोभ' हिंसित नहीं कर पाते। (२) सविता का आराधक 'श्यावाश्व' सदा गतिशील बना रहकर प्रभु के उस ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, जो उसके यश का विस्तार करता है और सब की प्रीति का कारण बनता है। यह धन काम-क्रोध आदि से आक्रान्त नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु से दिया गया सुपथार्जित धन हमें यशस्वी व प्रिय बनाता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविताः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'चित्र' धन

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः। तं भागं चित्रमीमहे॥ ३॥

(१) **सः**=वह **सविता**=उत्पादक व प्रेरक **भगः**=उपासनीय प्रभु **हि**=निश्चय से **दाशुषे**=दानशील पुरुष के लिये **रत्नानि सुवाति**=रमणीय धनों को देता है। हम दानशील बनें, प्रभु देंगे ही 'spend and God will send', (२) **तम्**=उस **भागम्**=भजनीय-उपास्य प्रभु से **चित्रम्**=चायनीय अथवा 'चित्' ज्ञान के वर्धक धन को हम **ईमहे**=याचना करते हैं। चित्र धन वह है जब कि हम धन के दास नहीं बन जाते, धन के वाहक बनकर हम 'लक्ष्मी वाहन' उल्लू ही तो बनते हैं। प्रभु से प्राप्त धन हमें उल्लू नहीं बनाता। हम धन पर आरूढ़ रहकर सदा ज्ञानयुक्त बने रहते हैं।

भावार्थ—हम दानशील बनें, प्रभु हमें धन देंगे ही। प्रभु से दिया जानेवाला यह धन हमारे ज्ञान का वर्धक होता है।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविताः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रजावत् सौभग की प्राप्ति

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्। परा दुःष्वप्न्यं सुव॥ ४॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय **सवितः**=सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभो! **अद्या**=आज **नः**=हमारे लिये **प्रजावत्**=प्रकृष्ट सन्तानोंवाले **सौभगम्**=सौभाग्य कर धन को **सावीः**=उत्पन्न करिये। हमें ऐसा धन दीजिये जो हमारे घरों में किसी प्रकार के विलास का कारण न बने और हमारे सन्तानों के चरित्र को उत्तम ही बनाये। (२) **दुःष्वप्न्यम्**=अशुभ स्वप्नों के कारणभूत अथवा नींद को भी नष्ट करनेवाले दारिद्र्य को **परासुव**=हमारे से दूर करिये। ऐसी गरीबी भी पाप ही है जो नींद को भी न लेने दे। ऐसी गरीबी अन्ततः एक गृहस्थ की 'महानिद्रा' का ही कारण बनती है।

भावार्थ—हमें प्रकृष्ट सन्तानोंवाला ऐश्वर्य प्राप्त हो और हमारे से दारिद्र्य सदा दूर ही रहे।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविताः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

भद्र प्राप्ति

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ ५॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय **सवितः**=सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभो! आप **विश्वानि दुरितानि**=सब

दुरितों को, दारिद्र्य के कारण उत्पन्न हो जानेवाले चोरी आदि अशुभ आचरणों को **परासुव**=हमारे से दूर करिये। न हमारे में ऐसा दारिद्र्य हो और नां ही ऐसे आचरण उत्पन्न हों। 'बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्' 'भूखा मरता' पुरुष ही तो पाप की ओर झुकता है। समान में 'अतिसम्पन्न' व 'अतिविपन्न' इन दो वर्गों के उत्पन्न होने पर ही पाप उत्पन्न होते हैं। (२) **यद् भद्रम्**=जो भद्र है, 'प्रजा वै भद्रं, पशवो भद्रं, गृहं भद्रं' अर्थात् प्रजा, पशु व घर आदि जो कल्याणकर वस्तुएँ हैं, **तत्**=वे **नः**=हमारे लिये **आसुव**=प्राप्त कराइये। समाज में सब घर में गौ आदि पशुओं के साथ सन्तानों का सुन्दर पालन करते हुए सद्गृहस्थ बनें।

भावार्थ—दारिद्र्य जनित दुरितों से दूर रहते हुए हमारे समाज के सभी व्यक्ति घरों में गौवें से फलते-फूलते हुए उत्तम सन्तानोंवाले बनें।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

निष्पापता व राष्ट्ररक्षा

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे। विश्वा वामानि धीमहि॥ ६॥

(१) **देवस्य**=प्रकाशमय **सवितुः**=सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभु की **सवे**='अनुज्ञा' व 'प्रेरणा' में चलते हुए और इस प्रकार **अनागसः**=निष्पाप जीवन बिताते हुए हम **अदितये**=इस अखण्डनीय भूमि देवी के लिये स्याम=हों। अपनी भूमि माता को पापों से भरकर इसे खण्डित करनेवाले न हों। वस्तुतः जिस राष्ट्र में पाप बढ़ जाते हैं वे विनाश (दिति) की ओर ही जाते हैं। (२) इस प्रकार निष्पाप जीवन से राष्ट्र को अखण्डित रखते हुए हम **विश्वा वामानि**=सब सुन्दर चीजों को **धीमहि**=धारण करें। अशुभ आचरण दूर हो और अशुभ परिणाम भी दूर हों।

भावार्थ—पाप बढ़ने पर राष्ट्र विनष्ट होता है सो प्रभु ही अनुज्ञा में चलते हुए हम निष्पाप जीवनवाले बनकर राष्ट्र के रक्षक हों। और सब सुन्दर बातों का ही धारण करनेवाले हों।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सत्यसव सविता

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे। सत्यसवं सवितारम्॥ ७॥

(१) **अद्या**=आज हम **सूक्तैः**=(सु-उक्तैः) सदा उत्तम वचनों के द्वारा उस प्रभु का **आवृणीयहे**=सर्वथा वरण करते हैं। जो प्रभु **विश्वदेवम्**=सब दिव्य गुणोंवाले हैं व **सत्पतिम्**=श्रेष्ठता के रक्षक हैं। वस्तुतः जैसे वचन हमारे मुख से उच्चरित होते रहते हैं, वैसी ही बातें हमारे जीवन में आचरण के रूप में परिवर्तित होती हैं। सदा उत्तम शब्द ही मुख से निकलेंगे तो उत्तम ही हमारे आचरण होंगे। और यही प्रभु के चरण का मार्ग है। प्रकृति में आसक्ति व प्रभु की विस्मृति ही हमें पापों की ओर ले जाती है। (२) प्रभु **सत्यसवम्**=सदा सत्य की प्रेरणा देनेवाले हैं, 'सत्यस्य सूनु' हैं। **सवितारम्**=इस सत्य के द्वारा वे हमारे जीवनों में ऐश्वर्यों को जन्म देनेवाले हैं। प्रभु की ओर झुकेंगे तो निष्पाप जीवन बिताते हुए सदा उत्तम योगक्षेम को प्राप्त करेंगे। प्रकृति की ओर गये, तो विलास में फँसकर विनष्ट हो जाएँगे।

भावार्थ—सूक्तों द्वारा हम सदा प्रभु का वरण करें। वे हमें दिव्यगुण सम्पन्न जीवनवाला बनावेंगे।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मार्गदर्शक प्रभु

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन्। स्वाधीर्देवः सविता॥ ८॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार वरणीय **यः**=जो प्रभु हैं, वे **अप्रयुच्छन्**=किसी प्रकार का प्रमाद न करते हुए **इने उभे अहनी**=इन दोनों दिन-रातों में **पुरः एति**=हमारे आगे चलते हैं। ये प्रभु हमारे लिये मार्गदर्शक होते हैं। प्रभु का स्मरण हमें सदा सत्पथ का दर्शन करानेवाला होता है। (२) वस्तुतः ये प्रभु **स्वाधीः**=('शोभना ध्यानः, सुकर्मा वा' सा०) शोभन आध्यानवाले व सुकर्मा हैं। प्रभु का स्मरण हमें सदा शुभ बुद्धिवाला व शुभ कर्मोंवाला बनाता है। **देवः**=वे प्रभु प्रकाशमय हैं। **सविता**=उपासक को सदा सत्प्रेरणा प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—वे प्रभु दिन-रात हमें उत्तम प्रेरणा प्राप्त करा रहे हैं। उनकी उपासना में हमें शोभन ध्यान व कर्मवाले बनते हैं।

ऋषिः—**श्यावाश्व आत्रेयः** ॥ देवता—**सविताः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आश्रावयति श्लोकेन

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन। प्र च सुवाति सविता॥ ९ ॥

(१) प्रभु वे हैं **यः**=जो **इमा**=इन **विश्वा**=सब **जातानि**=उत्कृष्ट जन्मवाले मनुष्यों को **श्लोकेन**=वेदमन्त्रों के द्वारा **आश्रावयति**=पूर्णतया ज्ञानयुक्त करते हैं, वेद-मन्त्रों के द्वारा उनके सब कर्त्तव्यों को उनके लिये सुस्पष्ट कर देते हैं। (२) **च**=और इस प्रकार ज्ञान देते हुए **सविता**=वे प्रेरक प्रभु **प्रसुवाति**=सदा उत्तम कर्मों में प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—वेदमन्त्रों द्वारा प्रभु सदा हमारे कर्त्तव्यों की हमारे लिये प्रेरणा देते हैं।

इस प्रेरणा को सुननेवाला व्यक्ति 'अत्रि' बनता है, 'काम-क्रोध-लोभ' से ऊपर उठा रहता है। यह उस महान् 'पर्जन्य'=परा तृप्ति के देनेवाले प्रभु का स्तवन करता हुआ कहता है—

८३. [त्र्यशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पर्जन्य-स्तवन'

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्॥ १ ॥

(१) **आभिः गीर्भिः**=इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा **तवसं अच्छा वद**=उस शक्तिशाली प्रभु के प्रति स्तुतिवचनों का उच्चारण कर। ज्ञानपूर्वक प्रभु के स्तोत्रों को तू बोलनेवाला हो। उस **पर्जन्यम्**=(परो जेता नि०) महान् विजेता प्रभु का **स्तुहि**=तू स्तवन कर। **नमसा**=नमन के द्वारा **आ विवास**=उस प्रभु की परिचर्यावाला हो। (२) **कनिक्रदद्**=ऋग्, यजु, सामरूप वाणियों का उच्चारण करनेवाले, **वृषभः**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले वे प्रभु हैं। **जीरदानुः**=शीघ्रता से सब आवश्यक पदार्थों को देनेवाले वे प्रभु **रेतः दधाति**=हमारे लिये रेतःकणों का, वीर्यकणों का धारण करते हैं, जो **ओषधीषु**=ओषधियों में **गर्भम्**=गर्भरूप से रहते हैं। उन वीर्यकणों को धारण करते हैं, जो ओषधियों में गर्भरूप से रहते हैं। ओषधियों का हम सेवन करते हैं और उनसे रस-रुधिर आदि क्रम से इन रेतःकणों की उत्पत्ति होती है।

भावार्थ—हम प्रभु का ज्ञान की वाणियों व नम्रता से स्तवन करें। वे महान् विजेता प्रभु हमारे लिये इन ज्ञानवाणियों का उच्चारण करते हैं, हमें जीवन देते हैं और ओषधियों द्वारा हमें जीवनीशक्ति (रेतःकणों) को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—पृथिवी ॥ छन्दः—स्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'वृक्ष व राक्षस' विनाश

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥ २ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार जब हम प्रभु का स्तवन करते हैं, तो **वृक्षान् विहन्ति**=(व्रश्चते: वृक्षः) काट देने योग्य रोग आदि को वे नष्ट करते हैं। **उत**=और **रक्षसः**=हृदयस्थ राक्षसी भावों को भी वे विनष्ट करते हैं। उस समय **महावधात्**=उस महान् वध को करनेवाले प्रभु से **विश्वं बिभाय**=सब हमारे न चाहते हुए भी हमारे अन्दर प्रविष्ट हो जानेवाले रोग व आसुरभाव भयभीत हो उठते हैं। (२) **उत**=और **अनागाः**=निष्पाप व्यक्ति उस समय **वृष्ण्यावतः**=शक्तिशाली शत्रुओं को **ईषते**=नष्ट करनेवाला होता है **यत्**=जब कि **पर्जन्यः**=यह 'परः जेता'=महान् विजेता प्रभु **स्तनयन्**=गर्जना करते हुए, वेदवाणियों का उच्चारण करते हुए **दुष्कृतः हन्ति**=सब पापियों का विनाश कर देते हैं। प्रभु ज्ञान को देकर अज्ञानजन्य अपराधों को समाप्त कर देते हैं और इस प्रकार यह प्रभु का उपासक निष्पाप जीवनवाला बनकर शक्तिशाली शत्रुओं का भी शातन करनेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु स्मरण से रोग व राक्षसीभाव विनष्ट हो जाते हैं। यह उपासक शक्तिशाली शत्रुओं को भी शीर्ण करता है। प्रभु की ज्ञानवाणियाँ उसे ऐसा करने में समर्थ करती हैं।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—पृथिवी ॥ छन्दः—भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'मेघों के प्रेरक' प्रभु

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥ ३ ॥

(१) **इव**=जिस प्रकार **रथी**=रथ का स्वामी **कशया**=चाबुक से **अश्वान्**=घोड़ों को **अभिक्षिपन्**=चारों ओर प्रेरित करता है, इसी प्रकार वे **पर्जन्यः**=महान् विजेता प्रभु **अह**=निश्चय से **वर्ष्यान् दूतान्**=वृष्टि को करनेवाले मेघों के प्रेरक मरुतों को, वायुओं को **आविः कृणुते**=प्रकट करते हैं। (२) **यत्**=जब **पर्जन्यः**=वे परातृप्ति के जनक प्रभु **नभः**=आकाश को **वर्ष्यम्**=वृष्टि के लिये उद्यत **कृणुते**=करते हैं तो **दूरात्**=उस दूर देश से **सिंहस्य**=वर्षण के द्वारा दुर्भिक्ष के विनाशक मेघरूप सिंह के **स्तनथाः**=गर्जन **उदीरते**=उद्गत होते हैं। आकाश में बादल शेर के समान गर्जता है और वर्षण के द्वारा दुर्भिक्ष आदि का विनाश करनेवाला बनता है।

भावार्थ—जैसे रथी चाबुक से घोड़ों को प्रेरित करता है, उसी प्रकार प्रभु आकाश में वृष्टिवाहक वायुओं को प्रेरित करते हैं। जब कभी प्रभु आकाश को वृष्टि के अभिमुख करते हैं तो मेघरूप सिंहों की गर्जना सुन पड़ती है।

ऋषिः—अत्रिः ॥ देवता—पृथिवी ॥ छन्दः—निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

'वृष्टि द्वारा उत्पन्न अन्न का सेवन' व सुख प्राप्ति

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४ ॥

(१) **पर्जन्यः**=परातृप्ति के जनक प्रभु **पृथिवीम्**=इस पृथिवी को **रेतसा अवति**=उदक

के द्वारा प्रीणित करते हैं, तो उस समय **वाताः प्रवान्ति**=खूब वायुवें चलती हैं। **विद्युतः**=विद्युतें **पतयन्ति**=आकाश में उद्गत होती हैं। **ओषधीः**=ओषधियाँ **उज्जिहते**=उद्गत होती हैं। और **स्वः पिन्वते**=सर्वत्र सुख क्षरित होता है। (२) इस प्रकार मेघों की वर्षा होने पर **विश्वस्मै भुवनाय**=सब प्राणियों के लिये **इरा**=अन्न (food) **जायते**=उत्पन्न होता है। वस्तुतः यही वृष्टिजन्य अन्न सबका कल्याण करनेवाला होता है।

भावार्थ—वायुवें चलती हैं, बिजलियाँ चमकती है। उस समय ओषधियाँ उत्पन्न होकर सर्वत्र सुख क्षरित होता है। इस बादल के बरसने पर सबके लिये अन्न उत्पन्न होता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु के अटल नियम

यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नन्न॑मीति॒ यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्जर्भु॑रीति।
यस्य॑ व्र॒त ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पाः॒ स नः॑ पर्जन्य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छ ॥ ५ ॥

(१) हे **पर्जन्य**=परातृप्ति के जनक (परां तृप्तिं जनयाते) अथवा महान् विजेता (परो जेता) प्रभो! आप हमारे लिये **महि शर्म**=महान् सुख को **यच्छ**=दीजिये। आप वे हैं, **यस्य व्रते**=जिनके नियमों में (नियमः पूर्वकं व्रतम्) **पृथिवी**=यह पृथिवी **नन्नमीति**=झुक जाती है, कुछ तिरछी-सी होकर गतिवाली होती है। आप वे हैं, **यस्य**=जिनके **व्रते**=नियमों में ही **शफवत्**=सब खुरोंवाले प्राणियों का **जर्भुरीति**=भरण होता है। (२) हे प्रभो! आप ये हैं, **यस्य**=जिनके **व्रते**=नियमों में **विश्वरूपाः**=सब भिन्न-भिन्न रूपोंवाली ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं और प्राणियों का धारण करती हैं।

भावार्थ—प्रभु के नियमों ही पृथिवी कुछ झुकी-सी गतिवाली होती है। प्रभु के नियमों में ही सब प्राणियों का भरण होता है। प्रभु के नियमों में ही विविध ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

असुरः पिता

दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिं म॑रुतो ररीध्वं॒ प्र पि॑न्वत॒ वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ धाराः॑।
अ॒र्वाङे॒तेन॑ स्तनयि॒त्नुने॒ह्यपो नि॑षि॒ञ्चन्नसु॑रः पि॒ता नः॑ ॥ ६ ॥

(१) हे **मरुतः**=वृष्टिवाहक वायुवो! आप **नः**=हमारे लिये **दिवः**=द्युलोक से **वृष्टिम्**=वृष्टि को **ररीध्वम्**=दो। **वृष्णः**=वृष्टि को करनेवाले **अश्वस्य**=अन्तरिक्ष में व्याप्त होनेवाले मेघ की **धाराः**=जलधाराओं को **प्रपिन्वत**=सींचो। (२) हे प्रभो! आप **एतेन**=इस **स्तनयित्नुना**=गर्जना करनेवाले मेघ से **अर्वाङ् इहि**=यहाँ नीचे पृथिवीलोक पर आइये। **अपः निषिञ्चन्**=जलों को सींचता हुआ **असुरः**=सर्वत्र प्राणशक्ति का संचार करनेवाला यह मेघ **नः पिता**=हमारा रक्षक है। हे प्रभो! आप ही इस मेघ के द्वारा वर्षण करके अन्नोत्पादन द्वारा हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु वायुवों व मेघों द्वारा वृष्टि की व्यवस्था करके अन्नोत्पादन द्वारा सब प्राणियों की रक्षा करते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृष्टि से ओषधियों की उत्पत्ति

अ॒भि क्र॑न्द स्त॒नय॒ गर्भ॒मा धा॑ उद॒न्वता॒ परि॑ दीया॒ रथे॑न।
दृतिं॒ सु क॑र्ष॒ विषि॑तं॒ न्य॑ञ्चं स॒मा भ॑वन्तू॒द्वतो॑ निपा॒दाः ॥ ७ ॥

(१) हे प्रभो! इस बादल के रूप में **अभिक्रन्द**=भूमि की ओर गर्जना करनेवाला हो। **स्तनय**=विद्युत् को तू शब्द करानेवाला हो। **गर्भं आधाः**=ओषधियों में तू गर्भ को स्थापित कर, सब ओषधियाँ खूब फलित हों। **उदन्वता रथेन**=इस जलवाले रथरूप मेघ से **परिदीया**=चारों ओर गतिवाले होइये। (२) इस **विषितम्**=विशेषरूप से बद्ध व स्यूत **दृतिम्**=चर्मपात्ररूप मेघ को **न्यञ्चम्**=निम्न गतिवाले को **सुकर्ष**=आकृष्ट करिये। मेघ मानो एक चर्मपात्र है, जो जल से परिपूर्ण है। इसे नीचे आकृष्ट करना ही इसका बरसाना है। प्रभु इसे बरसाते हैं और **उद्वतः**=उन्नत प्रदेश व **निपादाः**=निम्न प्रदेश सब **समाः भवन्तु**=समपृष्ठवाले हो जाते हैं। सर्वत्र पानी फैल जाने से निम्नोन्नत विभाग नहीं रह जाता। सब एक पृष्ठ प्रतीत होता है।

भावार्थ—बादल बरसता है और ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार सब प्रदेश जल परिपूर्ण होकर समान पृष्ठवाले प्रतीत होते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

महान् कोश का उदञ्चन

म॒हान्तं॒ कोश॒मुद॑चा॒ नि षि॑ञ्च॒ स्यन्द॑न्तां कु॒ल्या॒ विषि॑ताः पु॒रस्ता॑त्।
घृ॒तेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी व्यु॑न्धि सुप्रपा॒णं भ॑वत्व॒घ्न्याभ्यः॑ ॥ ८ ॥

(१) हे महान् विजेता (पर्जन्य) प्रभो! आप **महान्तं कोशम्**=इस मेघरूप महान् कोश को **उदचा**=उद्गत करिये आकाश में इस महान् जलकोश को स्थापित करिये। **निषिञ्च**=इसे यहाँ नीचे भूमि पर क्षरित करिये। आपकी इस व्यवस्था से **विषिताः**=सब बन्धनों से मुक्त हुई-हुई **कुल्याः**=ये नदियाँ **पुरस्तात्**=आगे-आगे **स्यन्दन्ताम्**=प्रवाहित होनेवाली हों। (२) इस व्यवस्था के द्वारा हे प्रभो! आप **घृतेन**=इस दीप्ति के कारणभूत जल से **द्यावापृथिवी व्युन्धि**=द्युलोक व पृथिवीलोक को आप क्लिन्न करिये। पृथिवी को यह महान् मेघकोश का जल सींचता ही है और सारे वायुमण्डल को भी गीला करनेवाला होता है। इस स्थिति में **अघ्न्याभ्यः**=इन न मारने योग्य गौवों के लिये **सुप्रपाणं भवतु**=उत्तम पीने योग्य जल-स्थानों का निर्माण **भवतु**=हो। गवादि पशुओं के लिये सर्वत्र मेघजल सुप्राप्त हो।

भावार्थ—वृष्टि हो जाती है, नदियाँ प्रवाहित होने लगती हैं और सर्वत्र पशुओं के लिये पानी सुलभ हो जाता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

निष्पापता व प्रसन्नता

यत्प॑र्जन्य॒ कनि॑क्रदत्स्त॒नय॒न् हंसि॑ दु॒ष्कृतः॑।
प्रती॒दं विश्वं॑ मोदते॒ यत्किं च॑ पृथि॒व्याम॑धि ॥ ९ ॥

(१) हे **पर्जन्य**=महान् विजेतः प्रभो! **यत्**=जब आप **कनिक्रदत्**=हृदयस्थरूपेण 'ऋग् यजु साम' रूप वाणियों का उच्चारण करते हैं। तो **स्तनयन्**=इन वेदवाणियों की गर्जना करते हुए **दुष्कृतः**=सब पापकारियों को **हंसि**=नष्ट करते हैं। वेदवाणियों की प्रेरणा उनके पापों को सुदूर प्रेरित करनेवाली हो जाती है। (२) उस समय पाप के नष्ट हो जाने पर **यत् किञ्च पृथिव्यां अधि**=जो इस पृथिवी पर चराचरात्मक जगत् है, **इदम्**=यह **विश्वम्**=सबका सब **प्रतिमोदते**=प्रतिदिन आनन्द को अनुभव करता है। निष्पापता में ही आनन्द है। पाप 'पातक' है, हृदय को गिरानेवाला है।

भावार्थ—प्रभु वेद-ज्ञान के क्रन्दन से हमारे पापों को नष्ट करते हैं। उस समय यह सब चराचरात्मक जगत् प्रतिमोदित हो उठता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ओषधि भोजन से सुख तथा बुद्धि की प्राप्ति

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥ १० ॥

(१) हे प्रभो! आपने **वर्षं अवर्षीः**=इस वृष्टि-जल का वर्षण किया है, **उ**=और **सु**=अच्छी प्रकार **उद् गृभाय**=सब प्राणियों का उद्ग्रहण किया है। **धन्वानि**=निरुदक मरुस्थलों को भी **अति एतवा**=अतिशयेन गति के लिये **अकः उ**=निश्चय से किया है। (२) आपने **भोजनाय**=भोजन के लिये **ओषधीः**=ओषधियों को **अजीजनः**=उत्पन्न किया है। **उत**=और **प्रजाभ्यः**=सब प्रजाओं के लिये **कम्**=सुख को तथा **मनीषाम्**=बुद्धि को **अविदः**=प्राप्त कराया है।

भावार्थ—प्रभु मेघों द्वारा वृष्टि करके ओषधियों को उत्पन्न करते हैं और उन औषध भोजनों से मानस-सुख तथा बुद्धि का विकास करते हैं।

उत्तम बुद्धि को प्राप्त करनेवाला यह 'अत्रि' बनता है, काम-क्रोध-लोभ से दूर। यह ओषधि भोजन प्राप्त करानेवाली पृथिवी का काव्यमय स्तवन करता है कि—

८४. [चतुरशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

पर्वत-खेदन

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि । प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥

(१) 'पृथिवी' शब्द इस विस्तारवाले अन्तरिक्ष का भी वाचक है। हे **पृथिवि**=अन्तरिक्ष देवते! तू **बट्**=सचमुच **इत्था**=इस प्रकार **पर्वतानाम्**=वाष्प पर्वों (तहों) से बने हुए इन मेघों के **खिद्रम्**=खेदन व भेदन को **बिभर्षि**=धारण करती है। अन्तरिक्ष में ही इन बादलों का निर्माण होता है। वहाँ से इनका भेदन होकर वृष्टि का सम्भव हुआ करता है। (२) हे **प्रवत्वति**=उत्कर्षवाली अन्तरिक्ष देवते! तू वह है **या**=जो, हे **महिनि**=महिमाशालिनि! **मह्ना**=अपनी महिमा से, इस वृष्टि की व्यवस्था से **भूमिम्**=इस प्राणियों के निवास स्थानभूत भूप्रदेश को **प्रजिनोषि**=प्रकर्षेण प्रीणित करती है। वृष्टि के होने से ही यहाँ सब प्राणियों के जीवन का सम्भव होता है।

भावार्थ—अन्तरिक्ष में बादलों का भेदन होकर वृष्टि से अन्नोत्पत्ति द्वारा इस भूमि पर प्राणियों का प्रीणन होता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

पेरु-प्रासन

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः । प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

(१) विविध पिण्डों व पक्षियों का संचरण स्थान होने से अन्तरिक्ष 'विचारिणी' कहलाता है। हे **विचारिणि**=विविध पिण्डों की संचरण स्थानभूत अन्तरिक्ष देवते! **स्तोमासः**=(स्तोतारः सा०) तेरे गुण-धर्मों का स्तवन करनेवाले लोग **अक्तुभिः**=(light, darkness) कभी प्रकाशों व कभी अन्धकारों के होने से **त्वा**=तुझे **प्रतिष्टोभन्ति**=प्रतिदिन स्तुत करते हैं। अन्तरिक्ष कभी तो

मेघों के अन्धकारवाला होता है और कभी मेघशून्य व प्रकाशमय प्रतीत होता है। (२) हे **अर्जुनि**=अपने अन्दर मेघों का अर्जन करनेवाली अन्तरिक्ष देवि! तू वह है **या**=जो **हेषन्तं वाजम् न**=शब्द करते हुए उच्छृंखल अश्व के समान **पेरुम्**=इस पालक मेघ को **प्रास्यसि**=वृष्टिरूप में नीचे फेंकनेवाली होती है। 'अर्जुनि' शब्द का अर्थ सायण 'गमनशीले' यह करते हैं। इस अन्तरिक्ष में मेघ इधर-उधर घूम रहे हैं। इन मेघों को वह अन्तरिक्ष भिन्न-भिन्न स्थानों पर फेंकनेवाला, बरसानेवाला होता है।

भावार्थ—यह अन्तरिक्ष सब पिण्डों व मेघों का गति-स्थान बना हुआ है। यह अन्तरिक्ष ही मानो इन गर्जते हुए मेघों को उस-उस स्थान पर वृष्टि करता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**पृथिवी** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

वनस्पति सेवन व ओजस्विता

दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा। यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः॥ ३॥

(१) हे पृथिवि-अन्तरिक्ष देवते! तू वह है **या**=जो **दृढा चित्**, **वनस्पतीन्**=इन अतिशयेन दृढ़ वनस्पतियों को **ओजसा**=ओजस्विता के हेतु से **क्ष्मया**=इस पृथिवी के द्वारा **दर्धर्षि**=अतिशयेन धारण करती है। वनस्पति पृथिवी में प्रतिष्ठित है। इनका पालन अन्तरिक्ष देवता वृष्टि के द्वारा करती है। इनका पालन इसलिए है कि इनके प्रयोग से प्रयोक्ता ओजस्विता को प्राप्त कर सकें। प्रभु ने यह सब व्यवस्था मनुष्यों को ओजस्वी बनाने के लिये की है। (२) **यत्**=जो **ते अभ्रस्य**=तेरे सम्बन्धी इस बादल की **वृष्टयः**=वृष्टियाँ **विद्युतः दिवः**=बिजलियों से दीप्त इस आकाश से **वर्षन्ति**=वृष्टि होती हैं तब इन वनस्पतियों का धारण होता है और मनुष्य ओजस्वी बनते हैं।

भावार्थ—अन्तरिक्ष वृष्टि के द्वारा इस पृथिवी में वनस्पतियों को उत्पन्न करता है। इनके प्रयोग से मनुष्य ओजस्विता का लाभ करते हैं।

अगले सूक्त में 'अत्रि' ऋषि 'वरुण' की उपासना करते हैं। उस 'वरुण' नामक प्रभु का जो पापों का निवारण करनेवाले हैं—

८५. [पञ्चाशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सम्राट् वरुण श्रुत' प्रभु

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय॥ १॥

(१) हे उपासक! तू **सम्राजे**=सम्यग् दीप्यमान, **वरुणाय**=सब पापों के निवारक **श्रुताय**=प्रसिद्ध-सर्वज्ञ प्रभु के लिये **बृहत्**=खूब ही **प्र अर्चा**=पूजा कर। उस प्रभु की पूजा के लिये **गभीरं**=इस बह्वर्थोपेत, अर्थात् अत्यन्त गम्भीर **प्रियम्**=प्रीति के जनक **ब्रह्म**=वेद-मन्त्रों से किये जानेवाले स्तोत्रों का (प्रार्च=प्रोच्चारय सा०) उच्चारण कर। (२) **यः**=जो वरुण **सूर्याय उपस्तिरे**=सूर्य किरणों के विस्तार के लिये **पृथिवीम्**=इस पृथिवी को **विजघान**=फैलाते हैं। इस प्रकार फैलाते हैं, **इव**=जैसे कि **शमिता चर्म**=शान्तभाव से उपासना करनेवाला अपने आसन के लिये मृगचर्म को बिछाता है।

भावार्थ—प्रभु 'सम्राट् है, वरुण है, श्रुत हैं। हम मन्त्रों द्वारा खूब ही प्रभु का अर्चन करें। प्रभु सूर्य किरणों के विस्तार के लिये इस पृथिवीरूप आसन को बिछाते हैं। पृथ्वी सूर्य किरणों से

आच्छादित हो जाती है।'

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

क्या-क्या कहाँ-कहाँ?

वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ॥ २॥

(१) **वरुणः**=उस सब से वरण के योग्य, सब वरणीय वस्तुओंवाले प्रभु ने **वनेषु**=वनों में, खुले स्थानों में, घरों व घनी वस्तियों से दूर **अन्तरिक्षं विततान**=अन्तरिक्ष को विस्तृत किया है। घनी बस्तियों में आकाश फैला हुआ नहीं दिखता। खुले स्थानों में आकाश का विस्तार स्पष्ट हो जाता है। उस प्रभु ने **अर्वत्सु**=घोड़ों में **वाजम्**=शक्ति को तथा **उस्त्रियासु**=गौवों में **पयः**=दूध को स्थापित किया है। (२) ठीक इसी प्रकार उस वरुण के **हृत्सु**=मानव हृदयों में **क्रतुम्**=कर्म-संकल्प को रखा है। शक्ति के बिना जैसे घोड़ा घोड़ा नहीं, न दूध देनेवाली गौ गौ क्या? इसी प्रकार कर्म-संकल्प के बिना हृदय हृदय नहीं। उस प्रभु ने **अप्सु**=प्रजाओं के अन्दर **अग्निम्**=शक्ति की उष्णता को धारण किया है। **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **सूर्यं अदधात्**=ज्ञान सूर्य को स्थापित किया है और **अद्रौ**=उपासनामय हृदय में (adore worship) **सोमम्**=सोमशक्ति को व सौम्यता को स्थापित किया है। उपासनामय हृदय में ही सौम्यता का निवास होता है तथा शरीर में सोम के रक्षण का संभव होता है।

भावार्थ—जैसे प्रभु ने घोड़ों में शक्ति को व गौवों में दूध को स्थापित किया है, उसी प्रकार मानव हृदयों में कर्म संकल्प को स्थापित किया है। इस कर्म के लिये ही शक्ति की उष्णता, ज्ञानसूर्य का प्रकाश व सोमशक्ति की स्थापना हुई है। 'उत्साह, शक्ति व ज्ञान' पूर्वक हम सदा कर्म करनेवाले हों।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भूमि-क्लेदन

नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम॥ ३॥

(१) **वरुणः**=जलों का स्वामी वरुण **कवन्धम्**=जल को **नीचीनबारम्**=नीचे निर्गमन बिलवाला **प्रससर्ज**=करता है। मेघ को विदीर्ण करके जल को अधोमुख करता हुआ **रोदसी**= द्यावापृथिवी को तथा **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष को हितयुक्त करता है। लोकत्रय के हित के लिये प्रभु इस वृष्टि की व्यवस्था करते हैं। (२) **तेन**=इस वर्षण के द्वारा प्रभु **विश्वस्य भुवनस्य राजा**=सम्पूर्ण भुवन को दीप्त करनेवाले हैं। **न**=जैसे **वृष्टिः**=एक सेचन कार्य को करनेवाला व्यक्ति **यवम्**=गौ को सींचता है, इसी प्रकार वे प्रभु **भूम**=इस भूमि को **व्युनत्ति**=क्लिन्न करते हैं। इस क्लेदन से ही भूमि विविध अन्नों को जन्म देनेवाली बनती है।

भावार्थ—सब कष्टों का निवारण करनेवाले प्रभु वृष्टि के द्वारा भूमि को क्लिन्न करते हुए अन्नोत्पत्ति द्वारा सबका कल्याण करते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वरुणः

उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित्।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः॥ ४॥

(१) वह **वरुणः**=वरणीय प्रभु उस समय **भूमिम्**=इस पृथिवी को, **पृथिवीम्**=विस्तृत अन्तरिक्ष को **उत**=और **द्याम्**=द्युलोक को **उनत्ति**=गीला करते हैं, जल की सीलवाला करते हैं, **यदा**=जब कि वे वरुण **दुग्धम्**=(दुह प्रपूरणे) जल के प्रपूरण को **वष्टि**=चाहते हैं। (२) **आत् इत्**=शीघ्र ही उस समय **पर्वतासः**=पर्वत **अभ्रेण**=इन मेघों से **संवसत**=अपने को आच्छादित करते हैं, पर्वत मेघरूप वस्त्रों से ढक जाते हैं और **तविषीयन्तः**=बल को चाहते हुए, खूब बलवान् की तरह आचरण करते हुए **वीराः**=वृष्टि के विशेषरूप से (वि) प्रेरित करनेवाले (ईर) वायु **श्रथयन्त**=इन मेघों को ढीला करते हैं, वृष्ट्युन्मुख करते हैं। ये वायुवें ही 'वृष्टि को लानेवाली वायुवें' कहाती हैं।

भावार्थ—प्रभु जब मेघों द्वारा यहाँ जल के प्रपूरण की कामना करते हैं तो वे इस वर्षण द्वारा लोकत्रयी को क्लिन्न करते हैं। बादल पर्वतों को ढक लेते हैं और वायुवों से इधर-उधर प्रेरित होते हुए उस-उस स्थान पर बरसते हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण

इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम्।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण॥ ५॥

(१) **आसुरस्य**=(असुरो मेघः) प्राणशक्ति का संचार करनेवाले मेघ के विदीर्ण करनेवाले **श्रुतस्य**=प्रसिद्ध **वरुणस्य**=सर्वज्ञ (प्रचेताः) प्रभु की **इमाम् ऊ महीं मायाम्**=इस ही महान् प्रज्ञा का **सु प्रवोचम्**=मैं स्तुतिरूप में प्रतिपादन करता हूँ। (२) **यः**=जो प्रभु **अन्तरिक्षे**=इस विशाल अन्तरिक्षलोक में **तस्थिवान्**=आप्त होकर स्थित हुए-हुए **मानेन इव**=मानो मापदण्ड से माप कर ही **सूर्येण**=सूर्य से **पृथिवीम्**=इस पृथिवी को **विममे**=बनाते हैं। इस सूर्य से ही अन्य लोकों का प्रभु ने मानपूर्वक निर्माण किया।

भावार्थ—सृष्टि में प्रत्येक पिण्ड बड़े नपे-तुले रूप में बना हुआ है। यह पिण्डों का मान प्रभु की महिमा का द्योतन कर रहा है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

क्या ही आश्चर्य है?

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम्॥ ६॥

(१) **इमां उ**=इस ही **नु**=अब **कवितमस्य**=उस कान्तप्रज्ञ **देवस्य**=प्रकाशमय प्रभु की **महीं मायाम्**=महती माया को **नकिः आदधर्ष**=कोई भी हिंसित नहीं कर पाता। उस महान् प्रभु की, यह मन्त्र के उत्तरार्ध में वर्णित, माया ही अत्यन्त महान् है **यत्**=कि, (२) **एकं समुद्रम्**=इस एक समुद्र को **एनीः**=ये शुभ्रवर्णवाली गतिशील **आसिञ्चन्तीः**=चारों ओर से सींचती हुई

अवनयः=नदियाँ **उद्ना**=उदक से **न पृणन्ति**=नहीं भर देती हैं। निरन्तर समुद्र में नदियाँ पड़ रही हैं, पर समुद्र उसी रूप में है। 'कभी यह भरकर ऊर्ध्वप्रवाहवाला हो जाये' ऐसी बात नहीं है। क्या ही विचित्र व्यवस्था है?

भावार्थ—चारों ओर से निरन्तर गतिवाली नदियों से भरा जाता हुआ भी यह समुद्र भर नहीं जाता। क्या ही विचित्र व्यवस्था है?

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

निष्पाप जीवन

अर्य॒म्यं॑ वरुण मि॒त्र्यं॑ वा॒ सखा॑यं वा॒ सद॒मिद् भ्रात॑रं वा।
वे॒शं वा॒ नित्यं॑ वरु॒णार॑णं वा॒ यत्सी॒माग॑श्चकृ॒मा शि॒श्रथ॒स्तत्॥ ७॥

(१) हे **वरुण**=पाप-निवारक परमात्मन्! जैसे आप गतमन्त्र में वर्णित शब्दों में समुद्र को मर्यादा में रखते हैं, इसी प्रकार आप मुझे भी मर्यादित जीवनवाला बनाइये। **अर्यम्यम्**=(अर्यमेति तमाहुर्यो ददाति) दान देनेवाले के विषय में, **मित्र्यं वा**=अथवा स्नेह करनेवाले के विषय में **सखायं वा**=एक साथ ज्ञान प्राप्त करनेवाले सहाध्यायी के विषय में, **वेशं वा नित्यम्**=और सदा के पड़ोसी के विषय में, **अरणं वा**=या दूर के व्यक्ति के विषय में **यत्**=जो भी **आगः चकृम**=अपराध कर बैठें, हे **वरुण**=पापनिवारक प्रभो! उस पाप को **सीम्**=निश्चय से **शिश्रथ**=ढीला करिये। (२) हम अपने स्वार्थ के लिये उल्लिखित व्यक्तियों के विषय में अपराध कर बैठते हैं। मन को काबू न रख सकने पर पाप हो जाता है। हम वरुण का स्मरण करें। ये वरुण हमें पापों से बचायेंगे।

भावार्थ—वरुण का स्मरण करते हुए हम विविध व्यक्तियों के विषय में हो जानेवाले पापों से अपने को बचा पायें।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

निष्पापता व वरुण-प्रियता

कि॒त॒वासो॒ यद्रि॑रि॒पुर्न दी॒वि यद्वा॑ घा स॒त्यमु॒त यन्न वि॒द्म।
सर्वा॒ ता वि ष्य॑ शिथि॒रेव॑ दे॒वाधा॑ ते स्याम वरुण प्रि॒यासः॑॥ ८॥

(१) **कितवासः**=जुआरी व्यक्ति **न**=जैसे **दीवि**=देवन (जुए) कर्म में **यत् रिरिपुः**=जिस पाप का हमारे पर यों ही लेप कर देते हैं। अर्थात् जिस पाप को हमने किया तो नहीं, पर दूसरे द्वेषवश यों ही हमारे पर उसे थोप देते हैं। **वा**=अथवा **यत् घा सत्यम्**=जो निश्चय से सचमुच पाप हमारे से हो गया है। **यत् न विद्म**=जिस पाप को हम जानते नहीं, अर्थात् जो अनजाने में हो जाता है। हे **देव**=सब बुराइयों को कुचलने की कामनावाले प्रभो! आप **सर्वा ता**=उन सब पापों को **शिथिरा इव**=अत्यन्त शिथिल हुओं-हुओं की तरह **विष्य**=हमारे से पृथक् कर दीजिये। (२) हे **वरुण**=हमारे जीवनों को व्रतों के बन्धन में बाँधनेवाले प्रभो! (पाशी) **अधा**=अब पापविमोचन के होने पर **ते**=आपके **प्रियासः स्याम**=हम प्रिय हों। निष्पाप जीवनवाले बनकर हम आपके प्रिय बनें।

भावार्थ—निष्पापता हमें प्रभु का प्रिय बनाये।

निष्पाप बनकर हम इन्द्राग्नी के, बल व प्रकाश के आराधक बनते हैं। सो **अत्रि**=त्रिविध पापों से काम-क्रोध-लोभ जन्य पापों से ऊपर उठा हुआ व्यक्ति इन्द्राग्नी की आराधना करता हुआ

कहता है—

८६. [षडशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

दृढदुर्ग भेदन

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम्। दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १ ॥

(१) 'इन्द्र' बल का प्रतीक है तथा 'अग्नि' प्रकाश का। हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश की देवताओ! आप **उभा**=दोनों **वाजेषु**=इन जीवन-संग्रामों में **यं मर्त्यम्**=जिस मनुष्य को **अवथः**=रक्षित करते हो। **सः**=वह **दृढा चित्**=काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों को भी **प्रभेदति**=विदीर्ण कर डालता है। शरीर में शक्ति व मस्तिष्क में ज्ञान के होने पर इस प्रकार बल व ज्ञान के समन्वय के होने पर काम-क्रोध-लोभ नष्ट हो जाते हैं। (२) इन शत्रुदुर्गों का प्रभेदन यह इस प्रकार करता है **इव**=जैसे कि **त्रितः**=काम-क्रोध-लोभ से तैर जानेवाला व्यक्ति अथवा 'शरीर, मन, बुद्धि' तीनों का विस्तार करनेवाला यह व्यक्ति **द्युम्नाः वाणी**=ज्योतिर्मयी ज्ञानवाणियों को प्रभेदति=खुले हुए मर्मवाला करता है। इन ज्ञान-वाणियों के रहस्य को यह समझनेवाला बनाता है।

भावार्थ—ज्ञान व बल का समन्वय हमें काम-क्रोध-लोभ को जीतनेवाला तथा ज्ञानवाणियों के मर्म को समझनेवाला बनाता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

दुष्टरा-श्रवाय्या

या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या। या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥

(१) **या**=जो इन्द्र और **अग्नि**=बल व प्रकाश के देवता **पृतनासु**=संग्रामों में **दुष्टरा**=शत्रुओं से अभिभूत होने योग्य नहीं और **या**=जो **वाजेषु**=बलों में **श्रवाय्या**=प्रशंसनीय हैं, **ता**=उन **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवों को **हवामहे**=हम पुकारते हैं। इनकी आराधना हमें संग्रामों में विजयी व प्रशंसनीय बलवाला बनाती है। (२) ये इन्द्र और अग्नि वे हैं **या**=जो **पञ्च**=पाँचों **चर्षणीः**=अभि (चर्षणि=seeing, moving) ज्ञानों व कर्मों के प्रति हमें प्रेरित करते हैं। इन इन्द्र और अग्नि की उपासना से पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी ठीक बनी रहती हैं और पाँचों कर्मेन्द्रियाँ भी सशक्त होती हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन हमें (१) संग्रामों में विजयी बनाता है, (२) प्रशस्त शक्तिवाला करता है तथा (३) ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को अपने व्यापारों में ठीक से प्रेरित रखता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

अमवत् शवः

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः। प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥

(१) **तयोः इत्**=उन दोनों का ही, गतमन्त्र में वर्णित 'इन्द्र व अग्नि' का ही **शवः**=बल **अमवत्**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाला है। इन **मघोनोः**=शक्ति व ज्ञानरूप ऐश्वर्यवाले इन्द्र और अग्नि का ही **दिद्युत्**=वज्र **तिग्मा**=बड़ा तीक्ष्ण है। इनका वज्र शत्रुओं का विनाश करनेवाला है। शक्ति यदि रोगरूप शत्रुओं का विनाश करती है, तो ज्ञान मानस विकारों का अन्त करनेवाला होता है। (२) ये इन्द्र और अग्नि **गभस्त्योः**=बाहुओं में **द्रुणा**=(द्रुगतौ) गतिमयता, अर्थात् क्रियाशीलता

से **गवाम्**=इन इन्द्रियों को **वृत्रघ्ने**=आवरणभूत कामविकारों के विनाश के लिये **प्रति आ एषते**=प्रतिदिन सर्वथा प्राप्त होते हैं। वस्तुतः शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करके ज्ञानपूर्वक कर्मों में लगे रहना ही वह उपाय है, जो हमें इन्द्रियों को विषयों से आक्रान्त होने से बचाता है। यही इन गौवों का वृत्र के आक्रमण से रक्षण है।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का बल शत्रुओं का विनाश करता है। ये इन्द्र और अग्नि इन्द्रियों को विषयाक्रान्त नहीं होने देते।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

पती तुरस्य राधसः

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे। पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा॥ ४॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **ता वाम्**=उन आप दोनों को **रथानां एषे**=शरीर-रथों के मार्ग पर प्रेरित करने के लिये **हवामहे**=पुकारते हैं। हमारे इस शरीर-रथ में इन्द्र और अग्नि की स्थिति के होने पर, शक्ति व ज्ञान के प्रकाश के होने पर, जीवन-यात्रा सुन्दरता से पूर्ण होती है। हमारा यह शरीर-रथ न टूटता है, न भटकता है। इन्द्र इसे दृढ़ बनाता है और अग्नि इसे प्रकाश दिखाता है। (२) ये इन्द्र और अग्नि **तुरस्य**=शत्रुओं का संहार करनेवाले **राधसः**=ऐश्वर्य के **पती**=स्वामी हैं। अर्थात् ये हमें उस ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं, जो हमें विषयों में फँसानेवाला नहीं होता। ये इन्द्र और अग्नि **विद्वांसा**=ज्ञानी हैं, अपने कर्तव्यों को समझते हैं और **गिर्वणस्तमा**=अधिक-से-अधिक ज्ञान की वाणियों का सम्भजन करनेवाले हैं। इन्द्र व अग्नि से हमारा जीवन ज्ञान-प्रधान बनता है, हमारा सारा रिक्त समय स्वाध्याय के लिये अर्पित होता है।

भावार्थ—बल व प्रकाश के तत्त्व हमें उस ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं, जो हमें विषयों में नहीं फँसाता। इनके होने पर हमारा जीवन ज्ञान-प्रधान बना रहता है।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

अदभा-अर्हन्ता-अंशा इव

ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा। अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते॥ ५॥

(१) **ता**=वे दोनों **देवौ**=जीवन को दिव्यता प्राप्त करानेवाले इन्द्र और अग्नि—बल व प्रकाश के देव, **अनुद्यून्**=प्रतिदिन **वृधन्तौ**=वृद्धि को प्राप्त करते हुए **मर्ताय**=मनुष्य के लिये **अदभा**=न हिंसित होने देनेवाले हैं। इन्द्र यदि उसे रोगों से आक्रान्त नहीं होने देता तो अग्नि उसकी सब वासनाओं को भस्म कर देता है। (२) **अर्हन्ता चित्**=जो सचमुच पूजा के योग्य हैं उन इन्द्र और अग्नि को मैं **पुरः दधे**=सदा अपने सामने रखता हूँ। मेरे जीवन का लक्ष्य इन्द्र व अग्नि का आराधन होता है। ये **देवौ**=इन्द्र और अग्नि, बल व प्रकाश के देव **अर्वते**=(अर्व् to kill) शत्रुसंहार करनेवाले पुरुष के लिये **अंशौ इव**=दो कन्धों (shoulder) के समान हैं। जैसे कन्धे भार का वहन करते हैं, उसी प्रकार इसके जीवन के भार को इन्द्र और अग्नि वहन करनेवाले होते हैं। ज्ञानेन्द्रियों में 'अग्नि' देव काम करता है, तो कर्मेन्द्रियों में 'इन्द्र' देव। इस प्रकार इसकी जीवन-यात्रा बड़ी उत्तमता से पूर्ण होती है।

भावार्थ—बल व प्रकाश हमें हिंसित नहीं होने देते। ये पूजा के योग्य हैं। जीवन के भार का वहन करनेवाले हैं।

ऋषिः—**अत्रिः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराट्पूर्वानुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

श्रवः, रयिं, इषम्

एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम्॥ ६॥

(१) **एवा**=इस प्रकार **इन्द्राग्निभ्याम्**=इन्द्र व अग्नि तत्त्वों के हेतु से **हव्यं अहावि**=हव्य पदार्थ ही जठर की वैश्वानर अग्नि में आहुत किये जाते हैं। अर्थात् सात्त्विक पदार्थों के सेवन से हम बल व प्रकाश का वर्धन करनेवाले होते हैं। **अद्रिभिः**=(to adore) उपासकों से **घृतं न**=घृत के समान **शूष्यम्**=शत्रुशोषक बल में उत्तम **पूतम्**=पवित्र अन्न ही अपने में आहुत किया जाता है। घृत तथा 'शूष्य हव्य पदार्थों का सेवन' हमारे अन्दर बल व प्रकाश को बढ़ाता है। (२) **ता**=वे इन्द्र और अग्निः! आप **सूरिषु**=ज्ञानी पुरुषों में **श्रवः**=ज्ञान को धारण करें। **गृणत्सु**=स्तोताओं में **बृहद्रयिम्**=वृद्धि के कारणभूत ऐश्वर्य को **दिधृतम्**=धारण करें तथा इन **गृणत्सु**=स्तोताओं में **इषम्**=प्रेरणा को **दिधृतम्**=धारण करें। इन्द्र व अग्नि के विकास से हृदय की पवित्रता होकर, अन्तःस्थित प्रभु प्रेरणा के सुनने का सम्भव होता है।

भावार्थ—घृत तथा हव्य पदार्थों का सेवन हमारे में बल व प्रकाश का वर्धन करता है। ये बल व प्रकाश के देव हमारे जीवनों में ज्ञान, ऐश्वर्य व प्रेरणा को प्राप्त करानेवाले होते हैं।

गतमन्त्र के अनुसार ज्ञान, ऐश्वर्य व प्रेरणा को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति सदा मार्ग से चलनेवाला होने से 'एवया' कहलाता है और इस मार्ग पर चलने के लिये यह प्राणों की साधना करनेवाला व्यक्ति मरुत् (प्राण) ही कहलाता है। यह एवयामरुत् प्राणों के विषय में कहता है—

८७. [सप्ताशीतितमं सूक्तम्]

ऋषिः—**एवयामरुदात्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**अतिजगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु-स्मरण व प्राणायाम

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे॥ १॥

(१) हे **एवयामरुत्**=मार्ग पर चलनेवाले प्राणसाधक पुरुष! **वः मतयः**=तुम्हारी मननपूर्वक की गई स्तुतियाँ **गिरिजाः**=इस वेदवाणी में निष्पन्न हों और उस **महे**=महान् **मरुत्वते**=प्रशस्त प्राणोंवाले, साधकों को प्रशस्त प्राणशक्ति प्राप्त करानेवाले, **विष्णवे**=व्यापक प्रभु के लिये **प्रयन्तु**=प्रकर्षेण प्राप्त हों। वस्तुतः यह स्तवन ही हमें मार्गभ्रंश से बचाकर प्रशस्त प्राणशक्तिवाला बनाता है। (२) तुम्हारी ये स्तुतियाँ **शर्धाय**=मरुतों के बल के लिये **प्र**=प्राप्त हों। जो मरुतों का बल **प्रयज्यवे**=हमारे साथ उत्कृष्ट गुणों का मेल करनेवाला है। **सुखादये**=खूब ही शत्रुओं को खा जानेवाला है। **तवसे**=वृद्धि के लिये है, **भन्ददिष्टये**=स्तुतिरूप यज्ञोंवाला है, **धुनिव्रताय**=शत्रु-कम्पनरूप कर्मवाला है और **शवसे**=गतिशीलता का कारण है (शवतिर्गतिकर्मा) अथवा बल को देनेवाला है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें और प्राणसाधना में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—एवयामरुदात्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—स्वराड्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

'शक्ति विकास' व 'ज्ञानदीप्ति'

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥ २ ॥

(१) **एवयामरुत्**=मार्ग पर चलनेवाला प्राणसाधक पुरुष **ब्रुवते**=उन मरुतों (प्राणों) की स्तुति करता है, **ये**=जो मरुत् **महिना**=अपनी महिमा से **प्रजाताः**=प्रकृष्ट विकासवाले हैं, जिनके द्वारा शरीर में सब शक्तियों का विकास होता है ये **च**=और जो **स्वयम्**=अपने आप **विद्मना**=ज्ञान से **प्र** (जाताः)=प्रकृष्ट प्रादुर्भाव होते हैं। प्राणसाधना के द्वारा अशुद्धियों का क्षय होकर ज्ञानदीप्ति चरमसीमा पर पहुँचकर विवेकख्याति को सिद्ध करती है। (२) हे **मरुतः**=प्राणो! **वः तद् शवः**=आपका वह प्रसिद्ध बल **क्रत्वा**=यज्ञादि उत्तम कर्मों से युक्त हुआ-हुआ **न आधृषे**=किन्हीं भी शत्रुओं से धर्षणीय नहीं होता। **तत्**=सो **एषाम्**=इन मरुतों को **दाना**=शत्रुलवन (काटना) रूप कार्य से (दाप् लवने) तथा **मह्ना**=महिमा से **अद्रयः**=प्रभु के उपासक लोग **अधृष्टासः न**=अधर्षणीय वीरों के समान होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से (१) सब शक्तियों का विकास होता है, (२) ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है, (३) अधर्षणीय बल की प्राप्ति होकर हम शत्रुओं से अधर्षणीय वीर बन पाते हैं।

ऋषिः—एवयामरुदात्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—भुरिग्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

सुशुक्वानः, सुभ्वः (ज्ञानदीप्त-स्वस्थ)

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम्॥ ३ ॥

(१) **ये**=जो मरुत **बृहतः दिवः**=वृद्धि के कारणभूत महान् ज्ञान को **गिरा धुनीनाम्**=उत्तम वाणियों के द्वारा **प्रशृण्विरे**=खूब विश्रुत (प्रसिद्ध) हैं। प्राणसाधना ही मनुष्य को सूक्ष्म बुद्धि बनाकर इन ज्ञान की वाणियों को समझने के योग्य बनाती है। ये व्यक्ति ही **सुशुक्वानः**=ज्ञान की उत्तम दीप्तिवाले होते हैं और **सुभ्वः**=(सुष्ठु भवन्तः) स्वस्थ होते हैं। **एवयामरुत्**=ये ही मार्ग पर चलनेवाले प्राणसाधक पुरुष हैं। (२) **येषाम्**=जिन प्राणों का **सधस्थे**=जीव व प्रभु के सह-स्थान हृदय में **इरी**=प्रेरिता **न ईष्टे**=हिंसित नहीं होता। वे प्राण **अग्नयः न**=अग्नियों के समान **स्वविद्युतः**=अपनी विशिष्ट दीप्तिवाले हैं और **धुनीनाम्**=(sounds) वाणियों के **प्रस्पन्द्रासः**=प्रकर्षेण प्रेरित करनेवाले हैं। प्राणसाधना के होने पर ज्ञान की वाणियों का खूब ही प्रकाश होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें 'ज्ञानदीप्त व स्वस्थ' बनाती है। इससे दीप्ति प्राप्त होती है और ज्ञान की वाणियों का रहस्य प्रकट हो जाता है।

ऋषिः—एवयामरुदात्रेयः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

रेचक प्राणायाम व इन्द्रियों की निर्दोषता

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत्।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥

(१) **सः**=वह **उरुक्रमः**=महान् पराक्रमवाला प्राणों का गण **महतः**=महान् **समानस्मात्**

सदसः=समान स्थान से, अर्थात् जीव और प्रभु के समानरूप से रहने योग्य हृदयप्रदेश से **निः चक्रमे**=बाहिर गतिवाला होता है। रेचक प्राणायाम के समय यह हृदय को छोड़कर बाहर फेंका जाता है। उस समय इस प्राणसाधना को करता हुआ यह **एवयामरुत्**=मार्ग पर चलनेवाला प्राणसाधक पुरुष **यदा**=जब **विष्पर्धसः**=जिनके साथ स्पर्धा (मुकाबिला) करनी बड़ी कठिन है, ऐसे **विमहसः**=विशिष्ट तेजवाले **शेवृधः**=सुख का वर्धन करनेवाले इन्द्रियाश्वों को **त्मना अयुक्त**=अपने साथ, अपने इस शरीर-रथ के साथ जोतता है। प्राणसाधना के द्वारा विशेषतः इस रेचक प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं। श्वास वायु बाहिर जाता हुआ दोषों को भी अपने साथ बाहिर ही ले जाता है। निर्मल इन्द्रियाँ शक्तिशाली व तेजस्वी बनती हैं। (२) इस समय यह एवयामरुत् **स्वात्**=अपने से, अपने इस शरीर से **ष्णुभिः नृभिः**=गतिशील आगे ले चलनेवाले इन प्राणों के द्वारा **अधिजिगाति**=ऊपर उठकर प्रभु की ओर चलता है। इन्द्रियाँ जब तक सदोष बनी रहती हैं, तब तक प्रभु की ओर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्राणसाधना इन्हें निर्दोष करती है और हमें भौतिक सुखों के संग से दूर करके प्रभु-प्रवण करती है।

भावार्थ—रेचक प्राणायाम इन्द्रियों के दोषों को बाहिर फेंक देता है। इन इन्द्रियों के निर्दोष होने पर हमें ये प्राण प्रभु की ओर ले चलनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**एवयामरुदात्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

स्वरोचियः-स्थारश्मानः

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥

(१) हे मरुतो-प्राणो! **वः**=आपका रेचन व पूरण के समय होनेवाला **स्वनः**=शब्द **न रेजयत्**=मुझे कम्पित करनेवाला न हो। अर्थात् मैं इस प्राणसाधना में बहुत हिलता-जुलता ही न रहूँ। 'स्थिरसुखमासनम्' इस योगसूत्र के अनुसार स्थिरता से आसन पर आसीन रहूँ। यह आपका स्वनः **अमवान्**=प्रबल है, **वृषा**=शक्ति का सेचन करनेवाला है, **त्वेषः**=दीप्त है, **ययिः**=तुझे गतिशील बनानेवाला है, मेरे में स्फूर्ति व क्रियाशीलता को उत्पन्न करनेवाला है। **तविषः**=बल का वर्धक है। (२) प्राणों के इस प्राणसाधना में होनेवाले 'इं-स' इस अव्यक्त ध्वनिरूप **येन**=स्वन से जिस ही **एवयामरुत्**=मार्ग पर चलनेवाले प्राणसाधक पुरुष **सहन्तः**=शत्रुओं का अभिभव करते हुए **ऋञ्जत**=अपने जीवन को प्रसाधित व अलंकृत करते हैं। **स्वरोचिषः**=आत्मदीप्तिवाले बनते हैं, **स्थारश्मानः**=स्थिर ज्ञानरश्मियोंवाले होते हैं, **हिरण्ययाः**=ज्योतिर्मय जीवनवाले बनते हैं, **स्वायुधासः**=उत्तम 'इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप आयुधोंवाले होते हैं और **इष्मिणः**=प्रभु प्रेरणा को प्राप्त करके (इष् प्रेरणे) खूब गतिशील जीवनवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना में स्थिरता से प्रवृत्त हुए-हुए हम शत्रुओं का अभिभव करके ज्ञान-विज्ञान का वर्धन करते हुए जीवन को प्रशस्त 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' वाला बनायें।

ऋषिः—**एवयामरुदात्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वृद्धशवसः-शुशुक्वांसः

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत्।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥

(१) हे मरुतो-प्राणो! **वः**=आपकी **महिमा**=महिमा **अपारः**=अधिक है, अनन्त है।

वृद्धशवसः=हे बढ़े हुए बलवाले प्राणो! आपका **त्वेषं शवः**=दीप्त बल **एवयामरुत्** (तं)=तुझ एवयामरुत् को, मार्ग पर चलनेवाले प्राणसाधक को **अवतु**=रक्षित करे। (२) हे प्राणो! आप **हि**=निश्चय से **प्रसितौ**=व्रतों के बन्धन में व परिणामतः **सन्दृशि**=प्रभु के सन्दर्शन में **स्थातारः स्थन**=स्थित होनेवाले हो। प्रभु का यह प्राणसाधक उपासक व्रतमय जीवनवाला व प्रभु का दर्शन करनेवाला बनता है। हे प्राणो! **ते**=वे आप **नः निदः उरुष्यत**=हमारा निन्दनीय कर्मों से रक्षण करो। आपकी साधना के द्वारा हम निन्दनीय कर्मों को करनेवाले न हों। और **अग्नयः न**=अग्नियों के समान **शुशुक्वांसः**=दीप्त जीवनवाले हों।

भावार्थ—प्राणसाधना से (१) बल बढ़ता है, (२) जीवन व्रती बनता है, (३) हम व्रतमय जीवनवाले होते हैं, (४) प्रभु दर्शन को प्राप्त करते हैं, (५) अग्नि के समान दीप्त व तेजस्वी होते हैं।

ऋषिः—**एवयामरुदात्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

निष्पाप दीर्घजीवन

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत्।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम्॥ ७॥

(१) **ते**=वे प्राण **रुद्रासः**=(रुत् द्र) सब रोगों का द्रावण करनेवाले हैं। **सुमखाः**=उत्तम यज्ञोंवाले हैं। प्राणसाधना से शरीर नीरोग बनता है और हमारी वृत्ति यज्ञों के करने की होती है। इस प्रकार नीरोग यज्ञशील बनकर हम **यथा अग्नयः**=अग्नियों के समान होते हैं। **तुविद्युम्नाः**=ये प्राण प्रभूत=ज्योतिवाले हैं। प्राणसाधना से बुद्धि की तीव्रता होकर ज्ञान वृद्धि होती है। ऐसे ये प्राण **एवयामरुत्** (तं)=मार्ग पर चलनेवाले इस प्राणसाधक को **अवन्तु**=रक्षित करें। (२) वे प्राण इस एवयामरुत् की रक्षा करें, **येषाम्**=जिनके **अज्मेषु**=गमनों में, रेचक व पूरक प्राणायामों में गति के होने पर यह **पार्थिवं सद्म**=पार्थिव शरीर **दीर्घम्**=दीर्घकाल तक **पृथु**=विस्तृत शक्तियोंवाला होता हुआ **पप्रथे**=विस्तृत होता है। इन **अद्भुतैनसाम्**=(अभूत पापानां) पापशून्य प्राणों के मार्गों में **महः शर्धांसि**=महान् बल **आ**=(गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। प्राणसाधना से जीवन निष्पाप व शक्ति-सम्पन्न बनता है।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर हमारा जीवन 'नीरोग, यज्ञमय, प्रभूत-ज्योतिवाला, तेजस्वी' बनता है। हम निष्पाप दीर्घजीवन को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**एवयामरुदात्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**स्वराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

यज्ञमय निर्द्वेष जीवन

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत्।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः॥ ८॥

(१) हे **नः मरुतः**=हमारे प्राणो! आप **अद्वेषः**=(अद्वेषसः) द्वेष शून्य होते हुए **गातुं एतन**=मार्ग पर चलो। प्राणसाधना हमें कभी मार्गभ्रष्ट नहीं होने देती। हे प्राणो! **एवयामरुत्** (तः)=इस मार्ग पर चलनेवाले प्राणसाधक **जरितुः**=स्तोता की **हवं श्रोता**=पुकार को सुनो। आपकी साधना के द्वारा मैं सदा मार्ग पर चलता रहूँ। कभी भटकूँ नहीं। (२) हे **विष्णोः समन्यवः**=उस व्यापक प्रभु के यज्ञों से युक्त होते हुए आप **महः**=तेजस्विता को **युयोतन**=(यु मिश्रणे) हमारे साथ जोड़ो। प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजाओं के साथ ही यज्ञों को भी उत्पन्न

किया। इन प्रभु के यज्ञों को ये प्राण ही हमारे साथ जोड़ते हैं। **स्मद्रथ्यः न**=जैसे (स्मत्=प्रशस्त) प्रशस्त रथी शत्रुओं को दूर करते हैं, उसी प्रकार **दंसना**=उत्तम कर्मों के द्वारा **द्वेषांसि**=द्वेषों को **सनुतः अप**=अन्तर्हित रूप में आप **अप** (युयोतन)=हमारे से दूर करो। द्वेष हमारे से सदा सुदूर छिपे रहें। हमारा झुकाव कभी भी द्वेष वृत्तियों की ओर न हो।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा हमारा जीवन यज्ञमय व निर्द्वेष बने।

ऋषिः—**एवयामरुदात्रेयः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'यज्ञियवृत्ति' व 'पाप से दूर'

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत्।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥

(१) हे **नः**=हमारे प्राणो! आप **यज्ञियाः**=यज्ञरूप उत्तम कर्मों में प्रेरित करनेवाले होते हुए **यज्ञं गन्ता**=यज्ञ के प्रति प्राप्त होनेवाले होवो। **अरक्षः**=(अरक्षसः) राक्षसीभावों से रहित होते हुए आप **सुशमि**=(शोभन कर्म यथा भवति तथा, सुकर्मत्वाय सा०) शोभनकर्मता के लिये **एवयामरुत्** **(तः) हवं श्रोता**=मुझ मार्ग पर चलनेवाले प्राणसाधक की पुकार को सुनो। मैं आपकी साधना के द्वारा सदा सुकर्मा बनूँ। (२) **व्योमनि**=आकाश में, हृदयान्तरिक्ष में **ज्येष्ठासः न पर्वतासः**=बढ़े हुए पर्वतों के समान आप होवो। आप से टकराकर वासना की वात्याएँ छिन्न-भिन्न हो जायें। **यूयम्**=तुम **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले **स्यात**=होवो। आपके द्वारा हमारा ज्ञान बढ़े। **निदः दुर्धर्तवः**=निन्दनीय पापों के दुर्धर होवो। आपकी उपस्थिति में पाप हमारे जीवन में न आ सके।

भावार्थ—प्राणसाधना से यज्ञियवृत्ति बनती है और सब राक्षसीभाव विनष्ट हो जाते हैं। ये प्राण ज्ञानवर्धन के द्वारा हमें निन्द्य कर्मों से दूर रखते हैं।

॥ इति पञ्चमं मण्डलम् ॥

अथ षष्ठं मण्डलम्

गत सूक्त का प्राणसाधक पुरुष अपने में शक्ति को भरके 'भरद्वाज' बनता है और ज्ञानवर्धन करके यह 'बार्हस्पत्य' होता है। 'अग्नि' नाम से प्रभु का स्मरण करता हुआ यह कहता है कि—

प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथम सूक्तम्]

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'बुद्धि व बल के दाता' प्रभु

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वं हि**=आप ही **प्रथमः**=सर्वप्रथम **मनोता**=(मनः उतं सम्बद्धं यज) मन को बाँधनेवाले हैं। प्रभु को छोड़कर मन कहीं भी टिक नहीं पाता। प्रत्येक वस्तु के ओर द्वारे को (सिरों को) देखकर मन आगे बढ़ने की करता है। जब कभी प्रभु में जाता है, तो उसके अनादि अनन्त होने से न यह उसके सिरों तक पहुँचता है और नांही अन्यत्र जानेवाला होता है। यह मन प्रभु में ही उलझ जाता है। (२) हे **दस्म**=हमारे सब दुःखों का उपक्षय करनेवाले प्रभो! आप **अस्याः धियः होता**=इस बुद्धि के देनेवाले **अभवः**=होते हैं। आप से दी गई इस बुद्धि के द्वारा ही हम अपने दुःखों को दूर करनेवाले होते हैं। हे **वृषन्**=हमारे में शक्ति का सेचन करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप ही **सीम्**=निश्चय से **दुष्टरीतु सहः**=शत्रुओं से न आक्रान्त होने योग्य बल को **अकृणोः**=करते हैं। उस दुष्टरीतु=अहिंस्य बल को आप करते हैं, जो **विश्वस्मै**=सब **सहसे**=बलवान् शत्रुओं के **सहध्यै**=पराभव करने के लिये होता है।

भावार्थ—प्रभु हमें बुद्धि देते हैं और बल प्राप्त कराते हैं, जिससे कि हम सब शत्रुओं का पराभव कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन्।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन्॥ २॥

(१) **अधा**=अब **होता**=सब कुछ देनेवाले होते हुये आप **न्यसीदः**=हमारे हृदयों में आसीन होते हैं। **यजीयान्**=अतिशयेन उत्तम पदार्थों के प्राप्त करानेवाले आप (यज्=दाने) **इडस्पदे**=इस वेदवाणी के पद में **इषयन्**=प्रेरणा को प्राप्त कराते हुए आप **ईड्यः**=पूज्य व **सन्**=श्रेष्ठ हैं। (२) **तम्**=उन **प्रथमम्**='प्रथ विस्तारे' सर्वव्यापक **त्वा**=आपको **देवयन्तः**=दिव्यगुणों की कामनावाले **चितयन्तः**=चिन्तनशील ज्ञानी पुरुष **महे राये**=महान् ऐश्वर्य के लिये **अनुग्मन्**=अनुगमन करते

हैं। प्रभु का अनुगमन यही है कि प्रभु के अनुसार अपने अन्दर गुणों को धारण करना। इस मार्ग पर चलता हुआ मनुष्य महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता ही है।

भावार्थ—हमारे हृदयों में स्थित प्रभु हमें प्रेरणा देते हैं। इस प्रेरणा के अनुसार चलते हुए हम महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रुशन्-दीदिवान्

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै३स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन्।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम्॥ ३॥

(१) **बहुभिः वसव्यैः**=अनन्त वसुओं (=धनों) के साथ **वृता इव यन्तम्**=मार्ग से ही जाते हुए आपका **अनुग्मन्**=ज्ञानी पुरुष अनुसरण करते हैं। ये **जागृवांसः**=सदा जागते हुए, सावधान पुरुष **त्वे**=आप में **रयिम्**=धन को प्राप्त करते हैं। (२) उन आपका अनुगमन करते हुए ये ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं जो आप **रुशन्तम्**=शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं, **अग्निम्**=अग्रेणी हैं, **दर्शतम्**=दर्शनीय हैं, **बृहन्तम्**=महान् है, **वपावन्तम्**=उत्तम सद्गुणों के बीजों का वपन करनेवाले हैं और **विश्वहा**=सदा **दीदिवांसम्**=दीप्यमान हैं। आपका अनुगमन करते हुए ये भी काम-क्रोधादि का संहार करते हैं, आगे बढ़ते हैं, दर्शनीय जीवनवाले होते हैं, बड़े बनते हैं, विशाल हृदयवाले होते हैं, अपने जीवन में सद्गुणों के बीजों को बोने का प्रयत्न करते हैं और सदा स्वाध्याय से अपने जीवन को दीप्त बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु का अनुसरण हमें ऐश्वर्यशाली, काम, क्रोध आदि का विनाशक व सदा ज्ञानदीप्त बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नाम-स्मरण व पवित्रता

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ॥ ४॥

(१) **देवस्य**=उस प्रकाशमय प्रभु के **पदम्**=स्थान को **नमसा**=नमन के साथ **व्यन्तः**=जाते हुए, **श्रवस्यवः**=ज्ञान की कामनावाले ये भक्त **अमृक्तम्**=वासनाओं से अवाध्यमान **श्रवः**=ज्ञान को **आपन्**=प्राप्त होते हैं। प्रभु के चरणों में नम्रता से उपस्थित होना उस उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्ति का साधन बनता है, जो कि सब वासनाओं को विनष्ट करनेवाला होता है। (२) ये उपासक **यज्ञियानि**=यज्ञिय-पवित्र-आदरणीय **नामानि**=नामों को **चित्**=निश्चय से **दधिरे**=धारण करते हैं। (आप) के पवित्र नामों का जप करते हुए उन नामों के अनुसार अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न करते हैं और **ते**=आपकी **भद्रायां संदृष्टौ**=कल्याणी संदृष्टि में **रणयन्त**=रमण करते हैं। आपके सन्दर्शन में सब कार्यों को करते हैं, आनन्द का अनुभव करते हैं। प्रभु-स्मरणपूर्वक सब कार्यों को करना ही एकमात्र वह उपाय है जिससे कि हम मार्गभ्रष्ट नहीं होते और सदा उत्तम कर्मों में ही आनन्द का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—प्रभु के प्रति नमन से हम उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करते हैं। प्रभु के पवित्र नामों का स्मरण करते हुए पवित्र कर्मोंवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पिता-माता-त्राता

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम्॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **क्षितयः**=सब मनुष्य **पृथिव्याम्**=इस पृथिवी में **त्वां वर्धन्ति**=आपको ही बढ़ाते हैं। सब मनुष्य आपका ही स्तवन करते हैं। **जनानाम्**=मनुष्यों के **उभयासः रायः**=दोनों प्रकार के ऐश्वर्य शरीर में शक्तिरूप व मस्तिष्क में ज्ञानरूप ऐश्वर्य **त्वाम्**=आपको ही बढ़ानेवाले होते हैं। यह ज्ञानैश्वर्य व बल का ऐश्वर्य आपके ही कारण तो होता है। (२) **त्वम्**=आप ही **त्राता**=रक्षक हैं। **तरणे**=इस महासागर के तैरने में **चेत्यः भूः**=ज्ञान देनेवालों में उत्तम आप ही हैं। आपसे ही ज्ञान को प्राप्त करके हम सब संसार समुद्र को तैर पाते हैं। आप ही **सदं इत्**=सदैव **मानुषाणाम्**=मनुष्यों के **पिता माता**=पिता व माता हैं, आप ही उनके रक्षक हैं और निर्माण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही पिता हैं, माता हैं और त्राता हैं। भवसागर को तैरने के लिये ये ही ज्ञान को देनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नम्रतापूर्वक प्रभु का उपासन

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान्।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम॥ ६॥

(१) **सः**=ये प्रभु **सपर्येण्यः**=पूज्य हैं, **प्रियः**=प्रीति को उत्पन्न करनेवाले हैं। **विक्षु**=सब प्रजाओं में **अग्निः**=अग्रेणी होते हुए वे प्रभु **होता**=जीवन-यज्ञ को चलानेवाले हैं अथवा उन्नति के लिये सब साधनों को प्राप्त करानेवाले हैं। वे **मन्द्रः**=आनन्दस्वरूप **यजीयान्**=सर्वाधिक पूज्य प्रभु **निषसादा**=हमारे हृदयासन पर आसीन होते हैं। (२) हे प्रभो! **दमे**=इस शरीर गृह में **आदीदिवांसम्**=सर्वतो दीप्यमान **तम्**=उन **त्वा**=आपको **वयम्**=हम **ज्ञुबाधः**=(जानुनं बाधयन्तः) घुटने टेककर, अवनतजानु व प्रणत होकर **नमसा**=नमन के साथ **उपसदेम**=उपासीन हों। नम्रतापूर्वक आपकी उपासना करनेवाले बनें। आपकी उपासना हमारे जीवन को दीप्त बनायेगी।

भावार्थ—वे प्रभु ही पूज्य हैं। वे सर्वदाता प्रभु ही नम्रतापूर्वक उपास्य हों। उनकी उपासना हमें दीप्त जीवनवाला बनायेगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभुस्तवन के लाभ

तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **तं नव्यं त्वा**=उन स्तुत्य आपको **वयम्**=हम **सुध्यः**=उत्तम बुद्धियोंवाले, **सुम्नायवः**=प्रभु-स्तवन व आनन्द की कामनावाले, **देवयन्तः**=दिव्यगुणों को अपनाने की कामनावाले होते हुए **ईमहे**=याचना करते हैं, आपकी ही स्तुति करते हैं। वस्तुतः आपकी स्तुति ही हमें सुबुद्धि-प्रशस्त आनन्दवाला व दिव्यगुणसम्पन्न बनाती है। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो!

त्वम्=आप ही **दीद्यानः**=देदीप्यमान होते हुए **बृहता रोचनेन**=महान् दीप्ति व तेजस्विता से **विशः**=सब प्रजाओं को **दिवः अनयः**=प्रकाशमय स्वर्गलोक को प्राप्त कराते हैं। आप से प्राप्त करायी गयी यह ज्ञानदीप्ति हमारे कर्मों को शुद्ध करती है और हमें स्वर्गलोक को प्राप्त कराती है।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन हमें (१) उत्तम बुद्धिवाला बनाता है, (२) हमारे जीवन को आनन्दमय करता है, (३) हमें दिव्यगुणों की ओर ले चलता है, (४) हमारे ज्ञान को बढ़ाता हुआ हमें स्वर्ग को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रक्षण-शत्रु संहार व ऐश्वर्य प्राप्ति

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम्॥ ८॥

(१) हम उस प्रभु का स्तवन करते हैं जो **शश्वतीनाम्**=सनातन **विशाम्**=प्रजाओं के **विश्पतिम्**=रक्षक स्वामी हैं। 'शश्वतीनां' शब्द का अर्थ 'प्लुत गतिवाली' भी है। आलस्य शून्य प्रजाओं के प्रभु रक्षक हैं। '**कविं**'=सर्वज्ञ हैं, **नितोशनम्**=ज्ञान के द्वारा शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं। **वृषभम्**=शत्रुओं के संहार के द्वारा सुखों का वर्षण करनेवाले हैं। **चर्षणीनां प्रेतीषणिम्**=श्रमशील मनुष्यों को (प्राप्तगमनं) प्राप्त होनेवाले हैं। (२) **इषयन्तम्**=इस प्रेरणा को प्राप्त करानेवाले, '**पावक**'=प्रेरणा के द्वारा जीवन को पवित्र बनानेवाले, **राजन्तम्**=पवित्रता द्वारा दीप्ति को देनेवाले और दीप्ति के द्वारा **अग्रिम्**=आगे ले चलनेवाले उस प्रभु का हम स्तवन करें जो **रयीणां यजतम्**=सब ऐश्वर्यों का हमारे साथ संगतिकरण करनेवाले है।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण ही हमारा रक्षक है, हमारे शत्रुओं का संहारक है, हमें पवित्र बनाकर ऐश्वर्य-सम्पन्न करनेवाला है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'यज्ञ-स्तुति-ज्ञानदीप्ति-हव्य पदार्थों का दान'

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम्।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः॥ ९॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **सः मर्तः ते**=वह मनुष्य आपका है **यः**=जो **ईजे**=यज्ञ करता है, **शशमे च**=और स्तुति करता है तथा **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के साथ **हव्यदातिं आनट्**=हव्य पदार्थों के दान का व्यापन करता है। 'यज्ञ, स्तुति, ज्ञानदीप्ति व हव्य पदार्थों का दान' ये बातें प्रभु-भक्त की पहिचान कराती हैं। (२) **यः**=जो **नमोभिः**=नमस्कारों के साथ **आहुतिं परिवेदा**=आहुति को जानता है, अर्थात् यज्ञशील बनता है, **सः**=वह **त्वा ऊतः**=आप से रक्षित हुआ-हुआ **विश्वा इत्**=सब ही **वामा**=सुन्दर वस्तुओं को **दधते**=धारण करता है। 'नमन व यज्ञशीलता' सब सुन्दर वस्तुओं की प्राप्ति का कारण बनती हैं।

भावार्थ—'यज्ञ, स्तुति, ज्ञानदीप्ति, हव्य पदार्थों का दान' ये प्रभु-भक्त के लक्षण हैं। यह प्रभु-भक्त सब सुन्दर पदार्थों को प्राप्त करता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

नम्रता-ज्ञान व दान

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम॥ १०॥

(१) **अस्मै**=इस **महे**=महान् **ते**=तेरे लिये **महि विधेम**=खूब ही पूजा करें। हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नमोभिः**=नमस्कारों द्वारा, **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा, **उत**=और **हव्यैः**=(हु दाने) दानों के द्वारा हम आपका पूजन करें। प्रभु का उपासक 'नम्रता-ज्ञानदीप्ति व दान की वृत्तिवाला' होता है। (२) हे **सहसः सूनो**=शक्ति के पुञ्ज प्रभो! हम **वेदी**=इस शरीर रूप यज्ञभूमि में **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा तथा **उक्थैः**=स्तुति-वाणियों के द्वारा **ते**=आपकी **भद्रायां सुमतौ**=कल्याणी सुमति में **आयतेम**=समन्तात् यत्नशील हों। अर्थात् हमारे सब कार्य आपकी कल्याणी मति के अनुसार हों। इस कल्याणी मति को प्राप्त करने के लिये स्वाध्याय व स्तवन (गीर्भिः, उक्थैः) सहायक होते हैं।

भावार्थ—हम 'नम्रता, ज्ञानदीप्ति व दानवृत्ति' को धारण करते हुए प्रभु के उपासक हों। स्वाध्याय व स्तवन करते हुए हम सदा प्रभु की कल्याणी मति के अनुसार यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करनेवाले हों।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'बृहत्, स्थविर, रेवत्' वाज

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्रः।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि॥ ११॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **यः**=जो आप हैं वे **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **विभासा**=विशिष्ट दीप्ति से **आततन्थ**=विस्तृत करते हैं। आप हमारे मस्तिष्क ज्ञान-ज्योति से तथा शरीर को तेजस्विता की दीप्ति से दीप्त करते हैं। **च**=और आप **श्रवोभिः**=ज्ञानों से **श्रवस्यः**=उत्तम ज्ञानवाले हैं। आपका निर्भ्रान्त ज्ञान हजारों सूर्यों की दीप्ति से भी अधिक दीप्तिवाला है। इन ज्ञानों के द्वारा आप **तरुत्रः**=भवसागर से तरानेवाले हैं। (२) हे अग्ने! आप **अस्मे**=हमारे लिये **वाजैः**=शक्तियों से **वितरम्**=(विशिष्टतरं) खूब ही **विभाहि**=दीप्त होइये। उन शक्तियों से हमें दीप्त जीवनवाला करिये जो **बृहद्भिः**=(महद्भिः) हमारे जीवन को महत्त्वपूर्ण बनानेवाली हों। **स्थविरेभिः**=खूब बढ़ी हुई हों (स्थूलैः) तथा **रेवद्भिः**=प्रशस्त धनोंवाली हों।

भावार्थ—प्रभु हमारे मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त बनाते हैं तो शरीर को तेजोदीप्त। प्रभु हमें उन शक्तियों को प्राप्त कराते हैं जो हमें महत्त्वपूर्ण बढ़ा हुआ व धन-सम्पन्न बनाती हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

धन-प्रेरणा-ज्ञान

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु॥ १२॥

(१) हे **वसो**=सम्पूर्ण वसुओं (धनों) के स्वामिन् प्रभो! **अस्मे**=हमारे लिये **सदं इत्**=सदा ही **भूरि**=पालन-पोषण के लिये पर्याप्त धन **धेहि**=धारण करिये। हमारे **तोकाय**=पुत्रों के लिये तथा

तनयाय=पौत्रों के लिये **पश्वः**=गौ आदि मानवहित साधक पशुओं को प्राप्त कराइये। यह आपसे दिया हुआ धन **नृवत्**=प्रशस्त मनुष्योंवाला हो। इस धन के द्वारा हमारे घर में सभी का जीवन प्रशस्त बने। (२) हे प्रभो! आपकी कृपा से **अस्मे**=हमारे लिये **पूर्वीः इषः**=पालन व पूरण करनेवाली प्रेरणाएँ **सन्तु**=हों। जो प्रेरणाएँ **बृहतीः**=हमारी वृद्धि का कारण बनती हैं तथा **आरे अघाः**=पापों को हमारे से दूर रखती हैं। इन प्रेरणाओं के द्वारा **भद्रा**=कल्याणकर **सौश्रवसानि**=उत्तम ज्ञान हमारे लिये हों।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें उत्तम धन प्राप्त हों। हम प्रभु-प्रेरणा को सुननेवाले बनें और कल्याणकर उत्कृष्ट ज्ञानों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वसुता (अश्याम्)

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम्।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे॥ १३॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वाया**=आपको प्राप्त होनेवाले **वसूनि**=धन **पुरूणि**=बहुत हैं और **पुरुधा**=गौ-अश्व आदि रूप से अनेक प्रकार के हैं। प्रभु सब धनों के भण्डार हैं। हे **राजन्**=सब धनों के स्वामिन् प्रभो! **ते**=आपके इस **वसुता**=धनसमूह को (समूहे तत् प्रत्ययः) **अश्याम्**=प्राप्त करूँ। प्रभु के इन नाना प्रकार के पालक व पूरक धनों को हम प्राप्त करें। (२) हे **पुरुवार**=बहुत वरणीय धनोंवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वे**=आपके धन **हि**=निश्चय से **पुरूणि सन्ति**=बहुत हैं अथवा पालन व पूरण करनेवाले हैं। **राजनि**=देदीप्यमान **त्वे**=तुझ में **विधते**=आपकी परिचर्या करनेवाले के लिये **वसु**=सब कार्यों को प्रशस्त करनेवाले धन **सन्ति**=हैं। अर्थात् आप अपने उपासक को सब आवश्यक धन देते ही हैं।

भावार्थ—प्रभु के उपासक बनें। प्रभु के वसुओं को प्राप्त करें।

अगले सूक्त में भी यही ऋषि, यही देवता हैं—

अथ चतुर्थाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'ज्ञान व शक्ति' का पोषण

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे। त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **हि**=निश्चय से **क्षैतवत्**=(क्षि निवासगत्योः) उत्तम निवास व गतिवाले **यशः**=यश को **पत्यसे**=(अभिगमयसि) प्राप्त कराते हैं। **मित्रः न**=आप सूर्य के समान हैं। सूर्य के समान देदीप्यमान होते हुये आप हमें जीवन को उत्तमता से बितानेवाला व उत्तम कर्मोंवाला बनाकर बड़ा यशस्वी बनाते हैं। यह 'क्षैतवत् यश' आपकी कृपा से ही प्राप्त होता है। (२) हे **विचर्षणे**=विशिष्ट द्रष्टा सर्वज्ञ प्रभो! हे **वसो**=हमारे निवासों को उत्तम बनानेवाले प्रभो! आप हमारे **श्रवः**=ज्ञानों को **पुष्टिं न**=पुष्टि के समान ही **पुष्यसि**=पुष्ट करते हैं। 'विचर्षणि' होते हुए आप हमारे मस्तिष्क को ज्ञान से पुष्ट करते हैं, और 'वसु' होते हुए आप हमें शरीर में उचित पोषण को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम निवास व गतिवाले यशस्वी जीवन को प्राप्त कराते हैं। वे हमें 'ज्ञान व शक्ति' के पोषण से युक्त करते हैं। इसी से वे प्रभु 'विचर्षणि' हैं, वे 'वसु' हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु को कौन प्राप्त करता है?

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते। त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः॥ २॥

(१) हे प्रभो! **त्वां हि**=आपको ही **चर्षणयः**=श्रमशील ज्ञानी पुरुष **यज्ञेभिः**=श्रेष्ठ कर्मों से तथा **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **ईडते स्म**=उपासित करते हैं। प्रभु की उपासना यज्ञों व ज्ञान की वाणियों से होती है। इन्हें अपनानेवाले व्यक्ति ही 'चर्षणि' कहलाते हैं। 'चर्षणि' शब्द के दोनों ही अर्थ हैं—(क) श्रमशील, (ख) द्रष्टा व ज्ञानी। (२) हे प्रभो! **त्वाम्**=आपको **वाजी**=शक्तिशाली पुरुष ही **याति**=प्राप्त होता है। वह शक्तिशाली पुरुष जो **अवृकः**=हिंसा से रहित है, जो अपनी शक्ति का प्रयोग रक्षणात्मक कर्मों में ही करता है। **रजस्तूः**=राजसीभावों का (तुर्वी हिंसायाम्) विनाश करता है और **विश्वचर्षणिः**=सबको देखनेवाला होता है, अर्थात् सबके हित की बात को सोचता है, केवल अपना भला नहीं देखता।

भावार्थ—प्रभु की उपासना यज्ञों व ज्ञान की वाणियों से होती है। प्रभु को वह प्राप्त करता है जो शक्तिशाली, अहिंसक, राजसभावों को दूर करनेवाला व सब का हित चाहनेवाला होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

छह बातें

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते। यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **यज्ञस्य केतुम्**=यज्ञों के प्रकाशक, वेद के शब्दों में सब कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश देनेवाले **त्वा**=आपको **सजोषः**=(सजोषसः) मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्य करनेवाले, **दिवः**=ज्ञान के प्रकाशवाले **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **इन्धते**=अपने हृदय देशों में समिद्ध करते हैं, वहाँ आपके प्रकाश को देखते हैं। (२) आपके प्रकाश को यह व्यक्ति तब देखता है **यत्**=जब निश्चय से **स्यः**=वह **मानुषः जनः**=मनुष्य मात्र यज्ञहितेच्छु पुरुष **सुम्नायुः**=आपके स्तोत्रों की कामनावाला होता हुआ **अध्वरे**=यज्ञों में **जुह्वे**=आहुति को देनेवाला होता है। प्रभु प्राप्ति के लिये पात्र वही बनता है—(क) जो सबका भला चाहे, (ख) स्तुति-प्रवण हो, (ग) यज्ञशील हो।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि—(क) हम मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्य करें, (ख) प्रकाशवाले हों, ज्ञान प्राप्ति के लिये स्वाध्यायशील हों, (ग) उन्नति-पथ पर आगे बढ़ें, (घ) सबका भला चाहें, (ङ) प्रभु-स्तवन की ओर हमारा झुकाव हो, (च) यज्ञशील बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

धिया शशमते (कर्म द्वारा स्तवन)

ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते। ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति॥ ४॥

(१) हे प्रभो! वह **मर्तः**=मनुष्य ही **ऋधत्**=समृद्धि को प्राप्त करता है, **यः**=जो **सुदानवे ते**=उत्तम दानवाले (दा दाने) आपके लिये **धिया**=बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा **शशमते**=स्तुति करनेवाला होता है। प्रभु ने किस प्रकाश 'शरीर, इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' को प्राप्त कराया है। इनका ठीक प्रयोग करते हुए, बुद्धिपूर्वक कार्यों को करते हुए, हम प्रभु का स्तवन करनेवाले बनते हैं। प्रभु का स्तवन यही है कि हम प्रभु से दिये साधनों का ठीक प्रयोग करें। (२) **सः**=वह

कर्मों द्वारा स्तुति करनेवाला मनुष्य **बृहतः दिवः**=महान् ज्ञान के द्वारा **ऊती**=आपसे प्राप्त कराये गये रक्षण से **द्विषः**=सब द्वेष की भावनाओं को **तरति**=तैर जाता है। इस प्रकार तैर जाता है, **न**=जैसे कि **अंहः**=आरभनशील पापों को तैर जाता है।

भावार्थ—बुद्धिपूर्वक कर्मों के द्वारा ही प्रभु का स्तवन होता है। यह स्तोता महान् ज्ञान के द्वारा रक्षण को प्राप्त करके द्वेषों व पापों को तैर जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

वयावन्तं शतायुषं क्षयम्

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत्। वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम्॥ ५ ॥

(१) **यः मर्त्यः**=जो मनुष्य **समिधा**=ज्ञानदीप्ति से **निशितिम्**=तीव्र की हुई **आहुतिम्**=आहुति को, त्याग को **नशत्**=व्याप्त करता है, प्राप्त करता है, वही **ते**=आपका है। प्रभु का मनुष्य वही है जो ज्ञान को बढ़ाता हुआ त्यागवृत्ति का अपने में पोषण करता है। ज्ञान मनुष्य को त्यागवृत्तिवाला बनाता है। त्यागी बनकर यह प्रकृति से ऊपर उठता हुआ प्रभु का हो जाता है। (२) हे **अग्ने**=प्रभो! **सः**=वह **क्षयं पुष्यति**=उस घर का पोषण करता है जो **वयावन्तम्**=पुत्र-पौत्र आदि के रूप में प्रशस्त शाखाओंवाला होता है, तथा **शतायुषम्**=शतवर्ष के दीर्घ-जीवनोंवाला होता है। इस ज्ञानी त्यागी पुरुष के घर में चिरजीवी, दीर्घ सन्तान जन्म लेते हैं।

भावार्थ—प्रभु का व्यक्ति वह है जो ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करता हुआ त्यागवृत्ति को अपनाता है। इसका घर पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न व दीर्घ जीवनवाला बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

द्युता-कृपा

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः। सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे॥ ६ ॥

(१) हे प्रभो! **ते**=तेरा **धूमः**=(धूञ् कम्पने) शत्रु-कम्पन सामर्थ्य **त्वेषः**=दीप्तिवाला है। यह **दिवि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में ज्ञान-सूर्य के रूप से **ऋण्वति**=हमें प्राप्त होता है। **सत्**=यह श्रेष्ठ है, **शुक्रः**=शुचिता-पवित्रता का कारण बनता है और **आततः**=सर्वत्र व्याप्त है। (२) हे **पावक**=पवित्र करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **सूरः न**=सूर्य के समान **हि**=निश्चय से **द्युता**=ज्ञानदीप्ति से तथा **कृपा**=शत्रु-विनाशक शक्ति से (कृप् सामर्थ्ये) **रोचसे**=दीप्त होते हैं। सूर्य प्रकाश देता है, रोग-कृमियों को नष्ट करता है। इसी प्रकार प्रभु हमारे जीवन में ज्ञान के प्रकाश व शक्ति को देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें ज्ञानदीप्ति व शक्ति को देनेवाली है। ये दोनों हमारे जीवनों को पवित्र बना देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

रण्वः पुरि इव जूर्यः

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः। रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः॥ ७॥

(१) **अधा**=अब **हि**=निश्चय से, हे प्रभो! आप **विक्षु**=प्रजाओं में **ईड्यः**=स्तुति के योग्य **असि**=हैं। सब प्रजाओं के लिये आप स्तुत्य हैं। **नः**=हमारे **प्रियः**=प्रीति को उत्पन्न करनेवाले **अतिथिः**=अतिथि हैं। 'अत सातत्यगमने' आप हमें निरन्तर प्राप्त होनेवाले हैं। (२) **पुरि**=नगरी में **जूयः इव**=एक हितोपदेष्टा वृद्ध पुरुष की तरह आप **रण्वः**=रमणीय हैं। आप भी इस शरीररूप

पुरी में, हृदयदेश में निवास करनेवाले सनातन पुराण पुरुष हैं। वहाँ स्थित हुए-हुए आप हमें निरन्तर ज्ञानोपदेश कर रहे हैं। आप **सूनुः न**=(षू प्रेरणे) उस प्रेरक के समान हैं जो **त्रययाय्यः**=(त्रयं याति) 'विद्या, तप व कर्म' तीनों को प्राप्त करानेवाले हैं। प्रभु की प्रेरणा के अनुसार चलनेवाले उपासकों का जीवन 'विद्या, तप व कर्म' से युक्त होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे पूज्य अतिथि हैं। वे हमें 'विद्या, तप व कर्म' की प्रेरणा प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

क्रतुमयता व प्रभु प्राप्ति

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः। परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥

(१) **क्रत्वा**=यज्ञादि कर्मों से, संकल्प से व प्रज्ञान से **हि**=ही **द्रोणे**=इस शरीर रूप पात्र में **अज्यसे**=आप व्यक्त होते हैं। प्रभु का दर्शन इसी शरीर में होता है। होता तब है जब कि—(क) हमारे हाथ यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगे हों, (ख) मन प्रभु प्राप्ति के प्रबल संकल्पवाला हो, (ग) और मस्तिष्क ज्ञान परिपूर्ण हो। हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **वाजी न**=एक शक्तिशाली के समान **कृत्व्यः**=अपने कर्मों में कुशल व समर्थ हैं। आप अपनी सर्वशक्तिमत्ता से ही सृष्टि के निर्माण व धारण आदि कर्मों को करने में समर्थ हैं। (२) **परिज्मा इव**=इस परितः गन्ता वायु के समान **स्वधा**=सब जीवों के धारण करनेवाले हैं तथा **गयः**=उनके लिये घर के समान हैं। आप ही सबका वायुवत् धारण करते हैं। **अत्यः न**=निरन्तर गामी अश्व के समान आप **ह्वार्यः**=सब कुटिलताओं से हमें पार करनेवाले हैं और **शिशुः**=हमारी बुद्धियों को तीव्र करनेवाले हैं। वस्तुतः बुद्धि की तीव्रता के द्वारा ही आप हमें कुटिलताओं से पार करते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि हम क्रतुमय बनें। वे प्रभु सर्वशक्तिमान् जीवन के दाता व बुद्धि को तीव्र करनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'वासना वन वृश्चन'

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे। धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **त्या**=उन **अच्युता चित्**=बड़े दृढ़ भी वना=वासना वनों को खा जाते हैं, भस्म कर देते हैं। **न**=जैसे कि **यवसे**=घास में विसृष्ट **पशुः**=गवादि पशु घास को समाप्त कर देता है, आपके हृदयस्थ होने पर हृदयक्षेत्र में वासनारूप घास समाप्त हो जाती है। (२) हे **अजर**=अजीर्ण प्रभो! **यत्**=जो **शिक्वसः**=ज्ञान-ज्योति से दीप्त व शक्तिशाली **ते धामा**=आपके तेज हैं वे **वना वृश्चन्ति**=इन वासना वनों को छिन्न कर देते हैं। हम प्रभु के स्मरण से ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करके वासनाओं को विनष्ट करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें, प्रभु हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त करायेंगे, जिससे कि हम वासनाओं को विनष्ट कर पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

यज्ञशीलता व समृद्धि

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम्। समृधो विशपते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अध्वरीयताम्**=सदा यज्ञ की कामनावाली **विशाम्**=प्रजाओं के

दमे=गृह में **होता**=सब कुछ देनेवाले होते हुए आप **हि**=निश्चय से **वेषि**=प्राप्त होते हैं। (२) हे **विश्पते**=सब प्रजाओं के रक्षक प्रभो! **समृधः कृणु**=हमारे लिये आप समृद्धियों को करिये। और **अंगिरः**=हमारे अंगों में रस का संचार करनेवाले आप **हव्यं जुषस्व**=हव्य पदार्थों का सेवन करिये। आपकी प्रेरणा से हम सदा यज्ञ करके यज्ञशेष का सेवन करनेवाले बनें। यह यज्ञशीलता ही समृद्धि का मार्ग है।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। प्रभु हमें सब आवश्यक समृद्धियों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगतिजगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

तरेम

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ११ ॥

(१) हे **मित्रमहः**=प्रमीति (मृत्यु) से बचानेवाले तेज से युक्त **देव**=प्रकाशमय **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नः अच्छा**=हमारी ओर **देवान्**=देवों को **वीहि**=प्राप्त कराइये। **सुमतिं वोचः**=उन देवों के द्वारा कल्याणीमति को प्रतिपादित करिये इस सुमति के द्वारा **रोदस्योः**=द्यावापृथिवी के, मस्तिष्क व शरीर के **स्वस्तिम्**=कल्याण को प्राप्त कराइये। **सुक्षितिम्**=उत्तम निवास व गति को प्राप्त कराइये। **दिवः नॄन्**=ज्ञान के नेताओं को, ज्ञान के प्राप्त करानेवालों को हमें प्राप्त कराइये। (२) हे प्रभो! इस ज्ञान के द्वारा **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को और **दुरिता**=बुराइयों को **तरेम**=हम तैर जाएँ। **ता**=उन सब **अंहांसि**=पापों को **तरेम**=तैर जाएँ। तव **अवसा**=आपके रक्षण के द्वारा **तरेम**=इन बुराइयों को तैर जाएँ। तीन बार 'तरेम' का प्रयोग 'कामज, क्रोधज व लोभज' सब व्यसनों को तैरने का संकेत कर रहा है।

भावार्थ—हम ज्ञानियों को, ज्ञानियों के द्वारा सुमति को, सुमति द्वारा कल्याण को प्राप्त करें। सब द्वेषों, पापों व व्यसनों को तैर जाएँ।

प्रभु का स्तवन करते हुए भरद्वाज ही कहते हैं कि—

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'उरु ज्योति' की प्राप्ति

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! जो **ते**=तेरा बनता है, तेरा उपासक होता है, **सः**=वह **क्षेषत्**=उत्तम निवासवाला होता है। **ऋतपाः**=वह अपने जीवन में ऋत का, यज्ञों का व नियमितता (regularity) का रक्षण करता है। **ऋतेजाः**=ऐसा प्रतीत होता है कि ऋत के निमित्त ही उसने जन्म लिया है। यह व्यक्ति **उरु ज्योतिः**=विशाल ज्योति को **नशते**=प्राप्त होता है। और सदा **देवयुः**=दिव्यगुणों को अपने साथ जोड़ने की कामनावाला होता। (२) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **यं मर्तम्**=जिस भी उपासक को **त्वम्**=आप **मित्रेण**=स्नेह के अधिष्ठातृदेव से **सजोषाः**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हुए **वरुणः**=पाप का निवारण करनेवाले **त्वम्**=आप **त्यजसा**=त्याग की वृत्ति के द्वारा **अंहः**=पाप से **पासि**=बचाते हैं, वही व्यक्ति उत्तम निवासवाला होता है। पाप से बचने के लिये 'स्नेह की भावना, द्वेष का अभाव व त्याग' सहायक होते हैं।

भावार्थ—उत्तम निवास का लक्षण यह है कि—(क) हम ऋत (यज्ञ व नियमितता) का पालन करें, (ख) ज्योति को प्राप्त करें, (ग) दिव्यगुणों की कामनावाले हों, (घ) स्नेह, निर्द्वेषता व त्याग को अपनाकर पाप से परे रहें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यशस्विता-निष्पापता-निरभिमानता

ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः॥ २॥

(१) गत मन्त्र का 'ऋतपाः' व्यक्ति **यज्ञेभिः ईजे**=यज्ञों के द्वारा प्रभु का उपासन करता है 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' **शमीभिः**=शान्तभाव से किये जानेवाले कर्मों के द्वारा **शशमे**=प्रभु का स्तवन करता है (शशनाम अर्चति कर्मा नि० ३।१४)। यह **ऋधद्वाराय**=अतिशयेन बढ़े हुए वरणीय धनोंवाले **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये **ददाश**=अपना अर्पण करता है। (२) **एवा च**=इस प्रकार प्रभु का उपासन, स्तवन व प्रभु के प्रति आत्मार्पण करने से **तम्**=उस उपासक को **यशसां अजुष्टिः**=यशों की अप्राप्ति **न नशते**=नहीं प्राप्त होती, यह अपने जीवन में बड़ा यशस्वी बनता है। इस **मर्तम्**=मनुष्य को **अंहः**=पाप **न नशते**=नहीं प्राप्त होता और **प्रदृप्तिः**=सब अविनयों का हेतुभूत दर्प भी **न**=नहीं प्राप्त होता। यज्ञ इसे यशस्वी बनाते हैं। शान्तभाव से किये जानेवाले कर्म इसे पाप-प्रवण नहीं होने देते और प्रभु के प्रति आत्मार्पण इसे दर्प से दूर रखता है।

भावार्थ—यज्ञों से प्रभु का उपासन करते हुये हम यशस्वी बनते हैं। शान्त कर्मों से प्रभु का स्तवन करते हुए हम पाप-प्रवण नहीं होते। प्रभु के प्रति आत्मार्पण करते हुये हम अभिमान से बचे रहते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भीमा धीः

सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः॥ ३॥

(१) हे प्रभो! आप वे हैं **यस्य दृशतिः**=जिनका दर्शन **सूरः न**=सूर्य के समान है। आप 'आदित्यवर्ण' हैं, सूर्य के समान देदीप्यमान हैं, हजारों सूर्यों के समान आपकी प्रभा है। **अरेपाः**=आप पाप-शून्य हैं, अपापविद्ध हैं। **शुचतः**=अत्यन्त देदीप्यमान **ते**=आपकी **धीः**=बुद्धि **यत्**=जब **आ एति**=हमें सब प्रकार से प्राप्त होती है, तो यह शत्रुओं के लिये **भीमा**=भयंकर होती है। (२) **हेषस्वतः**=शब्दोंवाली **शुरुधः**=शोक को रोकनेवाली **अक्तोः**=प्रकाश की किरणों से **अयम्**=ये प्रभु **कुत्रचित्**=कहीं **न रण्वः**=रमणीय नहीं है। प्रभु की प्रकाश की किरणें 'शब्दोंवाली' इसलिए कही गई हैं कि हृदयस्थ प्रभु इनका उच्चारण करते हैं। ये प्रकाश की किरणें हमें शोक से बचाती हैं। प्रभु इनके द्वारा दीप्त हो रहे हैं। इस दीप्ति के द्वारा ही वे उपासकों को मार्गदर्शन कराते हैं। **वसतिः**=सब के वे प्रभु निवास-स्थान हैं। **वनेजाः**=(वन संभक्तौ) सम्भजन करनेवाले उपासकों में प्रभु का प्रादुर्भाव होता है।

भावार्थ—सूर्य के समान देदीप्यमान वे प्रभु अपापविद्ध हैं। उपासकों को वह बुद्धि प्राप्त कराते हैं जो कि 'काम-क्रोध-लोभ' आदि सब शत्रुओं का संहार करती है। वे प्रभु दीप्ति से रमणीय हैं। इस दीप्ति को प्राप्त करके उपासक भी अशोच्य जीवनवाला होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासना विनाशक प्रभु

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥

(१) हे अग्ने! प्रभो आपका **एम**=गमनभूत मार्ग **तिग्मं चित्**=निश्चय से तीक्ष्ण है। जैसे अग्नि जिधर से जाती है, सब तृणादि की भस्म करती जाती है, इसी प्रकार जब प्रभु हमें प्राप्त होते हैं तो सब वासना-तृणों को दग्ध कर देते हैं। **अस्य**=इन प्रभु का **महि वर्पः**=महनीय रूप **भसत्**=देदीप्यमान होता है। प्रभु ज्योतिर्मय हैं उपासक के हृदय को दीप्त कर देते हैं। **आसा यमसानः**=मुख से तृणादि का नियमन करते हुए **अश्वः न**=अश्व की तरह ये प्रभु हमारे हृदय में उत्पन्न हो जानेवाली वासनाओं का नियमन करनेवाले हैं। (२) अपनी **जिह्वाम्**=धारा को **विजेहमानः**=शत्रुओं पर प्राप्त कराते हुए **परशुः न**=कुल्हाड़े के समान ये प्रभु अपनी ज्ञान जिह्वा से वासनाओं को काटनेवाले हैं। **द्रविः न**=एक धातुओं को पिघलानेवाले स्वर्णकार की तरह ये प्रभु **दारु-धक्षत्**=हमें विदीर्ण करनेवाले (दॄ विदारणे) वासनारूप काष्ठों को भस्म करते हुए **द्रावयति**=कठोर से कठोर वासनाधातु को द्रवीभूत कर देते हैं और हमारे से पृथक् करके उसे दूर भगा देते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट कर देते हैं। घोड़ा जैसे घास को खा जाता है, कुल्हाड़ा वैसे वृक्ष को काट डालता है, स्वर्णकार जैसे कठोर धातु को पिघला देता है, इसी प्रकार वे प्रभु वासनारूप घास को खा जाते हैं, वासना वृक्ष को काट डालते हैं व वासना धातु को द्रवीभूत कर देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

काम आदि का दहन

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥

(१) **सः इत्**=वे प्रभु निश्चय से **अस्त इव**=शत्रुओं पर बाण फेंकनेवाले के समान **प्रतिधात्**=अपनी तेजो-ज्वाला को उपासक में धारण करता है। धनुर्धर जैसे धनुष पर बाण को, वैसे प्रभु उपासक में तेज को धारण करते हैं। इस तेजो-ज्वाला को असिष्यन् काम-क्रोध-लोभ आदि अन्तः शत्रुओं पर फेंकनेवाले प्रभु **तेजः**=इस **तेजो**=ज्वाला को **शिशीत**=तीक्ष्ण करते हैं, ताकि सब शत्रु उसमें भस्म हो जाएँ। इस प्रकार तेज करते हैं, **न**=जैसे कि **अयसः धाराम्**=लोहधारा को। (२) **चित्रध्रजतिः**=अद्भुत गतिवाले, शत्रुओं पर विस्मयकारक आक्रमणोंवाले, **यः**=जो प्रभु **अक्तोः**=अपनी ज्ञान-रश्मियों के द्वारा **अरतिः**=कहीं भी फँसनेवाले नहीं (अ-रतिः), वे **वेः न**=एक पक्षी के समान **द्रुषद्वा**=इस संसार-वृक्ष पर आसीन होते हैं 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते'। पर वे प्रभु **रघुपत्मजंहाः**=(लघुपतनसमर्थ पादः) शीघ्र उड़ जाने में समर्थ पाँववाले हैं। वे इस वृक्ष पर आसक्त नहीं। जीव आसक्त होने से उड़ नहीं पाता। 'अनश्नन्नन्यः'=प्रभु तो न खाते हुए केवल जीव की क्रियाओं को देखते ही हैं। प्रभु-भक्त भी प्रभु से प्रकाश-रश्मियों को प्राप्त करके आसक्ति से ऊपर उठ जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपने भक्त में उस तेजो-ज्वाला को स्थापित करते हैं जो उसके काम-क्रोध

आदि शत्रुओं को भस्म कर देती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मार्ग-दर्शक प्रभु

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन्॥ ६॥

(१) **सः**=वे प्रभु **ईम्**=निश्चय से **रेभः न**=स्तुति के योग्य इस सूर्य की तरह **उस्राः**=ज्ञान की रश्मियों को **प्रति वस्ते**=आच्छादित करते हैं। जैसे सूर्य प्रकाश से सारे संसार को आच्छादित कर देता है, इसी प्रकार प्रभु हमारे हृदयों को ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। वे **मित्रमहः**=मृत्यु से बचानेवाली तेजस्वितावाले प्रभु (प्रमीतेः त्रायते, महः=तेज) **शोचिषा**=ज्ञानदीप्ति के हेतु से **रारपीति**=हमारे हृदयों में 'ऋग् यजु साम' रूप वाणियों का उच्चारण करते हैं। इन वाणियों से प्रभु हमारी ज्ञानदीप्ति का वर्धन करते हैं। (२) **यः अरुषः**=आरोचमान प्रभु **नक्तम्**=रात्रि में और **ईम्**=निश्चय से **यः**=जो प्रभु **दिवा**=दिन में भी **नॄन्**=इस मार्ग पर ले चलनेवाली रश्मियों को (नेतॄन्) प्राप्त कराते हैं। वे प्रभु **अमर्त्यः**=अमरण-धर्मा हैं, **अरुषः**=आरोचमान हैं, **यः**=जो प्रभु **दिवा**=ज्ञान के प्रकाश से **नॄन्**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले व्यक्तियों को मार्ग दिखाते हैं।

भावार्थ—हृदयस्थ प्रभु दिन-रात उत्तम प्रेरणा के द्वारा मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। जो भक्त उस प्रेरणा को सुनकर मार्ग पर चलता है, वह भी 'अमर्त्य व अरुष' बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सृष्टि निर्माण' व 'वेदज्ञान प्रदान'

दिवो न यस्य विधतो नवीनोद् वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत्।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी॥ ७॥

(१) **दिवः न**=सूर्य के समान दीप्त **यस्य विधतः**=जिस सृष्टि के निर्माता का **नवीनोत्**=सृष्टि के प्रारम्भ में हृदयस्थरूपेण स्तुत्य शब्द होता है 'तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्'। प्रभु सृष्टि का निर्माण करते हैं और सृष्टि के प्रारम्भ में इस वेदज्ञान को देते हैं। **वृषा**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले **रुक्षः**=(रुच दीप्तौ) ज्ञानदीप्त वे प्रभु **ओषधीषु**=(उषदाहे) दोषों का दहन करनेवाली प्रजाओं में **नूनोत्**=हृदयस्थरूपेण प्रेरणात्मक शब्द को करते हैं। पवित्र हृदय में प्रभु प्रेरणा सुन पड़ती है। (२) **यः**=जो **घृणा**=दीप्ति से ज्ञान के प्रकाश के साथ तथा **ध्रजसा**=गतिशील तेजस्विता के साथ **पत्मना यन्**=मार्ग से चलते हुये **दम्**=हमारे शत्रुओं का, काम-क्रोध-लोभ का दमन करते हुए (दमयन्) **सुपत्नी**=जिनका उत्तमता से पालन किया गया है ऐसे **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **वसुना आ (पूरयति)**=उत्तम वसुओं व धनों से आपूरित करते हैं। प्रभु ही मस्तिष्क में दीप्ति व शरीर में सबल गति को प्राप्त कराते हैं और इस प्रकार हमारे द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का रक्षण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सृष्टि का निर्माण करते हैं और जीवों को वेदज्ञान देते हैं। यह वेदज्ञान मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति व शरीर में तेजस्वितापूर्ण गति को भरता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'ज्ञान व शक्ति' के पुञ्ज प्रभु

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत्॥ ८॥

(१) **यः**=जो प्रभु **धायोभिः**=हमारा धारण करनेवाले **वा**=और **युज्येभिः**=हमें कर्मों में प्रेरित करनेवाले **अर्कैः**=अर्चनीय वेद-मन्त्रों के ज्ञान से तथा **स्वेभिः**=अपने **शुष्मैः**=बलों से **विद्युत् न**=विद्युत् के समान **दविद्योत्**=चमकते हैं। प्रभु ज्ञान व शक्ति के पुञ्ज हैं, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् हैं। विद्युत्वत् दीप्त हैं और विद्युत् की तरह बुराई को भस्म करनेवाले हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **मरुताम्**=प्राणों के **शर्धः**=बल को **ततक्ष**=तीव्र करते हैं। तथा **ऋभुः न**=(उरु भासमानः) खूब दीप्त सूर्य के समान **त्वेषः**=दीप्त व **रभसानः**=शक्तियुक्त वेग को करते हुए सबल कार्यों को करते हुए **अद्यौत्**=चमकते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान व शक्ति के पुञ्ज हैं। ये प्रभु हमारे जीवनों में भी प्राणों के बल का स्थापन करते हुए हमें दीप्त व तेजस्वी बनाते हैं।

भरद्वाज बार्हस्पत्य का ही अगला भी सूक्त है—

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

देव सम्पर्क से देव बनना

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान्॥ १॥

(१) **यथा**=जैसे **होतः**=सब पदार्थों के देनेवाले, **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! आप **देवताता**=दिव्य गुणों के विस्तार के निमित्त **मनुषः**=इन विचारशील पुरुषों को **यज्ञेभिः**=यज्ञों से **यजासि**=संगत करते हैं। यज्ञों में प्रवृत्त होकर ही तो इनके सद्गुणों का वर्धन होगा। इन यज्ञों के लिये सब आवश्यक साधनों को आप प्राप्त कराते ही हैं। इन साधनों के साथ यज्ञों को करने के लिये उन्हें सशक्त भी करते हैं। (२) **एवा**=इसी प्रकार **नः**=हमें **अद्य**=आज **समना**=(क्षिप्रं) शीघ्र ही, हे **उशन् अग्ने**=हमारे हित की कामनावाले अग्रेणी प्रभो! आप **समानान्**=आप जैसे (ब्रह्म वेद ब्रह्मवै भवति) आप के साथ सदा सम्पर्कवाले **उशतः**=हमारे भले की कामनावाले **देवान्**=देव पुरुषों को **यक्षि**=प्राप्त कराइये, हमारे साथ ऐसे देवों का संग करिये। इनके द्वारा दी गई उत्तम प्रेरणाओं से हम भी देव बनकर आपके सच्चे उपासक बनें।

भावार्थ—प्रभु उपासकों को यज्ञशील बनाकर देव बनाते हैं। इन देवों के साथ सम्पर्क से हम भी दिव्यता के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

ब्राह्ममुहूर्त में प्रभु-दर्शन

स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात्।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः॥ २॥

(१) **सः**=वह प्रभु **वस्तोः चक्षणिः न**=दिन के प्रकाशक सूर्य की तरह **विभावा**=विशिष्ट

दीप्तिवाले हैं। **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु ही **वेद्यः**=जानने योग्य हैं, हम सबको उस प्रभु के जानने का प्रयत्न करना है। वे **वन्दारु**=स्तुत्य **चनः**=अन्न को **धात्**=हमारे लिये धारण करते हैं। इस सात्त्विक अन्न के द्वारा वे हमें सात्त्विक बुद्धि प्राप्त कराते हुए हमारे जीवन को प्रशस्त करते हैं। (२) **विश्वायुः**=वे प्रभु हमें पूर्ण जीवन देनेवाले हैं। पूर्ण जीवन वही है जिस में 'शरीर स्वस्थ है, मन निर्मल है, बुद्धि तीव्र है'। **यः**=जो **अमृतः**=(न मृतं यस्मात्) हमें सब रोगों से दूर करनेवाले हैं, वे प्रभु **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **उषर्भुत् भूत्**=प्रातःकाल प्रबुद्ध होनेवाले होते हैं। अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त के शान्त समय में अन्तर्मुखी वृत्तिवाले होकर उपासक हृदय में प्रभु का दर्शन करते हैं। ये प्रभु **अतिथिः**=सदा उपासकों के हित के लिये गतिशील हैं (अत सातत्यगमने), **जातवेदाः**=सर्वज्ञ हैं।

भावार्थ—प्रभु दीप्ति के पुञ्ज हैं। सात्त्विक अन्न के द्वारा वे प्रभु हमें पूर्ण जीवन प्राप्त कराते हैं, रोगों से ऊपर उठाते हैं। उपासक ब्राह्ममुहूर्त में इस 'सर्वज्ञ अतिथि' का दर्शन करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अश्न के दुर्गों का संहार

द्यावो न यस्यं पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि॥ ३॥

(१) (न=संप्रति) **द्यावः**=स्तोता लोग **यस्य**=जिसके **अभ्वम्**=महत्ता का, महान् सामर्थ्य व कर्म का **पनयन्ति**=स्तवन करते हैं, वे प्रभु **सूर्यः न**=सूर्य के समान **शुक्रः**=देदीप्यमान हैं और **भासांसि वस्ते**=दीप्तियों को धारण करते हैं। (२) **यः**=जो **अजरः**=जीर्णता से रहित **पावकः**=सब को पवित्र करनेवाले वे प्रभु **वि इनोति**=दीप्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करते हैं और **अश्नस्य**=उस महाशन काम के, कभी न तृप्त होनेवाली इस वासना के **पूर्व्याणि चित्**=सनातन भी दुर्गों को **शिश्नथत्**=हिंसित करते हैं। प्रभु की पावक ज्योति में वासनान्धकार का विनाश हो जाता है। यह ज्ञानाग्नि काम को दग्ध कर देती है।

भावार्थ—प्रभु का सामर्थ्य महान् है, सूर्यसम प्रभु दीप्त हैं। इस दीप्ति में वासनाओं का विलय हो जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वद्मा+अद्मसद्वा

वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम्।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः॥ ४॥

(१) हे **सूनो**=हृदयस्थरूपेण सदा सन्मार्ग की प्रेरणा देनेवाले (षू प्रेरणे) प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **वद्मा**='ऋग् यजु साम' रूप वाणियों का उच्चारण करनेवाले **असि**=हैं। **अद्मसद्वा**=आप हविरूप अन्नों में आसीन होनेवाले हैं, अर्थात् यज्ञशील पुरुषों के गृह में आपका वास होता है। **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **जनुषा**=शक्तियों के विकास के हेतु से **अज्म**=(गृहम्) गृह को तथा उस घर में **अन्नम्**=अन्न को **चक्रे**=करते हैं। अर्थात् उपासकों को घर तथा अन्न प्राप्त कराते हैं कि वे जीवन की सुविधाओं को प्राप्त करके अध्यात्म उन्नति कर सकें। (२) हे **ऊर्जसन**=बल व प्राणशक्ति के देनेवाले प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमारे लिये **ऊर्जं धाः**=बल और प्राणशक्ति को धारण करिये। **राजा इव**=राजा की तरह, शासक की तरह **जेः**=शत्रुओं की विजय करनेवाले होइये।

आप से शक्ति सम्पन्न होकर हम शत्रुओं को परास्त करें। हे प्रभो! आप **अवृके अन्तः**=लोभरहित व्यक्ति के अन्दर **क्षेषि**=निवास करते हैं (वृक आदाने)। जहाँ प्राकृतिक वस्तुओं का लोभ है, वहाँ प्रभु का निवास नहीं होता। प्रकृति की वस्तुओं के लोभ से ऊपर उठकर ही हम प्रभु को पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही वेद द्वारा हमें मार्ग की प्रेरणा देते हैं। यज्ञशील पुरुषों के घर में प्रभु का वास होता है। प्रभु ही उपासकों को उत्तम गृह व अन्न प्राप्त कराते हैं। शक्ति देते हैं, शत्रुओं को परास्त करते हैं और हमारे लोभरहित हृदय में निवास करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अन्धकार निवारक' प्रकाश

नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून्।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत्॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो आप हैं वे **वारणम्**=अन्धकारों के निवारक ज्ञान के प्रकाश को **नितिक्ति**=तीक्ष्ण करते हैं। अर्थात् आप ज्ञान के प्रकाश के द्वारा हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। **अन्नं अत्ति**=आप ही 'वैश्वानर' रूप से अन्न को खाते हैं। **वायुः न**=वायु के समान **राष्ट्री**=सब राष्ट्र के राष्ट्र में स्थित प्रजा के स्वामी होते हुए आप **अक्तून्**=ज्ञानरश्मियों को **अति एति**=अतिशयेन प्राप्त कराते हैं। वायु के बिना जीवन का सम्भव नहीं, इसी प्रकार अन्ततः प्रभु के बिना कहीं भी जीवन का सम्भव नहीं। 'जीवनं सर्वभूतेषु'। (२) **यः**=जो **ते**=आपके लिये **आदिशाम्**=(आदिश्यमानानां-दीयमानानाम्) दी जानेवाली हवियों के **अरातीः**=न देनेवाला है, उसको **तुर्याम**=हम हिंसित करें। **अत्यः न**=एक सततगामी अश्व के समान आप **पततः**=हमारे पर आक्रमण करनेवाले **ह्रुतः**=कुटिल भावों को **परिह्रुत्**=उनके प्रति जाकर नष्ट करनेवाले हैं 'युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः'। घोड़ा युद्ध में शत्रुओं पर आक्रमण करता है, प्रभु हमारी वासनाओं पर।

भावार्थ—प्रभु अन्धकार-निवारक प्रकाश को तीव्र करते हैं। हमारे अन्नों का पाचन करते हैं, हमें जीवन देते हैं। कुटिलताओं से प्रभु हमें बचाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

मार्ग पर गति करते हुए सूर्य के समान

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन्॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **सूर्यः न**=सूर्य के समान **भानुमद्भिः**=दीप्तिवाले **अर्कैः**=इन स्तुति साधनभूत मन्त्रों से **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, इन में निवास करनेवाले सब मनुष्यों को **विभासा**=विशिष्ट दीप्ति से **आ ततन्थ**=विस्तृत करते हैं। प्रभु से दिये गये इन वेदज्ञानों से मनुष्यों के मस्तिष्क व शरीर दोनों ही बड़े सुन्दर बनते हैं। (२) **चित्रः**=(चित्) वे ज्ञान के देनेवाले प्रभु **शोचिषा**=ज्ञानदीप्ति से **अक्तः**=संगत हुए-हुए **तमांसि**=अन्धकारों को **परिनयत्**=हमारे से परे करते हैं। वस्तुतः वे प्रभु **पत्मन् दीयन्**=मार्ग पर गति करते हुए **औशिजः न**=सूर्य के समान हैं। सूर्य अन्धकारों को छिन्न-भिन्न कर देता है, इसी प्रकार वे ज्ञान के सूर्य प्रभु हमारे अविद्यान्धकार को विनष्ट कर डालते हैं।

भावार्थ—प्रभु सूर्य के समान हैं वे हमारे अविद्यान्धकार को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

शवसा-देवता-राधसा

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महिं नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७॥

(१) **अर्कशोकैः**=पूजा की साधनभूत ज्ञानदीप्तियों से हम **त्वाम्**=आपका **हि**=निश्चय से **ववृमहे**=वरण करते हैं। जो आप **मन्द्रतमम्**=अत्यन्त आनन्दमय व स्तुति के योग्य हैं। हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **नः**=हमें **महि श्रोषि**=खूब ही ज्ञान का श्रवण कराइये। आप से ज्ञान को प्राप्त करके ही हम आपकी ओर झुकाववाले होते हैं। (२) **नृतमाः**=अपने को उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले लोग **इन्द्रं न**=ऐश्वर्यशाली के समान ही **वायुम्**=गतिशील आपको **शवसा**=शक्ति से **देवता**=दिव्यगुणों से तथा **राधसा**=संसिद्धि से, योगसाधना में प्राप्त होनेवाली सिद्धियों के द्वारा **पृणन्ति**=प्रीणित करते हैं। प्रभु सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी हैं तथा स्वाभाविक रूप से ही जीव हित के लिये क्रियाओं को करनेवाले हैं। इस प्रभु का आराधन जीव इस प्रकार कर सकता है कि वह—(क) अपने अन्दर बल का सम्पादन करे (शवसा), (ख) दिव्यगुणों को धारण करे (देवता) तथा (ग) योगमार्ग पर आगे बढ़ता हुआ सिद्धि को प्राप्त करे (राधसा)।

भावार्थ—प्रभु की उपासना पूजा की साधनभूत ज्ञानदीप्तियों से होती है, प्रभु का आराधक अपने को सबल बनाता है, दिव्यगुणों को धारण करता है और योगमार्ग पर आगे बढ़ता हुआ सिद्धियों को प्राप्त करता है (उनमें फँसता नहीं)।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अवृकेभिः पथिभिः

नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **नः**=हमें **नू**=अब **अवृकेभिः**=लोभशून्य (वृक आदाने) **पथिभिः**=मार्गों से **स्वस्ति रायः**=कल्याणकर धनों को **वेषि**=प्राप्त कराते हैं तथा आप **अंहः पर्षि**=पाप से हमें पार ले जाते हैं। (२) आप **ता**=उन कल्याणकर धनों को **सूरिभ्यः**=ज्ञानियों के लिये प्राप्त कराते हैं। **गृणते**=स्तवन करनेवाले मेरे लिये भी आप **सुम्नं रासि**=सुख को देते हैं। आपकी कृपा से हम **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **शतहिमाः मदेम**=सौ वर्षों तक आनन्द से जीवन को बितानेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु कृपा से लोभशून्य मार्गों से धनों को कमानेवाले हों। इस प्रकार उत्तम सन्तानों व दीर्घ-जीवनवाले बनें। लोभ ही सन्तानों की विकृति व अल्पायुष्य का कारण हो जाता है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' प्रभु का उपासन अग्नि नाम से करते हैं—

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'पुरुवार अध्रुक्' प्रभु

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम्।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥ १॥

(१) मैं **सहसः सूनुम्**=बल के पुञ्ज प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। उन प्रभु को पुकारता हूँ जो कि **युवानम्**=मेरे साथ अच्छाइयों का मिश्रण करनेवाले व सब बुराइयों का अमिश्रण करनेवाले हैं। **अद्रोघवाचम्**=जिनकी वाणी द्रोहशून्य है। **मतिभिः यविष्ठम्**=बुद्धियों के द्वारा बुराइयों को अधिक से अधिक दूर करनेवाले हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **प्रचेता**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हैं और **विश्ववाराणि**=सब से वरने के योग्य **द्रविणानि**=धनों को **वः**=तुम्हारे लिये **इन्वति**=प्रेरित करते हैं, अर्थात् यज्ञशील पुरुषों को इन वरणीय धनों को प्रभु ही प्राप्त कराते हैं। **पुरुवारः**=(पुरुश्च, वारश्च) वे प्रभु पालन व पूरण करनेवाले हैं और हमारे सब पापों व कष्टों का वारण करनेवाले हैं। **अध्रुक्**=वे प्रभु द्रोहशून्य हैं। सब का भला चाहनेवाले प्रभु ही सम्भजनीय हैं।

भावार्थ—प्रभु ही ज्ञान द्वारा हमारी सब मलिनताओं को धो देनेवाले व वरणीय धनों को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भुवनों व सौभगों के धारक प्रभु

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके॥ २॥

(१) हे **पुर्वणीक**=(पुरु अनीकं) पालक व पूरक बलवाले, **होतः**=सब धनों के देनेवाले प्रभो! **दोषा वस्तोः**=दिन-रात **यज्ञियासः**=यज्ञशील लोग **त्वे**=आप में स्थित होते हुए **वसूनि**=निवास के लिये आवश्यक धनों को **एरिरे**=अपने में प्रेरित करते हैं। प्रभु की उपासना करते हुए वसुओं को प्राप्त करते हैं। (२) हे प्रभो! **यस्मिन्**=जिन **पावके**=पवित्र करनेवाले आप में **विश्वाभुवनानि**=सब प्राणी इस प्रकार दधिरे=धारण किये जाते हैं **इव**=जैसे कि **क्षामा**=पृथिवी में। उन आप में ही **सौभगानि सं दधिरे**=सब उत्तम ऐश्वर्य धारित होते हैं। हे प्रभो! आप ही सब प्राणियों व सौभगों (ऐश्वर्यों) के धारण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब प्राणियों व ऐश्वर्यों के धारक हैं। यज्ञिय पुरुष प्रभु की उपासना से ही ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वसुओं के प्रापक प्रभु

त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम्।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **प्रदिवः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हैं। **आसु विक्षु**=इन प्रजाओं में **सीद**=आप आसीन होते हैं और **क्रत्वा**=यज्ञ के हेतु से **वार्याणाम्**=वरणीय धनों के **रथीः अभवः**=(रंहयिता) प्रापयिता होने हैं। आप सब प्रजाओं को यज्ञों के हेतु धनों को प्राप्त कराते हैं। (२) **अतः**=इस यज्ञ के हेतु ही, हे **चिकित्वः**=सर्वज्ञ **जातवेदः**=सब धनों (वेदः=धन) के देनेवाले प्रभो! आप **विधते**=पूजा करनेवाले के लिये यज्ञों के द्वारा आप के उपासक के लिये **व्यानुषक्**=निरन्तर **वसूनि**=धनों को **वि इनोषि**=विशेषरूप से प्रेरित करते हैं। यज्ञों के द्वारा उपासकों को यज्ञों के लिये धनों के देनेवाले आप ही हैं।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुषों में प्रभु का वास होता है। प्रभु ही इन यज्ञों के लिये धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तपस्वान् प्रभु से शत्रु का सन्तप्त (दहन)

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान्॥ ४॥

(१) 'काम-वासना' को 'मनसिज' कहते हैं, यह अन्दर ही अन्दर उत्पन्न हो जाती है, छिपकर हमारे अन्दर रह रही है। **यः**=जो **सनुत्यः**=अन्तर्हितरूपेण हमारे अन्दर निवास करती हुई यह वासना **नः**=हमें **अभिदासत्**=उपक्षीण करती है, हे **अग्ने**=परमात्मन्! **यः**=जो **अन्तरः**=हमारे अन्दर होती हुई **मित्रमहः**=(प्रमीतेः त्रायते) मृत्यु से बचनेवाले तेज को **वनुष्यात्**=नष्ट करती है। **तम्**=उस वासना को, **तपिष्ठ**=हे शत्रुओं को अतिशयेन सन्तप्त करनेवाले प्रभो! **तपा**=सन्तप्त करिये। आप **तपसा**=तप से **तपस्वान्**=प्रशस्त दीप्तिवाले हैं। **तव**=आपके **स्वैः**=अपने **अजरेभिः**=न जीर्ण होनेवाले **वृषभिः**=बलों से उस 'सनुत्य-अन्तर' शत्रु को दग्ध करिये।

भावार्थ—'काम' हमारा अन्तःशत्रु है, यह हमारी प्राणशक्ति को विनष्ट करता है। प्रभु अपने तप से इसका दहन करें। हम प्रभु का स्मरण करते हैं, प्रभु हमारे इन शत्रुओं का दहन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राया द्युम्ने श्रवसा

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति॥ ५॥

(१) हे **सहसः सूने**=बल के पुञ्ज प्रभो! **यः**=जो **यज्ञेन**=श्रेष्ठतम कर्मों द्वारा तथा **समिधा**=ज्ञानदीप्ति द्वारा **ददाशत्**=आपके प्रति अपना अर्पण करता है, वह **ते**=तेरा है। **यः**=जो **उक्थैः**=स्तोत्रों के द्वारा व **अर्केभिः**=अर्चना के साधनभूत मन्त्रों द्वारा आपके प्रति अपने को दे डालता है वह ते=आपका है। (२) **सः**=वह, हे **अमृत**=मरणधर्मरहित प्रभो! **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **प्रचेताः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाला होता है। यह आपका भक्त **राया**=दान में विनियुक्त होनेवाले धन से, **द्युम्नेन**=ज्ञान ज्योति से व **श्रवसा**=यश से **विभाति**=शोभावाला होता है।

भावार्थ—प्रभु की उपासना 'यज्ञों, ज्ञानदीप्तियों, स्तोत्रों व मन्त्रों' से होती है। उपासना से हम 'धन, ज्ञान व यश' से सम्पन्न होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शत्रु-बाधन

स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान्।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **इषितः सः**=गत मन्त्र के अनुसार 'यज्ञों, ज्ञानदीप्तियों, स्तोत्रों व मन्त्रों' से हृदय में प्रेरित किये गये आप **तूयम्**=शीघ्र ही **तत् कृधि**=वह करिये कि **स्पृधः बाधस्व**=हमारे शत्रुओं को बाधित करिये। आपकी कृपा से हमारे पर शत्रुओं का आक्रमण न हो। आप **सहसा सहस्वान्**=शत्रुमर्षक बल के द्वारा बलवान् हैं। (२) **द्युभिः अक्तः**=ज्ञानदीप्तियों से संगत आप **यत्**=जब **वचोभिः**=स्तुति-वचनों से **शस्यसे**=प्रशंसित किये जाते हैं, तो उस समय **जरितुः**=स्तोता के **तत्**=उस **घोषि**=घोषणीय, उच्चारण किये जाने योग्य, **मन्म**=मननीय स्तोत्र को

जुषस्व=प्रीतिपूर्वक सेवन करिये। स्तोता का यह स्तोत्र आपके लिये प्रिय हो। स्तोता के ज्ञान का यह वर्धक बने।

भावार्थ—हे प्रभो! स्तुति किये आप हमारे अन्तःशत्रुओं का बाधन करिये। हमारे से उच्चरित स्तोत्र हमें आपका प्रिय बनाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रयि-वाज-द्युम्न (धन शक्ति ज्ञान)

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम्।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तव ऊती**=आपके रक्षण के द्वारा हम **तं कामम्**=उस कामना को **अश्याम**=व्याप्त करें कि—(क) हे **रयिवः**=उत्तम ऐश्वर्योंवाले प्रभो! **सुवीरम्**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले अथवा हमें वीर बनानेवाले **रयिं अश्याम**=धन को प्राप्त करें। हम धनी हों, पर उस धन के परिणामस्वरूप हमारे सन्तान न बिगड़ जाएँ और नांही हम अवीर हो जाएँ। (२) हे प्रभो! हम **वाजयन्तः**=शक्ति की कामना करते हुये **वाजम्**=शक्ति को **अभि**=आभिमुख्येन **अश्याम**=प्राप्त हों और हे **अजर**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! **ते**=आपके **अजरम्**=इस कभी जीर्ण न होनेवाले **द्युम्नम्**=ज्ञान को **अश्याम**=प्राप्त करें 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'।

भावार्थ—प्रभु के रक्षण में हम 'धन, शक्ति व ज्ञान' को प्राप्त करें।

छठे सूक्त में भी भरद्वाज बार्हस्पत्य अग्नि का स्तवन करते हैं—

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु उपासन से दिव्य जीवन की प्राप्ति

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति॥ १॥

गातुम्=मार्ग को तथा **अवः**=रक्षण को **इच्छमाना**=चाहता हुआ उपासक **नव्यसा यज्ञेन**=अतिशयेन प्रशस्य (नु स्तुतौ) यज्ञ से, श्रेष्ठतम कर्म से **सहसः सूनुं अच्छा**=उस बल के पुञ्ज प्रभु की ओर **प्रजिगाति**=प्रकर्षेण जाता है। प्रभु से ही तो वह उपासक रक्षण को प्राप्त करके मार्ग पर आगे बढ़ जायेगा। (२) उस प्रभु की ओर यह **वीती**=(वी असने) सब वासनाओं को परे फेंकने के हेतु से (प्रजिगाति=) प्रकर्षेण जाता है, जो **वृश्चद्वनम्**=वासना वन को काटनेवाले हैं। **कृष्णयामम्**=अत्यन्त आकर्षक नियमनवाले हैं, अर्थात् अपने उपासक को यम नियमों में चलानेवाले हैं। **रुशन्तम्**=देदीप्यमान हैं। **होतारम्**=सब कुछ देनेवाले हैं तथा **दिव्यम्**=हम अतिशयेन स्तुत्य हैं (दिव् स्तुतौ) अथवा हमारे सब रोग व पापरूप शत्रुओं को नष्ट करके हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाले हैं।

भावार्थ—यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन करते हुए हम प्रभु के रक्षण में मार्ग पर आगे बढ़ते हैं। वे प्रभु ही हमारे सब शत्रुओं को नष्ट करके हमारे जीवन को दिव्य बनाते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'ज्ञान द्वारा पवित्रता' व 'ऐश्वर्य प्राप्ति'

स श्वि॒ता॒नस्त॑न्य॒तू रो॑च॒न॒स्था अ॒जरे॑भि॒र्नान॑दद्भि॒र्यवि॑ष्ठः।
यः पा॑व॒कः पु॑रु॒तमः॑ पु॒रूणि॑ पृ॒थून्य॒ग्निर॑नु॒याति॒ भर्व॑न्॥ २॥

(१) **सः अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **श्वितानः**=अत्यन्त श्वेतवर्णवाले, एकदम शुद्ध व अपापविद्ध हैं। **तन्यतुः**=हमारे हृदयों में स्थित हुए-हुए ज्ञान-वाणियों का गर्जन करनेवाले हैं। **रोचनस्थाः**=इस नक्षत्रों से देदीप्यमान अन्तरिक्षलोक में स्थित हैं। **अजरेभिः**=कभी जीर्ण न होनेवाले **नानदद्भिः**=खूब ऊँचे उच्चरित होते हुए इन वेद शब्दों से **यविष्ठः**=युवतम हैं, हमें बुराइयों से अधिक से अधिक दूर करनेवाले हैं। इन ज्ञानवाणियों से वे प्रभु हमें सब अच्छाइयों से युक्त करते हैं। (२) **यः**=जो अग्रेणी प्रभु **पावकः**=पवित्र करनेवाले हैं। पवित्रता के द्वारा **पुरुतमः**=हमारा अधिक से अधिक पालन व पूरण करनेवाले हैं। ये प्रभु **भर्वन्**=हमारे शत्रुओं का संहार करते हुए **पुरूणि**=पालन व पूरण करनेवाले **पृथूनि**=विशाल धनों को **अनुयाति**=(या प्रापणे) अनुकूलता से प्राप्त कराते हैं। प्रभु से प्राप्त कराये गये धन हमारे जीवनों में व्यसनों को उत्पन्न नहीं होने देते।

भावार्थ—ज्ञान देकर प्रभु हमारे जीवनों को पवित्र बनाते हैं। जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये उत्कृष्ट धनों को देते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्रभु की पवित्र ज्ञानदीप्तियाँ

वि ते॒ विष्व॒ग्वात॑जूतासो अग्ने॒ भामा॑सः शुचे॒ शुच॑यश्चरन्ति।
तु॒वि॒म्र॒क्षासो॑ दि॒व्या नव॑ग्वा॒ वना॑ वनन्ति धृष॒ता रु॒जन्तः॑॥ ३॥

(१) हे **शुचे**=पवित्र **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **ते**=आपकी **वातजूतासः**=(वा गतौ) गति की प्रेरणा देनेवाली, कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश देनेवाली, **शुचयः**=पवित्र **भामासः**=दीप्तियाँ **विष्वग्**=सब ओर **विचरन्ति**=गतिवाली होती हैं। सबके हृदयों में आप इन दीप्त ज्ञान-वाणियों की प्रेरणा देते हैं। (२) ये ज्ञानदीप्तियाँ **तुविम्रक्षासः**=खूब ही जीवनों का शोधन करनेवाली हैं, (मृजू शुद्धौ) **दिव्याः**=प्रकाशमय हैं, **नवग्वाः**=स्तुत्य गतिवाली हैं। ये दीप्तियाँ **धृषता**=अपने धर्षण सामर्थ्य से **वना**=वासनाओं के वनों को **रुजन्तः**=छिन्न-भिन्न करती हुई **वनन्ति**=हमारे लिये मोक्ष-सुख का विजय करती है (वन्=win)।

भावार्थ—प्रभु की ज्ञानदीप्तियाँ हमें कर्मों में प्रेरित करती हुई पवित्र जीवनवाला बनाती हैं। ये हमारे लिये मोक्ष-सुख का विजय करती हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सद्गुण बीज-वपन

ये ते॑ शु॒क्रासः॒ शुच॑यः शुचिष्मः॒ क्षां वप॑न्ति॒ विषि॑तासो॒ अश्वाः॑।
अध॑ भ्र॒मस्त॑ उर्वि॒या वि भा॑ति या॒तय॑मानो॒ अधि॒ सानु॒ पृश्नेः॑॥ ४॥

(१) हे **शुचिष्मः**=शुचिता दीप्ति व पवित्रतावाले प्रभो! **ये**=जो **ते**=आपकी **शुक्रासः**=दीप्त **शुचयः**=पवित्रता की साधक ज्ञान-ज्वालाएँ हैं, वे **क्षां**=इस शरीर रूप भूमि को **वपन्ति**=उत्तम गुणों के बीजों के वपनवाला करती है। इन ज्ञान-ज्वालाओं से **अश्वाः**=इस शरीर-रथ में जुते हुए

इन्द्रियाश्व **विषितासः**=(वि+सित) विषय बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान के कारण पवित्रता का संचार होकर विषयाशक्ति विनष्ट हो जाती है। (२) **अध**=अब इन्द्रियाश्वों के निर्मल होने पर **ते भ्रमः**=हे प्रभो! आपकी गति **उर्विया**=खूब ही **विभाति**=दीप्त होती है। यह आपकी गति **पृश्नेः**=(संस्प्रष्टा भासां नि० २।१४) सब ज्ञानों का स्पर्श करनेवाली वेदवाणी रूप सूर्य को **अधि सानु**=शिखर पर **यातयमानः**=हमें व्यापारित करती है, हमें ऊँचे से ऊँचे ज्ञान में ले जाती है। जैसे-जैसे इन्द्रियाँ निर्मल होती जाती हैं, उसी प्रकार प्रभु की उपस्थिति व गति का अनुभव होने लगता है। यह प्रभु की गति हमें ज्ञान के शिखर पर ले जाती है। इसी बात को यहाँ 'पृश्नि के शिखर पर व्यापारित होना' इन शब्दों में कहा है।

भावार्थ—प्रभु की दीप्त ज्ञान ज्वालाएँ शरीर रूप पृथिवी में सद्गुणों के बीजों का वपन करती हैं। ये इन्द्रियाश्वों को विषयों से व्यापृत्त करती हैं। अब प्रभु की गति का हृदयों में अनुभव होता है और यह गति हमें ज्ञानशिखर पर ले जानेवाली होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासना वन-विनाश

अध॑ जि॒ह्वा पा॑पतीति॒ प्र वृष्णो॑ गोषु॒युधो॒ नाशनिः॑ सृजा॒ना।
शूर॑स्येव॒ प्रसि॑तिः क्षा॒तिर॒ग्नेर्दु॒र्वर्तु॒र्भी॒मो द॑यते॒ वना॑नि ॥ ५ ॥

(१) **अध**=अब गत मन्त्र के अनुसार हृदय में प्रभु की गति का अनुभव होने पर, **वृष्णः**=उस सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु की **जिह्वा**=ज्ञान-प्रदायिनी वाणी **प्रपापतीति**=खूब ही हमारे जीवनों में गतिवाली होती है। यह प्रभु की जिह्वा **गोषुयुधः**=इन्द्रियों के विषयों में वासनाओं से युद्ध करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष के **सृजाना अशनिः इव**=उत्पन्न किये जाते हुए वज्र के समान है। जैसे कि जितेन्द्रिय पुरुष क्रियाशीलता रूप वज्र के द्वारा वासनारूप शत्रुओं का विनाश करता है, उसी प्रकार प्रभु की ज्ञानवाणी भी इन वासनारूप शत्रुओं पर आक्रमण करनेवालाी होती है। (२) **शूरस्य**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **अग्नेः**=उस अग्रणी प्रभु की **प्रसितिः**=शत्रु-बन्धन शक्ति तथा **क्षातिः**=शत्रुक्षय सामर्थ्य **दुर्वतुः**=शत्रुओं से वारण के योग्य नहीं होती। यह **भीमः**=शत्रुओं के भयंकर अग्नि का सामर्थ्य **वनानि दयते**=वासना वनों का हिंसन करता है। प्रभु की उपासना से सब वासना वन भस्मीभूत हो जाता है।

भावार्थ—प्रभु की ज्ञानाग्नि में सब वासनाएँ भस्म हो जाती हैं। प्रभु की उपासना से प्राप्त सामर्थ्य सब वासना वनों का हिंसन करनेवाला होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ज्ञान व बल' से शत्रुओं का संहार

आ भा॒नुना॒ पार्थि॑वानि॒ ज्रयां॑सि म॒हस्तो॒दस्य॑ धृष॒ता त॑तन्थ।
स बा॑धस्वाप॒ भ॒या सहो॑भि॒ः स्पृधो॑ वनु॒ष्यन्व॒नुषो॒ नि जू॑र्व ॥ ६ ॥

(१) उस **महः तोदस्य**=महान् प्रेरक प्रभु के **भानुना**=ज्ञान-प्रकाश के साथ तथा **धृषता**=शत्रु वर्षण सामर्थ्य के साथ **पार्थिवानि ज्रयांसि**=इस पार्थिव शरीर सम्बन्धी गतियों को **आ ततन्थ**=तू समन्तात् विस्तृत करता है। उपासक अपनी सब क्रियाओं को प्रभु की उपासना से प्राप्त ज्ञानदीप्ति व शक्ति के साथ करता है। (२) **सः**=वह तू **भया**=सब भय के कारणभूत पापों को **अपबाधस्व**=अपने से दूर हो रोकनेवाला हो। **सहोभिः**=शत्रुमर्षक बलों से **स्पृधः**=शत्रुओं को

वनुष्यन्=हिंसित करता हुआ **वनुषः**=हिंसक शत्रुओं को **निजूर्व**=हिंसित कर।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से प्राप्त ज्ञान व बल से हम काम आदि शत्रुओं का संहार करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अद्भुत धन की प्राप्ति

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व॥ ७॥

(१) हे **चित्र**=(चित्+र) ज्ञान को देनेवाले, **चित्रक्षत्र**=अद्भुत बलवाले **चन्द्र**=आह्लादमय (आनन्दस्वरूप) **चन्द्राभिः**=आह्लादकारिणी स्तुतियों से **गृणते**=स्तवन करनेवाले **अस्मे**=हमारे लिये **रयिं युवस्व**=धन को प्राप्त कराइये (यु मिश्रणे)। (२) उस धन को प्राप्त कराइये जो **चित्रम्**=ज्ञान को देनेवाला है, **चितयन्तम्**=हमारी चेतना को बढ़ानेवाला है। **चित्रतमम्**=अतिशयेन अद्भुत है। **वयोधाम्**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाला है **चन्द्रम्**=आह्लाद का जनक है। **पुरुवीरम्**=पालक व पूरक होता हुआ (पृ पालनपूरणयोः) विशेषरूप से शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाला है (वि+ईर) और इस प्रकार **बृहन्तम्**=वृद्धि का कारण है।

भावार्थ—प्रभु अपने स्तोताओं को उस सात्त्विक धन की प्राप्ति कराते हैं जो उन्नति का ही साधन बनता है।

अगले सूक्त में 'भारद्वाज बार्हस्पत्य' वैश्वानर का स्मरण करते हैं—

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मूर्धानं दिवः-अरतिं पृथिव्याः

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥ १॥

(१) मुख्यरूप से वैश्वानर=सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभु हैं। मानव समाज में 'ब्रह्माश्रम' में पहुँचनेवाला संन्यासी भी 'वैश्वानर' है। इस वैश्वानर को देवाः='माता, पिता, आचार्य, अतिथि व प्रभु' रूप देव जनयन्त=जन्म देते हैं। ५ वर्ष तक माता इसके चरित्र निर्माण का प्रयत्न करती है, अब पिता ८ वर्ष तक इसे शिष्टाचार सम्पन्न बनाने के लिये यत्नशील होते हैं। फिर २५ वर्ष तक आचार्य इसे ज्ञान से परिपूर्ण करते हैं। फिर ५० वर्ष तक गृहस्थ में विद्वान् अतिथि इसे मोह में फँस जाने व मार्गभ्रष्ट होने से बचाते हैं। अब ७५ वर्ष तक यह प्रभु की उपासना के लिये यत्नशील होता है और ब्रह्माश्रम में पहुँचकर लोकहित में प्रवृत्त होता है। इसे देव कैसा बनाते हैं? **दिवः मूर्धानम्**=ज्ञान के शिखरभूत और अतएव **पृथिव्याः अरतिम्**=पार्थिव भोगों के प्रति न रुचिवाला और **वैश्वानरम्**=सब लोकों के हित में प्रवृत्त। (२) यह वैश्वानर **ऋते आजातम्**=ऋत के अनुभव के लिये ही मानो उत्पन्न हुआ है, अर्थात् इसके सब कार्य बड़े व्यवस्थित होते हैं, ठीक समय पर व ठीक स्थान पर। **अग्निम्**=यह अग्रेणी है, अपने को आगे ले चलता हुआ औरों को भी उन्नति का कारण बनता है। **कविम्**=क्रान्तदर्शी है, चीजों के तत्त्व को देखता है। **सम्राजम्**=यह ज्ञान से देदीप्यमान होता है। **जनानां अतिथिम्**=लोगों का अतिथि बनता है, अर्थात् उनके हित के लिये उनके समीप सदा प्राप्त होनेवाला होता है। **आसन्**=मुख द्वारा, ज्ञानोपदेश के द्वारा **आ**

पात्रम्=सब ओर रक्षा करनेवाला होता है। इस प्रकार के इस ब्रह्माश्रमी के निर्माण में माता आदि सब देवों का हाथ होता है।

भावार्थ—आदर्श संन्यासी उत्कृष्ट ज्ञानवाला व भोगों के प्रति अरुचिवाला होकर ज्ञानोपदेश से सबका मार्गदर्शन करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वह महान् वैश्वानर

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः॥ २॥

(१) सर्वमहान् वैश्वानर प्रभु हैं। उस प्रभु को उपासक लोग **अभि**=लक्ष्य करके **सं नवन्त**=सम्यक् स्तुत करते हैं। जो प्रभु **यज्ञानां नाभिम्**=सब यज्ञों के, उत्तम कर्मों के प्रबन्धक हैं अथवा सब यज्ञों केन्द्र हैं। प्रभु कृपा से ही सब उत्तम कर्म हो पाते हैं। **रयीणां सदनम्**=सब ऐश्वर्यों के वे घर हैं, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के आधार वे प्रभु ही हैं। यज्ञों से ही ऐश्वर्य का वर्धन होता है। अतएव वे प्रभु **महाम्**=महान् हैं और **आहावम्**=समन्तात् पुकारे जाने योग्य हैं। (२) इस **वैश्वानरम्**=सब नरों के हितकर प्रभु को **देवाः**=देववृत्ति के व्यक्ति **जनयन्त**=अपने हृदयों में प्रादुर्भूत करते हैं, देव अपने हृदयों में उस प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। जो प्रभु **अध्वराणां रथ्यम्**=यज्ञों के, हिंसारहित कर्मों के संचालक हैं तथा **यज्ञस्य केतुम्**=इन सब यज्ञों के प्रकाशक हैं, वेदवाणी द्वारा इन यज्ञों का प्रज्ञापन करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब यज्ञों को प्रबन्धक व सब ऐश्वर्यों के आधार हैं। उन यज्ञों के प्रज्ञापक प्रभु का ही प्रातः-सायं स्तवन करना चाहिए।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य' के निर्माता प्रभु

त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः।
वैश्ववानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि॥ ३॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वद्**=आप से ही, आपकी उपासना से शक्ति को पाकर ही **विप्रः**=ज्ञानी पुरुष **वाजी**=हविर्लक्षण अन्नोंवाला, अर्थात् यज्ञशील **जायते**=बनता है। प्रभु का उपासक ज्ञानी व यज्ञशील ब्राह्मण बनता है। **त्वद्**=आप से ही **वीरासः**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले (वि+ईर) क्षत्रिय लोग **अभिमातिषाहः**=शत्रुओं का पराभव करनेवाले होते हैं। (२) हे **राजन्**=देदीप्यमान **वैश्वानर**=सब मनुष्यों के हितकर व आगे ले चलनेवाले (नृनये) प्रभो! **त्वम्**=आप **अस्मासु**=हमारे में **स्पृहयाय्याणि**=स्पृहणीय-चाहने योग्य **वसूनि**=धनों को **धेहि**=धारण करिये। आपकी कृपा से हम सुपथ से धनों के कमानेवाले वैश्यवर्ग में जन्म लें।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें (क) यज्ञशील ज्ञानी ब्राह्मण बनाती है। (ख) यह उपासना हमें शत्रुओं को कुचल देनेवाला वीर क्षत्रिय बनाती है। (ग) तथा इस उपासना से हम सुपथ से धनार्जन करनेवाले वैश्य बनते हैं। उपासना के अभाव में हम शूद्र के शूद्र रह जाते हैं 'जन्मना जायते शूद्रः' शूद्र तो हम उत्पन्न हुए ही थे। उपासना के अभाव में हम कोई उन्नति नहीं करते।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—वैश्वानरः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'मस्तिष्क व शरीर' में प्रभु की दीप्ति

त्वां विश्वे॑ अमृत॒ जाय॑मानं॒ शिशुं॒ न दे॒वा अ॒भि सं न॑वन्ते।
तव॒ क्रतु॑भिरमृत॒त्वमा॑य॒न्वैश्वा॑नर॒ यत्पि॒त्रोरदी॑देः ॥ ४ ॥

(१) हे **अमृत**=मरणधर्मरहित प्रभो! **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के व्यक्ति **जायमानं त्वाम्**=प्रादुर्भूत होते हुए आपको **अभिसंनवन्ते**=प्राप्त होते हैं। देववृत्ति के लोग प्रभु की ओर ही झुकते हैं। **शिशुं न**=जो आप शिशु के समान हैं, 'शो तनूकरणे' बुद्धि को तीव्र करनेवाले के समान हैं। 'आप ही इन देवों की बुद्धि को सूक्ष्म बनाते हैं'। (२) **तव क्रतुभिः**=आपके प्रज्ञानों व सामर्थ्यों से ही देव **अमृतत्वम्**=अमरता को **आयन्**=प्राप्त होते हैं। हे **वैश्वानर**=सब नरों के हित करनेवाले प्रभो! **यत्**=जब आप **पित्रोः**=इन द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में **अदीदेः**=दीप्त होते हैं। आप ही मस्तिष्क को ज्ञान की ज्योति से तथा शरीर को तेजस्विता से दीप्त करते हैं। इस प्रज्ञान व तेजस्विता से ही अमरता की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—प्रभु मस्तिष्क को प्रज्ञान से तथा शरीर को तेज से दीप्त करते हैं। इन प्रज्ञानों व तेजों को प्राप्त करके हम देव व अमर बनते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—वैश्वानरः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अनुल्लंघनीय व्यवस्था

वैश्वा॑नर॒ तव॒ तानि॑ व्र॒तानि॑ म॒हान्य॑ग्ने॒ नकि॒रा द॑धर्ष।
यज्जाय॑मानः पि॒त्रोरु॒पस्थेऽवि॑न्दः के॒तुं व॒युने॒ष्वह्ना॑म् ॥ ५ ॥

(१) हे **वैश्वानर**=सब नरों के हित करनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **तव**=आपके **तानि**=उन **महानि व्रतानि**=महान् व्रतों को **नकिः आदधर्ष**=कोई भी हिंसित नहीं कर पाता। उस विधाता के बनाये सृष्टि-नियमों को कोई भी तोड़ नहीं पाता। उसकी व्यवस्था में सब सूर्य आदि पिण्ड अपने-अपने मार्गों का आक्रमण करते हैं। (२) हे प्रभो! **पित्रोः उपस्थे**=मातृरूप व पितृरूप पृथिवीलोक व द्युलोक के उपस्थान में, इनकी गोद में (मध्य में) **वयुनेषु**=कर्मों व प्रज्ञानों के निमित्त आप **यत् जायमानः**=जब इस सृष्टि को जन्म देते हैं तो **अह्नां केतुम्**=दिनों के प्रकाशक इस सोम को **अविन्दः**=प्राप्त कराते हैं। इस सूर्य के प्रकाश में ही मनुष्यों के यज्ञ व स्वाध्यायादि सब कर्म होते हैं। प्रभु से स्थापित हुए-हुए ये सूर्य आदि पिण्ड अपने मार्ग पर आक्रमण करते हैं। कभी भी ये प्रभु की व्यवस्था का भंग नहीं करते।

भावार्थ—सूर्य, चन्द्र, तारे आदि सब पिण्ड प्रभु के नियमों के अनुसार मार्गों पर आक्रमण कर रहे हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—वैश्वानरः ॥ छन्दः—जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

'सर्वप्रकाशक सर्वाधार' प्रभु

वै॒श्वा॒न॒रस्य॒ विमि॑तानि॒ चक्ष॑सा॒ सानू॑नि दि॒वो अ॒मृत॑स्य के॒तुना॑।
तस्येदु॒ विश्वा॒ भुव॒नाधि॑ मू॒र्धनि॑ व॒याइ॑व रुरुहुः स॒प्त वि॒स्रुहः॑ ॥ ६ ॥

(१) **वैश्वानरस्य**=उस सब मनुष्यों का हित करनेवाले **अमृतस्य**=अविनाशी प्रभु के **चक्षसा केतुना**=सब पदार्थों का प्रकाश करनेवाले ज्ञान से **दिवः सानूनि**=ज्ञान के शिखर

विमितानि=निर्मित होते हैं। ऊँचे से ऊँचा ज्ञान हृदयस्थ प्रभु के प्रकाश से ही प्राप्त होता है। (२) **विश्वा भुवना**=सब लोक लोकान्तर **इत् उ**=निश्चय से **तस्य अधिमूर्धनि**=उस प्रभु के महत्ता पर ही आश्रित हैं। ये प्रभु ही सर्वाधार हैं। उस प्रभु से ही **वयाः इव**=शाखाओं की तरह **सप्त विस्रुहः**=सात ज्ञानस्रोत **रुरुहुः**=उत्पत्ति व वृद्धि को प्राप्त होते हैं। सारा वेदज्ञान सात छन्दों में होने के कारण 'सात स्तोत्रोंवाला' कहा गया है। इस वेदज्ञान द्वारा ही प्रभु हमारे हृदयों को प्रकाशित करते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु ही सर्वप्रकाशक हैं, सर्वाधार हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

निर्माता व रक्षिता

वि यो रजां॑स्यमि॑मीत सु॒क्रतु॑र्वैश्वान॒रो वि दि॒वो रो॑च॒ना क॒विः।
परि॒ यो विश्वा॒ भुव॑नानि पप्र॒थेऽद॑ब्धो गो॒पा अ॒मृत॑स्य र॒क्षि॒ता ॥ ७ ॥

(१) **यः**=जो प्रभु **रजांसि**=सब लोकों को **वि अमिमीत**=विशेष मानपूर्वक बनाते हैं, वे **सुक्रतुः**=शोभन कर्मों व प्रज्ञानोंवाले **वैश्वानरः**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभु ही **दिवः**=द्युलोक के **रोचना**=इन दीप्त पिण्डों (नक्षत्रों) की भी **वि**=विशेष ज्ञानपूर्वक रचना करते हैं। **कविः**=वे प्रभु क्रान्तप्रज्ञ हैं। (२) **यः**=जो **विश्वा भुवनानि**=सब भुवनों को **परिपप्रथे**=चारों ओर विस्तृत आकाश में फैलाते हैं, वे प्रभु **अदब्धः**=अहिंसित हैं, **गोपाः**=सब के रक्षक हैं, सब लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके उनका रक्षण कर रहे हैं। इन लोक-लोकान्तरों के रक्षण के साथ वे **अमृतस्य रक्षिता**=अमृत लोक के भी रक्षक हैं। मुक्त जीव भी प्रभु के ही रक्षण में हैं।

भावार्थ—सब रञ्जनात्मक (रजांसि) व प्रकाशमय (रोचना) लोकों का वे प्रभु ही निर्माण करते हैं, वे ही इनका रक्षण करते हैं। अमृत लोक के भी वे ही रक्षक हैं।

आठवें सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' वैश्वानर का स्तवन करते हैं—

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु-स्तवन व सुन्दर जीवन

पृ॒क्षस्य॒ वृष्णो॑ अरु॒षस्य॒ नू सहः॒ प्र नु वो॑चं वि॒दथा॑ जा॒तवे॑दसः।
वै॒श्वा॒न॒राय॑ म॒तिर्नव्य॑सी॒ शुचिः॒ सोम॑इव पवते॒ चारु॑र॒ग्नये॑ ॥ १ ॥

(१) **पृक्षस्य**=सर्वत्र सम्पृक्त, अर्थात् सर्वव्यापक, **वृष्णः**=सब पर सुखों का वर्षण करनेवाले अथवा शक्तिशाली **अरुषस्य**=आरोचमान **जातवेदसः**=उस सर्वज्ञ प्रभु के **सहः**=शत्रु-मर्षक सामर्थ्य को **नु**=अब **विदथा**=इस ज्ञानयज्ञ में **नु**=निश्चय से **प्रवोचम्**=प्रकर्षेण प्रतिपादित करता हूँ। इस प्रभु का बल ही तो मेरे भी काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला है। (२) उस **वैश्वानराय**=सब नरों का हित करनेवाले **अग्नये**=अग्रेणी प्रभु के लिये, **सोमः इव**=सोम की तरह **चारुः**=सुन्दर **शुचिः**=पवित्र **नव्यसी**=अतिशयेन **प्रशस्य मतिः**=मननपूर्वक की गई स्तुति **पवते**=प्राप्त होती है। मैं उस प्रभु का स्तवन करता हूँ। यह स्तवन मेरे जीवन को सुन्दर पवित्र व प्रशस्त बनाता है। इस स्तवन से मेरे में सोम का भी रक्षण होता है।

भावार्थ—मैं सर्वव्यापक शक्तिशाली आरोचमान सर्वज्ञ प्रभु का स्तवन करता हूँ। इस स्तवन

से मेरे जीवन में सोम (वीर्य) का रक्षण होता है और मेरा जीवन सुन्दर, पवित्र व प्रशस्त बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

व्रतों (नियमों) के रक्षक प्रभु

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत्॥ २॥

(१) **सः**=वह **व्रतपाः**=सब व्रतों (नियमों) का रक्षक **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **परमे व्योमनि**=इस परम आकाश में, अनन्त विस्तृत आकाश में **जायमानः**=सब लोक-लोकान्तरों को जन्म देता हुआ ('माता प्रजाता') की तरह यह प्रयोग है। **व्रतानि अरक्षत**=इन सूर्य विद्युत् अग्नि आदि देवों के व्रतों का रक्षण करते हैं। प्रभु के भय से ही सब देव अपने-अपने व्रत का पालन कर रहे हैं। (२) वे **सुक्रतुः**=शोभनकर्मा शोभन-प्रज्ञ **वैश्वानरः**=सर्वहितकर प्रभु ही **अन्तरिक्षम्**=इस अन्तरिक्षलोक को **वि अमिमीत**=विशेष निर्माणपूर्वक बनाते हैं। इस अन्तरिक्ष में सब 'रञ्जनात्मक व प्रकाशात्मक' लोकों का निर्माण करते हैं। वे प्रभु ही **महिना**=अपनी महिमा से **नाकं अस्पृशत्**=मोक्ष-सुख का स्पर्श करते हैं। अर्थात् वे ही मोक्षलोक का भी धारण करते हैं।

भावार्थ—सब सूर्यादि पिण्ड प्रभु की व्यवस्था में ही गति कर रहे हैं। प्रभु ही सब लोकों का निर्माण करते हैं, मोक्षलोक का भी वे ही धारण करनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रकाशक प्रभु

व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम्॥ ३॥

(१) **मित्रः**=वे सब के साथ स्नेह करनेवाले **अद्भुतः**=अद्भुत (अनुपम) प्रभु **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **व्यस्तभ्नात्**=विशेषरूप से थामते हैं। प्रभु ही इनका धारण करनेवाले हैं। वे प्रभु **ज्योतिषा**=अपनी ज्योति से **तमः**=अन्धकार को **अन्तर्वावत्**=अन्तर्हित तिरोहित **अकृणोत्**=कर देते हैं। (वावत्=वातेर्यङ्लुगन्तस्य रूपम्)। सारे द्यावापृथिवी को धारण करते हुए, इनको वे प्रकाशमय करते हैं। (२) **वैश्वानरः**=सबका हित करनेवाले वे प्रभु **चर्मणी इव**=दो चर्मों (चमड़ों) के समान **धिषणे**=इन द्यावापृथिवी को **वि अवर्तयत्**=विशेष रूप से बिछा-सा देते हैं। इन द्यावापृथिवी को वे प्रभु ही विस्तृत करनेवाले हैं। वे ही **विश्वम्**=सब **वृष्ण्यम्**=(वीर्यं बलम्) बल को **अधत्त**=धारण करते हैं। द्यावापृथिवी में सब पिण्डों को स्थापित करके उन्हें वे प्रभु ही उस-उस शक्ति से सम्पन्न कर रहे हैं।

भावार्थ—वे प्रभु द्युलोक व पृथिवीलोक का धारण करते हैं, वे ही अन्धकार को दूर करते हैं। प्रभु ही सर्वत्र शक्ति की स्थापना करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

क्रियाशीलता व प्रभु प्राप्ति

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः॥ ४॥

(१) **महिषाः**=(मह पूजायाम्) उपासक लोग **अपां उपस्थे**=कर्मों की गोद में अथवा कर्मों की उपासना में ही **अगृभ्णत**=उस प्रभु का ग्रहण करते हैं। **विशः**=सब प्रजाएँ **राजानम्**=उस देदीप्यमान **ऋग्मियम्**=स्तुत्य प्रभु के समीप **उपतस्थु**=उस-उस कामना की पूर्ति के लिये उपस्थित होती हैं (२) **विवस्वतः**=सूर्य का **दूतः**=संदेशवाहक, सूर्य से दी जानेवाली गतिरूप प्रेरणा का धारण करनेवाला पुरुष **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **आ अभरद्**=सब क्रियाओं को करता हुआ धारण करता है। प्रभु स्मरणपूर्वक ही यह सब क्रियाओं को करता है। **मातरिश्वा**=वायु, अर्थात् वायु की तरह निरन्तर गतिशील जीव ही **परावतः**=सुदूर देश से **वैश्वानरम्**=उस सर्वनरहितकारी प्रभु को प्राप्त करता है। प्रभु आलसियों से सदा दूर हैं। क्रियाशीलता ही हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराती है।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम आलस्य को छोड़कर अपने कर्तव्य कर्मों की उपासना करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धन प्राप्ति व शत्रु नाश

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा॥ ५॥

(१) **अग्ने**=परमात्मन्! आप **युगे युगे गृणद्भ्यः**=समय-समय पर, अर्थात् सदा स्तुति करनेवालों के लिये **रयिम्**=धन को **धेहि**=धारण करिये। जो धन **विदथ्यम्**=ज्ञान प्राप्ति के लिये सहायक होता है, **यशसम्**=हमारे जीवन को यशस्वी बनाता है तथा जो धन **नव्यसीम्**=स्तुत्य है, प्रशस्त साधनों से कमाया गया है। (३) हे **राजन्**=देदीप्यमान, **अजर**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! आप **इव**=जैसे **पव्या**=वज्र से **वनिनं न**=वृक्ष को काटते हैं, इसी प्रकार **अघशंसम्**=अघ-पाप और कष्ट के शंसन करनेवाले, हमारे लिये अशुभ की कामनावाले शत्रु को **तेजसा**=तेजस्विता से **नीचा निवृश्च**=काटकर नीचे फेंकनेवाले होइये।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्कृष्ट धन प्राप्त कराएँ तथा हमारे लिये अघ का शंसन करनेवाले को नष्ट करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अनमनीय बल व आनन्दमय दीर्घ जीवन

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम्।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः॥ ६॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अस्माकं मघवत्सु**=हमारे यज्ञशील पुरुषों में **सुवीर्यम्**=उत्तम बल को **धारय**=धारण करिये जो कि **अनामि**=शत्रुओं से नमनीय नहीं है, **क्षत्रम्**=हमें क्षतों से, घावों से बचानेवाला है तथा **अजर**=कभी जीर्ण होनेवाला नहीं है। (२) हे **वैश्वानर**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो **वयम्**=हम **तव ऊतिभिः**=आप के रक्षणों के द्वारा **वाजम्**=उस बल को **जयेम**=विजय करें जो **शतिनम्**=हमारे सौ वर्ष तक चलनेवाला है और **स-हस्त्रिणम्**=हमें सदा प्रसन्न रखनेवाला है। शक्ति से ही हम आनन्दपूर्वक सौ वर्ष तक जीनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें शत्रुओं से अनमनीय जीर्ण न होनेवाला बल प्राप्त कराते हैं। प्रभु कृपा से हम शक्ति प्राप्त करके आनन्दपूर्वक पूर्ण आयुष्य को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'रक्षक व बलदाता' प्रभु

अद॑ब्धेभि॒स्तव॒ गो॒पाभि॑रिष्टे॒ऽस्माकं॑ पाहि त्रिषधस्थ सू॒रीन्।
रक्षा॑ च नो द॒दुषां॒ शर्धो॑ अग्ने॒ वैश्वा॑नर॒ प्र च॑ तारीः॒ स्तवा॑नः ॥ ७ ॥

(१) हे **त्रिषधस्थ**=तीनों लोकों में एक साथ स्थित होनेवाले प्रभो! आप **अस्माके सूरीन्**=हमारे ज्ञानी पुरुषों को **तव**=अपने **अदब्धेभिः गोपाभिः**=अहिंसनीय रक्षणों के द्वारा रक्षक तेजों के द्वारा **इष्टे**=यज्ञों में **पाहि**=रक्षित करिये। आपसे रक्षित होकर ये ज्ञानी पुरुष सदा यज्ञों में प्रवृत्त रहें। (२) **नः**=हमारे **ददुषाम्**=इन दानशील पुरुषों के **शर्धः**=बल को **रक्षा**=रक्षित करिये। **च**=और हे **वैश्वानर अग्ने**=सबका हित करनेवाले अग्रेणी प्रभो! **स्तवानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **प्रतारीः**=इनको सब प्रकार से बढ़ाइये। इनका शरीर स्वस्थ हो, इनका मन निर्मल हो और इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र बने।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित होकर हम यज्ञशील बनें। त्यागवृत्तिवाले बनकर सबल बनें। स्तुति करते हुए सब दृष्टिकोणों से वृद्धि को प्राप्त करें।

अगले सूक्त में भी 'वैश्वानर' का ही स्तवन है—

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दिन-रात के चक्र में प्रभु की महिमा

अह॑श्च कृ॒ष्णमह॒रर्जु॑नं च॒ वि व॑र्तेते॒ रज॑सी वे॒द्याभिः॑।
वै॒श्वा॒न॒रो जाय॑मानो॒ न रा॒जावा॑तिर॒ज्ज्योति॑षा॒ग्निस्तमां॑सि ॥ १ ॥

(१) 'अहः' शब्द दिन का वाचक है। कृष्णा विशेषण लगाने पर यह रात्रि को भी प्रतिपादित करता है। **कृष्णं अह**=अन्धकार के कारण कृष्ण वर्णवाली यह रात्रि **च**=तथा **अर्जुनं अहः**=सूर्य-किरणों से उज्वल श्वेत दिन **वेद्याभिः**=अनुकूलतया ज्ञातव्य अपनी प्रवृत्तियों से **रजसी**=सब लोकों का रञ्जन करते हुए **विवर्तेते**=पर्यावृत्त हो रहे हैं। चक्राकार गति में निरन्तर चलते हुए ये लोक-रञ्जन का कारण बन रहे हैं। दिन का प्रकाश हमें प्रबुद्ध करके कार्य प्रवृत्त करता है, तो थके हुए अंगों को विश्राम देने के लिये रात्रि का आगमन होता है। इस प्रकार दिन व रात दोनों मिलकर लोक-रञ्जन का साधन बनते हैं। (२) **वैश्वानरः**=वह सब नरों का हित करनेवाला प्रभु **राजा न**=एक शासक के समान **जायमानः**=इस दिन-रात के चक्र में अपनी महिमा के द्वारा प्रकट हो रहा है। अपने चक्र में घूमते हुए दिन-रात प्रभु की महिमा को प्रकट कर रहे हैं। प्रभु के शासन में ही ये चल रहे हैं। **अग्निः**=ये अग्रेणी प्रभु **ज्योतिषा**=अपनी ज्योति से **तमांसि**=अन्धकारों को **अवातिरत्**=विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—दिन-रात के चक्र में प्रभु की महिमा व्यक्त हो रही है। प्रभु ही अपनी ज्योति से सब अन्धकारों को दूर करते हैं। सूर्य आदि में प्रभु की दीप्ति ही दीप्त हो रही है, जीवों के हृदयों को भी प्रभु ही रोशन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यज्ञ-वस्त्र के तन्तु व ओतु

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा॥ २॥

(१) **अहम्**=मैं यज्ञरूप वस्त्र के **तन्तुम्**=प्रागायत गायत्र्यादिच्छन्दरूप सूत्रों को, ताने को **न विजानामि**=नहीं जानता हूँ। **ओतुम्**=यजुः तथा आध्वर्यव कर्म रूप तिरश्चीन सूत्रों को भी, बाने को भी **न**=नहीं जानता हूँ। मैं उस यज्ञरूप वस्त्र को भी **न**=नहीं जानता हूँ, **यम्**=जिसको **समरे**=(संगमने) सबके मिलकर बैठने के स्थान देवयजन में **अतमानाः**=गति करते हुए ऋत्विज लोग **वयन्ति**=बुनते हैं। यज्ञ को मैं पूरा-पूरा समझ नहीं पाता। (२) मैं **कस्य स्वित् पुत्रः**=भला किस का पुत्र हूँ? इस बात को भी मैं ठीक से नहीं जानता। **इह**=इस जीवन में **परः**=वे पर प्रभु **वक्त्वानि**=वक्तव्य बातों को **वदाति**=उच्चारित करते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में वे प्रभु सब उपदेष्टव्य बातों का प्रतिपादन करते हैं। बाद में **अवरेण पित्रा**=इहलोक में होनेवाले प्रभु माता-पिता के द्वारा वे प्रभु ही आनेवाली सन्तानों को उपदेश देते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में 'पर पिता' प्रभु 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा' आदि ऋषियों को ज्ञान देते हैं। फिर अवरकाल में होनेवाले लौकिक माता-पिता अपने सन्तानों को ज्ञान देने लगते हैं।

भावार्थ—न तो हम यज्ञरूप अपने कर्त्तव्यों को पूरा-पूरा समझते हैं और नांही परम पिता प्रभु को जानते हैं। ये प्रभु ही सृष्टि के प्रारम्भ में कर्तव्य कर्मों का ज्ञान देते हैं। फिर अर्वाचीनकाल में माता-पिताओं से सन्तानों को ज्ञान दिया जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु ही ज्ञानी हैं

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन्॥ ३॥

(१) **सः इत्**=वे प्रभु ही **तन्तुम्**=यज्ञ-वस्त्र के तन्तु-स्थानीय गायत्र्यादि छन्दों को **विजानाति**=जानते हैं और **सः**=वे ही **ओतुम्**=तिरश्चीन सूत्र-भूत यजुओं को जानते हैं। **सः**=वे प्रभु ही **ऋतुथा**=समय के अनुसार **वक्त्वनि**=वक्तव्य कर्त्तव्य कर्मों का **वदाति**=उपदेश करते हैं। (२) **यः**=जो **ईम्**=निश्चय से **चिकेतत्**=जानता है, वह सर्वज्ञ 'वैश्वानर' प्रभु ही **अमृतस्य गोपाः**=अमृतत्व के, मोक्षलोक के रक्षक हैं। **परः**=पर होते हुए वे प्रभु **अवः चरन्**=यहाँ अवस्तात् निचले भूलोक में विचरते हैं। सर्वज्ञ उस प्रभु की सत्ता है। **अन्येन**=अपने से अन्य इस जीव के हेतु से **पश्यन्**=वे इन सब लोक-लोकान्तरों को देखते हैं, इनका ध्यान करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही पूर्ण ज्ञानी हैं, वे ही हमें कर्त्तव्य कर्मों का उपदेश देते हैं। वे हमारे लिये इन लोक-लोकान्तरों का ध्यान करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रथम होता

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः॥ ४॥

(१) **अयम्**=ये प्रभु ही **प्रथमः होता**=सर्वप्रथम होता हैं, प्रभु इस सृष्टि-यज्ञ को करते हैं। **इमं पश्यत**=इन्हें ही देखने का यत्न करो। **इदम्**=यह प्रभु रूप **ज्योतिः**=ज्योति ही **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **अमृतम्**=अमृत है। मरणधर्मा शरीरों से सम्बद्ध जीवों में प्रभु ही अमृत ज्योति हैं। (२) **अयं सः**=ये वे प्रभु ही **ध्रुवः**=ध्रुव **जने**=हुए हैं और सब अस्थिर है। **आनिषत्तः**=ये प्रभु सर्वत्र निषण्ण हैं, विद्यमान हैं। **अमर्त्यः**=ये प्रभु मरणधर्मा नहीं हैं। **तन्वा वर्धमानः**=इन हमारे शरीरों से वृद्धि को प्राप्त होते से हैं। इन शरीरों का विकास प्रभु की व्यवस्था से ही होता है।

भावार्थ—प्रभु सर्वप्रथम होता (याज्ञिक) है, ये अमर-ज्योति हैं। सर्वव्यापक होते हुये हमारे शरीरों के वर्धन का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ध्रुव ज्योति' का दर्शन

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ५ ॥

(१) **पतयत्सु अन्तः**=विविध कर्मों में लगे हुए प्राणियों के अन्दर प्रभु **निहितम्**=निहित हैं, विद्यमान हैं। वे प्रभु **ध्रुवं ज्योतिः**=एक अविचल प्रकाश हैं। **मनः जविष्ठम्**=(मनसः) मन से भी अधिक वेगवान् हैं। **दृशये कम्**=वे प्रभु दर्शन के लिये होते हैं, तो आनन्द को देते हैं। प्रभु-दर्शन अद्भुत आनन्द का हेतु होता है। (२) सो **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के व्यक्ति **समनसः**=मनन से युक्त होते हुए **सकेताः**=ज्ञानसहित होते हुए उस **एकं क्रतुम्**=अद्वितीय सृष्टिकर्ता को **साधु**=सम्यक् **अभिवियन्ति**=प्राप्त होते हैं। ये सब कर्मों को करते हुए प्रभु का स्मरण करते हैं और प्रभु को पानेवाले होते हैं।

भावार्थ—देववृत्ति के व्यक्ति मनन व ज्ञान को अपनाते हुए अन्तःस्थित ध्रुवज्योति रूप प्रभु को देखने का प्रयत्न करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्रियों, बुद्धि व मन की अस्थिरता का परिणाम

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥ ६ ॥

(१) **मे**=मेरे **कर्णा**=कान **विपतयतः**=विविध शब्दों को सुनने के लिये इधर-उधर गतिवाले होते हैं। **चक्षुः वि**=मेरी आँख विविधरूपों को देखने के लिये इधर-उधर जाती है। **यत्**=जो **हृदये**=हृदय में **आहितम्**=स्थापित **इदम्**=यह **ज्योतिः**=प्रकाश है, बुद्धि रूप विवेक का साधन है, वह भी **वि**=संसार के इन आकर्षक व पेचीदे विषयों के चिन्तन में गयी रहती है। **दूरे आधीः**=दूर-दूर के विषयों में चारों ओर ध्यानवाला **मे मनः**=मेरा मन **विचरति**=खूब ही भटकता है। (२) ऐसी स्थिति में **किं स्विद् वक्ष्यामि**=उस प्रभु के स्तुति-वचनों का क्या उच्चारण करूँगा? **उ**=और **नु**=अब **किं मनिष्ये**=क्या उस प्रभु का मनन व चिन्तन करूँगा? इन्द्रियों, बुद्धि व मन की अस्थिरता में प्रभु के स्तवन व मनन का सम्भव नहीं।

भावार्थ—हमें चाहिए कि हम इन्द्रियों, बुद्धि व मन को स्थिर करके प्रतिदिन प्रभु का स्तवन व मनन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

प्रभु-स्मरण व अघनाश

विश्वे॑ दे॒वा अ॑नमस्यन्भिया॒नास्त्वाम॑ग्ने॒ तम॑सि त॒स्थिवांस॑म्।
वै॒श्वा॒नरो॑ऽवतू॒तये॒ नोऽम॑र्त्योऽवतू॒तये॑ नः ॥ ७ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार 'इन्द्रयों, बुद्धि व मन' के भटकने से **तमसि तस्थिवांसम्**=हमारे लिये अन्धकार में स्थित, हमारे से एकदम अज्ञात, हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वाम्**=आपको **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के पुरुष **भियानाः**=पापों के दण्ड से भयभीत होते हुए **अनमस्यन्**=नमस्कार करते हैं। अदृश्य भी आपके प्रति झुकते हैं। (२) उन देववृत्ति के पुरुषों की यही आराधना होती है कि **वैश्वानरः**=वह सबका हितकारी प्रभु **ऊतये**=रक्षा के लिए, पाप प्रवृत्तियों से हमें बचाने के लिये, **अवतु**=रक्षित करे। प्रभु का स्मरण ही हमें अशुभ से बचाता है।

भावार्थ—देववृत्ति के पुरुष प्रभु-स्मरण करते हुए पाप करने से भयभीत होते हैं। प्रभु-स्मरण उन्हें शुभ मार्ग पर चलानेवाला होता है।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' अग्नि नाम से प्रभु का स्मरण करते हैं—

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु-स्मरण व यज्ञमय जीवन

पु॒रो वो॑ म॒न्द्रं दि॒व्यं सु॑वृ॒क्तिं प्र॑य॒ति य॒ज्ञे अ॒ग्निम॑ध्व॒रे द॑धिध्वम्।
पु॒र उ॒क्थेभि॒: स हि नो॑ वि॒भावा॑ स्वध्व॒रा क॑रति जा॒तवे॑दाः ॥ १ ॥

(१) **मन्द्रम्**=उस आनन्दस्वरूप **दिव्यम्**=प्रकाशमय **सुवृक्तिम्**=सम्यक् पापों के वर्जनवाले **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **प्र-यति**=प्रकर्षेण चलते हुए **अध्वरे**=राक्षसीभावों से **अहिंस्य यज्ञ**=जीवनयज्ञ में **वः पुरः**=तुम्हारे सामने **दधिध्वम्**=धारण करो। **उक्थेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा **पुरः**=अपने सामने धारण करो। सदा प्रभु को सामने रखने पर पाप प्रवृत्ति नहीं जगती। (२) **सः**=वे प्रभु **हि**=ही **नः विभावा**=हमारे लिये विशिष्ट दीप्ति को देनेवाले हैं। वे **जातवेदाः**=सर्वज्ञ प्रभु, स्मरण किये जाने पर, हमें **स्वध्वरा करति**=उत्तम हिंसारहित कर्मोंवाला बनाते हैं। हम प्रभु को याद करते हैं और यह याद हमें पापों से बचाती है।

भावार्थ—प्रभु का सतत स्मरण हमें पापों से बचाकर यज्ञमय जीवनवाला बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्युमः! पुर्वणीक!

तमु॑ द्युमः पुर्वणीक होत॒रग्ने॑ अ॒ग्निभि॒र्मनु॑ष इधा॒नः।
स्तोमं॒ यम॑स्मै म॒मते॑व शू॒षं घृ॒तं न शुचि॑ म॒तय॑: पवन्ते ॥ २ ॥

(१) हे **द्युमः**=दीप्तिमान्, ज्ञान की ज्योतिवाले! **पुर्वणीक**=पालक व पूरक प्राणशक्तिवाले (अन प्राणने)! **होतः**=सब कुछ देनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **अग्निभिः**=माता, पिता व आचार्य रूप अग्नियों के द्वारा **मनुषः**=विचारशील पुरुष के **तं उ स्तोमम्**=उस ही स्तवन को **इधानः**=दीप्त करनेवाले होइये **यम्**=जिसको **अस्मै**=इस प्रभु के लिये **मतयः**=विचारशील व्यक्ति **पवन्ते**=प्राप्त कराते हैं। प्रभु कृपा से हमें ऐसे उत्तम माता, पिता व आचार्य प्राप्त हों, जो हमारे जीवन

में प्रभु-स्तवन की प्रवृत्ति को उत्पन्न करनेवाले हो। (२) उस स्तुति समूह को ये माता, पिता व आचार्य हमारे अन्दर पैदा करें जो **ममता इव शूषम्**=ममता की तरह, अपनेपन की तरह सुख को करनेवाला है। जैसे एक माता एक पुत्र में ममता को करती हुई उस पुत्र के लिये कष्टों को उठाती हुई भी आनन्द का अनुभव करती है, इसी प्रकार ये स्तोत्र हमें आनन्दित करनेवाले हैं। (३) उस स्तोम को ये हमें प्राप्त कराएँ जो **घृतं न शुचि**=घृत के समान पवित्रता को करनेवाला है। घृत शरीर के मलों को दूर करता है, यह स्तोम हमारे मानस को विनष्ट करे। इस पवित्रता को होने पर हमारे जीवनों में 'ज्ञान व बल' का स्थापन होता है।

भावार्थ—हम माता, पिता व आचार्यों के द्वारा प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनें। इससे हम ज्ञान व बल-सम्पन्न बन पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु-स्तवन व प्रशस्त जीवन

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति॥ ३॥

(१) **यः विप्रः**=जो ज्ञानी पुरुष **उक्थैः**=स्तोत्रों के द्वारा **अग्नये ददाश**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये अपना अर्पण करता है, **सः**=वह **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **श्रवसा**=यश के द्वारा **पीपाय**=बढ़ता है। स्तोता का जीवन प्रभु अर्पण के द्वारा बड़ा यशस्वी बन जाता है। (२) वह **चित्रशोचिः**=अद्भुत ज्ञानदीप्तिवाले प्रभु **चित्राभिः ऊतिभिः**=अद्भुत रक्षणों के द्वारा **तम्**=उसको **गोमतः व्रजस्य**=प्रशस्त इन्द्रियों के समूह की **साता**=प्राप्ति में **दधाति**=धारण करते हैं। वस्तुतः प्रभु इस स्तोता को ज्ञान देकर इसकी इन्द्रियों को पवित्र कर देते हैं। निर्मलेन्द्रिय बनकर यह और अधिक प्रभु के समीप होने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से जीवन प्रशस्त इन्द्रियोंवाला व यशस्वी बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्षीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'कृष्णाध्वा' प्रभु

आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः॥ ४॥

(१) **यः**=जो प्रभु **जायमानः**=इस सृष्टि को उत्पन्न करते हुए (तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय) इन **उर्वी**=विशाल द्यावापृथिवी को **दूरेदृशा**=सुदूर प्रदेश तक दृश्यमान **भासा**=ज्योति से **आपप्रौ**=आपूरित करते हैं। वे प्रभु **कृष्णाध्वा**=कृष्ण मार्गवाले हैं। अर्थात् प्रभु प्राप्ति का मार्ग सामान्यतः लोगों के ज्ञान का विषय नहीं बनता। यही बात ९.७ में 'तमसि तस्थिवांसम्' शब्दों से कही गई है। वे प्रभु जो दिखते नहीं, वे सारे संसार को प्रकाश से भर देते हैं। (२) **अध**=अब वे **पावकः**=ज्ञान के प्रकाश के द्वारा पवित्र करनेवाले प्रभु **ऊर्म्यायाः**=अज्ञान रात्रि के **बहुचित्तमः**=बहुत घने भी अन्धकार को **शोचिषा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **तिरः**=तिरस्कृत करते हुए **ददृशे**=दिखते हैं। हम प्रभु की उपासना करते हैं, प्रभु हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं।

भावार्थ—प्रभु द्यावापृथिवी को प्रकाश से भर देते हैं, स्वयं सामान्य लोगों के लिये अन्धकार में हैं। इन सूर्य आदि से प्रभु भासित नहीं होते। स्वयं न दिखते हुए हमें सब पदार्थों को दिखाते हैं। ये ज्ञानदीप्ति से अज्ञान के अन्धकार को दूर करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

राधस्-श्रवस् व सुवीर्य

नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यात्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान्॥ ५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नु**=अब **नः**=हम **मघवद्भ्यः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों के लिये **पुरुवाजाभिः**=पालक व पूरक अन्नोंवाले **ऊती**=(ऊतिभिः) रक्षणों से **चित्रं रयिम्**=अद्भुत धन को अथवा (चित्र) ज्ञान को देनेवाले धन को **धेहि**=धारण करिये। हमें आप पालक व पूरक अन्न प्राप्त कराइये तथा उस धन को प्राप्त कराइये जो हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाला हो। (२) **च**=और हमारे लिये आप उन सन्तानों को प्राप्त कराइये **ये**=जो **राधसा**=कार्यसाधक धनों से **च**=तथा **श्रवसा**=यश व ज्ञान से **च**=और **सुवीर्येभिः**=उत्तम शक्तियों से **अन्यान् जनान्**=अन्य जनों को **अभिसन्ति**=अभिभूत करनेवाले हैं।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुषों को प्रभु कृपा करके (क) पालक व पूरक अन्नों के द्वारा रक्षित करते हैं, (ख) ज्ञानवर्धक धन को प्राप्त कराते हैं, (ग) ऐश्वर्य व यशवाला बनाते हैं, (घ) तथा उत्तम शक्ति-सम्पन्न सन्तानों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

शक्ति व निष्पापता

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान्।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ॥ ६॥

(१) हे **उशन्**=हमारे हित की कामना करते हुए **अग्ने**=प्रभो! आप **इमं यज्ञम्**=इस यज्ञ को तथा **चनः**=अन्न को **धाः**=धारण करिये, **यम्**=जिस यज्ञ को **ते आसानः**=आपकी उपासना में आसीन हुआ-हुआ **हविष्मान्**=हविवाला, यज्ञों में आहुति देनेवाला अथवा सदा दानपूर्वक अदन (भक्षण) करनेवाला (हु दानादनयोः) **जुहुते**=करता है। आप हमें यज्ञशील व यज्ञशिष्ट अन्न का सेवन करनेवाला बनाइये। (२) हे प्रभो! आप **भरद्वाजेषु**=अपने में यज्ञशिष्ट अन्नों के सेवन के द्वारा शक्ति का भरण करनेवाले पुरुषों में **सुवृक्ति**=अच्छी प्रकार पापवर्जन को **दधिषे**=धारण करते हैं और **गध्यस्य**=ग्रहणीय, अपने साथ मिलाने योग्य (गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मा) **वाजस्य**=शक्ति व अन्न की **सातौ**=प्राप्ति में **अवीः**=आप हमारा रक्षण करिये। आपके रक्षण से रक्षित हुए-हुए हम उत्तम अन्नों व शक्तियों को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु की उपासना में आसीन होकर हम जिन यज्ञों को करते हैं प्रभु ही उनका धारण करते हैं। शक्ति-सम्पन्न बनाकर प्रभु हमें निष्पाप बनाते हैं। उत्तम अन्नों व शक्तियों की प्राप्ति में प्रभु हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—प्राजापत्याबृहती ॥ स्वरः—मध्यमः ॥

'द्वेष शून्य-ज्ञान-प्रधान' जीवन

वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ७॥

(१) हे प्रभो! आप **द्वेषांसि वि इनुहि**=द्वेष की भावनाओं को हमारे से विदूर प्रेरित करिये। हमारे जीवनों को आप द्वेषशून्य बनाइये। इस द्वेषशून्यता की प्राप्ति के लिये **इडाम्**=इस वेदवाणी

को **वर्धय**=बढ़ाइये। जितना-जितना हमारा ज्ञान बढ़ेगा, उतना-उतना हम द्वेष से ऊपर उठ सकेंगे। (२) इस प्रकार द्वेष से दूर होते हुए, ज्ञान प्रधान जीवन बिताते हुए हम **शतहिमाः**=शतवर्ष के दीर्घ-जीवनवाले होते हुए **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें तथा **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले हों।

भावार्थ—हम द्वेषशून्य ज्ञान-प्रधान होते हुए दीर्घ-जीवन को प्राप्त करें और वीर सन्तानोंवाले हों।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' ही अग्नि नाम से प्रभु का स्मरण करते हैं—

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'यज्ञ-साधक वस्तुओं को प्राप्त करानेवाले' प्रभु

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः॥ १॥

(१) हे **होतः**=(हु दाने) सब जीवन-यज्ञ के साधक पदार्थों को देनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **यजीयान्**=अतिशयेन पूज्य हैं। **इषितः**=हमारे से प्रार्थना किये गये आप (प्रेरितः-प्रार्थितः सा०) **न**=(संप्रति) अब **प्रयुक्ति**=इस प्रयुज्यमान जीवन-यज्ञ में **मरुतां बाधः**=प्राणों के शत्रुबाधक गण को **यजस्व**=हमारे साथ संगत करिये। इस प्राणों के गण से ही हम सब अन्तःशत्रुओं पर विजय पा सकेंगे। 'प्राणायामैर्दहेद् दोषान्'। (२) **नः होत्राय**=हमारे इस जीवनयज्ञ के लिये **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को, **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानों को तथा **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्करूप द्युलोक व शरीररूप पृथिवी को **आववृत्याः**=(आवर्तय=आवह) प्राप्त कराइये। ये सब देव हमारे जीवन-यज्ञ को उत्तमता से सिद्ध करें।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करें। प्रभु हमें 'स्नेह-निर्द्वेषता-प्राणापान की शक्ति, स्वस्थ मस्तिष्क व शरीर' प्राप्त कराके हमारे जीवन-यज्ञ को सम्यक् सिद्ध करेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यज्ञ-ज्ञान-शक्ति विस्तार

त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम्॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **होता**=सब पदार्थों को देनेवाले हैं, **मन्द्रतमः**=अतिशयेन आनन्दमय हैं, **नः अध्रुक्**=कभी भी हमारा द्रोह न करनेवाले मित्र हैं। आप **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **विदथा**=ज्ञानयज्ञों के निमित्त **अन्तर्देवः**=अन्दर रहनेवाले देव हैं। हृदयों में स्थित हुए-हुए आप हमें ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त कराते हैं। (२) हे प्रभो! आप **पावकया**=पवित्र करनेवाली **जुह्वा**=यज्ञाग्नि की ज्वाला से (जुहूः=flame, tongue of the fire) तथा **आसा**=मुख द्वारा दिये जानेवाले ज्ञानोपदेश से **वह्निः**=लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले हैं (वह प्रापणे)। आप **तव**=आपके **स्वां तन्वम्**=अपने शक्ति विस्तार को (तनु विस्तारे) **यजस्व**=हमारे साथ संगत करिये। आपकी शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर ही तो हम जीवन-यात्रा को पूर्ण करके लक्ष्य-स्थान पर पहुँच सकेंगे।

भावार्थ—प्रभु ही सब पदार्थों व ज्ञानों के दाता हैं। प्रभु यज्ञों, ज्ञानों व शक्ति विस्तार के द्वारा हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धन्या धिषणा!

धन्या॑ चि॒द्धि त्वे धि॒षणा॒ वष्टि॒ प्र दे॒वाञ्जन्म॑ गृण॒ते यज॑ध्यै।
वेपि॑ष्ठो॒ अङ्गि॑रसां॒ यद्ध॒ विप्रो॒ मधु॑ च्छ॒न्दो भन॑ति रे॒भ इ॒ष्टौ॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **त्वे धिषणा**=आप में निविष्ट होनेवाली बुद्धि **चित् हि**=निश्चय से **धन्या**=धन्य है (मयि बुद्धिं निवेशय)। यह बुद्धि **देवान् प्रवष्टि**=दिव्यगुणों की प्रकर्षेण कामना करती है। **गृणते**=स्तोता के लिये **जन्म यजध्यै**=शक्ति के प्रादुर्भाव (जनी प्रादुर्भावे) के संगतिकरण के लिये चाहती है। प्रभु की ओर झुकाववाली बुद्धि दिव्यगुणों व शक्ति विकास के सम्पर्क की कामना करती है। प्रभु में निविष्ट बुद्धिवाले बनकर हम दिव्यगुणों की कामना करते हैं तथा शक्ति विकास को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले होते हैं। (२) इन **अंगिरसाम्**=(अगि गतौ) क्रियाशील पुरुषों में **यद् ह**=जब निश्चय से **विप्रः**=अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाला ज्ञानी पुरुष **वेपिष्ठः**=शत्रुओं को अधिक से अधिक कम्पित करनेवाला होता है, तो यह **रेभः**=स्तोता **इष्टौ**=(यज्+क्तिन्) प्रभु के साथ मेल के निमित्त **मधु छन्दः**=अत्यन्त मधुर छन्दों का **भनति**=उच्चारण करता है। यह स्तवन की वस्तुतः उसे दिव्यगुणयुक्त बनाता है, उसकी शक्तियों का विकास करता है और उसे शत्रुओं को कम्पित कर दूर करने में समर्थ करता है।

भावार्थ—प्रभु की ओर झुकाववाली बुद्धि ही धन्य है। यह दिव्यगुणों व शक्तियों के विकास की कामनावाली होती है, यह प्रभु-स्तवन द्वारा ही हमें शत्रुओं को कम्पित कर दूर करने में समर्थ करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सु अपाकः-विभावा

अदि॑द्युत॒त्स्वपा॑को वि॒भावाग्ने॒ यज॑स्व॒ रोद॑सी उरू॒ची।
आ॒युं न यं नम॑सा रा॒तह॑व्या अ॒ञ्जन्ति॑ सुप्र॒यसं॒ पञ्च॒ जनाः॑॥ ४॥

(१) वह **सु अपाकः**=(अपक्तव्यप्रज्ञः-अमूर्खः) मूर्खताओं से शून्य, किसी अन्य से न ज्ञान दिया जानेवाला, स्वाभाविक ज्ञानवाला प्रभु **विभावा**=विशिष्ट ही दीप्तिवाला है। यह **अदिद्युतत्**=हम सब के हृदयों को द्योतित करते हैं। हे **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! आप **उरूची रोदसी**=इन विशाल द्यावापृथिवी को **यजस्व**=हमारे साथ संगत करिये। आपकी कृपा से हमारे मस्तिष्क व शरीर रूप द्यावापृथिवी विशालता को लिये हुए हों, मस्तिष्क विस्तृत ज्ञान का व्यापन करे (उरु अञ्च्) तथा शरीर शक्तियों की व्याप्तियोंवाला हो। (२) आप वे हैं **यम्**=जिन **सुप्रयसम्**=उत्तम हविरूप अन्नों को देनेवाले आपको **आयुं न**=(एति इति) अतिथि के समान **रातहव्याः**=हव्यों को देनेवाले यज्ञशील **पञ्चजनाः**=पञ्च-यज्ञों से युक्त **जन नमसा अञ्जन्तिः**=नमन के साथ प्राप्त होते हैं। यज्ञशील पुरुष ही आपको प्राप्त कर पाते हैं। वे आपको अपना महान् अतिथि समझते हैं। आपका पूजन ही उनका अतिथि यज्ञ होता है।

भावार्थ—वे प्रभु दीप्तिमय हैं। उपासक को भी दीप्त करते हैं। हम यज्ञशील बनकर नमन के साथ उन प्रभु का आतिथ्य करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पवित्रता-ज्ञान-ध्यान व यज्ञशीलता

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः॥ ५॥

(१) **यत्**=जब **ह**=निश्चय से **अग्नौ**=उस प्रकाशमय प्रभु की उपासना में **नमसा**=नमन के द्वारा **बर्हिः वृञ्जे**=हृदय-स्थली में उग आनेवाली वासनारूप घास-फूस का छेदन करता हूँ तभी मेरे से **घृतवती**=ज्ञान की दीप्तिवाली **सुवृक्तिः**=शोभनतया पापवर्जनवाली **स्रुग्**=यह वेदवाणी **अयामि**=(नियम्यते आसाद्यते) प्राप्त की जाती है। (२) इस वेदज्ञान को प्राप्त करके **पृथिव्याः सदने**=इस पार्थिव शरीररूप गृह में स्थित होने पर **सद्म**=यज्ञगृह **अम्यक्षि**=(गम्यते म्यक्षतिर्गतिकर्मा) जाया जाता है। और इस प्रकार **यज्ञः अश्रायि**=यज्ञ का सेवन किया जाता है। उसी प्रकार **न**=जैसे कि **सूर्ये**=सूर्य की उपासना में **चक्षुः**=दृष्टि शक्ति का, अर्थात् मैं सूर्याभिमुख सन्ध्या करता हुआ दृष्ठि शक्ति को प्राप्त करता हूँ तथा यज्ञगृह में यज्ञों द्वारा प्रभु का पूजन करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु की उपासना में (क) हृदय पवित्र होता है, (ख) पवित्र हृदय में वेदवाणी का प्रकाश होता है, (ग) उस समय हम सूर्याभिमुख सन्ध्या की वृत्तिवाले व यज्ञशील बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुर्वणीक होता

दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः॥ ६॥

(१) हे **पुर्वणीक**=(पुरु अनीक=brilliance) अनन्त दीप्तिवाले! **होतः**=सब कुछ देनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **देवेभिः**=देववृत्ति के **अग्निभिः**=उन्नति के मार्ग पर चलनेवाले पुरुषों से **इधानः**=हृदय देश में दीप्त किये जाते हुए आप **नः**=हमारे लिये **रायः**=धनों को **दशस्य**=दीजिए। जीवनयात्रा के लिये आवश्यक धनों को प्राप्त करते हुए हम उन्नतिपथ पर निरन्तर आगे बढ़ें। (२) हे **सहसः सूनो**=शक्ति के पुञ्ज प्रभो! आपको **वावसानाः**=कवच के रूप में धारण करते हुये हम **वृजनं न**=वर्जनीय शत्रु की तरह **अंहः**=पाप को **अतिस्रसेम**=उल्लंघन कर पाएँ। पापों से पार होते हुए पवित्र जीवनवाले बनकर हम आपको प्राप्त हों।

भावार्थ—हम प्रभु के उपासक बनें। जीवनयात्रा के लिये आवश्यक धनों को प्राप्त करें तथा प्रभु रूप कवच को धारण करते हुए पापों से आक्रान्त न हों।

अगले सूक्त में भी पूर्व सूक्त के ही ऋषि देवता हैं। 'भरद्वाज' अग्नि का उपासन करते हुए कहते हैं—

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राट्-ऋतावा

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान॥ १॥

(१) वह **होता**=सर्वप्रदाता **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **तोदस्य**=शत्रुओं का संहार करनेवाले यज्ञशील

पुरुष के **दुरोणे**=गृह में **बर्हिषः मध्ये**=वासना शून्य हृदय के मध्य में **राट्**=(राजते) प्रकाशित होते हैं और **रोदसी यजध्यै**=द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का उसके साथ संगतिकरण करते हैं। हृदय में प्रभु का प्रकाश होने पर मस्तिष्क ज्ञान-ज्योति से दीप्त और शरीर शक्ति सम्पन्न बनता है। (२) **अयम्**=ये **सः**=वे प्रभु **सहसः सूनुः**=बल पुञ्ज हैं। **ऋतावा**=हमारे जीवनों में ऋत का रक्षण करनेवाले हैं अथवा ऋतवाले हैं, प्रत्येक पिण्ड को ऋत के अनुसार गतिमय कर रहे हैं। वे प्रभु **सूर्यः न**=सूर्य के समान **दूरात्**=सुदूर प्रदेश तक **शोचिषा ततान**=दीप्ति से सारे ब्रह्माण्ड को विस्तृत करते हैं। अनन्त प्रकाशवाले वे प्रभु सारे ब्रह्माण्ड को दीप्त करते हैं।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनकर पवित्र हृदय बनें। उस हृदय में प्रभु चमकेंगे। हमारे मस्तिष्क को दीप्त व शरीर को सशक्त बनायेंगे। ये प्रभु अपनी दीप्ति से सारे ब्रह्माण्ड को दीप्त कर रहे हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

त्रिषधस्थ प्रभु

आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै॥ २॥

(१) हे **यजत्र**=पूजनीय **राजन्**=देदीप्यमान प्रभो! **यस्मिन्**=जिन **सु अपाके**=(अपक्तव्यप्रज्ञ) पूर्ण प्रज्ञ **त्वे**=आप में **नु**=अब **सर्वताता इव**=सर्वत्र विस्तृत-सा **द्यौः**=यह आकाश **यक्षत्**=संगत होता है, अर्थात् आप आकाश की तरह व्यापक हैं, 'खं ब्रह्म' हैं। वस्तुतः आप ही आकाश हैं, आप ही तो सर्वाधार हैं। (२) वे आप **त्रिषधस्थः**='पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक' इन तीनों स्थानों में सहस्थित हैं। **ततरुषः न**=इस आकाश को तीर्ण करनेवाले सूर्य के समान, आप **मानुषा**=मानव हितकारी **हव्या**=पुकारने योग्य, प्रार्थनीय अथवा **हव्य**=यज्ञिय पवित्र **मघानि**=ऐश्वर्यों को **यजध्यै**=हमारे साथ संगत करने के लिये, **जंहः**=वेगवान् होइये। आप शीघ्रता से इन हव्य पदार्थों को हमें प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हे प्रभो! आकाशवत् सर्वव्यापक हैं, तीनों लोकों में सहस्थित हैं। आप हमें शीघ्रता से हव्य पदार्थों को प्राप्त कराने के लिये होइये। इन पदार्थों को साधन बनाकर हम 'मस्तिष्क, मन व शरीर' तीनों लोकों की समानरूप से उन्नति करते हुए 'त्रिषधस्थ' बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उपासक में प्रभु की दीप्ति

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत्।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु॥ ३॥

(१) **यस्य**=जिसकी **तेजिष्ठा**=अत्यन्त तेजस्विनी **अरतिः**=(ऋ गतौ) गति **वने**=सम्भजनशील पुरुष में **राट्**=दीप्त होती है, उपासक में उपास्य प्रभु का तेज प्रकाशित होता है। वे **वृधसानः**=सदा वर्धमान प्रभु (वर्धमानं स्वे दमे) **अध्वन्**=मार्ग में **तोदेः**=सब को कर्मों में प्रेरित करनेवाले सूर्य की **न**=तरह **अद्यौत्**=दीप्त होते हैं। जब हम उपासक बनते हैं तो अन्तःस्थित प्रभु हमें जीवन का मार्ग इस प्रकार दिखाते हैं जैसे कि सूर्य प्रकाश को देता है। (२) **अद्रोघः न**=किसी से द्रोह न करनेवाले के समान **द्रविता**=वे प्रभु गति करते हैं। **त्मन्**=हृदयाकाश में अपने अन्दर ही **चेतति**=वे चेतना को देनेवाले होते हैं। वे प्रभु **ओषधीषु**=दोषों का दहन करनेवाले आचार्यों में **अमर्त्यः**=सब मृत्युओं को दूर करनेवाले तथा **अवर्त्रः**=शत्रुओं से अवारणीय होते हैं, अर्थात्

('आत्तर्थो मृत्युः वरुणः सोम ओषधयः पयः' अथर्व०) निर्दोष जीवनवाले इन आचार्यों को प्रभु रोगों से अनाक्रान्त तथा काम-क्रोध आदि द्वारा धर्मपथ से न वरण करने योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—हम उपासक बनें, प्रभु का तेज हमारे में प्रकट होगा। वे अन्तःस्थित प्रभु हमें धर्म की चेतना देंगे। हमें मृत्यु व पाप से बचायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

जारयायि यज्ञैः

सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्त्रः पितेव जारयायि यज्ञैः॥ ४॥

(१) **सः**=वह **एतरी न**=निरन्तर गतिशील के समान **जातवेदाः**=सर्वज्ञ **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **दमे**=इस शरीर रूप गृह में **अस्माकेभिः**=हमारे **शूषैः**=सुखकर स्तोत्रों से **आस्तवे**=स्तुति किया जाता है। इस शरीर गृह में निवास करते हुए हम उस प्रभु का स्तवन करते हैं जो निरन्तर हमारे हित के लिये क्रियाशील हैं, सर्वज्ञ हैं, अग्रेणी हैं। प्रभु के ये स्तवन रूपों के जीवन को पवित्र बनाकर उसके लिये सुख के जनक होते हैं। (२) वे प्रभु **द्रवन्नः**=इन वृक्ष वनस्पतियों को अन्न के रूप में हमें देते हैं। **वन्वन्**=हमारे लिये शत्रुओं का हिंसन करते हैं। (न=च) न=और **क्रत्वा**=अपनी क्रियाओं के द्वारा **अर्वः**=वे सतत गन्ता हैं। **पिता इव**=पिता के समान **उस्त्रः**=(a ray of light) हम पुत्रों के लिये वे प्रकाश की किरण होते हैं। पिता की तरह हम पुत्रों के लिये मार्गदर्शक होते हैं। ये प्रभु **यज्ञैः**=श्रेष्ठतम कर्मों के द्वारा **जारयायि**=स्तुत होते हैं। प्रभु का सच्चा स्तवन यही है कि हम यज्ञों में लगे रहें।

भावार्थ—उस प्रभु का ही हमें उत्तम कर्मों द्वारा स्तवन करना चाहिए। वे प्रभु ही हमारे लिये मार्गदर्शन होते हैं व हमारे शत्रुओं का संहार करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तायुः न ऋणः

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम्।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट्॥ ५॥

(१) **अध**=अब **यत्**=जो **वृथा**=अनायास ही **पृथ्वीम्**=पृथ्वी को **अनुतक्षत्**=अनुक्रम से बनाता हुआ **याति**=यह प्रभु गति करता है, तो **अस्य**=इस प्रभु की **भासः**=दीप्तियों को **पनयन्ति**=स्तोता लोग स्तुत करते हैं। पृथ्वी की रचना में पूर्णता व सुन्दरता को देखते हुए उस प्रभु की ज्ञानदीप्तियों का ये स्तोता स्तवन करने लगते हैं। वे एक-एक पदार्थ की रचना में उस रचयिता के ज्ञान का महत्त्व देखते हैं। (२) **सद्यः**=शीघ्र ही **यः**=जो **स्पन्द्रः**=गतिवाले हैं, **विषितः**=सब बन्धनों से मुक्त हैं, **धवीयान्**=अत्यन्त शुद्ध हैं। वे प्रभु **तायुः न**=गुप्तरूप से **ऋणः**=हमारे हृदयों में ही गतिवाले हैं। हमें पता भी नहीं लगता और वे प्रभु हमारे हृदयों में स्थित होकर हमारे प्रत्येक भाव व विचार को जान रहे होते हैं। वे प्रभु ही **धन्वा**=इस हृदयान्तरिक्ष में **अतिराट्**=अतिशयेन देदीप्यमान हो रहे हैं। (धन्व=अन्तरिक्ष=हृदयान्तरिक्ष, धन्वत्यस्मदापः)।

भावार्थ—प्रभु अनायास इस पृथ्वी का निर्माण करते हैं। यहाँ स्तोता उस प्रभु की ज्ञानदीप्तियों का स्तवन करते हैं। वे प्रभु निरन्तर गतिशील हैं, गुप्तरूप से हमारे हृदय देश में छिपे बैठे हैं और हमारे सब भावों व विचारों को जान रहे हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

वेषि रायः, विभासि दुच्छुनाः

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ ६॥

(१) हे **अर्वन्**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमें **निदायाः**=सब निन्दाओं व निन्दनीय कर्मों से **वेषि**=(अवगमयसि) दूर करते हैं। इसीलिए हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **विश्वेभिः अग्निभिः**=सब उन्नतिपथ पर चलनेवाले पुरुषों से **इधानः**=हृदयदेश में दीप्त किये जाते हैं। (२) आप **रायः वेषि**=सब धनों को प्राप्त कराते हैं। **दुच्छुनाः**=दुःखदायिनी वासनारूप शत्रु सेनाओं पर **वियासि**=विशिष्ट रूप से आक्रमण करते हैं। हे प्रभो! इस प्रकार ऐश्वर्यों को प्राप्त करके, वासनारूप शत्रुओं का नाश करके हम **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **शतहिमाः**=शत वर्षपर्यन्त **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु हमें निन्दनीय कर्मों से बचाते हैं। हम वासनाओं से ऊपर उठकर तथा ऐश्वर्यों को प्राप्त करके, सुवीर व सानन्द जीवनवाले हों।

अगले सूक्त में भी अग्नि का ही आराधन करते हैं कि—

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'सौभाग्य स्रोत' प्रभु

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम्॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! हे **सुभग**=उत्तम भगों (ऐश्वर्यों) के पुञ्ज प्रभो! **विश्वा सौभगानि**=सब उत्तम ऐश्वर्य **त्वत्**=आप से ही **वियन्ति**=विविध रूपों में प्राप्त होते हैं। सब सौभाग्य आप से इस प्रकार प्रादुर्भूत होते हैं **न**=जैसे कि **वनिनः**=वृक्ष से **वयाः**=शाखाएँ। (२) **श्रुष्टी**=शीघ्र ही **रयिः**=सब धन आप से प्राप्त होता है। **वृत्रतूर्ये**=वासना रूप शत्रु के संहार के निमित्त **वाजः**=शक्ति आप से प्राप्त होती है। **ईड्यः**=स्तुति के योग्य यह **दिवः वृष्टिः**=द्युलोक से होनेवाली वृष्टि आप से ही प्राप्त होती है। धर्ममेघ समाधि में आनन्द की वृष्टि को भी आप ही प्राप्त कराते हैं। **अपाम्**=इन रेतःकणों का (आपः रेतो भूत्वा) **रीतिः**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में गमन यह आप से प्राप्त कराया जाता है। यह सोमकणों का शरीर में प्रवाह ही सब सौभाग्यों का कारण बनता है।

भावार्थ—प्रभु ही 'सब सौभाग्यों, धनों, बलों, आनन्दों व शक्तियों के' स्रोत हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'दस्मवर्चाः' प्रभु

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः॥ २॥

(१) हे प्रभो! **त्वं भगः**=आप ऐश्वर्य के पुञ्ज हैं। **नः**=हमारे लिये **हि**=निश्चय से **रत्नम्**=रमणीय धन को **आ इषे**=(आगमय) प्राप्त कराइये। वे **दस्मवर्चाः**=दर्शनीय दीप्तिवाले

प्रभो! **परिज्मा इव**=परितः गन्ता वायु की तरह तू **क्षयसि**=ऐश्वर्यवाला है, वास्तविक जीवन को देनेवाला है। (२) **अग्ने**=हे अग्रेणी प्रभो! **मित्रः न**=प्रमीति से, मृत्यु से बचानेवाले की तरह तू **बृहतः ऋतस्य**=महान् ऋत का **क्षत्ता असि**=हमारे लिये देनेवाला है, हमारे जीवन को तू ऋतमय बनानेवाला है। हे **देव**=सब कुछ देनेवाले प्रभो! **वामस्य**=सुन्दर **भूरेः**=भरण-पोषण के साधनभूत धन के आप देनेवाले हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमें रमणीय धनों को प्राप्त कराइये, हमारा जीवन आपकी कृपा से महान् ऋत का धारण करनेवाला हो, हमारे जीवन की सब क्रियाएँ ठीक समय व ठीक स्थान पर हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शवसा हन्ति वृत्रम्

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम्।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि॥ ३॥

(१) **सः**=वे प्रभु **सत्पतिः**=सज्जनों के रक्षक हैं। **शवसा**=शक्ति के द्वारा **वृत्रं हन्ति**=ज्ञान की आवरणभूत वासनारूप शत्रु को नष्ट करते हैं। हे **अग्ने**=प्रभो! **विप्रः**=विशेष रूप से अपना पूरण करनेवाला व्यक्ति **पणेः**=स्तुतिपूर्वक व्यवहार करनेवाले व्यक्ति के **वाजम्**=शक्ति को **विभर्ति**=विशेषरूप से धारण करता है। प्रभु स्मरणपूर्वक सब कार्यों को करता हुआ शक्तिशाली बनता है। (२) हे **प्रचेतः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले! **ऋतजात**=ऋत के द्वारा प्रादुर्भूत होनेवाले प्रभो! **यं त्वं हिनोषि**=जिस भी व्यक्ति को आप प्रेरित करते हैं, अर्थात् जो आपकी प्रेरणा के अनुसार जीवन को बनाता है वह **अपां नप्त्रा**=रेतःकणों को न नष्ट होने देनेवाले **राया**=धन के साथ **सजोषाः**=समानरूप से प्रीतिवाला होता है, अर्थात् यह धन को प्राप्त करता है, परन्तु उस धन से विलास में फँसकर शक्ति को नष्ट नहीं कर बैठता।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण से शक्ति को प्राप्त करके हम वासना को नष्ट कर पाते हैं। प्रभु की प्रेरणा के अनुसार चलते हुए उस धन को प्राप्त करते हैं जो हमारे विलास व विनाश का कारण नहीं बनता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

गीर्भिः उक्थैः यज्ञैः

यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट्।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं१ पत्यते वसव्यैः॥ ४॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुत्र, बल के पुञ्ज (पुतले) प्रभो! **यः**=जो **मर्तः**=मनुष्य **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों से **उक्थैः**=स्तोत्रों से **वेद्या यज्ञैः**=यज्ञभूमि में यज्ञों के द्वारा **ते**=आपकी प्राप्ति की **निशितिम्**=(excitement agitation) प्रबल कामना को, आतुरता को **आनट्**=प्राप्त करता है। हे **देव**=प्रकाशमय, सर्वप्रद प्रभो! वह **वसव्यैः**=सब वसुओं के साथ **धान्यम्**=जीवन के लिये आवश्यक धान्यों को **पत्यते**=प्राप्त होता है। प्रभु के उपासक को जीवन के लिये आवश्यक धन-धान्य की कमी नहीं रहती।

भावार्थ—प्रभु की प्राप्ति की प्रबल कामना 'ज्ञानवाणियों में स्तोत्रों में व यज्ञों में व्यक्त होती है। यह उपासक सब वरणीय वस्तुओं, वसुओं व धान्यों को प्राप्त करता है।

सूचना—पदपाठ में 'वारं' का सन्धिच्छेद वा अरं है। तब अर्थ होगा पर्याप्त धान्य का धारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सौश्रवसा सुवीरा

ता नृभ्य॒ आ सौ॑श्रव॒सा सु॒वीराग्ने॑ सूनो सहसः पु॒ष्यसे॑ धाः।
कृ॒णोषि॒ यच्छव॑सा भूरि॑ प॒श्वो वयो॑ वृका॑या॒रये॑ जसु॑रये॥ ५॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज, **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **नृभ्यः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों के लिये **ता**=उन **सौश्रवसा**=उत्तम ज्ञानों को तथा **सुवीरा**=उत्तम वीरता की भावनाओं को **पुष्यसे**=ठीक पोषण के लिये **आधाः**=धारण करते हैं। ज्ञानों व वीरताओं के प्राप्त करके ही जीवन का उत्कर्ष सिद्ध होता है। (२) हे प्रभो! **यत्**=जब आप **वृकाय**=टेढ़े-मेढ़े साधनों से आदान की वृत्तिवाले, **अरये**=औरों के शत्रुभूत **जसुरये**=औरों का विनाश करनेवाले के लिये **शवसा**=शक्ति के द्वारा **भूरि**=बहुत **पश्वः वयः**=पशु-सम्बन्धी जीवन को **कृणोषि**=(to kill) नष्ट करते हैं। ये 'वृक अरि व जसुरि' प्रायः पाशविक जीवन ही बिता रहे होते हैं। इनके इस पाशविक जीवन को आप नष्ट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु मानव जीवन बितानेवालों के लिये ज्ञान व वीरता को देकर उनके उत्कृष्ट जीवन का धारण करते हैं। लोभी शत्रु व हिंसक पुरुष के पाशविक जीवन को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अभि पूर्तिम् अश्याम्

व॒द्मा सू॑नो सहसो नो॒ विहा॑या॒ अग्ने॑ तो॒कं तन॑यं वा॒जि नो॑ दाः।
विश्वा॑भिर्गी॒र्भिर॒भि पू॒र्तिम॑श्यां॒ मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑॥ ६॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **विहायाः**=आप महान् हैं, आकाश की तरह व्यापक हैं। **नः**=हमारे लिये **वद्मा**=हृदयस्थरूपेण हित के उपदेष्टा होइये। इस ज्ञानोपदेश के द्वारा **नः**=हमारे लिये **वाजि**=शक्तियुक्त धन को **तोकम्**=पुत्र को व **तनयम्**=पौत्र को **दाः**=दीजिये। हमें उत्कृष्ट ज्ञान धन व सन्तान प्राप्त कराइये। (२) हे प्रभो! मैं **विश्वाभिः गीर्भिः**=इन सब ज्ञान की वाणियों के द्वारा **पूर्तिं अभि अश्याम्**=पूर्ति को, न्यूनताओं के दूरीकरण को प्राप्त करूँ। इस प्रकार हम सब अपनी-अपनी कमियों को दूर करते हुए **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होकर **शतहिमाः मदेम**=शतवर्षपर्यन्त आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु से ज्ञानोपदेश प्राप्त करके हम उत्तम सन्तानों व धनों के प्राप्त करें। ज्ञान की वाणियों के द्वारा हम न्यूनताओं को दूर करें। इस प्रकार आनन्दमय दीर्घजीवनवाले हों।

अग्नि का ही आराधन अगले सूक्त में चलता है—

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

इषं कुरीत अवसे

अ॒ग्ना यो मर्त्यो॒ दुवो॒ धियं॑ जुजोष॑ धी॒तिभिः॑। भस॒न्नु ष प्र पू॒र्व्य इषं॑ वुरी॒ताव॑से॥ १॥

(१) **यः मर्त्यः**=जो मनुष्य **अग्नौ**=उस महान् अग्नि 'प्रभु' की प्राप्ति के निमित्त **धीतिभिः**=सोम

(वीर्य) शक्ति के अन्दर ही पान (व्याप्त करने) के साथ **दुवः**=प्रभु की परिचर्या (उपासना) को व **धियम्**=ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले यज्ञादि उत्तम कर्मों को **जुजोष**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता है। **सः**=वह **नु**=निश्चय से **प्रभसत्**=खूब ही भासमान होता है। प्रभु का उपासक प्रभु की दीप्ति से दीप्त क्यों न होगा। (२) **पूर्व्यः**=यह पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम होता है। यह **इषम्**=(food, affluance) अन्न व धन का **वुरीत**=वरण करता है, केवल **अवसे**=रक्षण के लिये। यह उतना ही अन्न व धन चाहता है जितना कि रक्षण के लिये पर्याप्त हो। अन्न के स्वाद व धन की आसक्ति से ऊपर उठकर ही तो वह प्रभु को पा सकेगा।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये—(क) सोम का शरीर में रक्षण करते हुए, (ख) उपासना व (ग) बुद्धिपूर्वक कर्मों में लगे रहना आवश्यक है। (घ) यह भी आवश्यक है कि हम अन्न के स्वाद व धन की आसक्ति में न पड़ जाएँ। ऐसा होने पर हम ज्ञान-ज्योति से चमकेंगे और अपने मनों का पूरण करते हुए शरीर का पालन कर पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'प्रचेता वेधस्तम ऋषि होता'

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः। अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः॥ २॥

(१) **अग्निः इत् हि**=वे प्रभु ही निश्चय से **प्रचेताः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हैं, सर्वज्ञ हैं। **अग्निः**=ये अग्रेणी प्रभु ही **वेधस्तमः**=विधातृतम है, सृष्टि के सर्वोत्तम निर्माता हैं। **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा हैं। (२) **मनुषः विशः**=विचारशील प्रजाएँ **होतारं अग्निम्**=उस सृष्टि यज्ञ के महान् होता व सब आवश्यक पदार्थों के देनेवाले प्रभु को **यज्ञेषु**=यज्ञों में **ईडते**=स्तुत करते हैं। यह प्रभु-स्तवन ही उन्हें जीवन के लक्ष्य का ध्यान कराता है कि उन्होंने भी—(क) प्रकृष्ट ज्ञानवाला बनाता है (प्रचेता), (ख) निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है (वेधस्तम), (ग) ऋषि तुल्य पवित्र जीवनवाला बनना है (ऋषिः), (घ) खूब दानशील (होता) होना है।

भावार्थ—वे प्रभु 'प्रचेता, वेधस्तम, ऋषि व होता' हैं। यज्ञों में प्रभु का स्तवन करते हुए हम भी ऐसा ही बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

दस्यु पराभव

नाना ह्य१ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः। तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम्॥ ३॥

(१) (अरि=Lord, master) गत मन्त्र के अनुसार जब हम प्रभु-स्तवन करते हैं तो **अग्ने**=हे परमात्मन्! **अर्यः**=स्वामी जो आप हैं, उनके **रायः**=ये धन **अवसे**=उपासक के रक्षण के लिये **नाना स्पर्धन्ते**=नाना प्रकार से स्पर्धावाले होते हैं। एक-दूसरे से आगे बढ़कर ये ऐश्वर्य उस उपासक का रक्षण करते हैं। (२) **आयवः**=ये उपासना में चलनेवाले मनुष्य **दस्युम्**=दास्यव वृत्तियों को, विनाशक वृत्तियों को **तूर्वन्तः**=हिंसित करते हैं और **व्रतैः**=नियमित पुण्य कर्मों के द्वारा **अव्रतम्**=व्रतशून्यता के भाव को **सीक्षन्तः**=पराभूत करने की कामनावाले होते हैं।

भावार्थ—हम व्रती बनें, दास्यव भावों को दूर करें। प्रभु के ऐश्वर्य हमारा रक्षण करेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

वीर सन्तान

अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम्। यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया॥ ४॥

(१) गत मन्त्र के व्रतमय जीवनवाले पुरुष को **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **वीरं**=वीर सन्तान को **ददाति**=देते हैं। जो सन्तान **अप्सां (कर्मणां सनितारम्)**=कर्मों का सेवन करनेवाला, क्रियाशील होता है न कि अकर्मण्य। **ऋतीषहम्**=(ऋतीनां अरातीनां सोढारं) जो काम-क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव करनेवाला होता है और **सत्पतिम्**=उत्तम कर्मों का स्वामी बनता है। (२) प्रभु ऐसे सन्तान को देते हैं कि **यस्य**=जिसके **सञ्चक्षि**=सम्यग् दर्शन में **शवसः**=बल से **भिया**=भय के कारण **शत्रवः**=शत्रु **त्रसन्ति**=उद्विग्न व कम्पित हो उठते हैं। उसके सामने काम-क्रोध आदि शत्रु ठहर नहीं पाते।

भावार्थ—उपासक को प्रभु 'कर्मठ, शत्रुओं को पराजित करनेवाले, उत्तम भावों के रक्षक, शत्रु त्रासक' वीर सन्तान को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ज्ञान के द्वारा पापों से बचाव

अ॒ग्निर्हि वि॒द्मना॑ नि॒दो दे॒वो मर्त॑मुरु॒ष्यति॑। स॒हावा॒ यस्यावृ॑तो र॒यिर्वाजे॒ष्ववृ॑तः ॥ ५ ॥

(१) **अग्निः देवः**=वे अग्रेणी प्रकाशमय प्रभु **हि**=निश्चय से **विद्मना**=ज्ञान के द्वारा **मर्तम्**=मनुष्य को **निदः**=निन्दनीय कर्मों से **उरुष्याति**=बचाते हैं। प्रभु ज्ञान देकर उस हेय कर्मों में प्रवृत्त नहीं होने देते। (२) प्रभु से रक्षित हुआ-हुआ यह व्यक्ति **सहावा**=शत्रुओं का पराभव करनेवाला होता है। यह ऐसा बनता है कि **यस्य**=जिसका **रयिः**=धन **अवृतः**=वासनाओं स आच्छादित नहीं होता, अर्थात् यह धनों के कारण वासनाओं में नहीं फँस जाता और यह **वाजेषु**=शक्तियों में **अवृतः**=क्रोध व उग्रता आदि से आच्छादित नहीं हो जाता, अर्थात् धन व शक्ति को प्राप्त करके भी यह मद में नहीं हो जाता।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान देकर हमें पापों से बचाते हैं। प्रभु से रक्षित यह व्यक्ति वासनाओं का पराभव करता है और धनवान् व शक्तिमान् होता हुआ भी मदयुक्त नहीं हो जाता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगतिजगती** स्वरः—**निषादः** ॥

वीहि स्वस्तिं सुक्षितिम्

अच्छा॑ नो मित्रमहो देव दे॒वानग्ने॒ वोचः॑ सुम॒तिं रोद॑स्योः।
वी॒हि स्व॒स्तिं सु॑क्षि॒तिं दि॒वो नॄन्द्वि॒षो अंहां॑सि।
दु॒रि॒ता त॑रेम॒ ता त॑रेम॒ तवाव॑सा तरेम ॥ ६ ॥

२.११ पर व्याख्या द्रष्टव्य है।

भरद्वाज ही अगले सूक्त में भी 'अग्नि' का स्तवन करते हैं—

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

उपासना से वासना विनाश

इ॒ममू॒ षु वो॒ अति॑थिमुष॒र्बुधं॒ विश्वा॑सां वि॒शां पति॑मृञ्जसे गि॒रा।
वेतीद्दि॒वो ज॒नुषा॒ कच्चि॒दा शुचि॒र्ज्योक्चि॑दत्ति॒ गर्भो॒ यदच्यु॑तम् ॥ १ ॥

(१) **इममू**=इस **वः अतिथिम्**=तुम्हारे लिये अतिथिवत् पूज्य, **उषर्बुधम्**=उषाकाल में बोध

करने योग्य (स्मरणीय) **विश्वासां विशां पतिम्**=सब प्रजाओं के रक्षक प्रभु को **उ**=ही **सु**=अच्छी प्रकार **गिरा ऋञ्जसे**=स्तुति वाणियों से प्रसाधित करता हूँ। वस्तुतः यह प्रभु-स्मरण ही उपासक को वासनाओं से बचाकर 'भरद्वाज' बनाता है। (२) ये प्रभु **इत्**=निश्चय से **दिवः**=ज्ञान से **आवेति**=समन्तात् दीप्त होते हैं (कान्ति)। ज्ञानदीप्त ये प्रभु **जनुषा**=स्वभाव से ही **कच्चिद् शुचिः**=कुछ अद्भुत ही पवित्रतावाले हैं। ये प्रभु **गर्भः**=सब के अन्दर वर्तमान होते हुए **ज्योक् चित्**=दीर्घकाल से ही **यद्**=जो **अच्युतम्**=बड़ी दृढ़ वासनाएँ हैं, उन्हें **अत्ति**=खा जाते हैं, विनष्ट कर देते हैं। इनके हृदयस्थ होने पर वहाँ वासनाएँ भस्मीभूत हो जाती हैं। वासनाओं के विनाश से यह उपासक भी उपास्य प्रभु के समान पवित्र व दीप्त हो उठता है।

भावार्थ—हम प्रभु को स्तुति-वाणियों द्वारा जीवन में प्रसाधित करने का प्रयत्न करें। ये ज्ञानदीप्त पवित्र प्रभु हृदयस्थ होते हुए हमारी वासनाओं को दग्ध कर देंगे। हम भी उपास्य प्रभु के समान हो उठेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

भृगु+वीतहव्य

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पताविड्यमूर्ध्वशोचिषम्।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे॥ २॥

(१) वनस्पतौ (वन=a ray of light) ज्ञानरश्मियों के रक्षक पुरुष में **मित्रं न**=मित्र के समान **सुधितम्**=उत्तमता से स्थापित **यम्**=जिसको **भृगवः**=ज्ञान से अपना परिपाक करनेवाले व्यक्ति **दधुः**=धारण करते हैं। उन आपको धारण करते हैं जो आप **ईड्यम्**=स्तुति के योग्य व **ऊर्ध्वशोचिषम्**=उत्कृष्ट ज्ञानदीप्तिवाले हैं। (२) हे **अद्भुत**=अनुपम अद्वितीय प्रभो! **स त्वम्**=वे आप **वीतहव्ये**=हव्य-पवित्र सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन करनेवाले पुरुष में **सुप्रीतः**=उत्तम प्रीतिवाले होते हुए **प्रशस्तिभिः**=स्तुतियों के द्वारा **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **महयसे**=पूजित होते हैं। ये वीतहव्य पुरुष आपका स्तवन करते हैं। आपका स्तवन ही वस्तुतः उन्हें वीतहव्य बनाता है।

भावार्थ—ज्ञान से अपना परिपाक करनेवाले व्यक्ति प्रभु को धारण करते हैं। उत्तम सात्त्विक पदार्थों का सेवन करनेवाले के प्रति प्रभु प्रीतिवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदतिजगती** ॥
स्वरः—**निषादः** ॥

परस्य आन्तरस्य अर्यः तरुषः

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **अवृकः**=(वर्कते आदत्ते) कुछ भी न लेनेवाले, एकदम लोभ से शून्य, **स त्वम्**=वे आप **दक्षस्य**=उन्नतिशील कार्यों को कुशलता से करनेवाले पुरुष के **वृधः भूः**=बढ़ानेवाले होते हैं। **परस्य**=बाह्य व **आन्तरस्य**=अन्दर के **अर्यः**=शत्रुओं के **तरुषः**=तरानेवाले होते हैं। द्वेष व विरोध करनेवाले लोग यदि हमारे बाह्य शत्रु हैं, तो रोग व वासनाएँ आन्तर शत्रु हैं, इन से आप उस दक्ष पुरुष को बचाते हैं। (२) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज! **सप्रथः**=अत्यन्त विस्तारवाले सर्वव्यापक प्रभो! आप **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **वीतहव्याय**=हव्य पवित्र सात्त्विक पदार्थों का ही भक्षण करनेवाले के लिये **रायः**=धनों को तथा **छर्दिः**=उत्तम गृह को **आयच्छ**=दीजिए। हे **सप्रथः**=सर्वतः

पृथु प्रभो! सर्वव्यापक प्रभो! **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले के लिए धनों व उत्तम गृहों को दीजिए।

भावार्थ—हम कुशलता से कार्यों को करनेवाले बनें। प्रभु हमारा वर्धन करेंगे और हमें सब शत्रुओं से तरायेंगे। प्रभु ही 'वीतहव्य भरद्वाज' के लिये, सात्त्विक अन्नों का सेवन करनेवाले अपने में शक्ति को भरनेवाले पुरुष के लिये, धनों को व उत्तम गृह को देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्युतानं-द्युक्षवचसम्

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम्।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे॥ ४॥

(१) हे मन्त्र के ऋषि 'वीतहव्य भरद्वाज' सात्त्विक अन्न के सेवक, शक्ति को अपने में भरनेवाले उपासक! तू **देवम्**=उस प्रकाशमय प्रभु को **सुवृक्तिभिः**=शोभनतया पापवर्जन हेतु भूत स्तुतियों के द्वारा **ऋञ्जसे**=(प्रसाधय) अपने में साधित करने का प्रयत्न कर। उस प्रभु को जो **द्युतानम्**=ज्योति का विस्तार करनेवाले हैं। **वः अतिथिम्**=तुम्हारे लिये अतिथिवत् पूज्य हैं अथवा तुम्हारे लिये निरन्तर गतिशील हैं। तुम्हारे भले के लिये सदा कार्यों को कर रहे हैं। **स्वर्णरम्**=सुख की ओर ले चलनेवाले हैं, **अग्निम्**=अग्रेणी हैं। **मनुषः**=विचारशील पुरुष के **होतारम्**=जीवन-यज्ञ को चलानेवाले हैं और इस प्रकार **स्वध्वरम्**=हिंसित न होने देनेवाले हैं। (२) उस प्रभु को स्तुतिवचनों से तू अपने में प्रसाधित कर, जो **विप्रं न**=मेधावी के समान **द्युक्षवचसम्**=दीप्ति के निवास-स्थानभूत वचनोंवाले हैं। **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं और **अरतिम्**=इन संसार के पदार्थों में व्यापक हैं। अथवा **अरतिम्**=(अर्यं) सारे पदार्थों के स्वामी हैं।

भावार्थ—हम पापवर्जन हेतुभूत स्तुतियों के द्वारा प्रभु का स्तवन करें। ये प्रभु हमारे ज्ञान का विस्तार करते हुए हमें सुखी करते हैं। ये प्रभु ही हमारे लिये आवश्यक सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। और इस प्रकार हमारे जीवनयज्ञ को चलाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

पावकया चितयन्त्या कृपा (रुरुचे)

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः॥ ५॥

(१) **यः**=जो प्रभु **पावकया**=पवित्रता को करनेवाली **चितयन्त्या**=चेतना को देनेवाली **कृपा**=दीप्ति से **क्षामन्**=इस पृथिवीरूप शरीर में इस प्रकार **रुरुचे**=दीप्त होती हैं, **न**=जैसे कि **उषसः**=उषाएँ **भानुना**=किरणों के द्वारा दीप्त होती हैं। उषाएँ किरणों से जैसे दीप्त हो उठती हैं, इसी प्रकार उपासक का हृदय प्रभु की पवित्र करनेवाली व चेतना को देनेवाली दीप्ति से दीप्त हो जाता है। (२) प्रभु **यामन्**=इस जीवनमार्ग में **तूर्वन् न**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले के समान **नु**=निश्चय से होते हैं। **एतशस्य**=(shining) ज्ञान से दीप्त होनेवाले पुरुष के **रणे**=जीवन-संग्राम में **आघृणे**=ये प्रभु दीप्त होते हैं। वस्तुतः प्रभु ही उसे जीवन-संग्राम में विजयी बनाते हैं। **यः**=जो प्रभु **ततृषाणः न अजरः**=जितने ही तृषित-शत्रुओं का आचमन कर जानेवाले हैं, उतने ही अजीर्ण हैं। प्रभु की शक्तियाँ कभी जीर्ण नहीं होती।

भावार्थ—उपासक का जीवन प्रभु की ज्ञानदीप्ति से दीप्त हो उठता है। वे शत्रुओं का हिंसन

करनेवाले हैं। शत्रुओं को समाप्त करके हमें अजीर्ण बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदतिशक्वरी** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'प्रिय अग्नि अमृत' प्रभु

अ॒ग्निम॑ग्निं वः स॒मिधा॑ दुवस्यत प्रि॒यंप्रि॑यं वो॒ अति॑थिं गृणी॒षणि॑।
उप॑ वो गी॒र्भिर॒मृतं॑ विवासत दे॒वो दे॒वेषु॒ वन॑ते॒ हि वार्यं॑ दे॒वो दे॒वेषु॒ वन॑ते॒ हि नो॒ दुवः॑ ॥ ६ ॥

(१) **वः प्रियं प्रियम्**=तुम्हारे अत्यन्त प्रिय **अग्निं अग्निम्**=सदा अग्रेणी प्रभु, उन्नतिपथ पर प्राप्त करानेवाले, **वः अतिथिम्**=तुम्हारे अतिथिवत् पूज्य **गृणीषणि**=(स्तुत्यं) स्तुति के योग्य प्रभु को **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **दुवस्यत**=उपासित करो। ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही प्रभु का ज्ञानी-भक्त बन पाता है। (२) **अमृतम्**=उस अमृतत्व को प्राप्त करानेवाले प्रभु को (न मृतं यस्मात्) **वः गीर्भिः**=अपनी स्तुतिवाणियों के द्वारा **उपविवासत**=पूजो। **देवेषु देवः**=वह देवाधिदेव प्रभु, **हि**=निश्चय से **वार्यम्**=वरणीय धनों को **वनते**=प्राप्त कराते हैं। वे **देवेषु देवः**=देवाधिदेव **हि**=निश्चय से **नः**=हमारी **दुवः वनते**=उपासना को प्रीतिपूर्वक स्वीकार करते हैं (संभजते)।

भावार्थ—हम प्रभु के ज्ञानी भक्त बनें, प्रभु का पूजन करें। प्रभु हमें सब वरणीय धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'शुचि पावक पुरुवार' प्रभु

समि॑द्धम॒ग्निं स॒मिधा॑ गि॒रा गृ॑णे॒ शुचिं॑ पाव॒कं पु॒रो अ॑ध्व॒रे ध्रु॒वम्।
वि॒प्रं होता॑रं पुरु॒वार॑म॒द्रुहं॑ क॒विं सु॒म्नैरी॑महे जा॒तवे॑दसम् ॥ ७ ॥

(१) **समिद्धम्**=उस ज्ञानदीप्त **अग्निम्**=अग्रेणी प्रभु को **समिधा**=ज्ञानदीप्ति से तथा **गिरा**=स्तुति-वाणियों से **गृणे**=मैं स्तुत करता हूँ। उस प्रभु को स्तुत करता हूँ जो **शुचिम्**=पूर्ण पवित्र हैं, **पावकम्**=उपासक को पवित्र करनेवाले हैं। **अध्वरे**=हमारे जीवन-यज्ञ में **ध्रुवम्**=जो निश्चल रूप से विद्यमान हैं। उन प्रभु को **पुरः**=सब से पूर्व (गृणे) स्तुत करता हूँ। हमारे जीवन-यज्ञों को प्रभु ही तो चलाते हैं। (२) **विप्रम्**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाले, **होतारम्**=सब कुछ देनेवाले **पुरुवारम्**=पालक व पूरक वरणीय धनोंवाले, **अद्रुहम्**=द्रोह से शून्य **कविम्**=क्रान्तदर्शी **जात-वेदसम्**=सर्वज्ञ व सर्वधन (वेदस्=wealth) प्रभु को **सुम्नै**=स्तोत्रों के द्वारा **ईमहे**=प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—उस प्रभु की प्रार्थना, स्तुति व उपासना करते हैं जो पवित्र हैं, हमें पवित्र करनेवाले हैं व सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'जागृवि-विभु-विश्पति' प्रभु

त्वां दू॒तम॑ग्ने अ॒मृतं॑ यु॒गेयु॑गे हव्य॒वाहं॑ दधिरे पा॒युमीड्य॑म्।
दे॒वास॑श्च॒ मर्ता॑सश्च॒ जागृ॑विं वि॒भुं वि॒श्पतिं॒ नम॑सा॒ नि षे॑दिरे ॥ ८ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **दूतम्**=ज्ञान का सन्देश प्राप्त करानेवाले अथवा (दु उपतापे) शत्रुओं को उपतप्त करनेवाले, **अमृतम्**=मृत्यु से ऊपर उठानेवाले, **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त

करानेवाले, **पायुम्**=रक्षक, **ईड्यम्**=स्तुत्य **त्वाम्**=आपको **देवासः च मर्तासः च**=देववृत्ति के मनुष्य व अन्य मनुष्य भी **युगेयुगे**=समय-समय पर **दधिरे**=धारण करते हैं। ज्ञानी पुरुष तो प्रभु का सदा स्मरण करते ही हैं, अन्य साधारण लोग भी कष्ट आने पर प्रभु को याद करते ही हैं। (२) **जागृविम्**=सदा जीव हित के लिये जागरित, **विभुम्**=सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान् (वि-भवति) **विश्पतिम्**=प्रजाओं के रक्षक आपको **नमसा**=नमन के साथ **निषेदिरे**=उपासित करते हैं, आपके चरणों में उपस्थित होते हैं।

भावार्थ—सब व्यक्ति, देव तथा साधारण मनुष्य समय-समय पर प्रभु का ही ध्यान करते हैं, प्रभु ही जीवहित के लिये सदा जागरित सर्वशक्तिमान् रक्षक हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सोमपान व सुमति' का वरण

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव॥ ९॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **उभयान्**=गत मन्त्र में उल्लिखित दोनों देवों व साधारण मनुष्यों को **अनुव्रता**=व्रतों के अनुसार, **विभूषन्**=उस-उस शक्ति से अलंकृत करते हुए, **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों को **दूतः**=ज्ञान-सन्देश प्राप्त कराते हुए **रजसी**=इन द्यावापृथिवी **समीयसे**=संगत होते हैं। सर्वत्र आप विचरते हैं, कर्मानुसार व्यवस्था करते हुए, ज्ञान का सन्देश देते हुए आप सर्वत्र विद्यमान हो रहे हैं। (२) **यत्**=जब **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये हम **धीतिम्**=सोम शक्ति के पान को, वीर्य-संयम को व **सुमतिम्**=वीर्य संयम से उत्पन्न कल्याणी मति को **आवृणीमहे**=हम वरते हैं, **अध स्मा**=तो निश्चय से **नः**=हमारे लिये **त्रिवरूथः**='शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को सुरक्षित करनेवाले और इस प्रकार **शिवः**=कल्याणकर **भव**=होइये, तीनों के ऐश्वर्य को हमें प्राप्त कराइये (वरूथ=wealth)।

भावार्थ—सबका कल्याण करते हुए प्रभु सर्वत्र विचरते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिये हम 'सोमरक्षण व सुमति' का वरण करते हैं। प्रभु हमें 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सुप्रतीक सुदृश स्वञ्च' प्रभु

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत्॥ १०॥

(१) **अविद्वांसः**=हम अल्पज्ञ जीव **तं विदुष्टरम्**=उस सर्वज्ञ प्रभु को **सपेम**=उपासित करें, पूजें, जो कि **सुप्रतीकम्**=उत्तम तेजस्वितावाले हैं, सब शोभन अंगोंवाले हैं (सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) **सुदृशम्**=उत्तम दर्शनवाले व **स्वञ्चम्**=उत्तम गतिवाले हैं। (२) **सः विद्वान्**=वे ज्ञानी प्रभु **विश्वा वयुनानि**=सब प्रज्ञानों को **यक्षत्**=हमारे साथ संगत करते हैं और **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **अमृतेषु**=अमृतत्व (नीरोगता) की प्राप्ति के निमित्त **हव्यं प्रवोचत्**=हव्यों का उपदेश देते हैं, विविध यज्ञों के करने की प्रेरणा देते हैं। इन यज्ञों से ही तो हम नीरोग बनकर प्रभु की भी वास्तविक उपासना कर रहे होंगे। (यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः)।

भावार्थ—हम अल्पज्ञ उस 'तेजस्वी ज्ञानी' प्रभु का पूजन करें। प्रभु हमें ज्ञानों को प्राप्त करायेंगे और यज्ञों के उपदेश से हमें अमृतत्व प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धीति, यज्ञ की निशिति व उदिति

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया॥ ११॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं का हिंसन करनेवाले **अग्ने**=परमात्मन्! **तं पासि**=आप उसको रक्षित करते हैं, **उत**=और **तं पिपर्षि**=उसका पालन व पूरण करते हैं, **यः**=जो **कवये ते**=क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ आपकी प्राप्ति के लिये **धीतिं आनट्**=सोम के पान का व्यापन करता है, शरीर में सोमरक्षण के द्वारा सोम परमात्मा को पाने का यत्न करता है। (२) **वा**=अथवा जो **यज्ञस्य**=यज्ञात्मक कर्मों की **निशितिम्**=तीक्ष्णता को, प्रबल कामना को **वा**=अथवा **उदितिम्**=यज्ञों के उत्कर्ष को आनट्=व्याप्त करता है, **तं इत्**=उसको ही **शवसा**=शक्ति से **उत**=और **राया**=ऐश्वर्य से **पृणक्षि**=पूरित करते हैं। आप से शक्ति व धन को प्राप्त करके यह और अधिक यज्ञशील होता है।

भावार्थ—सोम के रक्षण, यज्ञों की प्रबल कामना व यज्ञों के उत्कर्ष से हमें प्रभु का रक्षण प्राप्त होता है। प्रभु हमें शक्ति व धन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अवद्यात् वनुष्यतः निपाहि

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री॥ १२॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **वनुष्यतः**=हिंसक शत्रुओं से **निपाहि**=हमारा नितरां रक्षण करिये। हे **सहसावन्**=शत्रुमर्षक बलवाले प्रभो! **त्वं उ**=आप ही **नः**=हमें **अवद्यात्**=पापों से बचाइये। पापों से बचकर ही हम शत्रुओं से अपना रक्षण कर पाते हैं। (२) **ध्वस्मन्वत्**=दोषों के विध्वंसवाला, ध्वस्तदोष, **पाथः**=अन्न **त्वा अभि समेतु**=अपनी ओर आनेवाला हो, अर्थात् हविष्य अन्न का सेवन करता हुआ मैं आपके समीप प्राप्त होनेवाला बनूँ। आपसे हमें **रयिः**=वह धन **सं (एतु)**=प्राप्त हो, जो **स्पृहयाय्यः**=अत्यन्त स्पृहणीय है और **सहस्री**=(स हस्) आनन्द से युक्त है अथवा सहसंख्या से युक्त पर्याप्त है।

भावार्थ—प्रभु हमें पापों व शत्रुओं से बचाएँ। सात्त्विक अन्न का सेवन हमें प्रभु की ओर ले चले। प्रभु हमें स्पृहणीय व आनन्द के कारणभूत धन को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यजिष्ठः यजताम्

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा॥ १३॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **होता**=इस सृष्टियज्ञ के होता हैं, सब कुछ देनेवाले हैं। **गृहपतिः**=वे सब घरों के रक्षक हैं। **सः राजा**=वे ही शासक हैं। वे **जातवेदाः**=सर्वज्ञ प्रभु **विश्वा जनिमा**=सब जन्मों, विकासों को **वेद**=जानते हैं। प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले सूर्य आदि को वे जानते हैं और साथ ही जीवों के भिन्न-भिन्न शरीरों के धारण करने को वे जानते हैं। (२) वे **यः**=जो अग्नि प्रभु **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों के **उत**=और **मर्त्यानाम्**=साधारण मनुष्यों के

यजिष्ठः=अतिशयेन पूज्य हैं, **सः**=वे **ऋतावा**=ऋत का रक्षण करनेवाले प्रभु **प्रयजताम्**=हमारे लिये उत्कृष्ट पदार्थों के देनेवाले हों।

भावार्थ—वे प्रभु गृहपति हैं, राजा हैं। वे पूज्यतम प्रभु हमारे लिये सब आवश्यक पदार्थों को दें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञ-हव्य पदार्थ व ऋत

अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य॥ १४॥

(१) हे **होतः**=सब कुछ देनेवाले, **पावकशोचे**=पवित्र दीप्तिवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **यत्**=क्योंकि **त्वं हि यज्वा**=आप ही यज्ञों को करनेवाले हैं, सो **अद्य**=आज **विशः**=संसार में प्रविष्ट इन प्रजाओं के **अध्वरस्य वेः**=यज्ञों की कामना करिये, आप से प्रेरणा को प्राप्त करके ये व्यक्ति यज्ञशील हों। (२) हे प्रभो! **यद्**=जब **महिना**=अपनी महिमा से आप **वि भूः**=सर्वत्र व्याप्त होते हैं, तो **ऋता यजासि**=ऋतों को ही इन प्रजाओं के साथ संगत करते हैं। अनृत से पृथक् करके ऋत से आप अपने उपासकों को जोड़ते हैं। हे **यविष्ठ**=सब अनृतों को अधिक से अधिक हमारे से पृथक् करनेवाले प्रभो! **या ते हव्या**=जो आपके हव्य, प्रार्थनीय पवित्र पदार्थ हैं, उन पदार्थों को **आवह**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु अपने उपासकों को यज्ञ की प्रवृत्ति तथा हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। अनृत से दूर करके ऋत से हमारे जीवन को युक्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**ब्राह्मीबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

विश्वानि दुरिता तरेम

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम॥ १५॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **सुधितानि**=उत्तमता से स्थापित **प्रयांसि**=हविरूप अन्नों को **अभिख्यः**=देखते हैं, इस शरीर को यज्ञवेदि समझें, तो आप इस यज्ञवेदि में स्थापित करने के लिये सात्त्विक पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। यह होता **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **यजध्यै**=अपने साथ संगत करने के लिये **त्वा**=आपको **निदधीत**=अपने हृदय में स्थापित करे। प्रभु के स्मरण से शरीर भी उत्तम बनता है, मस्तिष्क भी ज्ञानदीप्त होता है। (२) हे **अग्ने**=प्रभो! **वाजसातौ**=इस जीवन-संग्राम में **नः अवा**=हमें रक्षित करिये। हम आपकी कृपा से **विश्वानि दुरिता तरेम**=सब दुरितों को तैर जाएँ। **ता**=उन दुरितों को **तरेम**=तैर जाएँ। **तव**=आपके **अवसा**=रक्षण से **तरेम**=तैर जाएँ।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे इस शरीर रूप यज्ञ-स्थान में सब हविरूप पदार्थ ठीक रूप से स्थापित हों। शरीर शक्ति-सम्पन्न बने, तो मस्तिष्क ज्ञान-सम्पन्न हो। प्रभु कृपा से हम संग्राम में विजयी बनें। सब दुरितों को तैर जाएँ।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'ऊर्णावान् कुलायी घृतवान्' योनि

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम्।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु॥ १६ ॥

(१) हे **स्वनीक**=उत्तमरूप व बलवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **प्रथमः**=(प्रथ विस्तारे) अतिशयित विस्तारवाले सर्वव्यापक आप **विश्वेभिः देवैः**=सब देवों के साथ **योनिं सीद**=हमारे इस शरीर गृह में आसीन होइये। हमारा यह शरीर दिव्यगुणों का अधिष्ठान बने तथा आपका निवास-स्थान हो। यह शरीर जो कि **ऊर्णावन्तम्**=आच्छादनवाला है, अर्थात् सब दोषों से अपने को सुरक्षित करनेवाला है। **कुलायिनम्**=जो प्रशस्त कुलायोंवाला है। एक-एक इन्द्रिय गोलक एक-एक देव का कुलाय (घोंसला) है। जिस शरीर में सब कुलाय बड़े ठीक हैं, सब इन्द्रियों के स्थान अविकृत हैं और **घृतवन्तम्**=प्रशस्त दीप्तिवाला है तथा मलों के क्षरणवाला है। यह शरीर देवों व परमात्मा का निवास-स्थान बने। (२) हे प्रभो! आप इस शरीर में स्थित होते हुए **सवित्रे**=निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त **यजमानाय**=यज्ञशील इस उपासक के लिये **यज्ञं साधु नय**=यज्ञों को सम्यक् प्राप्त कराइये। इसका जीवन यज्ञशील बने। यज्ञों के द्वारा ही यह आपका यजन (उपासन) करनेवाला हो।

भावार्थ—हम इस शरीर को सुरक्षावाला (उर्णावान्) उत्तम इन्द्रिय गोलकोंवाला (कुलायी) दीप्तिवाला (घृतवान्) बनाएँ यह देवों के साथ परमात्मा का निवास-स्थान बने। प्रभु कृपा से हम यज्ञशील बनें।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अग्निमन्थन

इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः। यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः॥ १७ ॥

(१) **इमम्**=इस **उ**=निश्चय से **त्यम्**=उस प्रसिद्ध **अग्निम्**=अग्नि को, अग्रेणी प्रभु को **वेधसः**=यज्ञादि कर्मों को करनेवाले बुद्धिमान् पुरुष **अथर्ववत्**=(अ+थर्व) न डाँवाडोल होनेवाले स्थित-प्रज्ञ पुरुष की तरह **मन्थन्ति**=विचार द्वारा जानने का प्रयत्न करते हैं। 'अथ अर्वाङ्'=जैसे अन्दर निरीक्षण करनेवाला पुरुष प्रभु का चिन्तन करता है, इसी प्रकार हम उस प्रभु का विचार करनेवाले बनें। (२) उस प्रभु का चिन्तन करें, **यम्**=जिस **अमूरम्**=मूढ़ता से शून्य सर्वज्ञ **अंकूयन्तम्**=स्वाभाविक गतिवाले प्रभु को **श्याव्याभ्यः**=अन्धकारमयी रात्रियों के लिए, इन अज्ञानान्धकार की रात्रियों को दूर करने के लिये, ('मशकार्थो धूमः'=मशक निवृत्ति के लिये) **आनयत्**=अपने हृदयों में प्राप्त कराते हैं। प्रभु का आभास होते ही सब अज्ञानान्धकार लुप्त होता जाता है।

भावार्थ—हम यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त वेधा बनकर तथा स्थित-प्रज्ञ बनकर प्रभु का चिन्तन करें, यह प्रभु-चिन्तन सब अज्ञानान्धकारों को विनष्ट करता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—स्वराड् अनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

देववीतये-स्वस्तये

जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये। आ देवान्वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः॥ १८ ॥

(१) हे प्रभो! **जनिष्व**=हमारे में प्रादुर्भूत होइये। **देववीतये**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये

तथा **सर्वताता**=इस सब गुणों के विस्तारवाले जीवन यज्ञ में **स्वस्तये**=कल्याण के लिये। प्रभु का प्रादुर्भाव दिव्यगुणों को प्राप्त कराता है और कल्याण का साधक होता है। (२) हे प्रभो! आप **देवान्**=दिव्यगुणों को **आवक्षि**=हमें प्राप्त कराइये। **अमृतान्**=जो दिव्यगुण हमें नीरोगता को देनेवाले हैं तथा **ऋतावृधः**=हमारे में ऋत का (ठीक का) वर्धन करनेवाले हैं। इन **देवेषु**=दिव्यगुणों की वृत्तिवाले पुरुषों में आप **यज्ञं पिस्पृशः**=यज्ञ को प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम प्रभु कृपा से दिव्यगुणों व स्वस्ति (कल्याण) को प्राप्त करें। नीरोग व ऋतमय जीवन बनकर यज्ञशील हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु

वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि॥ १९॥

(१) हे **जनानाम्**=लोगों के **गृहपते**=घरों के रक्षक **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **वयम्**=हम **उ**=निश्चय से **समिधा**=ज्ञान दीप्ति के द्वारा **त्वा**=आपको **बृहन्तम्**=बढ़ा हुआ **अकर्म**=करें। अर्थात् ज्ञान को बढ़ाते हुए आपके प्रकाश को अधिकाधिक देखनेवाले बनें। स्वाध्याय के द्वारा आपका उपासन करें। (२) **नः**=हमारे **गार्हपत्यानि**=गृहस्थ के कर्त्तव्य **अस्थूरि सन्तु**=एक अश्व युक्त गाड़ी के समान न हो जाएँ। अर्थात् पति-पत्नी दोनों दीर्घ-जीवन को प्राप्त करके गृहस्थ के कर्त्तव्यों को सम्यक् निभा पायें। आप हमें **तिग्मेन तेजसा**=तीक्ष्ण तेज से **सं शिशाधि**=सम्यक् तीक्ष्ण करिये। हमें आप तेजस्वी बनाइये। हमारी तेजस्विता शत्रुओं को समाप्त करनेवाली हो।

भावार्थ—स्वाध्याय द्वारा ज्ञान को बढ़ाते हुए हम प्रभु के प्रकाश को अधिकाधिक देखनेवाले बनें। हम पति-पत्नी दोनों गृहस्थ की गाड़ी को सम्यक् खैंचें। तीक्ष्ण तेजस्विता को प्राप्त करें।

अगले सूक्त में भी भरद्वाज स्तुति करते हुए कहते हैं—

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

हितः देवेभिर्मानुषे-जने

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने॥ १॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप ही **विश्वेषां यज्ञानां होता**=सब यज्ञों के होता है, आपकी कृपा से ही सब यज्ञों की पूर्ति होती है। (२) आप **मानुषे जने**=विचारपूर्वक कर्म करनेवाले व दयालु वृत्तिवाले मनुष्य में **देवेभिः हितः**=दिव्यगुणों के द्वारा स्थापित होते हैं। जितना-जितना एक मनुष्य दिव्य गुणों को अपनाता है, उतना-उतना प्रभु का धारण करनेवाला बनता है।

भावार्थ—सब यज्ञों के होता प्रभु हैं। दिव्य गुणों के धारण से हृदय में प्रभु की स्थापना होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'ज्ञान शक्ति दिव्यगुण'

स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः। आ देवान्वक्षि यक्षि च॥ २॥

(१) हे अग्ने! **सः**=वे आप **नः**=हमें **अध्वरे**=इस हिंसारहित जीवन-यज्ञ में **मन्द्राभिः जिह्वाभिः**=आनन्द को देनेवाली वाणियों से **महः यजा**=तेजस्विता को संगत कीजिये, तेजस्विता प्रदान कीजिये। हम आपकी ज्ञानप्रद वेद-वाणियों को प्राप्त करें तथा तेजस्वी बनें। (२) ज्ञान व तेजस्विता को प्राप्त कराके आप **देवान्**=आबाधित दिव्यगुणों को प्राप्त कराइये, **च**=और **यक्षि**=हमारे साथ संगत करिये।

भावार्थ—प्रभु हमें 'ज्ञान, शक्ति व दिव्यगुणों' को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मार्गों व उपमार्गों का ज्ञान

वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा। अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो॥ ३॥

(१) हे **वेधः**=विधातः, सब विधानों के करनेवाले प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **अध्वनः वेत्था**=मार्ग का ज्ञान रखते हैं **च**=और हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! आप **पथाः**=इन उपमार्गों को **अञ्जसा**=ठीक-ठीक जानते हैं। सब नियमोंपनियमों का आप ही ज्ञान देनेवाले हैं। 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह' ये पाँच 'यम' जीवन के 'अध्वा' हैं, तो 'शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वरप्राणिधान' ये पाँच 'नियम' जीवन के पथ हैं। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी **सुक्रतो**=शोभन-प्रज्ञ व शोभन-कर्मन् प्रभो! आप ही **यज्ञेषु**=श्रेष्ठतम कर्मों में हमें ले चलनेवाले हैं।

भावार्थ—हृदयस्थ प्रभु ही हमारे लिये अपनी प्रेरणा के द्वारा मार्गों व उपमार्गों का ज्ञान प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञान, शक्ति व यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन

त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम्। ईजे यज्ञेषु यज्ञियम्॥ ४॥

(१) अब **द्विता**=ज्ञान व शक्ति का विस्तार करने के द्वारा (द्वौ तनोति) **भरतः**=अपना ठीक से पोषण करनेवाला मैं **वाजिभिः**=इन इन्द्रियाश्वों से **शुनम्**=आनन्दमय **त्वां ईळे**=आपका ही स्तवन करता हूँ। उपासक वही है जो ज्ञान व शक्ति के भरण के लिये यत्नशील होता है। (२) मैं **यज्ञियम्**=पूजनीय आपको **यज्ञेषु**=यज्ञों में, श्रेष्ठतम कर्मों में **ईजे**=उपासित करता हूँ। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'।

भावार्थ—प्रभु का उपासन 'ज्ञान व शक्ति की प्राप्ति तथा यज्ञों' से होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वरणीय प्रभु

त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते। भरद्वाजाय दाशुषे॥ ५॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **इमा**=इन **वार्या**=वरणीय धनों को **पुरु**=खूब ही प्राप्त कराते हैं। आप इन वरणीय धनों को **दिवोदासाय**=ज्ञान के उपासक के लिये, **सुन्वते**=यज्ञशील पुरुष के लिये प्राप्त कराते हैं। (२) **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले के लिये आप इन धनों को प्राप्त कराते हैं। **दाशुषे**=दाश्वान् पुरुष के लिये, दानशील के लिये।

भावार्थ—हम 'दिवोदास, सुन्वन्, भरद्वाज व दाश्वान्' बनें जिससे वरणीय धनों को प्राप्त कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

सत्संग व स्तुति शब्द श्रवण

त्वं दू॒तो अम॑र्त्य॒ आ व॑हा॒ दैव्यं॒ जन॑म्। शृ॒ण्वन्विप्र॑स्य सुष्टु॒तिम्॥ ६॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **अमर्त्यः**=अमरणधर्मा **दूतः**=अजरामर होते हुए सदा से ज्ञान-सन्देश को प्राप्त करानेवाले हैं। आप **दैव्यं जनं आवहा**=दिव्यगुणों की वृत्तिवाले लोगों को हमारे लिये प्राप्त कराइये। आपकी कृपा से सदा दैवीवृत्तिवाले लोगों से हमारा सम्पर्क हो। (२) हे प्रभो! मैं आपकी कृपा से सदा **विप्रस्य**=(वि प्रा) अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले ज्ञानी पुरुष की **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **शृण्वन्**=सुननेवाला बनूँ। सत्संग करते हुए मेरे कान इन दिव्य पुरुषों से की जाती हुई आपकी स्तुति को ही सुननेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें उत्तम संग प्राप्त हो। इस सत्संग में ज्ञानियों से की जाती हुई स्तुति के शब्दों को ही हमारे कान सुनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु ध्यान से दिव्य गुणों की प्राप्ति

त्वाम॑ग्ने स्वा॒ध्यो॒३॒॑ मर्ता॑सो दे॒ववी॑तये। य॒ज्ञेषु॑ दे॒वमी॑ळते॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वाम्**=आपका **स्वाध्यः**=उत्तमता से ध्यान करनेवाले **मर्तासः**=मनुष्य **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये होते हैं। वस्तुतः जिसका निरन्तर ध्यान करेंगे, वैसे ही तो बनेंगे। उस परब्रह्म का ध्यान करते हुए हम क्यों न देव बनेंगे? (२) इसलिए उत्तम स्तोता लोग **यज्ञेषु**=यज्ञात्मक कर्मों के अन्दर **देवम्**=उस प्रकाशमय प्रभु का **ईडते**=उपासन करते हैं। उन यज्ञों को वस्तुतः वे प्रभु कृपा से ही पूर्ण होता हुआ जानते हैं। परिणामतः उन्हें इन उत्तम कर्मों का गर्व नहीं होता।

भावार्थ—उत्तम ध्याता लोग प्रभु का ध्यान करते हुए दिव्य गुणों को प्राप्त करते हैं। सब यज्ञों में उस देव का पूजन करते हुए उन यज्ञों को उस देव की शक्ति से होता हुआ जानते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सन्दृशं क्रतुम्

तव॒ प्र य॑क्षि स॒न्दृश॑मु॒त क्रतुं॑ सु॒दान॑वः। विश्वे॑ जुषन्त का॒मिनः॑॥ ८॥

(१) हे अग्ने, परमात्मन्! मैं **तव**=आपके **सन्दृशम्**=सम्यग् दर्शनीय व सब के भासक (प्रकाशक) तेज को **प्रयक्षि**=पूजित करता हूँ। **उत**=और **सुदानवः**=सम्यक् शत्रुओं का (दाप् लवने) छेदन करनेवाले आपके **क्रतुम्**=शक्ति व प्रज्ञान का मैं पूजन करता हूँ। (२) **विश्वे**=सब **कामिनः**=विविध कामनाओं से प्रेरित होनेवाले पुरुष आपको ही **जुषन्त**=प्रीतिपूर्वक उपासित करते हैं। आप से ही उनकी कामनाएँ पूर्ण की जाती हैं।

भावार्थ—प्रभु के सम्यग् दर्शनीय तेज का व शक्ति और प्रज्ञान का पूजन करते हुए हम भी उस तेज, शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विदुष्टरः

त्वं होता॒ मनु॑र्हितो॒ वह्नि॑रा॒सा वि॒दुष्ट॑रः। अग्ने॒ यक्षि॑ दि॒वो विशः॑॥ ९॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **होता**=हमारे जीवन-यज्ञ के होता हैं। **मनुर्हितः**=ज्ञानशील पुरुष से हृदयदेश में स्थापित होते हैं। **आसा**=मुख से ज्ञानोपदेश द्वारा **वह्निः**=हमें भवसागर से पार ले जानेवाले हैं। **विदुष्टरः**=सर्वाधिक ज्ञानी हैं, पूर्ण ज्ञानवाले हैं। (२) हे **अग्ने**=परमात्मन्! हमारे साथ **दिवः विशः**=ज्ञानी पुरुषों को **यक्षि**=संगत कीजिए। उनके संग से हम भी ज्ञान को प्राप्त कर सकें।

भावार्थ—प्रभु ही होता है, वे ही हमें ज्ञान को देनेवाले हैं। ज्ञानियों के संग से हमें ज्ञान प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हृदयासन पर प्रभु को आसीन करना

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥ १०॥

(१) **अग्ने**=हे प्रकाशमय प्रभो! **आयाहि**=आप आइये। हमें प्राप्त होइये, जिससे **वीतये**=अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिये (वी असने) हम समर्थ हों। आपके प्राप्त होते ही प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है, अन्धकार समाप्त हो जाता है। **गृणानः**=हमारे लिये ज्ञानोपदेश को करते हुए आप **हव्यदातये**=हव्य पदार्थों के, यज्ञिय उत्तम पदार्थों के देने के लिये होइये। आपकी कृपा से हम हव्य पदार्थों को प्राप्त करके यज्ञों की वृत्तिवाले बनें। (२) **होता**=सब हव्य पदार्थों के दाता (हु दाने) होते हुए आप **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **निसत्सि**=निश्चय से विराजिये। हमारा पवित्र हृदय आपका आसन बने। इस हृदयासन पर आपको बिठाकर हम आपका पूजन कर पायें।

भावार्थ—हम अपने हृदयों में प्रभु को आसीन करें। सब अज्ञानान्धकार का ध्वंस होकर प्रकाश ही प्रकाश हो जाएगा।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

समिद्भिः घृतेन

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य॥ ११॥

(१) हे **अंगिरः**=गतिशील प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको **समिद्भिः**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक के पदार्थों के ज्ञान की दीप्तियों से, इन तीन ज्ञानरूप समिधाओं से तथा **घृतेन**=मलों के क्षरण से, मलों के दूरीकरण से **वर्धयामसि**=अपने अन्दर बढ़ाते हैं, अपने अन्दर आपके प्रकाश को देखने का प्रयत्न करते हैं। (२) हे **यविष्ठ्य**=युवतम=हमारी बुराइयों को अधिक से अधिक दूर करनेवाले तथा अच्छाइयों को अधिक से अधिक हमारे साथ मिलानेवाले प्रभो! **बृहत् शोचा**=आप हमारे अन्दर खूब ही दीप्त होइये। हमें ज्ञान को बढ़ाते हुए व मलों को दूर करते हुए प्रभु के प्रकाश को अधिकाधिक देख पायें।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम ज्ञान को बढ़ाने के लिये यत्नशील हों तथा मलों को मन से दूर करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

श्रवाय्यं, सुवीर्यम्

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि। बृहदग्ने सुवीर्यम्॥ १२॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिये **पृथु**=विशाल **श्रवाय्यम्**=श्रवणीय ज्ञान को **अच्छा विवाससि**=आभिमुख्येन प्राप्त कराते हैं (अभिगमय)। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी

प्रभो! आप हमें **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को देते हैं। वस्तुतः ज्ञान और शक्ति के बिना किसी भी उन्नति का होना सम्भव नहीं। प्रभु से ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करके ही हम भी 'देव व अग्नि' बनते हैं।

भावार्थ—वे प्रकाशमय प्रभु हमें विशाल ज्ञान प्राप्त कराते हैं, उन्नति की साधनभूत शक्ति को देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पुष्कर+मूर्धा (हृदय+मस्तिष्क)

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥ १३॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वाम्**=आपको **अथर्वा**=(अथ अर्वाङ्) अन्तः निरीक्षण करनेवाला योगी **पुष्करात्**=इस हृदयान्तरिक्ष से (पुष्कर=atmosphere) **निरमन्थत**=मन्थन (विचार) के द्वारा देख पाता है। केवल पुष्कर से नहीं, अपितु **मूर्ध्नः**=मस्तिष्क के द्वारा, उस मस्तिष्क के द्वारा जो **विश्वस्य वाघतः**=सम्पूर्ण ज्ञानों का वहन करनेवाला है। (२) जैसे दो अरणियों की रगड़ से अग्नि प्रकट होती है, इसी प्रकार हृदय व मस्तिष्क रूप दो अरणियों की रगड़ से प्रभुरूप अग्नि प्रकट होती है। हृदय को हम पुष्कर (कमल) की तरह अलिप्त बनाएं तथा मस्तिष्क को सब ज्ञानों का वहन करनेवाला। इन दोनों का मेल होने पर हम प्रभु के प्रकाश को देख पायेंगे।

भावार्थ—हृदय व मस्तिष्क दोनों का विकास हमें प्रभु दर्शन कराने में सहायक होगा।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वृत्रहणं पुरन्दरम्

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईंधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्॥ १४॥

(१) हे प्रभो! **तं त्वा उ**=उन आपको निश्चय से **अथर्वणः पुत्रः**=अथर्वा का पुत्र, अर्थात् उत्कृष्ट अथर्वा, पूर्ण रूप से चित्तवृत्ति को अन्तर्मुखी करनेवाला (अथ अर्वाङ्) **दध्यङ्**=ध्यान में प्रवृत्त होनेवाला **ऋषिः**=तत्त्वद्रष्टा मनुष्य **ईधे**=अपने हृदयदेश में दीप्त करता है। जितना-जितना हम चित्तवृत्ति का निरोध करके अन्तर्मुखी वृत्तिवाला बनेंगे, उतना ही अधिक प्रभु का प्रकाश देख पायेंगे। (२) उन आपको यह हृदयदेश में दीप्त करता है, जो **वृत्रहणम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाले हैं। और **पुरन्दरम्**=काम-क्रोध-लोभ रूप असुरों की पुरियों का विध्वंस करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु का दर्शन चित्तवृत्ति के निरोध से ही सम्भव है। वे प्रभु वासना को विनष्ट करते हैं और आसुरभावों के दुर्गों का विध्वंस करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दस्युहन्तम धनञ्जय

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्। धनञ्जयं रणेरणे॥ १५॥

(१) हे परमात्मन्! **तं त्वा उ**=उन आपको निश्चय से **पाथ्यः**=धर्मपथ पर आरूढ़ **वृषा**=शक्तिशाली पुरुष ही **समीधे**=समिद्ध व दीप्त कर पाता है, आपका दर्शन इस 'पाथ्य वृषा' को ही होता है। (२) उन आपको यह हृदयदेश में दीप्त करता है, जो **दस्युहन्तमम्**=दास्यव वृत्तियों को अधिक से अधिक विनष्ट करनेवाले हैं और **रणे रणे**=प्रत्येक संग्राम में **धनञ्जयम्**=धनों का हमारे लिये विजय करनेवाले हैं।

भावार्थ—मार्ग पर चलते हुए शक्तिशाली बनकर हम प्रभु का दर्शन कर पाते हैं। ये प्रभु दस्युओं का विनाश करके हमारे लिये धनों का विजय करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नी त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सत्य+संयम

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६ ॥

(१) **अग्ने**=हे परमात्मन्! **एहि**=आप मुझे प्राप्त होइये। **उ**=और मैं **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये **इतराः गिरः**=सामान्य व्यवहार की वाणियों को भी **सु**=अच्छी प्रकार **इत्था ब्रवाणि**=सत्य ही बोलूँ सत्य को अपनाने से ही तो सत्य स्वरूप आपको प्राप्त कर सकूँगा। (११) हे प्रभो! आप **एभि**=इन **इन्दुभिः**=सोमकणों से **वर्धासे**=मेरे में वृद्धि को प्राप्त होइये। इन सोमकणों का रक्षण करता हुआ मैं आपको ज्ञानाग्नि की दीप्ति के द्वारा प्राप्त करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—सत्य व संयम के द्वारा हम प्रभु प्राप्ति के पात्र बन पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तरं दक्षं+सदः

यत्र क्वं च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्। तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

(१) हे प्रभो! **यत्र क्व च**=जहाँ कहीं भी **ते मनः**=आपका अनुग्रहात्मक मन होता है, अर्थात् जिस पर भी आपकी कृपा होती है, वहाँ आप **उत्तरम्**=उत्कृष्ट **दक्षम्**=बल को **दधसे**=धारण करते हैं। हम प्रभु कृपा के पात्र बनें, प्रभु हमें उत्कृष्ट बल प्राप्त करायेंगे। (२) **तत्र**=उसी व्यक्ति में आप **सदा कृणवसे**=अपनी स्थिति करते हैं, उसी को आप अपना निवास-स्थान बनाते हैं। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' निर्बल से वे लभ्य नहीं होते। बल प्रभु कृपा से ही प्राप्त होता है। प्रभु कृपा की प्राप्ति के लिये हम अपने मन को प्रभु के प्रति दे डालें। हम प्रभु के प्रति अपने मनों को देकर ही प्रभु को अपने लिये अनुग्रहात्मक बना पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु के प्रति अपने मनों को देकर हम प्रभु के अनुग्रह को प्राप्त करते हैं। प्रभु हमें उत्कृष्ट बल प्राप्त कराते हैं और हमारे में प्रभु का निवास होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु का पूरक तेज

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो। अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥

(१) हे **नेमानां वसो**=हम अधूरे, अल्पज्ञ व अल्पशक्तिमान् जीवों के **वसो**=वसानेवाले, हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **ते**=आपका **पूर्तम्**=हमारा पूरण करनेवाला तेज **अक्षिपत् नहि भुवत्**=हमारी आँखों को चुँधियानेवाला न हो। अपितु आपका यह तेज हमारे दर्शन-सामर्थ्य को बढ़ानेवाला हो। (२) **अथा**=अब आपके तेज से कुछ पूर्णता को प्राप्त करने पर **दुवः**=हम से की गई परिचर्याओं व उपासनाओं को **वनवसे**=आप सेवन करनेवाले हों। अर्थात् हम आपके उपासक बन पायें।

भावार्थ—हम अल्पज्ञ जीव प्रभु के तेज से अपने दर्शन-सामर्थ्य को बढ़ाकर, ठीक मार्ग पर चलते हुए, प्रभु के उपासक बनें।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

भारतः पुरुचेतनः

आग्निरंगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः। दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ १९ ॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रेणी प्रभु **आ अगामि**=स्तुतियों के द्वारा हमारे से जाना जाता है। जो अग्नि **भारतः**=सबका भरण करनेवाला है, **दिवोदासस्य वृत्रहा**=ज्ञान के उपासक पुरुष के वृत्र का विनाश करनेवाला है। जब हम स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान को प्राप्त करने में प्रवृत्त होते हैं, तो प्रभु हमारे वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करते हैं। **पुरुचेतनः**=अनन्त ज्ञानवाले वे प्रभु हैं। (२) ये प्रभु **सत्पतिः**=सज्जनों के रक्षक हैं। प्रभु का स्तवन ही हमारे जीवनों में सज्जनता का कारण बनता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन के होने पर प्रभु हमारे शरीरों का भरण करते हैं, मानस वासनाओं का विनाश करते हैं और हमारे ज्ञान का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

धन प्राप्ति व वासना विनाश

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना। वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० ॥

(१) **सः**=वे प्रभु **हि**=निश्चय से **विश्वा**=सब **पार्थिवा**=इस पृथिवी सम्बन्धी **रयिम्**=धनों को **अतिदाशत्**=अतिशयेन दें, पार्थिव धनों को वे प्रभु हमें जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये प्राप्त कराएँ। (२) ये प्रभु **महित्वना**=अपनी महिमा से **वन्वन्**=हमारे शत्रुओं का हिंसन करें। प्रभु कृपा से मैं **अवातः**=शत्रुओं से अनाक्रान्त होऊँ और **अस्तृतः**=अहिंसित होऊँ। शत्रुओं से अनाक्रान्त हुआ-हुआ ही तो मैं जीवनयात्रा में आगे बढ़ सकूँगा।

भावार्थ—प्रभु हमें जीवनयात्रा के लिए आवश्यक धनों को प्राप्त कराएँ और हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का हिंसन करें जिससे जीवनयात्रा ठीक से पूर्ण हो सके।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—निचृद् गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

पुराणा, परन्तु नया (वेदज्ञान)

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता। बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **सः**=वे आप **प्रत्नवत्**=अत्यन्त प्राचीन की तरह होते हुए भी **नवीयसा**=नवीन व अतिशयेन स्तुत्य **द्युम्नेन**=द्योतमान **संयता**=(संगच्छता) हमारे जीवन में संगत होते हुए **भानुना**=ज्ञान के प्रकाश से **बृहत् ततन्थ**=खूब ही हमारी शक्तियों का विस्तार करते हैं। (२) प्रभु से दिया जानेवाला यह वेदज्ञान अत्यन्त प्रचीन है। अत्यन्त प्राचीन होता हुआ भी यह नवीन-सा है 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'। यह ज्ञान खूब ही दीप्त है। हमारे जीवन में जब यह अनूदित होता है, तो खूब ही हमारी शक्तियों को बढ़ाता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिये अपने अजरामर काव्य वेद द्वारा ज्ञान देते हैं। यह ज्ञान हमारी सब शक्तियों के विकास का कारण होता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

स्तोम+यज्ञ (अर्च गाय च)

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया। अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥

(१) हे **सखायः**=मित्रो! **वः**=अपने **स्तोमम्**=स्तुतिसमूह को **च**=और **यज्ञम्**=यज्ञों को **धृष्णुया**=शत्रुओं के घर्षण के दृष्टिकोण से **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये **प्र**=(प्राप्त कराओ)। (२) **च**=और **वेधसे**=उस सृष्टि के विधाता प्रभु के लिये, **अर्च**=पूजा करो **गाय च**=और गुणों का गायन करो। यह प्रभु पूजन ही तुम्हें शत्रु धर्षण में समर्थ करेगा।

भावार्थ—हम स्तोमों व यज्ञों को अपनाएँ। प्रभु गुणगान करें और यज्ञों द्वारा प्रभु पूजन करें। इसी प्रकार हम शत्रुओं का धर्षण कर पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दूतः-हव्यवाहनः

स हि यो मनुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः। दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥

(१) **सः**=वह प्रभु **हि**=ही **मानुषा युगा**=मानव युग्यों में, पति-पत्नी में **सीदत्**=आसीन हो (सीदतु) **यः**=जो **होता**=सब जीवन-यज्ञ के साधनभूत पदार्थों का दाता है और **कविक्रतुः**=क्रान्तप्रज्ञ है। (२) वह निरतिशय ज्ञानवाला प्रभु **दूतः**=ज्ञान का संदेश देनेवाला है, **च**=और **हव्यवाहनः**=सब हव्य पदार्थों का देनेवाला है।

भावार्थ—प्रभु के तेज के अंश से युक्त हुए-हुए ही पति-पत्नी यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और अपने ज्ञान का वर्धन करनेवाले होते हैं। प्रभु ही हमें ज्ञान का सन्देश देते हैं और सब हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'मित्र, वरुण, आदित्य, मरुत् व रोदसी' से संपृक्त जीवन

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम्। वसो यक्षीह रोदसी॥ २४॥

(१) हे **वसो**=जीवन में उत्तम निवास को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **इह**=इस जीवन में **रोदसी यक्षि**=द्यावापृथिवी को, उत्तम मस्तिष्क व शरीर को हमारे साथ जोड़िये। (२) **ता**=उन **राजाना**=जीवन को दीप्त बनानेवाले **शुचिव्रता**=पवित्र व्रतोंवाले मित्रावरुणों को, स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओं को हमारे साथ संगत करिये। **आदित्यान्**=सब उत्तमताओं का आदान करनेवाले अदिति के पुत्रों को, अदीना देव माता के पुत्रों को, दिव्य गुणों को हमारे साथ जोड़िये तथा **मारुतं गणम्**=इस प्राणों के समूह को हमारे साथ जोड़नेवाले होइये। हम प्राणायाम द्वारा इन प्राणों की शक्ति को बढ़ा पायें।

भावार्थ—प्रभु हमारे जीवन में स्नेह व निर्द्वेषता के द्वारा पवित्र व्रतों को प्राप्त कराएँ। हमें दिव्य गुणों व प्राणशक्ति को देनेवाले हों, हमारे मस्तिष्क व शरीर को उत्तम बनाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वस्वी संदृष्टिः

वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय। ऊर्जो नपादमृतस्य॥ २५॥

(१) हे **ऊर्जो नपात्**=शक्ति को न गिरने देनेवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **अमृतस्य**=मृत्यु से बचानेवाले (न मृतं यस्मात्) **ते**=आपकी **संदृष्टिः**=संदीप्ति **वस्वी**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाली है। आपकी इसी दीप्ति को प्राप्त करके हमारा जीवन उत्तम बनता है। (२) यह आपकी संदृष्टि **मर्त्याय**=मनुष्य के लिये **इषयते**=प्रेरणा को देने की कामनावाली होती है। इस आपकी दीप्ति से उत्तम प्रेरणा को प्राप्त करके मार्ग पर आगे बढ़ते हुए हम अपने जीवनों को उत्तम बना

पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु की संदृष्टि (संदीप्ति) हमारे निवास को उत्तम बनाती है, यह हमें जीवन में उन्नति के लिये उत्कृष्ट प्रेरणा प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

श्रेष्ठः सुरेक्णाः

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः। मर्तं आनाश सुवृक्तिम्॥ २६॥

(१) हे प्रभो! **क्रत्वा**=यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के द्वारा **त्वा**=आपको **वन्वन्**=सम्भजन (उपासन) करता हुआ, **दाः**=दानशील पुरुष **अद्य**=आज **श्रेष्ठः अस्तु**=प्रशस्त (उत्तम) जीवनवाला हो। यह **सुरेक्णाः**=उत्तम धनवाला है। धन के कारण यह विलास में न फँसकर यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करनेवाला बने। (२) **मर्तः**=यह कर्मों द्वारा आपकी उपासना करनेवाला मनुष्य **सुवृक्तिं आनाश**=शोभनतया पापवर्जन को व्याप्त करता है। वस्तुतः यह कर्मों में लगे रहना उनके जीवन को शुद्ध बनाये रखता है, अकर्मण्यता ही पाप का कारण बनती है। यह कर्मशील पुरुष सदा सुमार्ग से ही धन का अर्जन करता है।

भावार्थ—यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के द्वारा प्रभु का सम्भजन करनेवाला मनुष्य दानशील होता है, यह श्रेष्ठ जीवनवाला व उत्तम मार्ग से धन को कमानेवाला होता है। यह पापों से बचा रहता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्चीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तरन्तः-वन्वन्तः

ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः। तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः॥ २७॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **ते**=वे **ते**=आपके ही हैं, जो कि **त्वा ऊताः**=आपसे रक्षित हुए-हुए, **इषयन्तः**=आपकी प्रेरणा को प्राप्त करने की कामनावाले होते हुए **विश्वं आयुः**=सम्पूर्ण जीवन में **अर्यः**=आक्रमण करनेवाली (अभिगंत्रीः) **अरातीः**=शत्रुसेनाओं को **तरन्तः**=तैर जाते हैं। (२) प्रभु प्रेरणा को सुनते हुए ये शक्ति **अर्यः**=आक्रमणकारी **अरातीः**=शत्रु-सेनाओं को **वन्वन्तः**=हिंसित करते हैं। सदा शत्रुओं का शातन करते हुए ये व्यक्ति आगे बढ़ते चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु भक्त वे हैं—(क) जो प्रभु के बन जाएँ, (ख) प्रभु से रक्षित हुए हुए प्रभु की प्रेरणा को सुनें, (ग) प्रभु प्रेरणा के द्वारा वासनारूप शत्रुओं का हिंसन कर दें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शत्रु विनाश व धन प्राप्ति

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम्। अग्निर्नो वनते रयिम्॥ २८॥

(१) **अग्निः**=वह अग्रेणी प्रभु **तिग्मेन शोचिषा**=अपनी तीव्र ज्ञानदीप्ति से सब **अत्रिणम्**=हमें खा जानेवाले काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं को **नियासत्**=(निहतु) नष्ट करें। प्रभु ने ही तो काम को भस्म करना है। (२) इन काम आदि शत्रुओं को नष्ट करके अब वे **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **नः**=हमारे लिये **रयिं वनते**=धनों को देते हैं। 'काम-क्रोध-लोभ' यदि हमारे 'स्वास्थ्य, शान्ति व ज्ञानदीप्ति' रूप धन को नष्ट करते हैं, तो इनका विनाश हमें पुनः 'स्वास्थ्य, शान्ति व दीप्ति' रूप धनों को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं का नाश करते हैं और 'स्वास्थ्य, शान्ति

व दीप्ति' रूप धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

जहि रक्षांसि सुक्रतो

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे। जहि रक्षांसि सुक्रतो॥ २९॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ व सर्वधन, **विचर्षणे**=सब के द्रष्टा, सबका ध्यान करनेवाले प्रभो! **सुवीरम्**=शोभन वीर सन्तानोंवाले **रयिम्**=धन को **आभर**=हमें सर्वथा प्राप्त कराइये। सामान्यतः धनाधिकृत ऐश्वर्य में पलने के कारण आरामपसन्दगी को प्राप्त कराके सन्तानों के जीवनों को विगाड़ देता है। हमारा धन 'सुवीर' हो, वीर सन्तानोंवाला हो। (२) हे **सुक्रतो**=शोभन कर्म, शोभन प्रज्ञान व शोभन शक्तिवाले प्रभो! आप **रक्षांसि जहि**=राक्षसीभावों को विनष्ट करिये। 'क्रतु' ही हमें इन आसुरभावों को जीवन में समर्थ करता है।

भावार्थ—हमारा धन वीर सन्तानोंवाला हो तथा हम राक्षसीभावों को विनष्ट करनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञान व पाप-निराकरण

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः। रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे॥ ३०॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमें **अंहसः**=पाप से **पाहि**=बचाइये। आप हमें ज्ञान देकर शुद्ध जीवनवाला बनाइये। (२) हे **ब्रह्मणस्कवे**=इन ज्ञान की वाणियों के शब्दयितः प्रभो! आप **नः**=हमें **अघायतः**=हमारे अघ की कामनावाले, पाप व कष्ट की कामनावाले, सब शत्रुओं से **रक्षा**=रक्षित करिये। आपकी इन ज्ञान वाणियों को सुनते हुए हम सब पापों से ऊपर उठ जाएँ।

भावार्थ—ज्ञान देकर वे सर्वत्र प्रभु हमें पापों से बचाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'दुरेव मर्त व पाप' से रक्षण

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति। तस्मान्नः पाह्यंहसः॥ ३१॥

(१) हे **अग्ने**=शत्रुओं को भस्म करनेवाले प्रभो! **यः**=जो **दुरेवः**=दुष्ट अभिप्रायवाला **मर्तः**=मनुष्य **नः**=हमें **वधाय**=मारण के साधनभूत आयुधों के लिये **आदाशति**=सब प्रकार से देता है, अर्थात् जो हमें अस्त्रों द्वारा मारने की कामना करता है, **तस्मात्**=उससे **नः पाहि**=हमें बचाइये। (२) **अंहसः**=(नः पाहि) सब पापों से भी हमें बचाइये।

भावार्थ—प्रभु हमें दुष्टाभिप्रायवाले मनुष्यों से तथा पापों से बचाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दुष्कृतं जिह्वया परिबाधस्व

त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम्। मर्तो यो नो जिघांसति॥ ३२॥

(१) हे **देव**=सब शत्रुओं को जीतने की कामनावाले प्रभो! **त्वम्**=आप **तम्**=उस **दुष्कृतम्**=पापाचरण करनेवाले मनुष्य को **जिह्वया**=जिह्वा से दिये जानेवाले ज्ञानोपदेश के द्वारा **परिबाधस्व**=बाधित करिये, उसे पाप करने से रोकिये। (२) उस मनुष्य को अशुभ कर्मों से रोकिये **यः मर्तः**=जो मनुष्य **नः**=हमें **जिघांसति**=मारने की कामना करता है। ज्ञानोपदेश द्वारा

इसकी इस जिघांसा वृत्ति को दूर करिये।

भावार्थ—प्रभु दुष्कृत पुरुष को भी ज्ञानोपदेश प्राप्त कराके अशुभ कर्मों से रोकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नी त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शर्म+वसु (सप्रथः शर्म, वरेण्यं वसु)

भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य। अग्ने वरेण्यं वसु॥ ३३॥

(१) हे **सहन्त्य**=शत्रुओं का अभिभव करनेवालों में उत्तम प्रभो! आप **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले के लिये **सप्रथः शर्म**=दिन प्रतिदिन विस्तारवाले सुख को **यच्छ**=दीजिये। शत्रुओं के अभिभव द्वारा ही शक्ति का रक्षण होता है। शक्तिरक्षण से ही सुख-वृद्धि होती है। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **वरेण्यं वसु**=वरने योग्य धनों को प्राप्त कराइये, जो धन विलास का कारण बनता है, वह कभी वरेण्य नहीं होता।

भावार्थ—हे प्रभो! आप शक्ति को अपने में भरनेवाले के लिये विस्मृत होते हुए सुख को तथा वरणीय वसु (धन) को दीजिये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्रविणस्युः-आहुतः

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः॥ ३४॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु! **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जङ्घनत्**=विनष्ट करते हैं। वस्तुतः प्रभु की उपस्थिति में कामदेव का तो विध्वंस हो जाता है। वे प्रभु वृत्रों का विनाश करके हमारे लिये **द्रविणस्युः**=द्रविणों, धनों को, ज्ञानधन को चाहते हैं। (२) हमारे लिये ज्ञान को प्राप्त करानेवाले वे प्रभु **विपन्यया**=विशिष्ट स्तुति के द्वारा **समिद्धः**=हृदयदेश समिद्ध किये जाते हैं। **शुक्रः**=वे प्रभु दीप्त हैं। हमारे हृदयों में समिद्ध होने पर उन हृदयों को दीप्त करनेवाले हैं। **आहुतः**=(आ हुतं यस्या) समन्तात् प्रभु का होतृत्व व्यक्त हो रहा है। सर्वत्र जीवहित के लिये प्रभु के दान विद्यमान हैं। इन सब वस्तुओं का ठीक प्रयोग करते हुए हम जीवनयात्रा को पूर्ण करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करते हैं और हमारे लिये ज्ञानधनों को प्राप्त कराते हैं। विशिष्ट स्तुति के द्वारा हृदय में समिद्ध हुए-हुए वे प्रभु हमें दीप्त करते हैं। इन प्रभु की ही दान-क्रियाएँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'गर्भे मातुः, पितुः पिता'

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे। सीदन्नृतस्य योनिमा॥ ३५॥

(१) ('द्यौः पिता, पृथिवी माता') वे प्रभु **मातुः गर्भे**=इस मातृतुल्य पृथिवी के मध्य में है। इस प्रभु की सत्ता के कारण ही इस पृथ्वी में सर्वत्र पुण्य गन्धन्दी उपस्थिति है 'पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च'। वे **पितुः पिता**=द्युलोक रूप पिता के भी पिता (पालक) हैं। आकाश में 'शब्द रूप से इन्हीं का निवास है' 'शब्दः खे'। **अक्षरे**=विनाशी वेद ज्ञान में **विदिद्युतानः**=विशिष्टरूप से दीप्त हो रहे हैं 'सर्वे वेदाः यत् पदं आमनन्ति'। सब वेद के शब्दों में इस प्रभु का ही प्रतिपादन हो रहा है। (२) ये प्रभु **ऋतस्य योनिं आसीदन्**=ऋत के मूल उत्पत्ति-स्थान में स्थित होते हैं। वस्तुतः ऋत को जन्म देनेवाले ये प्रभु ही हैं। 'ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोध्यजायत'। इस ऋत

को अपनाते हुए हम भी अपने हृदयों को प्रभु का अधिष्ठान बना पाते हैं।

भावार्थ—यह पृथिवी माता तथा द्यौः पिता तुल्य हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रजावद् ब्रह्म

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे। अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३६ ॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ, **विचर्षणे**=विशेषरूप से सब प्रजाओं के द्रष्टा, सबका ध्यान करनेवाले प्रभो! **प्रजावत्**=प्रकृष्ट विकासवाले **ब्रह्म**=ज्ञान को **आभर**=हमें सर्वथा प्राप्त कराइये। उस ज्ञान को दीजिये जो हमारे सब प्रकार से विकास का कारण बने। (२) हे **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! हम आपके अनुग्रह से उस ज्ञान को प्राप्त करें, **यत्**=जो **दिवि दीदयत्**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में दीप्ति का कारण होता है। जैसे आकाशस्थ सूर्य सर्वत्र प्रकाश व प्राणशक्ति का सञ्चार करता है, इसी प्रकार ये प्रभु हमारे मस्तिष्क में ज्ञान सूर्य को उदित करके हमारे जीवनों को प्रकाशमय व विकसित शक्तियोंवाला बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें उस ज्ञान को प्राप्त कराएँ जो कि हमारे लिये सब शक्तियों के विकास का कारण बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'रण्वसन्दृक्' प्रभु

उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत। अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥

(१) हे **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! **रण्वसन्दृशम्**=रमणीय दर्शनवाले आपके **उप**=समीप स्थित होते हुए हम **गिरः ससृज्महे**=ज्ञान की वाणियों को उत्पन्न करते हैं। आपकी उपासना हमारे ज्ञानवर्धन का कारण बनती है। (२) हे **सहस्कृत**=हमारे में इस ज्ञान के द्वारा शत्रु-मर्षक बल को उत्पन्न करनेवाले प्रभो! हम आप से दिये गये इस ज्ञान के द्वारा ही **प्रयस्वन्तः**=प्रकृष्ट उद्योगोंवाले होते हैं। ज्ञान हमारे जीवनों व प्रयत्नों को पवित्र करता है।

भावार्थ—उस अग्नि की उपासना करते हुए हम उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करते हैं। इस ज्ञान से प्रकृष्ट प्रयत्नोंवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उपासना से शान्ति की प्राप्ति

उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम्। अग्ने हिरण्यसंदृश ॥ ३८ ॥

(१) हे **अग्ने**=प्रकाशस्वरूप, सब बुराइयों को दग्ध करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **हिरण्यसंदृशः**=हितरमणीय तेजवाले अथवा हिरण्य (स्वर्ण) की तरह रोचमान तेजवाले **घृणेः**=दीप्त **ते**=आपके **शर्म**=शरण को **उप अगन्म**=समीपता से इस प्रकार प्राप्त हों, **इव**=जैसे कि गर्मी से पीड़ित मनुष्य **छायाम्**=छाया को प्राप्त होते हैं। (२) प्रभु की उपासना हमारे लिये इसी प्रकार शान्ति को देनेवाली हो, जैसे कि गर्मी से पीड़ित पुरुष को वृक्ष की छाया शान्ति को देनेवाली होती है। उपासना का सर्वमहान् लाभ यह व्याकुलता का न होना ही है।

भावार्थ—प्रभु की शरण क्लेश सन्तप्त पुरुषों के लिये शान्ति को देनेवाली होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आसुर पुरियों का विदारण

य उग्रइव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः। अग्ने पुरो रुरोजिथ॥ ३९॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **यः**=जो आप **शर्यहा**=(शर्य-हा) वाणों से हनन करनेवाले शिकारी की **इव**=तरह **उग्रः**=उद्गूर्ण बलवाले हैं। **वंसगः**=वननीय (सुन्दर) गतिवाले वृषभ की तरह **तिग्मशृङ्गः**=अति तीक्ष्ण शृंगोंवाले हैं। अर्थात् जैसे एक वृषभ सींगों द्वारा मार्ग में विघ्नभूत चीजों को दूर करता हुआ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार आप उपासक के मार्ग में विघ्नभूत बातों को दूर करनेवाले हैं। (२) हे अग्ने! आप **पुरः**=शत्रु पुरियों को **रुरोजिथ**=भग्न करते हो। 'काम' नामक असुर इन्द्रियों में अपनी नगरी बनता है, इससे इन्द्रियों की शक्ति क्षीण होती है। क्रोध मन में अपना दुर्ग बनाकर मानस शान्ति को विनष्ट करता है। लोभ बुद्धि में स्थित होकर बुद्धि को समाप्त कर देता है। प्रभु इन असुरों की इन तीनों पुरियों को समाप्त करते हैं। उपासना का यही लाभ है।

भावार्थ—प्रभु तेजस्वी शिकारी के समान शरों द्वारा काम, क्रोध व लोभ रूप पशुओं का संहार करते हैं। सुन्दर गतिवाले वृषभ के समान प्रभु इन सब मार्ग विघ्नों को दूर करते हैं। आसुर पुरियों का विदारण करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृद् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

खादिनं-अग्निं-स्वध्वरम्

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति। विशामग्निं स्वध्वरम्॥ ४०॥

(१) (न=संप्रति) **यम्**=जिस प्रभु को **न**=अब **जातं शिशुं न**=उत्पन्न हुए-हुए बालक की तरह **हस्ते**=हाथ में **बिभ्रति**=धारण करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार बालक को प्रेम से धारण करते हैं, इसी प्रकार प्रभु को भी आदरयुक्त प्रीति से धारण करने का प्रयत्न करते हैं। (२) उस प्रभु को धारण करते हैं जो कि **खादिनम्**=(भक्षक) सब शत्रुओं को खा जानेवाले हैं। **विशां अग्निम्**=सब प्रजाओं को, शत्रु-विनाश द्वारा, आगे ले चलनेवाले हैं। **स्वध्वरम्**=और हमारे जीवनों में उत्तम हिंसारहित कर्मों को सिद्ध करनेवाले हैं। प्रभु कृपा से ही जीवन में सब यज्ञ चलते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु को हृदयों में आदरपूर्वक इस प्रकार धारण करें, जैसे कि उत्पन्न बालक को प्रीतिपूर्वक हाथ में उठाते हैं। वे प्रभु शत्रुओं का हिंसन करनेवाले हैं। शत्रुओं के हिंसन के द्वारा हमें आगे ले चलनेवाले हैं और उत्तम हिंसा रहित यज्ञों को सिद्ध करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वसुवित्तम' देव

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम्। आ स्वे योनौ नि षीदतु॥ ४१॥

(१) **देवम्**=उस प्रकाशमय, दिव्यगुणों के पुञ्ज, **वसुवित्तमम्**=अधिक अधिक वसुओं के प्राप्त करानेवाले प्रभु को **प्रभरत**=प्रकर्षेण हृदयों में धारण करो। **देववीतये**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये उस देव का धारण ठीक ही है। (२) हमारा हृदय प्रभु का निवास-स्थान बने। वे प्रभु **स्वे योनौ**=अपने इस उपासक हृदय रूप गृह में **आ निषीदतु**=सर्वथा आसीन हों। हमारा हृदय प्रभु का अधिष्ठान बने। प्रभु के वहाँ स्थित होने पर ही वासनाओं का दहन होकर दिव्यगुणों का जन्म होगा।

भावार्थ—प्रभु देव हैं, वसुवित्तम हैं। हम अपने हृदयों को प्रभु का आधार बनाएँ और इस

प्रकार वासनादहन करके दिव्य गुणों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नी त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु को हृदय में स्थापित करना

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम्। स्योन आ गृहपतिम्॥ ४२॥

(१) **आजातम्**=समन्तात् प्रादुर्भूत, जिसकी महिमा सब ओर प्रकट हो रही है, उस **प्रियम्**=प्रीति को उत्पन्न करनेवाले **अतिथिम्**=हमारे हित के लिये निरन्तर गतिशील, **गृहपतिम्**=इस शरीर रूप गृह के रक्षक प्रभु को **जातवेदसि**=उत्पन्न हुआ है ज्ञान जिसमें उस **स्योने**=आनन्दमय हृदय में **आ शिशीत**=(शी) स्थापित करो। (२) हृदय को स्वाध्याय के द्वारा ज्ञानोज्वल बनाएँ, ध्यान के द्वारा प्रसादयुक्त करें। तभी यह हृदय प्रभु का अधिष्ठान बनने के योग्य होता है। हृदयस्थ प्रभु हमारे शत्रुओं का विनाश करके हमारे इस शरीर गृह को सुरक्षित करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'साधवः अश्वासः'

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्ति मन्यवे॥ ४३॥

(१) **अग्ने**=हे परमात्मन्! **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **ये**=जो **तव**=आपके **हि**=निश्चय से **साधवः**=जीवनयात्रा में सब कार्यों को सिद्ध करनेवाले **अश्वासः**=इन्द्रियाश्व हैं, उन्हें **युक्ष्व**=हमारे इस शरीररथ में जोतिये। (२) आपके अनुग्रह से हमारा शरीर-रथ उन इन्द्रियाश्वों से युक्त हो जो हमें **मन्यवे**=ज्ञान प्राप्ति के लिये **अरम्**=खूब ही **वहन्ति**=ले चलते हैं। हमारी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों का ग्रहण करती हुई ज्ञानवृद्धि का साधन बनें।

भावार्थ—हे प्रभो! हमें उन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराइये जो हमारी ज्ञानवृद्धि का कारण बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नी त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वीतये, सोमपीतये

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये। आ देवान्त्सोमपीतये॥ ४४॥

(१) हे प्रभो! **नः अच्छा**=हमारी ओर **आयाहि**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होइये। हमें **प्रयांसि अभिः**=सात्त्विक अन्नों की ओर **आवह**=ले चलिए। हम सात्त्विक अन्नों का ही सेवन करें। **वीतये**=अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिये यह सात्त्विक अन्नों का सेवन आवश्यक ही है 'आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'। (२) हमें **देवान् आ**=दिव्यगुणों को प्राप्त कराइये जिससे हम **सोमपीतये**=सोम का शरीर में पान कर सकें। शरीर में सोम का रक्षण आवश्यक ही है। और यह रक्षण तभी होता है जब हम आसुरभावों से दूर हों और दैवीवृत्तियों के समीप हों।

भावार्थ—हम प्रभु का उपासन करें, सात्त्विक अन्नों का सेवन करें जिससे अज्ञानान्धकार का ध्वंस हो। अपने अन्दर दिव्य गुणों का धारण करते हुये आसुरभावों से ऊपर उठें जिससे सोम का (वीर्य का) रक्षण कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दीप्त प्रभु हमें भी दीप्त करें

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्। शोचा वि भाह्यजर॥ ४५॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी **भारत**=हम सबका भरण करनेवाले प्रभो! आप **अजस्रेण**=निरन्तर

द्युमत्=खूब ज्योति के साथ **दविद्युतत्**=ज्ञान दीप्ति से द्योतमान होते हुए **उत् शोच**=खूब ही दीप्त होइये। (२) हे **अजर**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! आप **विभाहि**=विशिष्ट रूप से हमारे हृदयों को दीप्त करिये (अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र भातिः)।

भावार्थ—प्रभु अनुपम ज्योति से दीप्त हैं। वे हमारे अन्तःकरणों को दीप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अग्निमीडीत अध्वरे

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत्॥ ४६॥

(१) **यः मर्तः**=जो मनुष्य **वीती**=अज्ञानान्धकार के ध्वंस के हेतु **देवम्**=उस प्रकाशमय प्रभु को **दुवस्येत्**=पूजित करे, उस प्रभु की पूजने की कामना करे, वह **अध्वरे**=हिंसारहित कर्मोंवाले जीवन यज्ञ में **हविष्मान्**=प्रशस्त हविवाला होकर **अग्निं ईडीत**=उस अग्रेणी प्रभु का स्तवन करे। प्रभु का स्तवन यज्ञों द्वारा ही होता है। यज्ञ ही प्रभु को दृश्य स्तवन है। (२) उस **होतारम्**=सब कुछ देनेवाले, **सत्ययजम्**=सत्य का हमारे साथ संगमन करनेवाले प्रभु को **रोदस्योः उत्तानहस्तः**=द्यावापृथिवी में, मस्तिष्क व शरीर में, ऊपर हाथवाला, अर्थात् मस्तिष्क व शरीर के दृष्टिकोण से उन्नत हुआ-हुआ व्यक्ति **नमसा**=नमन के द्वारा **विवासेत्**=पूजा करे। प्रभु का पूजन यही है कि हम शरीर को शक्तिशाली बनाएँ, मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त करें और नमन की वृत्तिवाले हों।

भावार्थ—हम त्याग की वृत्तिवाले बनकर प्रभु का पूजन करते हैं। प्रभु का पुजारी वह है जो शरीर को शक्तिशाली और मस्तिष्क को ज्ञान-सम्पन्न बनाकर नम्रता का धारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

उक्षणः ऋषभासः वशाः

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि। ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत॥ ४७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **ते**=आपकी प्राप्ति के लिये **ऋचा**=ऋचाओं के साथ, विज्ञानपूर्वक अथवा 'ऋच् स्तुतौ' स्तुतिपूर्वक **हृदातष्टम्**=हृदय से निर्मित, अर्थात् श्रद्धापूर्वक की गई **हविः**=हवि को त्यागपूर्वक अदन को **भरामसि**=धारण करते हैं। विज्ञान और श्रद्धा से किये गये यज्ञरूप कर्म ही प्रभु प्राप्ति का साधन बनते हैं। (२) **ते**=वे विज्ञान और श्रद्धापूर्वक हवि को अपनानेवाले लोग **ते**=वस्तुतः आपके हैं। ये लोग **उक्षणः**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले बनें, **ऋषभासः**=श्रेष्ठ व गतिशील हों ('ऋष गतौ') **उत**=और **वशाः**=अपनी इन्द्रियों को पूर्णरूप से वश में करनेवाले **भवन्तु**=हों। शक्ति का अपने में सेचन करके ही हम गतिशील बनते हैं। यह गतिशीलता हमें इन्द्रियों के वशीकरण में समर्थ करती है।

भावार्थ—'ज्ञान व श्रद्धापूर्वक हम यज्ञों को करें' यही प्रभु प्राप्ति का मार्ग है। ये प्रभु के व्यक्ति (क) अपने में शक्ति का सेचन करते हैं, (ख) ये गतिशील होते हैं और (ग) इन्द्रियों को वश में करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

वसुधारण व रक्षो विनाश

अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम्। येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना॥ ४८॥

(१) **देवासः**=देववृत्ति के व्यक्ति **अग्रियम्**=मुख्य **वृत्रहन्तमम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को अधिक से अधिक विनष्ट करनेवाले **अग्निम्**=अग्रेणी प्रभु को **इन्धते**=अपने हृदय देश में समिद्ध करते हैं। उस देव के दर्शन के लिये देव बनना आवश्यक ही है। (२) उस प्रभु को ये समिद्ध करते हैं, **येन**=जिससे **वसूनि**=सब वसु (धन) **आभृता**=समन्तात् धारण किये जाते हैं। प्रभु के दर्शन से जीवन सब वसुओं से सम्पन्न बनता है। जिस **वाजिना**=शक्तिशाली प्रभु से **रक्षांसि तृढा**=सब राक्षसी भाव हिंसित होते हैं। प्रभु वसुओं को धारण कराते हैं, राक्षसी भावों को विनष्ट करते हैं। राक्षसीभाव वसुओं के विरोधी तत्त्व हैं। इन राक्षसी भावों से वसुओं का विनाश होता है।

भावार्थ—देववृत्ति के बनते हुए हम प्रभु को हृदयदेश में देखने का प्रयत्न करें। प्रभु हमें वसुओं को प्राप्त कराके उत्तम निवासवाला बनायेंगे और हमारे राक्षसीभावों का विनाश करेंगे।

अगले सूक्त में भरद्वाज बार्हस्पत्य 'इन्द्र' नाम से प्रभु का स्मरण करते हैं—

अथ चतुर्थाष्टके षष्ठोऽध्यायः

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्रियसमूह की वासना से मुक्ति

पिबा सोमम॒भि यमु॑ग्र तर्द॑ ऊ॒र्वं गव्यं॒ महि॑ गृणा॒न इ॑न्द्र।
वि यो धृ॑ष्णो॒ वधि॑षो वज्रहस्त॒ विश्वा॑ वृ॒त्रम॑मि॒त्रिया॒ शवो॑भिः ॥ १ ॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **उग्रः**=तेजस्वी आप **महि गृणानः**=खूब स्तवन किये जाते हुए **यम्**=जिस सोम का **अभि**=लक्ष्य करके **गव्यं ऊर्वम्**=इन्द्रियों सम्बन्धी समूह को **तर्दः**=(to set free) वासनाओं से मुक्त करते हो उस **सोमम्**=सोम का **पिब**=पान करिये, शरीर में रक्षण करिये। प्रभु स्तवन से सोम वासनाओं का विनाश होता है और इन्द्रिय समूह वासनाओं के आवरण से बचा रहता है और इस प्रकार शरीर में सोम के रक्षण सम्भव होता है। (२) **यः**=जो आप हे **धृष्णो**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले, **वज्रहस्त**=वज्र हाथ में लिए हुए प्रभो, **विश्वा अमित्रिया**=सब हमारे शत्रुभूत **वृत्रम्**=ज्ञान के आवरणभूत काम-क्रोध आदि को **शवोभिः**=बलों के द्वारा **विवधिषः**=विशिष्टरूप से नष्ट कर देते हैं, वे आप सोम का पान (रक्षण) कीजिए।

भावार्थ—प्रभु इन्द्रियसमूह को वासनामुक्त करके हमें सोम के रक्षण के योग्य बनाते हैं, प्रभु अपनी शक्ति से इन अमित्रभूत वासनाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऋजीषी तरुत्रः

स ईं॑ पाहि॒ य ऋ॑जी॒षी तरु॑त्रो॒ यः शिप्र॑वान्वृष॒भो यो म॑ती॒नाम्।
यो गो॑त्र॒भिद्व॑ज्र॒भृद्यो ह॑रि॒ष्ठाः स इ॑न्द्र चि॒त्राँ अ॒भि तृ॑न्धि॒ वाजा॑न् ॥ २ ॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो आप **ऋजीषी**=(ऋतु+इष) **ऋजुता**=सरलता की प्रेरणा देनेवाले हैं और इस प्रकार **तरुत्रः**=वासनाओं से तरानेवाले हैं, **यः**=जो आप **शिप्रवान्**=शोभन हनु व नासिकावाले हैं, अर्थात् हमें उत्तम सात्त्विक भोजन को चबाकर करनेवाला बनाते हैं (हनु) तथा

प्राणायाम की साधना में प्रवृत्त (नासिका) करते हैं **यः**=जो आप **मतीनां वृषभः**=विचारशील पुरुषों पर सुखों का वर्षण करनेवाले हैं, **सः**=वे आप **ईम्**=निश्चय से **पाहि**=इस सोम का रक्षण कीजिए। वस्तुतः सोमरक्षण के लिए आवश्यक है कि—(क) हम ऋजुता से चलें, छलछिद्र को छोड़कर चलें (ऋजीषी), (ख) वासनाओं को तरें (नरुत्रः), (ग) सात्त्विक भोजन चबाकर खाएँ तथा (घ) प्राणायाम करें (शिप्रवान्) (ङ) बुद्धि के सम्पादन में प्रवृत्त हों। (२) **सः**=जो आप **गोत्रभिद्**=अविद्या-पर्वत का विदारण करनेवाले हैं, **वज्रभृत्**=शत्रु-विनाश के लिए वज्र को धारण किये हुए हैं। **यः**=जो आप **हरिष्ठाः**=सब इन्द्रियाश्वों के अधिष्ठाता हैं। **सः**=वे आप, हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमान् प्रभो! **चित्रान्**=अद्भुत **वाजान्**=शक्तियों को **अभितृन्धि**=हमारे लिये प्रकाशित करिए। हम आपके अनुग्रह से खूब शक्ति-सम्पन्न बनें।

भावार्थ—प्रभु ऋजु मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए हमारे सोम का रक्षण करते हैं। ये प्रभु अविद्या का नाश करते हुए हमारे लिये अद्भुत शक्तियों का प्रकाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आविः सूर्यं कृणुहि

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि॥ ३॥

(१) प्रभु जीव को प्रेरणा देते हैं—**एवा**=गतिशीलता के द्वारा (इ गतौ) **पाहि**=तू सोम का रक्षण कर। क्रियाओं में लगे रहने से तू वासनाओं से बचेगा और सोम का रक्षण कर पाएगा। यह सुरक्षित सोम **त्वा प्रत्नथा मन्दतु**=तुझे सदा की तरह आनन्दित करे। सोमरक्षण से आनन्द का अनुभव तो होता ही है। **ब्रह्म श्रुधि**=तू सदा ज्ञान का श्रवण कर। **उत**=और **गीर्भिः**=इन ज्ञान की वाणियों से **वावृधस्व**=वृद्धि को प्राप्त हो। (२) इन ज्ञान की वाणियों के श्रवण से ज्ञान वृद्धि के द्वारा तू **सूर्यं आविः कृणुहि**=अपने जीवन ज्ञान के सूर्य प्रभु को प्रकट कर और **इषः**=प्रेरणाओं की तू **पीपिहि**=बढ़ानेवाला हो, अर्थात् प्रभु प्रेरणा को अधिकाधिक सुननेवाला हो। इस प्रेरणा से प्रेरित हुआ-हुआ तू **शत्रून् जहि**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट कर और **गाः**=इन इन्द्रियों को **अभितृन्धि**=सब वासनाओं से मुक्त करके प्रकाशित कर।

भावार्थ—सोमरक्षण ही वास्तविक आनन्द की प्राप्ति का साधन है। इसी से प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है और प्रभु प्रेरणा में चलते हुए हम विजयी बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुरक्षित सोम हमें कैसा बनाएगा?

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम्॥ ४॥

(१) हे **स्वधावः**=आत्मधारण शक्तिवाले **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **इमे**=ये **मदाः**=उल्लास के जनक **पीताः**=शरीर में पान किये गये हुए **ते**=वे सोम **त्वा**=तुझे **बृहत्**=खूब ही **द्युमन्तम्**=ज्योतिर्मय रूपवाले को **उक्षयन्त**=सिक्त करें। सोमकणों से तेरा अंग-प्रत्यंग प्राप्त हो जाए। (२) **मत्सरासः**=आनन्द का संचार करनेवाले ये सोम **जर्हृषन्त**=तुझे आनन्दित करें। जो तू **महाम्**=महान् बना है। **अनूनम्**=न्यूताओं से रहित हुआ है। **तवसम्**=बलवान् बना है। **विभूतिम्**=विशिष्ट ऐश्वर्यवाला हुआ है (वि-भूति) और **प्रसाहम्**=शत्रुओं का विशेषरूप से कुचलनेवाला हुआ है।

भावार्थ—सोम, शरीर में पिया जाकर, हमें ज्योतिर्मय जीवनवाला आनन्दयुक्त, बढ़ा हुआ व विजयी बनाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्यं उषसं अवासयः

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत्।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात्॥ ५ ॥

(१) **येभिः**=जिन सोमकणों के द्वारा **मन्दसानः**=आनन्द का अनुभव करता हुआ तू **सूर्यम्**=ज्ञान के सूर्य को तथा **उषसम्**=दोषदहन को **अवासयः**=अपने में बसाता है। **दृढानि**=दृढ़ शत्रु के दुर्गों का **अपदर्द्रत्**=विदारण करता है। (२) **गाः परिसन्तम्**=इन्द्रियों के चारों ओर होते हुए, अर्थात् इन्द्रियों को घेर लेनेवाले **महाम्**=महान् **अद्रिम्**=अविद्या पर्वत को **नुत्थाः**=तू परे ढकेलता है। उस अविद्या पर्वत को तू परे ढकेलता है, जो कि **स्वात् सदसः परि अच्युतम्**=अपने स्थान से बड़ी कठिनता से हिलाया जाता है, अर्थात् बड़ा दृढ़ है।

भावार्थ—सोमरक्षण से (क) आनन्द की प्राप्ति होती है, (ख) ज्ञानसूर्य का उदय होता है, (ग) दोषों का दहन होता है, (घ) अविद्या पर्वत हिल जाते हैं, (ङ) शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों का विदारण हो जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासनाओं से इन्द्रियों का मोचन

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान्॥ ६ ॥

(१) हे प्रभो! आप **तव क्रत्वा**=अपने प्रज्ञान के द्वारा, **तव**=अपने **दंसनाभिः**=कर्मों के द्वारा तथा **शच्या**=सामर्थ्य से **आमासु**=हमारी अपरिपक्व बुद्धियों में **तत्**=उस **पक्वम्**=परिपक्व ज्ञान को **निदीधः**=स्थापित करते हो। इस ज्ञान के द्वारा ही आप हमारी बुद्धियों को परिपक्व करते हैं। (२) **उस्रियाभ्यः**=इन इन्द्रियरूप गौओं के लिये **दृढा**=बड़े दृढ़ भी **दुरः**=द्वारों को **और्णोः**=खोल देते हैं और **ऊर्वात्**=इस वासना समूह के बाड़े से **गाः**=इन्द्रियरूप गौओं को **वि असृजः**=बाहर करते हैं और इस प्रकार **अंगिरस्वान्**=हमें उत्कृष्ट ज्ञानवाला बनाते हैं (अगि गतौ)-अंगारों की तरह हमारा ज्ञान दीप्त होता है और उसमें सब अशुभ कर्म भस्म हो जाते हैं। वासनाओं का एक दुर्ग है, प्रभु उसके दृढ़ द्वारों को खोलकर हमारी इन्द्रियरूप गौवों को उस दुर्ग से मुक्त करते हैं और इस प्रकार हम उन गौवों के द्वारा ज्ञानदुग्ध को पीकर 'अंगिरस्' बन पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपने प्रज्ञान कर्म व सामर्थ्य से हमारी अपरिपक्व बुद्धियों में परिपक्व ज्ञान की स्थापना करते हैं। इन्द्रियों को वासनाओं से मुक्त करके ज्ञान-ग्रहणक्षम करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उर्वीक्षा, बृहत् द्यौः

पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **उर्वीं क्षाम्**=विशाल पृथिवी को, इस पृथिवीरूप

शरीर को **पप्राथ**=विस्तृत करते हो। इस शरीर के द्वारा **महि दंसः (पप्राथ)**=महत्त्वपूर्ण कार्यों को भी आप ही करते हो। **ऋष्वः**=महान् आप ही **बृहत् द्याम्**=इस विशाल द्युलोक को, मस्तिष्करूपी द्युलोक को **उपस्तभायः**=थामते हैं। मस्तिष्क का धारण भी आप ही करते हैं। (२) हे प्रभो! इस प्रकार **रोदसी**=इन द्यावापृथिवी को आप ही **अधारयः**=धारण करते हैं, हमारे शरीरों व मस्तिष्कों का धारण करनेवाले आप ही हैं। उन द्यावापृथिवी को, जो **देवपुत्रे**=दिव्य गुणों के जन्म देनेवाले हैं, देव जिनके पुत्र हैं। **प्रत्ने**=जो पुराण हैं, चिरकाल तक रहनेवाले हैं। **यह्वी**=महान् हैं, महत्त्वपूर्ण कार्यों को करनेवाले हैं और **ऋतस्य मातरः**=हमारे जीवन में यज्ञों का निर्माण करनेवाले हैं, अर्थात् उत्तम कर्मों को सिद्ध करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे मस्तिष्क रूप द्युलोक शरीररूप पृथिवी को इस प्रकार धारण करते हैं कि ये दिव्य गुणों व यज्ञों को सिद्ध करते हुए दीर्घकाल तक सुरक्षित रहते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु द्वारा संग्राम विजय

अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अध**=अब **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के व्यक्ति **एकम्**=अद्वितीय **तवसम्**=बढ़े हुए, अर्थात् शक्तिशाली **त्वा**=आपको **भराय**=संग्राम के लिए **पुरः दधिरे**=सामने स्थापित करते हैं। आपने ही तो वस्तुतः शत्रुओं को जीतना है। (२) **यद्**=जब **अदेवः**=आसुरभाव **देवान्**=देववृत्ति के व्यक्तियों को **अभ्यौहिष्ट**=आक्रान्त करता है तो वे देव **अत्र**=यहाँ **स्वर्षाता**=संग्राम में **इन्द्रम्**=उस शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु का **वृणते**=वरण करते हैं। इस प्रभु के द्वारा वे अपने शत्रुओं को पराजित करते हैं।

भावार्थ—असुरों का आक्रमण होते ही देव प्रभु को संग्राम में आगे करते हैं और इस प्रकार असुरों के आक्रमण को विफल कर देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अहि-हनन

अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥ ९ ॥

(१) **अध**=अब **सा द्यौः चित्**=द्युलोक भी, **नु**=निश्चय से **ते वज्रात्**=तेरे वज्र से **द्विता अनमत्**=(द्वौ तनोति) इहलोक व परलोक के कल्याण के हेतु से **अप अनमत्**=झुकता है। 'द्युलोक भी' यहाँ 'भी' शब्द इस बात का द्योतक है कि पृथिवीलोक तो झुकता ही है, द्युलोक भी झुकता है। सारा द्युलोक व पृथिवीलोक प्रभु के वज्र के सामने झुकता है। एक तो **भियसा**=भय के कारण झुकता है और दूसरे **स्वस्य मन्योः**=अपने ज्ञान के कारण झुकते हैं। अज्ञानी तो आपत्ति से भयभीत होकर झुकते हैं, पर ज्ञानी प्रभु की महत्ता को समझते हुए नतमस्तक हो उठते हैं। (२) **यद्**=जब झुकते हैं तो **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु, **विश्वायुः**=हमारे लिये पूर्ण जीवन को देता हुआ **अभि ओहसानम्**=हमारी ओर आते हुए **अहिम्**=इस वासनारूप शत्रु को (अहन्ति) **चित्**=निश्चय से **शयथे निजधान**=भूमि पर सुला देने के लिये आहत करते हैं। वासना को विनष्ट करके हमें विनाश से बचाते हैं।

भावार्थ—अज्ञानी भय से तथा ज्ञानी समझदारी से उस प्रभु के सामने झुकते हैं। प्रभु इनके वासनारूप शत्रुओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सहस्रभृष्टि-शताश्रि' वज्र

अध॒ त्वष्टा॑ ते म॒ह उ॑ग्र॒ वज्रं॑ स॒हस्र॑भृष्टिं ववृतच्छ॒ताश्रि॑म्।
निका॑मम॒रम॑णसं॒ येन॒ नव॑न्त॒महिं॒ सं पि॑ण॒गृजी॑षिन्॥ १०॥

(१) हे **उग्र**=तेजस्विन् उपासक! **अध**=अब **त्वष्टा**=वह निर्माता प्रभु **ते**=तेरे लिये **वज्रम्**=वज्र को **ववृतत्**=बनाता है। उस वज्र को जो **महः**=महान् है, **सहस्रभृष्टिम्**=(भृष्टि=roasting) हजारों शत्रुओं को भून डालनेवाला है और **शताश्रिम्**=सैंकड़ो तेज धारोंवाला है (अश्रिः=the sharp side) (२) **ऋजीषिन्**=ऋजुमार्ग से गति करनेवाले जीव! उस वज्र को प्रभु तेरे लिये बनाते हैं, **येन**=जिससे कि तू **अहिं संपिणक्**=आहन्ता वृत्र को, कामवासना रूप शत्रु को पीस डालता है, नष्ट कर देता है। उस अहि को नष्ट कर देता है जो कि **निकामम्**=निकृष्ट कामनाओंवाला है, सदा हमारा अशुभ चाहनेवाला है। **अरमणसम्**=(अरं अभिगन्तृ मनो यस्य) आक्रमण करने की कामनावाला है तथा **नवन्तम्**=(नु शब्दे) गर्जना करनेवाला है अथवा रुलानेवाला है।

भावार्थ—प्रभु उपासक को वह वज्र प्राप्त कराते हैं, जो सब शत्रुओं को भून डालता है। वस्तुतः क्रियाशीलता ही यह वज्र है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शतं महिषान् पचत्

वर्धा॒न्यं विश्वे॑ म॒रुतः॑ स॒जोषाः॒ पच॑च्छ॒तं म॑हि॒षाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्य॑म्।
पू॒षा विष्णु॒स्त्रीणि॒ सरां॑सि धाव॑न्वृत्र॒हणं॑ मदि॒रमं॒शुम॑स्मै॥ ११॥

(१) **यम्**=जिस परमात्मा को **सजोषाः**=परस्पर प्रीतिवाले होते हुए **मरुतः**=मनुष्य **वर्धान्**=स्तोत्रों के द्वारा बढ़ाते हैं। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तुभ्यम्**=तेरी प्राप्ति के लिये ही उपासक **शतम्**=शतवर्ष पर्यन्त, अर्थात् आजीवन **महिषान्**=(प्राणा वै महिषाः श० ७।४।५) प्राणों को **अपचत्**=परिपक्व करता है, प्राणायाम के द्वारा प्राणों का परिपाक करता है। (२) **पूषा**=अपना उचित रूप में पोषण करनेवाला व्यक्ति, **विष्णुः**=व्यापक मनोवृत्तिवाला होता हुआ **त्रीणि सरांसि**=तीनों ज्ञान-सरोवरों को, प्रकृति का ज्ञान, जीव का ज्ञान तथा परमात्मा का ज्ञान इन तीनों को **धावन्**=(धावु गतिशुद्धयोः) शुद्ध करता हुआ **अस्मै**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिए **अंशुम्**=सोम को धावन्=प्राप्त करता है, जो सोम **वृत्रहणम्**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाला है तथा **मदिरम्**=उल्लास का जनक है। प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि—पूषा व विष्णु बनें, (ख) प्रकृति, जीव व परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करें, (ग) सोम का रक्षण करें। पूर्वार्ध में कहा था कि उस प्रभु की प्राप्ति के लिए हम, (घ) प्रभु-स्तवन करें, (ङ) प्राणसाधना को सदा करें।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए 'स्तवन, प्राणसाधना, ज्ञान व सोमरक्षण' साधन बनते हैं। हम पुष्ट व उदार बनकर प्रभु को पाते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

ऊर्मि-समुद्र (प्रकाश व उल्लास)

आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम्।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम्॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **नदीनाम्**=स्तोताओं के **महि क्षोदः**=इस महनीय रेतःकणरूप जल को **वृतम्**=शरीर में ही घिरा हुआ तथा **परिष्ठितम्**=शरीर में चारों ओर स्थित **आ असृजः**=सर्वथा करते हैं। इसे आप **अपाम्**=प्रजाओं का (आपो प्रा इति प्रोक्ताः) **ऊर्मिम्**=(light) प्रकाश (असृजः) बनाते हैं। ये रेतःकण ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर उनके जीवन को उज्ज्वल करते हैं। (२) **तासाम्**=उन रेतःकणरूप जलों का **प्रवतः अनु**=(height, elevation) उन्नति के अनुसार **पन्थाम्**=मार्ग को करते हैं, अर्थात् हे प्रभो! आप ही इन रेतःकणों को शरीर में ऊर्ध्वगतिवाला करते हैं। इन **नीचीः अपसः**=(अपः=अपसः) निम्न मार्ग की ओर जानेवाले रेतःकणों को **समुद्रं प्रार्दयः**=(स-मुद्) आनन्दयुक्त हृदय के प्रति प्रेरित करते हैं, अर्थात् शरीर में इनकी ऊर्ध्वगति करके, इनके द्वारा ही वस्तुतः हृदयों को उल्लासयुक्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा से उपासक के शरीर में रेतःकणरूप जलों की शरीर में ही स्थिति व ऊर्ध्वगति होती है। इस प्रकार ये रेतःकण प्रकाश (ऊर्मि) व आनन्द (समुद्रम्) का कारण बनते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

स्तवन के द्वारा रक्षण

एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम्।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात्॥ १३॥

(१) हे प्रभो! **एवा**=इस प्रकार **ता विश्वा**=ऊपर के मन्त्रों में वर्णित उन प्रसिद्ध सब कर्मों को **चकृवांसम्**=करनेवाले **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली आपको, हमारे से अपनाया गया यह **नव्यं ब्रह्म**=स्तुत्य ज्ञानपूर्वक किया गया स्तोत्र (स्तवन) **आववृत्यात्**=हमारे अभिमुख करे। हम इन स्तोत्रों के द्वारा आपको प्राप्त करनेवाले हों, और इस प्रकार **अवसे**=रक्षण के लिए हों, आपके द्वारा हम इन वासनारूप शत्रुओं के आक्रमण से बचे रहें। (२) उन आपको हम अपने अभिमुख कर पाएँ, जो आप **महाम्**=महान् हैं, **उग्रम्**=तेजस्वी हैं, **अजुर्यम्**=कभी न जीर्ण होनेवाले हैं और **सहोदाम्**=बल को देनेवाले हैं। जो आप **सुवीरम्**=उत्तम वीर हैं उन **त्वा**=आपको हम अपने अभिमुख करें जो **स्वायुधम्**=उत्तम 'इन्द्रिय प्रनव बुद्धि' रूप आयुधों को देनेवाले हैं तथा **सुवज्रम्**=उत्तम क्रियाशीलतारूप वज्र को प्राप्त कराते हैं (शोभनम् वज्रं यस्मात्)।

भावार्थ—स्तवन द्वारा हम प्रभु को प्राप्त करें। ये प्रभु हमें बल, उत्तम इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि को प्राप्त कराएँगे। इनके द्वारा वे हमें रक्षण के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

पार्ये दिवि

स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र॥ १४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमें **वाजाय**=बल के लिए, **श्रवसे**=ज्ञान के लिए, **इषे**=प्रेरणा के लिए **च**=और **राये**=धन के लिए **धेहि**=धारण कीजिए। हे प्रभो! आप हमें **द्युमतः**=ज्योतिर्मय **विप्रान्**=अपना पूरण करनेवाले ज्ञानी ब्राह्मणों को प्राप्त कराइए। इनके सम्पर्क में हमारा जीवन भी ज्योतिर्मय बने। (२) **भरद्वाजे**=अपने में शक्ति को भरनेवाले मेरे में, हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नृवतः**=प्रशस्त मनुष्योंवाले **सूरीन्**=ज्ञानी स्तोताओं को (**धेहि**=) प्राप्त कराइये। इनके सम्पर्क में मैं भी ज्ञानी व स्तोता बनूँ। **च**=और हे **इन्द्र**=ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाले प्रभो! **नः**=हमारे **पार्ये दिवि**=पारणीय–वैषयिक समुद्र से पार करने में समर्थ–ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त **स्म एधि**=होइये।

भावार्थ—ज्ञानी ब्राह्मणों के द्वारा प्रभु हमारे लिए 'पारणीय ज्ञान' को प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

देवहित वाजं

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५ ॥

(१) **अया**=इस स्तवन के द्वारा अथवा गत मन्त्र में वर्णित 'पारणीय ज्ञान' के द्वारा हम **देवहितम्**=देववृत्ति के पुरुषों में स्थापित **वाजम्**=बल को **सनेम**=प्राप्त करें। दानवी बल को नहीं, अपितु देवहित बल को हम प्राप्त करनेवाले हों। (२) इस बल को प्राप्त करके हम **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले **शतहिमाः**=सौ वर्ष के दीर्घ–जीवनवाले होते हुए **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—देवों के बल को प्राप्त करते हुए हम सुवीर व शतहिम (सौ वर्ष के जीवनवाले) बनें और इस प्रकार आनन्दित हों।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[१८] अष्टादशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वन्वन् अवातः' इन्द्रः

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

(१) **तं उ स्तुहि**=उस प्रभु का ही स्तवन करो **यः**=जो **अभिभूत्योजाः**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले बलवाला है, **वन्वन्**=शत्रुओं का हिंसन करता हुआ **अवातः**=स्वयं शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता। **पुरुहूतः**=पालक व पूरक है आह्वान जिसका (पुरु हूतं यस्य) ऐसे वे प्रभु **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवाले हैं। (२) **अषाढम्**=शत्रुओं से अनभिभूत, **उग्रम्**=तेजस्वी, **सहमानम्**=शत्रुओं को कुचलते हुए उस प्रभु को **आभिः गीर्भिः**=इन ज्ञानमयी स्तुति–वाणियों से **वर्ध**=बढ़ाइये। वे प्रभु **चर्षणीनां वृषभम्**=श्रमशील मनुष्यों के लिए सुखों का वर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु–स्तवन हमें शत्रुओं को कुचलने में समर्थ करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

खजकृत् समद्वा

स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥ २ ॥

(१) **सः**=वे प्रभु **युध्मः**=युद्ध कुशल हैं। **सत्वा**=वासनाओं के साथ संग्राम के लिए 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' रूप अस्त्रों के दाता हैं (सत्वा=दाता)। **खजकृत्**=हमारे लिए इन वासनाओं के साथ संग्राम करनेवाले हैं। **समद्वा**=अपने यजमान जीवरूप मित्रों के साथ आनन्दित होनेवाले हैं। **तुविम्रक्षः**=शत्रुओं पर महान् आघात करनेवाले हैं। **नदनुमान्**=हृदयस्थरूपेण शब्द करनेवाले हैं, कर्त्तव्यों की प्रेरणा देनेवाले हैं और **ऋजीषी**=हमें ऋजु मार्ग से ले चलनेवाले हैं। (२) **बृहद्रेणुः**=वे प्रभु महान् गतिवाले हैं (रीङ्गतौ) **च्यवनः**=शत्रुओं को च्युत करनेवाले हैं। **एकः**=वे अद्वितीय प्रभु **मानुषीणां कृष्टीनाम्**=मानव प्रजाओं के **सहावा**=(सह अवति) साथ रहकर रक्षा करनेवाले **अभवत्**=होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिये हमारे वासनारूप शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

न स्वित् अस्ति

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥ ३ ॥

(१) **त्यत् त्वं ह**=हे प्रभो! वे आप ही **एकः**=अकेले **दस्यून्**=इन काम-क्रोध-लोभ आदि दास्यवभावों का **अदमायः**=दमन करते हैं। आप ही **आर्याय**=श्रेष्ठ पुरुष के लिए **कृष्टीः अवनोः**=कृषियों को प्राप्त कराते हैं। वस्तुतः आपके द्वारा ही ये आर्य पुरुष श्रमसाध्य कर्मों को करने में समर्थ होते हैं। (२) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभो! **नु स्वित्**=निश्चय से **तत् ते वीर्यं अस्ति**=वह सब आपका ही पराक्रम है। आपकी शक्ति से ही सब कार्य होते हैं। इसमें उस-उस कर्म के करनेवाले व्यक्ति का तो **स्वित्**=निश्चय से **न अस्ति**=कुछ भी नहीं है। आपकी शक्ति से ही सब कार्य होते हैं। हे प्रभो! आप **तद्**=उस बात को **ऋतुथा**=समयानुसार **विवोचः**=हमें विशेषरूप से बतलाते रहिये, जिससे हम उन कर्मों का गर्व न करने लगें। इसी प्रकार हमें भी आपके द्वारा इस बात का ज्ञान होता रहे कि 'न स्वित् अस्ति' निश्चय से हमारा कुछ नहीं है, सब उस प्रभु का है।

भावार्थ—प्रभु दास्यव वृत्तियों का दमन करते हैं। हमें श्रमसाध्य कृषि आदि कर्मों को प्राप्त कराके आर्य बनाते हैं। सब कर्म प्रभु द्वारा ही होते हैं, मनुष्य का इसमें कुछ नहीं है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु ही बल के स्रोत हैं

सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४ ॥

(१) हे **सहिष्ठ**=शत्रुओं का अधिक से अधिक मर्षण करनेवाले प्रभो! **तुविजातस्य**=महान् प्रादुर्भाववाले **ते**=आपका **सहः**=बल **सत् इत् हि**=श्रेष्ठ ही है, ऐसा **मन्ये**=मैं मानता हूँ। (२) **उग्रस्य**=तेजस्वी आपका यह बल **उग्रम्**=उग्र है, शत्रुओं के लिए भयंकर है। **तवसः**=अत्यन्त प्रवृद्ध आपका बल **तवीयः**=अतिशयेन बढ़ा हुआ है। **अरध्रस्य**=शत्रुओं से वश में न करने योग्य आपका यह बल **रध्रतुरः**=वशीकरणीय शत्रुओं का संहार करनेवाला **बभूव**=है।

भावार्थ—सम्पूर्ण बल प्रभु का ही है। यह बल उग्र, बढ़ा हुआ व शत्रु-विनाशक है।

ऋषि:—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रत्नं सख्यम्

तन्नः॑ प्र॒त्नं स॒ख्यम॑स्तु यु॒ष्मे इ॒त्था वद॑द्भिर्व॒लमङ्गि॑रोभिः।
हन्न॑च्युतच्युद्दस्मे॒षय॑न्तमृ॒णोः पुरो॒ वि दुरो॑ अस्य॒ विश्वाः॑॥ ५॥

(१) 'जीव और प्रभु' की मित्रता अनादिकाल से चली आ रही है। जीव अपने मित्र से कहता है कि '**नः**=हमारी **युष्मे**=आपके साथ **तत्**=वह **प्रत्नम्**=सनातन **सख्यम्**=मित्रता **अस्तु**=हो, बनी रहे। हम आपकी मित्रता से दूर न हों।' **इत्था**=इस प्रकार **वदद्भिः**=कहते हुए **अंगिरोभिः**=इन गतिशील पुरुषों के साथ आप **वलम्**=(veil) ज्ञान पर आवरणभूत इस वासना को **हन्**=विनष्ट करते हैं। (२) हे **अच्युतच्युत्**=अविचलित-दृढ़ भी शत्रुओं को नष्ट करनेवाले, **दस्म**=दर्शनीय व दुःख विनाशक प्रभो! **इषयन्तम्**=हमारे पर आक्रमण करनेवाले, अस्त्रों का प्रहार करनेवाले, इस बल को **ऋणोः**=आप दूर करते हैं। **अस्य**=इस बल के **विश्वाः**=सब **पुरः**=पुरियों को तथा **दुरः**=द्वारों को **वि (ऋणोः)**=हमारे से वियुक्त करते हैं। प्रभु ही इस बल का विनाश करते हैं।

भावार्थ—जीव अपने सनातन सखा का स्मरण करता है तो वे प्रभु अपने इन उपासकों के साथ ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करते हैं।

ऋषि:—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'वितन्तसाय्य' प्रभु

स हि धी॒भिर्हव्यो॒ अस्त्यु॒ग्र ई॑शान॒कृन्म॑ह॒ति वृ॑त्र॒तूर्ये॑।
स तो॒कसा॑ता॒ तन॑ये॒ स व॒ज्री वि॑त॒न्त॒साय्यो॑ अभवत्स॒मत्सु॑॥ ६॥

(१) **सः**=वे प्रभु ही **धीभिः**=ज्ञानपूर्वक की गई स्तुतियों से **हव्यः**=पुकारने योग्य **अस्ति**=हैं। **उग्रः**=तेजस्वी हैं और इस **महति वृत्रतूर्ये**=महान् संग्राम में **ईशानकृत्**=स्तोताओं को समर्थ करनेवाले हैं। प्रभु कृपा से ही उपासक संग्राम में विजयी होता है। 'वृत्रतूर्य' यह संग्राम का नाम ही हो गया है, इस महान् अध्यात्म संग्राम में वृत्र का, वासना का विनाश करना होता है। (२) **सः**=वे प्रभु ही **तोकसाता**=उत्तम पुत्रों की प्राप्ति के निमित्त (हव्यः) आह्वातव्य होते हैं। **तनये**=उत्तम पौत्रों की प्राप्ति के निमित्त भी वे प्रभु ही प्रार्थनीय हैं। **सः वज्री**=वे वज्रहस्त प्रभु **समत्सु**=संग्रामों में **वितन्तसाय्यः**=शत्रुओं के विहिंसक **अभवत्**=होते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण ही हमें संग्राम-विजयी बनाता है। यह स्मरण ही उत्तम पुत्र-पौत्रों को प्राप्त कराता है।

ऋषि:—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्युम्न-शवस्-धन व वीर्य

स म॒ज्मना॒ जनि॑म॒ मानु॑षाणा॒मम॑र्त्येन॒ नाम्नाति॒ प्र स॑र्स्रे।
स द्यु॒म्नेन॒ स शव॑सो॒त रा॒या स वी॒र्ये॑ण॒ नृत॑मः॒ समो॑काः॥ ७॥

(१) **सः**=वे प्रभु **अमर्त्येन**=अविनाशी **नाम्ना**=शत्रुओं के नामक **मज्मना**=बल से **मानुषाणां जनिम**=मानव संघ को **अति सर्स्रे**=अतिशयेन प्राप्त होते हैं। जब मनुष्य प्रभु की उपासना करता है, तो प्रभु उसे शत्रुनाशक बल प्राप्त कराते हैं। (२) **सः**=वे प्रभु **द्युम्नेन**=ज्ञान-ज्योति के साथ **सं ओकाः**=निवासवाले हैं। **सः**=वे **शवसा**=बल के साथ समान निवासवाले हैं। **उत**=और

राया=ऐश्वर्य के साथ निवास करते हैं। **सः**=वे **नृतमः**=सर्वोत्तम नेतृत्व करनेवाले प्रभु **वीर्येण**=पराक्रम के साथ (समोकाः) निवासवाले हैं। प्रभु का उपासक भी 'ज्ञान, बल, धन व सामर्थ्य' के साथ समान निवासवाला होता है।

भावार्थ—उपासक को शत्रुओं को झुकानेवाला बल प्राप्त होता है। ज्ञान, बल, धन व वीर्य प्राप्त होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'इन्द्र' का लक्षण

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्॥ ८॥

(१) **सः इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष वह है—(क) **यः जनः मुहे न**=जो मनुष्य मूढ़ नहीं बनता, संसार के इन विषयों के प्रति आकृष्ट होकर अपनी चेतना नहीं खो बैठता। (ख) और जो अपने व्यवहार में **मिथू न भूत्**=मिथ्यावादी व मिथ्याचारी नहीं होता। सदा सत्य व्यवहार से ही धनार्जन करता है। (ग) **सुमन्तुनामा**=प्रभु के नाम का उत्तमता से मनन करता है। यह नाम-स्मरण ही तो वस्तुतः उसे 'मोह व मिथ्यात्व' से बचाता है, (घ) यह **चुमुरिम्**=आचमन कर जानेवाले, शक्ति को चूस लेनेवाले कामासुर को **च**=और **धुनिम्**=कम्पित करनेवाले क्रोध को, **पिप्रुम्**=अपने ही को भरते चलनेवाले (प्रा पूरणे) लोभ को, **शम्बरम्**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले मद को तथा **शुष्णम्**=सब रस का शोषण कर लेनेवाले द्वेष को **वृणक्**=हिंसित करता है। नाम-स्मरण ही इस कार्य में इसे समर्थ करता है। (ङ) यह इन्द्र **पुराम्**=असुरों की पुरियों के **च्यौत्नाय**=च्युत (नष्ट) करने के लिये तथा **शयथाय**=असुरभावों को भूमिशायी कर देने के लिए **नू चित्**=शीघ्र ही समर्थ होता है।

भावार्थ—इन्द्र के जीवन का केन्द्रीभूत बिन्दु नाम-स्मरण होता है। यही इसे विषयमूढ होने से व मिथ्याचार से बचाता है। इसी के द्वारा यह 'चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर व शुष्ण' को मारता है और असुरों की पुरियों का विध्वंस करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्र कौन?

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः॥ ९॥

(१) **उदावता**=उत्कृष्ट रक्षण करनेवाले, **त्वक्षसा**=शत्रुओं को छील देनेवाले, नष्ट कर देनेवाले, **पन्यसा**=स्तुत्य बल से युक्त हुआ-हुआ हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **वृत्रहत्याय**=वासना के विनाश के लिए **रथम्**=इस शरीर-रथ पर **तिष्ठ**=स्थित हो। (२) इस शरीर-रथ पर अधिष्ठित होकर **दक्षिणत्रा हस्ते**=दाहिने हाथ में **वज्रं आधिष्व**=क्रियाशीलतारूप वज्र को धारण कर। कुशलतापूर्वक कर्मों से तेरा जीवन व्याप्त हो। और हे **पुरुदत्र**=खूब दान देने योग्य धन से युक्त हुआ-हुआ तू **मायाः अभि**=प्रज्ञानों का लक्ष्य करके **प्रमन्द**=प्रकृष्ट दीप्तिवाला हो (मन्दतिः ज्वलतिकर्मसु)।

भावार्थ—इन्द्र वह है, (क) जो उत्कृष्ट बल से युक्त हुआ-हुआ वासना का विनाश करता है, (ख) कुशलता से कर्मों में प्रवृत्त रहता है और (ग) धनयुक्त होता हुआ प्रज्ञान दीप्त बनने का

यत्न करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'गम्भीर ऋष' हेति

अग्निर्न शुष्कं वर्नमिन्द्र हेती रक्षो नि धंक्ष्यशनिर्न भीमा।
गम्भीरयं ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **न**=जैसे **शुष्कं वनम्**=सूखे वन को **अग्निः**=आग जला देती है, उसी प्रकार तू **हेती**=अपने वज्र के द्वारा, क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा (हि गतौ) **रक्षः निधक्षि**=राक्षसी भावों को भस्म कर देता है। तू इनके लिये **भीमा अशनिः न**=भयङ्कर विद्युत् के समान होता है। विद्युत्पतन से वृक्षों का नामोनिशान नहीं रहता, इसी प्रकार तू क्रियाशीलता से इन राक्षसीभावों का अन्त करता है। (२) **यः**=जो तू **गम्भीरया ऋष्वया**=गम्भीर व महान् हेति से, क्रियाशीलतारूप वज्र से **रुरोज**=इन आसुरभावों का भंग करता है, इन **दुरिता**=पापों को **अध्वानयत्**=रुला देता है, आधार विनाश से ये रो उठते हैं, **च**=और **दम्भयत्**=तू इनका विनाश करता है।

भावार्थ—क्रियाशीलता रूप वज्र को धारण करके आसुरीभावों का विनाश करता है। हमारी क्रियाएँ गम्भीर व महान् हों हम इन क्रियाओं में तत्पर होकर शत्रुओं का अन्त कर दें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऐश्वर्य-शक्ति

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक्।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः॥ ११॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सहस्रं पथिभिः**=हजारों मार्गों से **राया**=ऐश्वर्य के साथ **आयाहि**=हमें प्राप्त होइये। हम आपकी कृपा से विविध मार्गों से धनों के कमानेवाले हों। हे **तुविद्युम्न**=महान् ज्योतिवाले प्रभो! आप **तुविवाजेभिः**=महान् शक्तियों के साथ **अर्वाक् आयाहि**=हमारे अभिमुख प्राप्त होइये। ज्ञान के द्वारा ही शक्ति पवित्र व सुरक्षित बनी रहती है। (२) हे **सहसः सूनो**=शक्ति के पुञ्ज **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! हमें उस ऐश्वर्य और शक्ति को दीजिए, **यस्य**=जिसके **योतोः**=पृथक् करने के लिये **अदेवः**=कोई भी आसुरभाव व आसुरीवृत्तिवाला पुरुष **नू चित्**=नहीं ही **ईशे**=समर्थ होता है। ('नू चित्' इति निषेधार्थे)।

भावार्थ—प्रभु हमें ऐश्वर्य व शक्ति को प्राप्त कराएँ। कोई भी आसुरभाव हमारे इस ऐश्वर्य व शक्ति के विनाश का कारण न बन जाए।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

निराधार व सर्वाधार

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः॥ १२॥

(१) **तुविद्युम्नस्य**=उस महान् ज्ञान की ज्योतिवाले, **स्थविरस्य**=प्रवृद्ध, **घृष्वेः**=शत्रुओं का घर्षण करनेवाले प्रभु की **महिमा**=महत्त्व **दिवः**=द्युलोक के द्वारा तथा **पृथिव्याः**=पृथिवी से **ररप्शे**=प्रकर्षेण गायी जा रही है। 'यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः'। पृथिवी

से उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियों में तथा पृथिवीस्थ पर्वतों, नदियों व वनों में तथा आकाश के तारों व उमड़ते हुए बादलों में प्रभु की महिमा किसे नहीं दिखती? (२) **यस्य**=इस महान् प्रभु का **शत्रुः न अस्ति**=शातयिता (=नष्ट करनेवाला) कोई नहीं है, **न प्रतिमानं अस्ति**=इसका कोई प्रतिनिधि भी नहीं हो सकता। इस **पुरुमायस्य**=अनन्त प्रज्ञानवाले, **सह्योः**=शत्रुओं के अभिभावक का **न प्रतिष्ठिः**=कोई और आधार देनेवाला नहीं है, ये प्रभु ही सर्वाधार हैं।

भावार्थ—वे प्रभु महान् ज्ञान की ज्योतिवाले प्रवृद्ध, शत्रुओं के कुचलनेवाले, अनन्त महिमावाले व अनुपम व स्वयं निराधार होते हुए सर्वाधार हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'कुत्स आयु अतिथिग्व तूर्वयाण'

प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ॥ १३॥

(१) हे प्रभो! **अद्या**=आज भी **ते**=आपका **तत्**=वह **कृतं करणम्**=किया गया काम **प्रभूत्**=प्रकाशित हो रहा है **यत्**=कि आप **कुत्सम्**=(कुथ् हिंसायाम्) वासनाओं का संहार करनेवाले को, **आयुम्**=(इ गतौ) गतिशील पुरुष को तथा **अतिथिग्वम्**=उस महान् अतिथि प्रभु की ओर चलनेवाले को अथवा अतिथियों का स्वागत करनेवाले को रक्षित करते हो ('ररक्षिथ' क्रियापद अध्याहृत है) और **अस्मै**=इसके लिए **पुरु सहस्रा**=बहुत हजारों धन **निशिशाः (अदराः)**=देते हैं। आप इन धनों को **क्षां अभि**=पृथिवी को, इस पार्थिव शरीर का लक्ष्य करके देते हैं। पार्थिव शरीर का रक्षण इन पार्थिव धनों से ही तो हो पायेगा। (२) आप **तूर्वयाणम्**=अपने कर्त्तव्य कर्मों में त्वरित गतिवाले इस ज्ञान-भक्त (=दिवोदास) पुरुष को **धृषता**=शत्रु धर्षक बल के द्वारा **उनिनेथ**=इन धनों में आसक्ति से ऊपर उठाते हो। प्रभु आवश्यक धन देते हैं और साथ ही इन धनों में न फँसने की शक्ति भी प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम 'वासनाओं का संहार करनेवाले (कुत्स), गतिशील (आयु), अतिथि-सेवक (अतिथिग्व)' बनकर प्रभु से रक्षणीय बनें। प्रभु से धनों को प्राप्त करें और शीघ्रता से कर्त्तव्य कर्मों में तत्पर रहते हुए उन धनों में आसक्त न हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अहि-हन्ता' प्रभु

अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम्।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः॥ १४॥

(१) हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **विश्वे देवाः**=सब देववृत्ति के पुरुष **अहिघ्ने**=ज्ञान को विनष्ट करनेवाली वासना के विनाश के निमित्त **त्वा अनुमदन्**=आपका स्तवन करते हैं। आपका स्तवन वासना-विनाश के द्वारा उनके ज्ञान का कारण बनता है। आप ही तो **कवीनां कवितमम्**=ज्ञानियों के भी ज्ञानी हैं, देवों के देव हैं, गुरुओं के गुरु हैं 'स पूर्वेषामपि गुरुः०'। (२) **यत्र**=जिस स्तुति के होने पर **गृणानः**=ज्ञानोपदेश करते हुए आप **बाधिताय जनाय**=भौतिक आवश्यकताओं से बाधित इस पुरुष के लिए **दिवे**=ज्ञान-प्रकाश के वर्धन के लिए व **तन्वे**=शरीर-रक्षण के लिए **वरिवः**=धन को **करः**=करते हैं। धन के दो ही मुख्य उद्देश्य हैं—(क) शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा (ख) ज्ञानवृद्धि के साधनों को जुटाना।

भावार्थ—देववृत्ति के पुरुष प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु ही इनकी वासना का विनाश करते हैं। प्रभु ही शरीर रक्षा व ज्ञानवृद्धि के साधनों को जुटाने के लिए आवश्यक धन देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

खाली समय का उपयोग

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ १५ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! **अमर्त्याः देवाः**=विषय-वासनाओं के पीछे न मरनेवाले देववृत्ति के पुरुष **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्करूप द्युलोक में तथा शरीररूप पृथिवी में **ते**=आपके **तत् ओजः**=उस प्रसिद्ध बल को **अनुजिहते**=अनुकूलता से प्राप्त होते हैं। आपकी उपासना से ही उनका मस्तिष्क ज्ञानदीप्त व शरीर सशक्त बनता है। (२) आप इन अपने प्रिय पुत्रों को यही उपदेश देते हैं कि हे **कृत्नो**=कर्त्तव्य-कर्म-परायण जीव! **यत् ते अकृतं अस्ति**=जो तेरा कर्त्तव्य-कर्म अवशिष्ट है उसे **कृष्व**=कर। और इन कर्त्तव्य कर्मों को करके अवशिष्ट सारे समय में **यज्ञैः**=लोकहित के लिए किये जानेवाले श्रेष्ठ कर्मों के साथ **नवीयः**=अत्यन्त स्तुत्य **उक्थम्**=प्रशंसनीय वेदज्ञान व स्तोत्रों को **जनयस्व**=उत्पन्न कर। तेरा अपने कर्त्तव्यों से अवशिष्ट समय इन यज्ञों स्तोत्रों व ज्ञान प्राप्ति में ही बीते।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना से दीप्त मस्तिष्क व सशक्त शरीर को प्राप्त करें। कर्त्तव्य कर्मों को करके यज्ञों व स्तोत्रों में अवशिष्ट समय को बिताएँ।

अगले सूक्त में भी भरद्वाज बार्हस्पत्य इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

द्विबर्हाः

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥

(१) **महान्**=पूजनीय (मह पूजायाम्) **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **नृवत्**=नेता की तरह, जैसे एक नेता अपने अनुयायियों में उत्साह का संचार करता है, उसी प्रकार **आ चर्षणि प्राः**=समन्तात् श्रमशील मनुष्यों का पूरण करनेवाले हैं। **उत**=और वे प्रभु **द्विबर्हाः**=शरीर व मस्तिष्क दोनों का वर्धन करनेवाले हैं। **सहोभिः अमिनः**=अपने बलों के कारण हिंसित होनेवाले नहीं। (२) **अस्मद्र्यग्**=हमारी ओर आनेवाले होते हुए **वीर्याय**=हमारे पराक्रम के लिए **वावृधे**=बढ़ते हैं। **उरुः**=वे विशाल व **पृथुः**=गुणों से प्रथित प्रभु **कर्तृभिः**=स्तोताओं के द्वारा **सुकृतः भूत्**=उत्तमता से स्तुति किये जाते हैं व परिवरित (उपासित) होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का पूजन करें, प्रभु हमारा पूरण करेंगे। हमारी मस्तिष्क व शरीर की उन्नति का कारण होते हुए हमसे वीर्यवत् कर्मों को करायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऋष्वं अजरं युवानम्

इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥ २ ॥

(१) **धिषणा**=हमारी बुद्धि **सातये**=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए **इन्द्रं एव**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **धात्**=धारण करे। हम अपनी बुद्धि को प्रभु के विचार के लिए ही उपयुक्त करें। यह प्रभु चिन्तन हमें वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला होगा। उस प्रभु का हम चिन्तन करें जो **बृहन्तम्**=अत्यन्त प्रवृद्ध हैं, **ऋष्वम्**=दर्शनीय हैं, **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले व **युवानम्**=हमारे से बुराइयों को पृथक् करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं। (२) उस प्रभु को हमारी बुद्धि धारण करे जो **अषाढेन**=शत्रुओं से न सहने योग्य **शवसा**=बल से **शूशुवांसम्**=बढ़े हुये हैं और **यः**=जो **सद्यः चित्**=शीघ्र ही **असामि**=पूर्णताय **वावृधे**=वृद्धि को प्राप्त होते हैं, अर्थात् जिनमें कहीं भी अधूरापन नहीं। अपने उपासकों को भी वे पूर्ण बनाते हैं।

भावार्थ—हम अपनी बुद्धियों को प्रभु चिन्तन में व्यापृत करें। ये प्रभु हमें शत्रुओं से असह्य बल को प्राप्त करायेंगे और हमें पूर्णता की ओर बढ़ायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'पृथू-करस्ना-बहुला' गभस्ती

पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **पृथू करस्ना**=विशाल कर्मों को करनेवाली **बहुला**=खूब दान देनेवाली **गभस्ती**=बाहुओं को **अस्मद्र्यक्**=हमारे अभिमुख **संमिमीहि**=बनाइये। तथा **श्रवांसि**=ज्ञानों को करिये। आपकी कृपा से हम खूब क्रियाशील दान देनेवाली भुजाओं को तथा ज्ञानों को प्राप्त करें। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का दमन करनेवाले आप **दमूनाः**=दान्तमनवाले होते हुए **आजौ**=संग्राम में **अस्मान् अभ्याववृत्स्व**=हमें प्राप्त होइये, **इव**=जैसे **पशुपाः**=पशुओं का रक्षक **पश्वः यूथा**=पशुओं के झुण्डों को रक्षा के लिए प्राप्त होता है। प्रभु को प्राप्त करके हम संग्राम में विजयी हों।

भावार्थ—प्रभु हमें विशाल कर्म करनेवाली दानशील भुजाएँ प्राप्त कराएँ तथा संग्राम में हमें प्राप्त हों जिनसे हम विजयी बनें और शत्रुओं से अपना रक्षण कर पाएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अनेद्याः अनवद्याः अरिष्टाः

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः॥ ४॥

(१) **अस्य शाकैः**=इसके सामर्थ्यों से **चतिनम्**=शत्रुओं का नाश करनेवाले **तं वः (त्वां)**=उस तुझ **इन्द्रम्**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु को **इह**=इस जीवन में **नूनम्**=निश्चय से **वाजयन्तः**=शक्ति प्राप्ति की कामना करते हुए **हुवेम**=पुकारते हैं। प्रभु की उपासना से ही वह शक्ति मिलती है, जो हमें शत्रुओं का वध करने में समर्थ करती है। (२) इस शक्ति को प्राप्त करके शत्रुओं का वध करते हुए हम ऐसे बनें **यथा चित्**=जैसे निश्चय से **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **जरितारः**=स्तोता लोग **आसुः**=होते हैं। हम भी उनकी तरह ही **अनेद्या**=अनिन्दनीय, **अनवद्याः**=पापरहित व **अरिष्टाः**=अहिंसित हों।

भावार्थ—प्रभु के आराधन से हम शत्रु-नाशक शक्ति को प्राप्त करके अनिन्दनीय, पापरहित, अहिंसित जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धृतव्रतः-धनदाः

धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥ ५ ॥

(१) वे प्रभु **धृतव्रतः**=सूर्य आदि सब देवों के व्रतों का धारण करनेवाले हैं। सूर्य, चन्द्र, तारे व अन्य लोक-लोकान्तर प्रभु के नियमों में ही चलते हैं। वे प्रभु हम सब जीवों के लिये **धनदाः**=धनों को देनेवाले हैं। **सोमवृद्धः**=वे प्रभु सोमरक्षण के द्वारा हमारे अन्दर अधिक प्रादुर्भूत् होते हैं, सोमरक्षण के द्वारा ही हम प्रभु का दर्शन कर पाते हैं। **सः हि**=वे ही **वामस्य**=वननीय, चाहने योग्य **वसुनः**=निवास के लिए आवश्यक धन के स्वामी हैं और **पुरुक्षुः**=पालक व पूरक अन्नोंवाले हैं। वननीय वसुओं के द्वारा हमें इन अन्नों को प्राप्त कराते हैं। (२) **अस्मिन्**=इस प्रभु में **पथ्याः**=हमारे लिये हितकर **रायः**=ऐश्वर्य **सं जग्मिरे**=इस प्रकार संगत होते हैं, **न**=जैसे कि **यादमानाः**=(अतिगच्छन्त्यः) बहती हुई **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्रे**=समुद्र में संगत हो जाती हैं। प्रभु सब पथ्य ऐश्वर्यों के निधान हैं। प्रभु की प्राप्ति से ये सब ऐश्वर्य हमें प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा हम सूर्यादि के व्रतों का धारण करनेवाले प्रभु के अधिकाधिक समीप होते हैं। सब ऐश्वर्यों के अधिष्ठान ये प्रभु ही हैं। प्रभु की प्राप्ति में सब ऐश्वर्यों की प्राप्ति है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शविष्ठं शवः, ओजिष्ठं ओजः

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम्।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥ ६ ॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **नः**=हमारे लिये **शविष्ठं शवः**=अधिक से अधिक शक्ति को देनेवाले बल को **आभर**=भरिये। इस बल से युक्त होकर हम शत्रुओं को शीर्ण कर सकें। हे **अभिभूते**=शत्रुओं को पराभूत करनेवाले प्रभो! **उग्रम्**=शत्रुओं के लिए भयंकर **ओजिष्ठम्**=ओजस्वितम **ओजः**=ओज को हमें प्राप्त कराइये। (२) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले प्रभो! **मानुषाणाम्**=मनुष्यों के **विश्वा**=सब **वृष्ण्या**=शक्ति का सेचन करनेवाली **द्युम्ना**=ज्ञान-ज्योतियों को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **दाः**=दीजिए, जिससे **मादयध्यै**=हम जीवन में वास्तविक आनन्द का अनुभव कर सकें। 'शविष्ठ शव' हमें रोगों को जीतने में समर्थ करता है, ओजिष्ठ ओज के द्वारा हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को अभिभूत कर पाते हैं। 'वृष्ण्य द्युम्नों' के द्वारा सब आवरणों व अन्धकारों को दूर करके हम प्रभु का दर्शन करते हैं और वास्तविक आनन्द को पाते हैं।

भावार्थ—हम बल सम्पन्न होकर रोगों से न दबें। ओजस्विता हमें काम-क्रोध को अभिभूत करने में समर्थ करे। शक्तियुक्त ज्ञान-ज्योति हमें वास्तविक आनन्द को प्राप्त करानेवाली हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पृतनाषाट्-अमृध्रः' मदः

यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम्।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **यः**=जो **ते**=आपका **मदः**=मद-शक्ति-जनित उल्लास **पृतनाषाट्**=शत्रु-सैन्य का मर्षण करनेवाला व **अमृध्रः**=अहिंसित है, **तम्**=उसे **नः**=हमारे लिए **आभर**=सर्वथा प्राप्त कराइये। उस मद को, जो **शूशुवांसम्**=बढ़ने ही वाला है, न्यून होनेवाला नहीं। (२) **येन**=जिस मद के द्वारा **तोकस्य तनयस्य सातौ**=पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति में **मंसीमहि**=हम सदा आपका स्तवन करें। और **त्वा ऊताः**=आपसे रक्षित हुए-हुए **जिगीवांसः**=सदा विजयी हों।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन करते हुए हम उस शक्ति-जनित उल्लास को प्राप्त करें जो—(क) शत्रुसंहार द्वारा हमारी वृद्धि का कारण बने, (ख) उत्तम पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करानेवाला हो, (ग) सदा हमें विजयी बनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृषणं 'शुष्मम्'

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन्॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमारे लिए **वृषणम्**=सुखों का सेचन करनरेवाले **शुष्मम्**=शत्रु-शोषक बल को **आभर**=प्राप्त कराइये। जो बल **धनस्पृताम्**=हमारे धनों का पालक हो, **शूशुवांसम्**=वृद्धि का कारण बने। **सुदक्षम्**=उत्तम उन्नति का साधन हो। (२) **येन**=जिस बल के द्वारा **तव ऊतिभिः**=आपके रक्षणों से **जामीन् उत अजामीन्**=बन्धुरूप व अबन्धुरूप (अथवा जन्म के साथ उत्पन्न 'सहज' व इससे भिन्न 'कृत्रिम') सभी **शत्रून्**=शत्रुओं को **पृतनासु**=संग्रामों में **वंसाम**=(हनाम) नष्ट कर सकें।

भावार्थ—प्रभु हमें वह बल दें जिससे कि हम उत्तम धनों को प्राप्त करके उन्नत हों तथा सब शत्रुओं का पराभव कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शुष्मः द्युम्नम्

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात्।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **ते**=आपका **वृषभः**=सुखों का सेचन करनेवाला **शुष्मः**=शत्रु-शोषक बल **पश्चात्**=पीछे की ओर से **आ एतु**=हमें सर्वथा प्राप्त हो। इसी प्रकार **उत्तरात् आ (एतु)**=उत्तर की ओर से प्राप्त हो **अधरात्**=नीचे की ओर से और **पुरस्तात्**=सामने की ओर से भी **आ (एतु)**=हमारी ओर आये। (२) यह बल **विश्वतः**=सब ओर से **अर्वाङ्**=हमारे अभिमुख होता हुआ हमें **अभि आ समेतु**=आभिमुख्येन सम्यक् प्राप्त हो। हे प्रभो! इस बल के साथ **स्वः वत्**=प्रकाशवाले व सुख के कारणभूत **द्युम्नम्**=ज्ञान प्रकाश को **अस्मे धेहि**=हमारे लिये धारण करिये।

भावार्थ—हे प्रभो! आप हमारे में सब दिशाओं से बल का धारण करिये। बल के साथ हमारे लिये ज्ञान के प्रकाश को भी प्राप्त कराइये। यह ज्ञान का प्रकाश हमारे सुखों का कारण बने।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

उभय वसु-प्राप्ति

नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम्॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **ते**=आपकी **नृतमाभिः ऊती**=नेतृतम-अधिक से अधिक उन्नतिपथ पर ले चलनेवाली रक्षाओं के द्वारा **श्रोमतेभिः**=श्रोतव्य ज्ञानों व यशों के साथ **नृवत्**=उत्तम नरोंवाले **वामम्**=वननीय (सुन्दर) धन को **वंसीमहि**=प्राप्त करें। प्रभु से रक्षित हुए-हुए हम पुरुषार्थ से धनों को प्राप्त करें। ये धन ज्ञान, यश व उत्तम वीर सन्तानों से युक्त हों। इन धनों के कारण हमारे जीवनों में विलास, अपयश व रोग न आ जाएँ। (२) हे **राजन्**=दीप्त प्रभो! आप **उभयस्य**=पार्थिव व दिव्य दोनों **वस्वः ईक्षे**=धनों के ईश हैं। भौतिक धनों को भी तथा अध्यात्म धनों को भी आप ही धारण करते हैं। सो आप **महि**=महान्, **स्थूरम्**=विपुल तथा **बृहन्तम्**=गुणों से परिवृद्ध **रत्नम्**=रमणीय धन को **धाः**=हमारे में धारण करिये।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित होकर हम श्रोतव्य ज्ञानों के साथ वननीय धनों को प्राप्त हों। प्रभु भौतिक व अध्यात्म दोनों धनों को हमारे में धारण करें।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

विश्वासाहं उग्रं सहोदाम्

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम॥ ११॥

(१) हम **नूतनाय**=सदा नवीन व प्रशंसनीय **अवसे**=रक्षण के लिए **इह**=इस जीवन में **तम्**=उस प्रभु को **हुवेम**=पुकारते हैं, जो **मरुत्वन्तम्**=प्रशस्त प्राणोंवाले हैं। वस्तुतः प्रभु इन प्राणों के द्वारा ही हमारा रक्षण करते हैं। इन प्राणों की साधना से हम सदा नीरोग व सशक्त बन पाते हैं। **वृषभम्**=वे प्रभु हमारे में शक्ति का सेचन करनेवाले हैं। प्राणायाम के द्वारा शक्ति का अंग-प्रत्यंग में सेचन होता है। **वावृधानम्**=वे प्रभु खूब ही वृद्धि का कारण हैं। **अकवारिम्**=सब कुत्सित शत्रुओं के अभाववाले हैं। (२) हम उस प्रभु को पुकारते हैं जो **दिव्यम्**=प्रकाशमय **शासम्**=सबके शासक **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यवान् हैं। **विश्वासाहम्**=सब शत्रुओं का मर्षण करनेवाले हैं, **उग्रम्**=तेजस्वी हैं, **सहोदाम्**=बल को देनेवाले हैं। इस बल के द्वारा वे हमें आत्मरक्षण के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु प्रशस्त प्राणशक्ति व बल को देकर हमारा रक्षण करते हैं। हम सदा उस दिव्य परमैश्वर्यशाली तेजः-पुञ्ज शासक का आराधन करें।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

उत्तम 'सन्तान, इन्द्रियाँ व कर्म'

जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु॥ १२॥

(१) एक व्यक्ति अपने सारे परिवार व समाज के कल्याण की कामना करता हुआ प्रार्थना करता है कि हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **येषु अस्मि**=जिन लोगों में मैं भी एक सदस्य हूँ, **एभ्यः**

नृभ्यः=इन लोगों के लिए, इनके रक्षण के लिए उस **जनम्**=मनुष्य को **रन्धया**=वशीभूत करिए जो कि **चित्**=निश्चय से **महि मन्यमानम्**=बहुत ही अभिमान करता है। अभिमान के कारण जो औरों की परेशानी का कारण बनता है, उसको वशीभूत करके आप सबका कल्याण करिये। (२) **अधा**=अब **हि**=निश्चय से **त्वा**=आपको **पृथिव्याम्**=इस पृथिवी पर, इस शरीर में निवास करते हुए **शूरसातौ**=शूरों से सम्भजनीय संग्राम में **हवामहे**=पुकारते हैं जिससे **तनये**=उत्तम सन्तानों को हम प्राप्त कर सकें (=उत्तम तनयों के निमित्त) **गोषु**=उत्तम इन्द्रियों के निमित तथा **अप्सु**=उत्तम कर्मों के निमित्त हम आपको पुकारते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! इस जीवन में हम किसी अभिमानी पुरुष से दब न जायें। जीवन-संग्राम में आपका स्मरण करते हुए उत्तम सन्तानों, इन्द्रियों व कर्मों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सर्वशत्रु विजय

वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोःशत्रोरुत्तर इत्स्याम।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः॥ १३॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **ते**=आपकी **एभिः**=इन **सख्यैः**=मित्रताओं के द्वारा **शत्रोःशत्रो**=प्रत्येक शत्रु से, रोग व वासनारूप सभी शत्रुओं से अथवा 'जामि व अजामि' रूप सब शत्रुओं से (८म मन्त्र) **उत्तरे इत् स्याम**=अधिक ही हों, विजयी ही हों। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **त्वा ऊताः**=आपके द्वारा रक्षित हुए-हुए हम **उभयानि वृत्राणि**=रोग व वासनारूप दोनों वृत्रों को **घ्नन्तः**=नष्ट करते हुए **बृहता राया मदेम**=वृद्धि के कारणभूत ऐश्वर्य से आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता में शत्रुओं को पराजित करके उत्कृष्ट ऐश्वर्य से हम आनन्दित हों।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्ष्यनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

कैसा धन?

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान्।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम्॥ १॥

(१) **यः रयिः**=जो धन **पृत्सु**=संग्रामों में **अर्यः जनान्**=शत्रुभूत पुरुषों को **शवसा**=बल के द्वारा **अभितस्थौ**=इस प्रकार आक्रान्त करता है, **न**=जैसे कि **द्यौः**=देदीप्यमान सूर्य **भूम**=इस पृथिवी पर अधिष्ठित होता है। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमारे लिए **तं दद्धि**=उस धन को दीजिए। हम धन को प्राप्त करके शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले हों, न कि शत्रुओं से शीर्ण हो जानेवाले। (२) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! हमें उस धन को दीजिये जो **सहस्रभरम्**=हजारों का भरण करनेवाला हो। केवल अपना ही पेट भरने के लिए न हो। **उर्वरासां**=(उर्वरा+सन् संभक्तौ) सर्वसस्याढ्य (=उपजाऊ) भूमियों का सम्भजन करनेवाला हो। धन का विनियोग हम भूमि को उपजाऊ बनाने में करें। **वृत्रतुरम्**=जो धन ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करनेवाला हो। ज्ञान प्राप्ति का साधन बनते हुए यह धन वासनाओं को हमारे से दूर करे।

भावार्थ—हमें वह धन दीजिये जो कि—(क) शत्रुओं को पराजित करे, (ख) हजारों का भरण करे, (ग) भूमि को उपजाऊ बनाने में विनियुक्त हो तथा (घ) वासना संहार करनेवाला हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ज्ञान-दिव्यागुण-बल

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्।
अहिं यद् वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥ २ ॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **तुभ्यम्**=तेरे लिए **दिवः न**=ज्ञान की तरह **सत्रा**=सचमुच **देवेभिः**=दिव्य गुणों के साथ **विश्वं असुर्यम्**=सब बल **अनुधायि**=ज्ञान धारण किया जाता है। प्रभु के उपासन के होने पर 'ज्ञान, बल व दिव्यगुणों' की प्राप्ति होती है। उत्तरोत्तर इनकी वृद्धि होती चलती है। (२) **यत्**=जब कि हे **ऋजीषिन्**=ऋजु (सरल) मार्ग से गति करनेवाले जीव! **विष्णुना सचानः**=उस व्यापक परमात्मा से मेलवाला होता हुआ तू **अपः वव्रिवांसम्**=सब कर्मों पर परदा डाल देनेवाले, कर्त्तव्य मार्ग से भ्रष्ट कर देनेवाले, **अहिम्**=(आहन्तारं) सब दृष्टिकोणों से विनाशक **वृत्रम्**=वासनारूप शत्रु को **हन्**=तू विनष्ट करता है। इस वासनारूप शत्रु के विनाश से वह बल प्राप्त होता है, वह ज्ञान व दिव्यगुण प्राप्त होते हैं जिनसे कि हम उत्तरोत्तर आगे बढ़ते चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से 'ज्ञान, दिव्यगुणों व बल' की प्राप्ति होती है, प्रभु से मिलकर हम वासनारूप विनाशक शत्रु का विनाश कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तवसः तवीयान्

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥

(१) **तूर्वन्**=शत्रुओं का हिंसन करता हुआ, **ओजीयान्**=ओजस्वी, **तवसः तवीयान्**=बलवान् से भी बलवत्तर, **कृतब्रह्मा**=(कृतं ब्रह्म येन) सृष्टि के प्रारम्भ में ज्ञान को देनेवाला **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **वृद्धमहाः**=अत्यन्त प्रवृद्ध तेजवाले हैं। (२) ये प्रभु **यत्**=जब **विश्वासां पुराम्**=सब आसुर-पुरियों के **दर्त्नुम्**=विदारक वज्र को **आवत्**=उपासक के जीवन में प्राप्त कराते हैं, तो यह उपासक **सोम्यस्य**=सोम सम्बन्धी **मधुनः**=मधु का (वीर्यशक्ति का) राजा **अभवत्**=राजा होता है। शक्ति को अपने अन्दर सुरक्षित कर पाता है। यह आसुर-पुरियों का विदारक वज्र 'क्रियाशीलता' ही है। क्रियाशील पुरुष वासनाओं से सताया नहीं जाता, और सोम शक्ति का रक्षण कर पाता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं का हिंसन करते हैं। तेजस्वी हैं, हमें ज्ञान देते हैं। ये प्रभु ही हमें क्रियाशील बनाकर हमारी वासनाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दशोणि कवि

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥ ४ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अत्र अर्कसातौ**=यहाँ जीवनयुद्ध में **दशोणये**=(दश

ओणृ अपनयने) दसों इन्द्रियों को विषयों से अपनीत करनेवाले **कवये**=ज्ञानी पुरुष के लिये **पणयः**=(miser, impious man) कृपणता व अपवित्रता की भावनाएँ **शतैः**=सैंकड़ों की संख्या में **अपद्रन्**=दूर भागती हैं। इसके जीवन में कृपणता व अपवित्रता नहीं रहती। (२) **अशुषस्य**=जिसका शोषण बड़ा कठिन है उस **शुष्णस्य**=सुखा देनेवाले इस वासनारूप असुर के **वधैः**=वधों से यह अपने जीवन में **पित्वः मायाः**=पालक पुरुष के प्रज्ञानों को **किंचन**=कुछ भी, जरा भी न **नारिरेचीत्**=पृथक् नहीं होने देता। वासना ही तो ज्ञान पर परदा डालती है, वासना के विनाश से प्रज्ञान का प्रेरचन नहीं होता।

भावार्थ—इन्द्रियों को विषयों से पृथक् करते हुए ज्ञानी पुरुष के लिए कृपणता व अपवित्रता के भाव प्रबल नहीं हो पाते। यह वासना-विनाश के द्वारा पालक प्रज्ञा का विनाश नहीं होने देता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्रोह से दूर

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ॥ ५॥

(१) **यत्**=जब **वज्रस्य**=क्रियाशीलतारूप वज्र के **पतने**=गतिमय होने पर **शुष्णः**=यह सुखा देनेवाला कामासुर **पादि**=(अभ्रियत) मृत्यु को प्राप्त होता है, अर्थात् क्रियाशीलता के द्वारा जब वासना का विनाश होता है तो यह जितेन्द्रिय पुरुष **विश्वायु**=सम्पूर्ण जीवन में **महः द्रुहः**=महान् द्रोह की भावना से **अपधायि**=दूर स्थापित होता है। वासना ही विद्रोह की जननी है। वासना-विनाश में वास्तविक प्रेम उपजता है। (२) **सः**=वह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **सूर्यस्य सातौ**=उस ज्ञान-सूर्य प्रभु की प्राप्ति के निमित्त **कुत्साय**=वासनाओं का संहार करनेवाले **सारथये**=प्रभु रूप सारथि के लिए **उरु**=विशाल **सरथम्**=समान-रथ को **कः**=करता है। जीव प्रभु के साथ जब समान-रथ में स्थित होता है तो वह वासनाओं से अनाक्रान्त हुआ-हुआ ज्ञान-सूर्य को अपने में उत्पन्न कर पाता है।

भावार्थ—हम वासनाओं से ऊपर उठकर द्रोह की भावनाओं से दूर रहें। प्रभु को अपने रथ का सारथि बनाएँ, इसी से वासनाओं से अतिक्रान्त होकर हम ज्ञान-सूर्य के उदय को कर पाएँगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'नमी साप्य व ससत्' बनना

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति॥ ६॥

(१) **श्येनः**=शंसनीय गतिवाले वे प्रभु **अस्मै**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **मदिरम्**=उल्लास के जनक **अंशुम्**=सोम को **प्र (अहरत्)**=प्रकर्षेण प्राप्त कराते हैं। **न**=(च) और **दासस्य**=विनाश के कारणभूत **नमुचेः**=पीछा न छोड़नेवाले इस वृत्र के **शिरः मथायन्**=सिर को प्रभु कुचल देते हैं। नमुचि के विनाश से ही सोम का रक्षण होता है। (२) वे प्रभु **नमीम्**=इस नम्रतावाले **साप्यम्**=उपासनामय जीवनवाले **ससन्तम्**=सांसारिक विषयों के प्रति सोये हुए पुरुष का **प्रावत्**=रक्षण करते हैं। इस नमी को वे **राया**=उत्तम ऐश्वर्य से **संपृणक्**=संयुक्त करते हैं। इस साप्य को वे **इषा**=प्रेरणा से **सम्**=संपृक्त करते हैं, उपासक हृदयस्थ प्रभु से प्रेरणा को प्राप्त करता है। इस 'ससत्' को, सांसारिक विषयों के प्रति सोये हुए पुरुष को **स्वस्ति सं (पृणक्)**=कल्याण से युक्त करते

हैं। सांसारिक भोग-विलासों के प्रति जागृति ही सब दुःखों का कारण बनती है।

भावार्थ—प्रभु हमें उल्लासजनक सोम को प्राप्त करते हैं। हमारे लिये नमुचि (वृत्र) के सिर को कुचलते हैं। नम्र उपासक व सांसारिक विषयों के प्रति सोये हुए का प्रभु रक्षण करते हैं और इन्हें ऐश्वर्य, प्रेरणा व कल्याण से युक्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पिप्रु-पुरी का प्रलय

वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः॥ ७॥

(१) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **न**=(संप्रति) अब आप **अहिमायस्य**=आहन्त्री मायावाले, विनाश ही विनाश की कारणभूत मायावाले **पिप्रोः**=अपना ही पूरण करनेवाले लोभरूप आसुरभाव की **दृढाः**=बड़ी मजबूत **पुरः**=नगरियों को **शवसा**=बल के द्वारा **विदर्दः**=विदारित करते हैं। (२) इस लोभ को नष्ट करके हे **सुदामन्**=शोभन दानवाले प्रभो! **दात्रं दाशुषे**=दान को देनेवाले, हविरूप में धन का त्याग करनेवाले, **ऋजिश्वने**=सरल मार्ग से गति करनेवाले, छल-कपट से रहित पुरुष के लिए **तत्**=उस **अप्रमृष्यम्**=शत्रुओं से बाधित न होनेवाले **रेक्णः**=धन को **दाः**=देते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे लोभ को नष्ट करते हैं। दानशील पुरुष के लिए उस धन को प्राप्त कराते हैं जो वासनारूप शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता, अर्थात् हमें विषय-वासनाओं में नहीं फँसाता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दशमाय दशोणि

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै॥ ८॥

(१) **सः**=वे प्रभु **स्वभिष्टिसुम्नः**=उत्तम अभ्येषणीय (=चाहने योग्य) स्तोत्रोंवाले हैं। ये स्तोत्र ही उपासक के लिए भवसागर को तरानेवाली नौका बनते हैं। **इन्द्रः**=ये परमैश्वर्यशाली प्रभु **वेतसु**=वेतस की तरह नम्र **दशमायम्**=दसों की दसों इन्द्रियों की शक्तिवाले (माया extraordinary power) **दशोणिम्**=दसों इन्द्रियों को विषयों से अवनीत करनेवाले **तूतुजिम्**=शत्रुओं को नष्ट करनेवाले **तुग्रम्**=बलवान् **शश्वत्**=सदा **इभम्**=(अयगत भयं) निर्भयता को धारण करनेवाले पुरुष को **आद्योतनाय**=समन्तात् द्योतित करने के लिए **सीम्**=निश्चय से **मातुः न**=माता के समान इस वेद माता के **उप**=समीप **इयध्यै**=आने के लिए **सृजा**=विसृष्ट करते हैं, निर्मित करते हैं। (२) इस वेद माता के समीप रहता हुआ यह व्यक्ति अपने ज्ञान को दीप्त करके वस्तुतः अपने को श्रेष्ठ बना पाता है। इसके अन्दर यह वेद माता ही 'वेतसुत्व' आदि गुणों का सञ्चार करती है।

भावार्थ—हम वेद माता की गोद में 'नम्र-दसों इन्द्रियों को सशक्त व विषयव्यावृत्त बनानेवाले, शत्रु संहारक, सबल व निर्भय' बन पायें। वेद माता से दी गयी ज्ञान ज्योति हमें ऐसा बनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शत्रु विजय व प्रभु प्राप्ति

स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम्॥ ९॥

(१) **सः**=वह प्रभु-भक्त **ईम्**=निश्चय से **गभस्तौ**=हाथ में **वृत्रहणम्**=वृत्र (वासना) के विनाशक **वज्रम्**=वज्र को **बिभ्रत्**=धारण करता हुआ, **अप्रतीतः**=शत्रुओं से आक्रान्त न होता हुआ **स्पृधः**=इन स्पर्धा करते हुए शत्रुओं को **वनते**=जीतता है, इन शत्रुओं का हिंसन करके विजय को प्राप्त करता है। (२) काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं को जीतकर **हरी तिष्ठत्**=अपने ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों का अधिष्ठाता बनता है। यह **गर्ते अधि**=इस शरीर-रथ पर **अस्ता इव**=शत्रुओं पर बाण फेंकनेवाले के समान स्थित होता है। शत्रुओं को ज्ञान के बाणों से आहत करता हुआ यह अपने से दूर रखता है। कामदेव यदि 'मन्मथ' का रूप धारण करके अपने पञ्चबाणों से इसके ज्ञान को नष्ट करने का यत्न करता है, तो यह ज्ञान के बाणों से काम को विनष्ट करने के लिए यत्नशील होता है। अब ये **वचोयुजा**=इन्द्र के आदेश के अनुसार शरीर-रथ में जुतनेवाले ये इन्द्रियाश्व **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **ऋष्वं वहतः**=उस महान् प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं। वशीभूत इन्द्रियाँ प्रभु प्राप्ति का साधन बनती हैं।

भावार्थ—हम क्रियाशीलता रूप वज्र को धारण करते हुए वासना को विनष्ट करें। इन्द्रियों को वशीभूत करके प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्तोत्रों व यज्ञों से प्रभु का उपासन

सनेम तेऽवसा नव्यं इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन्॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अवसा**=रक्षण के हेतु से **ते**=आपके **नव्यः**=(नु स्तुतौ) उत्कृष्ट स्तोत्र का **सनेम**=सेवन करें। आपका यह स्तवन हमें वासनाओं के आक्रमण से बचानेवाला होगा **पूरवः**=अपना पालन व पूरण करनेवाले लोग **एना**=इस स्तोत्र के साथ **यज्ञैः**=यज्ञों से **प्रस्तवन्त**=शीर्ण करनेवाले 'शरद्' नामक आसुरभाव, कामवासनारूप वृत्र की पुरियों को **शर्म**=(शृ हिंसायाम्) (शर्मणा) वज्र के द्वारा **दर्त्**=विदीर्ण करते हैं तो इन **दासीः**=कर्मों का उपक्षय करनेवाली सभी वासनाओं को **हन्**=विनष्ट करते हैं और **पुरुकुत्साय**=इस पुरुकुत्स के लिए **शिक्षन्**=धनों को (ऐश्वर्यों को) प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम स्तोत्र व यज्ञों से प्रभु का उपासन करें। प्रभु ही हमारी वासनाओं को विनष्ट करके हम वास्तविक ऐश्वर्य प्राप्त करायेंगे।

सूचना—'कर्णाविमौ नासिके अक्षणी मुखम्' ये सात शरीरस्थ ऋषि हैं। इनके आश्रमों को आक्रान्त करके वासनाएँ अपने 'पुर्' बना लेती हैं, ये ही तब 'सात पुर' (सप्त शारदीः पुरः) कहलाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु-दत्त धन को प्रभु का ही जानें

त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम्॥ ११॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **उशने काव्याय**=आपकी प्राप्ति की कामनावाले ज्ञानी पुरुष के लिए **वृधः**=(वर्धकः) वृद्धि को करनेवाले व **पूर्व्यः**=पालन व पूरण करनेवाले **भूः**=होते हैं। **वरिवस्यन्**=इसके लिए धनों को चाहते हैं (वरिवः इच्छति)।

(२)हे उपासक! तू इस **नववास्त्वम्**=(नु स्तुतौ) स्तुत्य निवास के साधनभूत **अनुदेयम्**=अनुदातव्य धन को **महे पित्रे**=उस महान् पिता के लिए **परादाथ**=वापिस लौटा देता है। इस प्रकार इस धन को **'स्वं नपातम्'**=अपने को न गिरने देनेवाला बनाता है। वस्तुतः प्रभु से दत्त ऐश्वर्य को प्रभु का ही समझें और इस प्रकार उसका विलास में व्यय न कर, लोकहित में ही विनियोग करें तो यह धन हमारे पतन का कारण नहीं बनता। हम अपने को धन का केवल ट्रस्टी (रक्षक) समझें, धन को प्रभु का ही जानें।

भावार्थ—प्रभु हमें धनों को देकर बढ़ाते व पालते हैं। हम इस प्रभु से अनुदातव्य धन को प्रभु का ही जानें। अपने को केवल उसका रक्षक समझें, इस प्रकार यह धन हमारे पतन का कारण न होगा।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सीराः न स्रवन्तीः

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वं धुनिः**=आप शत्रुओं को कम्पित करनेवाले हैं। **धुनिमतीः**=शत्रु-कम्पन शक्तिवाली, **सीराः न स्रवन्तीः**=नदियों की तरह बहती हुई, अर्थात् शान्त व नम्रभाव से अपने क्रियाकलाप को करती हुई **अपः**=प्रजाओं को आप **ऋणोः**=प्राप्त होते हैं। वस्तुतः प्रभु हमारे कर्मों से ही पूजित होते हैं, कर्मों द्वारा पूजन करनेवाले व्यक्ति को प्रभु प्राप्त होते हैं। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **यत्**=जब **समुद्रं अतिपर्षि (कामो हि समुद्रः)**=आप इस कामरूप समुद्र के पार ले जाते हो तो **तुर्वशम्**=इस त्वरा से वश में करनेवाले **यदुम्**=यत्नशील मनुष्य को **स्वस्ति पारया**=कल्याण के लिए भवसागर के पार प्राप्त कराते हो। काम-समुद्र को पार करना ही भवसागर को पार करना है।

भावार्थ—प्रभु उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो नम्र व शान्तभाव से अपने कर्त्तव्य कर्मों में लगे रहें। इन्हीं में शत्रु-कम्पन शक्ति उत्पन्न होती है। ये ही काम-समुद्र को पार करके भवसागर को तैरते हैं और कल्याण को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

कौन चमकता है?

तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप्।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः॥ १३॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु-विनाशक प्रभो! **ह**=निश्चय से **त्यत् विश्वम्**=वह सब **तव**=आपका ही कार्य है कि **आजौ**=संग्राम में **धुनी**=कम्पित कर देनेवाला क्रोधासुर तथा **चुमुरी**=आचमन कर जानेवाला, शक्ति को चूस लेनेवाला कामासुर **सस्तः**=सोये पड़े हैं, **या**=जिनको **ह**=निश्चय से **सिष्वप्**=आपने ही सुलाया, मारकर इन्हें आपने ही धराशायी किया। (२) **तुभ्यम्**=हे प्रभो! आपकी प्राप्ति के लिए **सोमेभिः**=सोमरक्षणों के द्वारा **सुन्वन्ति**=आपका अभिषव करता हुआ, हृदय में आपका दर्शन करता हुआ, **दभीतिः**=वासनाओं का हिंसन करनेवाला **इध्मभृतिः**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक के पदार्थों के ज्ञानरूप तीन समिधाओं का भरण करता हुआ **अर्कैः पक्थी**=स्तुति-साधन मन्त्रों के द्वारा ज्ञान का परिपाक करनेवाला व्यक्ति **दीदयत् इत्**=निश्चय से ही होता है।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे क्रोध व काम का संहार करते हैं। 'सोमरक्षक-वासनारूप शत्रुओं का नाशक-ज्ञान-समिधाओं का धारक, मन्त्रों द्वारा ज्ञान का परिपाक करनेवाला' व्यक्ति ही संसार में चमकता है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पुरुतम कारु'

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या॥ १॥

(१) हे **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले प्रभो! **पुरुतमस्य**=(तमु अभिकांक्षायाम्) आपकी प्राप्ति की प्रबल कामनावाले **कारोः**=कुशलता से कर्मों को करनेवाले स्तोता की **इमाः**=ये **हव्याः**=आपको पुकारनेवाली **धियः**=स्तुतियाँ, ज्ञानपूर्वक किये गये स्तोत्र **उ**=निश्चय से **हव्यम्**=स्तुत्य **त्वा**=आपको **हवन्ते**=पुकारती हैं। यह 'पुरुतम कारु' आपको ही स्तुतियों के द्वारा पुकारता है। (२) हे प्रभो! आप ही **रथेष्ठाम्**=इस शरीर रथ के सारथि हैं, **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले **नवीयः**=अतिशयेन स्तुत्य हैं। हे प्रभो! आपको ही **रयिः**=सम्पूर्ण धन **विभूतिः**=विभव के हेतुभूत सब ऐश्वर्य तथा **वचस्या**=स्तुति **ईयते**=प्राप्त होती है। सब धनों व ऐश्वर्यों के स्वामी आप हैं तथा सब स्तुति अन्ततः आपकी ही है।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति की प्रवल कामनावाला स्तोता प्रभु को ही पुकारता है। सब धन, ऐश्वर्य व स्तुति अन्ततः प्रभु की ही है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञवृद्धं गिर्वाहसम्

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम्।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम्॥ २॥

(१) **तं इन्द्रं उ**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **स्तुषे**=मैं स्तुत करता हूँ **यः**=जो **विदानः**=सर्वज्ञ हैं। **गिर्वाहसम्**=ज्ञान की वाणियों का वहन (धारण) करनेवाले हैं। **गीर्भिः**=स्तुति वाणियों से **यज्ञवृद्धम्**=यज्ञों में वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अर्थात् स्तुतियों व यज्ञों द्वारा प्रभु के प्रकाश का अन्तःकरण में वर्धन होता है। (२) **यस्य पुरुमायस्य**=जिस अनन्त प्रज्ञानवाले प्रभु की **महित्वम्**=महिमा **दिवं अति रिरिचे**=सूर्य को व द्युलोक को लांघ जाती है। जो प्रभु सूर्य से अधिक दीप्त हैं और द्युलोक से अधिक विशाल हैं। वे प्रभु **मह्ना**=अपनी महिमा से **पृथिव्याः अतिरिरिचे**=पृथिवी से बहुत अधिक बढ़े हुये हैं। द्युलोक व पृथिवीलोक प्रभु की महिमा को सीमित नहीं कर पाते।

भावार्थ—मैं प्रभु का स्तवन करता हूँ जो सर्वज्ञ हैं, स्तुतियों व यज्ञों द्वारा प्राप्त होते हैं और जो अपनी महिमा से द्युलोक व पृथिवीलोक से भी महान् हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अहिंसा व स्वर्ग प्राप्ति

स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ ३ ॥

(१) **सः**=वें प्रभु **इत्**=ही **ततन्वत्**=वृत्र से, वासना से विस्तीर्यमाण **अवयुनम्**=प्रज्ञान-नाशक **तमः**=अन्धकार को **सूर्येण**=मस्तिष्करूप द्युलोक में उदित किये गये ज्ञानसूर्य से **वयुनवत् चकार**=प्रकाशवाला कर देते हैं। ज्ञान सूर्योदय से अज्ञान्धकार को नष्ट करके प्रभु हमारी वासनाओं को विलीन कर देते हैं। (२) हे **स्वधावः**=(स्व+धाव्=शुद्धि) अज्ञानान्धकार के विनाश के द्वारा आत्मा को शुद्ध कर देनेवाले प्रभो! **मर्ताः**=मनुष्य **अमृतस्य ते**=अमरणधर्मा तेरे **धाम**=मोक्षरूप स्थान को, अमृत लोक को **इयक्षन्तः**=अपने साथ संगत करने की कामनावाले होते हुए **कदा (कदाचित्)**=कभी भी **न मिनन्ति**=हिंसा को नहीं करते हैं। हिंसा से ऊपर उठकर ही वे मोक्ष को प्राप्त करने के पात्र बनते हैं।

भावार्थ—वासना जनित अन्धकार को प्रभु ज्ञानसूर्योदय से विनष्ट करते हैं। ज्ञान प्राप्त मनुष्य मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से सर्व प्राणि विहिंसा का वर्जन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'यज्ञ-अर्क-होतृत्व'

यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥ ४ ॥

(१) **यः**=जो **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **ता**=उन वृत्रवध (वासना-विनाश) व अज्ञान नाश आदि कार्यों को **चकार**=करते हैं, **सः कुहस्वित्**=वे कहाँ हैं? **कं जनं आचरति**=किस मनुष्य को ये प्रभु प्राप्त होते हैं? **कासु विक्षु**=किन प्रजाओं में प्रभु का वास है? (२) हे प्रभो! **कः**=कौन-सा **ते यज्ञः**=आपका यज्ञ मनसे **शम्**=मन के लिए शान्ति को देनेवाला है? **कः अर्कः**=कौन-सा स्तुति साधन मन्त्र **वराय**=आपके वरण के लिए होता है? **कतमः**=कौन-सा **सः**=वह **होता**=यज्ञशेष का सेवन करनेवाला, दानपूर्वक अदन करनेवाला, व्यक्ति है जो आपका वरण कर पाता है? (३) यहाँ मन्त्र के पूर्वार्ध में तीन प्रश्न हैं—(क) वे प्रभु कहाँ हैं, (ख) किस मनुष्य को प्राप्त होते हैं? (ग) किन प्रजाओं में वसते हैं? उत्तरार्ध में प्रश्नों की ही शैली पर उत्तर दिये गये हैं—(क) जहाँ यज्ञ मानस शान्ति का कारण बनते हैं वहाँ प्रभु हैं, (ख) जो स्तुति साधन मन्त्रों का स्वीकार करता है उसे प्रभु प्राप्त होते हैं, (ग) होताओं में, यज्ञशील प्रजाओं में प्रभु का वास है।

भावार्थ—हम 'यज्ञों को, स्तुति-साधन मन्त्रों को तथा होतृत्व दानपूर्वक अदन को' अपनाकर प्रभु को पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

क्रियाशीलता व प्रभु मित्रता

इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ ॥

(१) **इदा हि (इदानीम् इव)**=अब की तरह **ते**=वे **वेविषतः**=कर्मों में व्याप्त होनेवाले **पुराजाः**=पूर्वकाल में उत्पन्न हुए-हुए **प्रत्नासः**=पुराणे 'अग्नि, वायु, आदित्य व आंगिरा' आदि ऋषि हे **पुरुकृत्**=पालक व पूरक कर्मों को करनेवाले प्रभो! **सखायः आसुः**=आपके मित्र थे। कर्मशील पुरुष ही प्रभु का मित्र होता है, अकर्मण्य नहीं। (२) **ये मध्यमासः**=जो मध्यम काल में होनेवाले कर्मशील पुरुष थे **उत**=और **नूतनासः**=इस नवयुग में होनेवाले क्रियाशील पुरुष हुए वे सब आपके मित्र हैं, आपकी मित्रता उन्हें सदा प्राप्त रही है। हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभो! **उत**=और **अवमस्य**=इस सब से अवम काल में स्थित व सब से अवम (lowest) स्थिति में स्थित मुझ उपासक का भी **बोधि**=आप ध्यान करें, मैं आपकी कृपादृष्टि से वञ्चित न होऊँ।

भावार्थ—प्रभु सब कालों में क्रियाशील उपासकों के मित्र हैं। मैं भी प्रभु की मित्रता का पात्र बनूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

महान् और अति महान्

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले प्रभो! **अवरासः**=अवर काल में होनेवाले स्तोता लोग सृष्टि के निर्माण के बाद शरीरों को प्राप्त करनेवाले स्तोता **तम्**=उन आपको **पृच्छन्तः**=जानने की कामना करते हुए **ते**=आपके **पराणि**=उत्कृष्ट **प्रत्ना**=सनातन **श्रुत्या**=श्रोतव्य कर्मों को **अनुयेमुः**=स्तुतिरूप वाणियों में निबद्ध करते हैं, आपके कर्मों का स्तोत्रों द्वारा कीर्तन करते हैं। (२) हे **ब्रह्मवाहः**=ज्ञान की वाणियों को, वेद को वहन करनेवाले **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले प्रभो! **यात् एव विद्म**=जितना-जितना आपको जानते हैं **तात्**=उतना ही **महान्तम्**=महान् **त्वा**=आपकी **अर्चामसि**=अर्चना करते हैं। जितना-जितना आपका ज्ञान प्राप्त होता है, आप उतने-उतने ही महान् प्रतीत होते हो। आपकी महत्ता का कीर्तन करते हुए हम भी महान् बनने का प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ—प्रभु के सनातन श्रोतव्य कर्मों का स्तोत्रों द्वारा हम कीर्तन करते हैं। जितना-जितना प्रभु के जान पाते हैं, उतना-उतना ही वे बड़े दिखते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रत्न सखा 'वज्र'

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व॥ ७॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि **त्वा अभि**=तेरी ओर तेरे सामने **रक्षसः पाजः**=यह राक्षसीभावों का सेनारूप बल **वितस्थे**=विशेषरूप से स्थित हुआ है, तेरे पर आक्रमण के लिए यह तैयार है **महि जज्ञानम्**=महान् प्रादुर्भूत होते हुए **तत्**=उस सैन्य को **अभि सुतिष्ठः**=लक्ष्य करके सम्यक् स्थित हो, उस पर आक्रमण के लिए सावधान होकर स्थित हो। (२) हे **धृष्णो**=धर्षणशील शत्रुओं का पराभव करनेवाले जीव! **तव**=तेरे **प्रत्नेन**=सनातन, सदा के **युज्येन सख्या**=साथ रहनेवाले मित्र **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र से **ता**=उनको **अपनुदस्व**=परे धकेल दे। क्रियाशीलतारूप वज्र द्वारा इनका तू निराकरण करनेवाला हो।

भावार्थ—क्रियाशीलता रूप वज्र से हम निरन्तर आक्रमण करनेवाले राक्षसी भावों को अपने से दूर करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

अनुग्रह-याचना

प्रभु प्रेरणा को सुनकर जीव प्रार्थना करता है—

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।
त्वं ह्या३पिः प्रदिवि पितृणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ॥ ८॥

(१) हे **कारुधायः वीर**=स्तोताओं का धारण करनेवाले, शत्रु कम्पक **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः**=वे आप **तु**=निश्चय से **नूतनस्य**=मुझे नये **ब्रह्मण्यतः**=स्तोत्रों को अपनाने की कामनावाले की प्रार्थना को **श्रुधि**=सुनिये। मैं भी आपकी कृपा से वीर बनूँ, शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाला होऊँ। (२) **त्वं हि**=आप ही **प्रदिवि**=पुराण काल में **पितृणाम्**=पितरों के, रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त पुरुषों के **अपिः**=बन्धु हुए हैं। आप ही **शश्वत्**=सदा **इष्टौ**=यज्ञों में उस-उस कामना को समय पर **सुहवः**=सुगमता से पुकारने योग्य **आबभूथ**=होते हैं। सब कोई आपको ही पुकारता है। वस्तुतः इस राक्षस सैन्य के आक्रमण के समय आपने ही तो मेरी सहायता करनी है।

भावार्थ—हे प्रभो! आप सदा पालनात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोगों के रक्षक होते हैं। मुझ नये स्तोता के आह्वान को सुनिये। आपके अनुग्रह से मैं भी 'वीर' बनूँ। शत्रुओं को कम्पित करके दूर कर सकूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उत्तम जीवन

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च॥ ९॥

(१) हे प्रभो! **अद्य**=आज **नः**=हमारे **ऊतये**=रक्षण के लिए **वरुणम्**=द्वेष निवारण की देवता को **मित्रम्**=स्नेह की देवता को **इन्द्रम्**=जितेन्द्रियता के दिव्यभाव को **मरुतः**=प्राणों को **प्रकृष्व**=करिये। ये सब **अवसे**=हमारे जीवन की दीप्ति के लिए हों। हम 'निर्द्वेष, स्नेही, जितेन्द्रिय व प्राणसाधक' बनकर अपने जीवन को दीप्त बना सकें। (२) हे प्रभो! आप **पूषणम्**=पोषण की देवता को, **विष्णुम्**=व्यापकता व उदारता के दिव्यभाव को, **अग्निम्**=आगे बढ़ना व उन्नति के भाव को, **पुरन्धिम्**=पालक बुद्धि को, **सवितारम्**=निर्माण की देवता को **प्र (कृष्व)**=हमारे लिये करिये। **ओषधीः**=ओषधियों को **च**=और **पर्वतान्**=पर्वतों को भी हमारे रक्षण का साधन बनाइये। 'ओषधि' शब्द आचार्य के लिए भी प्रयुक्त होता है (आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः) 'पर्वत' वे व्यक्ति हैं जो समाज की न्यूनताओं को दूर कर उनके पूरण में प्रवृत्त हैं। ये ओषधि पर्वत भी हमारे रक्षण व दीपन के लिए हों।

भावार्थ—प्रभु कृपा से स्नेह व निर्द्वेषता के भाव, जितेन्द्रियता व प्राणसाधना की शक्ति हमें प्राप्त हो। हम शरीर का उचित पोषण करनेवाले, उदार वृत्तिवाले प्रगतिशील व पालक बुद्धि से युक्त हों। सदा निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त हों। उत्तम आचार्यों व समाज-सुधारकों के सम्पर्क में आएँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति व अमृतत्व

इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥ १० ॥

(१) हे **पुरुशाक**=अनन्त शक्तिवाले, **प्रयज्यो**=प्रकर्षेण पूजनीय प्रभो! **इमे**=ये **जरितारः**=स्तोता लोग **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **अर्कैः**=स्तुतिसाधन मन्त्रों से **अभ्यर्चन्ति**=पूजते हैं। आपकी उपासना से ही तो वस्तुतः शक्ति प्राप्त होती है। (२) हे प्रभो! **हुवानः**=पुकारे जाते हुए आप **आहुवतः**=पुकारते हुए मेरी **हवम्**=पुकार को **श्रुधि**=सुनिये। हे **अमृत**=अविनाशी प्रभो! **त्वावान्**=आप जैसा **त्वद् अन्यः**=आप से भिन्न **न अस्ति**=नहीं है। आप ही हमारी सब कमियों को दूर कर सकते हैं। आपने ही हमें अमरता प्रदान करनी है।

भावार्थ—प्रभु का ही स्तवन करना योग्य है। प्रभु ने ही हमें शक्ति व अमृतत्व प्राप्त कराना है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अग्निजिह्वा ऋतसापः' देव

नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥ ११ ॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! **विद्वान्**=सर्वज्ञ होते हुए आप **विश्वेभिः यजत्रैः**=सब यजनीय देवों के साथ **मे वाचम्**=मेरे से की जाती हुई इस स्तुतिवाणी को **नू**=निश्चय से **उप आयाहि**=समीपता से प्राप्त होइये। मैं आपका स्तवन करूँ और सब दिव्य गुणों को प्राप्त करनेवाला बनूँ। (२) मैं उन देवों (=विद्वानों) के सम्पर्क में आऊँ, **ये**=जो **अग्निजिह्वाः**=अग्नि के समान जिह्वावाले हैं, अर्थात् ज्ञानोपदेश द्वारा सब बुराइयों को दग्ध करनेवाले हैं और **ऋतसापः आसुः**=यज्ञों का सेवन करनेवाले हैं। सदा उत्तम कर्मों में लगे रहते हैं। **ये**=जो हमें **मनुम्**=ज्ञानवाला **उपरम्**=वासनाओं से ऊपर उठनेवाला तथा **दसाय चक्रुः**=वासनाओं के उपक्षय के लिए करते हैं। जो हमें अपने ज्ञानोपदेश तथा जीवन से प्रभावित करके वासनाओं के संहार में समर्थ करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारी प्रार्थना को सुनें, हमें दिव्यभावों को प्राप्त कराएँ। प्रभु कृपा से हमें उन ज्ञानियों का सम्पर्क प्राप्त हो जो हमें ज्ञान देकर वासनाओं के पराभव के लिए समर्थ करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अश्रमासः उरवः वहिष्ठाः' इन्द्रियाश्व

स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥ १२ ॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिए **पुरः एता**=आगे चलनेवाले, अर्थात् मार्गदर्शक **बोधि**=होइये (भव)। **सुगेषु**=सुगमता से जाने योग्य मार्गों में **उत**=और **दुर्गेषु**=दुःखेन गन्तव्य स्थानों में **पथिकृत्**=आप हमारे लिए मार्ग को करनेवाले हों। **विदानः**=आप ही सर्वज्ञ हैं। आप ही हमारे लिए ठीक मार्ग का ज्ञान देने में समर्थ हैं। (२)

ये=जो आपके **अश्रमासः**=न जल्दी थक जानेवाले, **उरवः**=विशाल, **वहिष्ठाः**=सर्वोत्तम शरीर-रथ का वहन करनेवाले इन्द्रियाश्व हैं, **तेभिः**=उन इन्द्रियाश्वों के द्वारा **नः**=हमें **वाजं अभिवक्षि**=शक्ति की ओर ले चलिए।

भावार्थ—प्रभु (क) हमारे लिये मार्ग-दर्शन करें, (ख) उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराएँ, (ग) शक्ति को दें।

अग्ले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

एक मात्र पूज्य प्रभु

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्॥ १ ॥

(१) **यः**=जो **एकः इत्**=एक ही **चर्षणीनाम्**=सब मनुष्यों का **हव्यः**=आह्वातव्य होता है, **तं इन्द्रम्**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु को **आभिः गीर्भिः**=इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति-वाणियों से **अभ्यर्च**=पूजनेवाला हो। स्तुत हुए-हुए प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर तू शत्रुओं का पराभव कर सकेगा। (२) **यः**=जो प्रभु **पत्यते**=सब ऐश्वर्यों के मालिक हैं, **वृषभः**=(कामानां वर्षिता) सब इष्ट पदार्थों का वर्षण करनेवाले, **वृष्ण्यावान्**=बलवान् हैं **सः**=वे **सत्वा**=शत्रुओं के विनाशक (सद्) व सब धनों के प्रापक (सज्), **पुरुमायः**=अनन्त प्रज्ञानवाले व **सहस्वान्**=शत्रुमर्षक शक्तिवाले हैं।

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि एक मात्र प्रभु का ही पूजन करे। ये प्रभु शक्ति देंगे, प्रज्ञान को प्राप्त करायेंगे और इस प्रकार सब कामनाओं को पूर्ण करेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पूर्व-पिता-नवग्व-सप्त विप्र'

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्॥ २ ॥

(१) **नः**=हमारे **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले, **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में व्यापृत **नवग्वाः**=स्तुत्य गतिवाले **सप्त विप्रासः**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सातों का पूरण करनेवाले लोग **उ**=निश्चय से **तं अभि वाजयन्तः**=उस प्रभु की ओर अपने को ले जा रहे होते हैं (गमयन्तः)। प्रभु प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम 'पूर्व बनें, पिता बनें, नवग्व व सप्त-विप्र' बनें। (२) उस प्रभु की ओर अपने को ले जाते हैं जो कि **नक्षद्दाभम्**=अभिगन्ता शत्रुओं का हिंसन करते हैं, **ततुरिं**=भवसागर से तराते हैं, **पर्वतेष्ठाम्**=(पर्व पूरणे) अपना पूरण करनेवाले व्यक्तियों में स्थित होते हैं, **अद्रोघवाचम्**=द्रोह शून्य वाणीवाले हैं और **मतिभिः शविष्ठम्**=प्रज्ञानों के साथ बलवत्तम हैं। अपनी ओर आनेवालों को भी प्रभु ऐसा ही बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यह है कि हम (क) अपनी न्यूनताओं को दूर करें (पूर्व), (ख) रक्षणात्मक कामों में व्यापृत हों (पिता), (ग) स्तुत्य गतिवाले बनें, प्रशस्त कर्मोंवाले (नवग्व), (घ) दोनों कानों, नासिकाछिद्रों, आँखों व मुख को सब कमियों से रहित करने का प्रयत्न करें (सप्त विप्र)। प्रभु की उपासना शत्रु संहार द्वारा हमें भवसागर से तरायेगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

कैसा धन!

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै॥ ३॥

(१) **तं इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु से **अस्य**=इस **पुरुवीरस्य**=बहुत वीर सन्तानोंवाले, **नृवतः**=प्रशस्त पुरुषोंवाले, **पुरुक्षोः**=पालक व पूरक अन्नवाले **रायः**=धन की **ईमहे**=याचना करते हैं। उस धन को चाहते हैं, जो कि हमारे सन्तानों की वीरता का साधन बने, हमारे गृह के सब पुरुषों को प्रशस्त जीवनवाला बनाए, हमें उस अन्न को प्राप्त कराये जो हमारा पालन व पूरण करे। (२) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले प्रभो! **तम्**=उस धन को **मादयध्यै**=आनन्द प्राप्ति के लिए **आभर**=प्राप्त कराइये **यः**=जो **अस्कृधोयुः**=(कृधु=अल्प) अनल्प है, अविच्छिन्न रूप से प्राप्त होनेवाला है। **अजरः**=शक्तियों की जीर्णता का कारण नहीं होता। और **स्वर्वान्**=प्रकाश व सुखवाला है, ज्ञान प्राप्ति का साधन बनता हुआ वास्तविक आनन्द को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—प्रभु हमें वह धन दें जो (क) हमारे सन्तानों को वीर बनाये, (ख) हम गृहवासियों के जीवन को प्रशस्त करे, (ग) पालक व पूरक अन्न को प्राप्त कराये, (घ) अविच्छिन्न रूप से प्राप्त होता रहे, (ङ) शक्तियों को जीर्ण न करे, (च) प्रकाश व सुख प्राप्ति का साधन बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

कस्ते भागः किं वयः?

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यदि**=यदि **पुरा**=पहले **चित्**=निश्चय से **जरितारः**=स्तोता लोग **ते**=आपसे **सुम्नं आनशुः**=सुख व रक्षण को (joy, protection) प्राप्त हुए, तो **नः**=हमारे लिए भी आप **तत् विवोचः**=उन स्तोताओं का ज्ञान दीजिए। हम भी उन स्तोत्रों को करते हुए सुख व रक्षण के पात्र बन पाएँ। (२) हे **दुध्र**=शत्रुओं से **दुर्धर**=बलवाले, **खिद्वः**=शत्रुओं को खदेड़नेवाले, **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे गये, **पुरूवसो**=पालक व पूरक वसुओंवाले प्रभो! **असुरघ्नः**=आसुरभावों को विनष्ट करनेवाले **ते**=आपका **कः भागः**=(भज सेवायाम्) उपासना का साधनभूत स्तोत्र कौन-सा है **किं वयः**=और आपके पूजन के लिए कौन-सा हविर्लक्षण अन्न है। अर्थात् किस प्रकार स्तवन व यज्ञों को करते हुए हम आपको प्रीणित करनेवाले हों।

भावार्थ—हम स्तवन व यज्ञों द्वारा प्रभु का आराधन करते हुए प्रभु से सुख व रक्षण को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वेपी वक्वरी' गीः

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ॥ ५॥

(१) **तम्**=उस **वज्रहस्तम्**=हाथ में वज्र लिए हुए **रथेष्ठाम्**=शरीर-रथ में स्थित **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक प्रभु को **पृच्छन्ती**=जानने की कामना करती हुई **यस्य**=जिस उपासक की **गीः**=वाणी

नु=निश्चय से **वेपी**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाला व **वक्करी**=प्रभु के स्तुति-वचनों का उच्चारण करनेवाली होती है, वह **गातुं इषे**=मार्ग पर चलता है और **तुम्रम्**=उस शत्रुओं के संहारक प्रभु की **अच्छ**=और **नक्षते**=गति करता है। (२) यह 'वेपी वक्करी' गिरावाला स्तोता इस प्रभु की ओर गति करता है जो **तुविग्राभम्**=महान् ग्रहीता हैं, सारे ही ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर लिए हुए हैं, **तुविकूर्मिम्**=महान् कर्मों के करनेवाले हैं, अनन्त विस्तृत से लोकों के बनाने व धारण करनेवाले हैं, **रभोदाम्**=बल को देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु का स्तवन करनेवाला मार्ग पर चलता हुआ प्रभु की ओर बढ़ता है। प्रभु इसके लिए बल को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

असुर-पुर विदारण

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन्॥ ६॥

(१) हे **स्वतवः**=स्वभूत बल स्वयं बलशालिन् प्रभो! आप **त्यम्**=उस **अया मायया**=निश्चय से इस माया के द्वारा, संसार जाल के द्वारा, **वावृधानम्**=खूब वृद्धि को प्राप्त होते हुए वासनारूप वृत्र को **मनोजुवा**=मनोवद् वेगवाले **पर्वतेन**=बहुत पर्वोंवाले वज्र से **विरुजः**=भग्न करिये, नष्ट करिये। (२) हे **स्वोजः**=उत्तम ओजवाले **विरप्शिन्**=महान् प्रभो! आप **अच्युता चित्**=जिन्हें स्थान विचलित करना बड़ा कठिन है ऐसे **वीडिता**=अशिथिल **दृढा**=दृढ़ आसुर-पुरियों को **धृषता**=धर्षक वज्र के द्वारा (विरुजः=) नष्ट करते हो।

भावार्थ—इस मायामय संसार में निरन्तर बढ़ती हुई प्रबल वासना को उपासक प्रभु कृपा से ही क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा विनष्ट कर पाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अनिमानः सुवह्मा

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि॥ ७॥

(१) **तम्**=उस **शविष्ठम्**=बलवत्तम **वः प्रत्नम्**=तुझ सनातन पुरुष को **प्रत्नवत्**=अपने से पहले ज्ञानियों की तरह **नव्यस्या धिया**=स्तुत्य ज्ञानपूर्वक कर्मों के द्वारा **परितंसयध्यै**=(तंस to decorate) अपने जीवन में अलंकृत करने का प्रयत्न करता हूँ। प्रभु-स्मरण के द्वारा प्रभु को हृदय में स्थापित करता हुआ मैं अपने जीवन को सुशोभित करता हूँ। (२) **सः**=वह **अनिमानः**=परिमाणरहित, देशकाल से असीमित, **सुवह्मा**=उत्तमता से सारे संसार का वहन करनेवाला **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **नः**=हमें **विश्वानि**=सब **दुर्गहाणि**=दुःखों के **अतिवक्षत्**=पार ले जानेवाले हों। वे प्रभु हमारे जीवनों में पैदा हो जानेवाली पेचीदी समस्याओं को सुलझा दें।

भावार्थ—स्तुत्य कर्मों द्वारा हम प्रभु को अपने जीवन में सुशोभित करें। प्रभु हमें दुर्गों व संकटों के पार ले जानेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्रोह व संताप

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥

(१) हे **वृषन्**=शक्तिशालिन् प्रभो! आप **द्रुह्वणे जनाय**=द्रोह-जिघांसा की भावना से युक्त पुरुष के लिए **पार्थिवानि**=पृथिवी सम्बन्धी, **दिव्यानि**=द्युलोक सम्बन्धी व **अन्तरिक्षा**=अन्तरिक्ष सम्बन्धी सब पदार्थों को **आदीपयः**=संतापवाला करिये। ये सब त्रिलोकी के पदार्थ द्रोग्धा पुरुष को संताप देनेवाले हों। (२) हे **वृषन्**=शक्तिशालिन्! तू **तान्**=उन द्रोही जनों को **शोचिषा**=अपनी दीप्ति से, **विश्वतः**=सब ओर से **तपा**=संतप्त कर। **ब्रह्मद्विषे**=इस ज्ञान के साथ अप्रीतिवाले पुरुष के लिए **क्षाम्**=इस पृथिवी को **च अपः**=और जलों को भी **शोचय**=दीप्त (संतप्त) कर। इनकी अग्नि में वे द्रोही दग्ध हो जाएँ।

भावार्थ—द्रोह की भावनावाले के लिए सारा संसार संतापक हो जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

माया-विनाश

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **दिव्यस्य जनस्य**=दिव्य वृत्तिवाले लोगों के **राजा भुवः**=राजा होते हैं, इनके जीवनों को ज्ञानदीप्त व व्यवस्थित करते हैं। **त्वेषसंदृक्**=दीप्त ज्ञानवाले प्रभो! **पार्थिवस्य जगतः**=इस पार्थिव जगत् के भी, अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारे आदि के भी **राजा**=शासक व नियामक हैं। आपके भय से ही ये सब अपनी-अपनी मर्यादा में घूम रहे हैं (२) **इन्द्र**=हे परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **दक्षिणे हस्ते**=दाहिने हाथ में **वज्रं धिष्व**=वज्र को धारण कीजिए, और उससे हे **अजुर्य**=कभी जीर्ण न होनेवाले प्रभो! आप **विश्वाः मायाः**=सब असुर मायाओं को **विदयसे**=बाधित करते हैं। प्रभु कृपा से ही उपासक आसुरभावों पर विजय पा सकता है।

भावार्थ—प्रभु ही दिव्य जनों के जीवन को दीप्त करते हैं। वे ही सूर्यादि को भी मर्यादाओं में चला रहे हैं। प्रभु ही अपने वज्र से सब आसुर मायाओं का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

संयतं स्वस्तिम् (संयम का शुभ मार्ग)

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शक्तिशाली कार्यों को करनेवाले प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **वृत्र तूर्याय**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं के विनाश के लिए **बृहतीम्**=वृद्धि की कारणभूत **अमृध्राम्**=हिंसारहित **संयतं स्वस्तिम्**=संयमरूप कल्याण के मार्ग को **आ करः**=सर्वथा करिये। हम संयत शुभ जीवनवाले होकर वासनाओं से दूर रहें। (२) आप उस संयमवृत्ति को हमारे लिये करिये कि **यथा**=जिससे **दासानि**=कर्मरहित लोगों को **आर्याणि**=कर्मयुक्त (ऋ गतौ) **करः**=कर

दीजिये और हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **नाहुषाणि**=मनुष्य-सम्बन्धी **वृत्रा**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **सुतुका**=अच्छी प्रकार (पूर्णतया) हिंसायुक्त करिये, अर्थात् वासनाओं का सम्यक् विनाश करके ज्ञान को दीप्त करिये।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हम संयम के शुभ मार्ग पर चलते हुए वासनाओं से दूर रहें। कर्महीनता को परे फेंक कर्मशील बनें। वृत्र का पूर्ण विनाश करने में समर्थ हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वरणीय इन्द्रियाश्व

स नो॑ नि॒युद्भिः॑ पुरुहूत वेधो वि॒श्ववा॑राभि॒रा ग॑हि प्रयज्यो।
न या अदे॑वो॒ वर॑ते॒ न दे॒व आ॒भिर्या॑हि॒ तूय॒मा म॑द्र्य॒द्रिक्॥ ११॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **वेधः**=विधातः प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमें **विश्वावाराभिः**=सब से वरणीय **नियुद्भिः**=इन्द्रियाश्वों के साथ **आगहि**=प्राप्त होइये। आपकी कृपा से हमें वे इन्द्रियाश्व प्राप्त हों जो सब से वरणीय, चाहने योग्य हों। (२) हे **प्रयज्यो**=प्रकर्षेण पूजनीय प्रभो! **याः**=जिन इन्द्रियाश्वों को **अदेवः**=कोई भी अ-देव, अर्थात् आसुरभाव **न वरते**=रोक नहीं पाता और **न**=नांही कोई **देव**=(वरते) क्रीडा, मद व स्वप्न (दिव्=क्रीड मद स्वप्नेषु) आदि का भाव घेर पाता है। **आभिः**=इन इन्द्रियाश्वों के साथ **तूयम्**=शीघ्र **मद्र्यद्रिक्**=मदभिमुख **आयाहि**=आइये, शीघ्र मुझे आभिमुखेन प्राप्त होइये। अर्थात् मैं आपकी कृपा से शोभन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कर सकूँ, जो इन्द्रियाश्व, राजस व तामस संसार में विचरनेवाले न होकर सात्त्विक गतिवाले हों।

भावार्थ—प्रभु हमें सब से वरणीय इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराएँ, उन इन्द्रियाश्वों को जो राजस्वी व तामसी मार्गों से न गति करते हुए सात्त्विक गतिवाले ही हों।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु कब मिलते हैं?

सु॒त इत्त्वं निमि॑श्ल इन्द्र॒ सोमे॒ स्तोमे॒ ब्रह्म॑णि श॒स्यमा॑न उ॒क्थे।
यद्वा॑ यु॒क्ताभ्यां॑ मघव॒न्हरि॑भ्यां॒ बिभ्र॒द्वज्रं॑ बा॒ह्वोरि॑न्द्र॒ यासि॑॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **सोमे सुते**=शरीर में सोम के उत्पादन के होने पर **इत्**=ही **निमिश्लः**=(निमिश्लः) निश्चय से हमारे साथ मेलवाले होते हैं, अर्थात् आपको वही उपासक प्राप्त कर पाता है, जो सोम को शरीर में सुरक्षित करनेवाला हो। **स्तोमे**=स्तुति समूहों के होने पर आप प्राप्त होते हैं तथा **उक्थे**=उच्चैः गेयं **ब्रह्मणि शस्यमाने**=इन ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करने पर आप प्राप्त होते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि—(क) सोम का रक्षण करें, (ख) स्तुति को अपनाएँ, (ग) ज्ञान की वाणियों का ही उच्चारण करें। (२) **यद्वा**=अथवा हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! आप **बाह्वोः**=बाहुवों में **वज्रं बिभ्रत्**=वज्र को धारण करते हुए **युक्ताभ्यां हरिभ्याम्**=शरीर-रथ में जुते इन्द्रियाश्वों के साथ **यासि**=आप गति करते हैं। अर्थात् आपकी प्राप्ति तब होती है जब कि हाथों में क्रियाशीलता रूप वज्र हो और इन्द्रियाश्व घर ही न रहे हों, अपितु शरीर-रथ में जुते यात्रा के मार्ग पर आगे

बढ़ रहे हों।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि—(क) सोम का शरीर में रक्षण हो, (ख) प्रभु-स्तवन निरन्तर चले, (ग) ज्ञान की वाणियाँ का उच्चारण हो, (घ) सतत क्रियाशील जीवन हो, यह क्रियाशीलता ही हमारा वह वज्र बन जाए जो राक्षसीभावों का विनाशक बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'सुष्वि' बनना

यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून्॥ २॥

(१) **पार्ये दिवि**=भवसागर से पार करने में उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त, हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! **यद्वा**=अथवा **वृत्रहत्ये**=इस ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करने के निमित्त अथवा **शूरसातौ**=शूरों से संभजनीय संग्राम में आप **सुष्विम्**=सोम का सम्पादन करनेवाले, शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष को **अवसि**=रक्षित करते हैं। आप से रक्षित होकर ही वह उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करता है, वासना को विनष्ट कर पाता है और अध्यात्म संग्राम में विजयी होता है। (३) **यद्वा**=अथवा हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! आप ही **दक्षस्य**=इस यज्ञादि उत्तम कर्मों में कुशल **बिभ्युषः**=सदा आपके भय में चलनेवाले उपासक के **शर्धतः**=आक्रमण करके हिंसन करनेवाले **दस्यून्**=दास्यभावों को **अबिभ्यत्**=भीति रहित हुए-हुए **अरन्धयः**=वशीभूत करते हैं। आपकी शक्ति से शक्ति सम्पन्न उपासक ही इन आसुरभावों पर विजय पा सकता है।

भावार्थ—प्रभु ही उपासक को (क) तारक ज्ञान प्राप्त करते हैं, (ख) वासना का विजेता बनाते हैं, (ग) संग्राम में जिताते हैं, (घ) और इन दास्यव भावों को वशीभूत करने में समर्थ करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमं पाता, लोकं कर्ता, वसु दाता, प्रणेनीः

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित्॥ ३॥

(१) **इन्द्रः**=सब वासनारूप शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु **सुतं सोमम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को **पाता अस्तु**=हमारे शरीरों के अन्दर ही पीनेवाला हो। प्रभु कृपा से हम सोम को शरीरों में सुरक्षित कर पायें। **उग्रः**=तेजस्वी प्रभु **जरितारम्**=स्तोता को **ऊती**=रक्षण के द्वारा **प्रणेनीः**=निरन्तर उत्कृष्ट मार्ग पर ले चलनेवाला हो। (२) इस **वीराय**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले **सुष्वये**=सोम का सम्पादन करनेवाले अथवा यज्ञशील पुरुष के लिए **उ**=निश्चय से **लोकं कर्ता**=उत्तम लोक को करनेवाले होते हैं, इसे उत्तम लोक व प्रकाश की प्राप्ति कराते हैं और **स्तुवते**=इस स्तवन करनेवाले **कीरये**=स्तोता के लिए **चित्**=निश्चय से **वसुदाता**=उत्कृष्ट वसुओं (धनों) को देते हैं। यह स्तोता कभी भी जीवन के निवास को उत्तम बनाने के लिए आवश्यक धनों की कमी को अनुभव नहीं करता।

भावार्थ—उपासित प्रभु (क) हमारे सोम का रक्षण करते हैं, (ख) हमें उत्कृष्ट मार्ग से ले चलते हैं, (ग) उत्तम लोक व प्रकाश को प्राप्त कराते हैं, (घ) जीवनयात्रा के लिए आवश्यक धनों को देते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

बभ्रिर्वज्रं, पपिः सोमं, ददिर्गाः

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥

(१) वे प्रभु **इयान्ति सवना**=जीवन के इतने वर्षों तक चलनेवाले यज्ञों को **हरिभ्याम्**=उत्तम इन्द्रियाश्वों से **गन्ता**=प्राप्त होते हैं। अर्थात् प्रभु हमें उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं, ताकि हम जीवन के तीनों सवनों को 'प्रातः, मध्याह्न व तृतीय' इन तीनों सवनों को ठीक प्रकार से पूर्ण कर सकें। हे प्रभो! इन सवनों के रक्षण के लिए **वज्रं बभ्रिः**=आप वज्र को धारण करते हैं, **सोमं पपिः**=सोम का पान व रक्षण करते हैं, **गाः ददिः**=उत्कृष्ट इन्द्रियों व ज्ञान-वाणियों को देते हैं। (२) आप इस स्तोता को **वीरम्**=शत्रुओं का कम्पक, **नर्यम्**=नरहितकारी कर्मों को करनेवाला व **सर्ववीरम्**=सब वीर पुत्रोंवाला **कर्ता**=करते हैं। **गृणतः हवं श्रोता**=स्तोता की आराधना को सुनते हैं। स्तोता की पुकार को आप सुनते हैं। **स्तोमवाहाः**=स्तोत्रों से आप वहनीय होते हैं। अर्थात् स्तोत्रों के द्वारा आप प्राप्त करने योग्य होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्कृष्ट इन्द्रियाँ प्राप्त कराके जीवन के सब सवनों को पूर्ण कर सकने के योग्य बनाते हैं। हमारे सोम का (वीर्य) रक्षण करते हैं, ज्ञान-वाणियों को हमें प्राप्त कराते हैं। ये प्रभु हमें वीर 'नर्य व सर्ववीर' बनाते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

स्तवन के द्वारा ज्ञान व उत्कृष्ट कर्मों की प्राप्ति

अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥ ५ ॥

(१) **यः**=जो परमैश्वर्यशाली प्रभु **नः**=हमारे लिए **प्रदिवः**=प्रकृष्ट ज्ञान प्रकाशों को तथा **अपः**=कर्मों को **कः**=करते हैं **अस्मै**=इस प्रभु के लिए **वयम्**=हम **तद्विविष्मः**=उस स्तोत्र का व्यापन करते हैं **यद्वावान**=जिस स्तोत्र को प्रभु चाहते हैं। अर्थात् हम स्तोत्रों के द्वारा प्रभु को प्रीणित करनेवाले बनते हैं और प्रभु हमें ज्ञान व उत्कृष्ट कर्मों को करते हैं। (२) **सुते सोमे**=सोम के उत्पन्न होने पर **स्तुमसि**=हम प्रभु का स्तवन करते हैं। हम **उक्था शंसत्**=स्तोत्रों का शंसन करते हुए (शंसंतः) ऐसा प्रयत्न करते हैं **यथा**=जिससे **ब्रह्म**=ज्ञानपूर्वक किया गया स्तवन **इन्द्राय**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **वर्धनं असत्**=वृद्धि का करनेवाला हो, अर्थात् स्तवन के द्वारा हम प्रभु के प्रकाश को अधिकाधिक देखनेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमें प्रकृष्ट ज्ञान व कर्मों को प्राप्त कराते हैं। सोम का अपने अन्दर रक्षण करते हुए हम प्रभु-स्तवन करें जिससे अधिकाधिक प्रभु के प्रकाश को देखनेवाले हों।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

वर्धनानि ब्रह्माणि

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥ ६ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप हि निश्चय से **ब्रह्माणि**=इन ज्ञान को देनेवाली वेदवाणियों को **वर्धनानि**=हमारी वृद्धि का कारण **चकृषे**=करते हैं। **तावत्**=तो हम सर्वप्रथम **मतिभिः**=बुद्धियों के द्वारा **ते**=आपके इन वचनों को **विविष्मः**=व्याप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इनको सम्यक् समझकर, इनसे प्रेरणा को लेकर ही तो हम उन्नत हो पायेंगे। (२) हे प्रभो! आप ही **सुतपाः**=उत्पन्न सोम का रक्षण करनेवाले हैं। सो हम **सोमे सुते**=शरीर में सोम के उत्पन्न होने पर **यज्ञैः**=श्रेष्ठतम कर्मों के साथ **शन्तमानि**=शान्ति को देनेवाले **रान्द्र्या**=रमणीय **वक्षणानि**=(वाहकानि स्तोत्राणि) आपके समीप प्राप्त करानेवाले स्तोत्रों को **क्रियास्म**=करें। ये यज्ञ और स्तोम ही सोम का रक्षण करनेवाले होंगे सोम रक्षण का सर्वोत्तम उपाय यही है कि हम प्रभु-स्मरणपूर्वक सतत कार्यों में प्रवृत्त रहें।

भावार्थ—प्रभु से दिये गये ज्ञानवर्धक वेद-वचनों को हम बुद्धियों से ग्रहण करनेवाले बनें। यज्ञों व स्तोत्रों में प्रवृत्त रहकर उत्पन्न सोम का रक्षण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञशेष का सेवन व दृष्टिकोण की विशालता

स नो॑ बोधि पुरो॒ळाशं॑ ररा॒णः पिबा॒ तु सोमं॒ गोऋ॑जीकमिन्द्र।
एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सीदो॒रुं कृ॑धि त्वाय॒त उ॑ लो॒कम्॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **रराणः**=(रममाणः) हमारे से किये जाते हुए सब यज्ञों में रमण करते हुए आप **नः**=हमारे इस **पुरोडाशम्**=(पुरः दाश्यते) भोजन से पूर्व दिये जानेवाले हविर्लक्षण अन्न को आप **बोधि**=जानिये। अर्थात् हम आपकी कृपा से सदा यज्ञों में हवि को देकर यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाले बनें। इस प्रकार यज्ञशेषरूप अमृत का सेवन होने पर आप **गो ऋजीकम्**=ज्ञान की वाणियों द्वारा शरीर में दृढ़ किये गये (ऋज=be firm) **सोमम्**=सोम को (वीर्य को) तु **पिब**=अवश्य शरीर में ही पीने की व्यवस्था करिये। ज्ञान प्राप्ति में लगने से वासनाओं का आक्रमम नहीं होता और उससे सोम शरीर में सुरक्षित होता है। (२) इस सोमरक्षण के हेतु से ही **यजमानस्य**=यज्ञशील पुरुष के **इदं बर्हिः**=इस वासना शून्य हृदय में **आसीद**=आप आसीन होइये। हे प्रभो! **त्वायतः**=आपकी प्राप्ति की कामनावाले इस पुरुष के **लोकं उरुं कृधि**=लोक को विशाल बनाइये, इसके आलोक (प्रकाश) को अत्यन्त विस्तारवाला करिये अथवा इसे विशाल दृष्टिकोणवाला बनाइये।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से (क) हम सदा हवि को देकर यज्ञशेष का ही सेवन करें, (ख) ज्ञान की वाणियों में प्रवृत्त रहकर सोम को शरीर में सुरक्षित करें, (ग) अपने हृदय को प्रभु का आसन बना पायें, (घ) और अपने दृष्टिकोण को विशाल बना सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'स्तवन व यज्ञों' द्वारा प्रभु का आराधन

स म॑न्दस्वा॒ ह्यनु॒ जोष॑मुग्र॒ प्र त्वा॑ य॒ज्ञास॑ इ॒मे अ॑श्नुवन्तु।
प्रेमे ह॒वासः॑ पुरुहू॒तम॒स्मे आ त्वे॒यं धीरव॑स इन्द्र यम्याः॥ ८॥

(१) हे **उग्र**=उद्गूर्ण बल, तेजस्विन् प्रभो! **सः**=वे आप **जोषं अनु**=प्रीतिपूर्वक उपासन के अनुसार **हि**=ही **मन्दस्व**=प्रसन्न होइये। अर्थात् हम प्रीतिपूर्वक उपासना करते हुए आपको प्रीणित करनेवाले हों। **इमे**=ये **यज्ञासः**=सब यज्ञ **त्वा**=आपको ही **प्र अश्नुवन्तु**=प्रकर्षेण व्याप्त करनेवाले

हों। इन यज्ञों के द्वारा हम आपका पूजन करें और आपको प्राप्त करनेवाले हों। (२) **अस्मे**=हमारी **इमे हवासः**=ये पुकारें **पुरुहूतम्**=पालक व पूरक है आह्वान जिसका उस प्रभु को प्राप्त करें। अर्थात् हम सदा प्रभु से ही याचना करनेवाले बनें। हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक प्रभो! **इयं धीः**=यह ज्ञानपूर्वक की गई स्तुति **अवसे**=रक्षण के लिए **त्वा प्र आयम्याः**=आपको हमारे साथ बद्ध करनेवाली हो (नियच्छतु)। हम इस स्तुति द्वारा आपको अपने अभिमुख करने में समर्थ हों, और इस प्रकार अपना रक्षण कर पायें।

भावार्थ—हम स्तुति द्वारा प्रभु को आराधित करें। यज्ञों द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करें। सदा प्रभु को पुकारें और ज्ञानपूर्वक स्तुति से प्रभु को अपने साथ बाँधनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण द्वारा प्रभु प्राप्ति

तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम्।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति॥ ९॥

(१) हे **सखायः**=मित्रो! **तम्**=उस **वः भोजम्**=तुम्हारा पालन करनेवाले **इन्द्रम्**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभु को **यथा सुतेषु**=ठीक-ठीक सोमों के उत्पन्न होने पर **सोमेभिः**=इन सोमों के द्वारा **ईम्**=निश्चय से **संपृणता**=सम्यक् अपने अन्दर पूरित करो। सोमरक्षण से ही मानस नैर्मल्य व बुद्धि की तीव्रता होकर हम अपने हृदयों में प्रभु-दर्शन कर पाते हैं। (२) **नः भराय**=हमारे पालन-पोषण के लिए **तस्मा कुवित् असति**=उस प्रभु के पास बहुत है। हमारे पालन के लिए आवश्यक किसी धन की वहाँ कमी नहीं है। **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **सुष्विम्**=उत्तम यज्ञशील पुरुष को **न मृधाति**=हिंसित नहीं करते। **अवसे**=उसके रक्षण के लिए होते हैं।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा ही हम अपने जीवनों में प्रभु को पूरित करते हैं। ये प्रभु ही यज्ञशील पुरुष को हिंसित नहीं होने देते।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'प्रेरणा व धन' की प्राप्ति

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता॥ १०॥

(१) **सोमे सुते**=सोम के शरीर में उत्पन्न होने पर **एव**=ही **इत्**=निश्चय से **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का विद्रावक प्रभु **अस्तावि**=स्तुत होता है। सोम का सम्पादन करनेवाला ही प्रभु का सच्चा स्तोता बनता है। **भरद्वाजेषु**=अपने में शक्ति का भरण करनेवालों में **इत्**=ही **मघोनः**=उस ऐश्वर्यवान् प्रभु का **क्षयत्**=निवास होता है। प्रभु का प्रीणन इसी प्रकार होता है कि हम सोमरक्षण द्वारा अपने में शक्ति का भरण करनेवाले बनें। (२) **उत**=और **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **यथा**=जैसे **जरित्रे**=स्तोता के लिए **सूरिः असत्**=उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाला होता है, उसी प्रकार वह **विश्ववारस्य**=सबसे वरणीय अथवा सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त करानेवाले **रायः**=धन का **दाता**=देनेवाला होता है। प्रभु स्तोता को उत्कृष्ट प्रेरणा व धन प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का उपाय यही है कि सोमरक्षण द्वारा हम अपने में शक्ति को भरें। प्रभु स्तोता को प्रेरणा व धन प्राप्त कराते हैं। प्रेरणा से हम मार्ग को जान पाते हैं, धन से मार्ग पर चलने की शक्ति प्राप्त होती है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

तृतीयोऽनुवाकः

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुतपाः ऋजीषी

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः॥ १॥

(१) **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में **श्लोकः**=यशोगान, प्रभु कीर्ति का कीर्तन **वृषा**=सब कामनाओं का वर्षण करनेवाला व **मदः**=उल्लास का जनक है। **उक्था**=स्तोत्रों के द्वारा **सचा**=समवेत, हमारे साथ स्थापित सम्बन्धवाला प्रभु **सोमेषु**=सोमों के उत्पन्न होने पर **सुतपाः**=उन उत्पन्न सोमों का रक्षक होता है और **ऋजीषी**=(ऋजु इष) सरल मार्ग से प्रेरणा देनेवाला होता है। (२) इसलिए वह **मघवा**=ऐश्वर्यशाली प्रभु **नृभ्यः**=मनुष्यों से **उक्थैः अर्चत्र्यः**=स्तोत्रों के द्वारा पूजनीय होता है। **द्युक्षाः**=वह ज्ञान-ज्योति में निवास करनेवाला है। **राजा**=सारे संसार का व्यवस्थापक है। **गिरां अक्षितोतिः**=ये प्रभु सब ज्ञान की वाणियों के अक्षीण रक्षक हैं। इन ज्ञान-वाणियों के अक्षीण (भण्डार) हैं। सब वेद वाणियों के सदा से धारण करनेवाले ये प्रभु इन ज्ञान की वाणियों को सृष्टि के प्रारम्भ में हमारे लिए देते हैं और सृष्टि समाप्ति पर ये वाणियाँ उस प्रभु में ही निवास करती हैं। इस प्रकार यह वेद प्रभु का अजरामर काव्य सदा अक्षीण रहता है।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन सब कामनाओं को पूर्ण करता है, उल्लास को देता है, सोम का रक्षण करता है। सो प्रभु ही स्तोत्रों द्वारा पूज्य हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

नर्यो विचेताः

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम्॥ २॥

(१) वे प्रभु **ततुरिः**=शत्रुओं के हिंसक हैं, **वीरः**=वीर हैं, शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले हैं। **नर्यः**=नरहितकारी **विचेताः**=विशिष्ट ज्ञानवाले हैं। **गृणतः**=स्तोता की **हवं श्रोता**=पुकार को सुननेवाले हैं। **उर्व्यूतिः**=विशाल रक्षणवाले हैं। (२) अपनी रक्षण व्यवस्था के द्वारा **वसुः**=हमें बसानेवाले, **शंसः**=हमारे लिए ज्ञान का उपदेश करनेवाले हैं। **कारुधायाः**=कुशलता से कार्यों को करनेवालों का धारण करनेवाले हैं। **वाजी**=शक्तिशाली हैं। **विदथे**=ज्ञानयज्ञों में **स्तुतः**=स्तुति किये गए ये प्रभु **नराम्**=मनुष्यों के लिए **वाजं दाति**=शक्ति को देते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु शत्रुओं के हिंसक हैं। स्तोताओं को ज्ञान व शक्ति को देनेवाले हैं। इस प्रकार नरों के हित के साधक हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अपरिच्छिन्न महिम' प्रभु

अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यू३तयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः॥ ३॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **ते बृहन् मह्ना**=तेरी महान् महिमा **रोदस्योः**=द्यावापृथिवी से इस प्रकार बढ़ी हुई है, **न**=जैसे कि **चक्र्योः**=(चक्र्योः) चक्रों में **अक्षः**=अक्ष (axle) बढ़ा हुआ होता है। अक्ष चक्रों से बाहिर निकला हुआ होता है, इसी प्रकार तेरी महिमा द्यावापृथिवी को लांघकर विद्यमान होती है, द्यावापृथिवी तेरी महिमा को सीमित नहीं कर पाते। (२) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते ऊतयः**=आपके रक्षण **विरुरुहुः**=(रुह प्रादुर्भावे) विशिष्टरूप से प्रादुर्भूत होते हैं। ये रक्षण **पूर्वीः**=हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं। ये रक्षण इस प्रकार प्रादुर्भूत होते हैं **नु**=जैसे कि **वृक्षस्य वयाः**=वृक्ष की शाखाएँ। वृक्ष से शाखाओं के प्रादुर्भाव की तरह आप से विविध रक्षणों का प्रादुर्भाव होता है, सब रक्षणों का मूल आप ही हैं।

भावार्थ—प्रभु की महिमा द्यावापृथिवी से सीमित नहीं होती। सब रक्षणों के मूल प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुरुशाक-सुदामा

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन्॥ ४॥

(१) हे **पुरुशाक**=अनन्त शक्तिशाली कर्मोंवाले प्रभो! **शचीवतः ते**=प्रज्ञावान् आपके **शाकाः**=शक्तिशाली कर्म, **गवाम्**=गौवों के **स्रुतयः इव**=मार्गों की तरह **सञ्चरणीः**=सर्वत्र सञ्चारी हैं। गौवों के मार्ग जिधर देखो उधर ही दिख पड़ते हैं, इसी प्रकार प्रभु के शक्तिशाली कर्म भी चारों ओर दिखते हैं। (२) हे **इन्द्र**=सब शक्तिशाली कर्मों को करनेवाले **सुदामन्**=उत्तमता से बाँधनेवाले, सब लोकों को नियम में बद्ध करनेवाले प्रभो! आपकी **तन्तयः**=दीर्घ प्रसारित व्यवस्था रूप रज्जुएँ **दामन्वन्तः**=सब को नियमों में बाँधनेवाली हैं। उसी प्रकार **न**=जैसे कि **वत्सानाम्**=रज्जुएँ बछड़ों को बाँधनेवाली होती हैं। ये आपकी व्यवस्था रूप रज्जुएँ **अदामानः**=स्वयं किसी से बद्ध नहीं होती। प्रभु की व्यवस्थाओं का प्रतिबन्ध किसी और से नहीं किया जा सकता।

भावार्थ—प्रभु के शक्तिशाली कर्म चारों ओर दृष्टिगोचर होते हैं। प्रभु की व्यवस्थाएँ, किसी से प्रतिबद्ध न होती हुई, सभी को नियमों में बाँधनेवाली हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सत् व असत् के कर्ता प्रभु (सृष्टि प्रलय कर्ता)

अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति॥ ५॥

(१) हे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवान् प्रभु! **अद्य**=आज **अन्यत् कर्वरम्**=और कर्म करते हैं, तो **श्वः**=कल **उ**=निश्चय से **अन्यत्**=दूसरा ही काम करते हैं। वे इन्द्र **मुहुः**=फिर-फिर **सत् च**=इस संसार को सत् रूप में **आचक्रिः**=करते हैं, **च**=और फिर **असत्**=इसे कारणरूप में प्राप्त कराते हुए अदृश्य कर देते हैं। यह सृष्टि प्रलय रूप परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाला कार्यक्रम चक्राकार गति में ही होता ही रहता है। 'सृष्टि' विलक्षण है, तो 'प्रलय' कम विलक्षण नहीं है। (२) **अत्र**=इस जीवन में **मित्रः**=वह स्नेह करनेवाले **वरुणः च**=और हमें पापों से निवारित करनेवाले **पूषा**=पोषक, **अर्यः**=प्रेरक प्रभु **वशस्य**=हमारी इष्ट वस्तुओं के, काम्य पदार्थों के **पर्येता**=परिगमयिता

प्राप्त करानेवाले **अस्ति**=हैं।

भावार्थ—प्रभु के सृष्टि प्रलय रूप सब कार्य विलक्षण हैं। वे 'मित्र, वरुण, पूषा व अर्य' प्रभु हमारी कामनाओं को पूर्ण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ब्राह्मीबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

उक्थेभिः+यज्ञैः

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वात्**=आपसे **उक्थेभिः**=स्तोत्रों के द्वारा तथा **यज्ञैः**=यज्ञों के द्वारा ये उपासक लोग **वि अनयन्त**=सब काम्य पदार्थों को इस प्रकार अपने लिये प्राप्त कराते हैं, **न**=जैसे कि **पर्वतस्य पृष्ठात्**=पर्वत के पृष्ठ से **आपः**=जलों को। पर्वत पृष्ठ से जल स्वभावतः निम्न मार्ग की ओर आते हैं, इसी प्रकार स्तोस्त्रों व यज्ञों के होने पर सब वाञ्छनीय पदार्थों का प्रवाह प्रभु की ओर से उपासकों के प्रति होता है। (२) हे **गिर्वाहः**=(गीर्भिर्वहनीय) स्तुतियों से प्राप्त होने योग्य प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको **आभिः सुष्टुतिभिः**=इन उत्तम स्तुतियों के द्वारा **वाजयन्तः**=(वज गतौ, गमयन्ता) अपने को प्राप्त कराते हुए ये उपासक लोग, **अश्वाः न**=अश्वों की तरह **आजिं जग्मुः**=जीवन संग्राम में गतिवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु स्तवन से सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। स्तुतियों के द्वारा प्रभु को प्राप्त करते हुए हम जीवन संग्राम में चलें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

काल से अनवच्छिन्न प्रभु

न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना॥ ७॥

(१) **यम्**=जिस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **न द्यावः**=न दिन, **न मासाः**=न महीने और **न शरदः**=न ही संवत्सर (वर्ष) **जरन्ति**=जीर्ण करते हैं। ये दिन, महीने व वर्ष उसे **न अवकर्शयन्ति**=उसे क्षीण नहीं कर पाते। प्रभु काल से अनवच्छिन्न है। (२) **वृद्धस्य अस्य तनूः**=बढ़े हुए इस प्रभु की व्यापक शक्ति (तन् विस्तारे) **चित्**=निश्चय से **वर्धताम्**=बढ़ी रहे। यह इस प्रभु का तनू **स्तोमेभिः**=स्तोमों से **च**=और **उक्थैः**=ऊँचे-ऊँचे गाये गये गुण-कीर्तनों से **शस्यमाना**=सदा प्रशंसित हो। इसका शंसन ही हमारे अन्दर प्रभु के स्वरूप का वर्धन करता है। प्रभु के गुणों का शंसन करते हुए हम भी उन गुणों को अपनाने का यत्न करते हैं।

भावार्थ—उस काल से असीमित अजरामर प्रभु का शंसन करते हुए हम प्रभु जैसा बनने का यत्न करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तुति से महान् बल की प्राप्ति

न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान्।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै॥ ८॥

(१) **स्तवान्**=स्तुति किये जाते हुए-हुए वे प्रभु **दस्युजूताय**=दास्यवभावों से प्रेरित **वीडवे**=बड़े

दृढ़ भी शत्रु के लिए **न नमते**=झुकते नहीं। **स्थिराय**=युद्ध में अविचलित के लिये भी **न**=नहीं झुकते तथा **शर्धते**=युद्ध के लिए अत्यन्त उत्साहित के लिये भी **न**=नहीं झुकते। वस्तुतः स्तुति करनेवाला व्यक्ति हृदय में प्रभु को स्थापित करता हुआ इन दृढ़ अविचलित प्रबलता से युद्ध करनेवाले शत्रुओं से पराजित नहीं होता। (२) इस **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **ऋष्वाः**=महान् **गिरयः चित्**=पर्वत भी **अज्राः**=क्षेपणीय होते हैं—मार्ग में विघ्नरूप में आये हुए पहाड़ों को भी यह परे फेंकनेवाला होता है और **गम्भीरे**=अत्यन्त गहिरे **चित्**=भी समुद्रों में **अस्मै**=इसके लिये **गाधम्**=न गहिरापन ही **भवति**=होता है। गहिरे से गहिरे समुद्रों को यह आसानी से पार कर जाता है।

भावार्थ—प्रभु स्तवन से वह शक्ति प्राप्त होती है जिससे कि यह स्तोता—(क) प्रबलतम शत्रुओं के सामने भी झुकता नहीं, (ख) पर्वतों को भी परे फेंकनेवाला होता है और (ग) समुद्रों को भी कुछ नहीं गिनता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

गम्भीरता व विशाल हृदयता

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान्।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम्॥ ९॥

(१) हे **सुतपावन्**=उत्पन्न सोम के रक्षक व **अमत्रिन्**=(अमत्रं बलम्) अतिशयेन बलवन् प्रभो! **नः**=हमारे लिये **गम्भीरेण उरुणा**=गम्भीर व विशाल मन के हेतु से **इषः**=प्रकृष्ट प्रेरणाओं को व **वाजान्**=बलों को **प्रयन्धि**=प्रकर्षेण प्राप्त कराइये। हम उत्कृष्ट प्रेरणाओं को व बलों को प्राप्त करके गम्भीर व विशाल हृदयवाले बन पायें। (२) हे प्रभो! आप **परितक्म्यायाम्**=रात्रि में तथा **अक्तो व्युष्टौ**=इस रात्रि के विवास (समाप्ति) अर्थात् दिन में भी **नः**=हमारी **ऊती**=रक्षा के लिये सदा **उ**=निश्चय से **षु**=अच्छी प्रकार **ऊर्ध्वः स्थाः**=ऊपर खड़े हुए होइये—सदा जागरित होइये। हमें दिन-रात आपका रक्षण प्राप्त हो। **अरिषण्यन्**=आप हमें किन्हीं भी शत्रुओं से हिंसित न होने दीजिये।

भावार्थ—हम दिन-रात प्रभु के रक्षण में, प्रभु से प्रेरणाओं व शक्तियों को प्राप्त करके गम्भीर व विशाल हृदयवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सर्वत्र प्रभु रक्षण की प्राप्ति

सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ १०॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु विद्रावक प्रभो! आप **नायम्**=आपके समीप अपने को प्राप्त करानेवाले को **अवसे**=रक्षण के लिये **अभीके**=संग्राम में **सचस्व**=प्राप्त हों। आपके द्वारा ही तो यह संग्राम में विजय को प्राप्त होगा, उपासक को प्रभु ही जिताते हैं। हे प्रभो! **तम्**=उस उपासक को **इतः**=इधर के, समीपस्थ **वा**=अथवा (अमुतः=) उधर के, अर्थात् दूरस्थ अथवा अन्दर के व बाहिर के **रिषः**=शत्रुओं से **पाहि**=बचाइये। **एन**=इसको **अमा**=घर में **अरण्ये च**=और वन में सर्वत्र शत्रुओं से **पाहि**=बचाइये। (२) आप के द्वारा सब शत्रुओं से सुरक्षित हुए-हुए हम **शतहिमाः**=शतवर्ष पर्यन्त **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—हम इस संसार संग्राम में प्रभु से रक्षित हुए-हुए विजयी हों और दीर्घजीवन व उत्तम सन्तानोंवाले होते हुए आनन्दित हों।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

अथ एकोनविंशो वर्गः ॥ १९ ॥

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'अवम परम मध्यम' रक्षण

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र॥ १॥

(१) हे **शुष्मिन्**=शत्रुशोषक बलवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यवान् प्रभो! **या**=जो **ते**=आपकी **ऊतिः**= रक्षण व्यवस्था **अवमा**=सब से प्रथम स्थान में है, जिसके द्वारा आप हमारे शरीरों को रोगों से आक्रान्त नहीं होने देते। **या परमा**=जो आपकी रक्षण व्यवस्था सर्वोत्तम है, जिससे आप हमारे मस्तिष्कों को ज्ञानोज्ज्वल बनाते हैं। और **या**=जो **मध्यमा अस्ति**=रक्षण व्यवस्था मध्यम स्थान में है, जिसके द्वारा आप हमारे हृदयों को वासनाओं से मलिन नहीं होने देते। **ताभिः**=उन रक्षण व्यवस्थाओं के द्वारा **उ**=निश्चय से, **सु**=अच्छी प्रकार **नः अवीः**=हमारा रक्षण करिये। (२) हे **उग्र**=तेजस्विन् प्रभो! **महान्**=पूज्य हैं। आप **वृत्रहत्ये**=वृत्र (वासना) के साथ होनेवाले संग्राम में **नः**=हमें **एभिः वाजैः**=इन बलों के द्वारा (अवीः=) रक्षित करिये। हम वासनाओं से पराभूत न हो जाएँ।

भावार्थ—प्रभु से 'शरीर, मस्तिष्क व हृदय' सम्बन्धी रक्षणों को प्राप्त करके तथा संग्राम विजय के लिये शक्तियों को प्राप्त करके हम वासनाओं से पराभूत न हों। अपितु वासनाओं को पराभूत करनेवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तुति व शक्ति प्राप्ति

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽवतारीर्दासीः॥ २॥

(१) **आभिः**=इन स्तुतियों के द्वारा **मिथतीः**=शत्रु-सेनाओं का संहार करती हुई **स्पृधः**=हमारी सेनाओं को **अरिषण्यन्**=अहिंसित करते हुए, हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **अमित्रस्य**=शत्रु के **मन्युम्**=क्रोध को **व्यथया**=नष्ट करिये। हम प्रभु-स्तवन द्वारा शक्ति-लाभ करते हुए शत्रुसैन्य को जीतनेवाले बनें। (२) **आभिः**=इन स्तुतियों के द्वारा **विश्वाः**=सब **अभियुजः**=चारों ओर से आक्रमण करनेवाली **विषूचीः**=सब दिशाओं में गति करनेवाली **दासीः विशः**=यज्ञादि कर्मों का उपक्षय करनेवाली प्रजाओं को **आर्याय**=(ऋ गतौ) नियमपूर्वक यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त पुरुष के लिये **अवतारीः**=विनष्ट कर। स्तुतियों के द्वारा हम यज्ञों में विघ्न करनेवाले लोगों से किये जानेवाले विघ्नों को दूर कर सकें। स्तुति से इन विघ्न करनेवालों के हृदयों को ही परिवर्तित कर पायें।

भावार्थ—स्तुति हमें बल दे कि हम शत्रुओं को पराजित कर सकें यज्ञों में विघ्नकर्ताओं के हृदयों को परिवर्तित कर सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'जामि व अजामि' रूप शत्रु

इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **ये**=जो **जामयः**=बन्धुत्ववाले होते हुए हमारे शत्रु हुए हैं, **उत**=और जो **अजामयः**=पराये हमारे शत्रु बने हैं, **अर्वाचीनासः**=हमारी ओर आते हुए **वनुषः**=हिंसक बने हुए **युयुज्रे**=युद्ध के लिये प्रयुक्त होते हैं, **त्वम्**=आप **एषाम्**=इन जामि व अजामि रूप शत्रुओं के **शवांसि**=(शवतिर्गतिकर्मा) आक्रमण रूप गमनों को **विथुरा**=शिथिल **कृणुहि**=कर दीजिये। इनमें हमारे पर आक्रमण के लिये उत्साह न बना रहे। (२) हे प्रभो! आप इनके **वृष्ण्यानि**=वीर्यों को **जहि**=विनष्ट करिये और इन्हें **पराचः**=पराङ्मुख करिये रणाङ्गण से ये भाग खड़े हों।

भावार्थ—हम प्रभु को अपने हृदयों में आसीन करके 'जामि व अजामि' रूप दोनों प्रकार के शत्रुओं को नष्ट करनेवाले हों।

सूचना—यहाँ अध्यात्म में जामिरूप शत्रु वे हैं जो अशुभ वृत्तियाँ जन्म से ही गत संस्कारों के रूप में हमें प्राप्त होती हैं। 'अजामि' रूप वे अशुभ वृत्तियाँ हैं जिन्हें हम इस जीवन में किसी समय सीख लेते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

संसार गति

शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते॥ ४॥

(१) **तनूरुचा**=शरीर से शोभायमान होते हुए परस्पर विरोधी दो पुरुष **यत्**=जब **तरुषि**=युद्ध में **कृण्वैते**=संग्राम को करते हैं तब **शूरः**=शूर **वा**=निश्चय से **अशूरं वनते**=अशूर को पराजित (नष्ट) करता है। (२) **तोके वा**=पुत्रों के निमित्त, **गोषु**=गौवों के निमित्त **तनये**=पौत्रों के निमित्त, **यद्**=जब **अप्सु**=जलों के विषय में अथवा **उर्वरासु**=सर्वसस्याढ्य भूमियों के निमित्त **क्रन्दसी**=एक दूसरे का आह्वान करते हुए **वि ब्रवैते**=विवाद करते हैं। तो ऐसे प्रसंगों में शूर अशूर को पराजित करता है। सो प्रभु की उपासना से हम शूरता को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। प्रभु की उपासना ही हमें शूर बनाती है।

भावार्थ—पुत्र-पौत्रों, खेत के जलों व भूमियों के विषय में युद्ध तभी हो उठते हैं जब कि हम प्रभु की उपासना से दूर हो जाते हैं। युद्ध आ भी जाए, तो प्रभु की उपासना से शूर बने हुए हम शत्रुओं का पराजय कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु अजय्य हैं

नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का संहार करनेवाले प्रभो! **त्वा**=आपको **शूरः नहि युयोध**=कोई भी

शूरवीर आपके साथ युद्ध नहीं कर सकता। **तुरः**=कोई भी शत्रुओं का हिंसन करनेवाला **न**=आपका हिंसन नहीं कर पाता। **धृष्णुर्न**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाला व्यक्ति **न**=आपका धर्षण करने में समर्थ नहीं। और **त्वा**=आपको कोई भी **मन्यमानः योधः**=अपने को वीर माननेवाला योद्धा **न युयोध**=युद्ध में सामने नहीं आ पाता। (२) हे इन्द्र! **एषाम्**=इनमें **नकिः त्वा प्रत्यस्ति**=कोई भी आपका मुकाबिला नहीं कर सकता। **तानि**=उन **विश्वा**=सब **जातानि**=शत्रुभूत हुए-हुए शत्रुओं को **अभ्यासि**=आप अभिभूत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु को कोई भी जीत नहीं सकता। प्रभु अजय्य हैं। सब को ये अभिभूत करनेवाले हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'शक्ति के स्वामी' प्रभु

स प॑त्यत उ॒भयो॑र्नृ॒म्णम॒योर्यदी॑ वे॒धसः॑ समि॒थे हव॑न्ते।
वृ॒त्रे वा॑ म॒हो नृ॒वति॒ क्षये॑ वा॒ व्यच॑स्वन्ता॒ यदि॑ वित॒न्तसैते॑ ॥ ६ ॥

(१) **यत्**=जब **ई**=निश्चय से **वेधसः**=कर्मों को करनेवाले समझदार लोग **समिथे**=युद्ध में **हवन्ते**=प्रभु को पुकारते हैं, तो वस्तुतः **सः**=वह प्रभु ही **अयोः उभयोः**=इन दोनों के, युद्ध में सम्मिलित होनेवाले दोनों पक्षों के **नृम्णम्**=बल का **पत्यते**=ईश होता है। बाह्य संग्रामों में परस्पर युद्ध करती हुई दोनों सेनाओं के सामर्थ्य के स्वामी प्रभु ही होते हैं—प्रभु ही न्याय्य पक्ष को विजयी करते हैं। (२) **वृत्रे वा**=जीवन यात्रा में मार्ग के निरोधक वासनारूप वृत्र के विनाश के निमित्त **वा**=अथवा **महः नृवति क्षये**=महान् उत्कृष्ट मनुष्योंवाले घर को बनाने के निमित्त जब **व्यचस्वन्ता**=शक्तियों का विस्तार करनेवाले पति-पत्नी **वितन्तसैते**=इन वासनाओं के साथ संग्राम करते हैं तो इन दोनों पति-पत्नी की शक्तियों के स्वामी वे प्रभु ही होते हैं। प्रभु की शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर ही ये वासनाओं को विनष्ट कर पाते हैं और घर को उत्कृष्ट मनुष्योंवाला बनाने में समर्थ होते हैं।

भावार्थ—क्या बाह्य व क्या आन्तर, दोनों संग्रामों में विजय के लिये शक्ति प्रभु ही देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'त्राता उत वरूता' इन्द्र

अध॑ स्मा ते चर्ष॒णयो॒ यदेजा॒निन्द्र॑ त्रा॒तोत भ॑वा वरू॒ता।
अ॒स्माका॑सो॒ ये नृत॑मासो अ॒र्य इन्द्र॑ सू॒रयो॑ दधि॒रे पु॒रो नः॑ ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! **अध**=अब **ते चर्षणयः**=तेरे ये श्रमशील उपासक मनुष्य **यत्**=जब भी कभी **एजान्**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं से कम्पित हो उठें, तो आप **त्राता**=रक्षक **उत**=और **वरूता**=उन शत्रुओं के निवारक **भवा स्म**=होते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ये**=जो **अस्माकासः**=हमारे **नृतमासः**=उत्तम नेतृत्व करनेवाले, **अर्यः (त्वाम् अरयः)**=आपको प्राप्त करानेवाले **सूरयः**=ज्ञानी पुरुष **नः**=हमें **पुरः**=आगे **दधिरे**=स्थापित करते हैं उनके भी आप रक्षक होइये।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे रक्षक व शत्रु-निवारक होते हैं। हमारी उन्नति के कारणभूत नेताओं का भी रक्षण प्रभु ही करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्रिय-क्षत्र-सहस्

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये॥ ८॥

(१) हे **यजत्र**=पूजनीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**=तेरे द्वारा **महे इन्द्रियाय**=महान् वीर्य के लिये **अनुदायि**=(अनुदीयते) यह उपासक दिया जाता है, अर्थात् इस उपासक को आप महान् वीर्य की प्राप्ति कराते हैं। **सत्रा**=सचमुच **ते**=तेरे द्वारा **वृत्रहत्ये**=वासना-विनाश रूप संग्राम के निमित्त **विश्वम्**=सब कुछ, सब आवश्यक साधन **अनु (दायि)**=दिये जाते हैं। (२) **क्षत्रम्**=क्षतों से त्राण करनेवाला बल **अनु (दायि)**=दिया जाता है। **सहः**=शत्रुमर्षक बल **अनु (दायि)**=दिया जाता है। **ते**=तेरे से **देवेभिः**=देवों के द्वारा **नृषह्ये**=संग्राम के निमित्त **अनु (दायि)**=यह सब दिया जाता है।

भावार्थ—माता, पिता, आचार्य आदि के द्वारा प्रभु हमारे में इन 'इन्द्रिय, क्षत्रस, सहस्' आदि के स्थापन की व्यवस्था करते हैं जिससे हम वासनाओं का विनाश करते हुए जीवन-संग्राम में विजयी हो सकें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रक्षण व उत्तम निवास

एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम्॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **एवा**=इस प्रकार **समत्सु**=संग्रामों में **नः स्पृधः**=हमारी शत्रु-सेनाओं को **समज**=सम्यक् क्षिप्त करिये—हमारे से दूर करिये। इन **मिथतीः**=हिंसन करती हुई **अदेवीः**=राक्षसी सेनाओं को, आसुरी भावों के समूह को **रारन्धि**=वशीभूत करिये। (२) **उत**=और हे **इन्द्र**=सर्वशत्रुविद्रावक प्रभो! **नूनम्**=निश्चय से **ते गृणन्तः**=आपका स्तवन करते हुए हम **भरद्वाजाः**=अपने में शक्ति को भरनेवाले होते हुए **अवसा**=रक्षण के साथ **वस्तोः विद्याम**=उत्तम निवास की प्राप्ति करें। 'अवस्' का अर्थ अन्न भी है। उत्तम अन्न के साथ उत्तम निवास-स्थान को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु उपासित होने पर हमारे अदिव्य भाव रूप शत्रुओं को विनष्ट करते हैं और हमारे लिये रक्षण व उत्तम निवास को प्राप्त कराते हैं। प्रभु से रक्षित उपासकों का जीवन उत्तम व्यतीत होता है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उग्रं अवः

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वावृषाणाः**=अपने में सोम का सेचन करते हुए

हम **महः**=महान् **वाजस्य सातौ**=शक्ति की प्राप्ति के निमित्त **त्वा ह्वयामसि**=आपको पुकारते हैं। **नः श्रुधि**=हमारी पुकार को आप सुनिये। (२) **यद्**=जब **विशः**=प्रजाएँ **शूरसाता**=संग्राम में **सं अयन्त**=संगत हों, तो **पार्ये अहन्**=अन्तिम दिन, विजय व पराजय के निर्णय वाले दिन (final) **नः**=हमारे लिये **उग्रम्**=बहुत तीव्र, तेजस्विता सम्पन्न, **अवः**=रक्षण को **दाः**=दीजिये। आप से रक्षित हुए-हुए हम अवश्य विजयी हों।

भावार्थ—स्वयं सोम का शरीर में सेचन करते हुए हम प्रभु से शक्ति की याचना करें। प्रभु हमें युद्ध के इस विजय पराजय के निर्णय के दिन तीव्र रक्षण प्राप्त करायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

गध्य वाज की प्राप्ति

त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन्॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **वाजिनेयः**=वाजिनी का पुत्र, शक्तिशालिनी माता का पुत्र **वाजी**=शक्तिशाली **गध्यस्य**=ग्रहण के योग्य **वाजस्य**=बल की **सातौ**=प्राप्ति के निमित्त **त्वां हवते**=आपको पुकारता है। आप से बल के लिये याचना करता है। (२) हे इन्द्र! **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक **त्वाम्**=तुझको ही **वृत्रेषु**=मार्ग निरोधक वासनाओं को दूर करने के निमित्त **चष्टे**=देखता है। यह **मुष्टिहा**=मुष्टि (मुक्कों) के द्वारा हनन करनेवाला उपासक **गोषु युध्यन्**=इन्द्रियों को वासनाओं के आक्रमण से सुरक्षित करने के निमित्त युद्ध करता हुआ उपासक **तरुत्रम्**=शत्रुओं से तरानेवाले **त्वां चष्टे**=आपको ही देखता है। आप ने ही तो इस उपासक को तराया है।

भावार्थ—शक्ति की प्राप्ति के निमित्त यह उपासक प्रभु को पुकारता है। अध्यात्म संग्राम में विजय प्राप्ति के लिये प्रभु की ओर ही देखता है। प्रभु ही इसे विजयी बनायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'शुष्ण व शंवर' का विनाश

त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क्।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **अर्कसातौ**=सूर्यमण्डल की प्राप्ति के निमित्त **कविम्**=इस क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुष को **चोदयः**=प्रेरित करते हैं। यह कवि संसार के विषयों से ऊपर उठता हुआ सूर्यमण्डल का भेदन करता हुआ आपको प्राप्त होता है। (२) **त्वम्**=आप **दाशुषे**=अपने को आपके प्रति अर्पण करनेवाले **कुत्साय**=वासनाओं का संहार करनेवाले पुरुष के लिये **शुष्णम्**=शक्ति का शोषण करनेवाले काम को **वर्क्**=छिन्न करते हैं। आपकी कृपा से ही यह कुत्स शुष्ण का विनाश करके शक्ति-सम्पन्न होता हुआ आपको प्राप्त होता है। (३) **त्वम्**=आप ही **अतिथिग्वाय**=अतिथियों का सत्कार करनेवाले इस साधक के लिये **शंस्य करिष्यन्**=प्रशंसनीय सुख को करने के हेतु से **अमर्मणः**=अपने को मर्महीन मानते हुए ईर्ष्यारूपी असुर के **शिरः**=सिर को **पराहन्**=नष्ट करते हैं। ईर्ष्या मनुष्य की शान्ति का विनाश करती है, सो यह 'शंवर' कहलाती है। अतिथियज्ञ करनेवाला पुरुष इस ईर्ष्यासे ऊपर उठता है।

भावार्थ—प्रभु (ख) हमें ज्ञानी बनाकर सूर्यमण्डल का भेदन करनेवाला बनाते हैं, (ख) कामवासना रूप 'शुष्णासुर' को समाप्त करते हैं, (ग) ईर्ष्यारूप असुर को दूर करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'योध-ऋष्व' रथ की प्राप्ति

त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **योधम्**=युद्ध के लिये साधनभूत **ऋष्वम्**=दर्शनीय व महान् **रथम्**=रथ को, शरीर-रथ को **प्रभरः**=प्रकर्षेण प्राप्त कराते हैं। और **युध्यन्तम्**=युद्ध करते हुए **दशद्युम्**=दसों इन्द्रियों के दृष्टिकोण से दीप्त **वृषभम्**=शत्रुओं पर शरवर्षण करनेवाले इस उपासक को आप **आवः**=रक्षित करते हैं। (२) **त्वम्**=आप **वेतसवे**='वेतस्' की तरह नम्र इस उपासक के लिये **सचा**=सहायभूत होते हुए **तुग्रम्**=क्रोधरूप हिंसक शत्रु को **अहन्**=नष्ट करते हैं। और **त्वम्**=आप **गृणन्तम्**=स्तुति करनेवाले **तुजिम्**=वासनाओं के संहारक पुरुष को **तूतोः**=सब दृष्टिकोण से बढ़ाते हैं।

भावार्थ—हे प्रभो! आप उत्कृष्ट शरीर-रथ को प्राप्त कराते हैं। इस युद्ध करनेवाले की रक्षा करते हैं। क्रोध को दूर करते हैं और उपासक का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

शम्बर हनन

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **बर्हणा**=शत्रुओं के उद्बर्हण के हेतु से **तद् उक्थं कः**=वह अति प्रशंसनीय कार्य करते हो **यत्**=कि हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **शता सहस्रा**=इन आसुरभावों के सैंकड़ों व हजारों दुर्गों को **प्रदर्षि**=विदीर्ण कर देते हो। (२) **गिरेः**=इस अविद्यापर्वत से निर्गत, अर्थात् अविद्या के कारण उत्पन्न **दासम्**=हमारा उपक्षय करनेवाले **शम्बरम्**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले ईर्ष्यारूप आसुरभाव को आप **अवहन्**=सुदूर विनष्ट करते हैं। और **दिवोदासम्**=ज्ञान के भक्त इस उपासक को **चित्राभिः ऊती**=अद्भुत रक्षणों के द्वारा **प्राव**:=रक्षित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान के उपासक भक्त का रक्षण करते हैं। वे सब आसुरभावों को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

श्रद्धा-सोमरक्षण व प्राणसाधना

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप्।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **श्रद्धाभिः**=उपासक की श्रद्धा की भावनाओं से तथा **सोमैः**=सोमों के (वीर्य के) रक्षण से **मन्दसानः**=(मोदमानः) प्रसन्न होते हुए **दभीतये**=दभीति-वासनाओं का संहार करनेवाले के लिये **चुमुरिम्**=इस शक्ति का आचमन कर जानेवाले, शक्ति को खा जानेवाले 'काम' रूप शत्रु को **सिष्वप्**=सुला देते हैं। इस उपासक के अन्दर 'काम' वासना को जागरित नहीं होने देते। (२) **पिठीनसे**=पिठी है नासिका जिसकी, जो

प्राणसाधना द्वारा सब शत्रुओं का संहार करता है, उस पिठीनस् के लिये **रजिम्**=उचित रजोगुण की मात्रा को, क्रियाशीलता को **दशस्यन्**=देते हुए **त्वम्**=आप **शच्या**=प्रज्ञान के द्वारा **षष्टिं सहस्रा**=वासनाओं के साठ हजार को भी **सचा**=साथ **आहन्**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—हम श्रद्धायुक्त व सोम का रक्षण करनेवाले बनें। प्रभु हमें शक्ति दें कि हम वासनाओं का विनाश कर पायें। प्राणसाधना करते हुए हम उचित रजोगुण की मात्रा से क्रियाशील बने रहें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुम्नम्-ओजः

अहं च॒न तत्सूरिभिरानश्यां तव॒ ज्याय॑ इन्द्र सु॒म्नमोज॑ः।
त्वया॒ यत्स्तव॑न्ते सधवीर वी॒रास्त्रि॒वरू॑थेन॒ नहु॑षा शविष्ठ॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमात्मन्! **अहं चन**=मैं भी **सूरिभिः**=ज्ञानी स्तोताओं के साथ **तव**=आपके **तत्**=उस **ज्यायः**=उत्कृष्ट **सुम्नम्**=स्तोत्र व **ओजः**=बल को **आनश्याम्**=प्राप्त करूँ। ज्ञानी स्तोताओं के सम्पर्क में रहता हुआ मैं भी आपका स्तवन करनेवाला बनूँ और यह स्तवन मुझे ओजस्विता प्रदान करे। (२) हे **सधवीर**=सदा वीरों के साथ निवास करनेवाले (नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः) **शविष्ठ**=बलवत्तम प्रभो! **यत्**=क्योंकि **वीराः**=वीर पुरुष **त्रिवरूथेन**=शरीर, मन व मस्तिष्क इन तीनों की सम्पत्ति को देनेवाले **नहुषा**=(णह बन्धने) उपासकों को परस्पर स्नेह बन्धन में बाँधनेवाले **त्वया**=आपके द्वारा ही दिये हुए ओज का **स्तवन्ते**=स्तवन-प्रशंसन करते हैं। आप से दिये गये ओज से ही वस्तुतः ओजस्विता व वीरता प्राप्त होती है।

भावार्थ—स्तोता पुरुषों के सम्पर्क में हम भी स्तवन की वृत्तिवाले बनते हुए प्रभु से 'सुम्न व ओज' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रातर्दनि क्षत्रश्री

व॒यं ते॑ अ॒स्यामि॑न्द्र द्यु॒म्नहू॑तौ॒ सखा॑यः स्याम महिन॒ प्रेष्ठा॑ः।
प्रात॑र्दनिः क्षत्र॒श्रीर॑स्तु॒ श्रेष्ठो॑ घ॒ने वृ॒त्राणां॑ स॒नये॒ धना॑नाम्॥ ८॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **वयम्**=हम **ते**=आपकी **अस्याम्**=इस **द्युम्नहूतौ**=ज्ञानयुक्त पुकार में, ज्ञानपूर्वक की गई स्तुतियों के होने पर **सखायः**=सखा **स्याम**=हों। हे **महिन**=पूज्य प्रभो! आपके ज्ञानी भक्त बनते हुए हम **प्रेष्ठाः**=आपके प्रियतम हों। (२) यह आपका उपासक **प्रातर्दनिः**=शत्रुओं को हिंसन करनेवाला **क्षत्रश्रीः**=बल की शोभावाला **अस्तु**=हो। **वृत्राणां घने**=वासनाओं के विनाश के लिये और **धनानां सनये**=धनों की प्राप्ति के लिये होता हुआ यह उपासक **श्रेष्ठः**=प्रशस्यतम जीवनवाला हो।

भावार्थ—हम प्रभु के ज्ञानी-भक्त बन पायें। इस प्रकार प्रभु के मित्र व प्रियतम हों। शत्रुओं का हिंसन करनेवाले, बल की शोभावाले होते हुए वासनाओं को विनष्ट करने व धनों को प्राप्त करने में समर्थ हों, हमारा जीवन सम्पन्न व श्रेष्ठ हो।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमपान का क्या लाभ है?

किम॑स्य॒ मदे॒ किम्व॑स्य पी॒ताविन्द्रः॒ किम॑स्य स॒ख्ये च॑कार।
रणा॑ वा॒ ये नि॒षदि॒ किं ते अ॑स्य पुरा वि॑विद्रे किमु॒ नूत॑नासः ॥ १ ॥

(१) **अस्य**=इस सोमपान (वीर्यरक्षण) से **जनित मदे**=उल्लास में **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **किं चकार**=क्या करता है? **उ**=और **अस्य पीतौ**=इसके शरीर के अन्दर पीने पर **किम्**=क्या करता है? **अस्य सख्ये**=इसकी मित्रता में **किम्**=क्या करनेवाला होता है? (२) **वा**=या **ये**=जो **अस्य निषदि**=इसकी उपासना में, इसके रक्षण से युक्त इस शरीर गृह में **रणाः**=रमण करते हैं, आनन्द का अनुभव करते हैं **ते**=वे **पुरा**=पहले **किम्**=क्या **विविद्रे**=प्राप्त करते हैं, **उ**=और उन्हें **नूतनासः किम्**=क्या नवीन लाभ होते हैं?

भावार्थ—यह मन्त्र सोमपान से होनेवाले लाभ का संकेत करने के लिये प्रश्न के रूप में करता है कि सोमपान से क्या होता है? अगले मन्त्र में उत्तर देते हैं—

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमपान से 'सत्' की प्राप्ति

सद॑स्य॒ मदे॒ सद्व॑स्य पी॒ताविन्द्रः॒ सद॑स्य स॒ख्ये च॑कार।
रणा॑ वा॒ ये नि॒षदि॒ सत्ते अ॑स्य पुरा वि॑विद्रे सदु॒ नूत॑नासः ॥ २ ॥

(१) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **अस्य मदे**=इस सोमपान से जनित उल्लास में **सत्**=शुभ कर्म को ही **चकार**=करता है। **उ**=और **अस्य पीतौ**=इसके शरीर में पीने पर **सत्**=शुभ को ही करता है। **अस्य सख्ये**=इस सोम की पवित्रता में वह **सत् चकार**=शुभ को ही करनेवाला होता है। (२) **ये**=जो **अस्य निषदि**=इस सोम की उपासना में, सोमपान के रक्षण से युक्त इस शरीर-गृह में **रणाः**=आनन्द अनुभव करते हैं, **ते**=वे **पुरा**=पहले भी **सत्**=शुभ को **विविद्रे**=प्राप्त करते हैं, **उ**=और **नूतनासः**=इस सोमपान के नवीन लाभ भी यही होते हैं कि **सत्**=शुभ की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—सोम के रक्षण से जीवन 'सत्' वाला बनता है। सोमरक्षण जीवन को असत् (अशुभ) से दूर करके सत् से युक्त करता है 'असतो मा सद्गमय'।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अनन्त 'महिमा-ऐश्वर्य-साफल्य व बल' वाले प्रभु

न॒हि नु ते॑ महि॒मनः॑ सम॒स्य॒ न म॑घवन्मघव॒त्त्वस्य॑ वि॒द्म।
न राध॑सोराधसो॒ नूत॑न॒स्येन्द्र॒ नकि॑र्ददृश इ॒न्द्रियं॑ ते॑ ॥ ३ ॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! हम **ते**=आपकी **समस्य महिमनः**=सम्पूर्ण महिमा को **नु**=निश्चय से **नहि विद्म**=नहीं जानते हैं। आपके **मघवत्त्वस्य**=ऐश्वर्यशालिनता का भी **नः**=हमें पूर्ण ज्ञान नहीं। आपकी महमि व ऐश्वर्य असीम है। हमारा ज्ञान उसे सीमित नहीं कर पाता। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आपके अत्यन्त **नूतनस्य**=स्तुत्य व अद्भुत **राधसः राधसः**=प्रत्येक (ऐश्वर्य) को **नः**=हम नहीं जान पाते। **ते**=आपका **इन्द्रियम्**=बल **नकिः ददृशे**=हमारे से देखा

नहीं जा पाता। आपके बल के अन्त को हम नहीं पा पाते।

भावार्थ—प्रभु की 'महिमा, ऐश्वर्य, साफल्य व बल' सब अपरिमेय हैं। मनुष्य की बुद्धि से ये अपरिमेय ही हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वरशिख के सन्तान का उच्छेद

एतत्त्यत्त॑ इन्द्रि॒यम॑चेति॒ येना॒वधी॑र्व॒रशि॑खस्य॒ शेषः॑।
वज्र॑स्य॒ यत्ते॒ निह॑तस्य॒ शुष्मा॑त्स्व॒नाच्चि॑दिन्द्र पर॒मो द॒दार॑ ॥ ४ ॥

(१) हे प्रभो! **एतत्**=यह **त्यत्**=वह प्रसिद्ध **ते**=आपका **इन्द्रियम्**=वीर्य (बल) **अचेति**=जाना जाता है **येन**=जिससे आप **वरशिखस्य**=(वर्=to enclose, शिखा=a ray of light) प्रकाश की किरणों के ढक लेनेवाले, उनपर परदा डाल देनेवाले कामासुर के **शेषः**=सन्तान को (इस कामासुर के बच्चे को) **अवधीः**=नष्ट कर देते हैं। (२) **यत्**=जब **निहतस्य**=शत्रु के प्रति प्रेरित (हन् गतौ) **ते**=आपके **वज्रस्य**=वज्र के **शुष्मात् स्वनात्**=शत्रु शोषक शब्द से ही, हे **इन्द्र**=शत्रुविदारक प्रभो! **परमः**=यह (सर्वोत्कृष्ट) शत्रु भी **ददार**=विदीर्ण हो जाता है। 'वज्र का शुष्म स्वन' यही है कि हम कर्म में लगे रहें (वज् गतौ) और प्रभु का स्मरण करें। प्रभु स्मरणपूर्वक कर्म व्यापृति ही कामवासना के उच्छेद व अनाक्रमण के लिये आवश्यक है।

भावार्थ—प्रभु ही प्रकाश को आवृत करनेवाले वृत्र (काम) को विनष्ट करते हैं। प्रभु स्मरणपूर्वक कर्म में लगे रहने से वासना का आक्रमण ही नहीं होता, यह वासना रूप दैत्य विदीर्ण हो जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अभ्यावर्ती चायमान'

वधी॒दिन्द्रो॑ व॒रशि॑खस्य॒ शेषो॑ऽभ्याव॒र्तिने॑ चायमा॒नाय॒ शिक्ष॑न्।
वृ॒चीव॑तो॒ यद्ध॑रियू॒पीया॑यां॒ हन्पूर्वे॒ अर्धे॑ भि॒यसाप॑रो॒ दर्त्॥ ५ ॥

(१) **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु **वरशिखस्य**=प्रकाश की किरणों को आवृत कर लेनेवाले कामासुर (वृत्र) के **शेषः**=सन्तान को (कामासुर के बच्चे को) **वधीत्**=नष्ट कर देते हैं। इसके विनाश से ये **अभ्यावर्तिने**=निरन्तर कर्त्तव्य कर्मों को आवृत्त करनेवाले, दिनभर कर्त्तव्य-चक्र के पालन में लगे रहनेवाले, **चायमानाय**=पूजा करनेवाले उपासक के लिये **शिक्षन्**=ईप्सित बलों को देते हुए होते हैं। (२) **यत्**=जब वे प्रभु **हरियूपीयायाम्**=दुःखों का हरण करनेवाले यज्ञ-स्तम्भोंवाली इस यज्ञभूमि शरीर में (पुरुषो वाव यज्ञः) **पूर्वे अर्धे**=जीवन के पूर्व भाग में, अर्थात् यौवन दशा में ही **वृचीवतः**=इन उच्छेदक वासनारूप शत्रुओं को **हन्**=नष्ट करते हैं तो **भियसा**=भय से ही **अपरः**=हमारा शत्रु **दर्त्**=विदीर्ण हो जाता है। 'वरशिख का शेष' ही अपर है। इस अपर का हमारे जीवन में स्थान नहीं रहता।

भावार्थ—हम कर्त्तव्य-चक्र में लगे रहकर प्रभु का पूजन करनेवाले बनें। प्रभु हमारे लिये उच्छेदक वासनारूप शत्रु को जीवन के पूर्वार्ध में ही विनष्ट करेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

वृचीवान् का विनाश

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन्॥ ६॥

(१) हे **पुरुहूत**=बहुतों से पुकारे जानेवाले **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **यव्यावत्याम्**=इस बुराइयों के अमिश्रण व अच्छाइयों के मिश्रणवाली यव्यावती (हरियूपीया, ५) में **साकम्**=साथ-साथ इकट्ठे ही, **त्रिशंत् शतम्**=संख्या में तीसों हजार, अर्थात् बहुत **वर्मिणः**=कवचधारी **वृचीवन्तः**=हमारा उच्छेद करनेवाले वासनारूप शत्रु **श्रवस्या**=ज्ञान प्राप्ति की प्रबल कामना से **नि अर्थानि आयन्**=अर्थशून्यता को प्राप्त होते हैं। अर्थात् अपना प्रयोजन नहीं सिद्ध कर पाते। ज्ञान प्राप्ति की कामना इन सब अन्य शत्रुभूत कामनाओं को नष्ट कर देती है। (२) ये वृचीवान् **शरवे पल्यमानाः**=हिंसा के लिये हमारे पर आक्रमण करते हैं। **पात्रा भिन्दानाः**=इस हरियूयीया नामक शरीर रूप यज्ञवेदि में अंग रूप यज्ञ पात्रों को ये विदीर्ण करते हैं। अंगों की शक्ति को क्षीण करनेवाले होते हैं। वे पराभूत होते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञान प्राप्ति की प्रबल कामना के द्वारा अन्य शत्रुभूत कामनाओं को विनष्ट करें। जो कामनाएँ हमारा विनाश करती हैं और अंगों की शक्ति को क्षीण करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अरुषो गावौ

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन्॥ ७॥

(१) **यस्य**=जिस प्रभु दी हुई **अरुषा**=आरोचमान, तेज व ज्ञान से चमकती हुई, **सूयवस्यू**=अच्छी प्रकार बुराइयों को दूर करनेवाली व अच्छाइयों को ग्रहण करनेवाली, **रेरिहाणा**=यज्ञों व ज्ञानों का आस्वाद लेती हुई **गावो**=कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ रूप गौयें **उ**=निश्चय से **अन्तः**= द्यावापृथिवी के अन्दर **सुचरतः**=सम्यक् विचरण करती हैं। कर्मेन्द्रियाँ यज्ञादि कर्मों को करती हुई शरीर रूप पृथिवी को दृढ व तेजस्वी बनाती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान को प्राप्त करती हुई मस्तिष्क रूप द्युलोक को ज्ञानोज्ज्वल करती हैं। **सः**=वे प्रभु **सृञ्जयाय**=(सृ गतौ) गतिशीलता के द्वारा विजय को प्राप्त करनेवाले के लिये **तुर्वशम्**=त्वरा से वश में कर लेनेवाले इस क्रोध को **परादात्**=दूर करते हैं। (२) ये प्रभु ही **दैववाताय**='माता, पिता, आचार्य व अतिथि' आदि देवों से प्रेरित होनेवाले इस 'अभ्यावर्ती चायमान' (२७।५) के लिये **शिक्षन्**= शक्ति को देते हुए **वृचीवतः**=उच्छेद करनेवाले वासनारूप शत्रुओं को (परादात्)=सुदूर विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—प्रभु उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराके शरीररूप पृथिवी को तेज से दीप्त तथा मस्तिष्क रूप द्युलोक को ज्ञानदीप्त बनाते हैं। क्रियाशीलता द्वारा विजयी पुरुष के लिये क्रोध को नष्ट करते हैं तथा दैववात पुरुष के लिये वासनाओं का उच्छेद करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अभ्यावर्तिनश्चायमानस्य ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

दूणाशा दक्षिणा

द्व॒याँ अ॑ग्ने र॒थिनो॑ विंश॒तिं गा व॒धूम॑तो म॒घवा॒ मह्यं॑ स॒म्राट्।
अ॒भ्या॒व॒र्ती चा॑यमा॒नो द॑दाति दू॒णाशे॒यं दक्षि॑णा पार्थ॒वाना॑म्॥ ८ ॥

(१) इन्द्रियाँ 'गौ' कहलाती हैं। ये 'ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय' रूप से दो भागों में बँटी हैं। हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **मघवा**=ऐश्वर्यशाली हैं व यज्ञशील हैं (मघ=मख), **सम्राट्**=सम्यक् शासन करनेवाले हैं व दीप्त हैं। आप **मह्यम्**=मेरे लिये **द्वयान्**=इन दो भागों में बटी हुई, **रथिनः**=उत्तम शरीर रूप रथवाली **वधूमतः**=वेदवाणी रूप वधूवाली **विंशतिम्**=दस इन्द्रियाँ व दस प्राणशक्तियाँ इस प्रकार मिलकर बीस **गाः**=इन्द्रिय रूप गौवों को प्राप्त कराते हैं। (२) **अभ्यावर्ती**=कर्त्तव्य कर्म रूप चक्र में चलनेवाला **चायमानः**=प्रभु का पूजन करनेवाला इन इन्द्रियों को प्रभु के लिये **ददाति**=देता है, अर्थात् इन्हें विषयों में न फँसने देकर प्रभु की ओर प्रेरित करता है। इन **पार्थवानाम्**=(प्रथ विस्तारे) विषयों में न फँसने देकर इन्द्रिय शक्तियों का विस्तार करनेवाले इन पुरुषों की **इयं दक्षिणा**=यह प्रभु के प्रति इन्द्रियों को देने का कार्य **दूणाशा**=नष्ट होनेवाला नहीं। यह दक्षिणा जब तक चलती है यह इन पार्थवों को नष्ट नहीं होने देती।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप गौवों को प्राप्त कराती हैं। कार्यक्रम में चलनेवाला प्रभु का पूजक इन इन्द्रियों को प्रभु के प्रति देता है। इनकी यह दक्षिणा नष्ट नहीं होती, यह दक्षिणा इन्हें भी नाश से बचाती है।

भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि अगले सूक्त में गौवों का शंसन करते हैं—

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—गावः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

गौवें और भद्र

आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः॥ १ ॥

(१) **गावः**=गौवें **सर्वत**=सब ओर से **आ अग्मन्**=हमें प्राप्त हों, **उत**=और **भद्रं अक्रन्द**=हमारा कल्याण करें। ये गौवें **गोष्ठे सीदन्तु**=गोष्ठ में स्थित हों और **अस्मे**=हमारे लिये **रणयन्तु**=रमणीयता व आनन्द को करनेवाली हैं। वस्तुतः इन गौवों के दूध से ही इन्द्रिय रूप गौवों को शक्ति व ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है। यह दूध ही कर्मेन्द्रियों को सात्त्विक यज्ञादि कर्मों में व्यापृत करके सशक्त बनाता है तथा ज्ञानेन्द्रियों को यही ज्ञानदीप्त करता है। (२) ये गौवें **इह**=हमारे घरों में **प्रजावतीः**=प्रकृष्ट प्रजाओंवाली, उत्तम बछड़े-बछियोंवाली व **पुरुरूपाः**=भिन्न-भिन्न रूपोंवाली 'गौर, कपिला व कृष्ण' **स्युः**=हों। यह गौवें **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिये **पूर्वीः**=बहुत **उषसः**=उषाकालों में **दुहानाः**=दोहमान हों, दूध को देनेवाली हों।

भावार्थ—गौवें घरों में प्राप्त हों और हमारे घरों को मगंलमय बनायें। उत्तम बछड़ोंवाली, अनेक रूपोंवाली ये गौवें सदा उषाकालों में दूध को प्राप्त करानेवाली हों।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—गाव इन्द्रो वा ॥ छन्दः—स्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'यज्वा पृणन्' की अभिन्न खिल्य में स्थिति

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम्॥ २॥

(१) **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **यज्वने**=यज्ञशील पुरुष के लिये, **च**=और **पृणते**=स्तुतियों के द्वारा प्रीणित करनेवाले पुरुष के लिये **शिक्षति**=आवश्यक धन को देता है। **उप इत् ददाति**=समीप प्राप्त होकर देता ही है। इस यज्ञशील पुरुष के **स्वं न मुषायति**=धन को अपहृत नहीं करता। (२) **अस्य**=इस यज्ञशील वस्तुतियों के द्वारा प्रीणित करनेवाले मनुष्य के **रयिम्**=ऐश्वर्य को **इत्**=निश्चय से **भूयः भूयः**=अधिक और अधिक **वर्धयन्**=बढ़ाता हुआ, इस **देवयुम्**=दिव्य गुणों को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले पुरुष को **अभिन्ने**=शत्रुओं से न विदीर्ण किये जानेवाले **खिल्ये**=अप्रतिहत स्थान में **निदधाति**=स्थापित करते हैं। तमोगुण व रजोगुण से ऊपर उठाकर सत्त्वगुण में स्थापित करते हैं। इस सत्त्वगुण में स्थित हुआ-हुआ यह पुरुष वासनारूप शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु यज्ञशील स्तोता के धन को बढ़ाते हैं और इसे सत्त्वगुण में स्थापित करके वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देते।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—गावः ॥ छन्दः—जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

गौवें व यज्ञसिद्धि

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥ ३॥

(१) **ताः**=वे गौवें **न नशन्ति**=अदृष्ट नहीं होतीं। **तस्करः**=चोर **न दभाति**=इन्हें हिंसित नहीं करता। कोई **व्यथिः**=पीड़ित करनेवाला **अमित्रः**=शत्रु **आसां न आदधर्षति**=इनका धर्षण नहीं करता है। (२) **च**=और यह **गोपतिः**=गौओं का रक्षक पुरुष **याभिः**=जिनके द्वारा, जिनसे प्राप्त दुग्ध-घृत आदि से **देवान् यजते**=देवयज्ञ करता है, अग्निहोत्र आदि यज्ञों को करता है **च**=और **ददाति**=दान को कर पाता है, **ताभिः सह**=उन गौवों के साथ **ज्योग् इत्**=चिरकाल तक ही **सचते**=समवेत होता है। इन गौवों के द्वारा उसके सब यज्ञ ठीक प्रकार चलते हैं।

भावार्थ—हमारी गौवें सुरक्षित रहती हैं। इनके द्वारा हम देवयज्ञ आदि यज्ञों को कर पाते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—गावः ॥ छन्दः—जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

न अपहरण, न विशसन (गौवों का)

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः॥ ४॥

(१) **ताः**=इन गौवों को **रेणुककाटः**=युद्ध में पार्थिव धूलि का उद्भेदक **अर्वा**=युद्ध के लिये आया हुआ घोड़ा **न अश्नुते**=नहीं प्राप्त करता। अर्थात् युद्ध के द्वारा कोई हमारी इन गौवों का अपहरण नहीं कर पाता। तथा **ताः**=वे गौएँ **संस्कृतत्रम्**=विशसन आदि संस्कार को **न अभि उपयन्ति**=नहीं प्राप्त होती हैं। अर्थात् वे गौवें वध्यस्थल में हिंसित होकर भोजन का अंग नहीं

बन जाती। (२) और **ताः गावः**=वे गौवें **यज्वनः**=यज्ञशील **तस्य-मर्तस्य**=उस मनुष्य के **उरुगायम्**=विस्तीर्णगमनवाले **अभयम्**=भयवर्जित प्रदेश का **अनु**=लक्ष्य करके **विचरन्ति**=विचरण करती है। यज्ञों में ही इनके दूध-घृत आदि का प्रयोग होता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से न हमारी गौवों का युद्ध द्वारा अपहरण होता है, ना ये वधशाला में पहुँचती हैं। यज्ञशील पुरुषों की यज्ञभूमियों में ही ये विचरती हैं और यज्ञार्थ घृत-दुग्ध आदि को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'गावः' भगः (गौ)

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्॥ ५॥

(१) **गावः भगः**=गौएँ ही ऐश्वर्य हैं। **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **मे**=मेरे लिये **गावः अच्छान्**=गौवों को प्राप्त कराये (यक्षतु सा०)। ये **गावः**=गो-दुग्ध **प्रथमस्य सोमस्य**=सर्वश्रेष्ठ सोम के **भक्षः**=भोजन हैं, अर्थात् गो-दुग्ध के सेवन सर्वोत्तम वीर्य प्राप्त होता है। (२) **इमाः**=ये **याः**=जो **गावः**=गौवें हैं, हे **जनासः**=लोगो! **या स इन्द्रः**=वे ही इन्द्र हैं। इन्द्र की प्राप्ति का ये गौएँ ही साधन बनती हैं। मैं वस्तुतः **हृदा**=श्रद्धायुक्त हृदय से तथा **मनसा**=प्रबल प्राप्ति की कामनावाले मनसे **इन्द्रं चित्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को ही **इच्छामि**=चाहता हूँ। उस प्रभु प्राप्ति की कामना से ही इन गौवों की भी सेवा करता हूँ। इनके दुग्ध से ही सात्त्विक बुद्धिवाला होकर मैं प्रभु को प्राप्त करनेवाला होता हूँ।

भावार्थ—गौवें ही सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य हैं। ये ही सर्वोत्कृष्ट सोम को अपने दुग्ध द्वारा प्राप्त कराती हैं। ये ही अपने दूध से हमारी बुद्धि को सात्त्विक बनाकर हमें प्रभु की प्राप्ति के योग्य करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्'

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु॥ ६॥

(१) हे **गावः**=गौओ! **यूयम्**=आप अपने दूध से **कृशंचित्**=क्षीण हुए-हुए को **मेदयथा**=उचित मेदस्वाला व आप्यायित करती हो। **अश्रीरं चित्**=शोभारहित को, शोभाशून्य अंगोंवाले को **चित्**=भी **सुप्रतीकम्**=उत्तम अंग-प्रत्यंगवाला **कृणुथा**=करती हो। उसका भी हीन शरीर फिर से श्रीसम्पन्न हो उठता है। (२) **भद्रवाचः**=शुभ वाणीवाली आप **गृहं भद्रं कृणुथ**=सारे घर को मंगलमय कर देती हो। इसी से **सभासु**=सभाओं में **बृहत्**=खूब ही **वः**=आपका **वयः उच्यते**=(energy, strength, soundness of constitution) शक्ति व स्वास्थ्य का प्रतिपादन होता है। अर्थात् आपके दूध से प्राप्त होनेवाली शक्ति व स्वास्थ्य का खूब प्रशंसन होता है।

भावार्थ—गौवें अपने दूध से कृश को आप्यायित करती हैं। श्रीविहीन को श्रीसम्पन्न बनाती हैं। घर को मंगलमय बनाती हैं। उत्कृष्ट शक्ति व स्वास्थ्य को प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—गावः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

शुद्ध चारा-शुद्ध जल

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ७ ॥

(१) हे गौवे! जो आप **प्रजावतीः**=उत्कृष्ट बछड़ों व बछियोंवाली हों, **सूयवसं रिशन्तीः**=उत्तम घास को चरती हो, तथा **सुप्रपाणे**=उत्तम जलपान-स्थान में **शुद्धाः अपः**=शुद्ध जलों को **पिबन्तीः**=पीती हो। उन **वः**=आपको **स्तेनः मा ईशत**=चोर स्वामित्व करनेवाला न हो। **अघशंसः**=पाप का शंसन करनेवाला तुम्हारा ईश न बने। (२) **वः**=आपको **रुद्रस्य**=उस मृत्यु द्वारा रुलानेवाले कालात्मक प्रभु का **हेतिः**=वज्र **परिवृज्याः**=छोड़ दे। आप पर प्रभु का वज्र न गिरे। अर्थात् इन गौवों पर कोई आधिदैविक आपत्ति न आ जाये।

भावार्थ—शुद्ध घास व शुद्ध जल का सेवन करती हुईं गौवें उत्कृष्ट दूध देती हैं। इन गौवों पर स्तेन व अघशंस (पापी) पुरुष का शासन न हो जाए। ये प्रभु के वज्र से भी आहत न हों। कोई पातक बीमारी न आक्रान्त कर ले।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—गावः; गाव इन्द्रो वा ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अपपर्चन (Impregnation)

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् । उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥

(१) **इदम्**=यह **उपपर्चनम्** (Impregnation)=गर्भ का आधान **आसु गोषु**=इन गौवों में **उपपृच्यताम्**=सम्यक् समीपता से प्राप्त हो। **ऋषभस्य**=खूब शक्तिशाली सांड के **रेतसि**=रेतःकणों में यह गर्भाधान की क्रिया **उप**=संपृक्त हो। (२) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **तववीर्ये**=तेरी शक्ति के निमित्त यह **उप**=उपपर्चन समीपता से प्राप्त हो। जितना ही यह ऋषभ उत्तम नस्ल का होगा, उतना ही यह गौ के उत्तम दूध का कारण बनेगा। और वह उत्तम दूध हमारे शरीर में शक्ति की उत्पत्ति का साधन बनेगा।

भावार्थ—गौवों का उपपर्चन उत्तम ऋषभों द्वारा हो। इन गौवों से प्राप्त दुग्ध हमारी उत्तम शक्ति का साधन बने।

अगले सूक्त में पुन 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

अथ चतुर्थाष्टके सप्तमोऽध्यायः

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्रभु की मित्रता व महान् रमणीय जीवन

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ १ ॥

(१) **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **वः**=तुम्हारे **इन्द्रम्**=परमैश्वर्य के कारणभूत प्रभु को **सख्याय**=मित्रता के लिये **सेपुः**=पूजते हैं। ये नर **महः यन्तः**=महनीय (उत्कृष्ट) कर्मों को करते हुए तथा **सुमतये चकानाः**=शोभन स्तुति के लिये कामना करते हुए, अर्थात् उत्कृष्ट कर्मों द्वारा प्रभु का स्तवन करते हुए प्रभु की मित्रता के लिये पूजते हैं। प्रभु का सच्चा स्तवन तो सदा

उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहता ही है। (२) **वज्रहस्तः**=सब आसुरभावों के विनाश के लिये वज्र को हाथ में लिये हुए वे प्रभु **हि**=निश्चय से **महः दाता अस्ति**=महान् धन के देनेवाले हैं। **उ**=निश्चय से उस **महाम्**=महान् **रण्यम्**=रमणीय प्रभु को **अवसे**=रक्षण के लिये **यजध्वम्**=पूजो। प्रभु की मित्रता में ही कल्याण है। वे प्रभु महान् हैं, रमणीय हैं। उनकी मित्रता में हमारा जीवन भी महान् व रमणीय बनता है।

भावार्थ—उत्तम कर्मों के द्वारा प्रभु का स्तवन करते हुए हम प्रभु की मित्रता को प्राप्त करें। यह मित्रता ही हमें महान् रमणीय जीवनवाला बनायेगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'हिरण्यय रथ का सारथि' प्रभु

आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः॥ २॥

(१) **हस्ते**=(हस्तः हन्तेः) शत्रुओं का हनन करनेवाले **यस्मिन्**=जिस इन्द्र में **नर्याः**=नरहितकारी धन **आमिमिक्षुः**=आपूरित होते हैं, अर्थात् जो प्रभु वासनाओं के संहार के द्वारा उपासक को उत्कृष्ट धन प्राप्त कराते हैं, वे प्रभु **हिरण्यये रथेः**=इस प्रभु कृपा से ही ज्योतिर्मय बने शरीर-रथ में **रथेष्ठाः**=सारथि होते हैं। अपने उपासक के शरीर-रथ का सञ्चालन प्रभु करते हैं। (२) उस समय **रश्मयः**=इस शरीरथ के घोड़ों (इन्द्रियाश्वों) की लगामें **स्थूरयोः गभस्त्योः**=उस सारथि के स्थूल, मज़बूत व दृढ़ हाथों में **आ (यम्यन्ते)**=होती हैं। **अध्वन्**=इस जीवनयात्रा के मार्ग में **अश्वासः**=इन्द्रियाश्व **वृषणः**=शक्तिशाली होते हैं और **युजानाः**=शरीर-रथ में जुते होते हैं। अर्थात् उपासक का जीवन सतत क्रियाशीलता का होता है, वहाँ अकर्मण्यता नहीं होती।

भावार्थ—प्रभु के हाथों में सब नरहितकारी धन विद्यमान हैं। ये प्रभु ही इस शरीर-रथ के सारथि बनते हैं। उस समय इन्द्रियाश्व भटकते नहीं और शरीर-रथ को मार्ग पर ले चलनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वह महान् नृत्यकार

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ॥ ३॥

(१) हे इन्द्र! **श्रिये**=शोभा की प्राप्ति के लिये, जीवन को शुभ बनाने के लिये **ते पादा**=तेरे चरणों में **दुवः**=पूजा को **आमिमिक्षुः**=अर्पित करते हैं। तेरे चरणों की पूजा ही हमारे जीवन की श्रीसम्पन्नता का साधन बनती है। आप **शवसा**=बल के द्वारा **धृष्णुः**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले, **वज्री**=वज्रहस्त व **दक्षिणावान्**=सब दानों को देनेवाले हैं। (२) हे **नृतो**=इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नृत्य को करानेवाले प्रभो! आप **सुरभिम्**=उत्तमता से कार्यों को करने में समर्थ-सुदृढ **अत्कम्**=ज्ञान कवच को **वसानः**=आच्छादित करते हुए (ब्रह्म वर्म ममान्तरम्) **दृशे कम्**=दर्शनीय व आनन्द रूप होते हैं। हे प्रभो! **स्वः न**=इस ज्योतिर्मय सूर्य के समान **इषिरः बभूथ**=हमें मार्ग पर प्रेरित करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु का परिचरण ही जीवन को प्रशस्त बनाता है। प्रभु हमारे दृढ़ कवच हैं। सूर्य के समान मार्ग के दर्शक हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सोम का महत्त्व

स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥ ४ ॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार जब प्रभु हमारे कवच होते हैं, तो **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **सः सोमः**=वह सोम (वीर्यशक्ति) **आमिश्लतमः**=सर्वत्र शरीर के अंग-प्रत्यंग में युक्त **भूत्**=होती है। **यस्मिन्**=जिस सोम के ऐसा होने पर **पक्तिः पच्यते**=ज्ञान का ठीक परिपाक होता है। और **धानाः सन्ति**=ईश्वर का प्रणिधान की वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। (२) इस सोम के शरीर में मिश्लतम होने पर **नरः**=ये उन्नतिपथ पर चलनेवाले लोग **इन्द्रं स्तुवन्तः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का स्तवन करते हुए **ब्रह्मकाराः**=इस वेद को अपने अन्दर करनेवाले होते हैं (ब्रह्म कुर्वन्ति इति)। **उक्था**=सदा स्तुति-वचनों का **शंसन्तः**=शंसन करते हुए ये लोग **देववाततमाः**=अधिक से अधिक दिव्यगुणों को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—सोम-रक्षण से (क) ज्ञान का परिपाक होता है, (ख) ईश्वर प्रणिधान की पूर्ति होती है, (ग) प्रभु-स्तवन चलता है, (घ) वेदज्ञान उत्पन्न होता है, (ङ) स्तुत्यवचनों का उच्चारण व दिव्यगुणों की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्रभु के अनन्त बल का अपने में धारण

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ५ ॥

(१) हे प्रभो! **ते अस्य शवसः**=आपके इस बल का **अन्तः**=अन्त **न धायि**=नहीं जाना जाता (अव धायि)। अनन्त आपका बल है। इस बल के **महित्वा**=महत्त्व से **तु**=तो आप **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **विबबधे**=विशेषरूप से बद्ध करते हैं। आप अपने बल के द्वारा सारे ब्रह्माण्ड को धारण किये हुए हैं। (२) **सूरिः**=स्तोता पुरुष **ऊती**=सोम के रक्षण के द्वारा तू **तूतुजानः**=सब अशुभों का संहार करता हुआ, **समीजमानः**=सम्यक् यजन व पूजन करता हुआ **ता आपृणति**=उन बलों को अपने अन्दर आपूरित करता है। उसी प्रकार उन बलों को आपूरित करता है **इव**=जैसे कि **यूथा**=इन्द्रिय समूहों को **अप्सु**=कर्मों में आपूरित करता है। वस्तुतः इन्द्रियों को कर्मों में लगाये रखने पर ही जीवन वासना शून्य बनता है और इन कर्मों द्वारा, प्रभु-पूजन होकर, प्रभु के बलों को अपने में धारण करने का सम्भव होता है।

भावार्थ—प्रभु का अनन्त बल है जिसके द्वारा वे सारे ब्रह्माण्ड को बद्ध किये हुए हैं। एक स्तोता कर्मों द्वारा प्रभु-पूजन करता हुआ इन बलों से अपने को आपूरित करता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—ब्राह्म्युष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

असमात्मोजाः

एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ६ ॥

(१) **एवा**=इस प्रकार **इत्**=निश्चय से **ऋष्वः**=वह महान् **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **सुहवः**

अस्तु=हमारे से शोभनतया पुकारने योग्य हो। वे **हिरिशिप्रः**=मनोहर हनुओं व नासिकाओं को देनेवाले प्रभु (हिरिशिप्रे यस्मात्) **ऊती**=रक्षण साधनों के द्वारा अथवा **अनूती**=बिना रक्षण साधनों के भी **सत्वा**=शत्रुओं का विनाश करनेवाले हैं (सादयिता) तथा धनों के देनेवाले हैं (सन्) प्रभु हमें रक्षण साधन प्राप्त कराके जब हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं तो 'ऊती' और स्वयं प्रभु हाथ पैर आदि साधनों से रहित होते हुए ही हमारा रक्षण करते हैं, सो 'अनूती'। (२) **एवा**=इस प्रकार **हि**=निश्चय से वे प्रभु **असमाति ओजः**=असमान अनुपम तेजवाले **जातः**=हुए हैं। **च**=और वे प्रभु **उत**=इन बहुत **वृत्रा**=वासनाओं को **हनति**=नष्ट करते हैं और **दस्यून्**=दास्यवभावों को **नि**=(हनति) हमारे से दूर करते हैं। यह सब प्रभु हमें उत्तम हनुओं व नासिका को प्राप्त कराके ही करते हैं। उत्तम हनु (जबड़ों) का भाव 'भोजन को खूब चबाकर खाने से' है तथा उत्तम नासिका का भाव प्राणसाधना से है।

भावार्थ—प्रभु का हम स्तवन करें। प्रभु से दिये गये इन जबड़ों से खूब चबाकर खायें। नासिका छिद्रों से प्राणसाधना करें। वे अनुपम शक्तिवाले प्रभु हमारी वासनाओं को विनष्ट करेंगे और हमें दास्यव भावों से दूर करेंगे।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु के एकदेश में ब्रह्माण्ड की स्थिति

भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे॥ १॥

(१) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **वीर्याय**=शक्तिशाली कर्मों के लिये **भूयः इत्**=खूब ही **वावृधे**=वृद्धि को प्राप्त हुए हैं। **एकः**=वे प्रभु अद्वितीय हैं। **अजुर्यः**=कभी जीर्ण होनेवाले नहीं। **वसूनिदयते**=ये प्रभु हमारे लिये सब वसुओं को देते हैं। (२) ये **इन्द्रः**=प्रभु **दिवः पृथिव्याः**=द्युलोक व पृथिवीलोक से **प्ररिरिचे**=बहुत अधिक बढ़े हुए हैं। **उभे रोदसी**=ये दोनों द्यावापृथिवी **इत्**=निश्चय से **अस्य**=इस प्रभु के **अर्धं प्रति**=आधे भाग के ही प्रतिनिधि होते हैं। अर्थात् ये द्यावापृथिवी प्रभु के एकदेश में ही हैं। 'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोस्येहाभवत् पुनः'।

भावार्थ—प्रभु के कर्म अतिशयेन शक्तिशाली हैं। प्रभु ही सब धनों को देते हैं। ये सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एकदेश में है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'महान् लोकों के निर्माता' प्रभु

अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात्॥ २॥

(१) **अधा**=अब **अस्य**=इस प्रभु के **बृहत् असुर्यम्**=महान् असुर वध के कर्म का **मन्ये**=स्तवन करता हूँ। **यानि दाधार**=प्रभु जिनका धारण करते हैं **नकिः आमिनाति**=इन्हें कोई हिंसित नहीं करता। (२) प्रभु का यह सर्वप्रथम महान् कर्म है कि **दिवेदिवे**=प्रतिदिन **सूर्यः**=सूर्य **दर्शतः भूत्**=दर्शनीय होता है। साथ ही प्रभु **सुक्रतु**=उत्तम प्रज्ञान व कर्मोंवाले हैं और **उर्विया**=(उरूणि) विशाल **सद्मानि**=लोकों को **विधात्**=बनाते हैं। एक-एक लोक कितना

विशाल है, प्रभु इन सब विशाल लोकों का वे प्रभु निर्माण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु का असुरहनन रूप कर्म प्रशंसनीय है। प्रभु ही सूर्योदय को करते हैं, प्रभु ही इन विशाल लोकों का निर्माण करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नदियों व पर्वतों का निर्माण

अ॒द्या चि॒न्नू चि॒त्तदपो॑ न॒दीनां॒ यदा॑भ्यो॒ अर॑दो गा॒तुमि॑न्द्र।
नि पर्व॑ता अद्म॒सदो॒ न से॑दु॒स्त्वया॑ दृ॒ळ्हानि॑ सुक्रतो॒ रजां॑सि॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=सब शक्तिशाली कर्मों को करनेवाले प्रभो! **अद्या चित्**=आज भी **नू चित्**=निश्चय से आपका **तत्**=वह **नदीनां अपः**=नदियों सम्बन्धी कर्म अनुपक्षीण रूप से चल रहा है **यत्**=कि **आभ्यः**=इनके लिए आपने **गातुं अरदः**=जाने के मार्ग को बनाया है। 'नदियाँ सदा से चल रही हैं' यह आपका अद्भुत ही कर्म है। (२) **पर्वताः**=पर्वत **निसेदुः**=अपने स्थान पर ऐसे निषण्ण हैं कि **न**=जैसे **अद्मसदः**=भोजन खाने के लिये बैठनेवाले निश्चलभाव से स्थित होते हैं। हे **सुक्रतो**=उत्तम प्रज्ञान व कर्मोंवाले प्रभो! **त्वया**=आपके द्वारा **रजांसि**=सब लोक **दृढानि**=दृढ़ व स्थिर किये गये हैं।

भावार्थ—प्रभु ही नदियों के मार्ग को बनाते हैं। वे ही पर्वतों व लोकों को दृढ़ करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

मेघविदारण व जलवर्षण

स॒त्यमित्तन्न त्वावाँ॑ अ॒न्यो अ॒स्तीन्द्र॑ दे॒वो न मर्त्यो॒ ज्याया॑न्।
अह॒न्नहिं॑ परि॒शया॑न॒मर्णो॑ऽवासृजो॒ अ॒पो अच्छा॑ समु॒द्रम्॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तत् सत्यं इत्**=वह बात सत्य ही है कि **त्वावान् अन्यः न अस्ति**=आप जैसा और कोई नहीं है। हे प्रभो! **न देवः**=न कोई देव, **न मर्त्यः**=नां ही कोई मनुष्य **ज्यायान्**=आपसे बड़ा नहीं है। (२) आप ही **परिशयानम्**=अन्तरिक्ष में चारों ओर शयन करते हुए **अहिम्**=मेघ को **अहन्**=नष्ट करते हैं, विदीर्ण करते हैं। **अर्णः**=जल को **अव असृजः**=नीचे पृथ्वी पर भेजते हैं। और **अपः**=इन जलों को **समुद्रं अच्छा**=समुद्र की ओर प्रवाहित करते हैं। समुद्र से सूर्य-किरणों द्वारा ये वाष्पीभूत होकर फिर अन्तरिक्ष में मेघ का रूप धारण करते हैं। इस प्रकार फिर वही चक्र चल पड़ता है।

भावार्थ—प्रभु के समान व अधिक कोई और नहीं है। प्रभु ही बादलों को विदीर्ण करके जलों को बरसाते हैं और समुद्र की ओर प्रवाहित करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**ब्राह्म्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

सूर्य, द्युलोक व उषा का प्रादुर्भाव

त्वम॒पो वि दुरो॒ विषू॑ची॒रिन्द्र॑ दृ॒ळ्हम॑रुजः॒ पर्व॑तस्य।
राजा॑भवो॒ जग॑तश्चर्षणी॒नां सा॒कं सूर्यं॑ ज॒नय॒न्द्यामु॒षास॑म्॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमात्मन्! **त्वम्**=आपने **पर्वतस्य**=इस पर्वोंवाले मेघ के **दुरः**=द्वारों को **दृढम्**=दृढ़ता से **अरुजः**=नष्ट किया और **अपः**=जलों को **विषूचीः वि (असृजः)**=चारों ओर गतिवाला किया है। इस प्रकार जलवर्षण की व्यवस्था से आपने सारे संसार का पोषण किया

है। (२) **जगतः**=इस सारे जगत् के, ब्रह्माण्ड के पिण्डों के तथा **चर्षणीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **राजा अभवः**=आप शासक हैं। आप **साकम्**=साथ-साथ ही **सूर्यम्**=सूर्य को **द्याम्**=प्रकाशमय अन्तरिक्षलोक को तथा **उषासम्**=उषाकाल को **जनयन्**=प्रादुर्भूत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु मेघों के द्वारों को खोलकर सर्वत्र वर्षण करते हुए सारे जगत् मनुष्यों के जीवनों को दीप्त करते हैं। सूर्य को द्युलोक को व उषाकाल को प्रादुर्भूत करते हुए मनुष्यों के जीवन में दीप्ति प्राप्त कराते हैं। सूर्य आदि के अभाव में जीवन की कल्पना ही नहीं होती।

इस लोक में सुहोत्र=उत्तम वाणीवाले व उत्तम यज्ञशील पुरुष (इन्द्र) का आराधन करते हैं—

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रयिपते रयीणाम्

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन्! हे **रयीणां रयिपते**=धनों के स्वामिन् प्रभो! आप ही **एकः**=अद्वितीय शासक **अभूः**=हैं। आप **कृष्टीः**=सब प्रजाओं को **हस्तयोः आ अधिथाः**=अपने हाथों में सर्वतः धारण करते हैं। आप ही सबके आधार हैं। (२) **चर्षणयः**=मनुष्य **तोके**=पुत्रों के निमित्त **अप्सु**=उत्कृष्ट कर्मों के निमित्त **च**=और **तनये**=पौत्रों के निमित्त **च**=और **सूरे**=उत्कृष्ट (शत्रूणां प्रेरणा) शत्रुओं के कम्पित करने के कार्य के निमित्त **विवाचः**=विविध स्तुतिवाणियों को **वि अवोचन्त**=विशेष रूप से आचरण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही शासक हैं, धनों के स्वामी हैं। सब मनुष्य 'उत्तम पुत्रों, कर्मों, पौत्रों व शत्रुकम्पन आदि कार्यों' के निमित्त प्रभु का ही विविध वाणियों से स्तवन करते हैं। प्रभु ही उचित धनों को प्राप्त कराके हमें उत्तम सन्तानादि को प्राप्त करने में क्षम करते हैं।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु के शासन में

तवद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वद्भिया**=आपके भय से **पार्थिवानि**=(पृथिवी=अन्तरिक्षम्) इस अन्तरिक्ष में होनेवाले **विश्वा**=सब **अच्युता चित्**=बड़े दृढ़ जिनका स्वस्थान से हिलाना बड़ा कठिन है ऐसे अच्युत भी, **रजांसि**=लोक **च्यावयन्ते**=स्थानच्युत कराये जाते हैं। (२) **द्यावाक्षामा**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक, **पर्वतासः**=पर्वत, **वनानि**=वन, अन्य भी **विश्वम्**=सब **दृळहम्**=यह दृढ़ लोक **ते अज्मन्**=आपके आगमन में **आभयते**=समन्तात् भयभीत हो उठता है।

भावार्थ—प्रभु के भय से यह संसार भयभीत हो उठता है। सब संसार प्रभु के शासन में चलता है।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

काम, लोभ व क्रोध का विनाश

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **कुत्सेन**=इन वासनाओं का हिंसन करनेवाले उपासक के साथ **अशुषम्** शोषपितुमशक्य=जिसका शोषण करना बड़ा कठिन है उस **शुष्णम्**=शक्तियों का शोषण करनेवाले कामासुर (को) **अभियुध्य**=आभिमुख्येन युद्ध करते हैं। **गविष्टौ**=संग्राम में **कुयवम्**=सब बुराइयों से मिश्रण करानेवाले लोभ को **दश**=(अदशः) आप हिंसित करते हैं। (२) **अध**=अब **प्रपित्वे**=(प्रपतने) प्रकृष्ट आक्रमणवाले युद्ध में **सूर्यस्य** (सूर् to hurt, kill)=नष्ट करनेवालों में प्रमुख क्रोध के **चक्रम्**=चक्र को, दौर को **मुषायः**=आप अपहृत करते हैं। अर्थात् आप क्रोध को विनष्ट करते हो। इस प्रकार **रथांसि**=सब दोषों को आप **अविवेः**=(अपणमयः) हमारे जीवन से दूर करते हैं।

भावार्थ—काम-क्रोध-लोभ को दूर करके प्रभु हमारे जीवनों को निर्दोष बनाते हैं।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदतिशक्वरी** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'शंवर' (ईर्ष्या) का विनाश

त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **दस्योः**=उपक्षय के कारणभूत **शम्बरस्य**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले ईर्ष्या रूप असुर के **शतानि**=सैंकड़ों **अप्रतीनि**=जिनपर आक्रमण करना कठिन है, उन **पुरः**=नगरों को **अव जघन्थ**=नष्ट करते हैं। (२) **यत्र**=जिस ईर्ष्या के नष्ट होने पर हे **शचीवः**=प्रज्ञावन् प्रभो! आप **शच्या अशिक्षः**=प्रज्ञा के साथ सब धनों को देते हैं। हे **सुतक्रे**=उत्पन्न सोम के द्वारा क्रीत प्रभो! आप **दिवोदासाय**=ज्ञान के सेवक, ज्ञानोपार्जन में प्रवृत्त, **सुन्वते**=यज्ञशील **भरद्वाजाय**= अपने में शक्ति का भरण करनेवाले **गृणते**=स्तोता उपासक के लिये **वसूनि**=निवास के लिये आवश्यक सब धनों को देते हैं।

भावार्थ—प्रभु ईर्ष्या को विनष्ट करते हैं। शक्ति के साथ सब आवश्यक धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सत्यसत्वा तुविनृम्ण' प्रभु

स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम्।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः॥ ५॥

(१) हे **सत्यसत्वन्**=सत्य बलवाले **तुविनृम्ण**=महान् धनवाले प्रभो! **सः**=वे आप **महते रणाय**=इस महान् अध्यात्म संग्राम के लिये, काम-क्रोध-लोभ आदि से युद्ध के लिये, **भीमम्**=इस शत्रुभयंकर **रथं अतिष्ठ**=शरीर-रथ पर स्थित होइये। आपकी शक्ति से शक्ति-सम्पन्न होकर मैं इन शत्रुओं को जीतनेवाला बनूँ। (२) **प्रपथिन्**=हे प्रकृष्ट मार्गवाले प्रभो! आप **अवसा**=रक्षण के हेतु से **मद्रिक् उप**=मुझे आभिमुख्येन प्राप्त होइये। आपको प्राप्त करके मैं इन शत्रुओं के

आक्रमण से अपने को बचा सकूँ। **च**=और **हे श्रुत**=ज्ञान-सम्पन्न प्रभो! आप **चर्षणिभ्यः**=हम श्रमशील मनुष्यों के लिये **प्रश्रावय**=प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु हमारे शरीर-रथ में स्थित हों। इसी से हमें शक्ति व धन की प्राप्ति होगी और हम जीवन-संग्राम में सफल होंगे। प्रभु हमें रक्षा प्राप्त करायें, ज्ञान दें जिससे हम रक्षित हो सकें।

'सुहोत्र' ऋषि ही इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पुरुतमानि शन्तमानि (वचांसि)

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम्॥ १ ॥

(१) **अस्मै**=इस प्रभु के स्तवन के लिये **आसा**=मुख से **वचांसि**=स्तुति-वचनों को **तक्षम्**=करता हूँ। जो स्तुति-वचन **अपूर्व्या**=अद्भुत हैं, सृष्टि के प्रारम्भ में प्राप्त कराये गये हैं। **पुरुतमानि**=जीवन का आदर्श दिखलाने के द्वारा जो हमारा अधिक से अधिक पालन व पूरण करनेवाले हैं। **शन्तमानि**=मन में शान्ति को उत्पन्न करनेवाले हैं। (२) उस प्रभु के लिये हम इन स्तुति-वचनों का उच्चारण करते हैं जो **महे**=महान् हैं, **वीराय**=हमारे शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले हैं। **तवसे**=बलवान् हैं। **तुराय**=हमारे अन्दर आ जानेवाली सब बुराइयों का संहार करनेवाले हैं। **विरप्शिने**=महान् हैं अथवा विशिष्ट ज्ञान को हृदयस्थरूपेण उच्चारित करनेवाले हैं। **वज्रिणे**=वज्रहस्त हैं तथा **स्थविराय**=अत्यन्त पुराण सनातन पुरुष हैं इनके लिये स्तुतिवचनों का उच्चारण करता हुआ मैं उन बातों को अपने जीवन में लाने के लिये यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—मैं प्रभु के नामों का उच्चारण करता हूँ और अपना पालन व पूरण करता हुआ शान्ति का अनुभव करता हूँ।

ऋषिः—**सुहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

गो-निदान का उत्सर्जन (स्तुति के दो लाभ)

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम्॥ २ ॥

(१) **सः**=वे प्रभु **कवीनाम्**=इन क्रान्तदर्शी तत्त्वद्रष्टा पुरुषों के **मातरा**=मस्तिष्क व शरीर रूप द्यावापृथिवी को **सूर्येण**=ज्ञानसूर्य के उदय से **ओवासयत्**=प्रकाशित करते हैं। **गृणानः**=हृदयस्थरूपेण ज्ञानोपदेश करते हुए वे प्रभु **अद्रिम्**=अविद्या पर्वत को **रुजत्**=नष्ट करते हैं। (२) **स्वाधीभिः**=उत्तम ध्यानवाले **ऋक्वभिः**=स्तोताओं से **वावशानः**=प्राप्ति के लिये काम्यमान होते हुए वे प्रभु **उस्रियाणाम्**=ज्ञानेन्द्रियरूप गौवों के **निदानम्**=विषयरूप बन्धनों को **उदसृजत्**=मुक्त करते हैं। प्रभु-स्तवन से इन्द्रिय विषयों के बन्धन से बद्ध नहीं होतीं।

भावार्थ—प्रभु-स्तवन से अविद्या पर्वत का विनाश होता है। मस्तिष्क व शरीर ज्ञानसूर्य से प्रकाशित हो जाते हैं। इन्द्रियाँ विषय-बन्धन से मुक्त हो जाती हैं।

ऋषिः—सुहोत्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'वह्नि, ऋक्व, मितज्ञु'

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन्॥ ३॥

(१) **सः**=वे **पुरुकृत्वा**=सब पालक व पूरक कर्मों को करनेवाले प्रभु **वह्निभिः**=यज्ञ आदि कर्मों का वहन करनेवाले **ऋक्वभिः**=(ऋच स्तुतौ) स्तुति को करनेवाले **गोषु**=ज्ञान की वाणियों के निमित्त **मितज्ञुभिः**=संकुचित जानु होकर आचार्यों के समीप बैठनेवाले इन पुरुषों से **शश्वत्**=सदा **जिगाय**=काम-क्रोध-लोभ आदि आसुर भावनाओं को जीतते हैं। विजय सब प्रभु ही करते हैं, इन 'वह्नि, ऋक्व व मितज्ञु' पुरुषों को वे अपना निमित्त बनाते हैं। (२) वे **पुरोहा**=आसुर पुरियों का विध्वंस करनेवाले प्रभु **दृढाः पुरः**=दृढ़ भी असुर नगरियों को **रुरोज**=भग्न कर देते हैं। इस प्रकार वे प्रभु **सखिभिः**=सखा भूत जीवों के साथ **सखीयन्**=सखित्व का आचरण करते हैं और **कविभिः कविः सन्**=इन तत्त्वद्रष्टा पुरुषों के साथ तत्त्वदर्शी होते हैं। वस्तुतः प्रभु ही इन सखाओं को तत्त्वद्रष्टा बनाते हैं।

भावार्थ—अध्यात्म संग्राम में विजयी बनने के लिये हम 'यज्ञादि कर्मों का वहन करनेवाले, स्तोता व ज्ञान की वाणियों के निमित्त आचार्यों के समीप संकुचित जानु होकर बैठनेवाले' बनें। प्रभु हमारे सब आसुरभावों को विनष्ट करेंगे।

ऋषिः—सुहोत्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

नीव्याभिः-पुरुवीराभिः

स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **स**=वे आप **नीव्याभिः**=नीवि में उत्तम, मूलधन को प्राप्त कराने में उत्तम, वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त कराने में उत्तम, स्तुतियों से **जरितारम्**=स्तवन करनेवाले की **अच्छा**=ओर **प्रयाहि**=प्राप्त होइये। इस स्तोता की ओर **महो वाजेभिः**=महत्त्वपूर्ण शक्तियों के साथ **च**=तथा **महद्भिः शुष्मैः**=महान् शत्रुशोषक बलों के साथ प्राप्त होइये। (२) हे **वृषभ**=सब कल्याणों का वर्षण करनेवाले प्रभो! **गिर्वणः**=स्तुति-वाणियाँ से सम्भजनीय प्रभो! **पुरुवीराभिः**=खूब ही शत्रुओं को कम्पित करनेवाली (वि+ईर) इन स्तुतियों के द्वारा **क्षितीनाम्**=इन मनुष्यों के **सुविताय**=शुभ मार्ग पर चलने के लिये (प्रयाहि=) प्राप्त होइये।

भावार्थ—स्तुति से 'महान् बल, शत्रुशोषक शक्ति व शुभ मार्ग पर चलने की वृत्ति' प्राप्त होती है। स्तुति नीव्या है, वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त कराने में उत्तम है तथा पुरुवीरा है, खूब ही शत्रुओं को कम्पित करनेवाली है।

ऋषिः—सुहोत्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

त्याग व बल से मोक्ष प्राप्ति

स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट्।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम्॥ ५॥

(१) **सः**=वह **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **सर्गेण**=(relinquishment) त्याग से व **शवसा**=बल

से **तक्ता**=संगत हुआ-हुआ **अत्यैः**=सततगमन कुशल इन्द्रियाश्वों से **अपः**=कर्मों को **दक्षिणतः**=सरलता व उदारता से करता हुआ **तुराषाट्**=हिंसक शत्रुओं का पराभव करनेवाला होता है। (२) **इत्था**=इस प्रकार **सृजानाः**=(सृज to give up) त्याग करते हुए ये जितेन्द्रिय पुरुष **अनपावृत् अर्थम्**=जिससे इस मानव आवर्त में लौटना नहीं होता उस मोक्षरूप अर्थ को **दिवे-दिवे**=दिन प्रतिदिन **विविषुः**=प्रविष्ट होते जाते हैं। उस अर्थ को प्राप्त होते हैं जो **अप्रमृष्यम्**=किन्हीं भी लौकिक कामनाओं से क्षोभ्य नहीं। अर्थात् जो पद 'शान्त प्रिय व सुन्दर ही सुन्दर' है।

भावार्थ—त्याग व बल से युक्त होकर, सतत क्रियाशील इन्द्रियाश्वों से उदारता व सरलता से कार्यों को करते हुए हम शत्रुओं का संहार करें। इस प्रकार त्यागवृत्ति से हम उस मोक्षलोक को प्राप्त करेंगे, जिससे इस मानव आवर्त में फिर लौटना नहीं होता।

इस प्रकार त्याग की भावनावाला यह व्यक्ति 'शुनहोत्र' है, 'शुनं सुखं जुहोति'=लोकहित के लिये अपने सुख को त्याग देता है। यह इन्द्र का आराधन करता हुआ कहता है कि—

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'ओजिष्ठ-मद-स्वभिष्टि-दास्वान्' सन्तान

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान्।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान्॥ १॥

(१) हे **वृषन्**=सब कामनाओं का वर्षण करनेवाले **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः**=जो सन्तान **ओजिष्ठः**=खूब ओजस्विता व बलवत्तम है, **मदः**=मादयिता—आनन्दित करनेवाला है, **स्वभिष्टिः**=शोभनाभ्येषण है—अच्छी प्रकार शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला है तथा **दास्वान्**=हवियों को देनेवाला है, **तम्**=उस पुत्र को **नः**=हमारे लिये **सु**=(सुष्ठु) अच्छी प्रकार **दाः**=दीजिये। (२) उस पुत्र को दीजिये जो **स्वश्वः**=उत्तम इन्द्रियाश्वोंवाला होता हुआ **सौवश्व्यम्**=उत्तम इन्द्रियाश्व समूह को **वनवत्**=जीतता है (वन्=win) तथा **समत्सु**=संग्रामों में **अमित्रान्**=शत्रुभूत **वृत्रा**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **सासहत्**=अतिशयेन अभिभूत करता है।

भावार्थ—हमारे सन्तान बलवान्, अपनी क्रियाओं से आनन्दित करनेवाले, शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले व दानशील हों। ये वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हों।

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'विजय व शक्ति के प्रापक' प्रभु

त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **त्वां हि**=आपको ही **विवाचः चर्षणयः**=विविध स्तुति-वाणियोंवाले श्रमशील मनुष्य **अवसे**=रक्षण के लिये **शूरसातौ**=शूरों से सभजनीय संग्रामों में **हवन्ते**=पुकारते हैं। वस्तुतः संग्राम में आपने ही तो शत्रुओं का विद्रावण करना है। (२) **त्वम्**=आप **विप्रेभिः**=इन ज्ञानी पुरुषों के द्वारा **पणीन्**=वणिक् वृत्तिवाले कार्पण्य के भावों को **वि आशायः**=विशेषेण भूमि पर सुलानेवाले होते हैं, अर्थात् इन्हें नष्ट करते हैं। **त्वा ऊतः**=आप से रक्षित हुआ-हुआ **इत्**=ही यह **अर्वा**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला स्तोता **वाजं सनिता**=शक्ति को प्राप्त करता है। इस शक्ति के द्वारा ही वह शत्रुओं का शातन कर पाता है।

भावार्थ—संग्राम में विजय के लिये स्तोता लोग प्रभु को ही पुकारते हैं। प्रभु ही ज्ञानी पुरुषों से शत्रुओं का शातन कराता है और उन्हें शक्ति देता है।

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उभयविध शत्रु संहार

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रु-विद्रावक **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **तान्**=उन **उभयान्**=दोनों **अमित्रान्**=शत्रुओं को **वधीः**=नष्ट करते हैं। एक तो **दासा**=कर्मों का उपक्षय करनेवाले, यज्ञादि कर्मों में विघ्न डालनेवाले असुरों को **च**=तथा दूसरे **आर्या**=(ऋ गतौ) हमारे पर समन्तात् आक्रमण करनेवाले **वृत्राणि**=ज्ञान के आवरणभूत वासनारूप शत्रुओं को। (२) **इव**=जैसे **सुधितेभिः**=(शुधिति=an axe) कुल्हाड़ों से **वना**=वनों को काट डालते हैं इसी प्रकार, हे **नृणां नृतम्**=नेताओं में सर्वोत्तम नेतः प्रभो! आप **पृत्सु**=संग्रामों में **अत्कैः**=(अत्क=water आपः रेतो भूत्वा) रेतःकणों के द्वारा वृत्रों को **आदर्षि**=समन्तात् विदीर्ण करते हैं। शरीर में शक्तिकणों का रक्षण रोगों व वासनाओं को विनष्ट करके शारीरिक व मानस स्वास्थ्य का हेतु बनता है।

भावार्थ—प्रभु यज्ञों में विघ्नकारी बाह्य शत्रुओं को विनष्ट करते हैं और ज्ञान के आवरणभूत वासनारूप आन्तर शत्रुओं को भी शीर्ण करते हैं। कुल्हाड़े से जैसे वृक्षों को काटा जाता है, उसी प्रकार रेतःकणों के द्वारा प्रभु रोगों व वासनाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विश्वायुः अविता

स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **अकवाभिः ऊती**=(ऊतिभिः) अकुत्सित रक्षणों के द्वारा **अविता**=रक्षण करनेवाले **सखा**=मित्र हैं। आप **विश्वायुः**=सर्वतः गमनशील होते हुए हमारे **वृधे**=वर्धन के लिये **भूः**=होइये। (२) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **पृत्सु**=संग्रामों में **युध्यन्तः**=युद्ध करते हुए हम, **यत्**=क्योंकि **नेमधिता**=(जस्=आहं नेम इति अर्धे) अधूरेपन में ही स्थापित हैं, अधूरी शक्ति व ज्ञानवाले हैं, सो **स्वर्षाता**=प्रकाश की प्राप्ति के निमित्त **त्वा ह्वयामसि**=आपको पुकारते हैं। आप से ज्ञान को प्राप्त करके हम इन युद्धों में विजयी बन पायें।

भावार्थ—प्रभु ही उत्तम रक्षणों के द्वारा हमारे मित्र होते हैं। युद्ध करते हुए हम अपने अधूरेपन के कारण प्रभु को पुकारते हैं। प्रभु ही हमें विजयी बनाते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'दिवि पार्ये शर्मन्' (स्याम)

नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नूनम्**=निश्चय से आज आप **नः**=हमारे **स्याः**=होइये, **च**=और **अपराय**=अगले समय के लिये भी आप हमारे होइये। **उत**=और **नः**=हमारे **अभिष्टौ**=शत्रुओं पर आक्रमण के निमित्त **मृळीकः भव**=सुख को देनेवाले होइये। हम सदा आपके हों, और शत्रुओं को शीर्ण करके सुखी हो सकें। (२) **इत्था**=इस प्रकार **गृणन्तः**=स्तुति करते हुए हम **गोषतमाः**=अधिक से अधिक ज्ञान की वाणियों का सेवन करनेवाले होते हुए **महिनस्य**=महान् पूजनीय आपके **दिवि**=देदीप्यमान पाये दुःखों से पार ले जानेवाले **शर्मन्**=सुख में व शरण में **स्याम**=हों। (शर्मन्=protection house)।

भावार्थ—हम सदा प्रभु के हों। प्रभु से सुख को प्राप्त करें। प्रभु की शरण देदीप्यमान व दुःखों से पार करनेवाली है।

अगले सूक्त में भी शुनहोत्र इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **पूर्वीः गिरः**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी जानेवाली ये ज्ञान की वाणियाँ सदा **त्वे च**=आप में ही **संजग्मुः**=संगत होती हैं। **च**=और **विभ्वः**=ये विस्तृत-व्यापक सब विषयों का व्यापन करनेवाली **मनीषाः**=मतियाँ-ज्ञान **त्वद् वियन्ति**=आप से ही बाहिर आते हैं। आप ही इनके स्रोत हैं। (२) **पुरा**=पहले **नूनं च**=और अब भी अर्थात् सदा **ऋषीणां स्तुतयः**=तत्त्वद्रष्टाओं से की जानेवाली स्तुतियाँ तथा **उक्थार्का**=(उक्थ अर्का) स्तुति के साधनभूत मन्त्र **इन्द्रे अधि**=उस प्रभु में ही **पस्पृध्रे**=स्पर्धावाले होते हैं। अर्थात् एक से एक आगे बढ़कर ये ऋषि उस प्रभु का स्तवन करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—सब वेदवाणियाँ प्रभु में ही निहित हैं। प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु से ही ये व्यापक ज्ञान की वाणियाँ उद्गत होते हैं। सब तत्त्वद्रष्टा लोग एक दूसरे से बढ़कर प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

महे शवसे

पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः।
रथो न महे शवसे युजानो३ऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत्॥ २॥

(१) **पुरुहूतः**=(पुरु हूतं यस्य) पालक व पूरक है पुकार जिसकी, **यः**=जो **पुरुगूर्तः**=पालक व पूरक उद्यमोंवाला है, जिसका बनाया एक-एक पदार्थ पालन व पूरण का साधन बनता है, **ऋभ्वा**=जो खूब ही दीप्त व महान् है, **एकः**=वह अद्वितीय प्रभु **यज्ञैः**=यज्ञों से **पुरु प्रशस्तः**=खूब स्तुत होता है, वस्तुतः यज्ञों के द्वारा ही प्रभु का पूजन होता है। (२) **रथः न**=वे प्रभु इस जीवनयात्रा की पूर्ति के लिये रथ के समान हैं। **युजानः**=योग द्वारा मेल किये जाते हुए वे प्रभु **महे शवसे**=महान् बल के लिये होते हैं। जो जितना प्रभु से अपना मेल कर पाता है, उतना ही शक्ति-सम्पन्न बनता है। सो वे **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **अस्माभिः**=हमारे से **अनुमाद्यः भूत्**=स्तुति के योग्य हों।

भावार्थ—प्रभु का उपासन यज्ञों द्वारा होता है। उपासित प्रभु हमारे महान् बल के लिये होते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अनन्त धनवाला-महान् दाता' प्रभु

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै॥ ३॥

(१) **यम्**=जिस प्रभु को **धीतयः न हिंसन्ति**=परिचरणात्मक कर्म पीड़ित नहीं करते, **वाणीः न**=स्तुति-वाणियाँ जिसे हिंसित (परेशान) नहीं करती। अपितु **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को **वर्धयन्तीः इत्**=बढ़ाती हुई ही **अभिनक्षन्ति**=सर्वतः प्राप्त होती हैं, अर्थात् प्रभु उपासकों से उनकी याचनाओं के कारण परेशान नहीं हो जाते। वे प्रभु तो अनन्त धनवाले व महान् दाता हैं। 'उनके धन में कभी कमी आ जायेगी' ऐसी बात नहीं है। (२) **यदि**=यदि **स्तोतारः**=स्तोता लोग **शतम्**=सैंकड़ों **यत् सहस्रम्**=यदि वा हजारों भी **गिर्वणसम्**=स्तुति-वाणियों द्वारा संभजनीय उस प्रभु को **गृणन्ति**=स्तुत करते हैं, तो **तद् अस्मै शम्**=वह इस इन्द्र के लिये शान्ति का ही कारण होता है। प्रभु को सैंकड़ों व हजारों इन याचकों से अच्छा ही लगता है, वे कभी इनकी अधिकता से खीज नहीं उठते।

भावार्थ—प्रभु अनन्त धनवाले व महान् दाता हैं। जितने ही अधिक लोग प्रभु का परिचरण करते हैं प्रभु को उतना ही अच्छा लगता है और वे सबकी सत्य कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

चन्द्रमा सूर्य में, मैं प्रभु में

अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः॥ ४॥

(१) **इव**=जैसे **सोमः**=चन्द्रमा **मासा**=एक मास में **दिवि इन्द्रे**=इस चमकते हुए सूर्य में मिल जाता है, इसी प्रकार **अस्मै**=इस प्रभु के लिये **मिमिक्षः**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाला मैं **एतत्**=इस स्तोत्र को उच्चारित करता हूँ और **अर्चा**=उपासना के द्वारा **नि अयामि**=नम्रता से प्रभु के समीप प्राप्त होता हूँ। चन्द्रमा सूर्य में, मैं प्रभु में। (२) **न**=जैसे **धन्वन्**=मरुस्थल में **अभि संयत्**=अभिमुख प्राप्त होते हुए **आपः**=जल **जनम्**=मनुष्य को बढ़ाते हैं, इसी प्रकार **यज्ञैः**=श्रेष्ठतम कर्मों के साथ **हवनानि**=ये प्रभु की पुकारें, आराधनाएँ इस उपासक को **सत्रा वावृधुः**=सदा बढ़ानेवाली होती हैं।

भावार्थ—मैं पूजा के द्वारा प्रभु को इस प्रकार प्राप्त होऊँ जैसे कि चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त होता है। मुझे यज्ञ व प्रभु की प्रार्थनाएँ इस प्रकार प्रीणित करें जैसे कि मरुस्थल में प्यासे को पानी।

ऋषिः—**शुनहोत्रः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'संग्राम में रक्षक व वर्धक' प्रभु

अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च॥ ५॥

(१) **अस्मै**=इस प्रभु के लिये **एतत्**=यह **महि**=महनीय **आङ्गूषम्**=(आघोषा नि० ५।११)

उच्चैः=आह्वान किया जाता है। **अस्मै इन्द्राय**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु के लिये **स्तोत्रम्**=स्तोत्र **मतिभिः**=मननपूर्वक स्तुति करनेवालों से **अवाचि**=उच्चारित होता है। (२) **यथा**=जिससे **महति वृत्रतूर्ये**=इस महान् संग्राम में **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु! **विश्वायुः**=सर्वत्रगन्ता होता हुआ **अविता**=हमारा रक्षण करनेवाला **च**=और **वृधः**=वृद्धि को करनेवाला **असत्**=हो।

भावार्थ—प्रभु के लिये हम ऊँचे से आह्वान व स्तोत्र को करनेवाले हों जिससे वे प्रभु संग्राम में हमारे रक्षक व वृद्धि करनेवाले हों।

प्रभु से रक्षित होनेवाला यह मनुष्य 'नर' बनता है, उन्नति-पथ पर अपने को प्राप्त करानेवाला। यह 'इन्द्र' का स्तवन करता है—

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वाजरत्नाः धियः

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः॥ १॥

(१) हे प्रभो! **कदा**=कब ब्रह्म (ब्रह्माणि)=मेरे से किये जानेवाले स्तोत्र **रथक्षयाणि**=शरीर-रथ में आपके निवास को करानेवाले **भुवन्**=होते हैं? (भू=निवासे)। **कदा**=कब **स्तोत्रे**=मुझ स्तोता के लिये **सहस्रपोष्यम्**=हजारों का पोषण करने के योग्य धन को **दाः**=आप देते हैं। (२) **कदा**=कब **अस्य**=इस उपासक के **स्तोमम्**=स्तवन को **राया**=धन से **वासयः**=आप बसाते हैं? कब मेरे स्तोत्र धनों से व्याप्त किये जाते हैं? **कदा**=कब आप **वाज रत्नाः**=शक्तियों के द्वारा रमणीय **धियः**=बुद्धियों को, ज्ञानों को आप **करसि**=करते हैं। कब आपकी कृपा से हम शक्तियों व बुद्धियों को प्राप्त कर पायेंगे।

भावार्थ—हम स्तोत्रों के द्वारा प्रभु को अपने शरीर-रथ पर आसीन करें। सहस्रापोष्य धन को प्राप्त हों। हमारा स्तवन आवश्यक धन से युक्त हो। हमें शक्ति के द्वारा रमणीय बनी हुई बुद्धि प्राप्त हो।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वीरता व ज्ञान

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तत् कर्हि स्वित्**=वह कब होगा कि **यत्**=जब **नृभिः नॄन्**=उन्नति-पथ पर चलनेवालों के साथ उन्नति-पथ पर चलनेवालों को तथा **वीरैः वीरान्**=शत्रु कम्पकों के साथ शत्रु कम्पकों को **नीडयासे**=आप हमारे घरों में स्थापित करते हो, आश्रय देते हो। अर्थात् वह समय कब होगा जब कि हमारे घरों में निरन्तर 'नर व वीर' ही पुरुषों का निवास होगा। और इन 'नर व वीर' पुरुषों के द्वारा आप हमारे लिये **आजीन् जय**=युद्धों को जीतिये। हम आपकी कृपा से संग्रामों में सदा विजयी बनें। (२) **त्रिधातु गाः अधिजयासि**=हमारे लिये आप 'ज्ञान, कर्म, उपासना' इन तीनों का धारण करनेवाली ज्ञान की वाणियों का विजय करें। हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप **अस्मे**=हमारे लिये **गोषु**=इन ज्ञान की वाणियों में **स्वर्वत्**=सुखों के देनेवाले **द्युम्नम्**=ज्ञान धन को **धेहि**=धारण कराइये।

भावार्थ—हे प्रभो! हमारे घरों में वीर पुरुष हों, वे सब ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवाले हों। काम, क्रोध, लोभ के साथ होनेवाले संग्राम में विजयी हों।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

बुद्धि व कर्मशील इन्द्रियाँ (धियः-नियुतः)

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **तत् कर्हिस्वित्**=वह कब होगा **यत्**=जब कि **जरित्रे**=स्तोता के लिये आप **विश्वप्सु**=अनेक रूपोंवाले (बहुविधरूपं) **ब्रह्म**=ज्ञान को **कृणवः**=करेंगे, अर्थात् आप कब मुझ स्तोता को यह वेद के द्वारा व्यापक ज्ञान प्राप्त करायेंगे? (२) हे **शविष्ठ**=अतिशयित शक्तिवाले प्रभो! **कदा**=कब आप हमारे साथ **धियः न**=बुद्धियों की तरह **नियुतः**=निश्चितरूप से कर्मों में प्रेरित होनेवाले इन्द्रियाश्वों को **युवासे**=जोड़ते हैं। कब आपकी कृपा से मुझे बुद्धियाँ व कर्मशील इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं? **कदा**=कब **गोमघा**=ज्ञानैश्वर्यों को प्राप्त करानेवाली **हवनानि**=हमारी इन पुकारों को **गच्छाः**=आप प्राप्त होंगे। अर्थात् कब मैं आपकी आराधना करनेवाला बनकर उत्कृष्ट ज्ञानैश्वर्यों को प्राप्त करूँगा?

भावार्थ—हम स्तोता बनकर इस व्यापक ज्ञान को देनेवाले वेद को प्राप्त करें। हमारी बुद्धियाँ व इन्द्रियाँ उत्तम हों। हमारी आराधनाएँ हमें ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करानेवाली हों।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुरुचः

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **सः**=वे आप **जरित्रे**=स्तोता के लिये **पृक्षः**=उन अन्नों को **अधि धेहि**=आधिक्येन धारण करिये जो **गोमघाः**=उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियों को देनेवाले हों (गावः ज्ञानेन्द्रिया, महतेर्दानकर्मणः) **अश्वश्चन्द्राः**=आह्लादमय कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करानेवाले हों (अश्नुवते कर्मसु) उन इन्द्रियों को जो कर्मों में आह्लाद का अनुभव करती हैं। तथा उन अन्नों को प्राप्त कराइये जो कि **वाजश्रवसः**=शक्ति वे ज्ञान का साधन बनते हैं। (२) हे प्रभो! **इषः पीपिहि**=हमारे हृदयों को अपनी प्रेरणाओं से आप्यायित करिये। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सुदुघां धेनुम्**=सुख सन्दोह्य इस वेद धेनु को प्राप्त करिये। और **भरद्वाजेषु**=इन शक्ति का भरण करनेवाले पुरुषों में **सुरुचः रुरुच्याः**=उत्तम रुचियों को दीप्त करिये। शक्ति-सम्पन्न बनकर ये उत्तम रुचिवाले हों।

भावार्थ—हम सात्त्विक अन्नों के सेवन से उत्कृष्ट ज्ञानैश्वर्य व शक्ति को प्राप्त करें। हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनें। वेद धेनु हमारे लिए सुख सन्दोह्य हो। हमारी रुचियाँ उत्तम हों।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति-सम्पन्न व ज्ञानी

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व॥ ५॥

(१) हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **विदुरः**=शत्रुओं को विशेषरूप से विदारण करनेवाले,

शूरः=शूर आप **यद् गृणीषे**=जब हमारे से स्तुत किये जाते हैं तो **तं वृजनम्**=उस बाधक शत्रु को **नूनम्**=निश्चय से अन्यथा **चित्**=और ही प्रकार से युक्त करिये, अर्थात् जीवित अवस्था के विपरीत मरणावस्था को प्राप्त कराइये। (२) मैं **शुक्रदुघस्य**=दीप्त ज्ञान का दोहन करनेवाली **धेनोः**=इस वेद धेनु से **मा निररम्**=बाहर न निकल जाऊँ। सदा वेद धेनु का दोहन करनेवाला बनूँ। हे **विप्र**=विशेषरूप से हमारा पूरण करनेवाले प्रभो! **आंगिरसान्**=अंग-प्रत्यंग में रसमय शक्तिवाले हम लोगों को **ब्रह्मणा**=ज्ञान से **जिन्व**=प्रीणित करिये। हमें शक्ति-सम्पन्न व ज्ञानी बनाइये।

अगले सूक्त में भी 'नर' ऋषि इन्द्र का आराधन करता है—

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'आनन्द-धन-बल-तेज'

स॒त्रा मदा॑स॒स्तव॑ वि॒श्वज॑न्याः स॒त्रा रायोऽध॒ ये पार्थि॑वासः।
स॒त्रा वाजा॑नामभवो विभ॒क्ता यद्दे॒वेषु॑ धा॒रय॑था असु॒र्य॑म्॥ १॥

(१) हे प्रभो! **तव**=आपके **मदासः**=सोम-रक्षण द्वारा प्राप्त कराये गये आनन्द **सत्रा**=सचमुच **विश्वजन्याः**=सब मनुष्यों के लिये हितकर होते हैं। **अध**=अब **ये**=जो आप से दिये गये **पार्थिवासः रायः**=पार्थिव धन है वे भी सब मनुष्यों के लिये हितकर होते हैं। (२) आप **सत्रा**=सचमुच **वाजानाम्**=शक्तियों के **विभक्ता**=हमारे लिये देनेवाले होते हैं। **यद्**=जो **देवेषु**=सब देवों में **असुर्यम्**=बल है, उसे **धारयथाः**=आप ही धारण करते हैं। सूर्यादि में आपका ही तेज हैं, तेजस्वी पुरुषों में भी आपका ही तेज है।

भावार्थ—प्रभु ही 'आनन्दों-धनों-शक्तियों व तेजों' को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'स्यूमगृभे-दुधि-अर्वः'

अनु॒ प्र ये॑जे॒ जन॒ ओजो॑ अस्य स॒त्रा द॑धिरे॒ अनु॑ वी॒र्या॑य।
स्यू॒मगृ॒भे दु॒धये॒ऽर्व॑ते च॒ क्रतुं॑ वृ॒ञ्ज॒न्त्यपि॑ वृत्र॒हत्ये॑॥ २॥

(१) **जनः**=अपनी शक्तियों का विकास करनेवाला मनुष्य **अस्य**=इस प्रभु के ही **ओजः**=शक्ति के **अनु**=अनुसार **प्रयेजे**=प्रकृष्ट यज्ञों को करनेवाला होता है। ये मनुष्य **वीर्याय**=वीरतापूर्ण कार्यों को करने के लिये **सत्रा**=सदा **अनुदधिरे**=आपका ही धारण करते हैं। (२) **अपि च**=और ये उपासक **स्यूमगृभे**=(स्यूमान् अविच्छेदेन वर्तमानान् गृह्णाति) अविच्छेदेन वर्तमान-निरन्तर आक्रमण करनेवाले, इन शत्रुओं का निग्रह करनेवाले, **दुधये**=इन शत्रुओं का हिंसन करनेवाले **च**=और **अर्वते**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले उस प्रभु के लिये **क्रतुम्**=परिचरणात्मक यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को **वृञ्जन्ति**=निष्पादित करते हैं। जिससे **वृत्रहत्ये**=ज्ञान की आवरणभूत इस वासना का विनाश कर सकें।

भावार्थ—प्रभु से ओज प्राप्त होता है, प्रभु हमें वीरता के कर्मों के लिये समर्थ करते हैं। वे प्रभु ही इन निरन्तर आक्रमण करनेवाले शत्रुओं का निग्रह करते हैं, इन्हें कम्पित करते हैं और इनको आक्रान्त करके समाप्त करते हैं।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'रक्षण, बल व इन्द्रियाश्वों' की प्राप्ति

तं स॒ध्रीची॑रू॒तयो॒ वृष्ण्या॑नि॒ पौंस्या॑नि नि॒युतः॑ सश्चु॒रिन्द्र॑म्।
स॒मु॒द्रं न सिन्ध॑व उ॒क्थशु॑ष्मा उरु॒व्यच॑सं॒ गिर॒ आ वि॑शन्ति॥ ३ ॥

(१) **तं इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सध्रीचीः ऊतयः**=साथ-साथ गति करती हुई रक्षाएँ **सश्चुः**=सेवित करती हैं। अर्थात् प्रभु अपने उपासक को निरन्तर रक्षण प्राप्त कराते हैं। **वृष्ण्यानि पौंस्यानि**=शक्तिशाली बल उसका सेवन करते हैं और **नियुतः**=निश्चय से शरीर-रथ में युज्यमान इन्द्रियाश्व उसका सेवन करते हैं। अर्थात् प्रभु अपने उपासक को इन शक्तिशाली बलों व इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं। (२) उस **उरुव्यचसम्**=महान् विस्तारवाले, सर्वव्यापक प्रभु को **उक्थशुष्माः**=स्तोत्रों के बलवाले **गिरः**=ज्ञान वाणियों के द्वारा स्तवन करनेवाले लोग इस प्रकार **आविशन्ति**=प्रविष्ट होते हैं **न**=जैसे कि **सिन्धवः**=नदियाँ **समुद्रम्**=समुद्र में प्रविष्ट होती हैं।

भावार्थ—स्तोत्रों के बलवाले ज्ञानी उपासक को प्रभु को प्राप्त करते हैं। प्रभु उन्हें 'रक्षण, बल व उत्तम इन्द्रियाश्व' प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'यज्ञों में विनियुक्त होनेवाले वसु के दाता' प्रभु

स रा॒यस्खामुप॑ सृजा गृणा॒नः पु॑रुश्च॒न्द्रस्य॒ त्वमि॑न्द्र॒ वस्वः॑।
पति॑र्बभू॒थास॑मो॒ जना॑ना॒मेको॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॑॥ ४ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **सः त्वम्**=वे आप **गृणानः**=स्तुति किये जाते हुए **रायः खाम्**=धन की नदी को नदीधारा के समान प्रवाहित होनेवाले धन को **उपसृजा**=हमारे साथ संयुक्त करिये। उस धन की धारा को जो **पुरुश्चन्द्रस्य**=बहुतों का आह्लादक है, अर्थात् केवल अपने लिये विनियुक्त न होकर बहुतों के लिये प्रयुक्त होता है तथा **वस्वः**=उत्तम निवास का कारण बनता है। (२) हे प्रभो! आप **जनानाम्**=सब लोगों के **असमः पतिः**=अनुपम रक्षक **बभूथ**=हैं। **एकः**=आप अद्वितीय हैं। **विश्वस्य भुवनस्य राजा**=सम्पूर्ण संसार के शासक हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सम्पूर्ण संसार के शासक हैं। वे प्रभु हमें बहुतों के आह्लादक तथा निवास को उत्तम बनानेवाले धन को देते हैं।

ऋषिः—**नरः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शवस्-वयस्

स तु श्रु॑धि॒ श्रुत्या॒ यो दु॑वो॒युर्द्यौर्न भूमा॒भि रायो॑ अ॒र्यः।
असो॒ यथा॑ नः॒ शव॑सा चका॒नो यु॒गेयु॑गे॒ वय॑सा॒ चेकि॑तानः॥ ५ ॥

(१) **यः दुवोयुः**=जो हमें उपासनामय जीवनवाला बनाना चाहते हैं, **सः**=वे आप **तु**=निश्चय से **श्रुत्या**=श्रोतव्य स्तोत्रों को **श्रुधि**=सुनिये। **द्यौः न**=सूर्य के समान तेजस्वी आप **भूम**=बहुत **रायः अभि**=ऐश्वर्यों की ओर हमें ले चलनेवाले होइये। **अर्यः**=आप ही स्वामी हैं। **चकानः**=सूर्य के समान दीप्तिवाले व **चेकितानः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले आप **युगे युगे**=समय-समय पर अर्थात् सदा **यथा**=जैसे **शवसा**=बल के साथ उसी प्रकार (तथा) **वयसा**=उत्कृष्ट जीवन के साथ **नः असः**=हमारे पर कृपादृष्टिवाले होइये। हम आपकी कृपा से बल को व उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त

करें।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें। प्रभु हमें ऐश्वर्य को, बल को व उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त कराएँ।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्ववार्न् कीरि

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १ ॥

(१) हे **उग्र**=तेजस्विन् **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **युक्तासः**=शरीर-रथ में जुते हुए, अर्थात् अपना-अपना कार्य करनेवाले **हरयः**=इन्द्रियाश्व **ते**=आपके इस **विश्ववारम्**=सब वरणीय व श्रेष्ठ अंग-प्रत्यंगोंवाले **रथम्**=शरीर-रथ को **अर्वाक्** वहन्तु=अन्तर्मुख यात्रावाला करें। हमारा यह रथ बाहिर विषयों में ही न भटकता रहे। (२) **कीरिः**=यह विषयों को अपने से दूर विकीर्ण करनेवाला स्तोता **चित् हि**=निश्चय से **त्वा**=हे प्रभो! आपको **हवते**=पुकारता है। अतएव वह **स्वर्वान्**=प्रशस्त ज्ञान के प्रकाशवाला होता है। हे प्रभो! हम **अद्य**=आज **ते सधमादः**=आपके साथ आनन्दित होनेवाले, आपकी उपासना में आनन्द का अनुभव करनेवाले **ऋधीमहि**=समृद्धि को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम विषयों में न भटककर अन्तर्मुख यात्रावाले हों। प्रभु का आह्वान करें। प्रभु की उपासना में आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमरक्षण से कर्मशक्ति व उल्लास की प्राप्ति

प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन्।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २ ॥

(१) **द्रोणे**=शरीररूप इस पात्र में **हरयः**=सोमकण **कर्म प्र अग्मन्**=कर्मों को प्रकर्षेण करनेवाले होते हैं। जितना-जितना सोम का रक्षण होता है, उतना-उतना यह सोम हमें क्रियाशील बनाता है। **पुनानासः**=पवित्र किये जाते हुए ये सोम **ऋज्यन्तः**=ऋजु, गमनवाले **अभूवन्**=होते हैं। शरीर में सरल गति से ऊर्ध्वगमनवाले होते हैं। (२) **इन्द्रः**=वह शत्रुओं का संहार करनेवाला प्रभु **नः**=हमारे **अस्य**=इस सोम का **पपीयात्**=पान करे। **पूर्व्यः**=सोम-रक्षण के द्वारा ये प्रभु हमारा पालन व पूरण उत्तमता से करते हैं। **द्युक्षः**=ज्ञान के प्रकाश में निवास करनेवाले वे प्रभु **सोम्यस्य मदस्य**=सोम सम्बन्धी इस उल्लास के **राजा**=स्वामी हैं। हमारे जीवन में सोमरक्षण के द्वारा वे उल्लास को दीप्त करते हैं।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम कर्म व उल्लास को पैदा करता है। ज्ञानदीप्त प्रभु के स्मरण से सोम का रक्षण होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्राणसाधना द्वारा सोम का रक्षण

आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्॥ ३॥

(१) **सुचक्रे**=शोभन चक्रोंवाले इस शरीर-रथ में **आसस्राणासः**=समन्तात् गति करते हुए **रथ्यासः अश्वाः**=रथवहन में उत्तम ये इन्द्रियाश्व **शवसानम्**=बल की तह आचरण करते हुए, अर्थात् शक्ति के पुञ्ज **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक प्रभु की **अच्छ**=ओर **वहेयुः**=हमें ले जाते हैं। (२) **ऋज्यन्तः**=ऋजुगमनवाले इन्द्रियाश्व **श्रवः अभि (वहेयुः)**=ज्ञान की ओर हमें ले चलें। ऐसा होने पर **नु**=अब **वायोः**=वायु के द्वारा, अर्थात् प्राणसाधना के द्वारा **अमृतम्**=मृत्यु से बचानेवाला यह सोम **नू चित्**=नहीं **विदस्येत्**=नष्ट हो।

भावार्थ—हम कर्मों में लगे रहकर कर्मों द्वारा प्रभु की उपासना करें। हमारी इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में लगी रहें। ऐसा होने पर प्राणसाधना में प्रवृत्त हुए-हुए हम सोम का रक्षण कर पायेंगे। यह सोम अमृत है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दानवृत्ति से 'पापनाश व ऐश्वर्य प्राप्ति'

वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन्॥ ४॥

(१) **वरिष्ठः**=यह उरुतम-अत्यन्त विशाल **तुविकूर्मितमः**=महान् कर्मों को करनेवाला **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु! **अस्य**=इस उपासक के जीवन में **मघोनाम्**=यज्ञशील पुरुषों की **दक्षिणाम्**=दानवृत्ति को **इयर्ति**=प्रेरित करता है। प्रभु कृपा से हम यज्ञशील व दान की वृत्तिवाले बनते हैं। (२) हे **वज्रिवः**=वज्रवाले प्रभो! **यया**=जिस दानवृत्ति के द्वारा आप **अंहः परियासि**=पापों से हमें पार पहुँचाते हो। **च**=और **धृष्णो**=शत्रुओं के धर्षक प्रभो! इस दानवृत्ति के द्वारा ही **सूरीन्**=ज्ञानी पुरुषों को **मघा विदयसे**=सब ऐश्वर्यों को देते हैं। दानवृत्ति से पाप नष्ट होते हैं और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे में दानवृत्ति को प्रेरित करते हैं। दानवृत्ति हमें पापों से बचाती है और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वाजस्य स्थविरस्य दाता

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः॥ ५॥

(१) **इन्द्रः**=वह शत्रु-विद्रावक प्रभु **स्थविरस्य**=अत्यन्त वृद्ध (=बढ़े हुए) **वाजस्य दाता**=शक्ति के देनेवाले हैं **वृद्धमहाः**=वे प्रवृद्ध तेजवाले **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **गीर्भिः**=ज्ञानपूर्वक उच्चारित इन स्तुतिवाणियों से **वर्धताम्**=वृद्धि को प्राप्त हों। हमारे में प्रभु की भावना उत्तरोत्तर बढ़े। (२) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली, शत्रुविद्रावक प्रभु **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत कामवासना को **हनिष्ठः अस्तु**=अधिक-से-अधिक समाप्त करनेवाले हों। **सत्वा**=शत्रुओं का विनाश करनेवाले

तूतुजानः=आसुरभावों को निरन्तर नष्ट करते हुए **सूरिः**=प्रेरक प्रभु **ता पृणति**=उन यज्ञों व ज्ञानों को हमारे लिये प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु शक्ति को देते हैं। वासना को विनष्ट करते हैं और हमारे अन्दर उत्तम कर्मों व ज्ञानों का पूरण करते हैं।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ध्यानशील व दानशील

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम्।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥

(१) **चित्रतमः**=वह चायमीयतम-सर्वाधिक पूज्य अथवा आश्चर्यभूत प्रभु **नः**=हमें **इत्**=इधर से, अर्थात् इन काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं से **उत् उ**=निश्चयपूर्वक ही **अपात्**=रक्षित करें। वे प्रभु हमारे अन्दर **महीम्**=पूजा की भावना से युक्त **द्युमती**=ज्योतिर्मयी **इन्द्रहूतिम्**=प्रभु की पुकार को, प्रभु की आराधना को **भर्षद्**=धारण करें। वस्तुतः यह प्रभु की आराधना ही हमें काम-क्रोध आदि शत्रुओं से रक्षित करेगी। (२) **सुदानुः**=वे शोभन दानवाले व अच्छी प्रकार शत्रुओं को नष्ट करनेवाले प्रभु (दाप् लवने) **दैव्यस्य**=देववृत्तिवाले **जनस्य**=पुरुष के **यामन्**=जीवनमार्ग में **पन्यसीं धीतिम्**=स्तुत्य (प्रशंसनीय) ध्यान की वृत्ति को व **रातिम्**=दानशीलता को **वनते**=सम्भक्त करते हैं। अर्थात् इस दैव्यजन को प्रभु ध्यानशील व दानशील बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारा रक्षण करते हैं। वे हमारे में आराधना की वृत्ति को जगाते हैं। हमें ध्यानशील व दानशील बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तुति व प्रभु प्रियता

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

(१) **अस्य**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **कर्णा**=कान **दूरात् चित्**=दूर से दूर देश में भी **आवसतः**=सर्वत्र निवास करते हैं। प्रभु की श्रवणशक्ति सर्वत्र विद्यमान है। **इन्द्रस्य**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु के **घोषात्**=घोषणीय स्तोत्र के हेतु से **ब्रुवाणः**=स्तोत्रों का उच्चारण करता हुआ यह स्तोता **तन्यति**=स्तुति शब्दों का विस्तार करता है। 'प्रभु इसके इन स्तुति शब्दों को न सुनें' ऐसी बात नहीं है। (२) **इयम्**=यह **देवहूतिः**=उस देव की पुकार **एनम्**=इस प्रभु को **आववृत्यात्**=आवृत्त करे। हमारी ओर अभिमुख करनेवाली हो। **इयम्**=यह स्तुति **ऋच्यमाना**=स्वयं प्रेरित होती हुई **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **मद् द्र्यक्**=मदभिमुख करनेवाली हो।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। स्तवन से पवित्र जीवनवाले होते हुए प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सब ज्ञानों व स्तोत्रों के आधार' प्रभु

तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥ ३ ॥

(१) **तम्**=उस **पुराजाम्**=सदा सृष्टि से पहले होनेवाले 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले **इन्द्रं वः (ज्यः)**=तुझ परमैश्वर्यशाली प्रभु को **परमया धिया**=उत्कृष्ट बुद्धि के साथ, परतत्त्व का चिन्तन करनेवाली बुद्धि के साथ (परऽमीयते यथा) **अर्कैः**=स्तुति-साधन मन्त्रों के द्वारा **अभ्यनूषि**=मैं स्तुति करता हूँ। (२) **ब्रह्म च**=यह सम्पूर्ण वेदज्ञान **गिरः**=सब ज्ञान की वाणियाँ **अस्मिन्**=इस प्रभु में ही **संदधिरे**=धारण की जाती है। **च**=और **महान् स्तोमः**=यह महान् स्तुति समूह **इन्द्रे**=इस परमैश्वर्यशाली प्रभु में ही **अधिवर्धत्**=आधिक्येन वृद्धि को प्राप्त होता है। सम्पूर्ण ज्ञान व स्तुतियों का आधार प्रभु ही हैं।

भावार्थ—हम बुद्धिपूर्वक किये गये स्तोत्रों द्वारा प्रभु का स्तवन करते हैं। सब ज्ञानों व स्तोत्रों का आधार प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु की प्राप्ति के साधन

वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम्॥ ४॥

(१) **यम्**=जिस प्रभु को **यज्ञः वर्धात्**=यज्ञ बढ़ाता है, अर्थात् जब एक मनुष्य यज्ञशील बनता है तो उसके अन्दर प्रभु के प्रकाश की वृद्धि होती है। **उत**=और **इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सोमः**=सोम **वर्धात्**=बढ़ाता है। सोमरक्षण से हम बुद्धि की तीव्रता के द्वारा प्रभु के समीप पहुँचते हैं। उस प्रभु को **ब्रह्म**=(ब्रह्म वेदस्तपः तत्त्वम्) तप बढ़ाता है, **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ बढ़ाती हैं, **च**=और **मन्म उक्था**=मननीय स्तोत्र बढ़ाते हैं। तप, ज्ञान व स्तवन के द्वारा हम प्रभु के उपासक बनते हैं। (२) **अक्तोः यामन्**=रात्रि के जाने पर **उषसः**=उषाएँ **अह**=निश्चय से **एनं वर्ध**=इस प्रभु को बढ़ाती हैं। **मासाः**=महीने **शरदः**=संवत्सर व **द्यावः**=दिन उस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **वर्धान्**=बढ़ाते हैं। इन सब कालचक्रों में प्रभु की महिमा दिखती है।

भावार्थ—प्रभु की उपासना के लिये 'यज्ञ, सोमरक्षण, तप, ज्ञान की वाणियाँ व मननीय स्तोत्र' साधन बनते हैं। उषाएँ मास संवत्सर व दिन सभी प्रभु की महिमा का वर्धन करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सहसे-राधसे-श्रुताय-अवसे

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु॥ ५॥

(१) **एवा**=गतमन्त्र में वर्णित 'यज्ञ, सोमरक्षण, तप, ज्ञान व स्तवन' से **जज्ञानम्**=प्रादुर्भूत होते हुए आपको **वृत्रतूर्येषु**=वासनाओं के संहार रूप कार्यों के निमित्त **नूनम्**=निश्चय से **आविवासेम**=परिचरित करें। (२) हे **विप्र**=मेधाविन् प्रभो! **असामि वावृधानम्**=पूर्णरूप से वृद्धि को प्राप्त होते हुए, **महान्**=महान्, **उग्रम्**=तेजस्वी आपको **सहसे**=शत्रुओं के पराभव के लिये, **राधसे**=सब कार्यसाधक ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये **च**=और **श्रुताय**=ज्ञान के लिये तथा **अवसे**=रक्षण के लिये हम आपका पूजन करें।

भावार्थ—प्रभु का पूजन 'शत्रु मर्षण के लिये, ऐश्वर्य के लिये, ज्ञान के लिये व रक्षण के लिये' होता है।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण-ज्ञान व अन्तःप्रेरणा श्रवण

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥

(१) हे **देव**=हमारे सब शत्रुओं को जीतने की कामना (विजिगीषा) वाले प्रभो! आप **नः**=हमारे **तस्य**=उस **मध्वः**=सब भोजनों के सारभूत मधु, अर्थात् सोम (वीर्य शक्ति) का **अपः**=रक्षण करिये। जो **मन्द्रस्य**=मद व उल्लास का जनक है, **कवेः**=क्रान्तदर्शित्व को प्राप्त करानेवाला है, **दिव्यस्य**=दिव्यता को उत्पन्न करनेवाले है तथा **वह्नेः**=हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाला है। (२) हमारे उस सोम को आप रक्षित करिये, जो **विप्रमन्मनः**=(विप्राः मन्मनः स्तोतारो यस्य) ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित होता **वचनस्य**=स्तुति के योग्य है और **सचनस्य**=सेव्य है। इस सोमरक्षण के साथ **गृणते**=स्तुति करनेवाले मेरे लिये **गो अग्राः**=(गावो अग्रे यासां) ज्ञान की वाणियाँ जिनके अग्रभाग में हैं उन **इषः**=प्रेरणा को **युवस्व**=प्राप्त कराइये (संयोजय)। आपके अनुग्रह से मैं ज्ञान को प्राप्त करूँ और हृदयस्थ की प्रेरणाओं को सुनूँ।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से (क) मैं सोम का रक्षण कर पाऊँ, (ख) ज्ञान-वाणियों को अपनानेवाला बनूँ तथा (ग) अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को सुनूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'बल व पणियों' के साथ युद्ध

अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥ २ ॥

(१) **अयं इन्द्रः**=ये परमैश्वर्यशाली प्रभु **अद्रिं परि**=अविद्या पर्वत का भाग बनी हुई (भागे) **उस्राः**=ज्ञानेन्द्रिय रूप गौवों को **उशानः**=हमारे लिये प्राप्त कराने की कामना करते हुए **धीतिभिः**=सत्यकर्मा उपासकों से **युजानः**=युक्त हुए-हुए **ऋतयुक्**=हमारे साथ ऋत को जोड़नेवाले **वलस्य**=ज्ञान पर परदा डाल देनेवाले वलासुर (काम-वासना) के **सानुम्**=समुच्छ्रित **अरुग्णम्**=जिसका भंग बड़ा कठिन है उस अविद्या पर्वत को **विरुजत्**=भग्न करते हैं। अर्थात् प्रभु उपासकों के अज्ञान को नष्ट करके इन्द्रियों को अविद्याजनित वैषयिक बन्धनों से मुक्त करते हैं। (२) ये शत्रुविद्रावक प्रभु **पणीन्**=अविद्या की अनुचरभूत पूर्णरूप से व्यावहारिक (सांसारिक) वृत्तियों को, लोभ व कृपणता से धनार्जन की वृत्तियों को **वचोभिः**=ज्ञान की वाणियों द्वारा **अभियोधत्**=पराभूत करते हैं। प्रभु कृपा से ज्ञान की वाणियाँ इस अध्यात्म युद्ध में कृपणता को परास्त करती हैं। हम उदारवृत्ति के बनकर धर्ममय जीवनवाले बन पाते हैं 'उदारं धर्ममित्याहुः'।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञान प्राप्त कराके हमारी इन्द्रियों को विषय-बन्धनों से मुक्त करते हैं। हमारी वासना व कृपणता को दूर करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

चन्द्रमा की गति से तिथि पक्ष आदि काल-विभाग

अ॒यं द्यो॑तयद॒द्युतो॒ व्य१॒क्तून्दो॒षा वस्तोः॑ श॒रद॒ इन्दु॑रिन्द्र।
इ॒मं के॒तुम॑दधु॒र्नू चि॒दह्नां॒ शुचि॑जन्मन उ॒षस॑श्चकार॥ ३ ॥

(१) **अयं इन्दुः**=यह चन्द्रमा, हे **इन्द्र**=प्रभो! आपसे नियम्यमान होता हुआ **अद्युतः**=न चमकनेवाली **अक्तून्**=रात्रियों को **वि द्योतयत्**=विशिष्टरूप से दीप्त करता है। इस अपने आगमन से **दोषा वस्तोः**=रात्रियों व दिनों को तथा **शरदः**=संवत्सरों को प्रकाशित करता है। (२) **नू चित्**=निश्चय से **इमम्**=इस चन्द्रमा को **अह्लाम्**=दिनों के **केतुम्**=प्रकाशक के रूप में **अदधुः**=स्थापित करते हैं। चन्द्र से ही प्रतिपदा द्वितीया आदि तिथियों का ज्ञान होता है। यह चन्द्र ही **उषसः**=उषाओं को **शुचि जन्मनः**=पवित्र प्रादुर्भाववाला **चकार**=करता है। इन उषाकालों में चन्द्र किरणों द्वारा वायुमण्डल में सोमशक्ति का (ओजोन गैस) का स्थापन होता है। सो इस समय की वायु जीवनी शक्ति का संचार करती प्रतीत होती है।

भावार्थ—चन्द्रमा रात्रियों को प्रकाशित करता है। इस प्रकार दिन-रात व संवत्सर का मान होता है। चन्द्रमा दिनों का ज्ञापक बनता है। इसी से 'प्रतिपदा' आदि तिथियों का व्यवहार होता है। उषाओं को यही सोम शक्ति सम्पन्न व उज्ज्वल बनाता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'सूर्य द्वारा लोक प्रकाशक' प्रभु

अ॒यं रो॑चयद॒रुचो॑ रुचा॒नो॒३॒॑ऽयं वा॑सय॒द् व्यृ१॒॑तेन॑ पू॒र्वीः।
अ॒यमी॑यत ऋत॒युग्भि॒रश्वैः॑ स्व॒र्विदा॒ नाभि॑ना चर्षणि॒प्राः॥ ४ ॥

(१) **अयम्**=ये प्रभु ही **रुचानः**=सूर्यात्मना दीप्त होते हुए **अरुचः**=अप्रकाशमान लोकों को **रोचयत्**=प्रकाशित करते हैं। **अयम्**=ये प्रभु ही **ऋतेन**=अपने गमनशील तेज से **पूर्वीः**=इन बहुत उषाकालों को **विवासयत्**=अपगत अन्धकारवाला करते हैं। (२) **अयम्**=ये प्रभु ही **ऋतयुग्भिः**=ऋत के साथ मेलवाले **अश्वैः**=इन्द्रियाश्वों से तथा **स्वर्विदा**=सुख को प्राप्त करानेवाले अथवा (सु+अर्) सुष्ठु अरणीय धन को प्राप्त करानेवाले **नाभिना**=(नह बन्धने) सुन्दर सब अंगोंवाले शरीर-रथ से **चर्षणिप्राः**=सब मनुष्यों का पूरण करनेवाले होते हुए **ईयते**=गति करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सूर्योदय द्वारा सब लोकों को प्रकाशित करते हैं, प्रभु ही उषाकालों को अन्धकारशून्य करते हैं। ये प्रभु ही ऋत से मेलवाले, यज्ञ प्रवृत्त, इन्द्रियाश्वों को व सुदृढ़ शरीरों को प्राप्त कराके मनुष्यों का पूरण करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'अपः, ओषधीः अविषा वनानि

नू गृ॑णा॒नो गृ॑ण॒ते प्र॑त्न राज॒न्निषः॑ पिन्व वसु॒देया॑य पू॒र्वीः।
अ॒प ओष॑धीरवि॒षा वना॑नि॒ गा अर्व॑तो॒ नॄनृ॒चसे॑ रिरीहि॥ ५ ॥

(१) हे **प्रत्न राजन्**=सनातन शासक प्रभो! **नु**=अब **गृणानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **वसुदेयाय**=वसु हैं दातव्य जिसके लिये उस **गृणते**=स्तोता के लिये **पूर्वीः**=पालन व पूरण करनेवाली **इषः**=प्रेरणाओं को **पिन्व**=प्राप्त कराइये (पिन्व=प्रापय स्या०)। आपकी प्रेरणाओं से

ही ठीक मार्ग पर चलता हुआ यह स्तोता सब वसुओं को प्राप्त करता है। (२) **ऋचसे**=इस स्तुति करनेवाले के लिये आप **अपः ओषधीः**=जलों व ओषधियों को, **अविषा वनानि**=सब विषों को दूर करनेवाले (अ+विषा) अथवा रक्षा करनेवाले (अव् रक्षणे) आम्र पनस आदि वृक्षसमूहों को, **गाः अर्वतः**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियरूप गौओं व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों को तथा **नॄन्**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले वीर सन्तानों को **रिरीहि**=दीजिये।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम प्रेरणाएँ प्राप्त कराये, जल, ओषधि, रक्षक फलों, उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों तथा उन्नतिशील सन्तानों को प्राप्त कराइये।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जीव का मौलिक कर्त्तव्य

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः॥ १॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष **पिब**=तू इस सोम का पान कर। **तुभ्यम्**=तेरे लिये **सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **मदाय**=हर्ष के लिये होता है। **हरी**=तू इन्द्रियाश्वों को **अव स्य**=विषय बन्धन से छुड़ा। **सखाया**=सखिभूत इन इन्द्रियाश्वों को **वि मुचा**=विशिष्ट प्रयत्न द्वारा वासना बन्धन से मुक्त कर। (२) **उत**=और **गणे**=समूह में **आ निषद्य**=स्थित होकर **प्रगाय**=प्रभु के गुणों का गान कर। सारे परिवारवाले इकट्ठे बैठकर प्रभु का गुणगान करें **अथा**=अब **यज्ञाय**=उपासनीय **गृणते**=वेदोपदेश देनेवाले उस प्रभु के लिये **वयः धाः**=जीवन को धारण कर। अर्थात् तेरा जीवन प्रभु के लिये अर्पित हो।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करें। इन्द्रियाश्वों को विषय-बन्धन से मुक्त करें। मिलकर प्रभु का गुणगान करें। जीवन को प्रभु के लिये अर्पित करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मदाय-क्रत्वे

अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अस्य पिब**=इस सोम का पान (रक्षण) करिये। हे **विरप्शिन्**=महान् प्रभो! **यस्य**=जिस सोम का आप **जज्ञानः**=प्रादुर्भूत होते हुए ही **अपिबः**=पान करते हैं और **मदाय**=उल्लास के लिये तथा **क्रत्वे**=शक्ति व प्रज्ञान के लिये होते हैं। प्रभु का हृदयों में प्रकाश होते ही सोमरक्षण का सम्भव होता है यह सुरक्षित सोम 'उल्लास, शक्ति व प्रज्ञान' का साधन बनता है। (२) **तं इन्दुं उ**=उस सोम को निश्चय से **ते**=हे प्रभो! आपकी **गावः**=ये गौएँ-गोदुग्ध **नरः**=उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले मनुष्य, **आपः**=जल तथा **अद्रिः**=(adore) उपासना **अस्मै पीतये**=इस उपासक के रक्षण के लिये **संसं अह्यन्**=सम्यक् प्राप्त कराते हैं। गोदुग्ध से उत्पन्न सोम शरीर में संरक्षणीय होता है। उत्तम माता, पिता व आचार्यरूप नर इस सोमरक्षण वृत्ति का विकास करते हैं। जल तो शरीर में रेतःकणों के रूप में रहते ही हैं, इनके द्वारा अंगविशेषों का स्नान सोमरक्षण में बड़ा सहायक होता है। उपासना तो वासनाओं से बचाकर सोमरक्षण करती ही

है।

भावार्थ—प्रभु का ध्यान करते हुए हम वासनाओं से बचकर सोम का रक्षण करें। रक्षित सोम उल्लास शक्ति और प्रज्ञान को देनेवाला है। इस सोमरक्षण के लिये गोदुग्ध का प्रयोग, शीतल जलों से स्नान भी सहायक होता है। जीवन के आरम्भ में उत्तम माता, पिता व आचार्यों का मिलना भी अत्यन्त सहायक बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समिद्धे अग्नौ, सुते सोमे

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अग्नौ समिद्धे**=ज्ञानाग्नि के दीप्त होने पर तथा **सोमे सुते**=सोम का सम्पादन होने पर, हे प्रभो! **त्वा**=आपको **वहिष्ठाः**=वोढृतम=वहन करने में उत्तम **हरयः**=इन्द्रियाश्व **आवहन्तु**=हमारे लिये प्राप्त करानेवाले हों। अर्थात् इन्द्रियाँ हमें प्रभु को प्राप्त कराने में सहायक बनें। (२) हे **इन्द्र**=प्रभो! **त्वायता**=आपकी कामनावाले **मनसा**=मन से **जोहवीमि**=मैं आपको पुकारता हूँ। **आयाहि**=आप हमें प्राप्त होइये और **नः**=हमारे **महे सुविताय**=महान् कल्याण के लिये होइये।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि—(क) ज्ञानाग्नि को समिद्ध करें, (ख) सोम शक्ति का सम्पादन करें, (ग) मन में प्रभु प्राप्ति की प्रबल कामनावाले हों। यह प्रभु प्राप्ति हमारे महान् कल्याण के लिये होगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु प्राप्ति के चार साधन

आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात्॥ ४॥

(१) जीव से प्रभु कहते हैं कि—हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **आयाहि**=हमारे समीप आ। **शश्वत्**=सदा **उशता**=चाहते हुए **महा मनसा**=बड़े दिल से **सोमपेयम्**=सोम के पान को **ययाथ**=प्राप्त हो। यह सोमपान (वीर्य-रक्षण) तुझे हमारे समीप लानेवाला हो। (२) **नः**=हमारी **इमा**=इन **ब्रह्माणि**=ज्ञान की वाणियों को **उपशृणवः**=आचार्यों के समीप बैठकर सुननेवाला हो। **अध**=अब **यज्ञः**=यह यज्ञ **ते तन्वे**=तेरे शरीर के लिये **वयोः**=उत्कृष्ट जीवन को **धात्**=धारण करे।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के साधन निम्न हैं—(क) प्रभु की ओर जाना, प्रभु की उपासना, (ख) सोम का पान करना, (ग) ज्ञान की वाणियों को सुनना, (घ) यज्ञशील बनना।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु द्वारा हमारे यज्ञों का रक्षण

यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः॥ ५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=यदि आप **पार्ये दिवि**=बहुत सुदूर द्युलोक में हों, **यद्**=यदि इस द्युलोक से भिन्न किसी अन्य देश में हों, **यद्**=अथवा यदि **स्वे सदने**=अपने

गृह में आप हैं, **यत्र वा असि**=अथवा जहाँ कहीं भी हैं, **अतः**=उस स्थान से **नः यज्ञम्**=हमारे इस यज्ञ में **नियुत्वान्**=प्रशस्त इन्द्रियाँ श्रेष्ठवाले होते हुए **अवसे**=रक्षण के लिये आइये। आप हमें प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराइये, जिससे हम यज्ञ आदि कर्मों को सम्यक् कर सकें। (२) हे **गिर्वणः**=ज्ञान-वाणियों द्वारा सेवनीय प्रभो! आप **मरुद्भिः**=प्राणों के साथ **सजोषाः**=प्रीयमाण होते हुए **पाहि**=हमारा रक्षण कीजिये। वस्तुतः प्राणों के द्वारा ही आप हमारा रक्षण करते हैं। यह प्राणशक्ति हमारा रक्षण करनेवाली हो जाती है।

भावार्थ—प्रभु हमें प्रशस्त इन्द्रियों व प्राणशक्ति को प्राप्त कराते हैं। इनके द्वारा हम यज्ञों को कर पाते हैं।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रथमः यज्ञियानाम्

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम्॥ १ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **अहेडमानः**=हमारे पर क्रोध न करते हुए आप **यज्ञं उपयाहि**=हमारे इस जीवन-यज्ञ में प्राप्त होइये। हम आपके क्रोध के पात्र न बनें, आप से रक्षित हुए-हुए जीवनयज्ञ को सफल बना पायें। हे प्रभो! **सुतासः**=उत्पन्न हुए-हुए ये **इन्दवः**=सोमकण **तुभ्यं पवन्ते**=आपकी प्राप्ति के लिये शुद्ध किये जाते हैं। सोमकणों को शुद्ध रखकर हम बुद्धि की दीप्ति के द्वारा प्रभु का दर्शन करते हैं। (२) हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! **गावः न**=जैसे गौवें गोष्ठ में अपने-अपने स्थान पर आती हैं, इसी प्रकार आप **स्वं ओकः**=इस हृदयरूप अपने घर की **अच्छ**=ओर **आगहि**=आइये। आप **यज्ञियानां प्रथमः**=उपास्यों में मुख्य हैं। आपको अपने हृदयासन पर बिठाकर मैं आपकी उपासना करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—प्रभु हमें जीवन-यज्ञ में प्राप्त हों। प्रभु कृपा से ही ये यज्ञ पूर्ण होते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिये हम सोम-शक्ति को वासनाओं से मलिन नहीं होने देते। हमारा हृदय प्रभु का घर बने। वहाँ प्रभु को आराधन करके हम उसकी उपासना करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सुकृता-वरिष्ठा' काकुत्

या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम्।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः॥ २ ॥

(१) हे प्रभो! **या**=जो **ते**=आपकी, आप से दी गयी, यह **काकुत्**=जिह्वा **सुकृता**= सम्यक् परिष्कृत है, **या**=जो **वरिष्ठा**=उरुतम है, विशाल है, **यया**=जिसके द्वारा **शश्वत्**=सदा **मध्वः ऊर्मिम्**=मधुर ज्ञान की **ऊर्मिम्**=ऊर्मि को, लहर को **पिबसि**=हमारे शरीर के अन्दर पान करते हैं **तया पाहि**=उसके द्वारा हमें रक्षित करिये। जब मनुष्य इस जिह्वा से ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करता है और अपने ज्ञान को विशाल बनाता है तो उस समय यह ज्ञान प्राप्ति में लगी हुई जिह्वा सोमरक्षण का साधन बनती है। यह सोमरक्षण हमारे 'शरीर मानस व बौद्ध' स्वास्थ्य का साधन बनता है। (२) **ते**=यह आपसे रक्षित **अध्वर्युः**=यज्ञादि उत्तम कर्मों का प्रणेता पुरुष

प्र अस्थात्=जीवनयात्रा में आगे और आगे बढ़ता है। हे **इन्द्र**=प्रभो! **ते**=आपका **वज्रः**=वज्र, यह क्रियाशीलता रूप आज हमारे लिये **गव्युः**=प्रशस्त इन्द्रियों को हमारे साथ जोड़नेवाला **संवर्तताम्**=हो। अर्थात् आपकी प्रेरणा से यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रेरित हुए-हुए हम सदा अपनी इन्द्रियों को प्रशस्त रख पायें, हमारी ये इन्द्रियाँ वासनाओं से मलिन न हों।

भावार्थ—प्रभु से दी गई ये वाणी (जिह्वा) ज्ञान प्राप्ति में लगी रहकर सोमरक्षण का साधन बने। सुरक्षित सोमवाला यह पुरुष यज्ञशील बने। यज्ञशीलता इसकी इन्द्रियों को विषयाक्रान्त होने से बचाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'द्रप्सः वृषभः विश्वरूपः' सोम

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम्॥ ३॥

(१) **एषः**=यह **सोमः**=सोम **द्रप्सः**=(दर्पति दीप्तिकर्मा) ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला है। **वृषभः**=सुखों का वर्षण करनेवाला है। **विश्वरूपः**=सब अंग-प्रत्यंगों को उत्तम रूप देनेवाला है। यह **वृष्णे**=सब सुखों का वर्षण करनेवाले **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **समकारि**=किया गया है। इसके रक्षण के द्वारा ही हम प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनते हैं। (२) हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाले, **स्थातः**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता बननेवाले **उग्र**=तेजस्विन् उपासक! **एतं पिब**=इसका तू पान कर। प्रकृष्ट ज्ञान के होने पर **यस्य ईशिषे**=जिसका तू ईश बनता है और **यः**=जो **ते अन्नम्**=अन्न बनता है। सोम का भक्षण ही इसे पूर्ण स्वस्थ बनाता हुआ अध्यात्म उन्नति के शिखर पर पहुँचनेवाला होता है। ज्ञान प्राप्ति में लगे रहना, वासनाओं के अनाक्रमण के द्वारा, सोम-रक्षण का पात्र बन जाता है।

भावार्थ—यह सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला, सुखों का वर्षक, अंग-प्रत्यंग को उत्तम रूप प्राप्त करानेवाला है। इसके रक्षण के लिये आवश्यक है कि हम जितेन्द्रिय बनें व अतिरिक्त समय को ज्ञान प्राप्ति में ही व्यतीत करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

चिकितुषे रणाय

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व॥ ४॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **असुतात्**=न उत्पन्न हुए-हुए सोम से **सुतः सोमः**=उत्पन्न हुआ-हुआ सोम **वस्यान्**=वसुमत्तर, प्रशस्यतर होता है। उत्पन्न होकर रक्षित हुआ-हुआ **अयम्**=यह सोम **चिकितुषे**=ज्ञानी के लिये तथा **रणाय**=(रण शब्दे) प्रभु के स्तोता के लिये **श्रेयान्**=कल्याणकर होता है। यह ज्ञानी स्तोता सोम का रक्षण कर पाता है और इस प्रकार रक्षित सोम के द्वारा अपना रक्षण करनेवाला होता है। (२) हे **तितिः**=काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को तैरनेवाले **एतं यज्ञम्**=इस संगतिकरण योग्य सोम को **उपयाहि**=तू समीपता से प्राप्त हो। और **तेन**=उस सोम के द्वारा **विश्वाः तविषीः**=सब बलों को **आपृणस्व**=अपने अन्दर आपूरित कर। सोम ही सब शक्तियों का मूल है।

भावार्थ—अनुत्पन्न सोम से उत्पन्न सोम श्रेष्ठ है। ज्ञानी स्तोता इसका रक्षण करता है और इसके

द्वारा सब बलों को अपने में धारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोम द्वारा शक्तियों का विस्तार

ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु॥५॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वा ह्वयामसि**=हम आपको पुकारते हैं। **अर्वाङ् याहि**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होइये। **ते सोमः**=आपका यह सोम (वीर्यशक्ति) **तन्वे**=शक्तियों के विस्तार के लिये **भवाति**=होता है। (२) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! आप **सुतेषु**=इन सोमों के उत्पन्न होने पर **मादयस्व**=हमारे जीवनों को उल्लासमय करिये। आप **पृतनासु**=संग्रामों में **अस्मान्**=हमें **प्र अवि**=प्रकर्षेण रक्षित करिये। **विक्षु**=सब प्रजाओं में हमारा अवश्य **प्र (अव)**=रक्षण करिये।

भावार्थ—हम प्रभु को पुकारें। रक्षित सोम हमारी शक्तियों का विस्तार करे। उत्पन्न सोम हमारे उल्लास का कारण बने। हमें वासनाओं व रोगों से रक्षित करें।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का आराधन करते हैं—

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

गतिशीलता व सोमरक्षण

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर। अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरे॥ १॥

(१) हे प्रभो! **अस्मै**=इस उपासक के लिये **प्रतिभर**=अंग-प्रत्यंग में सोम का भरण करिये। जो उपासक **पिपीषते**=सोम का पान करना चाहता है तथा **विश्वानि विदुषे**=सब वेद्य वस्तुओं को जानने के लिये यत्नशील होता है। इसके लिये सोम का भरण करिये। (२) उस उपासक के लिये सोम का रक्षण करिये जो **अरङ्गमाय**=खूब क्रियाशील है, **जग्मये**=यज्ञादि उत्तम कर्मों में जाने के स्वभाववाला है, **अपश्चादध्वने**=कभी पीछे गतिवाले न होकर सदा अग्रगतिवाला है तथा **नरे**=अपने को सदा उन्नतिपथ पर ले चलनेवाला है।

भावार्थ—सोमरक्षण के लिये सर्वोत्तम साधन सदा उत्तम कर्मों में लगे रहना ही है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सोमरक्षण व प्रभु प्राप्ति

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्। अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः॥ २॥

(१) **सोमपातमम्**=हमारे सोमों का अतिशयेन रक्षण करनेवाले **एनम्**=इस प्रभु को **ईन्**=निश्चय से **सोमेभिः**=इन सोमों के द्वारा **आ प्रत्येतन**=आभिमुख्येन जानेवाले बनो। सोमरक्षण से ही, बुद्धि की तीव्रता होकर, प्रभु का दर्शन होता है। प्रभु की उपासना ही सोमरक्षण का साधन बनती है। (२) उस प्रभु की ओर चलो जो **अमत्रेभिः**=बलों के साथ (अमत्र=strength) **ऋजीषिणम्**=ऋजुता की प्रेरणा देनेवाले हैं। इस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **सुतेभिः**=उत्पन्न **इन्दुभिः**=सोमों के द्वारा प्राप्त होनेवाले होवो। सुरक्षित सोम ही प्रभु प्राप्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—प्रभु की उपासना सोमरक्षण का साधन बनती है। सुरक्षित सोम प्रभु प्राप्ति कराने

में सहायक होता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

सोमेभिः प्रतिभूषथ

यदीं सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ। वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तंतमिदेषते॥ ३॥

(१) **यदि**=यदि **सुतेभिः**=उत्पन्न हुए-हुए **इन्दुभिः**=अपने को शक्तिशाली बनानेवाले **सोमेभिः**=सोमकणों के द्वारा, सोमकणों के रक्षण के द्वारा **प्रतिभूषथ**=उस प्रभु को प्राप्त करते हो (भू प्राप्तौ), तो वह उपासक उत्तम बुद्धि को प्राप्त करनेवाला होता हुआ **विश्वस्य वेद**=सब ज्ञानों को प्राप्त करता है। सोमरक्षण ज्ञानाग्नि की दीप्ति होती है और मनुष्य का झुकाव प्रकृति की ओर न होकर प्रभु की ओर होता है। मनुष्य सब **धृषत्**=शत्रुओं का धर्षण करता हुआ **तं तं इत्**=उस-उस कामना को **आ ईषते**=सब प्रकार प्राप्त करता है (to collect)। वासनाओं को विनाश से सब कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

भावार्थ—अपने जीवनों को सोमरक्षण के द्वारा प्रभु की ओर गतिवाला करें। इसी मार्ग में बुद्धि है, वासनाओं का क्षय है और सब कामनाओं की पूर्ति है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—भुरिगनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

शत्रु हिंसन से रक्षण

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम्।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत्॥ ४॥

(१) हे **अध्वर्यो**=यज्ञशील पुरुष, अध्वरों में अपने को जोड़नेवाले पुरुष **अस्मै अस्मै इत्**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिये और इस प्रभु की प्राप्ति के लिये ही **अन्धसः**=सोमरूप अन्न के **सुतम्**=उत्पादन को **प्रभर**=अपने अन्दर धारण कर। यह सुरक्षित सोम ही तुझे प्रभु को प्राप्त करायेगा। (२) ये प्रभु ही तुझे **समस्य**=सब **जेन्यस्य**=जीतने योग्य **शर्धतः**=उत्सहमान आक्रामण करते हुए शत्रु के **अभिशस्तेः**=हिंसनों से **कुवित्**=खूब ही **अवस्परत्**=पालित करेंगे, बचाएँगे। प्रभु ही वस्तुतः उपासक को काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं के आक्रमण से बचाते हैं।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये हम शरीर में सोमरूप अन्न का सम्पादन करें। ये प्रभु हमें शत्रुओं के हिंसनों से बचायेंगे।

अगले सूक्त में भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

शम्बर-रन्धन

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः। अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **यस्य मदे**=जिस सोम के रक्षण से उत्पन्न उल्लास में तू **दिवोदासाय**=ज्ञान के देनेवाले उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **त्यत्**=उस **शम्बरम्**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले ईर्ष्या नामक आसुर भाव को **रन्धयः**=विनष्ट करता है। **अयं सः सोमः**=यह वह सोम **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया गया है। (२) **पिब**=इस सोम का तू पान कर। इसके रक्षण से ही तू ईर्ष्या आदि आसुरभावों से ऊपर उठकर शान्त जीवनवाला बन सकेगा। यह शान्त जीवन

ही तेरे लिये प्रभु को प्राप्त करानेवाला होगा।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम ईर्ष्या का विनाश करें। ईर्ष्या विनाश शान्ति का साधन बनेगा। सोम रक्षण प्रभु को प्राप्त करानेवाला होगा।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

तीनों सवनों में सोमरक्षण

यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे। अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब॥ २॥

(१) जीवन का प्रातः सवन प्रथम २४ वर्ष का है। इस सवन में सोम का सवन, वीर्यशक्ति का उत्पादन उत्कृष्ट रूप में होता है। उतना प्रबल उत्पादन जीवन के माध्यन्दिन सवन में नहीं रहता। और जीवन के तृतीय सवन में, ६९ से ११६ तक यह उत्पादन अत्यन्त शान्त-सा हो जाता है। तीनों ही सवनों में सोम अभिप्रेत है। सो कहते हैं कि **यस्य**=जिस सोम के **तीव्रसुतम्**=प्रातः सवन में होनेवाले तीव्र उत्पादनवाले **मदम्**=उल्लास को **रक्षसे**=तू रक्षित करता है, **च**=और **मध्यम्**=माध्यन्दिन सवन में होनेवाले **अन्तम्**=सायन्तन सवन में होनेवाले मद को रक्षित करता है। **अयं सः सोमः**=यह वह सोम, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया गया है। (२) **पिब**=इस सोम को तू अपने अन्दर ही पीनेवाला बन। यही सुरक्षित हुआ-हुआ तुझे दीर्घजीवन प्राप्त करायेगा।

भावार्थ—जीवन के प्रातः, मध्याह्न व तृतीय में इस सोम का रक्षण सदा अभिप्रेत है। यह सुरक्षित सोम ही दीर्घजीवन का साधन बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

अविद्या पर्वत विदारण

यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः। अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब॥ ३॥

(१) वासनारूप शत्रु इन्द्रिय रूप गौवों को दृढ़ता से अविद्या पर्वत में ढक कर स्थापित करता है। सोमरक्षण से ज्ञानदीप्ति होकर इन इन्द्रियों की इस अविद्या पर्वत से मुक्ति होती है। सो कहते हैं कि **यस्य मदे**=जिस सोम के रक्षण से जनित उल्लास में **अश्मनः अन्तः**=अविद्या पर्वत के अन्दर **दृढाः**=दृढ़ता से स्थापित **गाः**=इन्द्रियरूप गौवों को **अवासृजः**=तू मुक्त करता है। **अयं सः सोमः**=यह सोम, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया गया है। (२) **पिब**=तू इसका पान कर। इसके पान से अपने ज्ञान को तू उज्ज्वल बना। इस ज्ञान की अग्नि से ही अविद्यापर्वत में निरुद्ध गौवों की इस अविद्या से मुक्ति होगी।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम ज्ञानाग्नि को दीप्त करके अविद्यान्धकार को नष्ट करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

माघोनं शवः

यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः। अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब॥ ४॥

(१) **यस्य अन्धसः**=जिस सोमरक्षण अन्न के रक्षण से **मन्दानः**=हर्ष का अनुभव करता हुआ तू **माघोनः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु सम्बन्धी **शवः**=बल को **दधिषे**=धारण करता है। **अयं सः सोमः**=यह वह सोम **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते सुतः**=तेरे लिये उत्पन्न किया या है। (२) **पिब**=इस सोम का तू पान कर जिससे तुझे प्रभु की तेजस्विता प्राप्त होगी।

भावार्थ—सोमरक्षण से यह उपासक प्रभु के बल धारण करनेवाला बनता है।

यह सोमरक्षक पुरुष 'शंयु' बनता है शरीर में नीरोग मन में निर्भीक यह इन्द्र का स्तवन करता हुआ कहता है—

चतुर्थोऽनुवाकः

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

रयिन्तमः-द्युम्नवत्तमः

यो र॒यिवो॑ र॒यिन्त॑मो॒ यो द्यु॒म्नैर्द्यु॒म्नव॑त्तमः । सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ १ ॥

(१) हे **रयिवः**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः ते सुतः सोमः**=जो आपके द्वारा उत्पन्न किया गया यह सोम है **सः**=वह **रयिन्तमः**=सर्वोत्कृष्ट रयि है, प्रमुख धन है। **यः**=जो सोम है वह **द्युम्नैः द्युम्नवत्तमः**=ज्ञानों से अतिशयेन ज्ञानज्योतिवाला है। यह सोम वास्तविक धन है और ज्ञान को प्राप्त करानेवाला है। (२) हे **इन्द्र**=शक्तिशालि प्रभो! हे **स्वधापते**=आत्मधारण-शक्ति के स्वामिन्! यह आपका सोम **मदः अस्ति**=उल्लास का जनक है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम ही उत्कृष्ट धन है, यही ज्ञान-ज्योति को जगानेवाला है, उल्लास का जनक है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

शग्मः, रायः मतीनां दामा

यः श॒ग्मस्तु॑विशग्म ते॒ रा॒यो दा॒मा म॑ती॒नाम् ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ २ ॥

(१) हे **तुविशग्म**=महान् सुखवाले प्रभो! **ते**=आपका **सुतः स सोमः**=उत्पन्न हुआ-हुआ यह सोम **शग्मः**=सुखों को देनेवाला है। **सः**=वह **ते**=आपका सोम **रायः**=ऐश्वर्य का व **मतीनाम्**=बुद्धियों का **दामा**=दाता है। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **स्वधापते**=हे आत्मधारणशक्ति के स्वामिन्! यह आपका **सोमः**=सोम **मदः**=उल्लास का जनक **अस्ति**=है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम सुख का जनक है, बुद्धियों का वर्धक है, उल्लास का जनक है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

शवसा वृद्धः, तुरः

येन॑ वृ॒द्धो न शव॑सा तु॒रो न स्वाभि॑रू॒तिभिः॑ ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ ३ ॥

(१) **येन**=जिस अपने अन्दर पीये हुए सोम से **शवसा वृद्धः न**=बल के दृष्टिकोण से बढ़े हुए के समान तथा **स्वाभिः ऊतिभिः**=अपने रक्षणों के द्वारा **तुरः न**=शत्रुहिंसक के समान होता है। अर्थात् इस सोमरक्षण से शक्ति का वर्धन होता है तथा अपना रक्षण करते हुए हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का हिंसन कर पाते हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **स्वधापते**=आत्मधारण शक्ति के स्वामिन् प्रभो! **सोम सुतः**=उत्पन्न हुआ-हुआ **ते सोमः**=आपका यह सोम **मदः अस्ति**=उल्लास का जनक है।

भावार्थ—इस सोमरक्षण से बल की वृद्धि होती है और हम अपना रक्षण करते हुए काम-क्रोध आदि का नाश कर पाते हैं। इस प्रकार यह सोम उल्लास का जनक होता है।

ऋषि:—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वर:—**गान्धारः** ॥

शवसस्पति-विश्वचर्षणि

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम्। इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४ ॥

(१) **वः**=तुम सबके **अप्रहणम्**=अप्रहन्ता, न नष्ट करनेवाले **त्यम्**=उस प्रभु का **उ**=निश्चय से **गृणीषे**=स्तुति करता हूँ। मैं प्रभु का स्तवन करनेवाला बनता हूँ। वे प्रभु **शवसस्पतिम्**=बल के स्वामी हैं। मुझे बल देकर इस योग्य बनाते हैं कि मैं अपना रक्षण कर सकूँ। (२) उस प्रभु का मैं स्तवन करता हूँ जो **इन्द्रम्**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं। **विश्वासाहम्**=सब शत्रुओं का पराभव करनेवाला है। **नरम्**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हैं। **मंहिष्ठम्**=दातृतम हैं, सब आवश्यक वस्तुओं (वसुओं) के देनेवाले हैं और **विश्चर्षणिम्**=सब के द्रष्टा हैं, सबका पालन करनेवाले हैं (one who looks after)।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमें शक्ति देकर शत्रु-शातन के आरक्षण के योग्य बनाते हैं।

ऋषि:—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वर:—**ऋषभः** ॥

राधस्+शुष्म

यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः। तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ ॥

(१) **गिरः**=स्तुति-वाणियाँ **तुरस्य**=शत्रुओं के हिंसक **राधसः**=ऐश्वर्य के **पतिम्**=स्वामी **यम्**=उस प्रभु को **इत्**=ही **वर्धयन्ति**=बढ़ाती हैं। प्रभु से दिया गया ऐश्वर्य हमें काम-क्रोध-लोभ का शिकार नहीं होने देता। (२) **नु**=अब **इत्**=निश्चय से **देवी रोदसी**=ये प्रकाशमय व दिव्यगुणोंवाले द्यावापृथिवी **अस्य**=इस प्रभु के **तं शुष्मम्**=उस शत्रु-शोषक बल का **सपर्यतः**=पूजन करते हैं। द्यावापृथिवी अर्थात् इन में रहनेवाले व्यक्ति आपकी उपासना से शत्रु-शोषक बल को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना से वह धन प्राप्त होता है जो हमें वासनाओं में नहीं फँसाता और यह उपासना हमें शत्रु-शोषक बल प्राप्त कराती है।

ऋषि:—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आसुरीपङ्क्तिः** ॥ स्वर:—**पञ्चमः** ॥

प्रभु का ही स्तवन

तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि। विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥ ६ ॥

(१) **वः**=तुम्हारे **उक्थस्य**=स्तोत्र का **तद् बर्हणा**=वह माहात्म्य है कि **इन्द्राय**=उस शत्रु शातक प्रभु के लिये **उपस्तृणीषणि**=उपस्तरणीय होता है, उपासना में विस्तरणीय होता है। वस्तुतः वेद ही स्तोत्र है जो प्रभु के लिये उच्चरित होता है। अर्थात् प्रभु की ही स्तुति करनी चाहिये। **यस्य ऊतयः**=जिसके रक्षण **विपः न**=मेधावी पुरुष के समान हैं, अर्थात् जिस प्रभु के रक्षण अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक होते हैं। और **यत् रक्षिता**=जो रक्षक समान निवासवाले लोग **विरोहन्ति**=विशिष्ट उन्नतिवाले होते हैं। प्रभु को आधार बनानेवाले व्यक्ति उन्नत होते ही हैं। ये सब पापकर्मों से दूर रहते हुए उज्ज्वल चरित्रवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम सदा प्रभु का स्तवन करें जिनके रक्षण बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक होते हैं और जिनकी शरण में रहनेवाले व्यक्ति सदा उन्नत होते हैं।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'वलद्यता-धनविचेता' प्रभु

अविदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥ ७ ॥

(१) वह **नवीयान्**=अतिशयेन स्तुत्य-स्तुत्यतर **मित्रः**=पापों से बचानेवाले प्रभु **दक्षम्**=बल को **अविदत्**=प्राप्त कराते हैं। बल को देकर ही हमें वह पापों से बचाते हैं। निर्बलता में ही पापों का निवास है। **पपानः**=(पन स्तुतौ) स्तुति किये जाते हुए वे प्रभु **देवेभ्यः**=इन स्तोताओं के लिये (दिव् स्तुतौ) **वस्यः**=सशक्त धन का **अचैत्**=संचय करते हैं। वे प्रभु स्तोताओं के लिये सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं। (२) **स्तौलाभिः**=(स्थूलाभिः) अत्यन्त प्रवृद्ध **धौतरीभिः**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाली शक्तियों से **ससवान्**=संभजमान वे प्रभु **उरुष्या**=हमारे रक्षण की कामना से **सखिभ्यः**=अपने इन साथियों के लिये **पायुः अभवत्**=रक्षक होते हैं। शत्रु-कम्पक शक्तियों को प्राप्त कराके वे प्रभु हमारा रक्षण करते हैं।

भावार्थ—वे स्तुत्य प्रभु हमें शक्ति व धन प्राप्त कराते हैं। प्रवृद्ध शत्रु-कम्पक शक्तियों के द्वारा वे हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

सोमपान-ज्ञान-बल प्रभु दर्शन

ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन्।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥

(१) **ऋतस्य पथि**=यज्ञ के मार्ग में **वेधाः**=बुद्धि का जनक यह सोम (वेधाः=सोम) संचय किया जाता है। अर्थात् यज्ञादि कर्मों में लगे रहने से वासनाओं का आक्रमण न होने के कारण, सोम **अपायि**=होता है। इस प्रकार **देवासः**=देववृत्ति के पुरुष **श्रिये**=शोभा के लिये **मनांसि अक्रन्**=ज्ञान का सम्पादन करते हैं। सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि दीप्त होती है और ज्ञान से पवित्रता होकर उसकी शोभा बढ़ती है। (२) **वचोभिः**=स्तुति वचनों के द्वारा **नाम**=शत्रुओं को नमानेवाले सोम को धारण करते हुए **वेन्यः**=वे कमनीय प्रभु **वपुः**=अपने तेजोमय रूप को **दृशये**=समयक देखे जाने के लिये **व्यावः**=प्रकट करते हैं। अर्थात् यह प्रभु-स्तवन हमें शत्रुओं को नष्ट करने बल को प्राप्त कराता है तथा प्रभु दर्शन का पात्र बनाता है।

भावार्थ—हम यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में लगे रहकर, वासनाओं से बचे रहने के द्वारा, सोम का पान करें। ज्ञान को प्राप्त करें। स्तवन के द्वारा शत्रुओं के झुकानेवाले बल को प्राप्त हों तथा प्रभु दर्शन के योग्य बनें। सोमरक्षण से ज्ञान बढ़ता है। ज्ञान से शत्रुओं को झुकानेवाला व बल मिलता है। इस बल से सम्पन्न व्यक्ति प्रभु दर्शन पाता है।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

द्युमत्तमं दक्षम्

द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९ ॥

(१) हे प्रभो! **द्युमत्तमम्**=अधिक से अधिक ज्ञान की ज्योतिवाले **दक्षम्**=बल को **अस्मे**=हमारे

लिये **धेहि**=धारण कीजिये, हमें ज्ञान-बल प्राप्त हो। इस प्रकार ज्ञान व बल को प्राप्त कराके आप **जनानाम्**=लोगों के **पूर्वीः अरातीः**=इन बहुत संख्यावाले शत्रुओं को **सेधा**=दूर करिये। ज्ञानाग्नि में काम-क्रोध दग्ध हो जाएँ और बल से रोग भाग जायें। (२) इस प्रकार **शचीभिः**=कर्मशक्ति (बल) व प्रज्ञानों से हमारे **वर्षीयः**=अत्यन्त उत्कृष्ट व दीर्घ **वयः**=जीवन को **कृणुहि**=करिये। इस जीवन में **धनस्य सातौ**=धन की प्राप्ति के निमित्त **अस्मान् अविड्ढि**=हमारा रक्षण कीजिये। आवश्यक धनों को प्राप्त करके हम अपने जीवनों को धन्य बनायें।

भावार्थ—हमें ज्ञानयुक्त बल प्राप्त हो ताकि हम निर्मल मनवाले व नीरोग शरीरवाले बनें। शक्ति व प्रज्ञान के साथ उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त करते हुए हम धनों को प्राप्त कर धन्य बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नकिः आपिः ददृशेमर्त्यत्रा

इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥

(१) हे **मघवन्**=ज्ञान रूप ऐश्वर्यशालिन् **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक बल सम्पन्न प्रभो! **वयम्**=हम **दात्रे**=इन ऐश्वर्यों को देनेवाले **तुभ्यम्**=आपके लिये ही **अभूम**=शेषभूत-सन्तानतुल्य हों। आपको ही अपना हितैषी जानकर हम संसार के सब व्यवहारों में वर्तें। हे **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **मा विवेनः**=हमारे प्रति अपगत कामनावाले आप **इत्**=हम आपके सदा प्रीति पात्र बने रहें। (२) यहाँ **मर्त्यत्रा**=मनुष्यों में **आपिः**=मित्र **नकिः**=नहीं **ददृशे**=दिखता। मानव मैत्री स्वार्थमयी होने से स्थायी नहीं होती। पर **किम्**=इस विषय में आपका क्या कहना। हे **अंग**=प्रिय प्रभो, सतत गतिशील प्रभो! **त्वा**=आपको **रध्रचोदनम्**=कार्य प्रेरक धन (धनों का प्रेरक) **आहुः**=कहते हैं। आप अपने उपासकों के लिये सब आवश्यक धनों को देते हैं।

भावार्थ—प्रभु 'मघवान्' हैं, 'इन्द्र' हैं। हमारे लिये ज्ञान व बल को प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही एकमात्र निःस्वार्थ मित्र हैं। वे प्रभु ही कार्य-साधक धनों को सदा प्राप्त करानेवाले हैं। संसार के मित्रताएँ अन्ततः स्वार्थमयी हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'असुष्वि व अपृणन्' का विनाश

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥ ११ ॥

(१) हे **वृषभ**=शक्तिशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **जस्वने**=उपक्षय करनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं के लिये **मा ररीथाः**=मत दे डालिये। आप से शक्ति को प्राप्त करते हुए हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीत पाएँ। **रेवतः**=सब ऐश्वर्योंवाले **ते**=आपकी **सख्ये**=मित्रता में **मा रिषाम**=हम हिंसित न हों। आपको मित्र पाकर हम काम-क्रोध आदि से कभी आक्रान्त न हों। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक, सर्वशक्ति-सम्पन्न प्रभो! **ते**=आपकी **जनेषु**=मनुष्यों में **पूर्वीः**=बहुत **निष्षिधः**=बुराइयों के रोकने की शक्तियाँ हैं आप उपासकों के समीप रोगों व काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नहीं आने देते। आप **असुष्वीन्**=अयज्ञशील पुरुषों को **जहि**=नष्ट करिये। **अपृणतः**=अदानशील पुरुषों को **प्रवृह**=उन्मूलित करिये।

भावार्थ—हम काम आदि से आक्रान्त न हों। प्रभु की मित्रता में रहते हुए हम शत्रुओं से

विनष्ट न किये जा सकें। प्रभु शत्रुओं को हमारे से दूर रखें। अयज्ञशील व अदानशील का ही तो उन्मूलन होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अकृपण धनी

उद्भ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥ १२ ॥

(१) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **अभ्राणि**=मेघों को **स्तनयन् इव**=गर्जना कराते हुए की तरह **अश्व्यानि**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली कर्मेन्द्रियों से सम्बद्ध तथा **गव्या**=अर्थों की गमक ज्ञानेन्द्रियों से सम्बद्ध **राधांसि**=सिद्धियों को **उदियर्ति**=उत्कर्षेण प्रेरित करते हैं। वे प्रभु अन्तरिक्ष में जैसे बादलों की गर्जना होती है, उसी प्रकार हमारे हृदयान्तरिक्ष में प्रेरणा को देते हुए हमें उत्तम कर्मेन्द्रियाँ व उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ प्राप्त कराते हैं। हे प्रभो! **त्वम्**=आप **प्रदिवः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले व **कारुधायाः**=क्रियाशील स्तोताओं के धारण करनेवाले प्रेरक **असि**=हो **त्वा**=आपको **मघोनः**=धनवान्, पर **अदामानः**=अदानशील-कृपण वृत्तिवाले **दभन्**=मत हिंसित करें। अर्थात् हमारे में से कोई धनी होता हुआ कृपण न हो और इस प्रकार आपको भूल न जाऊँ धन हमें आपको भुलानेवाला न हो।

भावार्थ—प्रभु प्रेरणा देते हैं, उत्तम कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों प्राप्त कराते हैं। स्तोताओं का वे धारण करनेवाले हैं। हम धनी होकर कृपण न हो जाएँ। प्रभु हमें विस्मरण न हो जाये, हम धन में ही न उलझ जाएँ।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पूर्वाभिः उत नूतनाभिः

अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥ १३ ॥

(१) हे **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले **अध्वर्यो**=यज्ञशील पुरुष! **महे**=उस महान् **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिये **सुतानां प्रभर**=इन उत्पन्न सोमों का धारण कर। ये सुरक्षित सोम ही तुझे प्रभु प्राप्ति के योग्य बनायेंगे। **सः हि**=वे प्रभु ही **अस्य राजा**=इस सोम को जीवन में दीप्त करनेवाले हैं। अर्थात् हमारे जीवनों में सोम का स्थापन करके प्रभु हमें दीप्त जीवनवाला बनाते हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **गृणतां ऋषीणाम्**=स्तुति करनेवाले तत्त्वद्रष्टा ज्ञानियों की **पूर्व्याभिः**=पूर्वकाल में होनेवाली **उत**=और **नूतनाभिः**=इस समय होनेवाली नवीन **गीर्भिः**=स्तुतिवाणियों से **वावृधे**=बढ़ाये जाते हैं। वे प्रभु ही इस सोम के द्वारा हमारे जीवन को दीप्त करते हैं। प्रभु स्तवन ही सोमरक्षण का साधन होता है। प्रभु स्तवन से सोमरक्षण होता है, रक्षित सोम से ज्ञानाग्नि के दीपन के द्वारा प्रभु दर्शन होता है।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिये हम सोमरक्षण द्वारा दीप्त जीवनवाले बनें। सोमरक्षण के लिये सदा स्तुतिशील हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मधुमान् सोम का रक्षण

अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥ १४ ॥

(१) **अस्य**=इस सोम के **मदे**=उल्लास में, सोमरक्षण जनित हर्ष में **पुरु**=अनेकों **वर्पांसि**=आसुर वृत्ति के रूपों को **विद्वान्**=जानता हुआ **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **अप्रती वृत्राणि**=जिनका मुकाविला करना बड़ा कठिन है उन वासनारूप शत्रुओं को **जघान**=नष्ट करता है। वासनाएँ नानारूपों में आया करती हैं और साथ ही ये अत्यन्त प्रबल हैं। इन्हें एक जितेन्द्रिय पुरुष ही, प्रभु की कृपा से जीत पाता है। (२) हे प्रभो! **तं उ**=उस निश्चय से **मधुमन्तम्**=जीवन को मधुर बनानेवाले प्रभो! **अस्मै**=इस **वीराय**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले **शिप्रिणे**=शोभन हनु व नासिकावाले, खूब खानेवाले (हनु) प्राणसाधक (नासिका) पुरुष के लिये **पिबध्यै**=शरीर में ही पीने व व्याप्त करने के लिये **प्रहोषि**=देते हैं (हु दाने)। सोमरक्षण के लिये 'वासनाओं का अनाक्रमण, चबाकर खाना व प्राणसाधना' ये सब चीजें सहायक होती हैं।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय बनकर वासनाओं का विनाश करें। चबाकर खायें, प्राणसाधना करनेवाले बनें। इस प्रकार सोम की रक्षा करें। रक्षित सोम हमारे जीवन को मधुर बनायेगा।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण-वृत्रहनन-यज्ञशीलता

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥ १५ ॥

(१) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **सुतं सोमः**=उत्पन्न हुए-हुए सोम को (वीर्यशक्ति को) **पाता अस्तु**=उत्तमता से पीनेवाला हो (साधुकारिणि तृन्)। और **मन्दसानः**=सोमरक्षण से उल्लास का अनुभव करता हुआ (माद्यन्) यह इन्द्र **वज्रेण**=क्रियाशीलता रूप वज्र से **वृत्रं हन्ता**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को नष्ट करनेवाला हो। (२) **परावतः चित्**=कार्यवश दूर-दूर देशों में गया हुआ भी **यज्ञं अच्छा गन्ता**=यज्ञों की ओर जानेवाला हो। इस प्रकार यह जितेन्द्रिय पुरुष **वसुः**=जीवन के निवास को उत्तम बनानेवाला हो। **धीनां अविता**=बुद्धियों व कर्मों का रक्षक हो। **कारुधायाः**=कर्म करनेवालों का धारण करनेवाला हो। कर्मशीलों को उत्साहित करे।

भावार्थ—सोमरक्षण से ज्ञानाग्नि का दीपन करके हम वासनारूप वृत्रों का दहन करें। वासना-विनाश से यज्ञशील जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सोमरक्षण से 'अमृतत्त्व-सौमनस्य-निर्द्वेषता व निष्पापता' की प्राप्ति

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः ॥ १६ ॥

(१) **इदम्**=यह **त्यत्**=वह प्रसिद्ध **पात्रम्**=रक्षण का साधनभूत **इन्द्रपानम्**=जितेन्द्रिय पुरुष से रक्षित **इन्द्रस्य प्रियम्**=जितेन्द्रिय पुरुष की प्रीति को उत्पन्न करनेवाला **अमृतम्**=रोगों से ऊपर उठानेवाले (न मृतं यस्मात्) यह सोम **अपायि**=पीया जाता है, शरीर में ही सुरक्षित किया जाता

है। (२) इसलिए यह सोम **देवम्**=इस देववृत्तिवाले पुरुष को **सौमनसाय**=सुमनरूप के लिये **मत्सत्**=आनन्दित करता है यह सोम सुरक्षित हुआ-हुआ **अस्यत्**=हमारे से **द्वेषः**=द्वेष के भाव को **वियुयवत्**=विशेष रूप को **अंहः**=पाप को **वि** (युयवत्)=पृथक् करे।

भावार्थ—सोमरक्षण से 'अमृतत्व-सौमनस्य-निर्द्वेषता व निष्पापता' प्राप्त होती है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'जामि व अजामि' रूप सब शत्रुओं का विनाश

एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान्।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥ १७ ॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले पुरुष! **एना**=इस सोम के रक्षण से **मन्दानः**=आनन्दित होता हुआ **शत्रून् जहि**=शत्रुओं को विनष्ट कर। हे **मघवन्**=यज्ञशील पुरुष! **जामिम्**=जन्म से ही उत्पन्न अथवा **अजामिम्**=पीछे उत्पन्न हो जानेवाले **अमित्रान्**=वासनारूप शत्रुओं को तू विनष्ट कर व कृत्रिम दोषों को तू इस सोम के द्वारा दूर कर। (२) **अभिषेणान्**=सेना के द्वारा हमारे पर आक्रमण करनेवाले व **अभि आदेदिशानान्**=हमारी ओर शस्त्रों को छोड़ते हुए इन शत्रुओं को, हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **परा प्रमृणा च**=पराङ्मुख करके बाधित कर, **च**=और **जहि**=नष्ट कर। कामदेव पञ्चबाण हैं। ये अपने शस्त्रों का हमारे पर प्रहार करते हैं। नाना प्रकार की वासनाएँ इसकी सेना हैं। इन सब शत्रुओं को हम पराङ्मुख करें और विनष्ट करें।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा हम जन्मजात (सहज) व पीछे उत्पन्न (कृत्रिम) सब वासनारूप शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाले हों, इन शत्रुओं के बाणों व सैन्यों को हम अपने से दूर करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

संग्राम विजय

आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥ १८ ॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **आसु नः पृत्सु**=इन हमारे संग्रामों में **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **महि**=महान् **सुगम्**=सुखेन गन्तव्य (प्राप्य) **वरिवः**=धन को **कः स्मा**=अवश्य करिये। हम आपकी कृपा से संग्रामों में जीतें और उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करें। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभु! **अपाम्**=(आपः रेतो भूत्वा) रेतःकणों के, **तोकस्य**=उत्तम पुत्रों के **तनयस्य**=पौत्रों के **जेषः**=जीत कर **नः सूरीन्**=हम स्तोताओं को **स्म**=निश्चय से **अर्धं कृणुहि**=समृद्ध करिये अथवा नष्ट कर अर्थात् शत्रुओं का खण्डयिता करो। हम शत्रुओं को नष्ट करके रेतःकणों का रक्षण करें और पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम प्रभु कृपा से संग्रामों में विजयी होकर उत्कृष्ट जीवन यापन करें। शत्रुओं का खण्डन करके रेतःकणों का रक्षण करते हुए उत्तम पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

कैसे इन्द्रियाश्व सोमपान करें?

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णो मदाय सुयुजो वहन्तु ॥ १९ ॥

(१) **त्वा**=तुझे **हरयः**=ये इन्द्रियाश्व **वृष्णे**=शक्ति का सेचन करनेवाले, **मदाय**=उल्लास के जनक सोम के पान के लिये **आ वहन्तु**=समन्तात् कार्यों में प्राप्त करायें। निरन्तर क्रियाओं में व्यापृत इन्द्रियाँ इस सोम के रक्षण के योग्य बनायें। यह सुरक्षित सोम हमारे में शक्ति का सेचन करे (वृषा)=और हमें हर्ष देनेवाला हो (मद)। हमारे इन्द्रियाश्व **वृषणः**=शक्ति का अपने में सेचन करनेवाले हों। **युजानाः**=शरीर रथ में जुते हुए, अर्थात् सदा स्वकार्य व्यापृत हों। **वृषरथासः**=शक्तिशाली शरीर रूप रथवाले, **वृषरश्मयोः**=शक्तिशाली मनरूप लगामवाले व **अत्याः**=निरन्तर गतिशील हों। (२) ये इन्द्रियाश्व **अस्मत्राञ्चः**=हमारे प्रति (प्रभु के प्रति) आते हुए, अर्थात् प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलते हुए, **वृषणः**=शक्तिशाली व नित्य तरुण हों। **वज्रवाहः**=क्रियाशीलता रूप वज्र का धारण करनेवाले **सुयुजः**=सदा शोभन कर्मों में लगे हुए हों।

भावार्थ—सतत-स्व-कार्य-व्यापृत व प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर चलनेवाले इन्द्रियाश्व सोम का, वीर्यशक्ति का पान करनेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः

आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम्॥ २०॥

(१) हे **वृषन्**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले उपासक! **ते वृषणः**=तेरे ये शक्तिशाली इन्द्रियाश्व **घृतप्रुषः ऊर्मयः न**=जल का सेचन करनेवाली समुद्र-तरंगों के समान **मदन्तः**=उल्लासमय होते हुए, कार्यों में नाचते हुए **द्रोणम्**=इस गतिशील शरीर रथ में **आ अस्थुः**=समन्तात् स्थित हों। शरीर रथ में जुते हुए ये इन्द्रियाश्व जीवनयात्रा में तुझे आगे और आगे ले जानेवाले हों। (२) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! **वृषभिः**=शक्तिशाली इन्द्रियाश्वों द्वारा **सुतानाम्**=उत्पन्न किये गये सोम कणों के **वृष्णे**=अपने में सेचन करनेवाले **वृषभाय**=शक्तिशाली श्रेष्ठ जीवनवाले **तुभ्यम्**=तेरे लिए सोम को सब देव **प्रभरन्ति**=प्राप्त कराते हैं। इस सोम के रक्षण से ही तेरा जीवन सुन्दर हो पायेगा।

भावार्थ—उल्लासमय इन्द्रियाश्व शरीर रथ में जुते रहें, अर्थात् इन्द्रियाँ निज कार्य में लगी रहें, तो ये इन्द्रियाँ सोम का शरीर में सेचन करती हैं और हमें शक्तिशाली व श्रेष्ठजन बनाती हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'स्वादुः रसः मधुपेयः' सोमः

वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय॥ २१॥

(१) हे **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **दिवः वृषा असि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक का शक्ति से सेचन करनेवाला है। **पृथिव्याः वृषभः**=इस शरीर रूप पृथिवी का भी शक्ति से सेचन करनेवाला है। **सिन्धूनाम्**=ज्ञाननदी के प्रवाहों का तू अपने में सेचन करनेवाला है और इसी दृष्टिकोण से **स्तियानाम्**=(स्तिया आपो भवन्ति सत्यानात् नि० ६।१७) तू रेतःकणरूप जलों का (आपः रेतो भूत्वा) **वृषभः**=अपने में सेचन करनेवाला है। ये रेतःकण ही शरीर में सिक्त होकर ज्ञानाग्नि का ईंधन बनते हैं। ज्ञानाग्नि के दीप्त होने पर ही ज्ञाननदियों का प्रवाह चला करता है। (अग्रेरापः)। (२) हे **वृषभः**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले **वराय**=श्रेष्ठ व **वृष्णे**=शक्तिशाली **ते**=तेरे लिये ही यह **इन्दुः**=सोम **पीपाय**=आप्यायित होता है, बढ़ता है। यह सोम **स्वादुः**=तेरे जीवन

को मधुर बनाता है। **रसः**=जीवन को रसमय करता है। अतएव **मधुपेयः**=मधुवत् पातव्य होता है। यह सोम सब भोजनों का सारभूत है, अतएव ग्राह्यतम है।

भावार्थ—सोमरक्षण के द्वारा मनुष्य मस्तिष्क को व शरीर को शक्ति सिक्त करता है। इस सोमरक्षण से वह अपने में ज्ञाननदियों को प्रवाहित करता है। यह सोम जीवन को मधुर व रसमय बनाता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण व लोभ विनाश

अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत्।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥ २२ ॥

(१) **अयम्**=यह **देवः**=दिव्य गुणों को जन्म देनेवाला सोम **सहसा**=शत्रुमर्षक बल के साथ **जायमानः**=प्रादुर्भूत होता हुआ **इन्द्रेण युजा**=अपने साथी इस जितेन्द्रिय पुरुष के साथ **पणिम्**=व्यापारिक-व्यावहारिक-धनादि के प्रति आसक्ति रूप लोभवृत्ति को **अस्तभायत्**=रोकता है। इसके रक्षण से लोभवृत्ति का निरोध होता है। (२) **अयं इन्दुः**=यह सोम **स्वस्य**=धन के **पितुः**=पिता धन के पहरेदार बने हुए, इस लोभ के **आयुधानि**=अस्त्रों को **अमुष्णात्**=अपहृत चुराने के लोभ के अस्त्र इस सोमरक्षक को आहत नहीं कर पाते। **अशिवस्य**=अकल्याणकर आसुरी **मायाः**=मायाओं को, फँसानेवाले आकर्षक रूपों को यह सोम नष्ट करता है। आसुररूपी माया इस सोमरक्षक को प्रभावित नहीं कर पाती।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष सोम का रक्षण करता हुआ लोभ की माया में नहीं फँसता।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ज्योति का स्रोत' प्रभु

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥ २३ ॥

(१) **अयं**=यह प्रभु ही **उषसः**=उषाकालों की **सुपत्नीः**=सूर्यरूप शोभन पतिवाला रक्षक है। अर्थात् उषाकालों में सूर्य-किरणों द्वारा यह प्रभु ही प्रकाश को स्थापित करता है। **अयम्**=ये प्रभु ही **सूर्ये अन्तः**=सूर्य के अन्दर **ज्योतिः अदधात्**=प्रकाश को स्थापित करता है। सूर्य भी प्रभु की दीप्ति से ही दीप्त होता है। 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'। (२) **अयम्**=ये प्रभु ही **दिवि**=द्युलोक में **रोचनेषु**=चमकते हुए नक्षत्रों में निवास करनेवाले **त्रितेषु**=शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों का विस्तार करनेवाले पुरुषों में (त्रीन् तनोति) **निगूढम्**=सुरक्षित रूप से विद्यमान **त्रिधातु अमृताम्**=ज्ञान, कर्म व श्रद्धा इन तीनों का धारण करनेवाले अमरण हेतु भूत सोम को **विन्दत्**=प्राप्त कराता है।

भावार्थ—प्रभु ही उषाओं को, सूर्य को व नक्षत्र निवासी देव पुरुषों को दीप्ति प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दशयन्त्रं उत्सम्

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम्।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ २४ ॥

(१) **अयं सोमः**=प्रभु से उत्पन्न किया हुआ यह सोम **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क व शरीर को **विष्कभायत्**=थामता है। सोम से मस्तिष्क ज्ञानाग्निदीप्त व शरीर दृढ़ बनता है। **अयम्**=यह सोम ही **सप्तरश्मिम्**=सप्त छन्दोमयी वेदवाणीरूप सात रश्मियोंवाले, प्रकाश-किरणोंवाले, **रथम्**=शरीर-रथ को **अयुनक्**=इन्द्रियाश्वों से जोतता है। प्रभु ही शरीर-रथ में इन्द्रियाश्वों को स्थापित करते हैं। (२) **अयम्**=यह ही **गोषु अन्तः**=ज्ञानेन्द्रियों के अन्दर **पक्वम्**=परिपक्व ज्ञान को **शच्या**=शक्ति के साथ स्थापित करता है और यह सोम ही **दशयन्त्रं उत्सम्**=दश प्राणरूप यन्त्रों से युक्त इस उत्सरणशील शरीर को **दाधार**=धारण करता है। शरीर शक्ति व ज्ञान का स्रोत बनता है, सो दशयन्त्र कहा गया है। इस में दश प्राण ही दश यन्त्र हैं जो इस शरीर के सारे कर्मों का पालन करते हैं। सोम के द्वारा यह ठीक रहता है।

भावार्थ—सोमरक्षण से मस्तिष्क व शरीर ठीक रहते हैं। इन्द्रियाँ व प्राण भी इस सोम के द्वारा ही ठीक प्रकार कार्य करते रहें तभी हमारे जीवन में शक्ति व प्रज्ञान का स्थापन होता है।

अगले सूक्त में भी शंयु ही इन्द्र का स्तवन करता है—

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'युवा सखा' प्रभु

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्। इन्द्रः स नो युवा सखा॥ १॥

(१) **यः**=जो **तुर्वशम्**=त्वरा से इन्द्रियों को वश में करनेवाले **यदुम्**=यत्नशील पुरुष को (प्रतमानं नरम् द० १।५४।६) **परावतः**=सुदूरदेश से भी, धर्म मार्ग से बहुत दूर गये हुए को भी **सुनीती**=उत्तम नीति से, प्रणयन से **आनयत्**=पुनः धर्म मार्ग पर ले आता है। **सः**=वही **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली प्रभु है। संसार के विषय अपनी चमक के कारण मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। पर यदि मनुष्य इन से आहत होकर प्रभु की शरण में आता है, तो प्रभु कितने भी भटके हुए उस मनुष्य को फिर धर्म-मार्ग पर ले आते हैं। हृदयस्थ प्रभु प्रेम से, पिता जैसे पुत्र के लिये प्रेरणा देते हैं। और इस पुकारनेवाले को धर्ममार्ग पर ले आते हैं। यह इन्द्रियों को वश में करनेवाला बनता है, सदा धर्ममार्ग पर चलने के लिये यत्नशील होता है। (२) ये प्रभु **नः**=हमारे **युवा**=बुराइयों को दूर करनेवाले तथा अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले **सखा**=मित्र हैं। सच्चे मित्र का यही तो लक्षण होता है कि 'पापात् निवारयति, योजयते हिताय'।

भावार्थ—प्रभु हमारे सच्चे मित्र हैं। वे हमें बुराइयों से दूर करते हैं और अच्छाइयों से हमें मिलाते हैं। उत्तम नीति से हमें वे धर्ममार्ग पर लानेवाले हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

इन्द्रो जेता हितं धनम्

अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता। इन्द्रो जेता हितं धनम्॥ २॥

(१) **अ-विप्रे चित्**='जो बहुत उत्कृष्ट ज्ञानी नहीं है' उसमें भी **वयः दधत्**=दीर्घजीवन को धारण करते हैं। जो व्यक्ति बहुत ज्ञान को नहीं भी प्राप्त करता, परन्तु प्रभु का कुछ भक्त बनता है, उस अल्पज्ञ भक्त को भी लम्बा जीवन देते हैं। प्रभु भक्ति के कारण यह बहुत अनियमित जीवनवाला नहीं बनता दीर्घ जीवन को प्राप्त करता है। (२) **अनाशुना चित्**=बहुत शीघ्रता से कर्मों में न व्याप्त हुआ **अर्वता**=इन्द्रियाश्वों से **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु इस अविप्र (अल्पज्ञ)

भक्त के लिये भी हितकर धन को **जेता**=जीतनेवाले होते हैं। वस्तुतः धनों का विजय प्रभु ही करते हैं। सो हमारे लिये बहुत चुस्त न भी हुए तो भी कोई बहुत हानि नहीं। प्रभु-भक्ति चाहिए, फिर कल्याण ही होते हैं।

भावार्थ—अल्पज्ञ होते हुए भी एक प्रभु-भक्त दीर्घजीवन को प्राप्त करता है और प्रभु उसके लिये हितकर धनों का विजय करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रणीति-प्रशस्ति-ऊति

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः। नास्य क्षीयन्त ऊतयः॥ ३॥

(१) **अस्य**=इस प्रभु के **प्रणीतयः**=प्रणयन हमें उन्नतिपथ पर ले चलने के कार्य **महीः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। **उत**=और **प्रशस्तयः**=इस प्रभु की प्रशस्तियाँ **पूर्वीः**=बहुत हैं अथवा हमारा पालन व पूरण करनेवाली हैं। (२) **अस्य**=इस प्रभु की **ऊतयः**=रक्षायें **न क्षीयन्ते**=कभी क्षीण नहीं होती। प्रभु के रक्षण कार्य सदा चलते ही हैं। मनुष्य अशक्ति व अज्ञान के कारण कई बार रक्षण नहीं कर पाता। चाहते हुए भी माता-पिता भी सन्तान के रक्षण में कई बार अपने को अशक्त अनुभव करते हैं। प्रभु के यहाँ अशक्ति व अज्ञान का प्रश्न ही नहीं है।

भावार्थ—प्रभु के प्रणयन महान् हैं। प्रभु की प्रशस्तियाँ हमारा पालन व पूरण करनेवाली हैं। प्रभु के रक्षण कभी क्षीण नहीं होते।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अर्चत-प्र च गायत (उपासना व स्तुति)

सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत। स हि नः प्रमतिर्मही॥ ४॥

(१) एक उपासक अपने मित्रों से कहता है कि **सखायः**=हे मित्रो! **ब्रह्मवाहसे**=ज्ञान को प्राप्त करानेवाले उस प्रभु के लिये **अर्चत**=पूजा करो, **च**=और **प्रगायत**=उसके गुणों का गान करो। यह पूजा तुम्हें दुर्गुणों से बचायेगी और गुणगान तुम्हारे सामने एक लक्ष्य दृष्टि को स्थित करेगा, तुम्हारे अन्दर भी उन गुणों को धारण करने की वृत्ति उत्पन्न होगी। अर्थात् यह स्तोता यही सोचता है कि प्रभु दयालु हैं, मैं भी दयालु बनूँ। प्रभु न्यायकारी हैं, मैं भी न्यायकारी बनूँ। (२) **सः**=वे प्रभु **हि**=ही **नः**=हमारे लिये **मही प्रमतिः**=महान् बुद्धि हैं। हमारे अन्दर प्रभु प्रकृष्ट बुद्धि के रूप में निवास करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का पूजन करें, गायन करें। प्रभु हमें बुद्धि प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शक्ति व ज्ञान का रक्षण

त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि। उतेदृशे यथा वयम्॥ ५॥

(१) हे **वृत्रहन्**=वासना को विनष्ट करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **एकस्य**=एक शरीर के बल के महान् **असि**=रक्षक हैं। **द्वयोः**=बल व ज्ञान दोनों के भी **अविता (असि)**='रक्षक' हैं। (२) **उत**=और दोनों में भी **यथा वयम्**=जैसे कि हम हैं, उनमें भी आप शक्ति व ज्ञान के रक्षक होते हैं। हम बलहीन हैं। हमने क्या तो वृत्र को मारना और क्या शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करना? यह तो आपका अनुग्रह है कि आप हम जैसे लोगों को भी वासनाविनाश के द्वारा ज्ञान व शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु वासना को विनष्ट करके हमारे शरीरों में शक्ति व मस्तिष्कों में ज्ञान भरते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

निर्द्वेषता व स्तुति

नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः। नृभिः सुवीर उच्यसे॥ ६॥

(१) हे प्रभो! आप हमें **इत् उ**=निश्चय से **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं से **अतिनयसि**=पार ले जाते हैं, हमें द्वेष की भावना से दूर करते हैं। द्वेष की भावना से दूर करके हमें **उक्थशंसिनः कृणोषि**=स्तोत्रों का शंसन करनेवाला बनाते हैं। सच्चा स्तोता कभी द्वेष करनेवाला नहीं होता। प्रभु हमें द्वेष से दूर करके सच्चा स्तोता बनने की योग्यता प्राप्त कराते हैं। (२) हे प्रभो! **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से आप ही **सुवीरः**=अच्छी प्रकार शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले **उच्यसे**=कहे जाते हैं। स्तोताओं के शत्रुओं का शातन आप ही तो करते हैं। प्रकृष्ट बलवाले इस काम का विध्वंस आप ही तो करते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें द्वेष से दूर करके सच्चा स्तोता बनाते हैं, प्रभु हमारे शत्रुओं को कम्पित करके दूर करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ब्रह्म-दोहन

ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम्। गां न दोहसे हुवे॥ ७॥

(१) मैं **दोहसे**=दोहन के लिये **न**=जैसे **गाम्**=गौ को पुकारते हैं, इसी प्रकार ज्ञानदुग्ध का दोहन करने के लिये **गीर्भिः**=स्तुति-वाणियों के द्वारा **ऋग्मियम्**=स्तुति के योग्य प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। गौ से दूध को प्राप्त करते हैं, प्रभु से ज्ञानदुग्ध को। (२) उस प्रभु को हम पुकारते हैं जो कि **ब्रह्माणम्**=(परिबृढं) खूब बढ़े हुए हैं। **ब्रह्मवाहसम्**=सम्पूर्ण ज्ञानों का धारण करने व करानेवाले हैं। **सखायम्**=हम सबके सखा हैं। वस्तुतः 'इस प्रभु से ज्ञान का दोहन' ही जीवन का सर्वमहान् ध्येय होना चाहिए।

भावार्थ—हम प्रभु से प्रार्थना के द्वारा इस प्रकार ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करें जैसे कि गौ से दूध को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वसु प्राप्ति

यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता। वीरस्य पृतनाषहः॥ ८॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार हम उस प्रभु को (हुवे) पुकारते हैं **यस्य**=जिसके **हस्तयोः**=हाथों में **द्विता**=दो प्रकार से वर्तमान, द्युलोक व पृथिवी में वर्तमान शरीर रूप पृथिवी में व मस्तिष्क रूप द्युलोक में क्षत्र व ब्रह्म के रूप में वर्तमान **विश्वानि वसूनि**=सब वसुओं को **न्यूचुः**=निश्चय से कहते हैं। प्रभु के ही हाथों में सब वसु हैं। (२) वे प्रभु **वीरस्य**=शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले हैं तथा **पृतनासहः**=शत्रु-सैन्यों का मर्षण करनेवाले हैं। वस्तुतः इन शत्रुओं का संहार करके ही हम वसुओं को प्राप्त करते हैं। द्युलोक का वसु ज्ञान है तो पृथिवी लोक का वसु बल है। वेद में बल व ज्ञान का साधन प्राप्त करने का उल्लेख है। 'इदं मे ब्रह्म च क्षत्रञ्च उभे श्रेयमश्नुताम्'। इसी में शोभा है।

भावार्थ—प्रभु के हाथों में सब वसु हैं। प्रभु हमें वसुओं को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शत्रु माया का विनाश

वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते। वृह माया अनानत॥ ९॥

(१) हे **अद्रिवः**=वज्रवन् प्रभो! आप **जनानाम्**=लोगों के **दृढानि चित्**=दृढ़मूल भी काम-क्रोध आदि शत्रुओं को **विवृह**=उखाड़ दीजिये। प्रभु की उपासना के होने पर इन काम-क्रोध आदि शत्रुओं के साथ प्रभु का संघर्ष होता है। उस संघर्ष में इन शत्रुओं का विनाश होता है। इनका जोर तो मेरे पर ही चल रहा था। (२) हे **शचीपते**=शक्तियों व प्रज्ञानों के स्वामिन्! **अनानत**=शत्रुओं से न दबाये गये प्रभो! आप इन शत्रुओं की **मायाः**=मायाओं को **विवृह**=उन्मूलित कर दीजिये। इन आसुरभावों की मायाओं को विनष्ट करनेवाले होइये।

भावार्थ—प्रभु स्तोताओं के दृढमूल भी शत्रुओं का उन्मूलन करते हैं, इनकी मायाओं को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सत्य सोमपा' प्रभु

तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते। अहूमहि श्रवस्यवः॥ १०॥

(१) हे प्रभो! **तं त्वा उ**=उन आपको ही **श्रवस्यवः**=ज्ञान की कामनावाले हम **अहूमहि**=पुकारते हैं। आप से ही तो हमें सब सत्य ज्ञानों की प्राप्ति होती है। (२) हे प्रभो! आप ही **सत्य**=सत्यस्वरूप हैं। **सोमपाः**=हमारे सोम का रक्षण करनेवाले हैं। **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं। **वाजानां पते**=सब शक्तियों के स्वामी हैं।

भावार्थ—हम प्रभु को पुकारें, प्रभु ही हमें सत्यज्ञान की प्रेरणा देंगे। वे सत्यस्वरूप हैं, सोम का रक्षण करनेवाले हैं, शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले व शक्तियों के पति हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हव्य प्रभु

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने। हव्यः स श्रुधी हवम्॥ ११॥

(१) हे इन्द्र! **तं त्वा उ**=उन आपको ही हम स्तुत करते हैं **यः**=जो आप **पुरा**=पहले भी **हव्यः**=पुकारने योग्य **आसिथ**=थे **यः वा**=और जो **नूनम्**=आज भी **हिते धने**=हितकर धन के निमित्त **हव्यः**=पुकारने योग्य हैं। आप से ही हमें हितकर धन प्राप्त कराया जाता है। (२) **सः**=वे आप **हवं श्रुधि**=हमारी पुकार को सुनिये। प्रभु से हम सुनी जानेवाली पुकार के योग्य बनेंगे तो हमारी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायेगी।

भावार्थ—प्रभु ही पुकारने योग्य हैं, प्रभु ही हितकर धन को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हितं धनम्

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान्। त्वया जेष्म हितं धनम्॥ १२॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **धीभिः**=बुद्धियों के द्वारा तथा **अर्वद्भिः**=इन इन्द्रियाश्वों के द्वारा **श्रवाय्यान्**=अतिशयेन प्रशस्य **अर्वतः**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश करनेवाले **वाजाम्**=बलों को **जेष्म**=जीतनेवाले हों। बुद्धिपूर्वक इन्द्रियों से इस प्रकार कार्यों में लगे रहें

कि हम उन बलों को प्राप्त करें जो हमें काम-क्रोध आदि का शिकार न होने दें और हमारे जीवन को प्रशस्त बनाएँ। (२) हे प्रभो! इस प्रकार प्रशस्त जीवनवाले बनकर हम **त्वया**=आपके द्वारा **हितं धनं जेष्म**=हितकर धन का विजय करें। हमारा जीवन इन धनों के द्वारा सब उत्तम कर्मों को सिद्ध करता हुआ धन्य बने।

भावार्थ—हम बुद्धि व इन्द्रियों का इस प्रकार से प्रयोग करें कि हमें शत्रु-संहारक प्रशस्त बल प्राप्त हो। और हम हितकर धनों का विजय करके जीवन को धन्य बना पायें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

भरे वितन्तसाय्यः

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते। भरे वितन्तसाय्यः॥ १३॥

(१) हे **वीर**=शत्रुओं के कम्पित करनेवाले! **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से संभजनीय! **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **हिते धने**=हितकर धन के निमित्त **उ**=निश्चय से **महान् अभूः**=पूज्य होते हैं। आपका उपासक वीर बनता है, ज्ञान की वाणियों का सेवन करनेवाला होता है और शत्रुविद्रावक बनकर हितकर धनों का विजेता बनता है। (२) हे प्रभो! आप ही **भरे**=संग्राम में **वितन्तसाय्यः**=विजेता (अभूः) होते हैं। उपासक आपके द्वारा ही विजय को प्राप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—उपासक प्रभु के द्वारा हितकर धनों का विजय करता है और संग्राम में विजयी होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मक्षूजवस्तमा ऊतिः

या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति। तया नो हिनुही रथम्॥ १४॥

(१) हे **अमित्रहन्**=शत्रुओं के हन्ता प्रभो! **या**=जो **ते**=आपकी **ऊतिः**=रक्षा है, वह **मक्षुजवस्तमा**=अतिशयेन वेगवती **असति**=है। प्रभु का रक्षण प्राप्त होने में देर नहीं लगती। प्रभु सर्वत्र व्याप्त हैं, उन्हें रक्षण के लिये आने में समय की अपेक्षा नहीं है। उसके रक्षण सदा सर्वत्र संप्राप्य हैं। (२) हे प्रभो! **तया**=उस रक्षण के द्वारा **नः रथम्**=हमारे शरीररथ को आप **हिनु हि**=प्रेरित करिये। आपके रक्षण में यह शरीररथ जीवनयात्रा में आगे और आगे बढ़ता चले। हम दिन प्रतिदिन उन्नत होते चलें।

भावार्थ—प्रभु का रक्षण अतिशयेन वेगवान् है। उस रक्षण से हम जीवनयात्रा में इस शरीररथ के द्वारा आगे बढ़नेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'रथीतम' प्रभु

स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना। जेषि जिष्णो हितं धनम्॥ १५॥

(१) हे **जिष्णो**=विजयशील प्रभो! **सः**=वे आप **रथीतमः**=अतिशयेन प्रशस्त रथी हैं, महारथी हैं। वस्तुतः इन शरीर-रथों का संचालन आप ही करते हैं। (२) आप **अस्माकेन**=हमारे **अभियुग्वना**=शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले अथवा इन्द्रियाश्वों से जुते **रथेन**=इस शरीर-रथ के द्वारा **हितं धनम्**=हितकर धन का आप ही **जेषि**=विजय करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे शरीर-रथों के संचालक हैं। इन शरीर-रथों के द्वारा वे ही हितकर

धनों का विजय करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विचर्षणि-वृषक्रतु

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥

(१) **यः**=जो प्रभु हैं, वे **एकः इत्**=अद्वितीय ही, बिना किसी अन्य की सहायता के ही **कृष्टीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **विचर्षणिः**=विशेषेण द्रष्टा हैं। सब मनुष्यों का ध्यान करनेवाले प्रभु ही हैं। **तं उ**=उनको ही **स्तुहि**=तू स्तुत कर, अर्थात् प्रभु का ही स्तवन करनेवाला बन। (२) वे **वृषक्रतुः**=शक्तिशाली कर्मों व प्रज्ञानोंवाले प्रभु **पतिः जज्ञे**=सब के स्वामी व रक्षक हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सर्वद्रष्टा सर्वरक्षक हैं। उन्हीं की उपासना करनी योग्य है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शिवः सखा

यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा। स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥

(१) हे प्रभो! **यः**=जो **त्वम्**=आप **गृणताम्**=स्तुतिशील पुरुषों के **इत्**=निश्चय से **आपिः आसिथ**=मित्र हैं, वे आप ही **ऊती**=रक्षणों के द्वारा **शिवः**=कल्याणकर **सखा**=मित्र होते हैं। आप ही इन स्तोताओं को अन्तः व बाह्य शत्रुओं से बचाकर कल्याण प्राप्त कराते हैं। (२) **सः**=वे आप **नः**=हमें **मृडय**=सुखी करिये। हम भी आपके स्तवन में प्रवृत्त होकर अशुभों से बचकर शुभ मार्ग पर चलते हुए कल्याण के भागी हों।

भावार्थ—प्रभु ही स्तोताओं के शिव सखा हैं। हम भी प्रभु स्तवन करते हुए कल्याण को प्राप्त करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रक्षोहत्याय

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः। सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥

(१) हे **वज्रिवः**=वज्रवन् प्रभो! आप **गभस्त्योः**=हाथों में **वज्रं धिष्व**=वज्र को धारण करिये। और **रक्षोहत्याय**=हमारे राक्षसीभावों के विनाश के लिये होइये। आपके अनुग्रह से क्रियाशीलतारूप वज्र को हाथ में लेकर हम राक्षसीभावों के आक्रमण से बचे रहें। (२) हे प्रभो! आप **स्पृधः**=स्पर्धमान **अभि (गभीः)**=आक्रमण करनेवाले इन शत्रुओं को **सासहीष्ठाः**=पराभूत करिये।

भावार्थ—हम हाथों में वज्र को धारण करके, क्रियाशील बनकर अन्तः व बाह्य शत्रुओं के आक्रमण से अपना रक्षण कर पायें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सखायं

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम्। ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥

(१) मैं **ब्रह्मवाहस्तमम्**=अतिशयेन ज्ञानों का धारण करनेवाले उस प्रभु को **हुवे**=पुकारता हूँ। प्रभु का ज्ञान निरतिशय है। प्रभु का उपासक बनकर मैं भी ज्ञान को प्राप्त करता हूँ। (२) उस प्रभु को मैं पुकारता हूँ, जो **प्रत्नं सखायम्**=सनातन सखा हैं, जो हमारे मित्र हैं। **रयीणां**

युजम्=धनों का हमारे साथ सम्पर्क करनेवाले हैं और **कीरिचोदनम्**=स्तोताओं को सदा सत्प्रेरणा देनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु की आराधना मुझे उस सनातन सखा से 'ज्ञान, धन व उत्तम प्रेरणा' को प्राप्त करायेगी।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अध्रिगुः

स हि विश्वा॑नि॒ पार्थि॑वाँ॒ एको॒ वसू॑नि॒ पत्य॑ते। गिर्व॑णस्तमो॒ अध्रि॑गुः ॥ २० ॥

(१) **सः**=वह **एकः**=अद्वितीय प्रभु **हि**=ही **विश्वानि**=सब **पार्थिवा**=पृथिवी में होनेवाले **वसूनि**=धनों को **पत्यते**=अपने में सुरक्षित करते हैं। सम्पूर्ण धनों के स्वामी वे प्रभु ही हैं। (२) ये प्रभु **गिर्वणस्तमः**=इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा अधिक-से-अधिक सम्भजनीय हैं व **अध्रिगुः**=अधृतगमन हैं, प्रभु को अपने कार्यों में कोई विहत नहीं कर पाता।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान की वाणियों द्वारा सम्भजनीय हैं, सर्वशक्तिमान् हैं। प्रभु ही सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'गोमद्भिः अश्विभिः' वाजेभिः

स नो॑ नि॒युद्भि॒रा पृ॑ण॒ काम॒ं वाजे॑भिर॒श्विभिः॑। गोम॑द्भि॒र्गोप॑ते धृ॒षत् ॥ २१ ॥

(१) हे प्रभो! **सः**=वे आप **धृषत्**=शत्रुओं के धर्षण होते हुए **नः कामम्**=हमारी कामना को **नियुद्भिः**=निश्चय से कार्यों में व्यापृत होनेवाले इन्द्रियाश्वों से **आपृण**=पूरित करिये। कार्यव्यापृति ही कामनापूर्ति का साधन है। (२) हे **गोपते**=इन ज्ञान की वाणियों के स्वामिन् प्रभो! आप **गोमद्भिः**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाले व **अश्विभिः**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाले **वाजेभिः**=बलों से हमारी कामनाओं को पूर्ण करिये, हमें वह शक्ति प्राप्त कराइये जिससे कि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ ठीक बनी रहें। यही सुख प्राप्ति का साधन है, वस्तुतः यही 'सु-ख' है, उत्तम इन्द्रियों का होना।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं का धर्षण करते हुए हमें प्रशस्त इन्द्रियोंवाले बल को प्राप्त करायें। यह बल हमारे सब इष्टों का साधक हो।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मिलकर प्रभु का गुणगान

तद्वो॑ गाय सु॒ते सचा॑ पुरुहू॒ताय॒ सत्व॑ने। शं यद्गवे॒ न शा॒किने॑ ॥ २२ ॥

(१) **वः**=तुम **सुते**=शरीर में सोम का सम्पादन करने पर **सचा**=मिलकर **पुरुहूताय**=पालक व पूरक पुकारवाले, जिसकी प्रार्थना हमारा पालन व पूरण करती है, उस **सत्वने**=शत्रुओं के सादयिता (नाशक) व धनों के दाता प्रभु के लिये **तद् गाय**=उन स्तोत्रों का गायन करो। (२) **यत् गवे न**=(गमयति) अर्थात् सब अर्थों के ज्ञापक के **न**=समान **शाकिने**=सर्वशक्तिमान् प्रभु के लिये उस स्तोत्र का गायन करो **यत्**=जो **शम्**=शान्ति का देनेवाला हो। वस्तुतः प्रभु को सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् के रूप में सोचते हुए हम भी ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करने की प्रेरणा लेते हैं और इस प्रकार जीवन में शान्ति को पाते हैं।

भावार्थ—हम सोम का रक्षण करते हुए मिलकर घरों में प्रभु का गायन करें। यह गायन

हमें ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करने की प्रेरणा देगा और हमारे जीवन को शान्त बनायेगा।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु स्तवन से ज्ञानयुक्त शक्ति की प्राप्ति

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः। यत्सीमुप श्रवद्गिरः॥ २३॥

(१) **यत्**=जब **वसुः**=सबके बसानेवाले वे प्रभु **गिरः**=हमारी स्तुति वाणियों को **सीम्**=निश्चय से **उपश्रवद्**=सुनते हैं, तो **घा**=निश्चय से **गोमतः**=प्रशस्त ज्ञान की वाणियोंवाले **वाजस्य**=शक्ति के **दानम्**=दान को **न नियमते**=उपरत नहीं करते, अर्थात् हमें ज्ञान व बल प्राप्त कराते ही हैं। (२) प्रभु सबको बसानेवाले हैं। इस निवास के लिये ही वे हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराते हैं। जब हम प्रभु का स्तवन करते हैं तो हमें प्रभु ज्ञानयुक्त शक्ति देकर उत्तम निवासवाला करते ही हैं।

भावार्थ—प्रभु वसु हैं, हमारे निवास को उत्तम बनाते हैं। इसलिए ही वे हमें ज्ञान व शक्ति प्राप्त कराते हैं। सो हम सदा प्रभु स्तवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कुवित्स का गोमान् व्रज

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत्॥ २४॥

(१) **दस्युहा**=दास्यव (=राक्षसी) भावों का विनाश करनेवाले प्रभु **कुवित्सस्य**=(कुवित् स्यति) खूब ही शत्रुओं के विनष्ट करनेवाले उपासक के **हि**=निश्चय से **गोमन्तम्**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **व्रजम्**=इस शरीररूप गोष्ठ को **गमत्**=प्राप्त होते हैं। (२) यहाँ हम कुवित्सों को प्राप्त होकर वे प्रभु **नः**=हमारी इन इन्द्रियरूप गौओं को **शचीभिः**=अपने प्रज्ञानों व बलों से **अपवरत्**=वासना के आवरण से रहित करते हैं। हम भी वासनाओं को दूर करने के लिये यत्नशील हों। प्रभु हमारी इन्द्रियों को इन विषयों के आवरण से रहित करेंगे।

भावार्थ—प्रभु हमारे दास्यवभावों को विनष्ट करके हमारी इन्द्रियों को अज्ञान के आवरण से रहित करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु स्तवन

इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः। इन्द्र वत्सं न मातरः॥ २५॥

(१) हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! **इमाः**=ये **नः**=हमारी **गिरः**=स्तुति-वाणियाँ **उ**=निश्चय से **त्वा अभि**=आपका लक्ष्य करके **प्रणोनुवुः**=उच्चरित होती हैं। अर्थात् हम सदा आपका स्तवन करनेवाले बनते हैं। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! हमारी स्तुतिवाणियाँ इस प्रकार आपके प्रति उच्चरित होती हैं **न**=जैसे कि **मातरः**=मातृभूत गौवें **वत्सम्**=बछड़े का लक्ष्य करके हंभा रव को करती हैं। धेनुओं को जैसे बछड़े से प्रेम होता है, उसी प्रकार हमारी स्तुति-वाणियाँ आपके प्रति प्रेमवाली हों। अर्थात् हम आपकी स्तुति में आपका अनुभव करें।

भावार्थ—हम सदा प्रीतिपूर्वक उस 'शतक्रतु इन्द्र' नामक प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दूणाशं सख्यं तव (प्रभु की अटूट मैत्री)

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते। अश्वो अश्वायते भव॥ २६॥

(१) हे **वीर**=शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले प्रभो! **तव सख्यम्**=आपकी मित्रता **दूणाशम्**=नष्ट नहीं की जा सकती, अर्थात् अटूट है। सांसारिक मित्रताएँ स्वार्थवश विनष्ट हो जाती हैं, पर प्रभु की मित्रता कभी टूटनेवाला नहीं। (२) हे प्रभो! आप **गव्यते**=ज्ञानेन्द्रियों की कामनावाले पुरुष के लिये **गौः असि**=(गौः=गोदाता) ज्ञानेन्द्रिय बन जाते हैं, उसे ज्ञानेन्द्रियों के देनेवाले होते हैं तथा **अश्वायते**=कर्मेन्द्रियों की कामनावाले इस उपासक के लिये **अश्वः भव**=कर्मेन्द्रिय हो जाते हैं, इसे कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—वे प्रभु हमारे अजरामर सखा हैं। हमें प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियों व प्रशस्त कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

न स्तोतारं निदे करः

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे। न स्तोतारं निदे करः॥ २७॥

(१) हे प्रभो! **सः**=वे आप **हि**=निश्चय से **अन्धसः**=सोमरूप अन्न से सोम के द्वारा **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार से **मन्दस्व**=हमें आनन्दित करिये। जिससे हम **महे राधसे**=महान् ऐश्वर्य के लिये हों। सोमरक्षण द्वारा शक्तियों का विस्तार ही महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति का साधन बनता है। (२) हे प्रभो! आप **स्तोतारम्**=अपने इस स्तोता को **निदे**=निन्दनीय कर्मों के लिये **नकरः**=न करिये। अर्थात् यह स्तोता कभी निन्दा का पात्र न बने। आपकी प्रेरणा इसे सदा सत्कर्मों में व्यापृत रखे।

भावार्थ—हम सोमरक्षण द्वारा शक्तियों का विस्तार करते हुए महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करें। प्रभु का स्तवन हमें निन्दनीय कर्मों से दूर रखे।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोमरक्षण व प्रभु स्तवन

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः। वत्सं गावो न धेनवः॥ २८॥

(१) हे **गिर्वणः**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित इन स्तुति-वाणियों से सेवनीय प्रभो! **इमाः गिरः**=ये वाणियाँ **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **सुते सुते**=सोम का जब-जब सम्पादन होता है तब-तब, अर्थात् शरीर में सोम का रक्षण होने पर **नक्षन्ते**=व्याप्त करती हैं। सोमरक्षण के अभाव में हमारी वृत्ति असंयम व भोग की होकर प्रभु से दूर प्रकृति की ओर भागी हुई होती है। (२) हे प्रभो! हमारी यही कामना है कि **न**=जैसे **धेनवः गावः**=दोग्ध्री गौवें, नवसूतिका गौवें **वत्सम्**=बछड़े की ओर प्रेम से जाती हैं, इसी प्रकार हमारी स्तुति-वाणियाँ आपकी ओर आनेवाली हों। सदा प्रभु का स्तवन करते हुए ही वस्तुतः हम सोम का रक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—हम सदा ज्ञानपूर्वक प्रभु की स्तुति-वाणियों का उच्चारण करनेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'पुरू-तम' प्रभु

पुरूतमं पुरूणां स्तोतृणां विवाचि। वाजेभिर्वाजयताम्॥ २९॥

(१) **पुरूणाम्**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **स्तोतृणाम्**=इन स्तोताओं की स्तुति-वाणियाँ, हे प्रभो! आपको व्याप्त करती हैं, जो आप **पुरूतमम्**=(पुरूणां तमयितारं) बहुत भी शत्रुओं के ग्लापयिता-क्षीण करनेवाले हैं। आपका स्तवन स्तोता के काम-क्रोध आदि शत्रुओं का

विनाश करता है। (२) इसीलिए इन **वाजेभिः**=शक्तियों से **वाजयताम्**=अपने को शक्तिशाली बनाने की कामनावाले स्तोताओं की वाणियाँ **विवाचि**=विशिष्ट ज्ञान की वाणियों के उच्चारण के होने पर आपको ही स्तुत करती हैं। वस्तुतः आपका स्तवन ही इन विशिष्ट ज्ञान की वाणियों की प्राप्ति का साधन बनता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं को अधिक से अधिक क्षीण करनेवाले हैं। हम प्रभु का ही स्तवन करें और विशिष्ट ज्ञान की वाणियों को व बलों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वाहिष्ठः अन्तमः' स्तोमः

अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः। अस्मान्राये महे हिनु॥ ३०॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **ते स्तोमः**=आपका स्तोम, स्तुतिसमूह **अस्माकम्**=हमारा **वाहिष्ठः**=अधिक से अधिक आपके समीप प्राप्त करानेवाला **भूतु**=हो। यह स्तोम ही **अन्तमः**=हमारा अन्तिक-तम हो, हमारे लिये अधिक से अधिक समीप व प्रिय हो। हम सदा अतिशयेन प्रीतिपूर्वक आपका स्तवन करनेवाले बनें। (२) हे प्रभो! **अस्मान्**=हम स्तोताओं को आप **महे राये**=महान् ऐश्वर्य के लिये, भौतिक ऐश्वर्य से ऊपर उठकर अध्यात्म ऐश्वर्य के लिये **हिनु**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें, प्रभु स्तवन ही हमें अतिशयेन प्रिय हो। यह हमें अध्यात्म ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला बने।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृबुस्तक्षा** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

पणीनां बृबुः

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्। उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः॥ ३१॥

(१) **पणीनाम्**=पणियों का, एकदम सांसारिक लोभ आदि वृत्तियों का **बृबुः**=(हन्तो द०) उच्छेदन करनेवाला **पुरुः वर्षिष्ठे मूर्धन् अधि**=सर्वोच्च शिखर पर **अस्थात्**=स्थित होता है। अधिक से अधिक उन्नत स्थिति में पहुँचता है। लोभ आदि कृपणतापूर्ण वृत्तियों को समाप्त करके ही हम उन्नति के शिखर पर पहुँचते हैं। (२) **न**=जैसे **गाङ्ग्यः**=एक तीव्रगति (गच्छति इति गंगा) वाली नदी के तट पर होनेवाला **कक्षः**=तृण भी समुद्र तक पहुँचता है, इसी प्रकार यह लोभद्वेष्टा पुरुष प्रभु तक पहुँचता है और **उरुः**=विशाल बनता है। प्रभु को प्राप्त करके प्रभु जैसा ही हो जाता है।

भावार्थ—हम लोभ आदि कृपणतापूर्ण वृत्तियों का उच्छेदन करके उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर स्थित हों। तीव्र गतिवाले नदी के तट का तृण जैसे समुद्र को प्राप्त करता है, उसी प्रकार हम उस विशाल प्रभु को प्राप्त करके विशाल ही हो जाएँ।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृबुस्तक्षा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

भद्रा रातिः सहस्त्रिणी

यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्त्रिणी। सद्यो दानाय मंहते॥ ३२॥

(१) **यस्य**=जिसकी **सहस्त्रिणी रातिः**=सहस्र संख्यावाली व प्रसन्नतापूर्वक की गई (सहस्) दान क्रिया **वायोः इव**=वायु के समान **द्रवत्**=सर्वत्र गतिवाली होती है, वह दान क्रिया इसके लिये **भद्रा**=सदा कल्याणकारिणी व सुख देनेवाली होती है। (२) इस प्रकार दान के शुभ परिणामों को देखता हुआ यह व्यक्ति **सद्यः**=शीघ्र **दानाय**=दान के लिये **मंहते**=धनों को देता है। अथवा

दानाय (दाप् लवने)=शत्रुओं के उच्छेदन के लिये **मंहते**=दानवृत्तिवाला होता है।

भावार्थ—प्रसन्नतापूर्वक की गयी दान क्रियाएँ मनुष्य का कल्याण ही करती हैं, ये आसुरभावों का उच्छेदन भी करती हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृबुस्तक्षा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सहस्रदातमं-सहस्रासातमम्

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः। बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रासातमम्॥ ३३॥

(१) **नः**=हमारे **विश्वे**=सब **अर्यः**=स्तुतियों के प्रेरक (ईरयितारः) **कारवः**=कुशलता से कार्यों को करनेवाले लोग **सु**=अच्छी प्रकार **सदा**=सदा **तद्-आगृणन्ति**=उस प्रभु का ही स्तवन करते हैं। प्रभु स्तवन ही उन्हें कार्यदक्षता प्राप्त कराता है। (२) उस प्रभु को ये स्तुत करते हैं जो **बृबुम्**=सब अशुभ-वृत्तियों के उच्छेदक हैं। **सहस्रदातमम्**=अतिशयेन धनों के देनेवाले हैं। **सूरिम्**=ज्ञानी हैं और **सहस्रासातमम्**=हजारों ऐश्वर्यों के प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए हम प्रभु का ही स्तवन करें। प्रभु हमारे शत्रुओं के उच्छेदक हैं व शतशः धनों के देनेवाले हैं।

अगले सूक्त में भी शंयु ही इन्द्र का स्तवन करते हैं—

[४६] षट्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

प्रभु के आराधन के लाभ

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥ १॥

(१) **कारवः**=कुशलता से कार्यों को करनेवाले स्तोता लोग **वाजस्य सातौ**=शक्ति की प्राप्ति के निमित्त **त्वां इत् हि**=आपको ही **हवामहे**=पुकारते हैं। आप ही सब शक्तियों के देनेवाले हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **वृत्रेषु**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं के विनाश के निमित्त **सत्पतिम्**=सज्जनों के रक्षक **त्वाम्**=आपको पुकारते हैं तथा **अर्वतः**=अश्व सम्बन्धिनी **काष्ठासु**=(race ground) पलायन भूमियों में, **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **त्वाम्**=आपको पुकारते हैं। इन्द्रियाँ जब अपने मार्गों पर गति करती हैं तो नर प्रभु का ही स्मरण करते हैं, जिससे वे इन्द्रियाँ मार्गभ्रष्ट न हों।

भावार्थ—प्रभु का आराधन (१) हमें शक्ति देता है, (२) वासनाओं का विनाश करता है तथा (३) इन्द्रियों को मार्गभ्रष्ट होने से बचाता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

महः, गौ, अश्व, वाज

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥ २॥

(१) हे **चित्र**=चायनीय-पूजनीय **वज्रहस्त**=दुष्टों को दण्ड देने के लिये हाथ में वज्र लिये हुए **अद्रिवः**=शत्रुओं से न विदीर्ण किये जानेवाले प्रभो! **स्तवानः**=स्तुति किये जाते हुए **सः त्वम्**=वे आप **नः**=हमारे लिये **धृष्णुया**=शत्रुओं के धर्षण के हेतु से **महः**=तेजस्विता को **सं किर**=दीजिये। आप से तेजस्विता को प्राप्त करके हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का धर्षण करनेवाले

बनें। (२) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **रथ्यम्**=शरीररूपी रथ में उत्तमता से कार्य करनेवाली **गाम्**=ज्ञानेन्द्रियों व **अश्वम्**=कर्मेन्द्रियों को **संकिर**=दीजिये और हे प्रभो! **सत्रा**=सदा **जिग्युषे न**=जैसे एक विजयशील पुरुष के लिये उसी प्रकार हमें **वाजम्**=शक्ति को दीजिये। एक इन्द्रियों को जीतनेवाला पुरुष जैसे शक्ति-सम्पन्न बनता है, उसी प्रकार हम भी शक्ति को प्राप्त करें।

भावार्थ—स्तुति किये जाते हुए प्रभु हमारे लिये शक्ति को दें, जिससे कि हम शत्रुओं के विजेता बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

शक्ति प्राप्ति व संग्राम विजय

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे॥ ३॥

(१) **यः**=जो **सत्राहा**=महान् शत्रुओं के नाशक **विचर्षणिः**=हमारा विशेषरूप से ध्यान करनेवाले प्रभु हैं, **तं इन्द्रम्**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु को **वयम्**=हम **हूमहे**=पुकारते हैं। प्रभु का आराधन हमें शत्रुओं के विनाश के योग्य बनाता है। (२) हे **सहस्रमुष्क**=अनन्त वीर्यवाले **तुविनृम्ण**=महान् धनवाले **सत्पते**=सज्जनों के रक्षक प्रभो! आप **समत्सु**=संग्रामों में **नः**=हमारे **वृधे**=वर्धन के लिये **भवा**=होइये। आप से शक्ति की वृद्धि को प्राप्त करके ही तो हम संग्रामों में विजयी बनेंगे।

भावार्थ—हे प्रभो! आप ही हमें शक्ति प्राप्त कराते हैं और आप ही हमें संग्रामों में विजयी करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

तनूषु अप्सु सूर्ये

बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये॥ ४॥

(१) हे **ऋचीषम**=हे ऋचासम=स्तुति के समान, अर्थात् जितनी भी स्तुति की जाए प्रभु उससे अधिक ही हैं, ऐसे प्रभो! इस **घृषौ**=शत्रुओं का घर्षण करनेवाले **मीळ्हे**=संग्राम में **वृषभा इव**=शक्ति के सेचन की तरह (वृषभेण इव) **मन्युना**=ज्ञान से **जनान्**=शत्रुजनों को **बाधसे**=तू बाधित करता है। प्रभु हमें शक्ति देते हैं और ज्ञान देते हैं। इस शक्ति व ज्ञान के द्वारा प्रभु हमें संग्राम में विजयी बनाते हैं। (२) हे प्रभो! आप **महाधने**=इस संग्राम में **अस्माकम्**=हमारे **अविता बोधि**=रक्षक होइये। **तनूषु**=शक्तियों के विस्तार के निमित्त, **अप्सु**=रेतःकणों के रक्षण के निमित्त तथा **सूर्ये**=ज्ञान के सूर्य के उदय के निमित्त हमारे रक्षक होइये। आप से रक्षित हुए-हुए हम शक्तियों का विस्तार करें, रेतःकणों का रक्षण करें तथा ज्ञानसूर्य को मस्तिष्क रूप गगन में उदित करें।

भावार्थ—यहाँ जीवन संग्राम में प्रभु ही हमारे शत्रुओं को पीड़ित करते हैं। प्रभु से रक्षित हुए-हुए हम 'शक्ति विस्तार, रेतःकणों के रक्षण व ज्ञानसूर्योदय' को करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'ज्येष्ठ-ओजिष्ठ-पपुरि-शवस्'

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥

(१) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **नः**=हमारे लिये **ज्येष्ठम्**=प्रशस्यतम **ओजिष्ठम्**=अत्यन्त ओजस्वी **पपुरि**=पालक व पूरक **श्रवः**=ज्ञान को **आभर**=प्राप्त कराइये। (२) हे **चित्र**=चायनीय-पूजनीय, **वज्रहस्त**=वज्र हाथ में लिये हुए प्रभो! दुष्टों को दण्ड देनेवाले **सुशिप्र**=उत्तम हनु व नासिकावाले प्रभो! उस ज्ञान को हमें प्राप्त कराइये **येन**=जिससे कि **इमे उभे**=इन दोनों **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **आ प्राः**=आप पूरित करते हैं। यहाँ 'सुशिप्र' सम्बोधन इस भाव को व्यक्त कर रहा है कि हम खूब चबाकर खायें (हनु) और प्राणायाम करें (नासिका) जिससे शरीर के रोगों व मन के दोषों से दूर रहते हुए हम उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त कर सकें। प्रभु सुशिप्र हैं, हम भी सुशिप्र बनें और 'ज्येष्ठ ओजिष्ठ पपुरि श्रव' को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु हमें वह प्रशस्त ज्ञान दें जिससे कि वे सब का पूरण करते हैं, सब की न्यूनताओं को दूर करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**ब्राह्मीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अमित्रान् सुषहान् कृधि

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥ ६ ॥

(१) हे **देवेषु राजन्**=सब सूर्य आदि देवों में दीप्त होनेवाले, अर्थात् सूर्य आदि को दीप्त करनेवाले प्रभो! **उग्रम्**=तेजस्वी **चर्षणीसहम्**=शत्रुगणों का अभिभव करनेवाले **त्वाम्**=आपको **अवसे**=रक्षण के लिये **हूमहे**=पुकारते हैं। आपकी शक्ति व दीप्ति से हमारा रक्षण होना है। (२) हे **वसो**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले प्रभो! **नः**=हमारे **विश्वा**=सब **पिब्दना**=(पेष्टुमर्हाणि शत्रुसैन्यानि द०) पीस देने योग्य शत्रु-सैन्यों को **सुविथुरा कृधि**=अच्छी प्रकार व्यथित व बाधित करिये। **अमित्रान्**=हमारे शत्रुभूत जनों को **सुषहान्**=सुखेन अभिभवितुं शक्य, सुगमता से जीते जाने योग्य करिये। हम शत्रुओं को सुगमता से जीत सकें।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करते हैं। प्रभु हमारे लिये शत्रुओं को पराजित करनेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ओज-नृम्ण-द्युम्न-पौंस्य

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जो **ओजः**=बल **च**=और **नृम्णम्**=धन **नाहुषीषु**=मानव **कृष्टिषु**=प्रजाओं में होना चाहिए उसे **आभर**=हमारे लिये प्राप्त कराइये। (२) **यद्वा**=और जो **पञ्च क्षितीनाम्**='अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय' इन पाँचों भूमियों का **द्युम्नम्**=आन्तर ऐश्वर्य है, उसे हमारे लिये प्राप्त कराइये और **सत्रा**=सत्य **विश्वानि**=सब

पौंस्यानि=बलों को हमें प्राप्त कराइये।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमें 'ओज, नृम्ण, द्युम्न व पौंस्य' प्राप्त हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

'तृक्षु-द्रुह्यु-पूरु' का बल

यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम्।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे॥ ८॥

(१) हे **मघवन्**=सर्वैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यद्वा**=जो कुछ **वृष्ण्यम्**=बल **तृक्षौ**=(तृक्ष् to go) गतिशील पुरुष में हैं, **तत्**=उस बल को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **नृषाह्ये**=(नृभिः सोढव्ये युद्धे प्रवृते सा०) नर पुरुषों से सोढव्य संग्राम के होने पर **संहिरीहि**=सम्यक् दीजिये। इस गतिशील पुरुष के बल को प्राप्त करके हम सदा संग्राम में आगे बढ़ें, भाग न खड़े हों। (२) **द्रुह्यौ**=वासनाओं के प्रति विद्रोह (revolt) करनेवाले मनुष्य में जो बल है, उसे हमारे लिये **अमित्रान् तुर्वणे**=इन शत्रुभूत वासनाओं के संहार के निमित्त दीजिये। इस द्रुह्यु के बल से युक्त होकर हम वासनाओं का संहार कर सकें। (३) **यत् कत् च**=जो कुछ बल **पूरौ**=अपना पालन व पूरण करनेवाले में है, उसे हमारे लिये **पृत्सु**=इन संग्रामों के निमित्त दीजिये। इस पूरु के बल को प्राप्त करके हम जीवन-संग्राम में सदा विजयी हों।

भावार्थ—हमें गतिशील, वासनाओं के प्रति विद्रोह की भावनावाले व अपना पालन व पूरण करनेवाले पुरुष का बल प्राप्त हो, जिससे कि हम सदा संग्राम में विजयी हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

उत्तम गृह

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **मघवद्भ्यः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों के लिये **शरणम्**=गृह को **यच्छ**=दीजिये। जो घर **त्रिधातु**=तीनों बालक, युवक व वृद्धों का सम्यक् धारण करनेवाला हो। **त्रिवरूथम्**=शीत, आतप व वर्षा तीनों का निवारण करनेवाला हो। **स्वस्तिमत्**=कल्याणकर हो। **छर्दिः**=उत्तम छत से युक्त हो (छर्दिष्मत्)। (२) **च**=और इस प्रकार के गृहों को प्राप्त कराके आप **मह्यम्**=मेरे लिये **एभ्यः**=इन गृहों से **दिद्युम्**=खण्डनकारिणी (दो अवखण्डने) विद्युत् को **यावया**=पृथक् करिये। इन घरों पर विद्युत् पतन का भय न हो।

भावार्थ—हम उत्तम गृहों को बनाकर स्वस्थ मन से उनमें निर्भयतापूर्वक रहते हुए उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़नेवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तनूपाः, अन्तमः

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव॥ १०॥

(१) उपरले मन्त्र के अनुसार उत्तम घरों में रहते हुए हम वे बनें **ये**=जो **गव्यता मनसा**=(गाः=आगमन इच्छता) ज्ञान की वाणियों को अपनाने की कामनावाले मन से **शत्रुं**

आदभुः=कामरूप शत्रु को हिंसित करते हैं। और **धृष्णुया**=शत्रु-धर्षण शक्ति के द्वारा **अभिप्रघ्नन्ति**=इन वासनारूप शत्रुओं का समन्तात् विनाश करते हैं। (२) **अध**=अब, हे मघवन् **इन्द्र**=सर्वैश्वर्यशालिन् शत्रुविद्रावक प्रभो! आप **स्मा**=निश्चय से **नः**=हमारे होइये, हम आपकी ओर झुकाववाले हों। हे **गिर्वणः**=ज्ञान की वाणियों से सम्भजनीय प्रभो! आप हमारे **तनूपाः**=शरीरों के रक्षक **अन्तमः**=अन्तिकतम मित्र **भव**=होइये।

भावार्थ—हम ज्ञान की वाणियों की कामनावाले होते हुए शत्रुओं का धर्षण करें। प्रभु के मित्र बनें, प्रभु हमारे रक्षक अन्तिकतम मित्र हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्रभु स्मरण व विजय

अध॑ स्मा नो वृधे भ॑वेन्द्र॑ ना॒यम॑वा यु॒धि।
यद॒न्तरि॑क्षे प॒तय॑न्ति प॒र्णिनो॑ दि॒द्यव॑स्ति॒ग्ममू॑र्धानः ॥ ११ ॥

(१) **अध**=अब **स्मा**=निश्चय से **नः**=हमारे **वृधे**=वर्धन के लिये **भव**=होइये। हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **युधि**=युद्ध में **नायम्**=हमारे अग्रणी नेता को **अवा**=रक्षण करिये। (२) उस युद्ध में रक्षण करिये, **यत्**=जब कि **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में, चारों ओर के वातावरण में **पर्णिनः**=अग्रभाग में जिनके पंख लगे हुए हैं ऐसे, **तिग्ममूर्धानः**=बड़े तेज शिखरोंवाले **दिद्यवः**=घातक बाण **पतयन्ति**=निरन्तर गिर रहे हैं। इन युद्धों में प्रभु स्मरण ही शक्ति देता है।

भावार्थ—युद्धों में, प्रभु स्मरण हमारे लिये रक्षक हो। प्रभु स्मरणपूर्वक युद्ध करते हुए हम विजयी बनें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

पितृलोक की प्राप्ति

यत्र॒ शूरा॑सस्त॒न्वो॑ वित॒न्व॒ते प्रि॒या शर्म॑ पितॄ॒णाम्।
अध॑ स्मा यच्छ त॒न्वे॒३॒॑ तने॑ च छ॒र्दिर॒चित्तं॑ याव॒य द्वेषः॑ ॥ १२ ॥

(१) **यत्र**=जहाँ **शूरासः**=शूर-वीर लोग **तन्वः**=अपने शरीरों को **वितन्वते**=(वितन=to give) देश हित के लिये दे डालते हैं तो ये **पितॄणाम्**=पितरों के **प्रियाशर्म**=प्रिय गृहों को (=लोकों को) प्राप्त होते हैं। अर्थात् युद्ध में प्राणत्याग उत्कृष्ट लोकों की प्राप्ति का कारण बनता है। (२) **अध**=अब **स्मा**=निश्चय से **तन्वे**=हमारे शरीरों के लिये **तने च**=और सन्तानों के लिये **छर्दिः**=रक्षक गृह को **यच्छ**=कीजिये। हम शत्रु विजय करके सुरक्षित गृहों में निवास करनेवाले हों। हे प्रभो! आप **अचित्तं द्वेषः**=मूर्खतापूर्ण द्वेष को **यावय**=हमारे से पृथक् करिये। हम व्यर्थ में द्वेष के कारण युद्धों में प्रवृत्त न हो जाएँ।

भावार्थ—हम मूर्खता से द्वेषवश युद्धों में प्रवृत्त न हो जाएँ। युद्ध आ ही जाये, तो जीवन के त्याग के लिये तैयार हों। यही उत्तम लोकों की प्राप्ति का साधन है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

श्येन-श्रवस्यन्

यदि॑न्द्र॒ सर्गे॒ अर्व॑तश्चो॒दया॑से म॒हाध॒ने।
अ॒स॒म॒ने अध्व॑नि वृ॒जि॒ने प॒थि श्ये॒नाँ इ॑व श्रव॒स्य॒तः ॥ १३ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जब **असमने**=(Unequal) विषम **अध्वनि**=मार्ग में, **वृजिने**=कुटिल **पथि**=पथ में भटकते हुए इन **अर्वतः**=इन्द्रियाश्वों को **सर्गे**=(onset, advance of troop) सैन्यों के आक्रमणवाले **महाधने**=संग्राम में **चोदयासे**=प्रेरित करते हैं। बजाय इसके कि ये इन्द्रियाश्व कुटिल मार्गों में भटकते रहें, प्रभु कृपा से ये अध्यात्म संग्राम में प्रवृत्त हों। (२) हे प्रभो! इस प्रकार हमारी इन इन्द्रियों को आप **श्येनान् इव**=शीघ्र शंसनीय गतिवाली बनाइये और इसी प्रकार **श्रवस्यतः**=ज्ञान की कामनावाली करिये। कर्मेन्द्रियाँ कर्मों में शीघ्रता से व्याप्त हों, तो ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त रहें।

भावार्थ—इन्द्रियाँ कुटिल पथ में न भटककर अध्यात्म संग्राम में प्रवृत्त होकर काम आदि शत्रुओं के आक्रमण से अपने को बचाएँ। शुभ कर्मों व ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रः प्रगाथो वा** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

आवृत्त चक्षुष्कता

सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि॥ १४॥

(१) **प्रवणे**=निम्न प्रदेश की ओर **यतः**=जाते हुए **सिन्धून् इव**=नदियों की तरह निम्न प्रकृति के भोगों के मार्ग की ओर **आशुया**=शीघ्रता से जाते हुए इन्द्रियाश्वों को **यदि**=यदि **क्लोशं अनु**=भय का लक्ष्य करके **स्वनि**=आवाज के होने पर, हे प्रभो! आप उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराते हैं तो **ये**=जो इन्द्रियाश्व **आवर्वृतति**=सर्वथा विषयों से लौट आते हैं। (२) ये इन्द्रियाश्व, **न**=जैसे **आमिषि**=मांस में **वयः**=पक्षी फिर-फिर लौट आते हैं, उसी प्रकार **गृभीताः**=ग्रहण किये हुए, वशीभूत हुए-हुए **बाह्वोः**=बाहुओं में (बाह्यप्रयत्ने) अभ्युदय व निःश्रेयस के लिये किये जानेवाले प्रयत्नों में तथा **गवि**=ज्ञान की वाणियों में आवृत्त होते हैं, अर्थात् इन्हीं में निरन्तर लगे रहते हैं। इन्हीं में लगे रहना ही निर्भयता का मार्ग है।

भावार्थ—सामान्यतः इन्द्रियाँ निम्न मार्ग की ओर जाती हैं। उधर भय होने पर ये लौटती हैं और अब उत्तम ऐहिक व पारलौकिक प्रयत्नों में तथा ज्ञान की वाणियों में प्रवृत्त होते हैं।

आवृत्त चक्षु बनकर यह विषयों से ऊपर उठ जाता है और सोमपान करनेवाला बनता है ('गिरति' इति गर्गः) सो गर्ग कहलाता है। सोमरक्षण से अपने में शक्ति को भरनेवाला यह भरद्वाज है। यह कहता है—

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'स्वादु, मधुमान्, तीव्र, रसवान्' सोम

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु॥ १॥

(१) **किल**=निश्चय से **अयम्**=यह सोम **स्वादुः**=जीवन को स्वादवाला बनाता है। **उत**=और **अयम्**=यह **मधुमान्**=वाणी में माधुर्य का संचार करनेवाला है। **किल**=निश्चय से **अयम्**=यह **तीव्रः**=रोगकृमियों के संहार के लिये बड़ा उग्र है। **उत**=और नीरोगता के द्वारा **अयं रसवान्**=यह जीवन को रसवाला बनाता है। (२) **उत उ**=और निश्चय से **नु**=अब **अस्य पपिवांसम्**=इसका

खूब पान करनेवाले इस **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **कश्चन**=कोई भी **आहवेषु**=युद्धों में **न सहते**=नहीं पराभूत कर पाता है। न इसे रोग और नां ही वासनाएँ दबा पाती हैं।

भावार्थ—सोम शरीर में पिया जाने पर रोगों को नष्ट करके जीवन को मधुर बनाता है, वासनाओं को नष्ट करके जीवन को रसवान् बनाता है। सोमरक्षक अपराजित होता है।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

निन्यानवें आसुरपुरियों का विध्वंस

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्योऽहन्॥ २॥

(१) **अयम्**=यह सोम **स्वादुः**=आस्वादित करने योग्य है। **इह**=यहाँ **मदिष्ठः आस**=अतिशयेन मादयिता होता है। **यस्य**=जिस सोम के पान से **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **वृत्रहत्ये**=वासनारूप वृत्र के विनाश में **ममाद**=उल्लासमय हुआ। (२) **यः**=जो सोम **शम्बरस्य**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाली ईर्ष्या के **पुरूणि**=बहुत अधिक **च्यौत्ना**=बलों को **हन्**=नष्ट करता है **च**=और **नवतिं नव**=निन्यानवे **देह्यः**=उपचित (=बढ़ी हुई) वृद्धि को प्राप्त हुई-हुई आसुरपुरियों को (हत्=) विनष्ट करता है। सोम के रक्षण के होने पर ईर्ष्या व अन्य आसुरभाव विनष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—सोम सुरक्षित होकर (क) जीवन को मधुर बनाता है, (ख) वासना विनाश द्वारा जीवन को उल्लासमय करता है, (ग) ईर्ष्या के बल को समाप्त कर देता है, (घ) आसुरभावों को विनष्ट करता है।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मनीषाम् ओषधि

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे॥ ३॥

(१) **पीतः**=पिया हुआ, शरीर में ही सुरक्षित किया हुआ **अयम्**=यह सोम **मे वाचम्**=मेरे लिये ज्ञान की वाणियों को **उदियर्ति**=उद्गत करता है। **अयम्**=यह **उशती**=कान्त **मनीषाम्**=बुद्धि को (उद्य् अजीगः=(उद्गार यति) प्रकाशित करता है। (२) **अयम्**=यह **धीरः**=बुद्धि को प्रेरित करनेवाला सोम (धियं ईरयति) **षट्**=छः **उर्वीः**='द्युलोक, पृथिवीलोक, दिन-रात व जल ओषधि' रूप उर्वियों को **अमिमीत**=सम्यक् जाननेवाला होता है। उन उर्वियों को **याभ्यः**=जिनसे कि **कच्चन भुवनं आरे न**=कोई भी लोक व प्राणी दूर नहीं होता। सब प्राणियों के जीवन का आधार ये छः उर्वियाँ ही हैं। सोमरक्षक इन्हें सम्यक् जाननेवाला होता व अपने जीवन में इनका ठीक निर्माण करता है। मस्तिष्क ही द्युलोक है, पृथिवी शरीर है। इन्हें तो वह बनाते ही हैं। एक-एक दिन को वह ठीक बिताता है व दीर्घजीवनवाला होता है और जल-ओषधियों का समुचित प्रयोग करता है।

भावार्थ—सुरक्षित सोम (१) ज्ञान की वाणियों को उदित करता है, (२) बुद्धि को प्रकाशित करता है, (३) हमारे जीवन में 'द्युलोक, पृथिवीलोक, दिन-रात व जल ओषधियों' का ठीक स्थान में रखता है।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वह महान् सोम' प्रभु

अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम्॥ ४॥

(१) **अयम्**=यह प्रभु ही सोम है **सः यः**=वह जो **पृथिव्याः**=पृथिवी के **वरिमाणम्**=विस्तार को **अकृणोत्**=करता है। **अयं सः**=यह वह प्रभु ही **दिवः**=द्युलोक के **वर्ष्माणम्**=दृढत्व को, सर्वलोक बन्धन सामर्थ्य को **अकृणोत्**=करता है। (२) **अयम्**=यह **सोमः**=शान्त प्रभु ही **तिसृषु प्रवत्सु**=तीनों उत्कृष्ट 'ओषधि, जल व गौवों' में **पीयूषम्**=अमृतत्व को **दाधार**=धारण करता है। प्रभु ही **उरु अन्तरिक्षम्**=विशाल अन्तरिक्ष को धारण करता है।

भावार्थ—प्रभु ही पृथिवी को विशाल बनाते हैं, द्युलोक को सर्वलोक बन्धन के सामर्थ्यवाला करते हैं। प्रभु ही 'ओषधि, जल व गौवों' में अमृतत्व को धारण करते हैं। विशाल अन्तरिक्ष को धारण करते हैं।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृषभः मरुत्वान्

अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान्॥ ५॥

(१) **अयम्**=यह सोम **शुक्रसद्मनाम्**=शुक्र, अर्थात् निर्मल (शुच्) अन्तरिक्ष है सदन (गृह) जिनका, उन उषाकालों के **अनीके**=प्रमुख भाग में **चित्रदृशीकम्**=अद्भुत दर्शनवाली **अर्णः**=कर्मों में प्रेरक ज्ञान-ज्योति को **विदत्**=प्राप्त कराता है। सोमरक्षणवाला पुरुष उषाकालों में स्वाध्याय के द्वारा अपनी ज्ञान-ज्योति को बढ़ानेवाला होता है। (२) **अयम्**=यह सोम **महान्**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। **महता स्कम्भनेन**=महान् आधार के द्वारा यह सोम **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **उद् अस्तभ्नात्**=उत्कृष्ट स्थिति में थामता है। सोम ही मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है, यही सुरक्षित हुआ-हुआ बुद्धि को तीव्र बनाता है। साथ ही यह सोम **वृषभः**=हमारे में शक्ति का सेचन करता है और **मरुत्वान्**=यह सोम प्रशस्त प्राणोंवाला है। प्राणशक्ति को यह सोम ही बढ़ाता है।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित सोम (१) बुद्धि को तीव्र बनाकर ज्ञान-ज्योति को बढ़ाता है, (२) शरीर का सेचन करता है, (३) प्राणशक्ति का विकास करता है।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'रयिस्थानः' सोमः

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **वृत्रहा**=वासना को विनष्ट करनेवाले, **शूर**=वीर उपासक **वसूनाम्**=इन वसुओं के **समरे**=युद्ध में, अर्थात् जिस युद्ध में विजयी बनकर हम सब वसुओं को प्राप्त करते हैं, **धृषत्**=शत्रुओं का धर्षण करके **कलशे**=इस शरीर कलश में **सोमं पिब**=सोम को पीनेवाला बन। (२) माध्यन्दिन **सवने**=जीवन के माध्यन्दिन सवन में, अर्थात् ५५ से ६८ वर्ष तक भी **आवृषस्व**=सोम का शरीर में समन्तात् सेचन करनेवाला बन। हे सोम!

रयिस्थानः=ऐश्वर्यों का आधारभूत स्थान है। **अस्मासु रयिं धेहि**=हमारे में रयि का धारण करनेवाला बन।

भावार्थ—वासनाओं का धर्षण करके हम सोम का रक्षण करें। सुरक्षित सोम हमें सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करायेगा।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

(भवा सुपारः, अतिपारयः नः) सुनीतिः-वामनीतिः

इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः॥ ७॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **पुरः एता इव**=आगे चलनेवाले मार्गदर्शक की तरह **प्रपश्य**=देखिये। जैसे नेता अनुयायियों का ध्यान करता है, उसी प्रकार आप हमारा ध्यान करिये। **नः**=हमें **वस्यः**=श्रेष्ठ धन की **अच्छ**=ओर **प्रतरम्**=खूब ही **प्रनय**=ले चलिये। आपके अनुग्रह से हम उत्तम धनों को प्राप्त होनेवाले हों। (२) आप **सुपारः भव**=अच्छी प्रकार भवसागर से हमें पार करनेवाले होइये। **नः**=हमें **अतिपारयः**=शत्रुओं को लाँघकर पार होनेवाला करिये, हम शत्रुओं के जाल में न फँसें। आप **सुनीतिः भव**=हमें उत्तमता से ले चलनेवाले होइये **उत**=और **वामनीतिः**=(श्रेष्ठ प्रापणः) श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्राप्त करानेवाले होइये। आपके अनुग्रह से उत्तम व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर हम उत्तम बनें।

भावार्थ—प्रभु हमारे प्रणेता हों, उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करायें। कष्टों व वासनाओं से पार करें। उत्तम मार्ग से ले चलें और श्रेष्ठ पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त करायें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्ववर्त् ज्योतिः-अभयम्

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता॥ ८॥

(१) हे प्रभो! **विद्वान्**=सर्वज्ञ होते हुए आप **नः**=हमें **उरुं लोकम्**=विशाल लोक को **अनुनेषि**=अनुकूलता से ले चलते हैं। कृपण वृत्ति से हमें ऊपर उठाकर आप हमें उदारता के मार्ग पर ले चलते हैं। इस मार्ग से ले चलते हुए आप **स्वर्वत् ज्योतिः**=सुखप्रद ज्ञान के प्रकाश को तथा **अभयम्**=निर्भयता को व **स्वस्ति**=कल्याण को प्राप्त कराते हैं (अनुनेषि)। (२) हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **स्थविरस्य**=अत्यन्त स्थूल (प्रबल) **ते**=आपकी **बाहू**=भुजाएँ **ऋष्वा**=दर्शनीय हैं। इन **बृहन्ता**=वृद्धि की कारणभूत बाहुओं को **शरणा**=रक्षकरूप से **उपस्थेयाम**=सेवन करें, इन भुजाओं को हम अपनी शरण बनाएँ। इन भुजाओं से रक्षित हुए-हुए हम कभी भी शत्रुओं से आक्रान्त न हों।

भावार्थ—प्रभु हमें विशाल लोक को प्राप्त करायें। हमें सुखप्रद ज्ञान, निर्भयता व कल्याण प्राप्त हो। हम प्रभु की भुजाओं को रक्षक रूप से प्राप्त करें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

बन्धुर रथ, वहिष्ठ अश्व

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः॥ ९॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमें **वरिष्ठे**=उरुतम, विशाल व **वन्धुरे**=सुन्दर (beautiful) शरीर-रथ में **धा**=धारण करिये। हमारा शरीर-रथ विशाल व सुन्दर हो। हे **शतावन्**=सैंकड़ों धनों के धारण करनेवाले प्रभो! **वहिष्ठयोः**=उत्तमता से वहन करनेवाले **अश्वयोः**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्वों में **आ (धाः)**=स्थापित करिये। हमारे ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्व उत्तम हों। (२) **इषां वर्षिणां इषम्**=अन्नों में सर्वोत्तम अन्न को **आविक्षि**=प्राप्त कराइये। हम उत्कृष्ट सात्त्विक भोजन को करें। हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **नः**=हमारे **रायः**=ऐश्वर्यों को **अर्यः**=स्वामी होते हुए आप **मा तारीत्**=नष्ट न करें। हमें आपकी कृपा से आवश्यक धन प्राप्त हों। आप ही हमारे स्वामी हैं, आपने ही तो हमें धनों को प्राप्त कराना है।

भावार्थ—हमारा शरीर-रथ व इन्द्रियाश्व उत्तम हों। हमें उत्तम अन्न व धन प्राप्त हो।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तीक्ष्ण बुद्धि

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम्।
यत्किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम्॥ १० ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **मह्यं मृड**=मेरे लिये सुख को करनेवाले होइये। मेरे लिये **जीवातुम्**=जीवनौषध की **इच्छ**=इच्छा करिये। आपके अनुग्रह से मेरा जीवन दीर्घ व नीरोग बने। मेरी **धियम्**=बुद्धि को, **अयसः धारां न**=लोह के बने अस्त्रों की धारा के समान **चोदय**=प्रेरित करिये, तीक्ष्ण बनाइये। (२) **अहम्**=मैं **त्वायुः**=आपकी प्राप्ति की कामनावाला **यत् किञ्च**=जो कुछ **वदामि**=कहता हूँ, **तद् इदम्**=उस मेरी इस प्रार्थनाओं को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन करिये। **मा**=मुझे **देववन्तं कृधि**=उत्तम दिव्य गुणोंवाला बनाइये। मैं उत्तम बुद्धि को प्राप्त करके उत्तम मार्ग पर चलता हुआ दिव्य गुणोंवाला बनूँ।

भावार्थ—प्रभु मेरे लिये सुख को दें। मुझे जीवनौषध प्राप्त कराके नीरोग जीवनवाला बनाये। मेरी बुद्धि को तीव्र करें। मुझे दिव्य गुणोंवाला बनाएँ।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

त्राता-अविता

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः॥ ११ ॥

(१) **त्रातारम्**=बाह्य शत्रुओं व रोगों से हमारा रक्षण करनेवाले **इन्द्रम्**=शत्रुविद्रावक प्रभु को **ह्वयामि**=पुकारता हूँ। **अवितारम्**=काम-क्रोध-लोभ आदि अध्यात्म शत्रुओं से बचानेवाले **इन्द्रम्**=उन सब असुरों के संहारक प्रभु को पुकारता हूँ उन प्रभु को पुकारता हूँ जो **हवेहवे सुहवम्**=प्रत्येक पुकार के अवसर पर सुख से पुकारने योग्य हैं। **शूरम्**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले **इन्द्रम्**=प्रभु को पुकारता हूँ। (२) **शक्रम्**=सम्पूर्ण संसार को धारण करने में शक्त **पुरुहूतम्**=बहुतों से पुकारे जाने योग्य **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को पुकारता हूँ। यह **मघवा**=परमैश्वर्यशाली **इन्द्रः**=शत्रुविद्रावक प्रभु **नः**=हमारे लिये **स्वस्ति**=कल्याण का **धातु**=धारण करें।

भावार्थ—प्रभु हमें अन्तः व बाह्य शत्रुओं से बचाते हैं। वे प्रभु हमें कल्याण में धारण करें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

निर्द्वेषता-निर्भयता

इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒ अवो॑भिः सुमृळी॒को भ॑वतु वि॒श्ववे॑दाः।
बाध॑तां॒ द्वेषो॒ अभ॑यं कृणोतु सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम॥ १२॥

(१) **इन्द्रः**=वे शत्रुविद्रावक प्रभु **सुत्रामा**=उत्तमता से हमारा रक्षण करनेवाले हैं। **स्ववान्**=वे सब प्रशस्त धनोंवाले हैं। वे **विश्ववेदाः**=सर्वज्ञ व सर्वधन (वेदस्=विद् लाभे) प्रभु **अवोभिः**=रक्षणों के द्वारा **सुमृडीकः भवतुः**=उत्तम सुखों के देनेवाले हों। (२) वे प्रभु **द्वेषः बाधता**=द्वेष का हमारे से बाधन करें। **अभयं कृणोतु**=हमें निर्भय बनाएँ। **सुवीर्यस्य पतयः स्याम**=हम उत्तम शक्ति के स्वामी व रक्षक बनें।

भावार्थ—प्रभु हमारा रक्षण करें। हमें कल्याण प्राप्त करायें। निर्द्वेष व निर्भय बनायें। उत्तम शक्ति सम्पन्न करें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुमति-सौमनस

तस्य॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म।
स सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒ इन्द्रो॑ अ॒स्मे आ॒राच्चि॒द् द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु॥ १३॥

(१) **वयम्**=हम **यज्ञियस्य तस्य**=पूज्य उस प्रभु की **सुमतौ**=कल्याणीमति में तथा **भद्रे सौमनसे**=कल्याणकर शुभ मानस स्थिति में **स्याम**=हों (प्रभु के अनुग्रह से हमें शुभ बुद्धि व निर्मल मन प्राप्त हो। (२) **सः**=वह **सुत्रामा**=हमारा उत्तम त्राण करनेवाला, **स्ववान्**=प्रशस्त धनोंवाला **इन्द्रः**=शत्रु विद्रावक प्रभु **अस्मे**=हमारे से **द्वेषः**=द्वेष को **आरात् चित्**=सुदूर ही **सनुतः**=अन्तर्हित प्रदेश में **युयोतु**=पृथक् करे। प्रभु द्वेष को हमारे से इतना दूर करें कि यह द्वेष हमें दिखे ही नहीं।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से 'सुमति व सौमनस' को प्राप्त करके हम द्वेष से सदा दूर रहें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उरू राधः-सवना पुरूणि

अव॒ त्वे इ॑न्द्र प्र॒वतो॒ नोर्मिर्गिरो॒ ब्रह्मा॑णि नि॒युतो॑ धवन्ते।
उ॒रू न राधः॒ सव॑ना पु॒रूण्य॒पो गा व॑ज्रिन्युव॒से समिन्दू॑न्॥ १४॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **नियुतः**=(a praiser) स्तोता की **गिरः**=उच्चारण की गई **ब्रह्माणि**=स्तुति वाणियाँ **त्वे अवधवन्ते**=आपकी ओर इस प्रकार शीघ्रता से प्राप्त होती हैं **न**=जैसे कि **ऊर्मिः**=जल संघात **प्रवतः**=निम्न देशों की ओर। (२) इन स्तुति वाणियों के होने पर, हे **वज्रिन्**=वज्रहस्त प्रभो! आप **उरू राधः न**=विशाल ऐश्वर्य की तरह **पुरूणि सवना**=पालक व पूरक यज्ञों को, **अपः**=कर्मों को **गाः**=ज्ञान की वाणियों को तथा **इन्दून्**=सोमकणों को **संयुवसे**=हमारे साथ सम्यक् जोड़ते हैं।

भावार्थ—उपासकों के लिये प्रभु ऐश्वर्यों को व यज्ञों को (यज्ञ सिद्धि के लिये ऐश्वर्यों को), कर्मों व ज्ञान की वाणियों को (ज्ञानपूर्वक किये जानेवाले कर्मों को) तथा शक्ति के प्रापण के लिये सोमकणों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

स्तवन-प्रीणत-यजन

क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत्।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ १५ ॥

(१) **कः**=कोई एक विरल ही **ईम्**=निश्चय से **स्तवत्**=प्रभु स्तवन करता है। **कः**=कोई एक विरल पुरुष ही उस प्रभु को **पृणात्**=प्रीणित करने में तत्पर होता है। **कः**=कौन **यजाते**=प्रभु का उपासन करता है कि **उग्रं इत्**=तेजस्वी को भी **मघवा**=वे ऐश्वर्यशाली प्रभु ही **विश्वहा**=सदा **अवेत्**=इन शक्तियों को प्राप्त कराते हैं (विद् लाभे)। शक्ति के मद में प्रायः मनुष्य शक्ति को अपना ही समझता है और प्रभु को भूल जाता है। (२) **पादौ प्रहरन्**=चलता हुआ पुरुष, पृथ्वी पर पाँवों को पटकता हुआ पुरुष **इव**=जैसे **अन्यं अन्यं पूर्वं अपरम्**=एक को आगे और एक को पीछे, अगले को पीछे और पिछले को आगे **कृणोति**=करता है, इसी प्रकार वे प्रभु **शचीभिः**=अपनी शक्तियों व प्रज्ञानों से कर्मानुसार स्वामी को भृत्य व मृत्य को स्वामी बनाते रहते हैं।

भावार्थ—हमें प्रभु का ही स्तवन, प्रीणत व यजन करना चाहिए। प्रभु ही कर्मानुसार हमें ऊपर-नीचे विविध स्थितियों में प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

एधमानद्विट्

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६ ॥

(१) वे प्रभु **वीरः शृण्वे**=शत्रुओं को विशेषरूप से कम्पित करनेवाले सुने जाते हैं। **उग्रं उग्रम्**=प्रत्येक उग्र (प्रबल) शत्रु के **दमायन्**=बाधन को चाहते हुए, **अन्यं अन्यम्**=आज एक को और कल दूसरे को **अतिनेनीयमानः**=अतिशयेन आगे और आगे ले चल रहे हैं। प्रभु ही हमारे शत्रुओं का बाधन करते हैं और हमें ऐश्वर्य की स्थिति में प्राप्त कराते हैं। (२) **एधमानद्विट्**=धन के दृष्टिकोण से बढ़े हुए अयज्ञशील पुरुष को ये प्रभु प्रीति का पात्र नहीं बनाते, यह अयज्ञशील धनी प्रभु का प्रिय नहीं होता। **उभयस्य राजा**=प्रभु ऐहिक व आमुष्मिक दोनों धनों के राजा हैं। **इन्द्रः**=ये परमैश्वर्यशाली प्रभु **विशः मनुष्यान्**=निवेशक मनुष्यों को, परिचरण शक्ति-सेवा करनेवाले मनुष्यों को **चोष्कूयते**=सब ऐश्वर्यों को देते हैं (चोष्कूयमाणः ददत् नि० ६।२२)। वस्तुतः प्रभु से प्राप्त कराये गये ये ऐश्वर्य उन्हें और अधिक लोक सेवा के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे शत्रुओं को नष्ट करते हैं। कर्मानुसार हमें उन्नतिपथ पर ले चलते हैं। अयज्ञशील व्यक्ति प्रभु के प्रिय नहीं होते। लोक सेवकों को प्रभु आवश्यक धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

प्रमाद दोष परिहार

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

(१) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **सख्या**=मित्रभाव के कारण **पूर्वेषाम्**=अपना पालन व

पूरण करने में प्रवृत्त लोगों के **परावृणक्ति**=रोगों व दोषों को (efface) मिटा देते हैं। **वितर्तुराणः**=इन शत्रुभूत रोगों व वासनाओं को हिंसित करते हुए वे **अपरेभिः एति**=इन अपने अपर (lower) मित्रों के साथ गतिवाले होते हैं। साहित्य में प्रभु 'पर' कहते हैं, तो जीव 'अपर'। वे पर प्रभु अपर जीव के साथ गतिवाले होते हैं। इस मित्रता से ही जीव शत्रुओं पर विजय पा सकता है। (२) **अनानुभूतीः**=(neglect) प्रमादों को **अवधून्वानः**=हमारे से कम्पित करके दूर करते हुए प्रभु **पूर्वीः शरदः**=बहुत वर्षों तक **तर्तरीति**=हमें शत्रुओं से तरानेवाले होते हैं। प्रभु हमारे जीवनों को प्रमादशून्य बनाकर हमें इस दीर्घजीवन में शत्रुओं का शिकार नहीं होने देते।

भावार्थ—प्रभु हमारे रोगों व दोषों को दूर करते हैं। हमारे शत्रुओं को नष्ट करते हुए हमारे साथ गतिवाले होते हैं। हमारे जीवन को प्रमादशून्य बनाकर दीर्घ व सुन्दर बनाते हैं।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अनेक रूप' प्रभु

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८ ॥

(१) **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु **रूपं रूपम्**=प्रत्येक रूपवान् पदार्थ के **प्रतिरूपः**=प्रतिरूप **बभूव**=होता है। सर्वव्यापक होता हुआ उस-उस पदार्थ के अनुरूप रूपवाला होता है। उन पदार्थों में यह प्रभु की उपस्थिति ही विभूति की स्थापना का कारण बनती है। प्रभु सूर्य-चन्द्र में प्रभारूप से हैं, तो जलों में इस रूप से, और पृथिवी में पुण्यगन्ध के रूप से। बलवानों में बल के रूप में हैं, तो बुद्धिमानों में बुद्धि के रूप से हैं। **अस्य**=इस प्रभु का **तद् रूपम्**=वह रूप **प्रतिचक्षणाय**=प्रत्येक व्यक्ति से देखने योग्य होता है। स्वयं निराकार वे प्रभु दर्शन का विषय नहीं बनते। इन पदार्थों में प्रभु की महिमा ही दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः यही प्रभु का सगुण रूप है, जिसकी आराधना एक भक्त करता है। ज्ञान की कमी के होने पर यह भक्ति सूर्यादि की उपासना में रूपान्तरित हो जाती है। (२) **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **मायाभिः**=अपने अज्ञानों से **पुरुरूपः**=अनेक रूपोंवाले होते हुए **ईयते**=गति करते हैं। **अस्य**=इस प्रभु के **हि**=ही **दश हरयः**=ये दस संख्यावाले इन्द्रियाश्व **शता**=शतवर्षपर्यन्त **युक्ताः**=हमारे शरीर-रथों में जुते होते हैं। इन इन्द्रियों की रचना में भी प्रभु की महिमा दर्शनीय होती है।

भावार्थ—वे निराकार प्रभु इन स्तवन पदार्थों में उस-उस पदार्थ के अनुरूप दिखते हैं। इन पदार्थों में ही प्रभु की महिमा द्रष्टव्य होती है। सर्वत्र प्रभु की ज्ञानपूर्विका कृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। हमारे शरीरों में इन्द्रियाश्व भी अद्भुत महिमावाले हैं।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

द्विषतः पक्षः (शत्रुओं को भूननेवाले प्रभु)

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९ ॥

(१) **त्वष्टा**=वे दीप्त (त्विष्) व निर्माता (त्वक्ष्) प्रभु **इह**=इस हमारे जीवन में **रथे**=शरीर-रथ में **हरिता**=ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों को **युजानः**=युक्त करते हुए **भूरि राजति**=खूब ही दीप्त होते हैं। प्रभु ने इन इन्द्रियों में अद्भुत ही शक्ति की स्थापना की है। इन इन्द्रियों में प्रभु की महिमा प्रकट हो रही है। (२) उत=और **आसीनेषु**=उपासना में बैठे हुए **सूरिषु**=इन स्तोताओं

में **कः**=वे अनिर्वचनीय प्रभु ही **विश्वाहा**=सदा **द्विषतः पक्षः**=शत्रुओं को पका डालनेवाले के रूप में **आसते**=स्थित होते हैं। प्रभु ही उपासक के शत्रुओं को भून डालनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु ने शरीर-रथ में इन्द्रियाश्वों को जोता है, इन इन्द्रियों में प्रभु की महिमा प्रकट होती है। प्रभु ही उपासकों के शत्रुओं को भूननेवाले हैं।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः, सोमः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अगव्यूति क्षेत्र व अंहूरणा भूमि' का परिवर्तन

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम्॥ २०॥

(१) **देवाः**=हे देवो! हम **क्षेत्रं आ अगन्म**=ऐसे शरीर रूप क्षेत्र में आ पहुँचे हैं जो **अगव्यूति**=ज्ञान की वाणी रूप गौओं के प्रचार से रहित है, जो केवल भोग-प्रधान प्रतीत होता है। **उर्वी सती**=विशाल होती हुई भी यह **भूमिः**=शरीर-भूमि **अंहूरणा अभूत्**=(अंहवः आहन्तारः दस्यवः, तेषां रमणा) दास्यव भावों के रमणवाली हो गई है। शरीर विशाल है, परन्तु वह देवों का निवास-स्थान न रहकर दस्युओं का निवास-स्थान बन गया है। (२) हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! आप हमें **गविष्टौ**=ज्ञान की वाणी रूप गौओं के अन्वेषण में **प्र चिकित्सा**=(प्रवेदय) उपाय का ज्ञान दीजिये। ऐसा उपाय सुझाइये कि हम ज्ञान की वाणियों के अन्वेषण में लगे रहें। **इत्था सते**=इस प्रकार (सते=भवते) होते हुए मेरे लिये, दास्यव भावों के रमण का स्थान बने हुए मेरे लिये, हे **इन्द्र**=शत्रु संहारक प्रभो! **पन्थाम्**=मार्ग को (प्रचिकित्स)=प्रज्ञापित करिये।

भावार्थ—हमारा यह शरीर क्षेत्र ज्ञान की वाणी रूप गौओं के प्रचारवाला हो। यह शरीर भूमि देवों का रमण प्रदेश बने। देव कृपा से हमें ज्ञान रुचि बनें। प्रभु हमें सन्मार्ग की प्रेरणा दें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वर्चिन् व शम्बर' का विनाश

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च॥ २१॥

(१) हमारे जीवन में **सद्मनः**=इस शरीर के अन्तर्गत हृदय रूप गृह से, स्थान से **जाः**=उदय होता हुआ **इन्द्र**=ज्ञानसूर्य **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **सदृशीः**=समानरूपवाली **कृष्णाः**=अज्ञानान्धकारवाली रात्रियों को **अन्यं अर्धम्**=हमारे से भिन्न दूसरे आधे पशु-पक्षिरूप जगत् में **अपअसेधत्**=दूर भेजता है। हृदयस्थ प्रभु की कृपा से हमारे हृदयों में ज्ञानसूर्य का उदय होता है, वहाँ अज्ञानान्धकार का नाश होता है। मानो, यह अज्ञान रात्रि पशु-पक्षियों के यहाँ चली जाती है। (२) **वृषभः**=सब सुखों व शक्तियों का वर्षण करनेवाले प्रभु **उदव्रजे**=ज्ञान-जल की गतिवाले हमारे शरीर देशों में (उद=जल, व्रज गतौ) **वर्चिनम्**=अति प्रबल काम (असुर) को **च**=तथा **शम्बरम्**=शान्ति को ढप लेनेवाले ईर्ष्यारूप असुर को **अहन्**=नष्ट करते हैं। ज्ञान जल के प्रवाह में सब वासनाएँ धुल जाती हैं। काम नष्ट होकर प्रेम का रूप धारण कर लेता है, और ईर्ष्या नष्ट होकर स्पर्धा, एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की भावना के रूप में प्रकट होती है। हम 'हेतौ ईर्ष्युः-फले नेर्ष्युः' बन जाते हैं। हमारे जीवनों में साधनों को प्राप्त करने की कामना बढ़ती है, दूसरे की वृद्धि हमें नहीं जलाती। हम समझ जाते हैं कि ये काम और ईर्ष्या **दासा**=हमारे उपक्षय करनेवाले हैं और

वस्नयन्ता=शक्ति व शान्ति के विनाशरूप प्रबल मूल्य को चाहते हैं, हमारे शक्ति व शान्ति रूप धन को हर लेते हैं।

भावार्थ—हमारे जीवन में ज्ञानसूर्य का उदय हो। अज्ञानरात्रि विनष्ट हो। कामासुर व शम्बरासुर का विनाश करके हम शक्ति व शान्ति का अनुभव करें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, प्रस्तोकस्य साञ्जयस्दानस्तुतिः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रस्तोक का प्रभु के प्रति स्वा अर्पण

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म॥ २२॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार ज्ञान सूर्योदय के होने पर यह आराधक 'प्रस्तोक' बनता है, 'प्रस्तोधेत' (shines)। हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **प्रस्तोकः**=ज्ञान सूर्य से चमकनेवाला यह स्तोता **इत् नु**=ही निश्चय से **राधसः**=ऐश्वर्य के **दश कोशयीः**=दस कोशों को, एक-एक इन्द्रिय की शक्ति एक-एक कोश है, इन दस कोशों को तथा **दश वाजिनः**=इन दस शक्तिशाली इन्द्रियों को ही **ते अदात्**=आपके लिये दे डालता है। ज्ञानी स्तोता अपना सब कुछ आपके प्रति अर्पण करता है, ऐसा करता हुआ ही वह निरहंकार बना रहता है। (२) ये आराधक ऐसा अनुभव करते हैं कि हमने **दिवोदासात्**=(दास्=दाश्=दाने) उस सब ज्ञानों के देनेवाले प्रभु से ही **अतिथिग्वस्य राधः**=(अतिथिं गच्छति) उस महान् अतिथि प्रभु के प्रति जानेवाले आराधक के कार्यसाधक धन को तथा **शाम्बरं वसु**=ईर्ष्या के विनाश से प्राप्त होनेवाले उत्तम निवासजनक धन को **प्रत्यग्रभीष्म**=प्रतिदिन प्राप्त किया है। यह सब ऐश्वर्य उस प्रभु का ही है। प्रभु ने ही हमें उस-उस इन्द्रिय की शक्ति को व इन इन्द्रियों को दिया है, ये सब उसी के हैं। इस प्रकार समर्पण करनेवाला आराधक अद्भुत शान्ति को पाता है।

भावार्थ—हम ज्ञान को बढ़ाकर प्रभु की आराधना करते हुए इन सब इन्द्रियों के ऐश्वर्य को व इन्द्रियों को प्रभु के प्रति अर्पित करनेवाले बनें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, प्रस्तोकस्य साञ्जयस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः—**आसुरीपङ्क्तिः** ॥
स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रस्तोक की आराधना

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना। दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम्॥ २३॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित प्रस्तोक, ज्ञान से चमकनेवाला आराधक, आराधना करता हुआ कहता है कि मैंने **दिवोदासात्**=उस ज्ञान के देनेवाले महान् प्रभु से ही **दश अश्वान्**=दस इन्द्रियाश्वों को **असानिषम्**=प्राप्त किया है। **दश कोशान्**=इन इन्द्रियों के दस कोशों को भी उसी प्रभु से ही तो लिया है। (२) **दश वस्त्रा**=इन इन्द्रिय रूप गौओं के रक्षण के लिये दस प्राणरूप वस्त्रों को भी प्रभु ने ही मुझे प्राप्त कराया है। ये दश प्राणरूप वस्त्र **आधिभोजता**=आधिक्येन हमारा पालन करनेवाले हैं (भुज्पालने)। **उ**=और **दश**=दस **हिरण्यपिण्डान्**=हितरमणीय दस इन्द्रियों के आधारभूत शरीरों को (पिण्ड=देह) भी प्रभु ने ही तो हमारे लिये दिया है। शरीर एक है, पर दस इन्द्रियाश्वों से जुता यह शरीर-रथ यहाँ 'दश' शब्द से विशेषित हुआ है।

भावार्थ—प्रस्तोक अनुभव करता है कि ये दस इन्द्रियाँ, दस इन्द्रियशक्तियाँ, दश प्राण, दशेन्द्रिययुक्त ये शरीर सब उस प्रभु के हैं। ये सब प्रभु ने ही तो मुझे प्राप्त कराये हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः, प्रस्तोकस्य साञ्जयस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

'पायु-अथर्वः' बनना

दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः। अश्वथः पायवेऽदात्॥ २४॥

(१) **अश्वथः**=(protection) इन्द्रियाश्वों का रक्षण करनेवाले प्रभु **पायवे**=विषय वासनाओं व रोगों से अपना बचाव करनेवाले उपासक के लिये **दश**=दस **प्रष्टिमतः**=(प्रष्टि=side horse) प्रशस्त इन्द्रियरूप अश्वोंवाले **रथान्**=शरीर-रथों को **अदात्**=देते हैं। प्रभु ने यह शरीर-रथ हमें दिया है। इसमें दस इन्द्रियरूप घोड़े जुते हैं। ये सब घोड़े इस शरीर-रथ को सम्यक् प्रभु प्राप्ति के मार्ग पर ले चलनेवाले हैं। हमें इनका रक्षण करना है, ये विषयों की दल-दल में न फँस जाएँ। (२) ये प्रभु **अथर्वभ्यः**=(अथ अर्वाङ्) अन्तर्दृष्टिवाले पुरुषों के लिये **शतम्**=शतवर्ष पर्यन्त **गाः**=ज्ञान की वाणियों को देते हैं। अन्तर्दृष्टिवाले ये पुरुष सदा उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु दस इन्द्रियाश्वों से युक्त शरीर-रथों को व ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः, प्रस्तोकस्य साञ्जयस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

साञ्जयः (सृ+जि)

महि राधो विश्वजन्यं दधानान्भरद्वाजान्त्साञ्जयो अभ्ययष्ट॥ २५॥

(१) प्रभु गतिशील पुरुषों को विजय प्राप्त कराते हैं ('सृ+जि') सो 'साञ्जय' कहलाते हैं। ये प्रभु **भरद्वाजान्**=संयम द्वारा अपने में शक्ति का भरण करनेवाले पुरुषों को **अभ्ययष्ट**=अपने साथ संगत करते हैं। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' निर्बल से ये प्रभु प्राप्य नहीं। (२) ये प्रभु उनको प्राप्त होते हैं, जो **राधः**=कार्यसाधक धनों को **दधानान्**=धारण करते हैं। उस धन को जो **महि**=पूजनीय है, अर्थात् प्रशस्त साधनों से कमाया गया है तथा **विश्वजन्यम्**=सब लोकों के लिये हितकर है, जिस धन का विनियोग प्राजापत्य यज्ञ में होता है नकि भोग-विलास में।

भावार्थ—प्रभु उनको प्राप्त होते हैं जो (क) उत्तम मार्ग से धनों का अर्जन करके उसका लोकहित के कार्यों में विनियोग करते हैं तथा (ख) संयम द्वारा अपने में शक्ति को भरते हैं।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः, रथः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

'दृढ़ प्रकाशमय' शरीर-रथ

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि॥ २६॥

(१) इस शरीर-रथ को यहाँ 'वनस्पते' शब्द से सम्बोधित किया है, स्पष्ट है कि इसका पोषण वनस्पतियों द्वारा ही होना चाहिए। हे **वनस्पते**=वनस्पति से बने हुए शरीर-रथ! तू **हि**=निश्चय से **वीड्वङ्गः**=दृढ़ अंगोंवाला **भूयाः**=हो। तू **अस्मत् सखा**=हमारा मित्र हो। **प्रतरणः**=जीवनयात्रा में सब विघ्नों को तैरते हुए यात्रा की पूर्ति का साधन बन। **सुवीरः**=तू उत्तम वीरतावाला हो। (२) तू **गोभिः**=इन्द्रियों से **सन्नद्धः**=सम्यक् बद्ध **असि**=है। तेरे में उस-उस स्थान पर इन्द्रियाश्व जुते हुए हैं। अथवा तू ज्ञान की वाणियों से युक्त है, प्रकाशमय है। **वीडयस्व**=तू शक्तिशाली कर्मों को करनेवाला बन। **ते आस्थाता**=तेरे पर अधिष्ठित होनेवाला यह जीव **जेत्वानि**=जेतव्य शत्रुओं

को **जयतु**=जीतनेवाला हो। काम-क्रोध आदि को परास्त करके यह अधिष्ठाता यात्रा को पूर्ण करनेवाला बने।

भावार्थ—हमारा शरीर-रथ दृढ़ अंगोंवाला हो, ज्ञान के प्रकाश से युक्त हो। इस पर अधिष्ठित होकर शत्रुओं को परास्त करते हुए हम जीवनयात्रा को पूर्ण करें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, रथः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'ओजस्वी व सहस्वी' शरीर-रथ

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज॥ २७॥

(१) प्रभु कहते हैं कि हे जीव! **हविषा**=दानपूर्वक अदन के द्वारा **रथं यज**=तू शरीर-रथ को अपने साथ संगत कर। यह शरीर-रथ वह है जिसमें **दिवः परि**=द्युलोक से **ओजः उद्भृतम्**=ओजस्विता का भरण किया गया है, जिसमें सूर्य-किरणों ने प्राणशक्ति का संचार किया है। **पृथिव्याः परि**=इस विशाल अन्तरिक्ष से (ओजः उद्भृतं)=ओजस्विता का भरण हुआ है, जिसमें चन्द्र-किरणों ने सुधारस को संचरित किया है। इस शरीर-रथ में **वनस्पतिभ्यः**=वनस्पतियों से **सहः**=बल का **पर्याभृतम्**=भरण हुआ है। पृथिवी से उत्पन्न ओषधि वनस्पतियों के सेवन से यह शरीर नीरोग व सबल बना है। (२) इस शरीर-रथ को तू अपने साथ संगत कर जो **अपां ओज्मानम्**=(आपः रेतो भूत्वा०) रेतःकणों के ओजवाला है, जिसे रेतःकण ओजस्वी बना रहे हैं। जो **गोभिः**=ज्ञानरश्मियों से **परिआवृतम्**=आच्छादित है। **इन्द्रस्य वज्रम्**=यह शरीर-रथ इन्द्र का वज्र है, जितेन्द्रिय पुरुष का गतिशीलता का साधन है।

भावार्थ—इस शरीर-रथ को 'सूर्य-चन्द्र' ओजस्वी बनाते हैं, वनस्पतियाँ इसमें सहस् का संचार करती हैं। यह रेतःकणों के ओजवाला व ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञानरश्मियों से आच्छादित है। इसे दानपूर्वक अदन से हम अपने साथ संगत करें और गतिशील बनें।

ऋषिः—**गर्गः** ॥ देवता—**इन्द्रः, रथः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मित्रस्य गर्भः, वरुणस्य नाभिः

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय॥ २८॥

(१) यह शरीर-रथ **इन्द्रस्य वज्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष का वज्र है, गतिशीलता का साधन है। **मरुतां अनीकम्**=प्राणों का इसमें बल है। **मित्रस्य गर्भः**=स्नेहभाव को यह अपने अन्दर धारण करनेवाला है। **वरुणस्य नाभिः**=निर्द्वेषता को यह अपने में बाँधनेवाला है (णह बन्धने)। (२) हे **देवरथ**=ज्ञान किरणों से द्योतमान (परि गोभिरावृतम् ४७। २७) शरीर-रथ अथवा सब व्यवहारों के साधक शरीर-रथ! **सः**=वह तू **नः**=हमारी **इमाम्**=इस **हव्यदातिम्**=हव्य के देने की क्रिया को, यज्ञादि क्रियाओं को **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता हुआ **हव्या**=हव्य पदार्थों को **प्रतिगृभाय**=ग्रहण करनेवाला बन। अर्थात् दानपूर्वक अदन करनेवाला बन तथा सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन कर।

भावार्थ—यह शरीर-रथ जितेन्द्रिय पुरुष का गतिशीलता का साधन बने। प्राणों के बल को, स्नेह व निर्द्वेषता को धारण करे। यज्ञशील हो। यज्ञशेष के रूप में सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन करे।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः, दुन्दुभिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'दुन्दु' शब्द से भयभीत करनेवाली 'दुन्दुभि'

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त्।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ अप॑ सेध॒ शत्रू॑न्॥ २९ ॥

(१) युद्ध में यदि हमारा पक्ष धार्मिक है तो हमारी दुन्दुभि शत्रुओं को भयभीत कर डालती है। सो कहते हैं कि हे **दुन्दुभे**=दुन्दुभि! **सः**=वह तू **पृथिवीं उत द्याम्**=पृथिवीलोक व द्युलोक को **उपश्वासय**=अनुप्राणित करनेवाली हो, अपने शब्द से हमारे सैन्यों में सर्वत्र उत्साह का संचार करनेवाली हो। यह **विष्ठितम्**=विशेषरूप से अपने-अपने स्थान में स्थित **जगत्**=लोक **पुरुत्रा**=सर्वत्र **ते मनुताम्**=तेरे शब्द को जाननेवाला हो। (२) हे दुन्दुभे! वह तू **इन्द्रेण**=शत्रुविद्रावक सेनापति व **देवैः**=विजिगीषु सैनिकों के साथ **शत्रून्**=शत्रुओं को **दूरात् दवीयः**=दूर से दूर **अपसेध**=मार भगानेवाली हो। दुन्दुभि के शब्द से ही शत्रुओं के दिल दहल जाएँ और शत्रु भयभीत हो भाग उठें।

भावार्थ—दुन्दुभि (रणभेरी) का शब्द द्युलोक व पृथिवीलोक को गुंजा दे। शत्रु इससे भयभीत होकर भाग जाएँ।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः, दुन्दुभिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'दुरिता-दुच्छुना' बाधमानः

आ क्र॑न्दय॒ बल॒मोजो॑ न॒ आ धा॒ निः ष्ट॑निहि दुरि॒ता बाध॑मानः।
अप॑ प्रोथ दुन्दुभे दु॒च्छुना॑ इ॒त इन्द्र॑स्य मु॒ष्टिर॑सि वी॒ळय॑स्व॥ ३० ॥

(१) हे दुन्दुभे! तू **आक्रन्दय**=शत्रुओं को रुलानेवाली बन। **नः**=हमारे मनों में **बलं ओजः**=बल और ओज को **आधाः**=स्थापित कर। हमारा युद्ध का वाद्य शत्रुओं को भयभीत करनेवाला हो और हमारे अन्दर उत्साह का संचार करनेवाला हो। सब **दुरिता बाधमानः**=बुराइयों को रोकती हुई **निष्टनिहि**=तू ध्वनि कर, तेरी गर्जना हमारे जीवनों में से सब बुराइयों को दूर करनेवाली हो। जीवन को युद्ध यात्रा समझेंगे तो विलास से ऊपर उठेंगे ही, (२) हे **दुन्दुभे**=भेरी स्वर! **दुच्छुना**=सब दुष्ट सुखों को, भोग-विलासों को या शत्रुओं को **इतः**=यहाँ से **अपप्रोथ**=सुदूर हिंसित कर। तू **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष की **मुष्टिः असि**=शत्रुओं को विनष्ट करनेवाली मुष्टि है। **वीळयस्व**=हमारे जीवनों को सुदृढ़ बना।

भावार्थ—दुन्दुभि का शब्द शत्रुओं को भयभीत करें, हमें सोत्साहित करे। यह हमारे जीवनों से दुरितों व दुष्ट सुखों को दूर करे और हमें शत्रुहनन के लिये दृढ़ शक्ति प्रदान करे।

ऋषिः—गर्गः ॥ देवता—इन्द्रः, दुन्दुभिः ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

विजय

आमूर॑ज प्र॒त्याव॑र्तये॒माः के॑तु॒मद्दु॑न्दु॒भिर्वा॑वदीति।
सम॑श्वप॑र्णा॒श्चर॑न्ति नो॒ नरो॒ऽस्माक॑मिन्द्र र॒थिनो॑ जयन्तु॥ ३१ ॥

(१) हे प्रभो! **अमूः**=उन विषयों में चरती हुई इन्द्रियरूप गौओं को **आ अज**=हमारे प्रति आनेवाला करिये। **इमाः**=इन इन्द्रियों को **प्रत्यावर्तय**=विषयों से व्यावृत्त करिये। **केतुमत्**=प्रशस्त ज्ञानवाली **दुन्दुभिः**=यह वेदवाणी प्रभु का स्मरण करनेवाली दुन्दुभि **वावदीति**=खूब शब्द कर

रही है (इसके शब्द से जीवन को संग्राम की स्थिति में समझते हुए हम विषयों से पराङ्मुख रहें। (२) **नः नरः**=हमारे सब मनुष्य **अश्वपर्णाः**=इन्द्रियाश्वों का पालन व पूरण करनेवाले होते हुए **संचरन्ति**=सम्यक् गतिवाले होते हैं। हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **अस्माकम्**=हमारे **रथिनः**=रथी पुरुष, शरीर-रथ के स्वामी पुरुष **जयन्तु**=सदा विजयी हों। ये कभी भी काम-क्रोध आदि शत्रुओं के शिकार न होते हुए बाह्य शत्रुओं को भी पराजित करनेवाले हों।

भावार्थ—हमारी इन्द्रियाँ विषयव्यावृत्त हों। हमारे में ज्ञान-ज्योति जगे। इन्द्रियाश्वों का पूरण करनेवाले लोग सम्यक् गतिवाले हों। हम रथी बनकर विजय बनें।

अगला सूक्त भी 'शंयु बार्हस्पत्य' ऋषि का है—

अथ चतुर्थाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**बृहती**॥
स्वरः—**मध्यमः**॥

यज्ञा-गिरा

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे। प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥ १॥

(१) **वः**=तुम **यज्ञा यज्ञा**=प्रत्येक यज्ञरूप उत्तम कर्म के द्वारा **च**=और **गिरा गिरा**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये शंसन करो, जिससे **दक्षसे**=यह शंसन तुम्हारी उन्नति व विकास (वृद्धि) के लिये हो। प्रभु की उपासना 'ज्ञान-कर्म' से होती है। यह उपासना उपासक की वृद्धि का कारण बनती है। (२) **वयम्**=हम **अमृतम्**=उस अमर **जातवेदसम्**=सर्वज्ञ प्रभु को **प्रियं मित्रं न**=प्रिय मित्र के समान **प्रप्र शंसिषम्**=खूब ही प्रशंसित करें। वे प्रभु हमें उत्तम प्रेरणा के द्वारा सब बुराइयों से दूर करते हुए वास्तव में ही हमारे सच्चे मित्र हैं। ये सदा हमारी उन्नति व विकास का कारण बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु की सच्ची उपासना यही है कि हम हाथों से यज्ञों को करें तथा वाणी से ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करें। वे प्रभु हमारे सच्चे मित्र हैं, वे हमें उत्तम प्रेरणा द्वारा ज्ञानवृद्धि को प्राप्त कराते हुए अमर बनाते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**आर्चीजगती**॥
स्वरः—**निषादः**॥

अविता-वृधः-त्राता

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम्॥ २॥

(१) गत मन्त्र से 'प्रशंसिषम्' क्रिया का अध्याहर करके यहाँ अर्थ इस प्रकार लेना है कि मैं **ऊर्जो नपातम्**=शक्ति को न नष्ट होने देनेवाले उस प्रभु को प्रशंसित करता हूँ, क्योंकि **सः**=वह **हि न**=निश्चय से (निपातद्वयम् हि० ९) **अयम्**=ये प्रभु **अस्मयुः**=हमारे हित की कामनावाले हैं। उस **हव्यदातये**=हव्य पदार्थों के देनेवाले प्रभु के लिये **दाशेम**=हम अपना अर्पण करें। (२) ये प्रभु **वाजेषु**=संग्रामों में **अविता भुवत्**=रक्षक होते हैं। **वृधः भुवत्**=हमारे वर्धक होते हैं। **उत**=और **तनूनां त्राता**=हमारे शरीरों के रक्षक होते हैं।

भावार्थ—प्रभु शक्ति को देकर हमारा रक्षण करते हैं। वे ही संग्रामों में हमें विजयी बनाते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

शक्ति व दीप्ति की प्राप्ति

वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **वृषा**=हमारे में शक्ति का सेचन करनेवाले हैं। **अजरः**=कभी जीर्ण होनेवाले नहीं, अपने उपासकों को भी आप अजर बनाते हैं। **महान्**=आप पूज्य हैं, **अर्चिषा**=ज्ञान ज्वाला से **विभासि**=आप विशेषरूप से दीप्त होते हैं। (२) **अजस्रेण**=अविच्छिन्न **शोचिषा**=दीप्ति से **शोशुचत्**=दीप्त होते हुए हे **शुचे**=दीप्त प्रभो! **सुदीतिभिः**=उत्तम दीप्तियों से **सुदीदिहि**=आप हमें दीप्त करिये। एक उपासक अपने जीवन को आपकी दीप्ति से दीप्त करनेवाला बनता ही है।

भावार्थ—प्रभु हमारे में शक्ति का सेचन करते हुए हमें अजर बनाते हैं। वे दीप्त प्रभु हमें ज्ञानदीप्ति से दीप्त करते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

क्रत्वा-दंसना

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥

(१) हे प्रभो! आप **महः देवान्**=महनीय दिव्य गुणों को **यजसि**=हमारे साथ संगत करते हैं। आप **तव क्रत्वा**=अपनी शक्ति व प्रज्ञान से **उत**=और **दंसना**=उत्तम कर्मों से **आनुषक् यक्षि**=निरन्तर हमें संगत करते हैं। उपासक दिव्यगुणों को, शक्ति व प्रज्ञान को तथा उत्तम कर्मों को प्राप्त करता है। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **सीम्**=निश्चय से आप हमारे **अवसे**=रक्षण के लिये **अर्वाचः**=(अर्वाङ्ग अक्रुति) अन्तर्मुखी वृत्तिवाला **कृणुहि**=करिये। **वाजा**=शक्तियों को **रास्व**=दीजिये **उत**=और **वंस्व**=हमें विजयी बनाइये (वन्=win) अथवा हमारे शत्रुओं का संहार करिये (to kill)।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे साथ दिव्यगुणों का शक्ति प्रज्ञान व उत्तम कर्मों का मेल हो। हम शक्ति को प्राप्त करें तथा विजयी बनें अथवा शत्रुओं का संहार कर सकें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

आपः अद्रयः बना (ऋतस्य गर्भं पिप्रति)

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥ ५ ॥

(१) प्रभु वे हैं **यं ऋतस्य गर्भम्**=ऋत के धारण करनेवाले जिनको **आपः**=(आप्लृव्याप्तौ)

कर्मों में व्याप्त होनेवाले, **अद्रयः (आद्रियन्ते)**=उपासना करनेवाले **वना**=काम-क्रोधादि शत्रुओं का हिंसन करनेवाले लोग **पिप्रति**=अपने अन्दर पूरित करते हैं। प्रभु का प्रकाश अधिकाधिक ये ही लोग देखते हैं, जो कर्मशील, उपासनामय व शत्रुओं का संहार करनेवाले होते हैं। (२) प्रभु वे हैं **यः**=जो **नृभिः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों से **सहसा**=शत्रुमर्षण के द्वारा अथवा शत्रुमर्षण बल के साथ **मथितः**=चिन्तन किये गये हुए **जायते**=प्रभुर्भूत होते हैं। प्रभु का प्रकाश **पृथिव्याः सानवि अधि**=इस शरीर रूप पृथिवी के शिखर प्रदेश मस्तक में होता है। ज्ञान के द्वारा ही प्रभु का प्रकाश होता है। ज्ञानदायिनी सूक्ष्म बुद्धि ही प्रभु का दर्शन कराती है 'दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः'।

भावार्थ—प्रभु दर्शन 'कर्मशील-उपासनामय-शत्रुसंहारक-बल-बुद्धियुक्त' पुरुष को होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**महाबृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

अरुषः वृषा

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा॥ ६॥

(१) **यः**=जो अग्नि नामक प्रभु **भानुना**=दीप्ति से **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी को **आपप्रौ**=आपूरित कर देते हैं। वे प्रभु ही **धूमेन**=वासनाओं को कम्पित करके दूर करने के द्वारा **दिवि**=मस्तिष्क रूप द्युलोक में **धावते**=उपासकों के जीवन को शुद्ध कर डालते हैं। (धाव् शुद्धौ)। बाह्य जगत् को जहाँ प्रभु प्रकाशित करते हैं, वहाँ हमारे आन्तर जगत् को भी वे ज्ञानदीप्त करते हैं। (२) इस प्रकार प्रकाश के होने पर **स्यावासु**=कृष्णवर्ण **ऊर्म्यासु**=रात्रियों में भी **तमः**=अन्धकार **तिरः ददृशे**=तिरोहित हो जाता है। मानव जीवन में तीन रात्रियाँ 'प्रकृति, जीव, परमात्मा' के अज्ञान के रूप में ही है। प्रभु का अनुग्रह जब वासनाओं के निराकरण के द्वारा ज्ञान के प्रकाश को करता है, तो इन रात्रियों का अन्धकार समाप्त हो जाता है। वे प्रभु **अरुषः**=आरोचमान व **वृषा**=हमारे में शक्तियों का सेचन करनेवाले हैं। **श्यावाः आ (तिष्ठति)**=प्रभु इन कृष्णवर्ण रात्रियों को अधिष्ठित कर लेते हैं। इनको अभिभूत करके हमें भी वे **अरुषः**=आरोचमान व **वृषा**=शक्तिशाली बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु बाह्य जगत् व आन्तर जगत् को प्रकाशमय करते हैं। रात्रियों का अन्धकार दूर होता है और उपासक भी प्रभु की तरह आरोचमान व शक्तिशाली बनता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**महाबृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

रेवत्-द्युमत्

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥ ७॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी **देव**=दीप्यमान प्रभो! आप **भरद्वाजे**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले पुरुष में **बृहद्भिः अर्चिभिः**=वृद्धि की कारणभूत ज्ञान ज्वालाओं से तथा **शुक्रेण शोचिषा**=निर्मल दीप्ति से **समिधानः**=दीप्त होइये। अर्थात् आप उपासक को ज्ञान व नैर्मल्य प्राप्त कराके उसके हृदय में प्रकाशित होइये। (२) हे **यविष्ठ्य**=बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों को

हमारे साथ मिलानेवाले **शुक्र**=दीप्त प्रभो! **रेवत्**=ऐश्वर्ययुक्त होते हुए **नः**=हमारे लिये **दीदिहि**=दीप्त होइये। हे **पाक**=पवित्र करनेवाले प्रभो! **द्युमत्**=ज्ञान दीप्ति को प्राप्त कराते हुए आप हमारे लिये **दीदिहि**=दीप्त होइये।

भावार्थ—हम भरद्वाज बनें, अपने में संयम द्वारा शक्ति को भरने का यत्न करें। प्रभु हमारे मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त व मन को निर्मल बनाएँगे तथा हमारे जीवनों को आवश्यक धनों से परिपूर्ण करेंगे।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**महासतोबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

समेद्धा-दाता

विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम्।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥ ८ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **विश्वासाम्**=सब **मानुषीणाम्**=मानव-धर्म का पालन करनेवाली **विशाम्**=प्रजाओं के **गृहपतिः असि**=गृहपति हैं, रक्षक हैं, गृह-स्वामी हैं। उन घरों में आपका ही पूजन होता है। (२) हे **यविष्ठ**=बुराई को दूर करनेवाले व अच्छाई को हमारे साथ मिलानेवाले प्रभो! **समेद्धारम्**=इस अग्नि की दीपन करनेवाले, यज्ञाग्नि द्वारा आपकी उपासना करनेवाले पुरुष को **शतम्**=शत वर्ष पर्यन्त **पूर्भिः**=पालन व पूरण की क्रियाओं द्वारा **अंहसः पाहि**=पाप से बचाइये। **च**=और उन्हें भी **शतं हिमाः**=शत वर्ष पर्यन्त पापों से बचाइये **ये**=जो **स्तोतृभ्यः ददति**=स्तोताओं के लिये आवश्यक धनों को देते हैं। इन दानशील व्यक्तियों को भी पाप से बचाइये।

भावार्थ—मानव-धर्म का पालन करनेवाले मनुष्य प्रभु के रक्षणीय होते हैं। यज्ञशील व दानशील व्यक्तियों को प्रभु पापों से बचाते हैं।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

धन व प्रतिष्ठा

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ९ ॥

(१) हे प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिये **चित्रः**=(चित्+र) ज्ञान को देनेवाले हैं। हे **वसो**=हमें उत्तम निवास को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **ऊत्या**=रक्षण के हेतु से **राधांसि**=कार्य-साधक धनों को **चोदय**=हमारे लिए प्रेरित करिये। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप ही **अस्य रायः**=इस सम्पूर्ण धन के **रथीः**=नेता प्राप्त करानेवाले (नी प्रापणे) **असि**=हैं। आप इन आवश्यक धनों को प्राप्त कराइये और **नः**=हमारे **तुचे**=सन्तानों के लिये **गाधं तु विदा**=प्रतिष्ठा को अवश्य प्राप्त कराइये। इन धनों का विनियोग हमारे घरों में इस प्रकार हो कि कोई भी (अवाञ्छनीय) प्रभाव हमारे सन्तानों पर न हो। ये धन उनकी प्रतिष्ठा का कारण बनें।

भावार्थ—प्रभु हमें ज्ञान दें, धन दें, हमारे सन्तानों के जीवनों को भी प्रतिष्ठावाला बनायें।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—भुरिग्बृहती॥
स्वरः—मध्यमः॥

अदिव्य भावनाएँ व आधिदैविक कष्ट

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च॥ १०॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **अदब्धैः**=अहिंसित व **अप्रयुत्वभिः**=अविच्छिन्न, अपृथग् भूत (without gap) **पर्तृभिः**=पालन क्रियाओं के द्वारा **तोकम्**=हमारे पुत्रों को व **तनयम्**=पौत्रों को **पर्षि**=पालित करके पूरित करिये। (२) हे अग्ने! **दैव्या हेडांसि**=देवों के क्रोधों को **नः युयोधि**=हमारे से पृथक् करिये। हमें सब देवों की अनुकूलता प्राप्त हो। आधिदैविक कष्टों से हम आक्रान्त न हों। **च**=और **अदेवानि**=अदिव्य, हमारे जीवनों को अदिव्य बनानेवाले **ह्वरांसि**=कुटिल भावों को हमारे से दूर करिये। अदिव्य भावों का दूरीकरण ही आधिदैविक आपत्तियों से बचने का साधन होता है।

भावार्थ—प्रभु से रक्षित होकर हमारे पुत्र-पौत्र भी पवित्र जीवनवाले हों। हमारे जीवनों में अदिव्य भाव न आ जायें और हम आधिदैविक कष्टों से बचे रहें।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—उष्णिक्॥
स्वरः—ऋषभः॥

'सबर्दुघा-अनपस्फुरा' वेद धेनु

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः। सृजध्वमनपस्फुराम्॥ ११॥

(१) हे **सखायः**=समान ख्यान (ज्ञान प्राप्ति के क्रम) वाले मित्रो! **सबर्दुघाम्**=इस ज्ञानदुग्ध को देनेवाली **धेनुम्**=वेदवाणी रूप धेनु को **आ अजध्वम्**=अपनी ओर सर्वथा गतिवाला करो। (२) इस **अनपस्फुराम्**=(not refusing to be milked) सुखसंदोह्य अथवा अवध्य वेद धेनु को **नव्यसा वचः**=(वचसा) अत्यन्त स्तुत्य वचनों के हेतु से **उपसृजध्वम्**=अपने साथ सृष्ट करो, इसे अपने समीप करो, इसे अपनाओ। इसके अध्ययन से ज्ञानदुग्ध का तुम पान करनेवाले बनो।

भावार्थ—यह वेद धेनु 'अनपस्फुरा' सुख संदोह्य व अवध्य है। इसका हम नियमपूर्वक दोहन करें।

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—भुरिग्बृहती॥
स्वरः—मध्यमः॥

शर्धाय मारुताय स्वभानवे

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी॥ १२॥

(१) गत मन्त्र में वर्णित **या**=जो वेद धेनु **अमृत्यु**=मृत्यु से ऊपर उठानेवाले **श्रवः**=ज्ञानदुग्ध को **शर्धाय**=वासनाओं का हिंसन करनेवाले। **मरुताय**=प्राणसाधना करनेवाले (मरुतः=प्राणाः), **स्वभानवे**=आत्मदीप्तिवाले पुरुष के लिये **धुक्षत**=दोहती है। वेद धेनु का ज्ञानदुग्ध हमें मृत्यु से ऊपर उठानेवाला है। यह प्राप्त उन पुरुषों को होता है, जो वासनाओं का हिंसन करें, प्राणसाधना की प्रवृत्तिवाले है, आत्मज्ञान की ओर झुकाव रखते हैं। (२) यह वेद धेनु वह है **या**=जो

मरुताम्=प्राणसाधना करनेवाले **तुराणाम्**=काम-क्रोध आदि शत्रु हिंसक पुरुषों के **मृडीके**=सुख के निमित्त होती है। और **या**=जो **सुम्नैः**=स्तोत्रों के साथ **एवयावरी**=गतिशील इन्द्रियाश्वों के द्वारा प्राप्त होनेवाली है। जो प्रभु का स्तोता बनता है और गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाला होता है, वही इस वेद धेनु का दोहन कर पाता है।

भावार्थ—हम शत्रुहिंसक प्राणसाधक व आत्मज्ञान की प्रवृत्तिवाले बनकर वेद धेनु का दोहन करें और सुखी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**मरुतो लिङ्गोक्ता वा** ॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

विश्वोदहस् धेनु, विश्वभोजस् इष्

भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता। धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम्॥ १३॥

(१) हे मरुतो, प्राणो! **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति को भरनेवाले के लिये **द्विता**=दो प्रकार से **अवधुक्षत**=प्रपूरण करने हैं। एक तो **विश्वदोहसं धेनुम्**=सम्पूर्ण ज्ञानों का प्रपूरण करनेवाली वेद धेनु को **च**=और **विश्वभोजसम्**=सब पालन करनेवाली **इषम्**=प्रेरणा को। (२) प्राणसाधना के द्वारा बुद्धि की दीप्ति को प्राप्त करके हम वेद धेनु के दोहन से सब आवश्यक ज्ञान को प्राप्त करें। इस प्राणसाधना से हम मन की निर्मलता के होने पर अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को सुनें। यह प्रेरणा सब प्रकार से हमारा पालन करनेवाली होगी, हमें मार्गभ्रष्ट होने से बचायेगी।

भावार्थ—प्राणायाम से बुद्धि की दीप्ति होने पर हम वेद धेनु का दोहन करते हैं, जो सब आवश्यक ज्ञानदुग्धों को प्राप्त कराती है। इस प्राणसाधना से उत्पन्न मन की निर्मलता हमें उस प्रेरणा को सुनने के योग्य बनाती है, जो हमें मार्गभ्रष्ट नहीं होने देती।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**मरुतो लिङ्गोक्ता वा** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्राणों की महिमा

तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम्।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे॥ १४॥

(१) **तम्**=उस **वः**=(त्वाम्) तुझ मरुद्गण को **आदिशे**=(अतिसर्जनाय-प्रदानाय) धनों के, ऐश्वर्यों के, प्रदान के लिये **स्तुषे**=स्तुत करता हूँ। जो मरुद्गण **न**=जैसे **इन्द्रम्**=सर्वशक्तिमान् है, उसी प्रकार **सुक्रतुम्**=शोभन कर्मोंवाला है। **इव**=जिस प्रकार **वरुणम्**=निर्द्वेषतावाला है, पापों का निवारण करनेवाला है, उसी प्रकार **मायिनम्**=प्रज्ञावाला है। (२) यह मरुद्गण **अर्यमणं न**=जिस प्रकार काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नियमन करनेवाला है (ऋरीन् यच्छति), उसी प्रकार **मन्द्रम्**=आनन्द को देनेवाला है। यह मरुद्गण **विष्णुं न**=विष्णु के समान है (विष् व्याप्तौ) सारे शरीर में व्याप्त होकर धारण करनेवाला है।

भावार्थ—प्राणसाधना से सशक्त बनकर हम उत्तम कर्मोंवाले होते हैं। पापों का निवारण करते हुए प्रज्ञावाले बनते हैं। काम-क्रोध आदि का नियमन करके आनन्द का अनुभव करते हैं। ये प्राण विष्णु के समान धारक हैं। इन्हें धनों के प्रदान के लिये आराधित करें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**मरुतो लिङ्गोक्ता वा** ॥
छन्दः—**निचृदतिजगती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

प्रसुप्त शक्तियों का जागरण

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत् सुवेदा नो वसू करत्॥ १५॥

(१) **न**=(इदानीं) अब **मारुतं शर्धः**=मरुद्गण का यह शत्रु हिंसक बल **त्वेषम्**=दीप्त है, **तुविष्वणि**=महान् स्वनवाला है, अर्थात् प्रभु की आराधना करनेवाला है। **अनर्वाणम्**=यह शत्रुओं से अनाक्रान्त है और **पूषणम्**=पोषक है। **यथा**=जैसे यह मरुद्गण (=प्राणसमूह) **शता**=सैंकड़ों धनों को **सं चर्षणिभ्यः**=श्रमशील मनुष्यों के लिये **कारिषत्**=करता है। यह मरुद्गण **सहस्रा सम्**=हजारों धनों को सम्यक् करता है। (२) यह प्राणसमूह **गूढा**=हमारे अन्दर छिपे रूप में, प्रसुप्त रूप में पड़े **वसु**=वसुओं को **आ**=समन्तात् **आविः करत्**=प्रकट व जागरित करता है। **नः**=हमारे लिये इन **वसु**=वसुओं को **सुवेदा**=सुलभ **करत्**=करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शत्रुओं का विनाश होता है। प्रसुप्त शक्तियाँ जागरित होती हैं। सहस्रशः ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है और प्रभु स्तवन की वृत्ति बनती है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥
स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु शंसन व शत्रु संहार

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे। अघा अर्यो अरातयः॥ १६॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **मा आद्रव**=मुझे प्राप्त होइये। **अघाः**=(आहन्तीः) हमारा हनन करनेवाली **अर्यः**=(अभिगन्तीः) आक्रमणकारिणी **अरातयः**=काम-क्रोध आदि शत्रु-सेनाओं को **उपद्रव**=उपद्रुत करिये, बाधित करिये। (२) शत्रुओं के बाधन के उद्देश्य से ही मैं **नु**=अब **ते**=आपके **अपिकर्णे**=(कर्णावपिगते) कानों के समीप **शंसिषम्**=शंसन करनेवाला बनूँ। 'अपिकर्णे' यह शब्द इसी भाव का द्योतक है कि मैं आपकी उपासना में स्थित होऊँ। आपकी उपासना में स्थित हुआ-हुआ आपका शंसन करूँ और आपके गुणों का गायन करूँ। शत्रुओं को बाधित करने का यही तो उपाय है।

भावार्थ—हम प्रभु का शंसन करें। प्रभु हमारे शत्रुओं का बाधन करेंगे।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥
स्वरः—**मध्यमः** ॥

'काकम्बीर वनस्पति' का अविनाश

मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः॥ १७॥

(१) **काकम्बीरं (काकानां भर्तारं)**=कौओं के भरण करनेवाले **वनस्पतिम्**=वृक्ष रूप मुझे, अर्थात् परिवार में छोटे-बड़े कितने ही व्यक्तियों को पालनेवाले मुझे **मा उद्वृहः**=मत उखाड़िये, मुझे दीर्घ-जीवन प्रदान करिये। **हि**=निश्चय से **अशस्तीः**=(अशंसनीयाः) अशंसनीय-अशुभ बातों को **विनीनशः**=विशेषरूप से नष्ट करिये। अशुभों के विनाश से हमारा जीवन शुभ

बने। (२) **उत**=और हे प्रभो! **सूरः**=उत्तम प्रेरणा देनेवाले आप (षू प्रेरणे) **मा अहः**=हमारा (मा हर्षित्) मत हरण करिये। हमें सदा उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराइये, इससे आप हमें वञ्चित मत करिये। **एवा चन**=ऐसा होने पर ही उपासक लोग **वेः ग्रीवाः आदधते**=(वि=a horse) इन्द्रियाश्वों की गरदनों को धारण करते हैं, अर्थात् इन इन्द्रियाश्वों को वश में कर पाते हैं। प्रभु प्रेरणा से सशक्त बनने पर इन इन्द्रियों को वश में करने का सम्भव होता है।

भावार्थ—हम परिवार का उत्तम भरण करते हुए दीर्घजीवी बनें। अशुभों का विनाश करते हुए शुभ जीवनवाले बनें। प्रभु से प्रेरणा प्राप्त करते हुए हम सदा इन्द्रियाओं को वश में रखें।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**पूषा**॥ छन्दः—**निचृदुष्णिक्**॥
स्वरः—**ऋषभः**॥

सख्यम्

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम्। अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः॥ १८॥

(१) हे (पूषन्) पोषक प्रभो! **दृतेः इव**=(दृति=a cloud) मेघ के समान जो आप हैं, उन **ते**=आपका **सख्याम्**=सख्य-मित्रभाव **अवृकं अस्तु**=सब बाधकों से रहित हो, अविच्छिन्न हो, सदा समानरूप से हमें प्राप्त हो। (२) उन आपका सख्य हमें प्राप्त हो जो **अच्छिद्रस्य**=सब छिद्रों से, दोषों से शून्य हैं, **दधन्वतः**=धारण कर रहे हैं। **सुपूर्णस्य**=सम्यक् पूर्ण हैं और **दधन्वतः**=धारण कर रहे हैं। मेघ के समान हमारे पर सब सुखों का वर्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु के साथ हमारी मित्रता अविच्छिन्न हो। प्रभु हमारे पर सुखों का वर्षण करनेवाले हों। वे हमें भी अपने समान निर्दोष व पूर्ण बनाएँ।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**पूषा**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥
स्वरः—**मध्यमः**॥

मर्त्यैः परः, देवैः समः

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया। अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा॥ १९॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **मर्त्यैः परः असि**=सब मनुष्यों से परस्तात् स्थित हैं, मुक्त पुरुष भी आपकी समता नहीं कर सकते **उत**=और **श्रिया**=श्री के दृष्टिकोण से **देवः समः**=सब देवों के समान हैं, सूर्य, चन्द्र, तारे व अन्य सब देवों की दीप्ति आप से ही तो होती है। (२) हे पोषक प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमें **पृतनासु**=संग्रामों में **अभिख्यः**=अनुग्रह दृष्टि से देखिये, आप से ध्यान किये गये हम संग्रामों में विजयी हों। आप **नूनम्**=अब भी **यथा पुरा**=पहले की तरह **अवा**=हमारा रक्षण करिये। आप ही सदा उपासकों का रक्षण करते आये हैं। हम भी उपासक बनें और आपके रक्षणीय हों।

भावार्थ—मनुष्य पूर्ण उन्नत होकर भी प्रभु से न्यून ही रहता है। सूर्यादि सब देव प्रभु की दीप्ति से दीप्त हैं। प्रभु ही संग्रामों में हमारा रक्षण करते हैं। हम सदा प्रभु द्वारा रक्षित हों।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्**॥
स्वरः—**गान्धारः**॥

वामी सूनृता (वाक्)

वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता। देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः॥ २०॥

(१) हे **धूतयः**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाले, **प्रयज्यवः**=प्रकृष्ट यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त होनेवाले **मरुतः**=प्राणो! **देवस्य**=दिव्य गुणों से युक्त **वा**=व **ईजानस्य मर्त्यस्य**=यज्ञशील मनुष्य की **वामी**=सुन्दर **सूनृता**=प्रिय सत्यात्मिका वाणी **वामस्य**=सुन्दर धनों की **प्रणीतिः अस्तु**=प्रणेत्री हो। (२) प्राणसाधना करने से काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश होता है और यज्ञादि कर्मों की वृत्ति उत्पन्न होती है। यह प्राणसाधक देव बनता है तथा यज्ञशील मनुष्य बनता है। यह प्राणसाधक सदा सुन्दर सूनृत वाणीवाला बनता है। सुन्दर धनों को प्राप्त करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना वासनाओं को विनष्ट करके हमें यज्ञशील बनाती है। इस से हमारी वाणी सूनृत बनती है। प्राणसाधना हमें सुन्दर धनों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**महाबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

ज्ञान-बल

स॒द्यश्चि॒द्यस्य॑ च॒र्कृति॒: परि॒ द्यां दे॒वो नैति॒ सूर्यः॑ ।
त्वे॒षं शवो॑ दधिरे॒ नाम॑ य॒ज्ञियं॑ म॒रुतो॑ वृत्र॒हं शवो॒ ज्येष्ठं॑ वृत्र॒हं शवः॑ ॥ २१ ॥

(१) **यस्य**=जिस मरुद्गण की, प्राणसमूह की **चर्कृतिः**=क्रिया **सद्यः चित्**=शीघ्र ही **द्याम्**=द्युलोक में **परि एति**=चारों ओर प्राप्त होती है, उसी प्रकार **न**=जैसे कि **देवः सूर्यः**=यह प्रकाशमय सूर्य द्युलोक में प्राप्त होता है। प्राणसाधना से अशुद्धियों का नाश होकर ज्ञानदीप्ति प्राप्त होती है, मस्तिष्क रूप द्युलोक ज्ञानरूप सूर्य से जगमगा उठता है। (२) **मरुतः**=ये प्राण **त्वेषम्**=दीप्त **नाम**=शत्रुओं के नमानेवाले **यज्ञियम्**=संगतिकरण योग्य **शवः**=बल को **दधिरे**=धारण करते हैं। उस **शवः**=बल को धारण करते हैं जो **वृत्रहम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाला है। यह **वृत्रहं शवः**=वासना को विनष्ट करनेवाला बल **ज्येष्ठम्**=प्रशस्यतम है।

भावार्थ—प्राणसाधना से मस्तिष्क रूप द्युलोक ज्ञानसूर्य से चमकता है और शरीर वासनाओं के विनाशक प्रशस्यतम बल से युक्त होता है।

ऋषिः—**शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिकं पृश्निसूक्तम्)**॥ देवता—**पृश्निर्वा भूमी वाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

पूर्ण मिदम्

स॒कृद्ध द्यौर॑जायत स॒कृद्भूमि॑रजायत। पृश्न्या॑ दु॒ग्धं स॒कृत्पय॒स्तद॒न्यो नानु॑ जायते ॥ २२ ॥

(१) **ह**=निश्चय से **द्यौः**=यह द्युलोक **सकृत्**=एक बार **अजायत**=बनाया गया। प्रभु के ज्ञान व बल से प्रकृति के द्वारा इस द्युलोक का निर्माण हुआ और वैसा ही निर्माण सदा से होता चला आ रहा है। इसके निर्माण में अगली-अगली सृष्टि में कोई उत्कर्ष व सुधार कर दिया जाता हो सो बात नहीं है। प्रथम रचना में कमी के अनुभव होने पर उसके दूर करने के लिये यत्न होते हैं। मानव रचनाओं में ऐसा होता ही है। प्रतिवर्ष मोटर इंजन का नया रूप (New Model) हमारे सामने आता है। मानव ज्ञान की अपूर्णता से ऐसा होता ही है, परन्तु प्रभु तो पूर्ण हैं, सो उनकी रचना भी पूर्ण है 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'। इसमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार **सकृत्**=एक बार ही **भूमिः**=यह पृथिवी **अजायत**=प्रादुर्भूत हो गयी। नित्य नये-नये रूपों में यह आती जाये ऐसा नहीं होता 'यथा पूर्णमकल्पत्'। (२) **पृश्न्याः**=(मरुतां मातुः) प्राणसाधकों के जीवनों का निर्माण करनेवाली यह प्रकाश की स्पर्शक वेदवाणी रूप धेनु का **पयः**=ज्ञानदुग्ध **सकृत्**=एक बार

ही **दुग्धम्**=दोहा गया। वेदज्ञान अजरामर है, इसमें परिवर्तन नहीं होता रहता। **तद् अनु**=उस ज्ञान के बाद **अन्यः न जायते**=अन्य ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता। वेदज्ञान को अपूर्ण करने के लिये नया-नया ज्ञान नहीं दिया जाता रहता। यह ज्ञान स्वयं अपने में पूर्ण है, उसमें किसी परिवर्तन की अपेक्षा नहीं होती।

भावार्थ—प्रभु की बनायी हुई सृष्टि पूर्ण है, परिवर्तन की अपेक्षा नहीं रखती। प्रभु से दिया गया ज्ञान भी पूर्ण है, वह भी परिवर्तनापेक्षी नहीं।

इस ज्ञान को प्राणसाधना के द्वारा (योग द्वारा) प्राप्त करनेवाला व्यक्ति 'ऋजिश्वा' बनता है, सदा ऋजुमार्ग से गति करता है (ऋजु श्वि गतौ) यह 'ऋजिश्वा' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुक्षत्रासः—'वरुणः मित्रः अग्निः'

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः॥ १॥

(१) **नव्यसीभिः गीर्भिः**=अत्यन्त स्तुत्य वाणियों से **सुव्रतं जनम्**=उत्तम कर्मोंवाले लोगों का **स्तुषे**=स्तवन करता हूँ। वस्तुतः इन सुव्रत जनों का आदर हमें भी सुव्रत बनने की प्रेरणा देता है। मैं **सुम्नयन्ता**=हमारे सुखों की कामना करते हुए **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुण का स्तवन करता हूँ। वस्तुतः 'स्नेह व निर्द्वेषता' के भाव हमारे जीवनों को सुखी बनानेवाले हैं। (२) **ते**=वे सुव्रत जन तथा मित्र और वरुण, स्नेह व निर्द्वेषता के देव, **आगमन्तु**=हमें प्राप्त हों। **ते**=वे **इह**=इस जीवन में **श्रुवन्तु**=हमारी आराधना को सुनें। अर्थात् हम भी 'सुव्रत, मित्र व वरुण' बन पायें। **वरुणः**=निर्द्वेषता की देवता, **मित्रः**=स्नेह की देवता तथा **अग्निः**=अग्रगति की देवता ये सब **सुक्षत्रासः**=हमें उत्तम बल को देनेवाली हैं। मित्र, वरुण व अग्नि बनकर हम वास्तविक बल का धारण करते हैं।

भावार्थ—हम सुव्रत लोगों का आदर करते हुए स्वयं सुव्रत बनें। स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को धारण करके सुखी हों। ये 'स्नेह, निर्द्वेषता व अग्रगति' के भाव हमें सबल बनायें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दिवः शिशुं, सहसः सूनुम्

विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै॥ २॥

(१) **विशः विशः**=सब प्रजाओं के **अध्वरेषु**=हिंसारहित कर्मों में **ईड्यम्**=प्रभु उपासनीय हैं। **अदृप्त क्रतुम्**=(दृप् माहने) अमूढ प्रज्ञावाले हैं, जिनकी चेतना कभी विलुप्त नहीं होती। **युवत्योः**=इन द्यावापृथिवी में **अरतिम्**=(अभिगन्तारं) गतिवाले हैं। सर्वत्र प्रभु की रचना व रचना का महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। (२) **दिवः शिशुम्**=(दिव् स्तुतौ) स्तोता की बुद्धि को तीव्र करनेवाले हैं 'शो तनूकरणे'। **सहसः सूनुम्**=बल के पुत्र (पुतले=पुञ्ज) हैं। **यज्ञस्य केतुम्**=सब यज्ञों के प्रकाशक हैं। **अरुषम्**=आरोचमान हैं। इन **अग्निम्**=अग्रेणी प्रभु को **यजध्यै**=उपासित करने के लिये मैं यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—सब यज्ञों के प्रकाशन व प्रवर्तक हमारे चेतन सर्वशक्तिमान् प्रभु का हम उपासन करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अहोरात्रौ (दिन व रात)

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने॥ ३॥

(१) इन दिन और रात में भी प्रभु की अद्भुत महिमा का दर्शन होता है। ये **अरुषस्य दुहितरौ**=आरोचमान सूर्य की दुहिताओं के समान हैं। क्योंकि सूर्योदय ही दिन-रात्रि के विभाग का कारण बनता है। ये दिन-रात **विरूपे**=भिन्न-भिन्न रूपवाले हैं, दिन श्वेत है तो रात्रि कृष्णा। इनमें **अन्या**=एक रात्रि **स्तृभिः**=सितारों से **पिपिशे**=अवयवोंवाली होती है तारों से यह रात्रि संश्लिष्ट होती है। **अन्या**=दूसरी अहरात्मिका (दिनरूप) दुहिता **सूरः**=(सूर्येण) सूर्य से संश्लिष्ट होती है। (२) ये दिन-रात **मिथस्थुरा**=परस्पर एक-दूसरे का हिंसन करनेवाले हैं। सूर्योदय होते ही रात्रि भाग जाती है और सूर्यास्त पर रात्रि के आते ही दिन की वही दशा होती है। **विचरन्ती**=ये निरन्तर गतिवाले हैं। **पावके**=पवित्र करनेवाले हैं। **ऋच्यमाने**=स्तुति किये जाते हुए ये दिन-रात **मन्म**=मननीय **श्रुतम्**=ज्ञान का **नक्षतः**=व्यापन करते हैं। अर्थात् हम दिन-रात में प्रभु का स्तवन करते हैं और स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान का वर्धन करते हैं।

भावार्थ—सूर्य की दुहिता रूप ये दिन व रात्रि भी हमारे जीवन को पवित्र बनानेवाली हैं। इनमें हम प्रभु का स्तवन करें व स्वाध्याय द्वारा ज्ञान का वर्धन करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नियुतः पत्यमानः

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो॥ ४॥

(१) **बृहती**=हमारे वर्धन की कारणभूत **मनीषा**=स्तुति **वायुम्**=उस गति के द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करनेवाले प्रभु की **अच्छा**=ओर (प्र गच्छेत्) जाये। उस प्रभु की ओर जो **बृहद्रयिम्**=महान् ऐश्वर्यवाले हैं, **विश्ववारम्**=सब से वरने के योग्य हैं, **रथप्राम्**=हमारे शरीर-रथों का पूरण करनेवाले हैं। (२) हे **प्रयज्यो**=प्रकर्षेण द्रष्टव्य प्रभो! आप **द्युतद्यामा**=दीप्त रथवाले हैं। **नियुतः पत्यमानः**=हमारे इन इन्द्रियाश्वों के ऐश्वर्यवाले हैं, इनके स्वामी आप ही हैं। आप ही हमें इन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं। **कविः**=क्रान्तदर्शी हैं। और **कविम्**=क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुषों को ही **इयक्षसि**=प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करायेंगे। उत्कृष्ट इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'विरुक्मान्' रथ

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च॥ ५॥

(१) **अश्विनोः**=प्राणापान का **यः**=जो **रथः**=रथ है, **सः**=वह **मे वपुः**=मेरे शरीर को **छदयत्**=तेज से आवृत करनेवाला हो। अर्थात् मैं इस शरीर रथ में प्राणसाधना द्वारा तेजस्विता का स्थापन करूँ। यह शरीर-रथ ऐसा बने कि **विरुक्मान्**=विशिष्ट दीप्तिवाला हो। **मनसा युजानः**=मन से युक्त हो। मन रूप उत्तम लगामवाला हो। (२) **येन**=जिस रथ से **नरः**=हमें आगे-आगे ले चलनेवाले **ना सत्या**=असत्यों से दूर रहनेवाले प्राणापानो! आप **इषयध्यै**=सब इष्ट कामनाओं को प्राप्त कराने के लिये **वर्तिः याथः**=इस शरीर गृह को प्राप्त होते हो और **तनयाय**=शक्तियों के विस्तार के लिये होते हो **च**=तथा **त्मने**=आत्म प्राप्ति के लिये होते हो।

भावार्थ—हम इस शरीर को प्राणसाधना के द्वारा तेजस्वी व दीप्त बनायें। उत्तम मन से युक्त हुआ-हुआ यह शरीर शक्तियों के विस्तारवाला व अन्ततः प्रभु प्राप्तिवाला हो।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मेघ व वायु

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम्॥ ६॥

(१) **वृषभा**=वृष्टि के करनेवाले **पर्जन्यवाता**=मेघ व वायु **पृथिव्याः**=अन्तरिक्षलोक से **अप्यानि**=आसव्य प्राप्त करने योग्य उत्तम **पुरीषाणि**=जलों को **जिन्वतम्**=प्रेरित करते हैं। प्रभु ने यह वृष्टि द्वारा प्राप्त होनेवाले जल की भी क्या ही सुन्दर व्यवस्था की है, यह जल सचमुच देवों के पेय अमृत के समान होता है। (२) **सत्यश्रुतः**=सत्यज्ञान का श्रवण करनेवाले **कवयः**=क्रान्तदर्शी पुरुषो! आप **यस्य गीर्भिः**=जिस प्रभु की वाणियों से **जगतः**=जंगम व **स्थातः**=स्थावर **जगत्**=(जगतः) जगत् का **आकृणुध्वम्**=आभिमुख्येन ज्ञान प्राप्त करते हो, साक्षात् ज्ञान प्राप्त करते हो। इस जगत् का ठीक ज्ञान होने से उसका समुचित उपयोग करते हुए तुम अपने कल्याण को सिद्ध करते हो।

भावार्थ—प्रभु ने मेघ व वायु द्वारा अन्तरिक्ष से जल के वर्षण की व्यवस्था की है। इसी प्रकार प्रभु का यह सारा स्थावर-जंगम संसार बड़ा उत्तम है। प्रभु की वाणियों से ही इसका ठीक ज्ञान प्राप्त होता है और हम इस जगत् से कल्याण को सिद्ध करते हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**बाह्म्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

वीर पत्नी सरस्वती

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात्।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत्॥ ७॥

(१) **वीरपत्नी**=वीरों का पालन करनेवाली **सरस्वती**=ज्ञान देवता **पावीरवी**=हमारे जीवनों का शोधन करनेवाली है। **कन्या**=हमारे जीवनों को दीप्त करती है (कन दीप्तौ)। **चित्रायुः**=(चित्) ज्ञानयुक्त जीवन को प्राप्त कराती है। यह **धियं धात्**=हमारे में बुद्धि का स्थापन करे। (२) यह सरस्वती **ग्नाभिः**=वेदवाणी के छन्दों से **सजोषाः**=प्रीतिवाली होती हुई **गृणते**=स्तोता के लिये **अच्छिद्रं शरणम्**=निर्दोष शरीररूप गृह को तथा **दुराधर्षं शर्म**=शत्रुओं से अधर्षणीय सुख को **यंसत्**=देती है।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना हमारे जीवन को पवित्र दीप्त व ज्ञानयुक्त करती है। यह हमारे जीवनों में बुद्धि का स्थापन करती है। शरीररूप गृह को निर्दोष बनाती है तथा शत्रुओं से

अधर्षणीय सुख को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

शुरुधः चन्द्राग्राः (गाः)

पृथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम्।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥ ८ ॥

(१) जीव सामान्यतः प्रभु को भूले रहता है, परन्तु जब कोई कष्ट आता है या समस्या उठ खड़ी होती है, तो प्रभु को याद करता है। बच्चा खेल में मस्त है। भूख लगती है तो माता को याद करता है। इसी प्रकार **कामेन कृतः**=उस-उस कामना से वशीकृत हुआ-हुआ स्तोता **पथः पथः परिपतिम्**=सब मार्गों के स्वामी व रक्षक **अर्कम्**=उपासनीय प्रभु को **वचस्या**=स्तुति के द्वारा **अभ्यानट्**=व्याप्त करता है, स्तुति के द्वारा प्रभु को प्राप्त होता है। (२) **सः**=वह **पूषा**=सबका पोषण करनेवाले प्रभु **नः**=हमारे लिये **शुरुधः**=(शुग्रुधः) शोकों को दूर करनेवाली **चन्द्राग्राः**=आह्लाद है अग्रभाग में जिनके ऐसी ज्ञान की वाणियों को (गाः) **रासत्**=देते हैं और **धियं धियम्**=प्रत्येक ज्ञान को **प्रसीषधाति**=हमारे लिये सिद्ध करते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करायेंगे और हमारी बुद्धियों को प्रशस्त करेंगे।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

होता-अग्नि-विभावा

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम्।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ९ ॥

(१) **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला व्यक्ति **ऋभ्वम्**=(उरु भासमानम्) खूब दीप्त **देवम्**=प्रकाशमय प्रभु को **यक्षत्**=पूजित करता है, जो प्रभु **प्रथमभाजम्**=प्रथम स्थान का सेवन करनेवाले हैं, सब ज्ञान शक्ति आदि गुणों के दृष्टिकोण से प्रथम स्थान में स्थित हैं। **यशसम्**=यशस्वी हैं। **वयोधाम्**=उपासकों के लिये उत्कृष्ट जीवन का धारण करनेवाले हैं। **सुपाणिम्**=उत्तम हाथों व कर्मोंवाले हैं और **सुगभस्तिम्**=उत्तम ज्ञानरश्मियोंवाले हैं। (२) **अग्निः**=प्रगतिशील, **विभावा**=विशिष्ट दीप्तिवाला पुरुष **पस्त्यानां यजतम्**=सब गृहवासियों के पूज्य, **सुहवम्**=सुगमता से पुकारने योग्य **त्वष्टारम्**=उस निर्माता प्रभु को (यक्षत्) पूजता है।

भावार्थ—हम 'दानपूर्वक अदन करनेवाले, प्रगतिशील व विशिष्ट दीप्तिवाले' बनकर ही प्रभु का उपासन करते हैं। यह उपासना हमें 'अग्रणी-यशस्वी-उत्कृष्ट जीवनवाला-कार्यकुशल-ज्ञानरश्मि सम्पन्न' बनाता है।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

दिन-रात 'भुवन पिता' का स्तवन

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ १० ॥

(१) **आभिः गीर्भिः**=इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुतिवाणियों से **भुवनस्य पितरम्**=सारे ब्रह्माण्ड के रक्षक रुद्र रोगों के द्रावक प्रभु को **दिवा वर्धया**=दिन में बढ़ानेवाला हो, उस प्रभु

का स्तवन करनेवाला हो। **रुद्रम्**=इस दुःख द्रावक प्रभु को ही **अक्तौ**=रात्रि में इन ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तुति वाणियों से बढ़ा। (२) **कविना**=क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुषों से **इषितासः**=प्रेरित हुए-हुए हम इस **बृहन्तम्**=महान् **ऋष्वम्**=दर्शनीय **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले **सुषुम्नम्**=उत्तम आनन्दमय प्रभु को **ऋधग्**=सत्यस्वरूप में (truely) **हुवेम**=पुकारें व पूजें।

भावार्थ—हम दिन-रात सब कार्यों को करते हुए प्रभु का पूजन करें। प्रभु ही ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं। सब रोगों के द्रावक हैं। ज्ञानी लोग हमें इस महान् दर्शनीय अजर आनन्दमय प्रभु के उपासन के लिये ही प्रेरित करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'युवा कवि यज्ञिय' मरुत्

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम्।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत्॥ ११ ॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! आप **युवानः**=बुराई को दूर करनेवाले व अच्छाई को मिलानेवाले हो। **कवयः**=क्रान्तप्रज्ञ व बुद्धिमान् हो। **यज्ञियासः**=यज्ञशील हो। **गृणतः**=स्तोता की **वरस्याम्**=वरणीय स्तुति को **आगन्त**=प्राप्त होते हो। प्राणसाधना के द्वारा (क) दुरितों का दूरीकरण होकर भद्रों की प्राप्ति होती है। (ख) बुद्धि की सूक्ष्मता प्राप्त होती है, (ग) यज्ञशीलता की वृद्धि होती है, (घ) प्रभु स्तवन की ओर झुकाव बढ़ता है। (२) **इत्था**=इस प्रकार **अंगिरस्वत्**=गमनशील की तरह **नक्षन्तः**=हमारे अन्दर गति करते हुए **नरः**=उन्नतिपथ पर ले-जानेवाले प्राणो! आप **अचित्रम्**=(अ चित्) अप्रकाशित भी, अचेतनावाले भी हमारे हृदयों को **जिन्वथ**=प्रीणित करते हो। प्राणसाधना से एक-एक अंग में स्फूर्ति का वर्धन होता है। हृदयों में प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना ही सब बुराइयों को दूर करनेवाली व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाली है। यह हमें 'ज्ञानी, यज्ञशील व स्तुतिप्रवण' बनाती है। यही हमारे हृदयों में प्रभु के प्रकाश को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराड्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तृभिर्न नाकम्

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम्।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः॥ १२ ॥

(१) **वीराय**=शत्रुओं के कम्पक=(वि+ईर), **तवसे**=बलवान्, **तुराय**=त्वरित गमनवाले, स्फूर्तिवाले इस प्राणापान के लिये **प्र अजा**=तू प्रकर्षेण गतिवाला हो, शीघ्रता से प्राणसाधना में प्रवृत्त होनेवाला हो, उसी प्रकार **इव**=जैसे कि सायंकाल **पशुरक्षिः**=पशुओं का रक्षक **यूथा**=पशुसमूह को **अस्तम्**=गृह की ओर प्रेरित करता है। (२) **सः**=वह प्राणगण **वचनस्य**=इस स्तुतिवचनों के वक्ता **विपः**=मेधावी पुरुष के मस्तिष्क शरीर में **श्रुतस्य पिस्पृशति**=ज्ञानों का इस प्रकार सम्पर्क करता है, **न**=जैसे कि प्रभु **स्तृभिः**=नक्षत्रों से, सितारों से **नाकम्**=अन्तरिक्ष को (द्युलोक को) सजा (चमका) देते हैं। अर्थात् प्राणसाधना से मस्तिष्क ज्ञान-विज्ञान के नक्षत्रों से चमक उठता है।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें 'वीर, बलवान, स्फूर्तिवाला व ज्ञान-विज्ञान से दीप्त' बनाती है।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

राया तन्वा तना च

यो रजांसि विमुमे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च॥ १३॥

(१) **यः**=जो प्रभु **बाधिताय**=आसुरभावों से पीड़ित किये जानेवाले **मनवे**=मनुष्य के रक्षण के लिये **पार्थिवानि रजांसि**=इन पार्थिव लोकों को **चित्**=निश्चय से **त्रिः विममे**=' इन्द्रियों, मन व बुद्धि ' के क्रम से तीन बार **विममे**=विशिष्टरूप से बनाता है। अर्थात् इन्द्रियों, मन व बुद्धि रूप उपकरणों को प्राप्त कराके मनुष्यों का कल्याण करता है। (२) **तस्य**=उस **ते**=तेरे द्वारा **उपदद्यमाने**=दिये जा रहे **शर्मन्**=इस गृह में **राया**=साधनभूत धनों से **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार से युक्त नीरोग शरीर से **च**=तथा **तना**=उत्तम सन्तानों के साथ **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—प्रभु हमें उत्तम इन्द्रियों, मन व बुद्धि को प्राप्त कराते हैं। प्रभु से दिये गये इस गृह में हम ' धन, शक्ति विस्तार व उत्तम सन्तानों ' के साथ आनन्दयुक्त होकर रहें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अन्न, जल, ओषधि व धन

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात्।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये॥ १४॥

(१) **अहिर्बुध्न्यः**=(बुध्नं अन्तरिक्षं, तत्र एति सा०) सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में गतिवाला वह प्रभु **अर्कैः**=अर्चन साधन मन्त्रों के साथ **नः**=हमारे लिये **तत्**=उस **चनः**=अन्न को **अद्भिः**=जलों के साथ **धात्**=धारण करे। हमारे लिये मन्त्रों के ज्ञान के साथ अन्न व जल को प्रभु प्राप्त करायें। **पर्वतः**=वह पूरयिता सब कमियों को दूर करनेवाले प्रभु **तत्**=उस अन्न-जल को धारण करें। **सविता**=प्रेरक प्रभु **तत्**=उस अन्न-जल को धारण करें। (२) **रातिषाचः**=दान का सेवन करनेवाले, दानशील, सब देव **ओषधीभिः**=ओषधियों के साथ उस अन्न-जल को प्राप्त करायें तथा **भगः**=ऐश्वर्य के पुञ्ज **पुरन्धिः**=अनन्त प्रज्ञा व कर्मोंवाले प्रभु हमें **राये**=ऐश्वर्य के लिये **अभिप्रजिन्वतु**=प्रेरित करें। इस ऐश्वर्य का विनियोग हम पालक व पूरक कर्मों में ही करें।

भावार्थ—प्रभु हमारे लिये ज्ञान के साथ उत्तम अन्न व जल को प्राप्त करायें। ओषधियों के साथ पालक व पूरक कर्मों के साधनभूत ऐश्वर्यों को भी प्राप्त करायें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—अतिजगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

कैसे धन? कैसा गृह?

नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम्।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीरभ्य१श्नवाम॥ १५॥

(१) हे सब देवो! **नु**=अब **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=उस धन को **दात**=दीजिये। जो **रथ्यम्**=शरीररूप रथ को उत्तम बनानेवाला हो। **चर्षणिप्राम्**=श्रमशील मनुष्यों को पूरण करनेवाला हो, जिस धन के द्वारा हम श्रमशील बनें और अपनी कमियों को दूर करनेवाले हों। **पुरुवीरम्**=बहुत वीर सन्तानोंवाला हो, जिस धन का प्रभाव हमारे सन्तानों में वीरता को जन्म देनेवाला हो और जो धन **महः ऋतस्य**=महान् यज्ञों का **गोपाम्**=रक्षक हो, जिस धन के द्वारा यज्ञों का प्रवर्तन

होता रहे। (२) सब देव हमारे लिये **क्षय दात**=उस शरीररूप गृह को दें जो **अजरम्**=जीर्ण शक्तियोंवाला न हो। **च**=और **येन**=जिसके द्वारा **अदेवीः स्पृधः**=अदिव्य-आसुरी-वासनाओंरूप शत्रुओं को **अभि क्रमाम**=अभिक्रान्त करनेवाले हों। और जिस शरीर के द्वारा **आदेवीः**=प्राप्त हुई हैं दिव्य भावनाएँ जिनको उन **विशः**=प्रजाओं को **अभ्यश्नवाम**=प्राप्त करें।

भावार्थ—हमें वह धन प्राप्त हो जो हमें 'उत्तम शरीरवाला, श्रमशील, वीर सन्तानोंवाला व यज्ञरक्षक' बनाये। हमें वह शरीर गृह प्राप्त हो जो कि अजीर्ण शक्तिवाला, आसुरी भावों से अनाक्रान्त व दिव्य भावनाओंवाला हो।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'ऋजिश्वा' है—

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

देवमाता व देवों का आह्वान

हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम्।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातृन्देवान्त्सवितारं भगं च॥ १॥

(१) **वः**=तुम्हारे जीवन को **देवीम्**=प्रकाशमय बनानेवाली **अदितिम्**=अदीना देवमाता को **हुवे**=पुकारता हूँ। वस्तुतः **'अ-दितिम्'**=अखण्डन स्वास्थ्य का अभंग ही सब दिव्य गुणों केविकास का आधार बनता है। इसी अदिति को मैं पुकारता हूँ, प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता हूँ। **मृडीकाय**=सुख की प्राप्ति के लिये **वरुणम्**=द्वेष निवारण की देवता को **मित्रम्**=स्नेह की देवता को तथा **अग्निम्**=प्रगति की देवता को पुकारता हूँ। निर्द्वेष व प्रेमय बनकर मैं निरन्तर आगे बढ़ता हूँ। यही तो सुख प्राप्ति का मार्ग है। (२) मैं सुख प्राप्ति के लिये **अभिक्षदाम्**=शत्रुओं के हिंसक **सुशेवम्**=उत्तम कल्याण को करनेवाले **अर्यमणम्**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध आदि के नियन्ता देव को पुकारता हूँ। अन्य सब **त्रातॄन्**=रक्षा करनेवाले **देवान्**=देवों को, दिव्यभावों को **च**=तथा **सवितारं भगम्**=प्रेरक उपासनीय (भज सेवायाम्) प्रभु को पुकारता हूँ।

भावार्थ—मैं स्वस्थ बनूँ। निर्द्वेषता, स्नेह व प्रगतिशीलतावाला मेरा जीवन हो। शत्रुहिंसक सुखकारी नियमन के भाव को प्रेरणा देनेवाले को, सब दिव्यगुणों को प्राप्त करने के लिये यत्नशील बनूँ। प्रेरक प्रभु की उपासना करूँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अनागास्त्व

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान्।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः॥ २॥

(१) हे **सुमहः**=शोभन दीप्तिवाले **सूर्य**=(सुवति) सबके प्रेरक प्रभो! आप **अनागास्त्वे**=निरपराधता के निमित्त, हमारे जीवनों को अपराध शून्य बनाने के निमित्त **देवान्**=दिव्य वृत्तिवाले पुरुषों को **वीहि**=(कामयस्व)=हमारे लिये प्राप्त कराइये। उन देवों को जो **सुज्योतिषः**=उत्तम ज्योतिवाले हैं तथा **दक्षपितॄन्**=निपुण पितर हैं, कुशलता से रक्षण करनेवाले हैं। (२) हमें उन पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त कराइये **ये**=जो **द्विजन्मानः**=द्विजन्मा हैं, जिन्होंने पितृकुल के बाद आचार्यकुल से जन्म लिया है। **ऋतसापः**=ऋत का सेवन करनेवाले हैं। **सत्याः**=सत्य जीवनवाले, **स्वर्वन्तः**=प्रशस्त प्रकाशवाले हैं। **यजताः**=यज्ञशील हैं। **अग्निजिह्वाः**=अग्नि के समान तेजस्वी

वाणीवाले हैं। जिनका एक-एक वचन अग्नि की तरह प्रकाश को देनेवाला व बुराइ को भस्म करनेवाला है।

भावार्थ—ज्योतिर्मय यज्ञशील पुरुषों के सम्पर्क में हमारा जीवन भी अपराध शून्य बने।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'क्षत्रं, शरणं, वरिवः, अनेहः'

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः॥ ३॥

(१) **उत**=और **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **उत**=विशाल **क्षत्रम्**=बल को **करथः**=करते हैं। ये **सुषुम्ने**=उत्तम सुखों को प्राप्त करानेवाले **रोदसी**=द्यावापृथिवी **बृहत्**=वृद्धि के कारणभूत **शरणम्**=गृह को करते हैं। (२) हे द्यावापृथिवी! ऐसा करो कि **यथा**=जिससे **नः**=हमारे लिये **महः वरिवः**=महनीय धन को करनेवाले होवो। हे **धिषणे**=धारण करनेवाले द्यावापृथिवी! आप **अस्मे क्षयाय**=हमारे उत्तम निवास के लिये **अनेहः**=निष्पापता को करिये।

भावार्थ—द्यावापृथिवी की अनुकूलता से हम 'विशाल बल, वृद्धि के कारणभूत गृह, महनीय धन तथा निष्पापता' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वसवः अधृष्टाः

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान्॥ ४॥

(१) **'रुद्र'**=सब रोगों का द्रावण करनेवाला है। प्राण (मरुत्) इस रुद्र के पुत्र हैं, ये ही वस्तुतः रोगों को दूर भगाते हैं। इनसे प्रार्थना करते हैं कि हे **रुद्रस्य सूनवः**=रुद्र पुत्र प्राणो! **आहूतासः**=पुकारे गये आप **नः**=हमारे लिये **अद्या**=आज **नमन्ताम्**=प्राप्त हों (आगच्छन्तु सा०)। आप **वसवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले हो **अधृष्टाः**=शत्रुओं से आपका धर्षण नहीं किया जाता। (२) **यत्**=चाहे हम **अर्भे**=छोटे **महति वा**=या बड़े **बाधे**=संग्राम में **ईम्**=निश्चय से **हितासः**=हम स्थित होते हैं, तो **देवान्**=इन दिव्य गुणोंवाले, रोगों को जीतने की कामनावाले, **मरुतः**=प्राणों को **अह्वाम**=पुकारते हैं। रोगों के साथ होनेवाले संग्राम 'अर्भ' है, वासनाओं के साथ चलनेवाले संग्राम 'महान्'। इन सब संग्रामों में विजय, इन प्राणों के द्वारा ही होती है।

भावार्थ—हम प्राणों को पुकारते हैं। ये हमें नीरोग बनाकर उत्तम निवासवाला बनाते हैं तथा वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देते।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'समृद्ध दीप्त शुभ' जीवन

मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते॥ ५॥

(१) **येषु**=जिन मरुतों (प्राणों) की साधना के होने पर **नु**=अब **देवी**=दिव्यगुणोंवाले **रोदसी**=द्यावापृथिवी, मस्तिष्क व शरीर **मिम्यक्ष**=संगत होते हैं तथा जिन प्राणों के होने पर **अभ्यर्धयज्वा**=(अभ्यर्धयन् यजति) समृद्ध बनाता हुआ और समृद्धि के द्वारा यज्ञ प्रवृत्त करता

हुआ **पूषा**=पोषण का देव **सिषक्ति**=हमारा सेवन करता है। अर्थात् प्राणसाधना से (क) मस्तिष्क व शरीर दोनों सुन्दर बनते हैं, (ख) हम समृद्धि को प्राप्त करके यज्ञशील होते हैं। (२) हे **मरुतः**=प्राणो! **हवं श्रुत्वा**=पुकार को सुनकर **यद् ह**=जब निश्चय से **याथ**=तुम हमारे अन्दर गति करते हो, तो **प्रविक्ते**=(विविक्ते) अच्छी प्रकार से निर्णय किये गये, विवेचन किये गये, **अध्वनि**=मार्ग पर चलते हुए **भूमा**=ये प्राणी **रेजन्ते**=चमकते हैं। प्राणसाधना से विवेक ख्याति प्राप्त होती है, यह विवेक हमें उत्तम मार्ग पर ले चलता हुआ दीप्त जीवनवाला बनाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना मस्तिष्क व शरीर को उत्तम बनाती है। इससे समृद्ध होकर हम यज्ञशील बनते हैं। विवेक को प्राप्त होकर उत्तम मार्ग पर चलते हुए दीप्त जीवनवाले बनते हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उपासना से 'ज्ञान व शक्ति' की प्राप्ति

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ६ ॥

(१) हे **जरितः**=स्तोतः! **त्यम्**=उस **वीरम्**=शत्रुकम्पक **गिर्वणसम्**=ज्ञान-वाणियों द्वारा संभजनीय **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को **नवेन ब्रह्मणा**=स्तुत्य वेदज्ञान द्वारा **अभि अर्च**=प्रातः-सायं पूजनेवाला बन। इन ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कर और इनके द्वारा प्रभु का पूजन कर। (२) वे प्रभु **हवं श्रवत् इत्**=हमारी पुकार को सुनते ही हैं। **च**=और **उपस्तवानः**=उपस्तुत होते हुए **वाजान्**=शक्तियों को **रासत्**=देते हैं। **गृणानः**=हृदयस्थरूपेण ज्ञानोपदेश करते हुए वे प्रभु **महः**=तेजस्विता को **उप (रासत्)**=देते हैं। उपासक ज्ञान व शक्ति के मेल से बड़े सुन्दर जीवनवाला बनता है।

भावार्थ—उपासना से उपासक का जीवन ज्ञान व शक्ति से सम्पन्न होता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मातृतमाः आपः

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥ ७ ॥

(१) हे **मानुषीः**=मानवहितकारी **आपः**=जलो! **अमृक्तम्**=अहिंसित **ओमानम्**=रक्षण को **धात**=हमारे लिये धारण करो तथा **तोकाय तनयाय**=हमारे पुत्र-पौत्रों के लिये **शं योः**=रोगों के शमन तथा भयों के यावन (=पृथक् करण) का कारण बनो। (२) हे जलो! **यूयम्**=आप **हि**=ही **भिषजः स्थ**=औषध हो। **मातृतमाः**=हमारे जीवनों में उत्कृष्ट शक्तियों का निर्माण करनेवाले हो। **विश्वस्य**=सब **स्थातुः जगतः**=स्थावर जंगम के **जनित्रीः**=विकास व प्रादुर्भाव को करनेवाले हो।

भावार्थ—जलों के ठीक प्रयोग से हमारा जीवन सुरक्षित शान्त व अभय बने। ये जल औषध हैं, माता के समान पुत्र-पौत्रों का हित करनेवाले हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सविता

आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात्।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

(१) **नः**=हमारे लिये **देवः सविता**=यह प्रकाशमय, कर्मों में प्रेरित करनेवाला सूर्य **आजगम्यात्**=प्राप्त हो। जो सूर्य **त्रायमाणः**=हमारा रक्षण करता है। **हिरण्यपाणिः**=हितरमणीय हाथोंवाला है, अपने किरणरूप हाथों में स्वर्ण को लिये हुए है। **यजतः**=संगतिकरण योग्य है। (२) **यः**=जो सूर्य **दत्रवान्**=सब धनोंवाला है। **उषसः न प्रतीकम्**=उषा के मुख के समान है, उषा का प्रारम्भ करनेवाला है। उषा सूर्य का पूर्वाभास ही तो है। यह सूर्य **दाशुषे**=दाश्वान् के लिये, सूर्य के प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिये, सूर्य के सम्पर्क में चलनेवाले के लिये **वार्याणि**=सब वरणीय स्वास्थ्य आदि धनों को **व्युर्णुते**=प्रकट करता है।

भावार्थ—सूर्य हमें रोगकृमियों के आक्रमण से बचाता है, इसकी किरणों में स्वर्ण है, यह हमारे लिये स्वास्थ्य आदि धनों को प्रकट करता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दिव्यगुणों व वीरता की प्राप्ति

उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः॥ ९॥

(१) **उत**=और हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज **अग्ने**=परमात्मन् **त्वम्**=आप **अद्या**=आज **नः**=हमारे **अस्मिन् अध्वरे**=इस जीवनयज्ञ में **देवान् आववृत्याः**=सब देवों को आवृत्त करिये, प्राप्त कराइये। हमारा जीवन आपके अनुग्रह से दिव्यगुण-सम्पन्न बने। (२) **अहम्**=मैं **सदं इत्**=सदा ही **ते**=आपके **रातौ**=दान में **स्याम्**=होऊँ, आपके दान का मैं सदा पात्र बनूँ। हे **अग्ने**=परमात्मन्! **तव अवसा**=आपके रक्षण से मैं **सुवरिः**=उत्तम वीरतावाला व वीर सन्तानोंवाला बनूँ।

भावार्थ—प्रभु हमारे जीवनयज्ञ को दिव्यगुणमय बनायें। प्रभु के दानों के हम पात्र बनें। प्रभु से रक्षित होते हुए हम सुवीर बनें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

महान् अन्धकार का विनाश

उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके॥ १०॥

(१) **उत्**=और हे **त्या**=वे प्रसिद्ध **नासत्या**=(न+असत्य) असत्यों को हमारे जीवनों से दूर करनेवाले प्राणापानो! **युवम्**=आप **विप्रा**=हमारा पूरण करनेवाले हो। आप **धीभिः**=बुद्धिपूर्वक किये गये कर्मों के साथ **मे हवम्**=मेरी पुकार को **जग्म्यातम्**=प्राप्त होवो। जब मैं बुद्धिपूर्वक कर्मों को करता हुआ आपका आराधन करूँ, तो आप मेरी प्रार्थना को सुनो। (२) हे प्राणापानो! **अत्रिम् न**=जैसे आप 'काम-क्रोध-लोभ' तीनों से ऊपर उठे हुए व्यक्ति को **महः तमसः**=महान् अन्धकार से **अमुमुक्तम्**=मुक्त करते हो, उसी प्रकार हे **नरा**=हमें आगे ले चलनेवाले प्राणापानो! आप **अभीके**=प्राप्त संग्राम में **दुरितात्**=पाप से **तूर्वतम्**=(तुर्व् to save) हमें बचाते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा (क) जीवन से अस्तय दूर होता है, (ख) जीवन का विशेषरूप से पूरण होता है, (ग) अन्धकार दूर होता है, (घ) दुरित से हम बच पाते हैं।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

द्युमतः वाजवतः (रायः)

ते नो॑ रा॒यो द्यु॒मतो॒ वाज॑वतो दा॒तारो॑ भूत नृ॒वतः॑ पुरु॒क्षोः ।
द॒श॒स्यन्तो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता॒ अप्या॑ मृ॒ळता॑ च देवाः ॥ ११ ॥

(१) हे देवो! **ते**=वे आप **नः**=हमारे लिये **रायः**=धन के **दातारः**=देनेवाले **भूत**=होवो। जो धन **द्युमतः**=ज्ञान की ज्योतिवाला है, अर्थात् ज्ञानवृद्धि का साधन बनता है। **वाजवतः**=शक्तिवाला है, हमारी शक्तियों को बढ़ाता है। **नृवतः**=जो धन प्रशस्त मनुष्योंवाला है, जिस धन के कारण हमारे परिवार के सब व्यक्ति उत्तम जीवनवाले बनते हैं। **पुरुक्षोः**=जो धन बहुतों से कीर्तनीय है, अर्थात् जो धन लोकहित में विनियुक्त होकर हमारे जीवन को यशस्वी बनाता है। (२) हे **दिव्याः**=द्युलोक में होनेवाले, **पार्थिवासः**=(पृथिवी=अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक में होनेवाले, **गोजाताः**=इस पृथिवी पर प्रादुर्भूत हुए-हुए, **च**=और **अप्याः**=जलों में होनेवाले **देवाः**=देवो! आप **दशस्यन्तः**=हमारे लिये वरणीय धनों को देते हुए **मृडत**=हमें सुखी करिये। सब प्राकृतिक शक्तियाँ हमारे अनुकूल होती हुई हमारे लिये वरणीय धनों को प्राप्त करायें।

भावार्थ—हमें सब देव उस प्रशस्त धन को प्राप्त करायें जो 'ज्ञान, बल व यश' का साधन बने। सब देव अरणीय धन को देकर हमें सुखी करें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अन्न का वर्धन

ते नो॑ रु॒द्रः सर॑स्वती स॒जोषा॑ मी॒ळ्हुष्म॑न्तो॒ विष्णु॑र्मृळन्तु वा॒युः ।
ऋ॒भु॒क्षा वाजो॒ दैव्यो॑ विधा॒ता प॒र्जन्या॒वाता॑ पिप्यता॒मिषं॑ नः ॥ १२ ॥

(१) **ते**=वे सब देव **नः**=हमें **मृडन्तु**=सुखी करें। **रुद्रः**=सब दुःखों का द्रावण करनेवाला प्रभु, **सरस्वती**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता, **विष्णुः**=व्यापकता व उदारता की देवता तथा **वायुः**=क्रियाशीलता की देवता (वा गतौ) ये सब **सजोषाः**=समान रूप से प्रीतिवाले होती हुईं **मीढुष्मन्तः**=हमारे लिये सुखों का वर्षण करनेवाले हों। 'प्रभु का उपासन, ज्ञान, उदार हृदयता तथा क्रियाशीलता' हमारे जीवन को सुखी बनायें। (२) **ऋभुक्षाः**=ज्ञान दीप्ति में निवास करनेवाला, **वाजः**=शक्तिशाली, **दैव्यः विधाता**=दिव्यगुण-सम्पन्न निर्माण कर्ता पुरुष **नः**=हमारे लिये **इषम्**=प्रेरणा को **पिप्यताम्**=बढ़ायें। अर्थात् इन से प्रेरणा को प्राप्त करके हम भी ज्ञान दीप्त शक्तिशाली व दिव्य गुण सम्पन्न बनें तथा निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त हों। (३) तथा **पर्जन्यावाता**=मेघ व वायु हमारे लिये **इषम्**=उत्तम अन्न को **पिप्यताम्**=बढ़ानेवाले हों। मेघ व वायु (Monsoon winds) द्वारा उत्पन्न उत्तम अन्नों से हम अपने जीवनों को आप्यायित करनेवाले हों।

भावार्थ—'प्रभु का उपासन, ज्ञान, उदारता व क्रियाशीलता' हमारे जीवन को सुखी करें। हम 'ज्ञानी, शक्तिशाली, दिव्यगुण-सम्पन्न, निर्माण कार्य प्रवृत्त' पुरुषों के सम्पर्क में आएँ। मेघ व वायु से उत्पन्न किये गये अन्नों का सेवन करें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सम्पूर्ण वातावरण कल्याणमय हो

उ॒त स्य दे॒वः स॑वि॒ता भगो॑ नो॒ऽपां नपा॑दवतु॒ दानु॒ पप्रि॑ः ।
त्वष्टा॑ दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः स॒जोषा॒ द्यौर्दे॒वेभिः॑ पृथि॒वी स॑मु॒द्रैः ॥ १३ ॥

(१) **उत**=और **स्यः**=वह **देवः**=प्रकाशमय **सविता**=प्रेरक प्रभु **नः**=हमें **अवतु**=रक्षित करे। **भगः**=ऐश्वर्य का पुञ्ज प्रभु हमारा रक्षण करे। **दानु पप्रिः**=सब धनों का हमारे में पूरण करनेवाला **अपांनपात्**=शक्तियों को (आपः रेतो भूत्वा०) न नष्ट होने देनेवाला प्रभु हमारा रक्षण करे। (२) **जनिभिः**=सब अच्छाइयों को जन्म देनेवाले **देवेभिः**=दिव्यगुणों के साथ **त्वष्टा**=वह निर्माता प्रभु हमारा रक्षण करे। **देवेभिः सजोषाः**=सूर्यादि प्रकाशमय पिण्डों के साथ प्रीतिवाला होता हुआ **द्यौः**=यह द्युलोक हमारा रक्षण करे तथा **समुद्रैः**=सब समुद्रों के साथ **पृथिवी**=यह पृथिवी हमारा रक्षण करे।

भावार्थ—'प्रकाशमय-प्रेरक-शक्ति को न नष्ट होने देनेवाले' प्रभु हमारा रक्षण करें। दिव्यगुणों के विकास को करनेवाले निर्माता प्रभु हमारा कल्याण करें। दीप्त पिण्डों से युक्त द्युलोक हमारा कल्याण करे तथा समुद्र युक्त यह पृथिवी भी हमारा कल्याण करे।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अहिर्बुध्न्यः अज एकपात्

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ १४ ॥

(१) **उत**=और **अहिर्बुध्न्यः**=अहीन युक्त (=आधार) वाला वह प्रभु **नः शृणोतु**=हमारी पुकार को सुने। **अजः**=गति के द्वारा सब बुराइयों को दूर करनेवाला प्रभु हमारी पुकार को सुने। **एकपात्**=अकेला ही गतिवाला, अपने कार्यों में औरों के साहाय्य की अपेक्षा न करनेवाला प्रभु हमारी प्रार्थना को सुने। (२) **पृथिवी**=यह पृथिवी **समुद्रः**=समुद्र **विश्वेदेवाः**=सब देव हमारा **अवन्तु**=रक्षण करें। **ऋतावृधः**=ऋत का वर्धन करनेवाले सब देव **हुवानाः**=पुकारे जाते हुए हमारा रक्षण करें तथा **कविशस्ताः**=उस महान् कवि प्रभु से उच्चारण किये गये **स्तुताः**=स्तुति में हमारे से उच्चारण किये जाते हुए **मंत्राः**=मन्त्र हमारा रक्षण करें।

भावार्थ—प्रभु से प्रेरणा के प्राप्त करके हम अपनी उन्नति के लिये व्यापक आधार वाले व गतिशील बनें। हम अपने में ऋत का वर्धन करें। प्रभु से उच्चरित वेद मन्त्रों को अपनाएँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सच्चे उपासक

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥ १५ ॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **एवा**=इस प्रकार **तस्य मम**=उस मेरे **नपातः**=सन्तानरूप **भरद्वाजाः**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले ये उपासक **धीभिः**=बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मों से तथा **अर्कैः**=स्तुति साधन मन्त्रों से **अभ्यर्चन्ति**=पूजन करते हैं। प्रभु का पूजन यज्ञादि कर्मों व स्तुतियों से होता है। (२) **विश्वे**=सब **यजत्राः**=यष्टव्य व पूजनीय देवो! आप **स्तुतासः**=स्तुति किये जाकर **वसवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले व **अधृष्टाः**=शत्रुओं से अधर्षणीय **भूत**=होवो। आपके कारण हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं से अभिभूत न हों। **ग्नाः**=ये वेदवाणियाँ **हुतासः**=हमारे द्वारा ज्ञानाग्नि में आहुत की जाएँ। ये वेद वाणियाँ हमारी ज्ञानाग्नि को सुसमिद्ध करनेवाली हों।

भावार्थ—प्रभु के सच्चे पुत्र वे ही हैं जो बुद्धिपूर्वक कर्मों व स्तोत्रों से प्रभु स्तवन करते हैं। ये अपनी ज्ञानाग्नि में ज्ञान वाणियों को आहुत करते हैं। दिव्य गुणों के द्वारा ये अपने निवास

को उत्तम व शत्रुओं से अधर्षणीय बना पाते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'ऋजिश्वा' है—

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'द्युलोक का भूषण' सूर्य

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम्।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत्॥ १॥

(१) सूर्य के प्रसंग में 'मित्र व वरुण' का भाव दिन व रात्रि से होता है। **त्यत्**=वह प्रसिद्ध **चक्षुः**=प्रकाशक **महि**=महान्, विस्तृत **मित्रयोः वरुणयोः**=दिन-रात्रि के लिये **प्रियम्**=प्रीतिकर **अदब्धम्**=अहिंसित **शुचि**=शुद्ध **दर्शतम्**=दर्शनीय **ऋतस्य अनीकम्**=(ऋ गतौ) आदित्य का तेज **आ उदेति**=सब के अभिमुख उदित होता है, सूर्य के इस तेज के कारण ही दिन व रात्रि का होना होता है। यह सूर्य का तेज रोगकृमियों का संहार करता हुआ हमें हिंसित नहीं होने देता, सो 'अदब्ध' है। नीरोगता को उत्पन्न करनेवाला यह तेज 'शुचि' है। (२) **उदिता**=उदय होने पर **दिवः रुक्मः न**=द्युलोक के स्वर्ण भूषण के समान यह **व्यद्यौत्**=चमकता है। सूर्य द्युलोक का भूषण ही प्रतीत होता है।

भावार्थ—सूर्य का तेज अत्यन्त प्रीतिकर व हमें न हिंसित होने देनेवाला है। यह उदय हुआ-हुआ सूर्य द्युलोक का भूषण ही प्रतीत होता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विप्रः

वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्॥ २॥

(१) सूर्य द्युलोक को प्रकाशित करता है। ज्ञानी पुरुष मनुष्यों को ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराता है। **यः**=जो **त्रीणि विदथानि**='ज्ञान, कर्म व उपासना' रूप तीनों ज्ञेय वस्तुओं को **वेद**=जानता है। **च**=और **एषां देवानाम्**=इन सूर्य-चन्द्र आदि देवों के **सनुतः**=अन्तर्हित-अप्रज्ञायमान **जन्म**=उत्पत्ति को (वेद) जानता है। यह पुरुष **विप्रः**=ज्ञानी है। ज्ञानी पुरुष प्रकृति से बने इन सूर्य-चन्द्र आदि देवों के जन्म को तो जानता ही है, यह जीव के कर्त्तव्यभूत 'ज्ञान, कर्म व उपासना' को भी जाननेवाला होता है। (२) यह **सूरः**=ज्ञान के प्रकाश से सूर्य के समान चमकनेवाला **अर्यः**=जितेन्द्रिय पुरुष **मर्तेषु**=मनुष्यों में **ऋजु**=सरल कर्मों को **च**=व **वृजिना**=कुटिल कर्मों को **पश्यन्**=देखता हुआ **एवान्**=गन्तव्य मार्गों को **अभिचष्टे**=प्रकाशित करता है। पुण्य-पाप का विवेचन करता हुआ यह ज्ञानी पुरुष गन्तव्य मार्गों का उपदेश करता है।

भावार्थ—विप्र वह है जो (क) जीव के लिये 'ज्ञान, कर्म, उपासना' का ज्ञान प्राप्त करता है, (ख) सूर्य आदि देवों के जन्म को समझता है, (ग) पुण्य-पाप का विवेक कर पाता है, (घ) गन्तव्य मार्गों का उपदेश देता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऋतस्य गोपान्-सुजातान्-सधन्यः पावकान्

स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान्।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान्॥ ३॥

(१) हे देवो! **महः ऋतस्य गोपान्**=महान् ऋत के रक्षक **वः**=तुम्हें **स्तुषे उ**=स्तुत करता ही हूँ। वे दिव्य भावनाएँ जो मेरे जीवन में ऋत की जो भी ठीक है उसकी रक्षा करती हैं, उनका मैं स्तवन (=शंसन) करता हूँ। **अदितिम्**=अदीना देवमाता का दिव्य गुणों को जन्म देनेवाले स्वास्थ्य को, **मित्रम्**=स्नेह की देवता को, **वरुणम्**=द्वेष के निवारण-निर्द्वेषता की देवता को स्तुत करता हूँ। इन सब देवों को जो **सुजातान्**=उत्तम विकासवाले हैं, मैं प्रशंसित करता है। इन्हें धारण करने के लिये यत्नशील होता हूँ। (२) **अदब्धधीतीन्**=अहिंसित कर्मोंवाले, **अर्यमणम्**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध आदि का नियमन करनेवाले देवों को तथा **भगम्**=ऐश्वर्य की देवता को **अच्छा**=लक्ष्य करके **वोचे**=स्तुति-वचनों का उच्चारण करता हूँ। **सधन्यः**=धनसहित **पावकान्**=पवित्र करनेवाले सब देवों का मैं स्तवन करता हूँ, इन सब दिव्य भावनाओं को धारण करने के लिये यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—मैं ऋत के रक्षक, उत्तम विकास के कारणभूत, धनसहित, पवित्र करनेवाले सब दिव्यभावों को धारण करने के लिये यत्नशील होता हूँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दुवोयु यामि

रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन्।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु॥ ४॥

(१) **रिशादसः**=हमारा हिंसन करनेवाले (रिश) शत्रुओं को (काम-क्रोध आदि को) खा जानेवाले, **सत्पतीन्**=सद्गुणों के रक्षक, **अदब्धान्**=अहिंसित, **महः राज्ञः**=महान् दीप्तिवाले, **सुवसनस्य दातॄन्**=उत्तम निवास को देनेवाले देवों की मैं **यामि**=याचना करता हूँ। इन दिव्यभावों को प्राप्त करने के लिये चाहता हूँ। (२) **यूनः**=बुराइयों को दूर करनेवाले व अच्छाइयों को मिलानेवाले, **सुक्षत्रान्**=उत्तम बलवाले, **क्षयतः**=ऐश्वर्यशाली (क्षयतिरैश्वर्यकर्मा), **दिवः नॄन्**=प्रकाश की ओर ले जानेवाले, **आदित्यान्**=सब सद्गुणों का आदान करनेवाले, **अदितिं (अ-अदितिं)**=दिव्यगुणों की आधारभूत स्वास्थ्य की देवता को **दुवोयु**=परिचरण की कामनावाला होता हुआ (यामि) माँगता हूँ, इन सब दिव्यगुणों के धारण के लिये यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—बुराइयों के नाशक व अच्छाइयों के रक्षक सब सद्गुणों को प्राप्त करने के लिये मैं यत्नशील होता हूँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पिता-माता-भ्राता

द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त॥ ५॥

(१) हे **पितः द्यौः**=पितृ स्थानापन्न द्युलोक, **अध्रुक्**=किसी प्रकार से द्रोह न करनेवाली

मातः पृथिवि=मातृ स्थानापन्न पृथिवि, **भ्रातः अग्ने**=भ्रातृ स्थानीय अग्नि देव! तथा **वसवः**=निवास को उत्तम बनानेवाले वसुओ! आप सब **नः मृडत**=हमारे जीवन को सुखी करें। (२) **विश्वे आदित्याः**=सब अच्छाइयों का आदान करनेवाले दिव्ये भावो! तथा **अदिते**=अदीन **देवमातः**=दिव्यगुणों की जननी स्वास्थ्य देवते! आप सब **सजोषाः**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हुए **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **बहुलं शर्म**=अधिक सुख **वियन्त**=प्राप्त कराओ।

भावार्थ—द्युलोक हमारा पिता हो, पृथिवी माता बने तथा अग्नि भ्राता हो। निवास को उत्तम बनानेवाले सब देव हमें सुखी करें। सब दिव्यभावनाएँ व स्वास्थ्य हमें उत्तम सुखयुक्त करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

बल व ज्ञान के प्रापक देव

मा नो॒ वृका॑य वृ॒क्ये॑ समस्मा अघाय॒ते री॑रधता यजत्राः।
यू॒यं हि ष्ठा र॒थ्यो॑ नस्त॒नूनां॑ यू॒यं दक्ष॑स्य॒ वच॑सो बभू॒व॥ ६॥

(१) हे **यजत्रा**=यष्टव्य-पूज्य देवो! आप **नः**=हमें **समस्मै**=सब **वृकाय**=हिंसा की वृत्तिवाले पुरुषों के लिये तथा **वृक्ये**=हिंसा वृत्तिवाली स्त्रियों के लिये **मा रीरधत**=वशीभूत मत करिये। **अघायते**=हमारे लिये **अघ**=अशुभ की कामनावाले के लिये हमें वशीभूत मत करिये। (२) **यूयम्**=आप सब **हि**=ही **नः**=हमारे **तनूनाम्**=शरीरों के **रथ्यः**=नेता, उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले **ष्ठा (स्थ)**=हैं। तथा **यूयम्**=आप हमारे लिये **दक्षस्य**=बल के तथा **वचसः**=ज्ञान की वाणियों के (रथ्यः) प्रणेता **बभूव**=होते हो।

भावार्थ—सब देव हमें हिंसक वृत्तिवाले व अशुभ की कामनावाले स्त्री-पुरुषों के वशीभूत होने से बचायें। ये सब देव हमारे शरीरों के सारथि बनें। हमारे लिये बल व ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

(पापी अपने आप से नष्ट हो)

मा व॒ एनो॑ अ॒न्यकृ॑तं भुजेम॒ मा तत्क॑र्म वसवो॒ यच्चय॑ध्वे।
विश्व॑स्य॒ हि क्षय॑थ विश्वदेवाः स्व॒यं रि॒पुस्त॒न्वं॑ रीरिषीष्ट॥ ७॥

(१) हे **वसवः**=हमारे निवास को उत्तम बनानेवाले देवो! **वः**=आपके उपासक हम **अन्यकृतम्**=दूसरे से किये हुए **एनः**=पाप को **मा भुजेम**=मत भोगें। अर्थात् दूसरों से किये जानेवाले पापकर्मों के शिकार न हो जाएँ। **यत्**=जिस पाप कर्म से (येन सा०) **चयध्वे**=आप हिंसित करते हो, **तत्**=उस पाप कर्म को **मा कर्म**=हम मत करें। जिन कर्मों के द्वारा हम हिंसित होते हैं, उनसे हम बचें। (२) हे **विश्वदेवाः**=सब देवो! आप **हि**=ही **विश्वस्य क्षयथ**=सब के स्वामी हो। **रिपुः**=औरों का विदारण करनेवाला शत्रु **स्वयम्**=अपने आप **तन्वम्**=अपने शरीर को **रिरिषीष्ट**=हिंसित करनेवाला हो।

भावार्थ—दूसरों के पाप कर्मों के हम शिकार न हों। जिन कर्मों का परिणाम विनाश है, उनसे हम बचें। पापी स्वयं अपना विनाश करनेवाला है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नमन की महिमा

नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे॥ ८॥

(१) **नम इत्**=नमन ही **उग्रम्**=अत्यन्त तेजस्वी है। प्रभु के प्रति नमन उपासक को तेजस्विता प्रदान करता है **नमः आविवासे**=मैं इस नमन का ही पूजन करता हूँ, इस नमन को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। **नमः**=नमन ही **पृथिवीम्**=पृथिवी को **उत**=और **द्याम्**=द्युलोक को **दाधार**=धारण करता है। प्रभु पूजन ही संसार का धारक है, इससे ही हमारे शरीर व मस्तिष्क (पृथिवीलोक व द्युलोक) ठीक बने रहते हैं। (२) **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये **नमः**=मैं नमस्कार करता हूँ। **नमः**=नमन ही **एषाम्**=इन देवों का **ईशे**=ईश है। नमन ही इन सब देवों को हमारे जीवन में लानेवाला है। **नमसा**=नमन के द्वारा **कृतं चित् एनः**=किये हुए पापों को भी **आविवासे**=(परिवर्जयामि) अपने से दूर करता हूँ, विनष्ट करता हूँ। जो पाप आदत के रूप में परिवर्तित हो गये थे उन्हें भी नमन के द्वारा अपने से दूर कर पाता हूँ।

भावार्थ—प्रभु नमन हमें तेजस्वी बनाता है। दिव्यगुणों को यह नमन प्राप्त कराता है और पाप प्रवृत्ति को विनष्ट करता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ऋतस्थ रथ्यः-ऋतस्य पस्त्यसदः (यज्ञशील)

ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान्।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः॥ ९॥

(१) हे देवो! **ऋतस्य**=यज्ञों के **रथ्यः**=प्रणेता **वः**=आपको **नमोभिः**=नमस्कारों के द्वारा **आनमे**=प्रणाम करता हूँ, नमस्कारों के द्वारा आपका पूजन करता हूँ। उन आपका पूजन करता हूँ जो आप **पूतदक्षान्**=पवित्र बलवाले हैं। **ऋतस्य पस्त्यसदः**=यज्ञ के गृहों में निवास करनेवाले हैं, सतत यज्ञशील हैं और **अदब्धान्**=वासनाओं से हिंसित होनेवाले नहीं हैं। (२) **तान्**=उन आपको मैं **आ**=(नमे) नमस्कृत करता हूँ जो **उरुचक्षसः**=विशाल दृष्टिकोणवाले हैं, **नॄन्**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले हैं। हे **महः**=महान् **यजत्राः**=पूजनीय देवो! **वः**=आप **विश्वान्**=सबको मैं पूजित करता हूँ। इन देवों का आदर करते हुए हम भी अपने जीवनों को इसी प्रकार का बनाते हैं।

भावार्थ—हम उन देवों का आदर करते हैं जो यज्ञों के प्रणेता हैं, पवित्र बलवाले हैं, वासनाओं से हिंसित नहीं होते। जो देव विशाल दृष्टिकोणवाले, हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले व महनीय-पूजनीय हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वरुण-मित्र-अग्नि

ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः॥ १०॥

(१) **ते**=वे **हि**=ही देव **श्रेष्ठवर्चसः**=उत्तम वर्चस्वाले हैं। गत मन्त्र के अनुसार 'पूतदक्ष'

हैं। **ते**=वे **उ**=ही **नः**=हमें **विश्वानि दुरिता**=सब दुरितों के **तिरः नयन्ति**=पार ले जाते हैं। (२) जो देव **सुक्षत्रासः**=उत्तम बलवाले हैं। **वरुणः**=पापों व द्वेषों का निवारण करनेवाले, **मित्रः**=सब के साथ स्नेह से चलनेवाले, प्रमीति (मृत्यु) से बचानेवाले, **अग्निः**=आगे और आगे ले चलनेवाले हैं। **ऋतधीतयः**=सत्यकर्मा हैं तथा **वक्मराजसत्याः**=(वक्त=वचनं) ज्ञान की वाणियों के राजा-ज्ञान की वाणियों से दीप्त तथा सत्यमय हैं।

भावार्थ—श्रेष्ठ वर्चस् देवों का आदर करते हुए हम भी श्रेष्ठ वर्चस् बनें। हम निर्द्वेष सबके साथ स्नेह करनेवाले, प्रगतिशील हों, सत्य कर्मोंवाले, ज्ञानदीप्त व सत्य का पालन करनेवाले हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुत्रात्रासः-सुगोपः

ते नु इन्द्रः पृथिवी क्षाम॑ वर्धन्पूषा भगो॒ अदि॑तिः पञ्च॒ जनाः॑।
सु॒शर्माणः॒ स्ववसः सु॒नी॒था भव॑न्तु नः सु॒त्रा॒त्रासः॑ सु॒गो॒पाः ॥ ११ ॥

(१) **ते**=वे सब देव **नः**=हमारे **क्षाम**=निवास भूमिभूत इस शरीर को **वर्धन्**=बढ़ानेवाले हों। **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु, **पृथिवी**=यह मातृतुल्य भूमि, **पूषा**=पोषण को करनेवाला सूर्य, **भगः**=ऐश्वर्य की देवता, **अदितिः**=सब दिव्यगुणों को जन्म देनेवाला स्वास्थ्य (अ-'दिति'=खण्डन) तथा **पञ्चजनाः**=समाज के अवयभूत पाँचों प्राणों का विकास करनेवाले मनुष्य हमारे इस निवास-स्थानभूत शरीर का वर्धन करें। (२) **सुशर्माणः**=उत्तम सुख को देनेवाले, **स्ववसः**=उत्तम अन्नोंवाले, **सुनीथाः**=उत्तम मार्गों पर ले चलनेवाले देव **नः**=हमारे लिये **सुत्रात्रासः**=सम्यक् तथा शत्रुओं के आक्रमण से हमें बचानेवाले तथा **सुगोपाः**=रोग-कृमि शत्रुओं की उत्पत्ति के निरोध से हमारा गोपन करनेवाले **भवन्तु**=हों।

भावार्थ—सब देवों व प्रभु की कृपा से हमारा यह निवास-स्थानभूत शरीर रोगों व वासनाओं के आक्रमण से आक्रान्त न हो।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'दिव्य सद्म' तथा 'सुमति'

नू स॒द्मानं॑ दि॒व्यं नंशि॑ देवा॒ भार॑द्वाजः सु॒म॒तिं या॑ति॒ होता॑।
आ॒सा॒नेभि॒र्यज॑मानो मि॒येधै॑र्दे॒वानां॒ जन्म॑ वसू॒युर्व॑वन्द ॥ १२ ॥

(१) हे **देवाः**='माता, पिता, आचार्य, अतिथि' रूप देवो! **भारद्वाजः**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाला यह उपासक **नु**=निश्चय से शीघ्र ही **दिव्यं सद्मानम्**=दिव्य सद्म को **नंशि**=प्राप्त हो। 'दिव्य सद्म', अर्थात् प्रकाशमय घर को यह प्राप्त करनेवाला हो। हे देवो! **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाला यह भारद्वाज **सुमतिं याति**=कल्याणी मति को प्राप्त करता है। (२) **आसानेभिः**=समीप बैठे हुए **मियेधैः**=पवित्र लोगों के साथ **यजमानः**=यज्ञ करता हुआ यह **वसूयुः**=वस्तुओं की प्राप्ति की कामनावाला उपासक **देवानां जन्म**=दिव्यगुणों के जन्म व विकास को **ववन्द**=स्तुत करता है। दिव्यगुणों के विकास की ही प्रशंसा करता है। इस प्रकार इस दिव्यगुणों के विकास को प्रशंसित करता हुआ इन दिव्य गुणों के धारण के लिये ही यत्नशील होता है।

भावार्थ—हम 'उत्तम माता, पिता, आचार्य व अतिथियों' की कृपा से अपने गृह को प्रकाशमय बना पायें। हम सुमति को प्राप्त होनेवाले हों। दिव्यगुणों का अपने मैं विकास कर पायें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

'वृजिन रिपु-दुराध्य स्तेन' से दूर

अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्। दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ १३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **त्यम्**=उस **वृजिनम्**=कुटिल, **रिपुम्**=पापकारी **स्तेनम्**=चोरी की वृत्तिवाले **दुराध्यम्**=दुष्टाभिप्राय पुरुष को **दविष्ठम्**=बहुत ही दूर **अप अस्य**=हमारे से परे फैंकिये। ऐसे व्यक्ति से हमारा किसी प्रकार का सम्पर्क न हो। (२) हे **सत्पते**=सज्जनों के रक्षक प्रभो! आप हमारे लिये **सुगं कृधि**=उत्तमता से जाने योग्य मार्ग को करिये। (शोभनतया गन्तव्यं सुगम्)।

भावार्थ—हम प्रभु के अनुग्रह से कुटिल दुष्टाभिप्राय पुरुषों से बचे रहकर शोभन मार्ग पर चलनेवाले हों।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

ज्ञानियों के समीप

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः। जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः ॥ १४ ॥

(१) हे **सोम**=शान्त प्रभो! **ग्रावाणः**=ज्ञान की वाणियों का उपदेश करनेवाले ये स्तोता लोग **हि**=ही **नः कम्**=हमारे सुख के लिये हों। ये हमारे लिये **सखित्वनाय**=मित्रभाव के लिये **वावशुः**=कामना करें। इन ज्ञानी प्रभु-भक्तों के साथ ही सदा हमारी मित्रता हो। (२) हे प्रभो! आप **अत्रिणम्**=इस हमें खा जानेवाले वासनारूप शत्रु को **निजहि**=नष्ट कर दीजिये। **पणिम्**=इस केवल सांसारिक व्यवहार की बातों को करनेवाले कृपण व्यक्ति को समाप्त करिये। **सः**=वह **हि**=निश्चय से **वृकः**=अत्यन्त लोभी है, आदान ही आदान की वृत्तिवाला है। इसने देना तो सीखा ही नहीं।

भावार्थ—हमारी मित्रता ज्ञानी स्तोताओं के साथ हो। वासनामय कृपण लुब्ध पुरुषों से हम दूर रहें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः। कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥

(१) हे देववृत्ति के पुरुषो! **यूयम्**=आप **हि**=निश्चय से **सुदानवः**=अच्छी प्रकार वासनाओं का लवन (दाप् लवने) करनेवाले **स्थ**=हो। **इन्द्रज्येष्ठाः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु ही आपका ज्येष्ठ है, उसी की आप उपासना करते हैं। **अभिद्यवः**=आप अभिगत दीप्तिवाले हो, ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करनेवाले हो। (२) आप **अमा**=हमारे साथ होते हुए **अध्वन्**=इस जीवनमार्ग में **नः गोपाः**=हमारे रक्षक होते हो और हमारे लिये **सुगं कर्ता**=शोभनतया गन्तव्य मार्ग को करते हैं।

भावार्थ—देव पुरुष प्रभु को ज्येष्ठ माननेवाले व दीप्त जीवनवाले होते हैं। हमारे लिये ये जीवनमार्ग में रक्षक हों, हमें उत्तम मार्ग से ले चलें।

ऋषिः—ऋजिश्वाः ॥ देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

निर्द्वेषता के मार्ग पर

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्। येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ १६ ॥

(१) हम **पन्थां अपि अगन्महि**=उस मार्ग को अपिगत (प्राप्त) होते हैं जो **स्वस्तिगाम्**=कल्याण की ओर ले जानेवाला है तथा **अनेहसम्**=पापशून्य है। (२) उस मार्ग से चलते हैं **येन**=जिससे **विश्वाः द्विषः**=सब द्वेष की भावनाओं को **परिवृणक्ति**=परिवर्जित करता है और **वसु विन्दते**=निवास के लिये आवश्यक धन को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हमारा मार्ग कल्याण की ओर ले जानेवाला, निष्पाप, निर्द्वेष व वसुप्रापक हो।

अगला सूक्त भी 'ऋजिश्वा' ऋषि का है—

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अतियाजस्य यष्टा

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥ १ ॥

(१) प्रभु कहते हैं कि मैं **न अनुमन्ये**=इस बात की स्वीकृति नहीं दे सकता कि **अतियाजस्य यष्टा**=अतिशयेन दानरूप यज्ञ का करनेवाला यह दाता **तद्दिवा निहीयताम्**=उस मस्तिष्करूप द्युलोक से हीन हो। इसका मस्तिष्क तो उत्तम ही होता है। इसी प्रकार मैं यह अनुमति **न**=नहीं दे सकता कि वह **पृथिव्या**=शरीररूप पृथिवी से (निहीयताम्=) हीन हो जाये। इसका शरीर भी बड़ा स्वस्थ रहता है। यह **यज्ञेन न**=(निहीयताम्) यज्ञों से भी हीन न हो। **उत**=और **न**=नांही **आभिः शमीभिः**=इन उत्तम कर्मों से हीन हो। (२) **तम्**=उस अतियाज के यष्टा के प्रति **सुभ्वः**=ये उत्तम भूमियाँ तथा **पर्वतासः**=पर्वत भी **उब्जन्तु**=(be subdued), वशीभूत हुए-हुए हों। उसके प्रति ये सब अनुकूलतावाले हों।

भावार्थ—हम खूब दानशील हों। प्रभु इस दानशील को उत्तम मस्तिष्क व शरीरवाला तथा यज्ञशील व उत्तम कर्म-परायण बनाते हैं। इसके प्रति पर्वत व भूमियाँ सब अनुकूलतावाली होती हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अतिमान' व 'स्तवन-निन्दा'

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात्।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥ २ ॥

(१) **यः**=जो पुरुष हे **मरुतः**=मनुष्यो! **नः**=हमारे में से **अतिमन्यते**=अतिमान करता है, गर्व करता है, **वा**=या **क्रियमाणम्**=किये जाते हुए **ब्रह्म**=ज्ञानपूर्वक स्तवन को **निनित्सात्**=निन्दित करे। **तस्मै**=उसके लिये **वृजिनानि**=उसके ये पाप ही **तपूंषि सन्तु**=सन्ताप कर हों। 'अतिमान करना व प्रभु स्तवन का उपहास करना' ये ऐसे पाप हैं जो उसके कर्ता के लिये सन्तापजनक होते हैं। (२) **तम्**=उस **ब्रह्मद्विषम्**=ज्ञान के प्रति अप्रीतिवाले पुरुष के लिये **द्यौः**=यह देदीप्यमान आदित्य **अभिशोचतु**=सन्ताप का कारण हो। अथवा यह सारा आकाश इसके शोक को पैदा करनेवाले हो।

भावार्थ—न तो हम अतिमान करें, नांही ज्ञानपूर्वक स्तवन की निन्दा करें ये पाप हमारे सन्ताप का कारण बनेंगे।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ब्रह्मद्विट् का संहार

किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान्ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य॥ ३॥

(१) हे **अंगः**=गतिशील **सोम**=शान्त प्रभो! **किम्**=और क्या, **त्वा**=आपको ही तो **ब्रह्मणः**=ज्ञान के **गोपाम्**=रक्षक **आहुः**=कहते हैं। हे **अंग**=गतिशील प्रभो! **किम्**=और क्या, **त्वा**=आपको ही **नः**=हमारा **अभिशस्तिपाम्**=वासनाओं के आक्रमण से, निन्दनीय कर्मों से बचानेवाला कहते हैं (अभिशस्ति attack)। (२) हे **अंग**=गतिशील प्रभो! **किम्**=क्यों आप **निद्यमानान्**=निन्दनीय होते हुए **नः**=हमें **पश्यसि**=देखते हैं। **ब्रह्मद्विषे**=ज्ञान के विरोधी व्यक्ति के लिये **तपुषिं हेतिम्**=संतापक अस्त्र को **अस्य**=फेंकिये, ज्ञान से अप्रीति करनेवाले को विनष्ट करिये।

भावार्थ—प्रभु ही ज्ञान के रक्षक हैं। प्रभु ही हमें निन्दनीय कर्मों को आक्रमण से बचाते हैं।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञिय जीवन

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ॥ ४॥

(१) **जायमानाः**=प्रादुर्भूत होती हुई **उषसः**=उषाएँ **मा अवन्तु**=मेरा रक्षण करें। **पिन्वमानाः**=जलों से वृद्धि को प्राप्त करती हुई **सिन्धवः**=ये नदियाँ **आ अवन्तु**=मेरा रक्षण करें। ये **ध्रुवासः**=अपने स्थान पर निश्चल **पर्वतासः**=पर्वत **मा अवन्तु**=मुझे रक्षित करें। सदा सब पदार्थ मेरी अनुकूलतावाले हों। (२) इस अनुकूल परिस्थिति में **देवहूतौ**=दिव्यगुणों के आह्वान के स्थानभूत यज्ञों में **पितरः**=पितर **मा अवन्तु**=मेरा रक्षण करें। माता, पिता, आचार्यों द्वारा ऐसी परिस्थिति पैदा की जाये कि मैं प्रारम्भ से ही यज्ञिय वृत्तिवाला बनूँ। इस वृत्ति के द्वारा मेरे में सद्गुणों का विकास हो।

भावार्थ—उषाएँ, नदियाँ, पर्वत सब हमारा कल्याण करनेवाले हों। माता, पिता, आचार्य हमें यज्ञिय जीवनवाला बनायें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुमनसः स्याम

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः॥ ५॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार पितरों से पवित्र जीवनवाले बनाये जाते हुए हम **विश्वदानीम्**=सदा **सुमनसः**=उत्तम मनवाले **स्याम**=हों। हम सदा **उच्चरन्तम्**=उदय होते हुए **सूर्यम्**=सूर्य को **नु**=निश्चय से **पश्येम**=देखें। इस उदय होते हुए सूर्य की किरणों के सेवन से जहाँ रोगकृमियों के आक्रमण से अपने को बचाएँ, वहाँ इस सूर्य से निरन्तर गतिशीलता की प्रेरणा लेकर दीप्त जीवनवाले बनें। (२) **वसूनां वसुपतिः**=सब वसुओं के (धनों के) स्वामी प्रभु **तथा करद्**=वैसी

कृपा करें कि **देवान्**=दिव्यगुणों को प्राप्त कराते हुए **ओहानः**=विद्या की कामनावाले शिष्यों का पालन करते हुये वे प्रभु **अवसा**=रक्षण के हेतु से **आगमिष्ठः**=हमें अधिक से अधिक समीपता से प्राप्त होनेवाले हों।

भावार्थ—हम सदा प्रसन्न मनवाले हों। उदय होते हुए सूर्य से गतिशीलता व दीप्ति की प्रेरणा लें। प्रभु के अनुग्रह से दिव्यगुणों को प्राप्त करें तथा प्रभु से रक्षणीय हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'इन्द्र, सरस्वती, पर्जन्य व अग्नि'

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः पितेव ॥ ६ ॥

(१) **इन्द्रः**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला वह प्रभु **अवसा**=रक्षण के हेतु से **नेदिष्ठम्**=अधिक से अधिक सभी **आगमिष्ठः**=प्राप्त हों। **सिन्धुभिः**=ज्ञान जलधाराओं से **पिन्वमाना**=वृद्धि को प्राप्त होती हुई **सरस्वती**=यह ज्ञान की अधिष्ठातृ देवता हमें रक्षण के हेतु से समीपता से प्राप्त हो। (२) **पर्जन्यः**=यह मेघ **ओषधीभिः**=ओषधि वनस्पतियों के द्वारा **नः**=हमारे लिये **मयोभुः**=कल्याण का भावन करनेवाला हो। **अग्निः**=वह अग्रेणी प्रभु **पिता इव**=पिता की तरह हमारे लिये **सुशंसः**=उत्तम बातों का शंसन करनेवाला हो और **सुहवः**=सुगमता से आह्वातव्य हो। पिता जिस प्रकार पुत्र से सुगमता से पुकारने योग्य होता है उसी प्रकार हमारे लिये प्रभु सुगमता से आह्वातव्य हों। पिता पुत्र को उत्तम मार्ग का उपदेश देता है, प्रभु हमारे लिये इस उत्तम मार्ग की प्रेरणा देनेवाले हों।

भावार्थ—शत्रुविद्रावक प्रभु तथा ज्ञानजलपूर्ण सरस्वती हमारा रक्षण करें। मेघ हमें ओषधियों को प्राप्त कराये तथा अग्नि हमें उत्तम प्रेरणा दे।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विश्वे देवासः

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ७ ॥

(१) **विश्वे देवासः**=हे सब देवो! आप **आगत**=आवो। सब दिव्यगुण मेरी ओर आनेवाले हों। **मे**=मेरी **इमं हवम्**=इस पुकार को **शृणुत**=सुनो। मेरी यह प्रार्थना अवश्य सुनी जाये कि मुझे दिव्य गुणों की प्राप्ति हो। (२) **इदम्**=इस **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय में **आनिषीदत**=समन्तात् आसीन होइये। मेरा यह वासनाशून्य हृदय दिव्यगुणों का अधिष्ठान बने।

भावार्थ—सब दिव्यगुण मेरे से प्रार्थनीय होकर मेरे वासनाशून्य हृदय में स्थित हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सात्त्विक भोजन, ज्ञान व दिव्यगुणों की प्राप्ति

यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति। तं विश्व उप गच्छथ ॥ ८ ॥

(१) हे **देवाः**=दिव्य गुणो! **यः**=जो **वः**=आपको **घृतस्नुना**=ज्ञानदीप्ति को जीवन में क्षरित करनेवाले **हव्येन**=हव्य पदार्थों के सेवन से **प्रतिभूषति**=अपने अन्दर अलंकृत करना चाहता है, **तम्**=उसको **विश्वे**=आप सब उपगच्छथ=प्राप्त होते हो। (२) आहार की शुद्धि के होने पर सत्त्व (अन्तःकरण) की शुद्धि होती है। इस शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। ज्ञान

के प्रकाश में सब दिव्यगुणों की प्राप्ति होती है। इसीलिए यहाँ हव्य को, सात्त्विक यज्ञशेषरूप में सेवित अन्न को घृतस्नु कहा है, ज्ञान को प्राप्त करानेवाला।

भावार्थ—हम हव्य पदार्थों का सेवन करें, उससे ज्ञान दीप्ति प्राप्त होगी और हम सब दिव्य गुणों के अधिष्ठान बन पायेंगे।

ऋषिः—**ऋजिश्वा:** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञानरुचि सन्तानें

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृळीका भवन्तु नः॥ ९॥

(१) **ये नः सूनवः**=जो हमारे सन्तान हैं वे **उप**=आचार्यों के समीप स्थित हुए-हुए **अमृतस्य**=उस अमर प्रभु की **गिरः**=वाणियों को **शृण्वन्तु**=सुनें। इस प्रकार हमारे सन्तान सदा ज्ञान की रुचिवाले हों। (२) ये ज्ञान रुचि सन्तान **नः**=हमारे लिये **सुमृडीकाः**=उत्तम सुख को देनेवाले **भवन्तु**=हों।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे सन्तान ज्ञान की रुचिवाले हों और हमारे जीवनों को सुखी करें। मूर्ख सन्तान ही तो दुःख का कारण बनती है।

ऋषिः—**ऋजिश्वा:** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

युज्यं पयः

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः। जुषन्तां युज्यं पयः॥ १०॥

(१) **विश्वे देवाः**=सब देव वृत्ति के पुरुष **ऋतावृधः**=ऋत का वर्धन करनेवाले होते हैं, ये यज्ञिय जीवनवाले बनते हैं। **ऋतुभिः**=समयानुसार **हवनश्रुतः**=गुरुओं के आह्वान को सुननेवाले होते हैं (उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् अ०)। (२) ये देववृत्ति के पुरुष **युज्यं पयः**=प्रभु के साथ सम्पर्क करानेवाले ज्ञानदुग्ध का **जुषन्ताम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करें।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। आचार्यों के समीप बैठकर उस ज्ञान को प्राप्त करें जो प्रभु को प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**ऋजिश्वा:** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'स्तवन' तथा 'हव्य पदार्थों का ही सेवन'

स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा। इमा हव्या जुषन्त नः॥ ११॥

(१) **मरुद्गणः**=प्राणों के गणवाला **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **स्तोत्रम्**=स्तोत्र का सेवन करे। प्राणायाम को करता हुआ जितेन्द्रिय पुरुष प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला हो। (२) प्रभु आदेश देते हैं कि **त्वष्टृमान्**=उस निर्माता प्रभुवाला, अर्थात् प्रभु की उपासना करनेवाला, **मित्रः**=सब के प्रति स्नेहवाला, **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोध-लोभरूप शत्रुओं का नियमन करनेवाला **नः**=हमारे **इमा हव्या**=इन हव्य पदार्थों का **जुषन्त**=सेवन करें। सदा सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन करें, उनको भी यज्ञशेष के रूप में ग्रहण करें। यज्ञशेष ही तो अमृत है।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा जितेन्द्रिय बनकर हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु की उपासना करते हुए, स्नेह से वर्तते हुए, काम आदि को वशीभूत करते हुए हम हव्य पदार्थों का ही सेवन करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

यज्ञशीलता व देवत्व

इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज। चिकित्वान्दैव्यं जनम्॥ १२॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **होतः**=(हुदाने) सब आवश्यक उपकरणों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **नः**=हमारे **इमं अध्वरम्**=इस यज्ञ को **वयुनशः**=ज्ञान के क्रम से **यज**=हमारे साथ संगत करिये। जितना-जितना ज्ञान अधिक हो, उतना-उतना हमारा जीवन यज्ञमय बनता चले। (२) हे प्रभो! आप इस **दैव्यं जनम्**=(देव एव दैव्यः) देव वृत्तिवाले पुरुष को **चिकित्वान्**=(जानन्) जाननेवाले होइये, अर्थात् इसका पूरा ध्यान करिये। यह आप से रक्षित हुआ-हुआ अपने देवत्व को अधिक विकसित करनेवाला बने।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान देते हुए हमें यज्ञशील बनायें। हमारा रक्षण करते हुए हमें देवत्व के विकास में समर्थ करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राकृतिक देव व सामाजिक देव

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम्॥ १३॥

(१) वे **विश्वेदेवाः**=सब देव, **ये**=जो **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में **ष्ठ**=(स्थ) स्थित हैं, ये **उप**=जो यहाँ समीप भूलोक में हैं और जो **द्यवि**=द्युलोक में हैं, वे सब के सब तेंतीस देव **मे**=मेरी **इमं हवम्**=इस पुकार को **शृणुत**=सुनें। सब देव मेरी अनुकूलतावाले हों। (२) **ये**=जो देव **अग्निजिह्वः**=अग्नि के समान तेजोयुक्त जिह्वावाले हैं, **उत वा**=और जो **यजत्राः**=यज्ञों के द्वारा त्राण करनेवाले हैं वे सब **अस्मिन् बर्हिषि**=हमारे वासनाशून्य हृदयों में **आसद्य**=आसीन होकर **मादयध्वम्**=हमारे जीवनों को आनन्दयुक्त करें। इन देवों के लिये हमारे हृदयों में आदर का भाव हो और उनकी पदपद्धति पर चलते हुए हम आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—सब सूर्य-चन्द्र-अग्नि आदि देव हमारे अनुकूल हो। तेजस्वी ज्ञान-वाणियोंवाले यज्ञशील देव पुरुषों को हम हृदय से आदर दें, उनका अनुगमन करते हुए आनन्दित हों।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्तोत्रों में आनन्द की अनुभूति

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम॥ १४॥

(१) **यज्ञियाः**=यज्ञमय जीवनवाले **विश्वे देवाः**=सब देव **मम मन्म शृण्वन्तु**=मेरे स्तोत्र को ही सुनें, मैं इनके लिये सदा शुभ वाणियों का उच्चारण करूँ। **उभे रोदसी**=दोनों द्यावापृथिवी **अपांनपात् च**=यह जलों को न गिरने देनेवाला, जलों का धारक, अन्तरिक्षलोक भी मेरे स्तोत्र को सुने। मेरी स्तुति-वाणियाँ ही त्रिलोकी में फैलें। (२) मैं **वः**=आपके प्रति **परिचक्षाणि**=वर्जनीय **वचांसि**=वचनों को **मा वोचम्**=मत बोलूँ। अपि तु समीचीन वचनों का ही सदा उच्चारण करूँ। **वः**=आपके **अन्तमाः**=अन्तिकतम (समीपतम) होते हुए हम **सुम्नेषु इत्**=(hymns) प्रभु स्तवनों में ही **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—सब देव मेरे स्तोत्रों को सुनें। त्रिलोकी में स्तोत्र ध्वनि ही फैले। वर्जनीय वचनों को न बोलते हुए हम स्तोत्रों में ही आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दीप्त-दृढ़-स्निग्ध

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥ १५ ॥

(१) **ये के च**=और जो कोई **महिनः**=पूजन की वृत्तिवाले **अहिमायाः**=अहीन प्रज्ञावाले देव **ज्मा**=इस पृथिवी में **जज्ञिरे**=प्रादुर्भूत होते हैं, **दिवः (जज्ञिरे)**=द्युलोक से प्रादुर्भूत होते हैं अथवा **अपां सधस्थे**=जलों के सहस्थान अन्तरिक्ष में प्रादुर्भूत होते हैं, **ते**=वे सब **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **विश्वं आयुः**=सम्पूर्ण जीवन में **इषये**=प्रेरणा देने के लिये हों। इनसे प्रेरणा को प्राप्त करके हम भी मस्तिष्करूप द्युलोक को दीप्त बनायें, शरीररूप पृथिवीलोक को दृढ़ बनायें तथा हृदयान्तरिक्ष को स्नेह जल से स्निग्ध रखें, हमारे हृदयों में सब के प्रति स्नेह हो। (२) **क्षपः उस्राः**=रात्रि व दिनों में, दिन-रात **देवाः**=ये सब देव हमारे लिये **वरिवस्यन्तु**=धनों की कामना करें। ये देव हमें 'प्रकाश-दृढ़ता व स्नेह' रूप धनों को प्राप्त करायें।

भावार्थ—सब देव हमें उत्तम प्रेरणा प्राप्त करायें। हम द्युलोक के समान दीप्त, पृथिवीलोक के समान दृढ़, अन्तरिक्ष के समान स्निग्ध बनें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अग्नीपर्जन्यौ

अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः।
इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥

(१) **अग्नीपर्जन्यौ**=हे अग्नि व मेघ देवो! आप **मे धियं अवतम्**=मेरे यज्ञादि उत्तम कर्मों का आप रक्षण करो। हे **सुहवा**=सुष्ठु आह्वान के योग्य अग्नि व पर्जन्य देवो! **अस्मिन् हवे**=इस (हुदाने) दानरूप यज्ञात्मक कर्म में **नः**=हमारे से की जानेवाली **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति का आप रक्षण कीजिये। अग्नि व पर्जन्यदेव की कृपा से हम यज्ञों व स्तुतिरूप कर्मों में सदा प्रवृत्त रहें। (२) इन अग्नि व पर्जन्य में **अन्यः**=एक पर्जन्य (मेघ) **इडाम्**=अन्न को **जनयत्**=उत्पन्न करता है। यह वृष्टिजल से उत्पन्न अन्न अत्यन्त सात्त्विक होता है। **अन्यः**=दूसरा अग्नि **गर्भम्**=हमारे अन्तर्भाग को, शरीर के अन्दर के सारे यन्त्र को विकसित करनेवाला होता है। अग्नि से ही सारा यन्त्र ठीक रहता है। इस प्रकार ये अग्नि और पर्जन्य **अस्मे**=हमारे लिये **प्रजावतीः इषः**=प्रकृष्ट सन्तानोंवाले व प्रकृष्ट विकासवाले अन्नों का **आधत्तम्**=धारण करें। इन अन्नों के सेवन से हमारे विचार उत्तम हों। हम यज्ञ व स्तवन को करनेवाले हों। शक्तियों का उत्कृष्ट विकास कर पायें।

ऋषिः—**ऋजिश्वाः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यजत्रा विश्वे देवा हविषि

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥ १७ ॥

(१) **बर्हिषि स्तीर्णे**=वासनाशून्य हृदयरूप आसन के बिछाने पर, **अग्नौ समिधाने**=ज्ञानाग्नि

के दीप्त होने पर, **सूक्तेन**=स्तुतियों के द्वारा तथा **महा नमसा**=महान् नमन के द्वारा **आविवासे**=मैं प्रभु का पूजन करता हूँ। (२) हे **यजत्राः**=यज्ञों के द्वारा सबका त्राण करनेवाले **विश्वे देवाः**=सब देवो! **नः**=हमारे **अद्य**=आज **अस्मिन् विदथे**=इस ज्ञानयज्ञ में **हविषि**=त्यागपूर्वक अदन के होने पर **मादयध्वम्**=हमें आनन्दित करनेवाले होइये।

भावार्थ—हम हृदय को वासनाशून्य बनाएँ, ज्ञानाग्नि को दीप्त करें, स्तवन व नमन के द्वारा प्रभु का पूजन करें, ज्ञानयज्ञों में चलते हुए सदा यज्ञशेष का सेवन करें। इस प्रकार जीवन को आनन्दमय बनायें।

यह ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला व्यक्ति 'बार्हस्पत्य' होता है, अपने में शक्ति को भरने से 'भरद्वाज' बनता है। यह 'पूषा' नाम से प्रभु का स्तवन करता है—

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पोषक प्रभु

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये। धिये पूषन्नयुज्महि ॥ १ ॥

(१) हे **पथस्पते**=मार्गों के स्वामिन्! **पूषन्**=हमारा पोषण करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **उ**=निश्चय से **त्वा**=आपको **अयुज्महि**=अपने साथ जोड़ते हैं। योग के द्वारा आपके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। प्रभु के साथ मेल होने पर हम मार्गों से भटकते नहीं तथा अपना ठीक पोषण कर पाते हैं। (२) आप **रथं न**=रथ के समान हैं। रथ यात्रापूर्ति में साधन बनता है, प्रभु का आश्रय भी जीवनयात्रा को सफलता से पूर्ण कराता है। हम आपको **वाजसातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये तथा **धिये**=बुद्धि के लिये अपने साथ युक्त करते हैं। आपका मेल हमें शक्ति व बुद्धि को देनेवाला होगा।

भावार्थ—प्रभु सब मार्गों के स्वामी हैं, हमारा पोषण करनेवाले हैं। प्रभु के साथ सम्पर्क से हम शक्ति व बुद्धि को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'नर्यं' वसु (कौन धन?)

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्। वामं गृहपतिं नय ॥ २ ॥

(१) हे प्रभो! **नः**=हमारे लिये **वसु अभिनय**=निवास के लिये आवश्यक उस धन को प्राप्त कराइये जो **नर्यम्**=नरहितकारी हो, **वीरम् (वि ईर)**=शत्रुओं को कम्पित करके दूर भगानेवाला हो, **प्रयतदक्षिणम्**=पवित्र दानवाला हो। (२) उस धन को प्राप्त कराइये जो **वामम्**=सुन्दर हो, सुन्दर गुणों को जन्म देनेवाला हो अथवा सुन्दर साधनों से कमाया गया हो। तथा **गृहपतिम्**=सब आवश्यकताओं को पूर्ण करके घर का रक्षण करनेवाला हो।

भावार्थ—प्रभु हमें वह धन प्राप्त करायें जो नरहितकारी शत्रु-कम्पक पवित्र दानवाला सुन्दर व गृहरक्षक हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दानप्रवृत्ति का जागरण

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय। पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥

(१) हे **आघृणे**=सर्वतो दीप्तिमन्! **पूषन्**=पोषक प्रभो! **अदित्सन्तं चित्**=न देने की कामनावाले को **दानाय**=दान के लिये **चोदय**=प्रेरित करिये। (२) **पणेः चिद्**=धनलुब्ध वणिक् के समान कृपण वृत्तिवाले पुरुष के **मनः**=मन को भी **विम्रदा**=मृदु करिये, वह भी आधार देने योग्य व्यक्तियों की स्थिति को देखकर दान की वृत्तिवाला बने।

भावार्थ—प्रभु ऐसा ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करायें कि अधिक से अधिक कृपण वृत्तिवाला पुरुष भी दयार्द्र मनवाला बने और दानवृत्ति को अपनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तम मार्गों से धन प्राप्ति

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि। साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥

(१) हे **उग्र**=उद्गूर्ण बल (पूषन्=) पोषक प्रभो! **पथः**=मार्गों को **वाजसातये**=शक्ति व धनों की प्राप्ति के लिये **विचिनुहि**=शोधित करिये। जिन मार्गों से चलकर धनों को प्राप्त करें उन मार्गों को हमारे लिये पृथक् करिये, अलग विस्पष्टरूप में दिखाइये। **मृधः**=बाधक शत्रुओं को **विजहि**=विनष्ट करिये। (२) हे प्रभो! **नः**=हमारे **धियः**=बुद्धिपूर्वक किये गये कर्म **साधन्ताम्**=सिद्धि को प्राप्त हों। इन ज्ञानपूर्वक किये गये कर्मों से हम उचित धनों का अर्जन करनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति के देनेवाले मार्गों को दिखायें। बाधक शत्रुओं को दूर करें। प्रभु कृपा से हमारे बुद्धिपूर्वक किये गये कर्म सफल हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ज्ञानवाणीरूप आरा से कठोर मन को चोट पहुँचाना

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥

(१) हे **कवे**=क्रान्तप्रज्ञ विद्वन्! **पणीनाम्**=धनलुब्ध वणिजों के **हृदया**=हृदयों को **आरया परितृन्धि**=(आरा प्रतोदः) आरे से चीर-सा डाल। इन्हें इस प्रकार ज्ञानोपदेश कर कि इन्हें हृदयों में वह ज्ञान की वाणी चुभ-सी जाये। उससे इनके हृदय इस प्रकार जागरित से हो उठें जैसे कि अंकुश से हाथी चेतन हो उठता है। (२) **अथ**=अब **ईम्**=निश्चय से इन्हें **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रन्धय**=वशीभूत करिये, ये अपने मनों को कठोर कर ही न पायें और दें ही।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष ज्ञान की वाणीरूप आरा से पणियों के हृदय को इस प्रकार हिंसित करें कि वह भी दान की ओर झुक ही जायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आरया तुद

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥

(१) गत मन्त्र की भावना को ही इस रूप में कहते हैं कि हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **पणेः**=धनलुब्ध वणिक् के हृदय को **आरया**=ज्ञान वाणी रूप प्रतोद से **वितुद**=खूब ही व्यथितकर। इस पणि के हृदय में **प्रियं इच्छ**=प्रियता को उत्पन्न करिये, 'देना ही चाहिये' ऐसी इच्छा को पैदा करिये। (२) **अथ**=अब **ईम्**=निश्चय से इसके मन को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रन्धय**=वशीभूत करिये। यह पणि भी हमारे लिये देने की वृत्तिवाला बने।

भावार्थ—सर्वपोषक प्रभु अदाता कृपण के हृदय में भी प्रिय वृत्ति को उत्पन्न करें, यह भी 'देना ही चाहिए' ऐसी वृत्तिवाला बने। समाज की स्थिति दान की उत्तम प्रणाली पर ही आश्रित है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

किकिरा कृणु

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७॥

(१) हे **कवे**=क्रान्तप्रज्ञ विद्वन्! तू इस प्रकार ज्ञानोपदेश कर कि **पणीनाम्**=इन धनलुब्ध वणिजों के **हृदया**=हृदयों को **आरिख**=अवदारित कर दे। **किकिरा कृणु**=(कीर्णानि प्रशिथिलानि) इनके हृदयों को अवकीर्ण, प्रशिथिल व मृदु कर दे। (२) **अथ**=अब **ईम्**=निश्चय से इनके हृदयों को **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **रन्धय**=वशीभूत करिये।

भावार्थ—कवि के ज्ञानोपदेश से इन कृपणों के हृदय भी एक बार दहल जाएँ और वे भी दानवृत्ति की ओर झुक जायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ब्रह्मचोदनी आरा

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे। तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥

(१) हे **आघृणे**=समन्तात् दीप्तिवाले **पूषन्**=पोषक प्रभो! **याम्**=जिस **ब्रह्मचोदनीम्**=ज्ञान को प्रेरित करनेवाली **आरा**=चाबुक को **बिभर्षि**=आप धारण करते हैं। **तया**=उस ज्ञान प्रेरिका आरा से **समस्य**=सब कृपणों के **हृदयम्**=हृदयों को **आरिख**=अवदीर्ण करिये, उनकी कठोरता को नष्ट करिये। (२) **किकिरा कृणु**=इस ज्ञान की वाणी से इनके हृदयों को अवकीर्ण व शिथिल कर डालिये। ये न देने के कठोर वृत्ति को नष्ट कर कोमल हृदयोंवाले बनकर दान में प्रवृत्त हों।

भावार्थ—अदाता कृपण जनों के हृदय भी ज्ञान की वाणियों से प्रेरित होकर दानवृत्तिवाले बन जायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गोओपशा अष्ट्रा

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी। तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥

(१) हे **आघृणे**=समन्तात् दीप्तिमन् प्रभो! **या**=जो **ते**=तेरी **गो ओपशा**=(गावः उपशेरते यस्याः) ज्ञान की वाणियाँ जिसके समीप निवास करती हैं ऐसी **अष्ट्रा**=आरा (प्रतीद) है, जिसे गतमन्त्र में 'ब्रह्मचोदनी आरा' कहा है, जो आरा **पशुसाधनी**=सब पाशवभावों को वशीभूत करनेवाली है, **तस्याः**=उसके द्वारा **ते**=आपसे हम **सुम्नम्**=सुख को **ईमहे**=माँगते हैं। (२) इस अष्ट्रा से प्रेरित हुआ-हुआ कोई भी व्यक्ति हमारे समाज में कृपण न रहे। कृपणता के दूरीकरण से सारा समाज सुखी हो।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे राष्ट्र में इस प्रकार ज्ञान का प्रचार हो कि कोई भी कृपण यहाँ न रहे। इस प्रकार समान उत्कृष्ट स्थिति में हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ-बुद्धि व शक्ति

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत। नृवत्कृणुहि वीतये ॥ १० ॥

(१) हे प्रभो! **नः**=हमारी **धियम्**=हमारी बुद्धि को **गोषणिम्**=उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियों का सेवन करनेवाली **उत**=तथा **अश्वसाम्**=उत्कृष्ट कर्मेन्द्रियों का सेवन करनेवाली **कृणुहि**=करिये। साथ ही हमारी

बुद्धि को **वाजसाम्**=शक्ति का सेवन करनेवाली करिये। हमारी बुद्धि शक्ति से युक्त हो। (२) हे प्रभो! **नृवत्**=एक पथ-प्रदर्शक की तरह (नृ=नेता) हमारे लिये **वीतये**=सब अन्धकारों के विनाश के लिये (असन) **कृणुहि**=व्यवस्था को करिये। आपसे प्रदर्शित मार्ग पर चलते हुए हम लक्ष्य पर पहुँचनेवाले हों।

भावार्थ—हमें प्रभु उत्तम ज्ञानेन्द्रियाँ, उत्तम कर्मेन्द्रियाँ, बुद्धि व शक्ति को प्राप्त करायें।

अगले सूक्त के ऋषि भी 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' ही हैं। वे 'पूषा' नाम से ही प्रभु की आराधना करते हैं—

[५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विद्वज्जन सम्पर्क

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति। य एवेदमिति ब्रवत्॥ १॥

(१) हे **पूषन्**=हमारा पोषण करनेवाले प्रभो! हमें आप उस **विदुषा**=ज्ञानी पुरुष के साथ **संनय**=संगत करिये, **यः**=जो कि **अञ्जसा**=(straight on, Truely, Directly, Quickly) सरलता से सत्यता, साक्षात् शीघ्रता से **अनुशासति**=उपदेश करता है। (२) उस विद्वान् से हमें संगत करिये **यः**=जो कि **इदं एव**='यह ही न्याय है' **इति ब्रवत्**=इस प्रकार निश्चय करके कहता है। जिसके उपदेश में संदिग्धता व संशय का स्थान नहीं।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुषों के सम्पर्क से हम ठीक मार्ग का ज्ञान प्राप्त करके उस पर चलनेवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश

समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति। इम एवेति च ब्रवत्॥ २॥

(१) **पूष्णा**=उस पोषक प्रभु के द्वारा प्रभु के अनुग्रह से **उ**=निश्चयपूर्वक **संगमेमहि**=हम उस विद्वान् के साथ संगत हों, **यः**=जो कि **गृहान् अभिशासति**=इन शरीर रूप गृहों का लक्ष्य करके उपदेश देता है अथवा जो **गृहान्**=गृहस्थ के कर्त्तव्यों के विषय में उपदेश देता है। (२) **च**=और उस विद्वान् के साथ हमारा सम्पर्क हो जो **इमे एव**='ये ही तुम्हारे जीवन के नियम हैं' **इति ब्रवत्**=यह उपदेश देता है।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हमारे साथ उन विद्वानों का सम्पर्क हो जो कि हमें गृहों को सुन्दर बनाने के नियमों का उपदेश करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु से दिये गये 'आयुध'

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते। नो अस्य व्यथते पविः॥ ३॥

(१) प्रभु ने जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये हमें इन्द्रिय, मन व बुद्धि रूप आयुध प्राप्त कराये हैं। उस **पूष्णः**=पोषक प्रभु का दिया हुआ यह **चक्रम्**=इन्द्रिय, मन व बुद्धि रूप आयुध **न रिष्यति**=हिंसित नहीं होता। यदि हम गत मन्त्र के अनुसार विद्वानों से उपदिष्ट नियमों का पालन करते हुए चलें तो इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि की शक्ति कभी क्षीण नहीं होती। **कोशः**=इन आयुधों

का कोश रूप यह शरीर, अन्नमयकोश, **न अवपद्यते**=अवपन्न, नष्ट नहीं होता। (२) **अस्य**=इस बुद्धि रूप आयुध की **पविः**=धारा **नो व्यथते**=पीड़ित-कुण्ठित नहीं होती। बुद्धि तीव्र ही बनी रहती है प्रभु ने 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' रूप सुन्दर आयुधों को हमारे लिये प्राप्त कराया है। इनके द्वारा ही हम अपने नष्ट धन को, अमृतत्व को पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

भावार्थ—प्रभु से दिये गये इन्द्रिय आदि आयुध न नष्ट होने वाले हैं, इनका कोशभूत यह शरीर भी अवपन्न (हीन) नहीं होता। बुद्धि की धारा भी तीव्र बनी रहती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु पूजन व अविनाश

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते। प्रथमो विन्दते वसु॥ ४॥

(१) **यः**=जो भी उपासक **अस्मै**=इस पोषक प्रभु के लिये **हविषा अविधत्**=दानपूर्वक अदन के द्वारा पूजन करता है, **तम्**=उसे **पूषा**=ये पोषक प्रभु **अपि**=(ईषद् अर्थे) थोड़ा भी **न मृष्यते**=हिंसित नहीं करते। दानपूर्वक अदन ही यज्ञ शेष का सेवन है। यह यज्ञशेष का सेवन ही मनुष्य को अमृतत्व प्राप्त कराता है। (२) यह यज्ञशेष का सेवन करनेवाला **प्रथमः**=प्रथम स्थान को प्राप्त करता है (प्रथ विस्तारे) खूब ही अपनी शक्तियों का विस्तार करनेवाला होता है। यह **वसु विन्दते**=निवास के लिये आवश्यक सब धनों को यह प्राप्त करता है।

भावार्थ—जब हम दानपूर्वक अदन करते हुए, सदा यज्ञशेष का सेवन करते हुए, प्रभु का पूजन करते हैं, तो हिंसित नहीं होते और सब वसुओं को प्राप्त करते हैं। वसुमान बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गौ-अश्व-वाज

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः। पूषा वाजं सनोतु नः॥ ५॥

(१) **पूषा**=वह पोषक प्रभु **नः**=हमारी **गाः**=ज्ञानेन्द्रियरूप गौओं के **अनु एतु**=पीछे चलनेवाला, उनका रक्षण करनेवाला हो। **पूषा**=यह पोषक प्रभु हमारे **अर्वतः**=कर्मेन्द्रियरूप अश्वों का **रक्षतु**=रक्षण करे। (२) इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को विषयवासनाओं से आक्रान्त न होने देकर **पूषा**=पोषक प्रभु **नः**=हमारे लिये **वाजं सनोतु**=शक्ति को दें। वस्तुतः इन्द्रिय रक्षण ही शक्ति रक्षण का साधन है।

भावार्थ—प्रभु हमारी इन्द्रियों का रक्षण करते हुए हमें शक्ति-सम्पन्न बनायें। प्रभु की उपासना ही इन्द्रियों को वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देती और इस प्रकार उपासक को सशक्त बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सुन्वन्-स्तुवन्-यजमान

पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः। अस्माकं स्तुवतामुत॥ ६॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **यजमानस्य**=यज्ञशील पुरुष के **गाः अनु प्र इहि**=इन्द्रियों के पीछे प्रकर्षेण चलनेवाले होइये, अर्थात् इस यज्ञशील पुरुष की इन्द्रियों का अच्छी प्रकार रक्षण करिये। इसी प्रकार **सुन्वतः**=सोम का अभिषव करते हुए पुरुष की इन्द्रियों का भी रक्षण करिये। जो भी व्यक्ति अपने अन्दर सोम (वीर्य) शक्ति का रक्षण करता है, उसकी इन्द्रियों को आप पूर्णतया रक्षित करिये। (२) **उत**=और **स्तुवताम्**=स्तवन करते हैं **अस्माकम्**=हमारी इन्द्रियों का रक्षण

करिये एवं इन्द्रियों को सुरक्षित करने के लिये तीन उपाय हैं—(क) यज्ञों में लगे रहना, (ख) सोम शक्ति को सुरक्षित करना, (ग) प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होना।

भावार्थ—प्रभु यज्ञशील-सोमरक्षक-स्तोता की इन्द्रियों का रक्षण करते हैं। यज्ञशीलता से इन्द्रियाँ कुपथ प्रवृत्त नहीं होती। सुरक्षित सोम इन्हें सशक्त बनाता है। प्रभु स्तवन इन्हें विषयों में नहीं फँसने देता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अरिष्टा गौवें

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे। अथारिष्टाभिरा गहि॥ ७॥

(१) हे पूषन्! आपके अनुग्रह से हमारा यह इन्द्रियरूप गोधन **माकिः नेशत्**=मत नष्ट हो। इन इन्द्रियों की शक्ति बनी रहे। यह गोधन **माकीं रिषत्**=विषयरूप व्याघ्रों से भी हिंसित न किया जाये। हमारी इन्द्रियाँ विषयों का शिकार न हो जायें। यह गोधन **केवटे**=विषय कूप में गिरकर **माकीं**=मत **संशारि**=शीर्ण हो जाए। (२) **अथ**=अब **अरिष्टाभिः**=इन अहिंसित इन्द्रियरूप गौवों के साथ **आगहि**=आप हमें प्राप्त होइये।

भावार्थ—इन्द्रियाँ न नष्ट हों, वासनाओं से हिंसित न हों, विषयकूप में इनका पतन न हो जाए। अहिंसित इन्द्रियों के साथ प्रभु हमें प्राप्त हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'इर्य-अनष्टवेदस्-ईशान' प्रभु

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्। ईशानं राय ईमहे॥ ८॥

(१) **वयम्**=हम **शृण्वन्तम्**=हमारी प्रार्थनाओं को सुननेवाले **पूषणम्**=पोषक प्रभु से **रायः ईमहे**=धनों की याचना करते हैं। (२) उस प्रभु से धनों की याचना करते हैं जो **इर्यम्**=दारिद्र्य को दूर प्रेरित करनेवाले (भगानेवाले) हैं। **अनष्टवेदसम्**=अनष्ट धनोंवाले हैं और **ईशानम्**=सब धनों के स्वामी हैं।

भावार्थ—हम प्रभु से धनों की याचना करते हैं। प्रभु दारिरद्र्य को दूर करनेवाले, अनष्ट धन व सब धनों के स्वामी हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

पूषा के व्रत में

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि॥ ९॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **तव व्रते**=आपकी प्राप्ति के साधन भूत 'जप-तप-ध्यान' आदि कर्मों में लगे हुए **वयम्**=हम **कदाचन**=कभी भी **न रिष्येम**=वासना व्याघ्रों से हिंसित न किये जायें। इन कर्मों में लगे हुए हम कभी विषयों के शिकार न हों। (२) हे प्रभो! **इह**=इस जीवन में हम **ते**=आपके **स्तोतारः स्मसि**=स्तवन करनेवाले हों। प्रभु स्तवन करते हुए वैसा ही बनने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति के लिए किये जानेवाले 'जप-तप-ध्यान' आदि कर्मों में हम प्रवृत्त रहें। सदा प्रभु स्तवन करते हुए प्रभु जैसा बनने के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

इन्द्रियों की अन्तर्मुखता

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्। पुनर्नो नष्टमाजतु॥ १०॥

(१) **पूषा**=पोषक प्रभु **परस्तात्**=सुदूर देश में जाती हुई, विषयों में भटकती हुई इन इन्द्रियरूप गौवों के रक्षण के लिये **दक्षिणं हस्तं परिदधातु**=दाहिने हाथ को निवारक बनाये (परिधानं निवारकम्)। प्रभु हमारी इन इन्द्रियरूप गौवों को विषयों में न जाने दें। (२) प्रभु के अनुग्रह से **नष्टम्**=(णश अदर्शने) सुदूर विषयों में गया हुआ **नः**=हमारा यह गोधन **पुनः**=फिर **आजतु**=हमारे समीप प्राप्त हो (आगच्छतु) विषय विनिवृत्त होकर ये अन्दर ही स्थित हों। ये इन्द्रियाँ बहिर्मुखी न बनी रहें।

भावार्थ—प्रभु दूर भागती हुई इन्द्रियों को दाहिने हाथ से रोकें। ये हमारी इन्द्रियाँ हमें प्राप्त हों, अन्तर्मुखी बनी रहें।

अगले सूक्त के ऋषि देवता वही 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' तथा 'पूषा' ही हैं—

[५५] पञ्चापञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्रभु स्मरण व यज्ञशीलता

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै। रथीर्ऋतस्य नो भव॥ १॥

(१) हे **आघृणे**=सर्वतो दीप्त, **विमुचः नपात्**=अपने को विषयों से छुड़ानेवाले को न गिरने देनेवाले, विषय-व्यावृत्ति-प्रवण पुरुष को बचानेवाले प्रभो! मुझ **वाम्**=गतिशील को **एहि**=प्राप्त होइये। **सं सचावहै**=आप और मैं संसक्त हो जायें, मिल जायें, कभी अलग न हों। मैं आपको कभी भूल न जाऊँ। (२) हे प्रभो! **नः**=हमारे **ऋतस्य**=यज्ञात्मक कर्मों के **रथीः**=नेता **भव**=होइये। आपके अनुग्रह से हमारे यज्ञात्मक कर्म सदा प्रवृत्त रहें। हम इन यज्ञों से आपका पूजन करते रहें।

भावार्थ—मैं कभी प्रभु को भूल न जाऊँ। प्रभु के अनुग्रह से सदा यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त रहूँ।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

'रथीतम-कपर्दी-ईशान' प्रभु का आराधन

रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः। रायः सखायमीमहे॥ २॥

(१) उस **रथीतमम्**=हमारे यज्ञों के उत्तम प्रणेता **सखायम्**=मित्रभूत प्रभु से **रायः**=यज्ञ-साधक धनों की **ईमहे**=याचना करते हैं। प्रभु प्रदत्त धनों से यज्ञों को करने में हम समर्थ होते हैं। (२) उन प्रभु से हम धनों की याचना करते हैं, जो **कपर्दिनम्**=(क पर् द) आनन्द की पूर्ति को देनेवाले हैं, तथा **महः**=महान् **राधसः**=कार्यसाधक धनों के **ईशानम्**=स्वामी हैं।

भावार्थ—हम मित्र प्रभु से कार्यसाधक कथनों की याचना करते हैं। प्रभु ही हमारे कार्यों के प्रणेता, सुख को देनेवाले व धनों के स्वामी हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

'यज्ञशील स्तोता के मित्र' प्रभु

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व। धीवतोधीवतः सखा॥ ३॥

(१) हे **अघृणे**=सर्वतो ज्ञानदीप्त प्रभो! आप **रायः धारा असि**=ऐश्वर्य की धारा हैं। अविच्छिन्नरूप से यज्ञशील पुरुषों के लिये धन को प्राप्त करानेवाले हैं। हे **अजाश्व**=गतिशील इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! (अज गतौ) आप **वसोः राशिः**=धन की राशि ही हैं, सम्पूर्ण धन का निवास आप में ही है। (२) **धीवतः धीवतः**=प्रत्येक बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले के आप **सखा**=मित्र हैं। वस्तुतः प्रभु ही इनके इन सब कार्यों को पूर्ण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सम्पूर्ण धनों के निवास-स्थान हैं। निरन्तर धनों के देनेवाले हैं। वे ही बुद्धिपूर्वक किये जाते हुए कर्मों के साधक हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'अजाश्व वाजी पूषा' का स्तवन

पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्। स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥

(१) **नु**=अब **अजाश्वम्**=गतिशील इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले, **वाजिनम्**=शक्तिशाली, **पूषणम्**=पोषक प्रभु को **उपस्तोषाम**=हम उपस्तुत करते हैं। प्रभु ही स्तोताओं को इन गतिशील इन्द्रियों को व शक्ति को प्राप्त कराके पुष्ट करते हैं। (२)(हम उस पूषा का स्तवन करते हैं **यः**=जो **स्वसुः**=(सु असुः) उत्तम प्राणशक्ति को देनेवाले हैं तथा **जारः**=अज्ञानरूप अन्धकार को विनष्ट करनेवाले **उच्यते**=कहे जाते हैं। पूषा सूर्य को भी कहते हैं। सूर्य भी उत्तम प्राणशक्ति को देता है 'प्राणः प्रजानामुदयन्त्येष सूर्यः'। तथा अन्धकार विनाशक है।

भावार्थ—प्रभु पोषक हैं, गतिशील इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले हैं, शक्ति को देते हैं। उत्तम प्राणशक्ति को प्रभु प्राप्त कराते हैं तथा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'माता के दिधिषु' प्रभु

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः। भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥

(१) **मातुः**=निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त प्रमाता (ज्ञानी) पुरुष के **दिधिषुम्**=धारण करनेवाले प्रभु को **अब्रवम्**=मैं प्रार्थना करता हूँ। वह **स्वसुः**=उत्तम प्राणशक्ति को देनेवाला **जारः**=अज्ञानान्धकार को जीर्ण करनेवाला प्रभु **नः शृणोतु**=हमारी प्रार्थना को सुने। (२) ये प्रभु ही **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **भ्राता**=भरण करनेवाले हैं और **मम सखा**=मेरे मित्र है।

भावार्थ—निर्माण कार्य प्रवृत्त पुरुषों के प्रभु ही धारक है, उत्तम प्राणशक्ति के दाता व अज्ञानान्धकार विनाशक हैं, जितेन्द्रिय पुरुष के धारण करनेवाले हैं, हमारे मित्र हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

जनश्री पूषा देव

आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्। देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥

(१) **अजासः**=ये मेरे गतिशील इन्द्रियाश्व, **रथे**=शरीर-रथ में **निशृम्भाः**=सम्बद्ध होकर हरण करनेवाले, ले चलनेवाले हों। इन्द्रियाँ अविरोध से कार्य करनेवाली हों। ज्ञानेन्द्रियों से दिये गये ज्ञान के अनुसार कर्मेन्द्रियाँ कर्म करनेवाली हों। (२) **ते**=वे इन्द्रियरूप अश्व **बिभ्रतः**=हमारा उचित भरण करते हुए **जनश्रियम्**=मनुष्यों की श्री के कारणभूत **देवम्**=प्रकाशमय **पूषणम्**=पोषक प्रभु को **आवहन्तु**=हमारे लिये प्राप्त करायें। सब श्री प्रभु के कारण ही होती है। जितना-जितना हम प्रभु का धारण करेंगे, उतनी-उतनी श्री को प्राप्त करनेवाले होंगे।

भावार्थ—इन्द्रियाँ सम्बद्ध होकर कार्य करनेवाली हों। ये हमें प्रभु की ओर ले चलें और श्री सम्पन्न करें।

अगले सूक्त में भी भरद्वाज बार्हस्पत्य पूषा का आराधन करते हैं—

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'करम्भात्' प्रभु

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम्। न तेन देव आदिशे॥ १॥

(१) 'क' शब्द जल वाचक है, शरीर में ये 'रेतः कण' हैं 'आपः रेतो भूत्वा'। इनके साथ जो 'रभते' अपने कार्यों को प्रारम्भ करता है अथवा इनके द्वारा अपने को सबल (रम्भस्यवाला) बनाता है वह 'करम्भ' है। प्रभु इस 'करम्भ' को प्राप्त होते हैं सो 'करम्भात्' हैं। **यः**=जो **एनं पूषणम्**=इस पोषक प्रभु को 'करम्भात्' 'रेतः=कणों के द्वारा अपने को सबल बनानेवाले शक्ति वाला' **इति**=इस प्रकार **आदिदेशति**=निरन्तर कहता है, **तेन**=उससे **देवः**=वे प्रभु **न आदिशे**=अन्य रूप में आदेष्टव्य व स्तोतव्य नहीं होता। (२) 'करम्भात्' यह नाम ही उस महनीय प्रेरणा को प्राप्त करानेवाला होता है कि अन्य बातों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। रेतःकणों के रक्षण का महत्त्व इस 'करम्भात्' शब्द में सुव्यक्त है। इस प्रेरणा को लेनेवाला व्यक्ति सभी अन्य उन्नतियों को करने में समर्थ हो ही जाता है।

भावार्थ—प्रभु उस पुरुष की ओर निरन्तर गतिवाले होते हैं, जो रेतःकणों के रक्षण द्वारा अपने को सबल बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रथीतमः-सत्पतिः-वृत्तहन्ता

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते॥ २॥

(१) **उत**=और **घा (घ)**=निश्चय से **सः**=वह गतमन्त्र का 'करम्भ' **रथीतमः**=प्रशस्त रथी-महारथी बनता है। **सख्या**=मित्रभूत पूषा से **युजा**=सहायभूत बने हुए से यह **सत्पतिः**=उत्तम कर्मों का ही स्वामी बनता है। जिस समय हम सोमशक्ति का रक्षण करते हैं तो उत्तम शरीररूप रथवाले होते हैं और प्रभु को साथी पाकर सदा उत्तम (श्रेष्ठ) कर्मों को करनेवाले बनते हैं। (२) **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **वृत्राणि**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **जिघ्नते**=नष्ट करता है। अपने साथी प्रभु की शक्ति से शक्ति सम्पन्न होकर यह वासनाओं को विनष्ट करनेवाला होता है।

भावार्थ—सोम का रक्षक प्रशस्त रथी बनता है, उत्तम कर्मों का रक्षक होता है। प्रभु को मित्र पाकर वासनाओं को विनष्ट करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

हिरण्यय चक्र

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम्। न्यैरयद्रथीतमः॥ ३॥

(१) **उत**=और यह **रथीतमः सूरः**=प्रशस्त रथी, रथ को प्रेरित करनेवाला होता हुआ (षू प्रेरणे) **परुषे**=इस (पर्ववति भास्वति वा) पूरण करनेवाली अथवा ज्ञानदीप्तिवाली **गवि**=ज्ञान दुग्ध दात्री वेद धेनु के होने पर **अदः**=उस **हिरण्ययम्**=ज्योतिर्मय **चक्रम्**='इन्द्रिय, मन, बुद्धि' रूप

आयुध को **न्यैरयत्**=अपने में प्रेरित करता है। (२) ज्ञान की वाणियों के द्वारा यह शरीरथ ज्योतिर्मय बनता है। इसमें 'इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' रूप आयुध चमकते हुए होते हैं। ऐसा होने पर ही यह व्यक्ति 'रथीतम' कहलाता है, प्रशस्त रथवाला।

भावार्थ—हम ज्ञान दीप्ति को प्राप्त करानेवाली इन ज्ञान वाणी रूप गौवें के ज्ञानदुग्ध से 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' को दीप्त कर लेते हैं। हम रथीतम होते हैं, हिरण्यय चक्र को अपने में प्रेरित करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मन्म-साधन

यद॒द्य त्वा॑ पुरुष्टुत॒ ब्रवा॑म दस्र मन्तुमः। तत्सु नो॒ मन्म॑ साधय ॥ ४ ॥

(१) हे **पुरुष्टुत**=बहुतों से स्तुति किये जानेवाले, **दस्र**=दर्शनीय, **मन्तुमः**=ज्ञानवन् प्रभो! **अद्य**=आज **यत्**=जिसका लक्ष्य करके **त्वा ब्रवाम**=आपका स्तवन करते हैं, **तत्**=उस **मन्म**=मननीय ज्ञान को **नः**=हमारे लिये **सुसाधय**=सम्यक् सिद्ध कीजिये। (२) यह ज्ञान ही हमारे जीवन को स्तुत्य (प्रशंसनीय), दर्शनीय व प्रकाशमय बनायेगा। सब कल्याणों का स्रोत यह ज्ञान ही है।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं, प्रभु हमें ज्ञान देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गवेषण गण

इ॒मं च॑ नो ग॒वेष॑णं सा॒तये॑ सीषधो ग॒णम्। आ॒रात्पू॑षन्नसि श्रु॒तः ॥ ५ ॥

(१) हे **पूषन्**=पोषक प्रभो! **इमं च**=और इस **नः**=हमारे **गवेषणम्**=(गवां एषयितारं) इन्द्रियों के प्रेरक **गणम्**=प्राणसमूह (मरुत् संघ) को **सातये**=शक्ति व ज्ञान की प्राप्ति के लिये **सीषधः**=(साधय) सिद्ध करिये। प्राणसाधना करते हुए हम सोमरक्षण के द्वारा इन्द्रियों को सशक्त व दीप्त बनायें, कर्मेन्द्रियाँ सशक्त हों और ज्ञानेन्द्रियाँ दीप्त। (२) हे पूषन्! आप **आरात्**=दूर से दूर तथा समीप से समीप **श्रुतः**=सुने जाते हैं। 'तद्दूरे तद्वन्तिके' (दूरात् सुदूरे तदिहन्तिके च)। वे सर्वव्यापक प्रभु इस प्राणसाधना के द्वारा हमें इन्द्रियों को वश में करने की शक्ति प्राप्त करायें।

भावार्थ—प्रभु हमें उस प्राणों के गण को प्राप्त करायें जो इन्द्रियों को अन्दर प्रेरित करता है और इस प्रकार हमें शक्ति व ज्ञान को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'आरे अघा-उपावसु' स्वस्ति

आ ते॑ स्व॒स्तिमी॑महे आ॒रेअ॑घा॒मुपा॑वसुम्। अ॒द्या च॑ स॒र्वता॑तये॒ श्वश्च॑ स॒र्वता॑तये ॥ ६ ॥

(१) हे पूषन्! हम **ते**=आप से **स्वस्तिम्**=कल्याणकारिणी रक्षा को **आ ईमहे**=सर्वथा चाहते हैं, जिसके कारण **आरे-अघाम्**=पाप हमारे से दूर रहते हैं और **उपावसुम्**=धन प्राप्त होता है (उपगतधनम्)। (२) हे प्रभो! हम आप से की जानेवाली कल्याणकारिणी रक्षा को **अद्या च**=आज भी **सर्वतातये**=सब सद्गुणों के विस्तार के लिये चाहते हैं, **श्वः च**=और कल भी **सर्वतातये**=सब शुभों के विस्तार के लिये चाहते हैं।

भावार्थ—प्रभु से दी जानेवाली कल्याणकारिणी रक्षा, (ख) पापों को दूर करती है, (ख) धनों को प्राप्त कराती है, (ग) आज व कल सदा सद्गुणों का विस्तार करनेवाली होती है।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र व पूषा का स्तवन करता है—

[५७] सप्तञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सख्याय-स्वस्तये-वाजसातये

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये। हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥

(१) सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला प्रभु 'इन्द्र' है। सब आवश्यक धनों को देकर हमारा पोषण करनेवाला प्रभु 'पूषा' है **वयम्**=हम **नु**=अब **इन्द्रापूषणा**=इन्द्र व पूषा को **सख्याय**=मित्रता के लिये **स्वस्तये**=कल्याण के लिये तथा **वाजसातये**=शक्ति व ज्ञान की प्राप्ति के लिये **हुवेम**=पुकारते हैं। (२) इन्द्र की मित्रता हमें सब काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विद्रावण करके सब के प्रति स्नेहवाला बनाती है। पूषा की मित्रता हमारा उचित पोषण करके कल्याण को देनेवाली होती है। यह इन्द्र व पूषा का आराधन हमें शक्ति सम्पन्न बनाता है।

भावार्थ—हम इन्द्र व पूषा का स्तवन करते हुए 'स्वस्ति व वाज' को प्राप्त करें, कल्याण को प्राप्त करें। शक्ति व ज्ञान को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सोमं करम्भम्

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम्। करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

(१) **चम्वोः**=द्यावापृथिवी के निमित्त **सुतम्**=उत्पन्न किये गये इस **सोमम्**=सोम को **पातवे**=पीने के लिये **अन्यः**=इन्द्र व पूषा में से एक इन्द्र **उपासदत्**=समीप प्राप्त होता है। इन्द्र वह है जो इन्द्रियों को वश में करने के लिये यत्नशील होता है। यह जितेन्द्रिय बनकर सोम का पान करता है। इस सुरक्षित सोम से मस्तिष्क रूप द्युलोक को यह ज्ञानदीप्त बनाता है तथा शरीर रूप पृथिवी लोक को इस सोम के द्वारा ही सशक्त करता है। (२) **अन्यः**=दूसरा **पूषा**=अपने में शक्तियों का पोषण करनेवाला **करम्भम्**=क-जल व रेतःकणों के द्वारा अपने में शक्ति के भरण को **इच्छति**=चाहता है। पूषा सदा इस कामनावाला होता है कि मेरे कार्य शक्ति से परिपूर्ण हों।

भावार्थ—जितेन्द्रिय बनकर हम सोम का पान करें। रेतःकणों के रक्षण से हमारे कार्य शक्तिशाली हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अजाः, हरी

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता। ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥

(१) **अन्यस्य**=इन्द्र और पूषा में से एक पूषा के **वह्नयः**=वहन करनेवाले **अजाः**=गति के द्वारा सब बुराइयों का क्षेपण करनेवाले 'प्राण' हैं। प्राणों का पोषण ही इसे पूषा बनाता है। इन प्राणों से गति के द्वारा शरीर का सब मल परे फेंका जाता है। (२) **अन्यस्य**=दूसरे इन्द्र के **हरी**=कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय रूप अश्व **सम्भृता**=सम्यक् पुष्ट किये जाते हैं अथवा सम्यक् धारित किये जाते हैं। **ताभ्याम्**=इन सम्भृत इन्द्रियों से यह इन्द्र **वृत्राणि जिघ्नते**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करता है।

भावार्थ—प्राणों की साधना हमें पूषा बनाती है। इन्द्रियाश्वों का स्मरण हमें इन्द्र बनाता है और हम वासनाओं को विनष्ट कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्राण-साधना

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः। तत्र पूषाभवत्सचा॥ ४॥

(१) इन्द्रियों को वश में करनेवाला साधक 'इन्द्र' है। प्राणों की साधना करनेवाला 'पूषा' है। **यत्**=जब **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **रितः**=गतिमय, गति के स्वभाववाले **महीः**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण **अपः**=इन रेत:कणों को **अनयत्**=शरीर के अन्दर प्राप्त कराता है, तो वह **वृषन्तमः**=अतिशयेन शक्तिशाली बनता है। (२) **तत्र**=वहाँ इन रेत:कणों के शरीर में ही प्राप्त कराने के कार्य में **पूषा**=प्राणसाधना करनेवाला यह देव **सचा**=इन्द्र का साथी **अभवत्**=होता है। प्राणसाधना इन रेत:कणों की ऊर्ध्वगति में अतिशयेन सहायक होती है।

भावार्थ—हम जितेन्द्रियता व प्राणसाधना द्वारा रेत:कणों का रक्षण करें। यह रक्षण हमें अतिशयेन शक्तिशाली बनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सुमति का आश्रय

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव। इन्द्रस्य चा रभामहे॥ ५॥

(१) **वयम्**=हम **पूष्णः**=प्राणसाधना को करनेवाले इस उपासक की **तां सुमतिम्**=उस कल्याणीमति को **आरभामहे**=इस प्रकार आश्रय करते हैं, **इव**=जैसे कि कोई **वृक्षस्य**=वृक्ष की **प्रवयाम्**=दृढ़ शाखा को पकड़ता है। वस्तुतः पूषा की यह सुमति यही है कि हम भी पूषा की तरह प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। (२) इसी प्रकार हम **इन्द्रस्य च**=इन्द्र की भी कल्याणीमति का आश्रय करते हैं। जितेन्द्रिय बनकर हम भी सोम का रक्षण करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—हम इन्द्र व पूषा का अनुगमन करें, जितेन्द्रिय बनें और प्राणसाधना में प्रवृत्त हों। इस से सोमरक्षण करते हुए हम बुद्धि को बड़ा शुद्ध व तीव्र बना पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रापूषणौ** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

मह्यै स्वस्तये

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः। मह्या इन्द्रं स्वस्तये॥ ६॥

(१) **मह्यै स्वस्तये**=महान् कल्याण के लिये हम **पूषणम्**=पूषा को **इन्द्रम्**=और इन्द्र को **उद्युवामहे**=(उद्याजेयानः-उद्योजनमाकर्षणम्) अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। प्राणसाधना करते हुए हम 'पूषा' बनते हैं, और इन्द्रियों को वश में करते हुए 'इन्द्र' बनते हैं। (२) इन्द्र और पूषा को इस प्रकार हम अपनी ओर आकृष्ट करते हैं **इव**=जैसे कि **सारथिः**=रथ का वाहक **अभीशून्**=लगामों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। लगाम के द्वारा यह घोड़ों को काबू कर पाता है। इसी प्रकार हम इन्द्र बनकर इन्द्रियों को वश में करते हैं और पूषा बनकर प्राणों को। इनका वशीकरण ही महान् कल्याण का साधन है।

भावार्थ—हम इन्द्रियों व प्राणों को वश में करके इन्द्र व पूषा बनते हुए महान् कल्याण को सिद्ध करें।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' पूषा का आराधन करते हैं—

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शुक्रं-यजतम्

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥ १ ॥

(१) गत मन्त्र में प्राणसाधना करनेवाला पुरुष पूषा है। यह पूषा अपने जीवन को निर्मल व ज्ञानदीप्त बनाता है। हे **पूषन्**=प्राणसाधक पुरुष! **ते**=तेरा यह **शुक्रम्**=ज्ञानदीप्त रूप **अन्यत्**=विलक्षण ही है। तथा मन की निर्मलता के होने पर **यजतम्**=सब के साथ संगतिकरणवाला **ते**=तेरा रूप भी **अन्यत्**=विलक्षण है। इन शुक्र और यजत रूपों से तू **विषुरूपे अहनी इव असि**=भिन्न-भिन्न उत्तम रूपवाली दिन-रात्रि के समान है। दिन के समान शुक्र (दीप्त) है। रात्रि के समान यजत है, रात में सब वैरविरोध को भूलकर गाढ़-निद्रा में उस आनन्दमयकोश में पहुँच जाते हैं, जो कि सबका एक है। **द्यौः** इव असि=तू इस द्युलोक के समान है, जो दीप्त है और समानरूप से सबका निवास-स्थान है। (२) हे पूषन्! तू **विश्वाः**=सब **हि**=ही **मायाः**=प्रज्ञानों को **अवसि**=अपने अन्दर सुरक्षित करता है। प्राणसाधना से बुद्धि का दीपन होकर सब प्रज्ञानों की प्राप्ति होती है। हे **स्वधावः**=आत्मधारण-शक्तिवाले पूषन् (स्व-धा-वः) अथवा (स्व-धाव) प्राणसाधना द्वारा आत्मशोधन करनेवाले पूषन्! **इह**=इस जीवन में **रातिः**=दान (दान की वृत्ति) **ते भद्रास्तु**=तेरे लिये कल्याणकारिणी हो। यह दानवृत्ति ही मनुष्य के पापों का खण्डन करनेवाली होती है।

भावार्थ—प्राणसाधना से मस्तिष्क दीप्त होता है, मन निर्मल होकर सब के प्रति मेल व प्रेमवाला होता है। यह दोनों ही रूप कितने सुन्दर हैं? सब प्रज्ञानोंवाला होता हुआ यह पूषा दान की वृत्तिवाला बनता है। यही उसे पवित्र बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**पूषा** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

वाजपस्त्यः धियञ्जिन्वः

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्संचक्षाणो भुवना देव ईयते॥ २ ॥

(१) **अजाश्वः**=गतिशील इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाला, **पशुपाः**=(कामः पशुः क्रोधः पशुः) काम-क्रोध आदि से हमें बचानेवाला, **वाजपस्त्यः**=शक्ति का घर, शक्ति का निवास-स्थान, **धियञ्जिन्वः**=बुद्धियों को प्रेरित करनेवाला यह प्रभु **विश्वे भुवने**=सम्पूर्ण भुवन में **अर्पितः**=अर्पित है, अर्थात् सर्वत्र व्याप्त है। (२) **पूषा**=वह पोषक प्रभु **शिथिरां अष्ट्राम्**=शिथिल हुई-हुई अष्ट्रा को **उद् वरीवृजत्**=फिर से उद्यत करता है (उच्छ्रथत्)। अष्ट्रा का अर्थ चाबुक और अंकुश है। जैसे अंकुश व चाबुक हाथी व घोड़े की प्रसुप्त शक्ति को जागरित-सा कर देता है, इसी प्रकार शरीर में अष्ट्रा वह शरीर व्यापिनी प्रेरिका शक्ति है जो सब अंगों को ठीक रूप में कार्य कराती है। प्रभु ही इस शक्ति को हमारे में जागरित करते हैं। इस प्रकार **भुवना**=सब प्राणियों का **संचक्षाणः**=ध्यान करते हुए **देवः**=वे सब व्यवहारों के साधक प्रभु **ईयते**=प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमें गतिशील इन्द्रियाँ प्राप्त कराते हैं, काम-क्रोध आदि से बचाते हैं, शक्ति व बुद्धि को देते हैं। वे सर्वव्यापक प्रभु हमारे अन्दर प्रसुप्त शक्तियों को जागरित करते हैं। इस प्रकार सबका ध्यान करते हुए प्रभु सर्वत्र प्राप्त हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

पूषा की नौकाएँ

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥

(१) हे **कामेन कृत**=कामना के द्वारा सारे संसार को उत्पन्न करनेवाले (सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय) **पूषन्**=पोषक प्रभो! **याः**=जो **ते**=आपकी **हिरण्ययीः नावः**=ज्योतिर्मयी नाव तुल्य वेदवाणियाँ हैं, जो **समुद्रे**=(समुद्) आनन्दमय **अन्तरिक्षे अन्तः**=हृदयान्तरिक्ष में **चरन्ति**=गति करती हैं, प्रसन्न मन में जिनका प्रकाश होता है, **ताभिः**=उनके द्वारा **दूत्यम्**=ज्ञान सन्देश प्रापण के कार्य को **यासि**=आप प्राप्त होते हैं। इन वेदवाणियों के द्वारा आप हमें ज्ञान का सन्देश सुनाते हैं। हमारे लिये **सूर्यस्य श्रवः**=सूर्य के यश को, प्रकाश को **इच्छमानः**=चाहते हैं। जैसे सूर्य प्रकाश से देदीप्यमान है, इसी प्रकार आप हमारे हृदयों को भी ज्ञान के प्रकाश से दीप्त करते हैं। (२) प्रभु ने यह सारा संसार कामना से ही उत्पन्न किया है, हमारे लिये जब प्रभु चाहते हैं तो इस ज्ञान के प्रकाश को प्रकट कर देते हैं। हम प्रभु के इस अनुग्रह के पात्र तभी बनते हैं जब कि अपने इस हृदय को निर्मल व प्रसन्न बना पाते हैं। प्रभु से दिया गया यह ज्ञान हमारे लिये नाव का कार्य करता है, इसके द्वारा हम भवसागर को तैरनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु से दिया गया ज्ञान हमारे लिये भवसागर को तरानेवाली नाव के समान होता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

देवों का सूर्या के लिये पूषा को देना

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ४ ॥

(१) **पूषा**=यह पोषक प्रभु **दिवः पृथिव्याः**=द्युलोक व पृथिवीलोक का **आ**=समन्तात् **सुबन्धुः**=उत्तम बाँधनेवाला है यह हमारे जीवनों में मस्तिष्क रूप द्युलोक तथा शरीर रूप पृथिवीलोक को सम्यक् बद्ध करता है। ज्ञान व शक्ति को जोड़ देता है। **इडस्पतिः**=वेदवाणी का स्वामी है, **मघवा**=परमैश्वर्यवाला है। प्रभु ज्ञान व धन दोनों के आधार हैं। **दस्मवर्चः**=शत्रुविनाशक शक्तिवाले हैं (दसु उपक्षये) (२) **यम्**=जिस पूषा को **देवासः**=सब देव **सूर्यायै अददुः**=सूर्या के लिये देते हैं। 'देव' यहाँ दिव्यगुण हैं, 'सूर्या' बुद्धि है। दिव्यगुणों के द्वारा प्रभु का बुद्धि में स्थापन होता है। उस प्रभु को ये दिव्य गुण बुद्धि में स्थापित करते हैं, जो कि **कामेन कृतम्**=कामना से ही सम्पूर्ण संसार को बना डालते हैं, **तवसम्**=बलवाले हैं और **स्वञ्चम्**=उत्तम गतिवाले हैं।

भावार्थ—दिव्य गुणों को धारण करते हुए हम प्रभु को बुद्धि के द्वारा ग्रहण कर पायेंगे। ये प्रभु हमारे जीवनों में ज्ञान व शक्ति का समन्वय करेंगे।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' ऋषि हैं और 'इन्द्राग्नी' देवता है, 'इन्द्र' बल का प्रतीक है तो 'अग्नि' प्रकाश का—

[५९] एकोनषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

बल व प्रकाश का मेल

प्र नु वो॑चा सु॒तेषु॑ वां वी॒र्या॑३ यानि॑ च॒क्रथुः॑ ।
ह॒तासो॑ वां पि॒तरो॑ दे॒वश॑त्रव॒ इन्द्रा॑ग्नी॒ जीव॑थो यु॒वम् ॥ १ ॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **युवम्**=आप दोनों **सुतेषु**=हमारे जीवन-यज्ञों में **जीवथः**=सदा जीवित रहो। मैं **वाम्**=आपके **वीर्या**=उन शक्तिशाली कर्मों को **नु**=अब **प्रवोचा**=प्रकर्षेण कहता हूँ **यानि चक्रथुः**=जिन्हें आप करते हों। (२) **वाम्**=आपके **पितरः** (पीयति हिंसा कर्मा)=हिंसा करनेवाले **देवशत्रवः**=दिव्य गुणों के विनाशक आसुरभाव **हतासः**=नष्ट किये गये हैं। इन आसुरभावों के विनाश से जीवन दिव्य गुणों के प्रकाश से प्रकाशित हो उठा है।

भावार्थ—बल व प्रकाश के देव मिलकर हमारे जीवनयज्ञ में आसुरभावों का विनाश करते हैं। आसुरभावों को विनष्ट करके ही वस्तुतः 'इन्द्र व अग्नि' जीवित रहते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

मिलित इन्द्राग्नी की अद्भुत महिमा

बळि॒त्था म॑हि॒मा वा॒मिन्द्रा॑ग्नी॒ पनि॑ष्ठ॒ आ ।
स॒मा॒नो वां॑ जनि॒ता भ्रात॑रा यु॒वं य॒मावि॒हेह॑मातरा ॥ २ ॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **इत्था**=इस प्रकार **वां महिमा**=आप दोनों की महिमा **बट्**=सत्य है और **आ**=समन्तात् **पनिष्ठः**=स्तुत्यतम है। (२) **वाम्**=आप दोनों का **जनिता**=उत्पन्न करनेवाला **समानः**=समान ही है, एक प्रभु ही आप दोनों को जन्म देते हैं। **युवम्**=आप दोनों **भ्रातरा**=भाइयों के समान हैं, हमारे जीवनों में सब कार्यों का भरण करनेवाले हैं। आप **यमौ**=युगल भाइयों के समान होते हुए **इह इह मातरा**=इस इस स्थान में निर्माण के कार्यों के करनेवाले होते हैं। जीवन का कोई भी कार्य केवल ज्ञान से व केवल बल से नहीं हो पाता। इनका समन्वय ही जीवन के सब कार्यों को सुचारुरूपेण करता है। 'इन्द्र और अग्नि' एक घर में पुरुष और स्त्री के समान हैं, अकेले पुरुष व अकेली स्त्री से घर नहीं बनता। इसी प्रकार अकेले ज्ञान व अकेले बल से जीवन नहीं बनता।

भावार्थ—हमारे जीवन में ज्ञान व बल का ऐसा मेल हो जैसा कि दो भाइयों का। ये मिलकर हमारे जीवन को अतिसुन्दर बनायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

सचा ओकिवांसा 'वज्रिणा देवा'

ओ॒कि॒वांसा॑ सु॒ते सचाँ॒ अश्वा॒ सप्ती॑इ॒वाद॑ने ।
इन्द्रा॒ न्व१॒॑ग्नी अव॑से॒ह व॒ज्रिणा॑ व॒यं दे॒वा ह॑वामहे ॥ ३ ॥

(१) हे इन्द्राग्नी! आप **सुते**=शरीर में सोम के उत्पन्न होने पर **सचा**=साथ-साथ (सह) **ओकिवांसा**=समवेत्य (मेल) वाले होवो। इस प्रकार मेलवाले होवो **इव**=जैसे **आदने**=खाने के स्थान पर **सप्ती**=सर्पणशील **अश्वा**=दो अश्व मेलवाले होते हैं। प्रकाश व बल दोनों का यहाँ शरीर

में यह 'सोम' ही तो भोजन है। सोम ही ज्ञान व बल की उत्पत्ति का साधन बनता है। (२) **नु**=अब **इह**=यहाँ जीवन में **वयम्**=हम **अवसा**=रक्षण के हेतु से **इन्द्रः अग्नी**=इन्द्र और अग्नि को, बल व प्रकाश के देवों को **हवामहे**=पुकारते हैं। ये इन्द्र और अग्नि क्रमशः **वज्रिणा**=वज्रवाले व **देवा**=प्रकाशमय हैं। इन्द्र वज्रहस्त हैं, अग्नि प्रकाश का देव हैं। वस्तुतः दोनों ऐसे मिले हुए हैं कि दोनों दोनों ही हैं। इन्द्र का वज्रहस्त होने का भाव यह है कि वह क्रियाशील है (वन् गतौ)। यह क्रियाशीलता ही उसे सब असुरों का संहार करने में समर्थ करती है।

भावार्थ—सोम के उत्पन्न होने पर हमारे में ज्ञान व बल का साथ-साथ निवास हो। ये हमें क्रियाशील व प्रकाशमय जीवनवाला बनायें। इस प्रकार ये हमारे रक्षक हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

ऋतावृधा पज्रहोषिणा

य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन॥ ४॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **यः**=जो **सुतेषु**=सोमकणों के अभिषव (उत्पत्ति) होने पर **वां स्तवत्**=आप दोनों का स्तवन करता है आप **तेषु**=उन लोगों में **ऋतावृधा**=ऋत का, सत्य का जो ठीक है उसका वर्धन करनेवाले होते हो। (२) ये इन्द्र और अग्नि **जोषवाकं वदतः**=प्रीतिपूर्वक उच्चरित वाणी को बोलते हैं। जीवन में बल व प्रकाश से युक्त पुरुष कड़वी वाणी नहीं बोलता। **पज्रहोषिणा**=(प्रार्जितहोषिणा) ये अर्जित धन की लोकहित के कार्यों में, प्राजापत्य यज्ञ में आहुति देनेवाले होते हैं। **देवा**=ये दिव्य वृत्तियों को जन्म देनेवाले 'बल व प्रकाश' **न भसथः चन**=कभी अपशब्द नहीं बोलते (भस्=to abuse) अथवा (भस् to eat) खाते भी तो नहीं। अर्थात् अपनी आवश्यकताओं को कम से कम करते हुए धन की प्राजापत्य यज्ञ में आहुति ही देते हैं।

भावार्थ—इन्द्राग्नी के आराधन से बल व प्रकाश के जीवन में समन्वय से (क) ऋत का वर्धन होता है, (ख) हम मधुर ही वाणी बोलते हैं, (ग) कम से कम खाते हुए सब धनों को प्राजापत्य यज्ञ में आहुत करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

इन्द्रियाश्वों को एक रथ में जोतना

इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे॥ ५॥

(१) हे **देवौ**=प्रकाशमय व सब व्यवहारों के साधक **इन्द्राग्नी**=इन्द्र व अग्नि, बल व प्रकाश के देवो! **वाम्**=आपके **अस्य**=इस बात को **कः मर्तः**=कौन मनुष्य **चिकेतति**=जानता है? अर्थात् कोई विरल ही जानता है। सामान्यतः कोई नहीं जानता। (२) आप दोनों में से **एकः**=एक यह इन्द्र **विषूचः**=विविध दिशाओं में उत्तम गतिवाले इन **अश्वान्**=इन्द्रियाश्वों को **समाने रथे**=एक ही शरीर-रथ में **युयुजानः**=जोड़ता हुआ **आ ईयते**=समन्तात् गति करता है। इन्द्र ही इन इन्द्रियों को उस-उस कार्य में व्यापृत करता है। ये सब इन्द्रियाँ मिलकर शरीर-रथ को लक्ष्य-स्थान की ओर ले जाते हैं। इन्द्र वही है जो जितेन्द्रिय है। ये इन इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने नहीं देता। अग्नि मार्ग दिखाता है, इन्द्र इन इन्द्रियाश्वों को ले चलता है।

भावार्थ—अग्नि के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर, इन्द्र बनकर, हम इन्द्रियाश्वों को ले चलें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

दैनिक कार्यक्रम

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल और प्रकाश के तत्त्वो! हमारे जीवनों में **इयम्**=यह **अपात्**=पादरहित भी उषा **पद्वतीभ्यः**=पाँवोंवाली प्रजाओं से **पूर्वा अगात्**=पहले आती है। अर्थात् हम लोगों के सम्पर्क में आने से पहले प्रतिदिन इस उषा के सम्पर्क में आते हैं। (२) यह उषा **शिरः हित्वी**= (प्रेरयित्री) हमारे मस्तिष्कों को प्रेरित करती हुई हमें स्वाध्याय द्वारा उत्तम मस्तिष्कवाला बनाती हुई, **जिह्वया**=हमारी जिह्वा से **वावदत्**=निरन्तर प्रभु नामों का उच्चारण करती हुई **चरत्**=कार्यों में प्रवृत्त होती है। यह **त्रिंशत् पदा**=तीसों कदम, दिन के अवयवभूत तीसों मुहूर्तों में **न्यक्रमीत्**=हमें गतिवाला बनाती है।

भावार्थ—हम उठकर सबसे प्रथम उषा में प्रभु का ध्यान करते हैं। स्वाध्याय को करते हुए, प्रभु स्मरणपूर्वक कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। हमारा सारा दिन बड़ा क्रियाशील बीतता है। यही आदर्श जीवन का प्रोग्राम है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

महाधने, गविष्टिषु

इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु॥ ७॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के तत्त्वो! **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **बाह्वोः**=अपनी भुजाओं में **धन्वानि**=धनुषों को **हि**=निश्चय से **आतन्वते**=विस्तृत करते हैं। अर्थात् इस जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये तथा वासना आदि शत्रुओं को विनष्ट करने के लिये, प्रणव (ओ३म्) रूप धनुष को धारण करते हैं। प्रभु-स्मरण ही प्रणवरूप धनुष का धारण है। (२) हे इन्द्राग्नी! आप **नः**=हमें **अस्मिन्**=इस **महाधने**=महनीय धन को प्राप्त करानेवाले संग्राम में तथा **गविष्टिषु**=इन ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करने के निमित्त इन वाणियों के अन्वेषण में **मा परावर्क्तम्**=मत छोड़ दो। जब हमारे जीवन का ध्येय बल व प्रकाश को प्राप्त करना बना रहता है तो हम वासनाओं का शिकार नहीं होते तथा ज्ञान की वाणियों को अधिकाधिक प्राप्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—बल व प्रकाश को प्राप्त करना ही हमारे जीवन का ध्येय हो। ऐसा होने पर हम सदा प्रभु स्मरण में प्रवृत्त होंगे। वासनाओं के आक्रमण से बचे रहेंगे तथा स्वाध्याय प्रवृत्त होंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

द्वेष से दूर

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः। अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि॥ ८॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के तत्त्वो! **अघाः**=(आहनतव्यः) चोट करनेवाली **अर्यः**=हमारे पर आक्रमण करनेवाली **अरातयः**=काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं की सेनाएँ **मा तपन्ति**=मुझे

पीड़ित करती हैं। आप इन्हें **अपाकृतम्**=मेरे से दूर करिये। ज्ञान व बल की आराधना मुझे इन शत्रुओं के आक्रमण से बचाये। (२) हे **इन्द्राग्नी**=आप **द्वेषांसि**=द्वेष की भावनाओं को हमारे से दूर करो। वस्तुतः इन ईर्ष्या-द्वेष आदि की भावनाओं को तो **सूर्याद् अधि**=सूर्य दर्शन से भी **अप युयुतम्**=पृथक् कर दीजिये। सूर्य का जहाँ भी प्रकाश पहुँचता है, वहाँ द्वेष आदि का निवास न होता है।

भावार्थ—बल व प्रकाश का आराधन मुझे शत्रुओं के आक्रमण से बचाये। इनका आराधन मुझे द्वेष से दूर करे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'विश्वायुपोषस' रयि

इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा। आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम्॥ ९ ॥

(१) **इन्द्राग्नी**=हे बल व प्रकाश के देवो! **दिव्यानि**=मस्तिष्करूप द्युलोक सम्बन्धी तथा **पार्थिवा**=शरीररूप पृथिवी सम्बन्धी सब **वसु**=धन **युवोः अपि** (हितानि)=आप में ही स्थित हैं। (२) आप **इह**=इस जीवन में **नः**=हमारे लिये **रयिं प्रयच्छतम्**=उस ऐश्वर्य को दीजिये जो **विश्वायुपोषसम्**=सब मनुष्यों का पोषण करनेवाला हो। अर्थात् जिस धन को हम सब के साथ बाँधकर उपयुक्त करनेवाले बनें।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि हम मस्तिष्क के ज्ञान-धन को तथा शरीर के शक्तिरूप धन को दें तथा हमें उस सम्पत्ति को प्राप्त करायें जो सभी के हित में विनियुक्त हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

उक्थ-स्तोम-गिर्

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता। विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये॥ १० ॥

(१) **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देव हमारे जीवनों में **उक्थवाहसा**=स्तुति-वचनों के धारण करनेवाले हों। हमें प्रभु स्तवन की ओर झुकाववाला बनायें। **स्तोमेभिः**=स्तुतिसमूहों से ये इन्द्र और अग्नि **हवनश्रुता**=उसी प्रभु की पुकार (प्रेरणा) को सुननेवाले हों। इन्द्र और अग्नि के धारण से हम प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होकर हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले बनें। (२) हे इन्द्राग्नी! आप **अस्य सोमस्य पीतये**=इस सोम के शरीर में ही पान के लिये **विश्वाभिः गीर्भिः आगतम्**=सब ज्ञान की वाणियों के साथ हमें प्राप्त होवो। हम सदा ज्ञान की वाणियों के अध्ययन में लगे रहें और इस सोम को शरीर में ही सुरक्षित कर सकें।

भावार्थ—इन्द्र व अग्नि की आराधना, बल व प्रकाश को प्राप्त करने की प्रवृत्ति हमें प्रभु स्तवन में प्रवृत्त करे। यह हमें प्रभु प्रेरणा के सुनने योग्य बनाये, तथा सदा ज्ञान की वाणियों के अध्ययनवाला करें।

अगले सूक्त में भी इन्द्र और अग्नि का ही आराधन है—

[६०] षष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वृत्रसंहार तथा बल की प्राप्ति

श्नथद् वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात्।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥

(१) **यः**=जो **सहुरी**=शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले **इन्द्रा अग्नी**=बल व प्रकाश के देवों का **सपर्यात्**=पूजन करता है, वह **वृत्रं श्नथत्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करता है, **उत**=और **वाजं सनोति**=बल को प्राप्त करता है। (२) ये इन्द्र और अग्नि **भूरेः**=बहुत अधिक **वसव्यस्य**=वसु समूह के **इरज्यन्ता**=ईशान हैं, स्वामी हैं। ये **सहसा**=बल से **सहन्तमा**=हमारे शत्रुओं को कुचलनेवाले हैं तथा **वाजयन्ता**=हमारे लिये शक्ति की कामनावाले होते हैं, हमें ये शक्ति सम्पन्न बनाते हैं जिससे हम शत्रुओं का शातन कर सकें।

भावार्थ—इन्द्र व अग्नि का आराधन हमें वृत्र विनाश व शक्ति प्राप्ति के योग्य करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'दिशः-स्वः-उषसः-अपः-गाः'

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान्॥ २॥

(१) हे **इन्द्र, अग्ने**=बल व प्रकाश के देवो! **ता**=वे आप **ऊळ्हाः गाः**=वासनाओं से जिनका अपहरण (अपवहन) किया गया है ऐसी इन्द्रियों का **अभि**=लक्ष्य करके **योधिष्टम्**=इन वासनाओं के साथ युद्ध करते हो। इसी प्रकार, हे देवो! आप **नूनम्**=निश्चय से **अपः**=रेतःकणों का, **स्वः**=प्रकाश का, **उषसः**=(उष दाहे) दोषदहन शक्तियों का लक्ष्य करके इन वासनाओं से युद्ध करते हो। (२) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले, **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नियुत्वान्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को हमारे लिये प्राप्त करानेवाले आप **दिशः**=प्रभु के निर्देशों को, **स्वः**=प्रकाश को, **उषसः**=दोषदहन शक्तियों को, **चित्राः अपः**=अद्भुत वीर्यकणों को तथा **गाः**=इन्द्रियों को **युवसे**=हमारे साथ जोड़ते हैं। वासनाओं को विनष्ट करके इन सब चीजों को हमें प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन वासनाओं का विनाश करके हमें 'प्रभु निर्देशों, प्रकाश, दोषदहन शक्तियों, वीर्यकणों व प्रशस्त इन्द्रियों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शुष्म-राधस्

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक्।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः॥ ३॥

(१) हे **इन्द्र**=सब बल के कर्मों को करनेवाले, **अग्ने**=प्रकाशमय प्रभो! आप **वृत्रहणा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को विनष्ट करनेवाले हैं। आप **नमोभिः**=नमस्कारों के द्वारा, जब हम आपके प्रति नमनवाले हों, **वृत्रहभिः**=वासना को विनष्ट करनेवाले **शुष्मैः**=बलों से अर्वाक् **आयातम्**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होइये। (२) हे **इन्द्राग्ने**=इन्द्र व अग्ने! **युवम्**=आप दोनों **अकवेभिः**=अकुत्सित, **उत्तमेभिः**=अत्यन्त उत्कृष्ट **राधोभिः**=धनों से **अस्मे**=हमारे लिये **भवतम्**=होइये। हमें इन्द्र और अग्नि उन धनों को प्राप्त करायें जो अकुत्सित व उत्तम हैं, जो धन हमारी उन्नति का ही कारण बनते हैं।

भावार्थ—हमें इन्द्र और अग्नि वासना विनाशक बल को तथा उत्तम धन को प्राप्त करायें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्तुति के योग्य 'इन्द्र और अग्नि'

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्। इन्द्राग्नी न मर्धतः॥ ४॥

(१) जीवन के अन्दर सब कुछ बल व प्रकाश के द्वारा ही सम्पन्न होता है। मैं **ता**=उन इन्द्र और अग्नि को, बल व प्रकाश के देवों को **हुवे**=पुकारता हूँ, **ययोः**=जिनका **पुरा कृतम्**=पहले किया हुआ, जिनके द्वारा बनाया गया, **इदं विश्वम्**=यह सब **पप्ने**=स्तुत होता है। बल व प्रकाश की सहस्थिति प्रत्येक चीज को सुन्दर बनाती है, उसी प्रकार जैसे कि 'ब्रह्म-क्षत्र' की सहस्थिति राष्ट्र को उन्नत करती है। (२) **इन्द्राग्नी**=ये बल व प्रकाश के देव **न मर्धतः**=हमारा हिंसन नहीं करते। जब हमारे जीवन में बल व प्रकाश दोनों विद्यमान होते हैं, तो जीवन सुन्दर ही सुन्दर बनता है।

भावार्थ—बल और प्रकाश, ब्रह्म-क्षत्र से हमें परमात्मा प्रदान करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'उग्रा-मृधः विघनिना' इन्द्राग्नी

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे। ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥

(१) हम **उग्रा**=तेजस्वी, **मृधः विघनिना**=शत्रुओं को कुचल डाल देनेवाले **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवों को **हवामहे**=पुकारते हैं। वस्तुतः **इन्द्र**=हमारे सब रोग रूप शत्रुओं को विनष्ट करता है तथा अग्नि वासनामलों का दहन करनेवाला है। (२) **ता**=वे दोनों इन्द्र और अग्नि **नः**=हमें **ईदृशे**=ऐसे इस जीवन-संग्राम में **मृडातः**=सुखी करते हैं। वस्तुतः जीवन-संग्राम में सफलता को प्राप्त कराके विजय का आनन्द देनेवाले ये इन्द्र और अग्नि ही हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन हमें तेजस्विता प्रदान करता है। शत्रुपराजय द्वारा यह आराधन ही हमें सुखी करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वृत्र दास तथा द्वेष' का विनाश

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती। हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६ ॥

(१) ये इन्द्र और अग्नि, बल व प्रकाश के देव **आर्या**=श्रेष्ठ हैं, शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले हैं (ऋ गतौ)। ये **वृत्राणि हतः**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करते हैं। **सत्पती**=ये इन्द्र और अग्नि सत् के (उत्तमता के) रक्षक हैं। ये **दासानि**=(दसु उपक्षये) हमें क्षीण करनेवाली सब वृत्तियों को **हतः**=समाप्त करते हैं। (२) **विश्वाः**=सब हमारे न चाहते हुए भी हमारे में घुस आनेवाली **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं को **अपहतः**=सुदूर विनष्ट कर देते हैं।

भावार्थ—इन्द्र व अग्नि का आराधन वृत्र (=काम), दास (लोभ) तथा द्वेष (क्रोध) का निवारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'शम्भुवा' इन्द्राग्नी

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत। पिबतं शंभुवा सुतम् ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **इमे स्तोमाः**=ये स्तुतिसमूह **युवाम्**=आप दोनों को **अभि अनूषत**=लक्ष्य करके उच्चरित होते हैं, आपका ही स्तवन करते हैं। इन स्तोमों में इन्द्र और अग्नि की महिमा का प्रतिपादन हुआ है। (२) आप **सुतं पिबतम्**=उत्पन्न हुए-हुए सोम का हमारे शरीरों में पान करते हो और **शम्भुवा**=शान्ति को उत्पन्न करते हैं। इन्द्र और अग्नि ही रोगों व वासनाओं को समाप्त करके शान्ति को देते हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन हमें शरीर में सोम के रक्षण के योग्य बनाता है, और इस प्रकार शान्ति को उत्पन्न करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तम इन्द्रियाश्व

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा। इन्द्राग्नी ताभिरा गतम्॥ ८॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **याः**=जो **वाम्**=आपके **पुरुस्पृहः**=बहुतों से स्पृहणीय **नियुतः**=इन्द्रियरूप अश्व **सन्ति**=हैं, वे **दाशुषे**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले के लिये होते हैं। दाश्वान् पुरुष के लिये आप इन्हें प्राप्त कराते हैं। बल व प्रकाश की आराधना करनेवाला पुरुष ही इन इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करता है। (२) हे **नरा**=इन इन्द्रियाश्वों से हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले इन्द्राग्नी! **ताभिः**=उन इन्द्रियाश्वों से **आगतम्**=आप हमें प्राप्त होवो। उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराके ही आप हमें जीवन में आगे ले चलते हो।

भावार्थ—बल व प्रकाश का आराधन हमें उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराके उन्नत करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'नरा' इन्द्राग्नी

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी सोमपीतये॥ ९॥

(१) हे **नरा**=हमें उन्नतिपथ पर ले चलनेवाले प्राणापानो! **ताभिः (नियुद्भिः)**=उन इन्द्रियाश्वों के साथ **इदम्**=इस **सुतम्**=उत्पन्न हुए-हुए **सवनम्**=(सूयते) सोम को **उप आगच्छतम्**=समीपता से आप प्राप्त होवो। इन्द्र अग्नि हमें उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करायें तथा हमारे जीवन-यज्ञ को सोम सम्पन्न करें। (२) **इन्द्राग्नी**=हे इन्द्र व अग्नि! आप **सोमपीतये**=इस सोम के पान के लिये हों। आपका आराधन मुझे सोम को शरीर में ही व्याप्त करने के योग्य बनाये।

भावार्थ—बल व प्रकाश की आराधना हमें सोम के रक्षण के योग्य बनाती है। इस सोमरक्षण के द्वारा ये हमें उन्नतिपथ पर ले चलते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

कृष्णा कृणोति जिह्वया

तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्। कृष्णा कृणोति जिह्वया॥ १०॥

(१) **तम्**=उस प्रभु को **ईडिष्व**=स्तुत कर, **यः**=जो **अर्चिषः**=अपनी ज्ञान दीप्ति से **विश्वा वना**=सब उपासकों को **परिष्वजत्**=आलिंगित करता है। प्रभु अपने उपासकों को ज्ञानदीप्ति प्राप्त कराते हैं। (२) ये प्रभु अग्नि हैं, अग्रेणी हैं। प्रकाश के द्वारा हमारा मार्ग दर्शन करते हुए हमें आगे ले चलते हैं। **जिह्वया**=ज्ञानोपदेश के द्वारा ये प्रभु **कृष्णा कृणोति**=सब कालिमाओं को, मलिनताओं को नष्ट करते हैं (कृणोति=to kill)।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराती है, हमारी मलिनताओं को ज्ञानोपदेश द्वारा समाप्त करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

द्युम्नाय

य इन्द्र आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः। द्युम्नाय सुतरा अपः॥ ११॥

(१) **यः**=जो **मर्त्यः**=मनुष्य **इत् ह**=निश्चय से **इन्द्रस्य**=उस सर्वशक्तिमान् प्रभु के **सुम्नं आविवासति**=(सुम्न=protection) रक्षण का पूजन करता है, वह **द्युम्नाय**=ज्ञान-ज्योति के लिये होता है। प्रभु की आराधना करता हुआ जो भी प्रभु के रक्षण को प्राप्त करता है, वह ज्योतिर्मय जीवनवाला होता है। (२) इस ज्योति से वह **अपः**=रेतःकणों को **सुतराः**=सब वासनाओं को तैर जानेवाला करता है। शरीर में सुरक्षित सोम उसके लिये सुतर होते हैं, सब रोगादि से उसे पार उतारनेवाले होते हैं।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् प्रभु का आराधन हमें ज्ञान-ज्योति को प्राप्त कराता है और उन सोमकणों को प्राप्त कराता है जो हमें सब रोगों व वासनाओं को तैरने के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाजवती इषः, आशून् अर्वतः

ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः। इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे॥ १२॥

(१) **ता**=वे इन्द्र और अग्नि **नः**=हमारे लिये **वाजवतीः इषः**=प्रशस्त शक्तिवाली प्रेरणाओं को **पिपृतम्**=पूरित करें। अर्थात् हमें प्रकाशमय हृदय में प्रभु प्रेरणाओं को प्राप्त करायें और उन प्रेरणाओं को क्रियान्वित करने के लिये शक्ति दें। ये इन्द्र और अग्नि **आशून् अर्वतः**=शीघ्र गतिवाले इन्द्रियाश्वों को भी प्राप्त करायें। हमारी कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ दोनों ही उत्तम हों। (२) ये ज्ञानेन्द्रियाँ **अग्निम्**=प्रकाश की देवता को **वोढवे**=वहन करने के लिये हों, **च**=तथा कर्मेन्द्रियाँ **इन्द्रम्**=बल की देवता का वहन करें। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान को देनेवाली हों, तो कर्मेन्द्रियाँ शक्ति का वर्धन करनेवाली बनें।

भावार्थ—हम इन्द्र व अग्नि का आराधन करते हुए प्रशस्त प्रेरणाओं से युक्त बल को तथा शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाले इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'इष्-रयि-वाज'

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्॥ १३॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! मैं **वां उभा**=आप दोनों को **आहुवध्यै**=पुकारने के लिये होता हूँ। मैं बल व प्रकाश दोनों को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता हूँ। आप **उभा सह**=दोनों साथ-साथ **राधसः**=(राध सिद्धौ) सिद्धि के द्वारा **मादयध्यै**=आनन्दित करने के लिये होते हो। (२) **उभा**=आप दोनों मिलकर **इषाम्**=उत्तम प्रेरणाओं के तथा **रयीणाम्**=धनों के **दातारौ**=देनेवाले हो। मैं **उभा वाम्**=आप दोनों को **वाजस्य सातये**=शक्ति की प्राप्ति के लिये **हुवे**=पुकारता हूँ।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि का आराधन हमें 'उत्तम प्रेरणा, धन व बल' प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

गव्य-अश्व्य-वसव्य

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३रुप गच्छतम्।
सखायौ देवौ सख्याय शंभुवेन्द्राग्नी ता हवामहे॥ १४॥

(१) हे इन्द्र और अग्नि! आप **नः**=हमें **गव्येभिः**=ज्ञानेन्द्रिय समूह के साथ **अश्व्येभिः**=कर्मेन्द्रिय समूह के साथ **वसव्यैः**=निवास के लिये आवश्यक वसु समूहों के साथ **आ**=सर्वथा **उपगच्छतम्**=समीपता से प्राप्त होवो। (२) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! आप **सखायौ**=एक दूसरे के सखा हैं, साथ रहनेवाले हैं। आप दोनों **देवौ**=दिव्य हो। हमारी **सख्याय**=मित्रता के लिये होने पर **शम्भुवा**=शान्ति को उत्पन्न करनेवाले हो। **ता**=उन आप दोनों को **हवामहे**=हम पुकारते हैं।

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि की आराधना बल व प्रकाश की आराधना हमें उत्तम कर्मेन्द्रियों, उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व उत्तम वसुओं को प्राप्त कराती है। ये बल व प्रकाश हमारे जीवनों में शान्ति स्थापन का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'सुन्वन् यजमान'

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः। वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु॥ १५ ॥

(१) हे **इन्द्राग्नी**=बल व प्रकाश के देवो! **सुन्वतः**=सोम का संपादन करनेवाले, अपने जीवन में सोमशक्ति को उत्पन्न करनेवाले, **यजमानस्य**=यज्ञशील पुरुष की **हवम्**=पुकार को **शृणुतम्**=सुनो। (२) इस सुन्वन् यजमान के **हव्यानि**=हव्य पदार्थों की **वीतम्**=कामना करो। यह हव्य पदार्थों का ही सेवन करनेवाला बने। **आगतम्**=आप आवो, और **सोम्यं मधु**=सोम-सम्बन्धी मधु का **पिबतम्**=पान करो। इन्द्र और अग्नि के आराधन से सोम का शरीर में संरक्षण हो।

भावार्थ—हम यज्ञशील व सोम शक्ति का सम्पादन करनेवाले बनें। हव्य पदार्थों का सेवन करें। सोम का शरीर में संरक्षण करें।

अगले सूक्त में 'भरद्वाज बार्हस्पत्य' सरस्वती का आराधन करता है—

[६१] एकषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

उत्तम सन्तान की प्राप्ति व स्वार्थ-त्याग

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति॥ १ ॥

(१) 'सरस्वती' ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता है। इसकी आराधना के होने पर हमारे सन्तान उत्तम होते हैं और स्वार्थ भावना हमारे से दूर होती है। इसी बात को इस प्रकार कहते हैं कि **इयम्**=यह सरस्वती **वध्र्यश्वाय**=इन्द्रियरूप अश्वों को संयम रज्जु (वध्री) से बाँधनेवाले **दाशुषे**=दानशील पुरुष के लिये **रभसम्**=वेगवाले कार्यों को स्फूर्ति से करनेवाले शक्तिशाली (robust), **ऋणच्युतम्**='पितृऋण, देवऋण व ऋषिऋण' आदि ऋणों को अदा करनेवाले, **दिवोदासम्**=ज्ञान के उपासक सन्तान को **अददात्**=देती है। (२) हे सरस्वति! **यः**=जो तू **शश्वन्तम्**=धन प्राप्ति के कार्यों में निरन्तर भागदौड़वाले, **अवसम्**=अपने ही तर्पण में प्रवृत्त, **पणिम्**=वणिग् वृत्तिवाले पुरुष को **आचखाद**=खा जाती है, समाप्त कर देती है, अर्थात् तेरी आराधना से धन की इतनी ममता नहीं रह जाती और मनुष्य 'दाश्वान्' बनता है। हे सरस्वति! **ते**=तेरे **ता**=वे **दात्राणि**=दान **तविषा**=महान् हैं।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना शक्तिशाली, ऋणों के अदा करनेवाले, ज्ञानरुचि' सन्तान

को देती है तथा हमारी स्वार्थवृत्ति को विनष्ट करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अविद्या विनाश व सुदूर लक्ष्य की प्राप्ति

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः॥ २॥

(१) **इयम्**=यह सरस्वती **शुष्मेभिः**=शत्रुशोषक बलों के द्वारा **बिसखाः इव**=बिसों (भिस) को खोदनेवाले के समान **गिरीणां सानु**=अविद्या पर्वतों के शिखर को **अरुजत्**=भग्न कर देती है। सरस्वती की आराधना से शत्रुशोषक बल प्राप्त होता है और अविद्या का विनाश होता है। (२) **तविषेभिः**=महान् **ऊर्मिभिः**=ज्ञान की तरंगों से **पारावतघ्नी**=(हन् गतौ) सुदूर लक्ष्य स्थान पर पहुँचानेवाली इस **सरस्वतीम्**=विद्या की अधिष्ठात्री देवता को **अवसे**=अपने रक्षण के लिये **प्रीतिभिः**=सोमपान रूप उत्तम कर्मों से तथा **सुवृक्तिभिः**=दोषवर्जन की हेतुभूत स्तुतियों से **आविवासेम**=हम पूजित करते हैं। आराधित हुई-हुई यह सरस्वती हमें ब्रह्मलोक रूप लक्ष्य पर पहुँचानेवाली होती है।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना हमारी अविद्या का विनाश करती है। वह आराधना हमें सुदूर लक्ष्य पर पहुँचानेवाली होती है। सरस्वती की आराधना के लिये आवश्यक है कि हम सोम का पान करें तथा प्रभु स्तवन में प्रवृत्त हों जिससे वासनाओं का हमारे पर आक्रमण न हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

विष-निराकरण

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति॥ ३॥

(१) हे **सरस्वति**=ज्ञान की अधिष्ठात्रि देवि! तू **देवनिदः**=देवों से निन्दनीय भावों को **निबर्हय**=विनष्ट कर। **विश्वस्य**=सब हमारे अन्दर घुस आनेवाले **मायिनः**=मायावी **बृसयस्य**=ज्ञान की आवरणभूत वासना के (वस् द०) **प्रजाम्**=प्रादुर्भाव को विनष्ट कर। हमारे सब निन्दनीय वासनामय भाव विनष्ट हो जायें। (२) **उत**=और हे सरस्वति! तू **क्षितिभ्यः**=इन मनुष्यों के लिये **अवनीः अविन्दः**=आसुरभावों से आक्रान्त भूमियों को फिर से प्राप्त कराता है। अन्नमय आदि कोश एक-एक भूमि हैं। सरस्वती इन सब भूमियों को पवित्र बनाकर हमें प्राप्त कराती हैं। हे **वाजिनीवति**=सब बलों को प्राप्त करानेवाली सरस्वति! तू **एभ्यः**=इन मनुष्यों के जीवन से **विषम्**=विष को **अस्रवः**=क्षरित करके दूर करती है। इनके जीवन को सब प्रकार के विषों से दूर करके अमृतमय बनाती हो।

भावार्थ—ज्ञान की आराधना हमारे से निन्दनीय वासनामय विषैले भावों को दूर करके अब अन्नमय आदि कोशों को स्वस्थ करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शक्ति-बुद्धि

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। धीनामवित्र्यवतु॥ ४॥

(१) **देवी**=हमारे जीवनों को दिव्यगुणमय बनानेवाली सरस्वती=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता

नः=हमारा **प्र अवतु**=प्रकर्षेण रक्षण करे। (२) यह सरस्वती **वाजेभिः वाजिनीवती**=बलों के द्वारा प्रशस्त बलोंवाली है। हमें प्रशस्त बलयुक्त करती है। यह **धीनां अवित्री**=हमारी बुद्धियों का रक्षण करनेवाली है।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना हमें प्रशस्त बलवाला व सुरक्षित बुद्धिवाला करती है। वासना विनाश के द्वारा सरस्वती बल को भी प्रशस्त करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

स्वाध्याय-ध्यान

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते। इन्द्रं न वृत्रतूर्ये॥ ५॥

(१) हे **देवि**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाली **सरस्वति**=विद्या की दैवते! **यः**=जो **हिते धने**=हितकर ज्ञान-धन के निमित्त **त्वा उपब्रूते**=तुझे पुकारता है, अर्थात् तेरी आराधना करता हुआ ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वही तेरा आराधक **वृत्रतूर्ये**=वासना-विनाश के संग्राम के निमित्त **न**=अब (न=संप्रति) **इन्द्रम्**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु को पुकारता है। (२) सरस्वती के आराधक के जीवन में प्रभु की आराधना भी चलती है। प्रभु की आराधना से वासनाओं का विनाश करके यह व्यक्ति सरस्वती की आराधना से हितकर ज्ञान धन को प्राप्त करता है।

भावार्थ—उस शत्रुविद्रावक प्रभु की उपासना मेरे वासनारूप शत्रुओं को दूर करे। स्वाध्याय सरस्वती द्वारा प्रभी की आराधना करता हुआ मैं हितकर ज्ञान-धन को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वाज-सनि (शक्ति-धन)

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि। रदा पूषेव नः सनिम्॥ ६॥

(१) हे **देवि**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनाने वाली **सरस्वती**=विद्या की अधिष्ठातृ देवि! **त्वं अव**=तू हमारा रक्षण कर। हे **वाजिनि**=प्रकृष्ट बलों से युक्त सरस्वति! तूने ही **वाजेषु**=बल प्राप्ति के निमित्त हमारा रक्षण करना है। (२) **नः**=हमें **पूषा इव**=पोषण करनेवाली देवता के समान **सनिम्**=सम्भजनीय धन को **रदा**=(प्रयच्छ) दे।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना से हम शक्ति व धन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

घोरा हिरण्यवर्तनिः

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः। वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम्॥ ७॥

(१) **उत**=और **स्या**=वह **सरस्वती**=विद्या की अधिष्ठातृदेवता **नः**=हमारा लिये **घोरा**=शत्रुओं को विनष्ट करनेवाली व **हिरण्यवर्तनिः**=ज्योतिमय मार्गवाली हो। विद्या का आराधन करता हुआ मैं काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश कर सकूँ तथा अपने जीवन के मार्ग को ज्योतिर्मय बना पाऊँ। (२) यह **वृत्रघ्नी**=काम-वासना को विनष्ट करनेवाली सरस्वती **सुष्टुतिम्**=उत्तम स्तुति को **वष्टि**=(कामयते) चाहती है, अर्थात् सरस्वती का आराधक प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होता है और प्रभु का स्तवन उसे वासनाओं का शिकार नहीं होने देता।

भावार्थ—स्वाध्याय के द्वारा हम शत्रु भयंकर बनते हैं, जीवन मार्ग को ज्योतिर्मय बना पाते हैं। कामरूप वासना को विनष्ट करने के लिये प्रभु स्तवन में प्रवृत्त होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

अनन्त बल

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः। अमश्चरति रोरुवत्॥ ८ ॥

(१) हम उस सरस्वती की आराधना करें **यस्याः**=जिसका **अमः**=बल **अनन्तः**=अपरिमित है। **अह्रुतः**=कुटिलता से रहित है, **त्वेषः**=दीप्त है तथा **चरिष्णुः**=गतिशील है। सरस्वती की आराधना से अनन्त बल को प्राप्त करते हुए हम अकुटिल दीप्त व गतिशील जीवनवाले बनते हैं। (२) इस सरस्वती का **अर्णवः**=प्रशस्त ज्ञान जलवाला बल **रोरुवत्**=खूब ही प्रभु के नामों का उच्चारण करता हुआ **चरति**=गतिवाला होता है।

भावार्थ—स्वाध्याय हमें 'शक्तिशाली, अकुटिल, दीप्त, गतिशील व प्रभु के नामों का उच्चारण करनेवाला' बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ऋतावरी

सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी। अतन्नहेव सूर्यः ॥ ९ ॥

(१) **सा**=वह गतमन्त्र में वर्णित अनन्त बलवाली सरस्वती **नः**=हमें **विश्वाः**=सब **द्विषः**=द्वेष की भावनाओं से **अति**=पार ले जाये। तथा **अन्याः**=और भी **स्वसॄः**=(स्व+सृ) आत्मतत्त्व की ओर सरण करनेवाली वृत्तियाँ हमें **ऋतावरी**=प्रशस्त ज्ञान-जल (ऋतम्=उदकम्) को प्राप्त करानेवाली हों या हमें यज्ञों में प्रवृत्त करनेवाली हों (ऋतम्=यज्ञ)। (२) **अतन्**=गति करता हुआ **सूर्यः**=सूर्य **इव**=जैसे **अहा**=दिनों का निर्माण करता है, इसी प्रकार यह सरस्वती तथा आत्मतत्त्व की ओर चलनेवाली वृत्तियाँ हमारे जीवनों में ऋत का निर्माण करनेवाली हों।

भावार्थ—सरस्वती का आराधन हमें जीवन में द्वेष से ऊपर उठाये। आत्मतत्त्व की ओर चलाने की वृत्ति हमारे में ऋत को उत्पन्न करे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'सप्तस्वसा' सरस्वती

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत्॥ १० ॥

(१) **उत**=और **सप्तस्वसा**=सात गायत्री आदि छन्दो रूप स्वसाओंवाली यह **सरस्वती**=वेदरूप ज्ञान की वाणी **नः**=हमारे लिये **प्रियासु प्रिया**=प्रिय वस्तुओं में प्रियतम हो। (२) यह **सुजुष्टा**=हमारे से प्रीतिपूर्वक सेवन की जाती हुई **स्तोम्या भूत्**=स्तुति के योग्य हो। हम सरस्वती का आराधन करते हुए प्रभु स्तवन की वृत्तिवाले बनें। सरस्वती हमारे लिये स्तोम्य हो, हमें स्तोम में प्रवृत्त करे।

भावार्थ—सरस्वती वेदवाणी है। यह गायत्री आदि सात छन्दोरूप सात स्वसाओंवाली है। यह सुसेवित होने पर स्तोम्य होती है, हमें प्रभु स्तवन की प्रवृत्तिवाला बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

तेजस्विता की प्राप्ति-निन्दनीय से बचाव

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम्। सरस्वती निदस्पातु॥ ११ ॥

(१) **सरस्वती**=यह विद्या की अधिष्ठातृदेवता **पार्थिवानि**=पृथिवी सम्बद्ध सब लोकों को, **उरु रजः**=विशाल द्युलोक को तथा **अन्तरिक्षम्**=इनके बीच में स्थित (अन्तराक्षान्तम्) अन्तरिक्षलोक

को **आपप्रुषी**=अपने तेज से आपूरित करनेवाली होती है। सरस्वती की आराधना पृथिवीरूप शरीर के सब अंगों को ठीक कर देती है, मस्तिष्क रूप द्युलोक को तो यह ज्ञानदीप्त बनाती ही है। यह हृदयान्तरिक्ष को भी निर्मल करती है। (२) यह सरस्वती **निदः**=सब निन्दनीय बातों से **पातु**=हमारा रक्षण करे। सरस्वती में स्नान हमारे जीवन को शुद्ध ही शुद्ध कर डाले। यह स्नान शरीर से रोगों को, मन से वासनाओं को तथा मस्तिष्क से कुण्ठता को दूर करनेवाला हो।

भावार्थ—विद्या की आराधना हमें शरीर, मन व मस्तिष्क में तेज से पूर्ण बनाती है। यह हमें सब निन्दनीय वस्तुओं से बचाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'त्रिषधस्था' (सरस्वती)

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती। वाजेवाजे हव्या भूत्॥ १२॥

(१) गत मन्त्र के अनुसार यह सरस्वती **त्रिषधस्था**=पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक रूप तीनों लोकों में साथ-साथ स्थित है, तीनों 'शरीर, हृदय, व मस्तिष्क' रूप पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक को यह समानरूप से तेजःपूर्ण करती है। **सप्तधातुः**=सात गायत्री आदि छन्दों से इसका धारण किया गया है। **पञ्च जाता**=यह पाँच उत्पन्न हुए-हुए 'पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश' रूप भूतों को, पाँच प्राणों, पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों व पाँच अन्तःकरणों (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, हृदय) को **वर्धयन्ती**=बढ़ानेवाली होती है। (२) यह सरस्वती **वाजे वाजे**=प्रत्येक संग्राम में **हव्या भूत्**=पुकारने योग्य होती है। सब संग्रामों में इसी के द्वारा विजय की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—सरस्वती 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को उत्तम बनाती है। पञ्चभूत व पञ्च प्राण आदि सब पञ्चकों का वर्धन करती है। प्रत्येक संग्राम में पुकारने योग्य है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सरस्वती** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अपसां अपस्तमा

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा।
रथइव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती॥ १३॥

(१) **य**=जो **सरस्वती**=विद्या की अधिष्ठात्री देवता **महिम्ना**=अपनी महिमा से **महिना**=अत्यन्त महत्त्वपूर्ण **प्रचेकिते**=जानी जाती है। जो **आसु**=इन प्रजाओं में **द्युम्नेभिः**=ज्ञान-ज्योतियों से **अन्या**=विलक्षण ही है। **अपसां अपस्तमा**=कर्मशीलों में अत्यधिक कर्मशील है, सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करनेवाली है। (२) यह सरस्वती **रथः इव**=इस जीवनयात्रा में रथ के समान है, **बृहती**=यह वृद्धि की कारणभूत है, **विभ्वने कृता**=उस सर्वव्यापक परमात्मा की प्राप्ति के लिये निर्मित हुई है। इस सरस्वती की आराधना हमें परमात्मा को प्राप्त करानेवाली है। यह सरस्वती **चिकितुषा**=समझदार स्तोता से **उपस्तुत्या**=स्तोतव्य होती है। वस्तुतः सरस्वती की स्तुति यही है कि हम स्वाध्याय को नियमितरूप से अपनाएँ।

भावार्थ—स्वाध्याय की महिमा अद्भुत है, यह हमें ज्योतिर्मय व कर्मनिष्ठ बनाता है। हमारे में गुणों का वर्धन करता हुआ हमें प्रभु प्राप्ति के योग्य करता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—सरस्वती ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

स्वाध्याय

सर॑स्वत्य॒भि नो॑ नेषि॒ वस्यो॒ माप॑ स्फरी॒: पय॑सा॒ मा न॒ आ ध॑क्।
जु॒षस्व॑ नः स॒ख्या वे॒श्या॑ च॒ मा त्वत्क्षेत्रा॒ण्यर॑णानि गन्म ॥ १४ ॥

(१) हे **सरस्वति**=ज्ञान की अधिष्ठात्रि देवते! **नः**=हमें **वस्यः अभिनेषि**=प्रशस्त वसुओं की ओर ले चल। **मा अप स्फरीः**=(स्फाहो वृद्धिः) हमें अप्रवृद्ध मत कर। हम तेरे द्वारा सब गुणों के दृष्टिकोण से बढ़े हुए ही हों। **पयसा**=अपने ज्ञान-जल के द्वारा **नः**=हमें **मा आधक्**=मत संतप्त होने दे। ज्ञान-जल हमारी वासनाग्नि को बुझानेवाला हो। (२) हे सरस्वति! तू **नः**=हमारे **सख्या**=सखि कर्मों को **च**=तथा **वेश्या**=प्रवेशनों को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन कर। हम तेरे सखा व तेरे में प्रवेश करनेवाले बनें। हम **त्वत्**=तेरे से भिन्न **अरणानि**=अरमणीय **क्षेत्राणि**=क्षेत्रों में **मा गन्म**=मत जायें। हमारा जीवन अरमणीय स्थान आदि में न व्यतीत हो। हम सब खाली समय को तेरी आराधना में व्यतीत करें।

भावार्थ—सरस्वती हमें वसुओं को प्राप्त कराये, हमारी अवृद्धि का कारण न हो। हम सदा सरस्वती की मैत्री में विचरने का यत्न करें।

अगले सूक्त में भरद्वाज बार्हस्पत्य 'अश्विनौ' का स्तवन करता है—

अथ पञ्चमोऽष्टके प्रथमोऽध्यायः

प्रथमोऽनुवाकः

[६२] द्विषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—पञ्चमः ॥

अज्ञान-विनाश व शरीर रक्षण

स्तु॒षे नरा॑ दि॒वो अ॒स्य प्र॒सन्ता॒श्विना॑ हुवे॒ जर॑माणो अ॒र्कैः।
या स॒द्य उ॒स्रा व्यु॒षि ज्मो अन्ता॒न्युयू॑षतः॒ पर्यु॒रू वरां॑सि ॥ १ ॥

(१) मैं **अश्विना**=प्राणापान का **स्तुषे**=स्तवन करता हूँ। जो प्राणापान **दिवः नरा**=ज्ञान को हमारे लिये प्राप्त करानेवाले हैं। ये **अस्य**=इस पृथिवीलोक रूप शरीर के **प्रसन्ता**=(श्यवन्तौ) ईश्वर हैं, इसे प्रभावयुक्त बनानेवाले हैं। इन प्राणापान को **अर्कैः**=स्तुति-साधन मन्त्रों से **जरमाणः**=स्तुति करता हुआ **हुवे**=पुकारता हूँ। (२) उन प्राणापान को पुकारता हूँ **या**=जो **उस्रा**=सब दोषों के निवारक होते हुए **सद्यः**=शीघ्र ही **व्युषि**=रात्रि के समाप्त होने पर, अज्ञान रात्रि के दूर होने पर **ज्मः**=इस पृथिवीरूप शरीर के **अन्तान्**=अन्तकों को, इस शरीर को समाप्त कर देनेवाले **उरु वरांसि**=विशाल आच्छादक अन्धकारों को **परियुयूषतः**=पृथक् करते हैं। अज्ञान ही विनाशक है। प्राणसाधना इस अज्ञान के अन्धकार को विनष्ट करती है।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीर के विनाशक अज्ञान को दूर करके शरीर को प्रभाव (सामर्थ्य) युक्त करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तेजस्विता व अव्याकुलता से आगे बढ़ना

ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान्॥ २॥

(१) **ता**=वे दोनों अश्विनौ (प्राणापान) **यज्ञं आचक्रमाणा**=जीवन-यज्ञ के अन्दर गति करते हुए **शुचिभिः**=पवित्र **रजोभिः**=ज्योतियों से (रजः ज्योतिः नि० ४।१९) **रथस्य**=इस शरीर रथ की **भानुम्**=दीप्ति को **रुरुचुः**=दीप्त करते हैं। प्राणसाधना से शरीर तेजस्वी बनता है, यहाँ ज्ञान-ज्योति चमक उठती है। (२) ये प्राणापान **पुरू**=पालक व पूरक **वरांसि**=तमोनिवारक तेजों का **अमिता**=अपरिमित रूप में **मिमाना**=निर्माण करते हुए **अपः**=जलों को, **धन्वानि**=मरुस्थलों को **अज्रान्**=मैदानों को (खेतों को) **अतियाथः**=लाँघ जाते हैं, जीवन में आनेवाली सब परिस्थितियों को पार कर जाते हैं। 'अपः, धन्वानि, अज्रान्' ये शब्द जीवन के अन्दर समय-समय पर आनेवाले 'ऊँच-नीच' (सुख-दुःख) के प्रतिपादक हैं। प्राणसाधना करनेवाला पुरुष इनमें अव्याकुल रहता हुआ आगे बढ़ता है।

भावार्थ—प्राणापान जीवन में पवित्र ज्योति को जगाते हैं। तेजस्विताओं को उत्पन्न करते हुए सब सुख-दुःखों में अव्याकुल भाव से आगे बढ़ते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शरीरगृह की समृद्धि

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धिय ऊहथुः शश्वदश्वैः।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य॥ ३॥

(१) **ता**=वे **उग्रा**=तेजस्वी प्राणापानो! आप **धियः**=स्तोता के अथवा ज्ञानपूर्वक कर्मों को करनेवाले के **त्यत्**=उस **यत्**=जो **अरध्रम्**=असमृद्ध **वर्तिः**=शरीरगृह है, उसको **ह**=निश्चय से **शश्वत्**=सदा **इत्था**=सचमुच **मनोजवेभिः**=मन के समान वेगवान् **इषिरैः**=गतिशील **अश्वैः**= इन्द्रियाश्वों से **ऊहथुः**=उन्नत करते हो, उसे स्वर्ग को प्राप्त कराते हो। जो शरीरगृह असमृद्ध-सा था उसे बड़ा समृद्ध बना देते हो। इस शरीर-रथ में एक-एक इन्द्रियाश्व उत्तम हो, यही इसकी समृद्धि है। ये प्राणसाधना से सब इन्द्रियाँ बड़ी उत्तम बनती हैं। (२) आपकी इस साधना से **दाशुषः**=दाश्वान्-त्यागवृत्तिवाले **मर्त्यस्य**=मनुष्य का **व्यथिः**=संतापक शत्रु **परिशयध्यै**=दीर्घ निद्रा के लिये होता है। काम-क्रोध-लोभ ही सन्तापक शत्रु हैं। प्राणसाधना से इनका विनाश होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीरस्थ सब इन्द्रियों को उत्तम बनाकर शरीरगृह को समृद्ध करती है। दाश्वान् पुरुष के शत्रुओं को समाप्त करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञान व शक्ति की वृद्धि के साथ प्रभु प्राप्ति

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना॥ ४॥

(१) **ता**=वे प्राणापान **नव्यसः**=नवतर, अत्यन्त स्तुतिशील, **जरमाणस्य**=स्तोता के **मन्म**=ज्ञान

को **उपभूषतः**=अलंकृत करते हैं। ये प्राणापान **युयुजानसप्ती**=युज्यमान अश्वोंवाले हैं, इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में जोतते हैं। (२) ये प्राणापान **शुभं पृक्षम्**=शुभ सम्पर्क को, **इषम्**=प्रभु प्रेरणा को, **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को **वहन्ता**=धारण करते हैं। इन प्राणापानों के अनुग्रह से ही वह **अध्रुक्**=किसी का भी द्रोह न करनेवाला **प्रत्नः होता**=सनातन दाता प्रभु **यक्षत्**=उपासक के लिये सब कुछ देनेवाला होता है, उपासक को प्राप्त होता है। ये प्राणापान **युवाना**=सब बुराइयों को दूर करनेवाले व सब अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हैं।

भावार्थ—प्राणापान की साधना हमारे ज्ञान को बढ़ाती है, इन्द्रियाश्वों को शरीर-रथ में जोतती है। प्रभु की प्रेरणा व शक्ति को प्राप्त कराती है। इस साधना से ही प्रभु के साथ मेल होता है और सब बुराइयाँ दूर होकर अच्छाइयाँ प्राप्त होती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति-शान्ति-ज्ञान व प्रभु स्तुति

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे।
या शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती॥ ५॥

(१) **ता**=उन **वल्गू**=शरीर में निरन्तर गति करनेवाले (वल्गु walk), **दस्रा**=सब रोगों का उपक्षय करनेवाले, **पुरुशाकतमा**=बहुत ही शक्तिशाली, **प्रत्ना**=इन चिरन्तन प्राणापानों को **नव्यसा वचसा**=स्तुत्य-वचनों से **आविवासे**=पूजित करता हूँ। प्रभु ने सब से प्रथम इस प्राण कला को ही जन्म दिया 'स प्राणमसृजत्। प्राणात् श्रद्धां०' सब से प्रथम उत्पन्न होने से ही इसे 'प्रत्न' कहा गया है। (२) **या**=जो प्राणापान **शंसते**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले, **स्तुवते**=प्रभु स्तवन में प्रवृत्त मनुष्य के लिये **शम्भविष्ठा**=अधिक से अधिक शान्ति को देनेवाले हैं तथा **गृणते**=ज्ञान का उपदेश करनेवाले के लिये **चित्रराती**=अद्भुत दानोंवाले **बभूवतुः**=होते हैं। वस्तुतः प्राणसाधना ही ज्ञान प्राप्ति व प्रभु स्तवन की वृत्तिवाला हमें बनाती है। इसे अपनाते हुए हम ज्ञान का प्रसार करनेवाले बनते हैं। इस कार्य में यह प्राणसाधना ही हमें अद्भुत क्षमता प्रदान करती है।

भावार्थ—प्राणसाधाना हमारे अन्दर 'शक्ति, शान्ति, ज्ञान व प्रभु स्तुति' को उत्पन्न करती है। यह हमारे लिये अद्भुत दानोंवाली होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तुग्र का समुद्र से पार होना

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात्॥ ६॥

(१) **ता**=वे प्राणापान **तुग्रस्य सूनुम्**=वासनाओं का संहार करनेवाले के पुत्र, खूब ही वासनाओं का संहार करनेवाले, **भुज्युम्**=अपना पालन करनेवाले को **रजोभिः विभिः**=(ज्योतिः रज उच्यते नि० ४।१९) ज्योतिवाले इन्द्रियाश्वों के द्वारा **समुद्रात् अद्भ्यः**=(कामो हि समुद्रः) वासनाजलों से **निर् ऊहथुः**=बाहर प्राप्त कराते हैं। प्राणसाधना द्वारा इन्द्रियों के मल क्षीण होते हैं और ये इन्द्रियाँ हमें वासना समुद्र के जलों में डूबने नहीं देती। (२) **अरेणुभिः**=रेणु या धूलि से रहित, अमलिन **योजनेभिः**=शरीर-रथ में जुते हुए **पतत्रिभिः**=इन्द्रियाश्वों के द्वारा **भुजन्ता**=पालन करते हुये प्राणापान **अर्णसः उपस्थात्**=जल की उपासना के **निः**=साधक को विषय

समुद्र से बाहिर करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा इन्द्रियाश्व निर्मल बनते हैं और ज्ञान की उपासना करते हुए हम विषय-वासनाओं के समुद्र से बाहिर हो जाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अविद्या विनाश व संयम

वि ज॒युषा॑ रथ्या यात॒मद्रिं॑ श्रु॒तं हवं॑ वृषणा वध्रिम॒त्याः।
द॒श॒स्यन्ता॑ श॒यवे॑ पिप्यथु॒र्गामिति॑ च्यवाना सुम॒तिं भु॑रण्यू॥ ७॥

(१) **रथ्या**=शरीर-रथ को उत्तम बनानेवाले प्राणापानो! आप **जयुषा**=विजयशील रथ के द्वारा **अद्रिम्**=अविद्या पर्वत को **वियातम्**=(यातिर्वधकर्मा) विनष्ट करते हो। प्राणसाधना के द्वारा बुद्धि तीव्र बनती है। परिणामतः अविद्या का विनाश होता है। (२) हे **वृषणा**=शक्तिशाली प्राणापानो! आप **वध्रिमत्याः**=इन्द्रियों को संयमरज्जु से बाँधनेवाली की **हवं श्रुतम्**=पुकार को सुनते हो। वस्तुतः प्राणापान ही हमें इन्द्रियों के संयम में समर्थ करके शक्तिशाली बनाते हैं। (३) **दशस्यन्ता**=उत्तम शरीर, मन व बुद्धि को देते हुए आप **शयवे**=(शी=tranquility) इस शान्त स्वभाव पुरुष के लिये **गाम्**=वेदवाणी रूप गौ को **पिप्यथुः**=ज्ञानदुग्ध से आप्यायित करते हो। अर्थात् प्राणसाधना करनेवाला यह पुरुष तीव्र बुद्धि के द्वारा वेदवाणीरूप गौ से उत्कृष्ट ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करता है। (४) **इति**=इस प्रकार इस ज्ञानदुग्ध के द्वारा **सुमतिं च्यवाना**=उत्तम कल्याणी मति को प्राप्त कराते हुए आप (गमयन्तौ) **भुरण्यू**=उत्तम भरण करनेवाले होते हो।

भावार्थ—प्राणसाधना से अविद्या विनष्ट होती है। इन्द्रियों का संयम होकर शक्ति की वृद्धि होती है। बुद्धि तीव्र होकर वेदवाणी रूप गौ के ज्ञानदुग्ध का दोहन करती है। सुमति की प्राप्ति होकर हम अच्छी प्रकार अपना भरण कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राक्षसीभाव व संताप

यद्रो॑दसी प्र॒दिवो॒ अस्ति॑ भू॒मा हेळो॑ दे॒वाना॑मु॒त म॑र्त्य॒त्रा।
तदा॑दित्या वसवो रुद्रियासो रक्षो॒युजे॒ तपु॑र॒घं द॑धात॥ ८॥

(१) हे **रोदसी**=द्यावापृथिवी, **आदित्याः वसवः रुद्रियासः**=द्युलोकस्थ, पृथिवीस्थ व अन्तरिक्षस्थ देवो! **यद्**=जो **देवानाम्**=देवों का **उत**=और **मर्त्यत्रा**=मनुष्यों में होनेवाला **प्रदिवः**=सनातन **भूमा**=महान् **हेडः**=क्रोध **अस्ति**=है, **तद्**=उस **रक्षोयुजे**=राक्षसीभावों से युक्त पुरुष के लिये **तपुः**=संतापक **अघम्**=आहन्तृ शस्त्र के रूप में **दधात**=धारण करो। (२) द्युलोक से लेकर पृथिवीलोक तक सम्पूर्ण संसार, त्रिलोकी के सब पदार्थ राक्षसीभावों से युक्त पुरुष को संतप्त करनेवाले हों। यह संताप उसके राक्षसीभावों के विनाश का कारण बने।

भावार्थ—राक्षसीभावों से युक्त पुरुष को यह संसार संतप्त करनेवाला हो। यह इस संताप से अनुभव लेकर राक्षसीभावों को छोड़नेवाला बने।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मित्र व वरुण' की साधना

य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत्।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय॥ ९ ॥

(१) **यः**=जो मनुष्य **ईम्**=निश्चय से **रजसः**=सब लोकों के **राजानौ**=शासक प्राणापानों को **ऋतुथा**=समयानुसार **विदधत्**=पूजित करता है, अर्थात् जो प्रातः-सायं इन प्राणापानों की साधना को करता है, उसको **मित्रः वरुणः**=मित्र और वरुण **चिकेतत्**=जानते हैं। अर्थात् यह प्राणसाधना करनेवाला पुरुष मित्र और वरुण को आराधित करता है 'मित्र' इसे सबके प्रति स्नेहवाला और 'वरुण' इसे सबके प्रति निर्द्वेषतावाला करता है। (२) हे मनुष्य! तू इस प्राणसाधना के द्वारा **गम्भीराय रक्षसे**=बहुत गम्भीर (deeprooted) राक्षसीभाव के लिये **हेतिं अस्य**=घातक अस्त्र को फेंकनेवाला हो। इन राक्षसीभावों को अपने से दूर कर और **चित्**=निश्चय से **द्रोघाय**=द्रोहात्मक **आनवाय वचसे**=मानव सम्बन्धी वचन के लिये भी घातक अस्त्र को फेंकनेवाला हो। अर्थात् द्रोहात्मक वचनों से सदा दूर रह।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा (क) 'स्नेह भाव' का उदय होता है, (ख) पाप का निवारण होता है, (ग) राक्षसी भाव विनष्ट होते हैं, (घ) हम द्रोहात्मक वचनों को नहीं बोलते।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

द्युमान् रथ-क्रोध विनाश

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम्॥ १० ॥

(१) हे प्राणापानो! आप **अन्तरैः चक्रैः**=अन्तर्हित (छिपे हुए) चक्रों से युक्त **द्युमता**=प्रकाशमय, **नृवता**=प्रशस्त नेतृत्व करनेवाले सारथि (बुद्धि) से युक्त **रथेन**=इस शरीर-रथ से **वर्तिः यातम्**=हमारे घरों में प्राप्त होवो। ताकि **तनयाय**=हमारे घरों में उत्तम ही सन्तान हों। हम प्राणसाधना के द्वारा अपने शरीर-रथों को उत्तम बनायें। इस शरीर में 'मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र' तक आठों चक्र बड़े ठीक हों। इसमें सब ज्ञानेन्द्रियरूप अश्व ज्ञान-ज्योति को प्राप्त करानेवाले हों। इसका बुद्धि रूप सारथि उत्तम हो। (२) **सनुत्येन**=अन्तर्हितरूप से वर्तमान **त्यजसा**=क्रोध से **मर्त्यस्य वनुष्यताम्**=मानव का संहार करनेवाले राक्षसों के **शीर्षा अपि**=सिरों को भी **ववृक्तम्**=छिन्न करनेवाले होवो। राक्षसीभाव क्रोध के द्वारा हमारा संहार करते हैं, प्राणसाधना इन राक्षसीभावों को विनष्ट करती है। सब राक्षसीभावों में क्रोध छिपे रूप से वर्तमान होता है।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीर-रथ को सुन्दर बनाती है, इससे सन्तान भी उत्तम होते हैं। यह प्राणसाधना क्रोध को विनष्ट करती है। क्रोध ही तो मनुष्य का संहार करता है। प्राणसाधना क्रोध का संहार करके हमारा रक्षण करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'परमा मध्यमा व अवमा' नियुत्

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक्।
दृळ्हस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती॥ ११ ॥

(१) हे प्राणापानो! आप **परमाभिः नियुद्भिः**=उत्कृष्ट ज्ञानेन्द्रियरूप अश्वों के साथ **अर्वाक् आयातम्**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त होवो। **उत**=और **मध्यमाभिः**=हस्त पाद आदि मध्यम कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों के साथ हमें प्राप्त होवो। इसी प्रकार **अवमाभिः**=शरीर के निचले प्रदेश में स्थित मल शोधक इन्द्रियाश्वों के साथ आप हमें प्राप्त होवो। प्राणसाधना के द्वारा हमारी सब इन्द्रियाँ उत्तम बनें। (२) **दृढस्य चित्**=अत्यन्त दृढ़ भी **गोमतः**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **व्रजस्य**=बाड़े के, गोष्ठ के **दुरः**=द्वारों को **विवर्तम्**=आप खोल डालो। ये इन्द्रियाँ विषयों के बाड़े में निरुद्ध न हो जाएँ। हे प्राणापानो! आप ही **गृणते**=स्तुति करनेवाले के लिये **चित्रराती**=अद्भुत दानों के देनेवाले हैं। वस्तुतः प्राणसाधना ही सब अशुभों को दूर करती है।

भावार्थ—प्राणसाधना सब इन्द्रियों को निर्मल बनाती है। ये निर्मल इन्द्रियाश्व शरीर-रथ में जुतकर इसे लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाते हैं।

अगले सूक्त में भी 'अश्विनौ' का ही आराधन है—

[६३] त्रिषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

नमस्वान् स्तोम

क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान्।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन्॥ १॥

(१) **त्या**=वे **वल्गू**=अत्यन्त सुन्दर गतिवाले **पुरुहूता**=बहुतों से पुकारे जानेवाले ये प्राणापान **क्व**=कहाँ हैं? **अद्य**=आज यह **नमस्वान्**=नमस् (नम्रता) वाला **स्तोमः**=स्तोत्र **दूतः न अविदत्**=ज्ञान सन्देशवाहक के रूप में प्राप्त होता है। हम नम्रतापूर्वक इन प्राणों का स्तवन करते हैं। साधित प्राण बुद्धि की तीव्रता के द्वारा हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाले होते हैं। (२) हम उस स्तोम को करते हैं, **यः**=जो **नासत्या**=प्राणापानों को **अर्वाङ् आववर्त**=हमारे अभिमुख प्राप्त कराता है। हे प्राणापानो! आप **अस्य**=इस स्तोता के **मन्मन्**=ज्ञानपूर्वक उच्चरित स्तोत्र के होने पर **हि**=निश्चय से **प्रेष्ठा**=इसके प्रियतम **असथः**=होते हो। प्राणों का स्तवन यही है कि हम प्राणसाधना के लाभों को समझते हुए प्राणसाधना में प्रवृत्त हों।

भावार्थ—हम नम्रता से युक्त होकर प्राणापान का स्तवन करें। यह स्तवन हमें प्राणसाधना में प्रवृत्त करेगा और हम प्राणों के प्रियतम होंगे। प्राणापान हमारे जीवन में सब सुन्दरताओं को जन्म देंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'न परः न आन्तरः' रिषः (तुतुर्यात्)

अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात्॥ २॥

(१) हे अश्विनी देवो, प्राणापानो! **मे**=मेरे **अस्मै**=इस **हवनाय**=पुकार के लिये **अरंगन्तम्**=पर्याप्तरूप से प्राप्त होवो। इस प्रकार प्राप्त होवो, **यथा**=जैसे **गृणाना**=स्तुति किये जाते हुये आप **अन्धः पिबाथः**=सोमरूप अन्न का पान करनेवाले होते हो। हम प्राणसाधना करते हैं, तो शरीर

में सोम की ऊर्ध्वगति होती है। यही इनका सोमपान है। (२) इस प्रकार सोम-रक्षण करते हुए आप **ह**=निश्चय से **त्यद् वर्तिः**=उस शरीरगृह को **परियाथः**=चारों ओर से प्राप्त होते हो। चारों ओर से आप इसका रक्षण करते हो। इस लिये प्राप्त होते हो **यत्**=कि **न परः रिषः**=न तो बाह्य शत्रु (रिष्+क, रेषति इति) **न आन्तरः**= और नां ही अन्दर का शत्रु **तुतुर्यात्**=इसे हिंसित करे। यह रोगों व वासनाओं का शिकार न हो जाये।

भावार्थ—प्राणसाधना सोमरक्षण के द्वारा रोगों व वासनाओं के आक्रमण से इस शरीर को बचाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्राणसाधना द्वारा शरीर का अलंकरण

अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम्।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन्॥ ३ ॥

(१) **वाम्**=हे प्राणापानो! आपके द्वारा ही **अन्धसः**=सोम के **वरीमन्**=शरीर में विस्तार के निमित्त **अकारि**=सब कार्य किया जाता है। प्राणसाधना के द्वारा ही शरीर में सोम की ऊर्ध्वगति होती है। प्राणसाधना के द्वारा ही **सुप्रायणतमं (सु प्र अयनतमं)**=सब दिव्य गुणों का शरणभूत **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदयरूप आसन **अस्मारि**=बिछाया जाता है। प्राणसाधना से ही हृदय पवित्र होता है। (२) **उत्तान हस्तः**=ऊर्ध्वीकृत अञ्जलिवाला मैं **युवयुः**=आपकी प्राप्ति की कामनावाला **ववन्द**=प्रभु का वन्दन करता हूँ। प्रभु वन्दना के द्वारा प्राण शक्ति को प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता हूँ। **वाम्**=आपको (प्राणापान को) **नक्षन्तः**=प्राप्त करते हुए **अद्रयः**=उपासक **आञ्जन्**=अपने जीवनों को अच्छाइयों से अलंकृत करते हैं (अञ्ज्=to decorate)।

भावार्थ—प्राणसाधना से शरीर में सोम का रक्षण होता है, हृदय सब दिव्य गुणों का आधार बनता है, जीवन उत्तमताओं से अलंकृत हो उठता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

होता, गूर्तमनाः, उराणः

ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन्॥ ४ ॥

(१) **अग्निः**=प्रगतिशील मनुष्य **वाम्**=आपके द्वारा **अध्वरेषु**=यज्ञों में **ऊर्ध्वः अस्थात्**=ऊपर स्थित होता है, अर्थात् प्राणसाधना करता हुआ यह अधिकाधिक यज्ञशील बनता है। इस अग्नि को **रातिः**=दानशीलता **प्र एति**=प्रकर्षेण प्राप्त होती है। यह दानशीलता **जूर्णिनी**=(प्रगामिनी) प्रकृष्ट गमनवाली तथा **घृताची**=ज्ञानदीप्ति से युक्त होती है। दानशील पुरुष सदा उत्तम कर्मों की ओर झुकाववाला तथा ज्ञान की दीप्तिवाला बनता है। (२) **यः**=जो **हवीमन्**=उस प्रभु को पुकारने में, प्रभु की आराधना में **नासत्या**=अश्विनी देवों को **प्र अयुक्त**=प्रकर्षेण युक्त करता है, अर्थात् प्रभु के आराधन के साथ प्राणायाम को करता है, वह **होता**=सदा यज्ञशील होता है। **गूर्तमनाः**=सदा उद्यत मनवाला, उत्साहयुक्त मनवाला होता है तथा **उराणः**=(उरु कुर्वाणः) हृदय को बड़ा विशाल बनाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना करनेवाला यज्ञशील होता है। यह दानशील बनता हुआ प्रकृष्ट गतिवाला

व ज्ञानदीप्त बनता है। सदा उत्साहयुक्त मनवाला व विशाल हृदयवाला होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुरुभुजा-नरा-नृतू

अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम्।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम्॥ ५॥

(१) हे **पुरुभुजा**=खूब ही पालन करनेवाले प्राणापानो! आपके इस **शतोतिम्**=शतवर्ष तक सुरक्षित रहनेवाले **रथम्**=शरीर-रथ को **सूर्यस्य दुहिता**=सूर्य की पुत्री, ज्ञानसूर्य को हमारे में पूरण करनेवाली यह वेदवाणी **श्रिये**=शोभा के लिये **अधितस्थौ**=अधिष्ठित करती है। प्राणसाधना से शरीर सौ वर्ष तक ठीक चलता हैं और यह ज्ञान के प्रकाश से युक्त होता है। (२) हे प्राणापानो! आप **अत्र**=इस शरीर-रथ में **मायाभिः**=प्रज्ञाओं से **मायिना**=प्रकृष्ट प्रज्ञानवाले **भूतम्**=होइये। हे **नृतू**=इस जीवन नृत्य को करानेवाले प्राणापानो! आप **यज्ञियानाम्**=सब संगतिकरण योग्य दिव्य भावनाओं के **जनिमन्**=प्रादुर्भाव के निमित्त **नरा**=हमें आगे ले चलनेवाले होवो।

भावार्थ—प्राणसाधना के होने पर (क) शरीर सौ वर्ष तक सुरक्षित रहता है, (ख) यह वेदवाणी का अधिष्ठान बनता है, (ग) बुद्धि तीव्र होती है, (घ) दिव्य भावों का विकास होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सूर्या-श्री-सुष्टुता वाणी

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम्॥ ६॥

(१) हे प्राणापानो! **युवम्**=आप **आभिः**=इन **दर्शताभिः**=दर्शनीय **श्रीभिः**=श्रियों से, शोभाओं से **शुभे**=शोभा को प्राप्त कराने के लिये **सूर्यायाः**=सूर्या की **पुष्टिम्**=पुष्टि को **ऊहथुः**=प्राप्त कराते हो। 'सूर्या' वेदवाणी है, ज्ञान की वाणी। प्राणसाधना इस सूर्या को तो हमारे में पुष्ट करती ही है, इसी प्रकार यह साधना शरीर को भी तेजस्वी बनाती है। इस साधना के द्वारा शरीर दर्शनीय श्री से सम्पन्न होता है। (२) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपके **वयः**=ये इन्द्रियाश्व **वपुषे**=शोभा के लिये **प्र**=प्रकर्षेण **अनुपप्तन्**=अनुकूल गतिवाले होते हैं। प्राणसाधना के होने पर इन्द्रियाश्व अनुकूल गतिवाले है, होते हैं और इस प्रकार शोभा की वृद्धि के लिये होते हैं। हे **धिष्ण्या**=धारण करने में उत्तम प्राणापानो! **वाम्**=आपको **सुष्टुता**=उत्तम स्तुतिवाली **वाणी**=वाणी **नक्षत्**=प्राप्त होती है प्राणसाधना के होने पर मनुष्य प्रभु स्तवन की ओर झुकता है। यह साधक कभी निन्दात्मक वाणी को नहीं बोलता।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) ज्ञान की वाणी का पोषण प्राप्त होता है, (ख) शरीर दर्शनीय श्री से सम्पन्न होता है, (ग) इन्द्रियाश्व सदा अनुकूल गतिवाले होते हैं, (घ) मुख से स्तुति वाणी ही उच्चरित होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'वहिष्ठ' इन्द्रियाश्व व 'मनोजवा' शरीर-रथ

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ७ ॥

(१) हे **नासत्या**=सब असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **वाम्**=आपके ये **अश्वासः**=इन्द्रियाश्व **वयः**=गतिशील होते हैं, **वहिष्ठाः**=लक्ष्य की ओर उत्तमता से ले जानेवाले होते हैं। ये इन्द्रियाश्व **प्रयः अभि**=सोम लक्षण अन्न की ओर **आवहन्तु**=प्राप्त कराते हैं। अर्थात् प्राणसाधना से इन्द्रियाश्व क्रियाशील लक्ष्य की ओर ले जानेवाले व शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले होते हैं। (२) **वाम्**=आपका **रथः**=यह शरीर-रथ **मनोजवाः**=मन के समान वेगवाला **प्र असर्जि**=निर्मित होता है। यह शरीर-रथ **इषिधः**=एषणीय (चाहने योग्य) **पृक्षः**=संपर्चनीय **पूर्वीः**=पूरण करनेवाले **इषः अनु**=अन्नों के अनुसार (असर्जि=) सृष्ट होता है। प्राणसाधना करनेवाला उत्तम ही अन्नों का सेवन करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से (क) इन्द्रियाश्व उत्तम क्रियावाले व लक्ष्य की ओर गतिवाले होते हैं। (ख) यह साधना शरीर-रथ को मन के समान वेगवाला बनाती है। (ग) यह साधना उत्तम अन्नों की रुचि को जन्म देती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'स्तुत, स्तुति, रस'

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसंक्राम्।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥ ८ ॥

(१) हे **पुरुभुजा**=खूब ही पालन करनेवाले, प्राणापानो! **वाम्**=आपका **देष्णम्**=देय धन **हि**=निश्चय से **पुरु**=पालन व पूरण करनेवाला है। आप **नः**=हमारे लिये **इषम्**=एषणीय **धेनुम्**=इस वेदवाणी रूप धेनु को **असक्राम्**=असंक्रमणी को **पिन्वतम्**=(प्रयच्छतम्) प्राप्त कराते हो। 'असंक्रमणी' अर्थात् दूर न जानेवाली। प्राणसाधना के होने पर यह ज्ञानदुग्ध को देनेवाली वेदधेनु हमारे से दूर नहीं होती। (२) **वाम्**=आपके द्वारा **स्तुतः च**=स्तुति किया गया वह प्रभु **माध्वी सुष्टुतिः च**=और माधुर्य से पूर्ण उत्तम स्तुति, **च**=और **ये रसाः**=जो आनन्द हैं, वे सब **वाम्**=आपके **रातिं अनु अग्मन्**=दान के अनुसार प्राप्त होते हैं। अर्थात् जितनी-जितनी प्राणसाधना की पूर्णता होती है उतना-उतना हम 'प्रभु, उत्तम स्तुति व आनन्द' को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना से पालक धन व ज्ञानदुग्धदात्री वेदधेनु प्राप्त होती है। यह साधना हमें 'प्रभु के, स्तुति के व आनन्द' के समीप ले जाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सुमीढ व पेरुक' की उत्तम इन्द्रियाँ व बुद्धि

उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥ ९ ॥

(१) **उत**=और **पुरयस्य**=(पुर यम्) शरीर पुरी का संयम करनेवाले **मे**=मेरे लिये **ऋज्रे**=ऋजुगमनवाली **रघ्वी**=लघुगमनवाली इन्द्रियें (प्राप्त होती) हैं। संयमी पुरुष की

इन्द्रियाँ सरल मार्ग से शीघ्र गतिवाली होती हैं। **सुमीढे**=अच्छी प्रकार शक्ति का सेचन करनेवाले में, सोम को शरीर में ही सिक्त करनेवाले में **शतम्**=सौ वर्ष पर्यन्त ये वडवायें निवास करती हैं। सोमरक्षण के होने पर इन्द्रियों की शक्ति अन्त तक ठीक बनी रहती है। **च**=और **पेरुके**=अपना पालन व पूरण करनेवाले में **पक्वा**=बुद्धि पूर्ण परिपाकवाली होती है। (२) **शाण्डः**=(शं ददाति) शान्ति को देनेवाला का प्रभु **दश**=दस इन्द्रियाश्वों को **दात्**=देता है। जो इन्द्रियाश्व **हिरणिनः**=(हिरण्यवतः) ज्योतिवाले हैं, **स्मद् दिष्टीन्**=प्रशस्त दर्शनवाले हैं, **वशासः**=वश में हैं, अनुगुण हैं, **अभिषाचः**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले हैं, **ऋष्वान्**=दर्शनीय व महान् हैं। प्राणसाधना के होने पर इन्द्रियाश्व उत्तम बनते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना के द्वारा संयम के होने पर इन्द्रियाश्व सरल गतिवाले व सौ वर्ष तक चलनेवाले होते हैं। बुद्धि परिपक्व होती है। दसों की दसों इन्द्रियाँ उत्तम बनती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

आसुर वृत्ति विलय

सं वां श॒ता ना॑सत्या स॒हस्रा॑श्वा॑नां पु॒रुप॑न्था गि॒रे दा॑त्।
भ॒रद्वा॑जाय वीर॒ नू गि॒रे दा॑द्ध॒ता रक्षां॑सि पुरुदंससा स्युः ॥ १० ॥

(१) हे **नासत्या**=हमारे जीवनों से असत्यों को दूर करनेवाले प्राणापानो! **पुरुपन्थाः**=पालक व पूरक मार्गवाले प्रभु, जिसके मार्ग पर चलने से सबका पालन व पूरण होता है वेद प्रभु, **वां गिरे**=आपके स्तोता के लिये **अश्वानाम्**=इन्द्रियाश्वों के **शता**=शतवर्ष पर्यन्त चलनेवाले **सहस्रा**=आनन्दमय बलों को **दात्**=देते हैं। (२) **वीरा**=(वीरौ) हे शत्रुओं को कम्पित करनेवाले प्राणापानो! **नु**=अब **भरद्वाजाय**=अपने में शक्ति का भरण करनेवाले **गिरे**=स्तोता के लिये वे प्रभु शक्तिशाली इन्द्रियों को **दात्**=देते हैं। हे **पुरुदंससा**=पालक व पूरक कर्मोंवाले प्राणापानो! आपकी कृपा से **रक्षांसि**=हमारे सब राक्षसीभाव **हता स्युः**=(हतानि) विनष्ट हो जाएँ।

भावार्थ—प्राणसाधना इन्द्रियों को शक्तिशाली बनाती है। इससे हमारी सब आसुर वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**अश्विनी** ॥ छन्दः—**आसुरीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वरिमन् सुम्ने

आ वां सु॒म्ने वरि॑मन्त्सू॒रिभिः॑ ष्याम् ॥ ११ ॥

(१) हे प्राणापानो! **वाम्**=आपके **वरिमन् सुम्ने**=विस्तृत सुख को देनेवाले धन में **आ सूरिभिः**=समन्तात् विद्वानों के साथ **स्याम्**=मैं होऊँ। (२) प्राणसाधना करता हुआ मैं विस्तृत ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाला बनूँ और उस ऐश्वर्य को विद्वानों के साथ विभक्त करता हुआ मैं भोगूँ और सुखी जीवनवाला बनूँ।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें विशाल सुख वह ऐश्वर्य को प्राप्त कराती है। इस ऐश्वर्य को प्राणसाधक विद्वानों के साथ विभक्त करता हुआ भोगता है और सुखी जीवनवाला होता है।

यह प्राणसाधना सामान्यतः उषाकाल में होती है। सो अगला सूक्त 'उषा' देवता का है—

[६४] चतुःषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'रोचमाना-वस्वी-दक्षिणा' उषा

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥ १ ॥

(१) **रोचमानाः**=दीप्त होती हुई, **रुशन्तः**=शुक्लवर्णा **उषसः**=उषाएँ **श्रियै**=संसार की शोभा के लिये **उ**=निश्चय से इस प्रकार **उद् अस्थुः**=उत्थित होती हैं, **न**=जैसे कि **अपां ऊर्मयः**=जलों की तरंगें उठा करती हैं। उषा आती है, सारा संसार दीप्त हो उठता है। (२) यह उषा **विश्वा**=सब स्थानों को, **सुपथा**=उत्तम मार्गों को **सुगानि**=सुखेन (आराम से) गमनीय **कृणोति**=करती है। उषा के प्रकाश में सर्वत्र आना-जाना आसान हो जाता है। **उ**=और यह **मघोनी**=प्रकाश के ऐश्वर्यवाली उषा **वस्वी**=प्रशस्त निवास को देनेवाली व **दक्षिणा**=वृद्धि की कारण **अभूत्**=होती है। इस काल में वायुमण्डल में ओजोन गैस की अधिकता स्वास्थ्य के लिए अतिशयेन हितकर होती है।

भावार्थ—उषा आती है और सारा संसार शोभायमान हो उठता है। सब मार्ग सुगम्य हो जाते हैं। यह उषा उत्तम निवास को देनेवाली व स्वास्थ्य को बढ़ानेवाली होती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रोचमाना-महोभिः शुम्भमाना

भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन्।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥

(१) हे उषे! तू **भद्रा**=कल्याण करनेवाली **ददृक्षे**=दिखती है। **उर्विया विभासि**=खूब विस्तीर्ण हुई-हुई चमकती है। **ते**=तेरी **शोचिः**=दीप्ति व **भानवः**=दीप्यमान रश्मियाँ **द्यां उद् अपप्तन्**=सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में गतिवाली होती हैं। (२) हे **उषः देवि**=प्रकाशमति उषे! तू **महोभिः रोचमाना**=तेजों से दीप्त होती हुई व **शुम्भमाना**=शोभा को प्राप्त होती हुई **वक्षः**=अपने दीप्त रूप को **आविः कृणुषे**=प्रकट करती है।

भावार्थ—उषा कल्याणमयी विस्तृत दीप्त व शोभमान होती हुई अपने दिव्य रूप को प्रकट करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

तमः बाधन

वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम्।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ३ ॥

(१) **अरुणासः**=अव्यक्त लालिमावाली **रुशन्तः**=चमकती हुई **गावः**=किरणें उषा को **सीम्**=निश्चय से **वहन्ति**=प्राप्त कराती हैं। उस उषा को, जो **सुभागम्**=सौभाग्य सम्पन्न है तथा **उर्विया**=खूब ही **प्रथानाम्**=विस्तृत हो रही है। (२) **शूरः अस्ता**=वीर अस्त्रों को फेंकने में कुशल पुरुष **इव**=जिस प्रकार **शत्रून्**=शत्रुओं को **अप ईजते**=दूर भगाता है और **न**=जिस प्रकार **अजिरः**=गतिशील **वोढा**=अश्व शत्रुओं को दूर भगाता है, इसी प्रकार यह उषा **तमः बाधते**=

अन्धकार को बाधित करती है।

भावार्थ—उषा अपनी अरुण देदीप्यमान किरणों के साथ आती है और अन्धकार को दूर भगा देती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रकाश व ज्ञानैश्वर्य

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै॥ ४॥

(१) हे **स्वभानो**=आत्म-दीप्तिवाली उषे! **पर्वतेषु**=पर्वत आदि दुर्गम स्थानों में **उत**=और **अवाते**=(वा गतौ) गमन साधन रहित, मार्ग रहित प्रदेशों में भी **ते**=तेरे **सुपथा**=उत्तम मार्ग **सुगा**=सुखेन गन्तव्य होते हैं। उषा के होने पर दुर्गम स्थानों में जाना भी आसान हो जाता है। हे उषे! तू मार्गों को सुखेन गन्तव्य करती हुई **अपः तरसि**=सब कर्मों को तैर जाती है, सब कर्मों में सफलता का कारण बनती है। (२) हे **ऋष्वे**=दर्शनीय, **दिवः दुहितः**=प्रकाश का पूरण करनेवाली उषे! **सा**=वह तू **नः**=हमारे लिये **पृथुयामन्**=इस विशाल जीवन मार्ग में **इषयध्यै**=(इष्=प्रेरणा) प्रभु प्रेरणा को सुन सकने के लिये **रयिं आवह**=ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करानेवाली हो। हम ज्ञान के मार्ग पर चलते हुए प्रभु प्रेरणा को सुननेवाले बनें। इस प्रभु प्रेरणा के अनुसार इस विशाल जीवनयात्रा को पूर्ण करनेवाले हों।

भावार्थ—उषा के प्रकाश में दुर्गम मार्ग रहित प्रदेश भी सुखेन गन्तव्य हो जाते हैं। मार्गों से चलते हुए हम अपने कर्मों को सिद्ध कर पाते हैं। यह उषा हमें ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त कराये और प्रभु प्रेरणा को सुनने के योग्य बनाये।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'मंहना दर्शता' उषा

सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः॥ ५॥

(१) हे **उषः**=उषा देवि! **सा**=वह तू **आवह**=हमें प्राप्त हो, **या**=जो तू **उक्षभिः अवाता**=इन्द्रियाश्वों से गतिवाली न होती हुई, अर्थात् स्थिर इन्द्रियोंवाली होती हुई **जोषं अनु**=प्रीतिपूर्वक प्रभु की उपासना के अनुसार **वरं वहसि**=उत्कृष्ट धन को प्राप्त कराती है। हम प्रातः उठें। उठते ही हमारे ये इन्द्रिय रूप बैल (व अश्व) इधर-उधर भटकने न लगें। स्थिर इन्द्रियोंवाले होकर हम प्रभु उपासना में प्रवृत्त हों। यही उत्कृष्ट ऐश्वर्य को प्राप्त करने का मार्ग है। (२) हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का पूरण करनेवाली उषे! **या त्वम्**=जो तू **ह**=निश्चय से **पूर्वहूतौ**=प्रातःकालीन प्रार्थना में **देवी**=प्रकाशमयी होती है, वह तू **मंहना**=उत्कृष्ट ऐश्वर्यों को देनेवाली व **दर्शता**=दर्शनीय **भूः**=होती है। हम प्रातः उठकर प्रभु का पूजन करें। यही जीवन को ऐश्वर्यमय व सुन्दर बनाने का मार्ग है।

भावार्थ—हम प्रातःकाल उठते ही इन्द्रियों को विषय प्रवृत्त होने से रोकें। प्रभु-पूजन करते हुए उत्कृष्ट ऐश्वर्यों को प्राप्त करें व सुन्दर जीवनवाले बनें।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—उषा॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

जीविकोपार्जन, उपासना व यज्ञ

उत्ते वर्यश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय॥ ६॥

(१) हे **उषः**=उषे! **ते व्युष्टौ**=तेरे उदित होने पर, तेरे द्वारा अन्धकार के दूर किये जाने पर **वयः चित्**=पक्षी भी **वसतेः**=अपने निवास-स्थानभूत घोंसलों से **उद् अपप्तन्**=उठ खड़े होते हैं। **च**=और **ये नरः**=जो मनुष्य **पितु भाजः**=अन्न का सेवन करनेवाले होते हैं, वे भी जीविकोपार्जन के लिये घरों से निकल पड़ते हैं। (२) हे **देवि**=प्रकाशमयी उषे! तू **अमा सते**=प्रभु के समीप होनेवाले उपासक के लिये तथा **दाशुषे मर्त्याय**=हवि के देनेवाले मनुष्य के लिये **भूरि वामम्**=पालक व पोषक सुन्दर धन को **वहसि**=प्राप्त कराती है। ('भूरि'='भृ' धारण पोषणयोः)। वस्तुतः प्रातःकाल का सर्वप्रथम कार्य 'प्रभु की उपासना व यज्ञ' ही है।

भावार्थ—उषा होते ही पशु, पक्षी व सामान्य मनुष्य जीविकोपार्जन के लिये निकल पड़ते हैं। चाहिए यह कि हम सर्वप्रथम यज्ञ व उपासना में प्रवृत्त हों।

अगले सूक्त में भी उषा का ही वर्णन—

[६५] पञ्चषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—उषा॥ छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

प्रकाश

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून्॥ १॥

(१) **एषा**=यह **स्या**=वह **दिवोजाः**=आकाश में प्रादुर्भूत होनेवाली तथा (दिवः) **दुहिता**=प्रकाश का सर्वत्र पूरण करनेवाली उषा **उच्छन्ती**=अन्धकारों को दूर करती हुई **मानुषीः क्षितीः**=मानव प्रजाओं के प्रति **अजीगः**=(उद् गिरति प्रकाशयति इति यावत्) प्रकाश को करती है। सब मानव प्रजाओं को प्रबुद्ध करके कार्यव्यापृत करती है। (२) **या**=जो उषा **रुशता भानुना**=चमकते हुए प्रकाश से **राम्यासु**=रात्रियों में होनेवाले **अक्तून्**=नक्षत्र प्रकाशों को तथा **तमसः चित्**=सब अन्धकारों को भी **तिरः**=तिरस्कृत करती हुई **अज्ञायि**=जानी जाती है।

भावार्थ—उषा अपने प्रकाश से मानव प्रजाओं को प्रबुद्ध करती है। यह रात्रि के नक्षत्र-प्रकाशों व अन्धकारों को तिरस्कृत करती हुई उदित होती है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—उषा॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

यज्ञशीलता

वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः॥ २॥

(१) **चन्द्ररथाः**=कान्तियुक्त रथवाली **उषसः**=उषाएँ **अरुणयुग्भिः**=तेजस्विता से युक्त **अश्वैः**=किरणाश्वों के साथ **चित्रं भान्ति**=अद्भुत ही शोभावाली होती हैं। **तत्**=(तदा) उस प्रातःकाल में ये **विययुः**=विशिष्ट गतिवाली होती हैं। (२) **बृहतः यज्ञस्य**=वृद्धि के

कारणभूत यज्ञों के **अग्रं नयन्तीः**=अग्रभाग में हमें प्राप्त कराती हुई, अर्थात् यज्ञशीलता में सर्वोपरि करती हुई **ताः**=वे उषायें **ऊर्म्यायाः**=रात्रि के **तमः**=अन्धकार को **विबाधन्ते**=विशेषरूप से बाधित करती है।

भावार्थ—उषाएँ अपने अद्भुत प्रकाश से शोभती हैं, हमें यज्ञों के लिये प्रेरित करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

श्रवः-वाजं-इषं-ऊर्जम्

श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुषं उषसो मर्त्याय।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य॥ ३॥

(१) **मघोनीः**=ऐश्वर्यवाली **उषसः**=उषाएँ **दाशुषे मर्त्याय**=दाश्वान्, अग्नि के लिये हवि को देनेवाले मनुष्य के लिये **श्रवः**=ज्ञान को, **वाजम्**=शक्ति को, **इषं ऊर्जम्**=प्रेरणा व प्राणशक्ति को **वहन्तीः**=प्राप्त कराती हुई, **पत्यमानाः**=निरन्तर गति करती हुई, **अद्य**=आज **विधते**=परिचरण करते हुए उपासक के लिये **वीरवत् अवः**=वीरता से युक्त अन्न को तथा **रत्नम्**=रमणीय धन को **निधात**=निश्चय से धारण करो। (२) उषा के आने पर जो यज्ञशील पुरुष होते हैं, उनके लिये ये उषा काल सब रमणीय वस्तुओं को धारित करती हैं। उषा की उपासना यही है कि हम उषा में प्रबुद्ध होकर प्रभु का परिचरण करें।

भावार्थ—उषाएँ जागकर हम प्रभु का उपासन करें तथा यज्ञों में प्रवृत्त हों। ऐसा करने पर हमारा जीवन ज्ञान व शक्ति से सम्पन्न होगा। हमें अन्न-धन की कमी न रहेगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विधते, वीराय दाशुषे, विप्राय जरते, मावते

इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुषं उषासः।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित्॥ ४॥

(१) हे **उषासः**=उषाओ! **इदा**=(इदानीम्) इस समय **विधते**=पूजा करनेवाले के लिये **हि**=निश्चय से **वः**=आपका **रत्नम्**=रमणीय धन **अस्ति**=है। पूजा करनेवाले के लिये आप रमणीय धनों को प्राप्त कराती हो। **इदा**=इस समय **वीराय**=कामादि शत्रुओं को कम्पित करके दूर भगानेवाले **दाशुषे**=दाश्वान्-त्याग वृत्तिवाले पुरुष के लिये, यज्ञशील पुरुष के लिये आपका रमणीय धन है। (२) **इदा**=इस समय यह आपका धन उस **जरते**=स्तुति करनेवाले **विप्राय**=ज्ञानी पुरुष के लिये है, **यद् उक्था**=जिसकी वाणी में स्तोत्रों का निवास है। **मावते**=(मा=लक्ष्मीः) प्रशस्त लक्ष्मी सम्पन्न इस पुरुष के लिये **पुरा चित्**=पहले ही **निवहथ स्म**=रमणीय धनों को प्राप्त कराती ही हो।

भावार्थ—उषा काल प्रभु के उपासक के लिये, वीर यज्ञशील पुरुष के लिये, ज्ञानी स्तोता के लिये तथा प्रशस्त लक्ष्मीवाले के लिये रमणीय धनों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उषा जागरण व ज्ञान वाणियों का अध्ययन

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः॥ ५॥

(१) हे **अद्रिसानो**=आदृत वस्तुओं में शिखर भूत **उषः**=उषाकाल! **ते**=तेरे अनुग्रह से **हि**=ही **इदा**=अब **अंगिरसः**=ये अंग-प्रत्यंग में रसवाले, लोच लचक से युक्त शरीरवाले, उपासक **गवां गोत्रा**=वेदवाणियों के समूह को **गृणन्ति**=उच्चरित करते हैं जीवन में उत्कर्ष के लिये सब से महत्त्वपूर्ण चीज यही है कि मनुष्य उषाकाल में जाग जायें। (२) **च**=और **अर्केण**=उपासना के साधनभूत **ब्रह्मणा**=इन मन्त्रों से **विबिभिदुः**=सब अन्धकारों का विदारण करते हैं। इन **नृणाम्**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों की **देवहूतिः**=देव की पुकार व आराधना **सत्या अभवत्**=सत्य होती है। प्रभु की सच्ची आराधना यही पुरुष करता है, जो उषा में जागकर ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करता है और इन वाणियों के द्वारा अज्ञान के अन्धकार को दूर करता है।

भावार्थ—'उषा जागरण' उन्नति का प्रथम व सर्वश्रेष्ठ समय है। उषा में जागकर हम ज्ञान की वाणियों का, वेदवाणियों का उच्चारण करें। इन ज्ञान की वाणियों के द्वारा अज्ञानान्धकार को दूर करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**उषा** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुवीरं रयिं, उरु गायं श्रवः

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥

(१) हे **दिवः दुहितः**=ज्ञान का पूरण करनेवाली उषे! **नः**=हमारे लिये **प्रत्नवत्**=सदा की तरह **उच्छा**=अन्धकार को दूर करनेवाली हो। हे **मघोनि**=ऐश्वर्यशालिनि उषे! **भरद्वाजवत्**=शक्ति को भरण करनेवाली की तरह **विधते**=उपासक के लिये उदित हो। अर्थात् हमारे में शक्ति का भरण करनेवाली हो। (२) **गृणते**=स्तोत्रों का उच्चारण करनेवाले के लिये **सुवीरम्**=उत्तम वीरतावाली **रयिम्**=सम्पत्ति को **रिरीहि**=प्राप्त करा। अथवा उत्तम वीर सन्तानोंवाले धन को प्राप्त करा। **नः**=हमारे लिये **उरुगायम्**=बहुत ही गाने योग्य, अर्थात् यशस्वी **श्रवः**=ज्ञान को **अधिधेहि**=आधिक्येन धारण कर।

भावार्थ—उषा हमारे लिये उदित होकर 'शक्ति, वीरता, ऐश्वर्य व ज्ञान' को देनेवाली हो। हमारी सन्तानें सदा 'सुवीर' हों।

उषा में जागकर हमें प्रभु-पूजन के साथ प्राणसाधना में प्रवृत्त होना चाहिए। सो अगले सूक्त में 'मरुतः' (प्राणों) का ही वर्णन है—

[६६] षट्षष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मरुतों के तीन रूप (प्राण, सैनिक, वृष्टि की वायुवें)

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

(१) शरीर में 'मरुत्' 'प्राण' हैं। आधिदैविक जगत् में ये 'वर्षा को लानेवाली वायुवें' हैं। आधिभौतिक जगत् में ये 'राष्ट्र के रक्षक सैनिक' हैं। हे प्राणो! **नु**=अब **चिकितुषे**=ज्ञानी पुरुष के लिये आपका **तत्**=वह **वपुः**=रूप **चित्**=निश्चय से **अस्तु**=हो, जो **समानम्**=(सं आनयति)

जीवन में प्राणशक्ति का संचार करनेवाला है, **नाम**=शत्रुओं को नमानेवाला है, **धेनु**=शत्रु-विनाश के द्वारा प्रीणित करनेवाला है **पत्यमानम्**=निरन्तर गतिवाला है। इन प्राणों के द्वारा हम क्रियाशील बने रह पाते हैं। (२) आधिभौतिक क्षेत्र में **मर्तेषु**=रणांगण में शरीरों का त्याग करनेवाले पुरुषों में **दोहसे**=इष्ट शक्तियों के पूरण के लिये **अन्यत्**=मरुतों का विलक्षण बल **पीपाय**=वृद्धि को प्राप्त होता है। (३) आधिदैविक क्षेत्र में मरुतों (वर्षा की वायुवों) की कृपा से ही **पृश्निः**=अन्तरिक्ष **सकृत्**=वर्ष में एक बार, अर्थात् वर्षा ऋतु में **शुक्रं ऊधः**=शुक्लवर्ण जल को **दुदुहे**=पृथ्वी पर क्षरित करता है।

भावार्थ—प्राण हमें सबल बनाते हैं। राष्ट्र में मरुत् (=सैनिक) विलक्षण बल को प्रकट करते हैं। आधिदैविक जगत् में वृष्टि की वायुवें शुक्लवर्ण जल का दोहन करती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नृम्ण-पौंस्य

ये अ॒ग्नयो॒ न शोशु॑चन्नि॒धा॒ना द्विर्यत्त्रिर्म॒रुतो॑ वावृ॒धन्त॑।
अ॒रे॒णवो॑ हिर॒ण्यया॑स एषां सा॒कं नृ॒म्णैः पौंस्ये॑भिश्च भूवन् ॥ २ ॥

ये=जो भी साधक **यत्**=जब **द्विः**=दो बार (प्रातः सायं), अथवा **त्रिः**=तीन बार (न्यूनातिन्यून तीन वार) **मरुतः**=प्राणों का **वावृधन्त**=वर्धन करते हैं, अर्थात् प्राणसाधना में प्रवृत्त होते हैं तो **इधानाः**=दीप्त की जाती हुई **अग्नयः न**=अग्नियों के समान **शोशुचन्**=दीप्त हो उठते हैं, चमक उठते हैं। (२) **एषाम्**=इन साधकों के ये शरीर-रथ **अरेणवः**=रेणु व धूलि से रहित होते हैं, अर्थात् इनमें रोगों व वासनाओं की मलिनता नहीं होती। **हिरण्ययासः**=ये रथ ज्ञान-ज्योति से स्वर्ण के समान चमकते हैं (हिरण्यं वै ज्योतिः)। ये साधक सदा **नृम्णैः**=धनों **च**=और **पौंस्येभिः**=बलों के **साकम्**=साथ **भूवन्**=होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना करनेवाला अग्नि के समान तेजस्वी प्रतीत होता है। इनकी मलिनताएँ दूर होती हैं और ये ज्ञान-ज्योति से चमक उठते हैं। ये धन व बल से सम्पन्न होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

रुद्रस्य पुत्राः

रु॒द्रस्य॒ ये मी॒ळ्हुषः॒ सन्ति॑ पु॒त्रा यांश्चो॒ नु दाधृ॑वि॒र्भर॑ध्यै।
वि॒दे हि मा॒ता म॒हो म॒ही षा सेत्पृश्निः॑ सु॒भ्वे॒३ गर्भ॒माधा॑त् ॥ ३ ॥

(१) **ये**=जो मरुत्-प्राणसाधना करनेवाले पुरुष, **मीढुषः**=सब सुखों के सेचक **रुद्रस्य**=दुःखों के द्रावक प्रभु के **पुत्राः सन्ति**=पुत्र हैं। **च**=और **यान्**=जिनको **उ**=निश्चय से **नु**=अब **दाधृविः**=यह धारण करनेवाली पृथ्वी **भरध्यै**=धारित व पोषित करती है। अर्थात् जो इस पृथ्वी से उत्पन्न ओषधि वनस्पति आदि का ही सेवन करते हैं। (२) **महः मही**=बड़ों से भी बड़ी **सा**=वह **माता**=वेदमाता **हि**=निश्चय से **विदे**=इन्हें ज्ञान के देनेवाली होती है। अर्थात् ये साधक उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करते हैं। **सा**=वह **इत्**=ही **पृश्निः**=सब प्रकाशों का स्पर्श करानेवाली वेदमाता **सुभ्वे**=इन मनुष्यों की उत्तम स्थिति के लिये (सुष्ठु भवनाय) **गर्भं आधात्**=सर्वत्र गर्भरूप से वर्तमान प्रभु को इनमें धारण करती है। अर्थात् ये साधक उस प्रभु को अपने अन्दर देखनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधक पुरुष प्रभु का सच्चा पुत्र है। प्रभु के आदेश के अनुसार चलता हुआ यह दुःखों को दूर भगाता है, अपने में सुखों का सेचन करता है। ओषधि वनस्पति का सेवन करता

हुआ यह वेदज्ञान प्राप्त करता है और हृदयस्थ प्रभु का दर्शन करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शोधन व श्री सम्पन्नता

न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः।
निर्यद्दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ४ ॥

(१) **ये**=जो मरुत् (=प्राण) **अया**=अपने गमन के द्वारा **जनुषः**=प्राणसाधक लोगों को **न ईषन्ते**=(ईष् to kill) हिंसित नहीं होने देते। **नु**=निश्चय से **अन्तः सन्तः**=अन्दर होते हुए **अवद्यानि पुनानाः**=पापों को, अशुभों को दूर करते हैं, पापवृत्तियों को दूर करके इनके जीवनों को पवित्र करते हैं। (२) **शुचयः**=ये पवित्र प्राण **यत्**=जब **जोषं अनु**=प्रीतिपूर्वक सेवन के अनुपात में, अर्थात् जितनी-जितनी इनकी साधना करते हैं, उतना-उतना **निर्दुह्रे**=बुराइयों का निर्दोहन करते हैं और **तन्वम्**=इस शरीर को **श्रिया**=श्री से, शोभा से **अनु उक्षमाणाः**=अनुकूलता से सिक्त करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना शरीर को पवित्र कर डालती है। सब बुराइयों का निर्दोहन करते हुए ये प्राण शरीर को श्री सम्पन्न बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मारुतं धृष्णु नाम

मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥ ५ ॥

(१) **न**=(संप्रत्यर्थे) अब **येषु**=जिन मरुतों के होने पर, जिन मरुतों की साधना के प्रवृत्त होने पर, **अया**=इन प्राणों की गति के द्वारा **चित्**=निश्चय से **मक्षु**=शीघ्र ही ये साधक **दोहसे**=अच्छाइयों के पूरण के लिये होते हैं। और **आ**=सब प्रकार से **नाम**=शत्रुओं को झुका देनेवाले **धृष्णु**=सब मलिनताओं के धर्षक इस **मारुतम्**=प्राणसम्बन्धी बल को **दधानाः**=धारण करते हैं। (२) ये प्राण वे हैं **ये**=जो **न स्तौनाः**=शक्तियों को चुरानेवाले नहीं, अपितु शक्तियों के बढ़ानेवाले ही हैं। **अयासः**=निरन्तर गतिशील हैं। **नू चित्**=निश्चय से इन प्राणों की **मह्ना**=महिमा से **सुदानुः**=अच्छी प्रकार बुराइयों को काटनेवाला व्यक्ति **उग्रान्**=इन उग्र (=प्रबल) काम-क्रोध-लोभ रूप शत्रुओं को **अवयासत्**=अपने से पृथक् करता है।

भावार्थ—प्राणसाधना से शत्रुधर्षक बल प्राप्त होता है। इनकी महिमा से हम काम-क्रोध-लोभ रूप प्रबल शत्रुओं को अपने से दूर कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

मरुत्-सैनिक

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥

(१) **ते**=वे सैनिक **इत्**=निश्चय से **शवसा उग्राः**=बल के द्वारा शत्रुओं के लिये भयंकर होते हैं। **धृष्णुषेणाः**=ये शत्रुधर्षक सेनावाले होते हैं। ये **उभे**=दोनों **सुमेके**=उत्तम निर्माणवाले **रोदसी**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **युजन्त**=अपने साथ जोड़ते हैं। (२) **अध**=अब

एषु=इन मरुतों, सैनिकों में **रोदसी**=द्यावापृथिवी, मस्तिष्क व शरीर **स्वशोचिः**=अपनी दीप्तिवाले होते हैं। इन **अमवत्सु**=बलशालियों में **रोकः**=(A hole) छेद-दोष **न आतस्थौ**=स्थित नहीं होता है। इनका जीवन बड़ा निर्दोष बनता है।

भावार्थ—राष्ट्र के सैनिक सबल, स्वस्थ मस्तिष्क व शरीरवाले तथा निर्दोष जीवनवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

रजस्तूः रथ

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन्॥ ७॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणसाधक पुरुषो! **वः**=तुम्हारा **यामः**=यह शरीर-रथ **अनेनः अस्तु**=निष्पाप हो। **अनश्वः चित्**=इसमें सामान्य रथ की तरह कोई घोड़े जुते नहीं हैं। यहाँ शरीर की अंगभूत इन्द्रियाँ ही घोड़े हैं। **यम्**=जिस शरीर-रथ को **अरथीः**=असारथि ही **अजति**=प्रेरित करता है। इसमें कोई पृथक् सारथि नहीं है, बुद्धि ही सारथि है। (२) **अनवसः**=पथ्यदन (पाथेय) रहित यह रथ है। इसमें मार्ग के भोजन की आवश्यकता नहीं है। **अनभीशूः**=इसी प्रकार यह लगाम रहित है, मन ही इसमें लगाम का काम करता है। यह रथ **रजस्तूः**=रजोगुण रूप धूलि को हिंसित करनेवाला है। दूसरा रथ धूल को उड़ाता है, यह शान्त करता है। यह रथ **साधन्**=इष्ट कामनाओं को सिद्ध करता हुआ **रोदसी**=द्यावापृथिवी में **पथ्याः**=मार्गों को **याति**=आक्रान्त करता है।

भावार्थ—प्रभु ने यह उत्तम शरीर-रथ बनाया है। यह धूल को, राजस-भावों को शान्त करता हुआ मार्ग पर आगे बढ़ता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

न वर्ता, न तरुता

नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः॥ ८॥

(१) हे **मरुतः**=प्राणो! **वाजसातौ**=संग्राम में **यं अवथ**=जिसको तुम रक्षित करते हो, **अस्य**=इस पुरुष का **वर्ता**=रोकनेवाला **न अस्ति**=कोई नहीं है। **नु**=अब **तरुता न अस्ति**=इसका कोई हिंसक नहीं है। (२) **यम्**=जिसको **तोके**=पुत्रों में **वा**=और **गोषु**=इन्द्रियों में **तनये**=पौत्रों में तथा **अप्सु**=कर्मों में रक्षित करते हो, **सः**=वह **अध**=अब **पार्ये**=संग्राम में **द्योः**=दीप्त भी शत्रु के **व्रजं दर्ता**=सैन्यसमूह को विदीर्ण करनेवाला होता है। अर्थात् यदि प्राणसाधना करते हुए हम पुत्र-पौत्रों के रक्षण व इन्द्रियों के सत्कर्मों में व्यापृत रखने का ध्यान करें तो 'काम-क्रोध-लोभ' आदि प्रबल शत्रुओं को भी जीत पाते हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें विजयी बनाती है। हम शत्रुओं को जीतकर अपने पुत्र-पौत्रों व इन्द्रियों को बड़ा उत्तम बना पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञशीलता

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम्।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः॥ ९॥

(१) हे मनुष्यो! आप **गृणते**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले ब्राह्मण के लिये, **तुराय**=शत्रु-संहार करनेवाले क्षत्रिय के लिये तथा **स्व-तवसे**=आत्म पुरुषार्थ से उपार्जित धन (स्व) के बल बली वैश्य के लिये, अर्थात् इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन सकने के लिये **मारुताय**=प्राणों के समूह के लिये **चित्रं अर्कम्**=अद्भुत स्तुति को **प्रभरध्वम्**=प्रकर्षेण धारण करो। प्रभु स्तवन पूर्वक प्राणसाधना से ही हम उत्तम ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बन पाते हैं। (२) उन प्राणों का स्तवन करो **ये**=जो **सहसा**=बल से **सहांसि सहन्ते**=शत्रु बलों का पराभव करते हैं। हे **अग्ने**=प्रगतिशील पुरुष! यह ध्यान रखना कि **पृथिवी**=यह पृथिवी, इस प्राणसाधना के होने पर **मखेभ्यः**=यज्ञों से **रेजते**=चमक उठती है। वासनाओं के विनाश से जीवन यज्ञमय बन जाता है।

भावार्थ—प्राणसाधना हमें ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य बनाती है। यह साधना हमारी वासनाओं को विनष्ट करके हमें यज्ञशील बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

दीप्त जीवनवाले सैनिक

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥

(१) **अध्वरस्य**=यज्ञ की **दिद्युत् इव**=दीप्ति के समान **त्विषीमन्तः**=दीप्तिवाले ये सैनिक हैं। **तृषुच्यवसः**=क्षिप्रगमनवाले, शीघ्र गतिवाले हैं। ये तो **अग्नेः जुह्वः न**=अग्नि की ज्वालाओं के समान हैं। अग्नि ज्वालाओं में जैसे सब कुछ भस्म हो जाता है, उसी प्रकार इन मरुतों के तेज की अग्नि में शत्रु भस्मसात् होते हैं। (२) **अर्चत्रयः**=(अर्च्+त्रि) 'इडा सरस्वती व मही' तीनों देवताओं का आदर करनेवाले, **धुनयः न**=शत्रुओं को कम्पित-सा करनेवाले, **वीराः**=ये वीर सैनिक **भ्राजत् जन्मानः**=दीप्त शरीर (जीवन) वाले, **मरुतः**=रणांगण में प्राणों का त्याग करनेवाले व **अधृष्टाः**=कभी शत्रुओं से धर्षित न होनेवाले होते हैं।

भावार्थ—वीर सैनिक तेजस्विता से दीप्त जीवनवाले होते हैं, ये कभी शत्रुओं से धर्षित नहीं होते। 'इडा सरस्वती मही' के ये उपासक होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दिवः शुचयः मनीषाः

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ११ ॥

(१) **तम्**=उस **वृधन्तम्**=वृद्धि को प्राप्त होते हुए, **भ्राजत् ऋष्टिम्**=देदीप्यमान आयुधोंवाले, **रुद्रस्य सूनुम्**=दुःखों का द्रावण करनेवाले के पुत्र, अर्थात् खूब प्रजा कष्टों का निवारण करनेवाले **मारुतम्**=सैनिक समूह को **हवसा विवासे**=स्तोत्रों के द्वारा परिचरित करता हूँ। अर्थात् इन सैनिकों का मैं स्तवन करता हूँ। (२) **दिवः**=प्रकाशमय जीवनवाले **शुचयः**=अधिकाधिक पवित्र, **मनीषाः**=(मनसः ईष्टे) मन के शासक ये सैनिक **शर्धाय**=शत्रुओं का अभिभव करनेवाले होते हैं। ये सैनिक **गिरयः न**=पर्वतों के समान होते हैं, पर्वत जैसे शत्रु को आने से रोकनेवाले होते हैं, इसी प्रकार ये सैनिक राष्ट्र में शत्रुओं को प्रविष्ट नहीं होने देते। ये सैनिक **उग्राः आपः (न)**=बड़े उग्र जलों के समान हैं। तेज जलधाराएँ भी शत्रु को रोकती हैं। इसी प्रकार ये सैनिक

शत्रु को रोकनेवाले होते हैं। ये सैनिक **अस्पृध्रन्**=परस्पर स्पर्धावाले होते हैं। देश रक्षा में एक दूसरे से बढ़कर भाग लेनेवाले होते हैं।

भावार्थ—उत्तम सैनिक देश रक्षा के लिये परस्पर स्पर्धावाले होते हैं। ये पर्वतों व तीव्र जलधाराओं के समान शत्रु को रोकनेवाले होते हैं। ये सैनिक ज्ञानी, पवित्र व नियन्त्रित मनवाले होते हैं।

अगले सूक्त का विषय 'मित्रावरुण' हैं। 'मित्र' स्नेह की देवता है, 'वरुण' निर्द्वेषता की। भरद्वाज बार्हस्पत्य कहता है—

[६७] सप्तषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'ज्येष्ठतमा यमिष्ठा' मित्रावरुणा

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥ १ ॥

(१) **विश्वेषाम्**=सब **वः**=तुम **सताम्**=श्रेष्ठ दिव्य भावों में **ज्येष्ठतमा**=प्रशस्यतम **मित्रा-वरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को **गीर्भिः**=ज्ञान की वाणियों के द्वारा **वावृधध्यै**=मैं अपने अन्दर बढ़ानेवाला होता हूँ। स्वाध्याय में प्रवृत्त रहकर मैं अपने हृदय में सबके प्रति स्नेह के भाव को तथा निर्द्वेषता के भाव को उत्पन्न करने का प्रयत्न करता हूँ। (२) **या**=जो मित्र और वरुण **यमिष्ठा**=यन्तृतम हैं, हमें मार्गभ्रष्ट होने से अधिक से अधिक बचानेवाले हैं। ये **द्वा**=दोनों **रश्मा इव**=लगाम से जैसे घोड़ों को, उसी प्रकार **संयमतुः**=हमें संयत करनेवाले हैं। ये मित्र और वरुण **असमा**=अनुपम हैं, इनके समान उत्कृष्ट अन्य भाव नहीं हैं। ये **जनान्**=लोगों को **स्वैः बाहुभिः**=अपनी बाहुवों से संयत करते हैं। मित्र और वरुण का आराधक दुष्टभावों का शिकार नहीं होता।

भावार्थ—हम स्वाध्याय के द्वारा 'स्नेह व निर्द्वेषता' की वृत्ति का अपने में वर्धन करें। ये मित्र और वरुण हमें संसार यात्रा में मार्गभ्रष्ट होने से बचायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अधृष्ट छादः

इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥ २ ॥

(१) हे **मित्रावरुणौ**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **इयम्**=यह **मत्**=मेरी, मेरे से की जानेवाली **मनीषा**=स्तुति **वाम्**=आप दोनों को **प्रस्तृणीते**=आच्छादित करती है। हे **प्रिया**=प्रीति के जनक मित्र और वरुण यह स्तुति **नमसा**=नमन के साथ आपको **बर्हिः अच्छ**=हृदय के अभिमुख **उप**=समीपता से प्राप्त कराती है। अर्थात् मैं प्रभु के प्रति नमनवाला होता हुआ हृदय में मित्र व वरुण का प्रतिष्ठापन करने का प्रयत्न करता हूँ। (२) हे मित्रावरुणौ! आप **नः**=हमारे लिये **अधृष्टम्**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं से धर्षित न किये जानेवाले **छर्दिः**=शरीरगृह को **यन्तम्**=प्राप्त कराइये। हे **सुदानू**=शोभन दानोंवाले व बुराइयों को काटनेवाले प्राणापानो! **यद्वाम्**=जो आपका **वरुथ्यम्**=वासनाओं का निवारक धन है उसे हमारे लिये प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हम मित्रावरुण का स्तवन करें। प्रभु स्मरण करते हुए स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को अपने अन्दर धारण करें। हमारा शरीरगृह नीरोग व उत्तम बने तथा हमें वासना विनाशक धन प्राप्त हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उत्तम कर्मों में व्यापृति

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा॥ ३॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता की देवताओ! **सुशस्ति**=शोभन शंसन के हेतु से **उप आयातम्**=हमें समीपता से प्राप्त होवो। मित्र व वरुण की प्राप्ति के होने पर हमारे सब कार्य उत्तम ही होते हैं। वस्तुतः मित्र व वरुण की आराधना ही सच्चा प्रभु स्तवन है। हे **प्रिया**=प्रीति के जनक मित्र व वरुण! आप हमारे से **नमसा हूयमाना**=नमन के द्वारा पुकारे जाते हो। प्रभु के प्रति नतमस्तक होते हुए हम यही आराधना करते हैं कि हम सबके प्रति स्नेह वाले हों और निर्द्वेषता के भाव को धारण करें। (२) हे मित्र व वरुण! **यौ**=जो आप हैं, **महित्वा**=अपनी महिमा से **श्रुधीयतः चित् जनान्**=(श्रुधि=यश) यश की कामनावाले जनों को **अपसा**=कर्म के द्वारा **संयतथः**=सम्यक् उद्योगवाला करते हो, उसी प्रकार, **इव**=जैसे कि **अप्नस्थः**=कर्म में अधिकृत पुरुष लोगों को कर्मों में प्रेरित किया करता है।

भावार्थ—मित्र और वरुण का उपासक सदा लोकहित के उत्तम कर्मों में व्यापृत रहता है। इन उत्तम कर्मों के द्वारा इसका जीवन यशस्वी बनता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'शक्ति पवित्रता ऋत'

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद्गर्भमदितिर्भरध्यै।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः॥ ४॥

(१) **या**=जो मित्र और वरुण **अश्वा न**=अश्वों के समान **वाजिना**=शक्तिशाली हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव ही हमारे जीवनों में शक्ति का वर्धन करते हैं। **पूतबन्धू**=ये मित्र और वरुण पवित्रता को हमारे साथ बाँधनेवाले हैं। **ऋता**=ये ऋत हैं, जो ठीक है, उसे प्राप्त करानेवाले हैं। **यत्**=जिनको **अदितिः**=स्वास्थ्य की देवता **गर्भं भरध्यै**=गर्भरूप से धारण करती है। अर्थात् जितना-जितना पुरुष स्वस्थ होता है, उतना-उतना स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को धारण कर पाता है। (२) **या**=जो **प्रजायमाना**=प्रादुर्भूत होते हुए **महि महान्ता**=महान् से भी महान् होते हैं, उत्तरोत्तर जीवन की महत्ता को बढ़ानेवाले होते हैं। **रिपवे मर्ताय**=शत्रुभूत मनुष्य के लिये **घोरा**=जो भयङ्कर होते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता शत्रु की शत्रुता को समाप्त करके वस्तुतः शत्रु को नष्ट कर देते हैं। इन मित्र और वरुण को अदिति गर्भरूप से **निदीधः**=धारण करती है, स्वस्थ पुरुष अपने हृदय में धारण करता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें 'शक्ति, पवित्रता व ऋत' को प्राप्त कराते हैं। ये हमें महान् बनाते हैं। शत्रु को विनष्ट करते हैं। स्वस्थ पुरुष ही इन्हें धारण करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

क्षत्रं-स्पशः

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥ ५ ॥

(१) हे मित्र और वरुण! **विश्वे देवासः**=सब देव **वां मंहना**=आपकी महिमा से **मन्दमानाः**=प्रभु का स्तवन करते हुए, **सजोषाः**=परस्पर प्रीतिवाले होते हुए **यत्**=जब **क्षत्रम्**=बल को **अदधुः**=धारण करते हैं और **यद्**=जब इस प्रकार आप **उर्वी चित् रोदसी**=इन विशाल भी द्यावापृथिवी को **परिभूथः**=परिभूत करते हो तो उस समय आपकी **स्पशः**=ये प्रकाश की किरणें (स्पश् see clearly) **अदब्धासः**=अहिंसित व **अमूराः**=मूढता को दूर करनेवाली होती हैं। स्नेह व निर्द्वेषता का अभाव ही मनुष्य को नाना रोगों से हिंसित व मूढ़ मनवाला बनाता है। (२) देववृत्ति के व्यक्ति अपने में स्नेह व निर्द्वेषता के भावों का धारण करते हुए शक्ति को धारित करते हैं। विजयी बनते हैं और प्रकाश की किरणों को धारण करते हैं।

भावार्थ—हम देव बनें, सब के प्रति स्नेह व निर्द्वेषतावाले हों। यही बल व ज्ञान की वृद्धि का मार्ग है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दृढः विश्वदेवः 'नक्षत्रः'

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून्दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

(१) **ता**=वे मित्र और वरुण! **अनुद्यून्**=दिन प्रतिदिन **हि**=निश्चय से **क्षत्रम्**=बल को **धारयेथे**=धारण करते हैं और **द्योः सानुम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक के शिखर को **उपमात् इव**=(उपमीयते) मानो स्तम्भ के द्वारा **दृंहेथे**=दृढ़ करते हैं। (२) इन मित्र और वरुण के उपासक के जीवन में **नक्षत्रः**=ज्ञानसूर्य **दृढः**=दृढ़ व स्थिर होते हैं, **उत**=और **विश्वदेवः**=सब दिव्यभावों को जन्म देनेवाला होता है। यह ज्ञानसूर्य **आयोःधासिना**=मनुष्य के धारण के हेतु से **भूमिम्**=शरीर रूप पृथिवी को तथा **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **आतान्**=विस्तृत करता है। ज्ञान के द्वारा शरीर व मस्तिष्क दोनों ही ठीक बनते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे बल का वर्धन करते हैं, मस्तिष्क का धारण करते हैं। इनके द्वारा उदित हुआ-हुआ ज्ञानसूर्य हृदय में दिव्य भावों को जन्म देता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

न मृष्यन्ते युवतयो अवाताः

ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥ ७ ॥

(१) **ता**=वे मित्र और वरुण **विग्रम्**=प्राज्ञ को **धैथे**=धारण करते हैं। **जठरं पृणध्यै**=ये उदर को सोम से पूरित करने के लिये होते हैं। अर्थात् सोम का उदर में ही रक्षण करते हैं, उसे नष्ट नहीं होने देते। **सभृतयः**=समानरूप से मित्रावरुणा का धारण करनेवाले परिवार के व्यक्ति **यत् सद्म**=जो उनका घर है, उसे **आपृणन्ति**=सब प्रकार से पूरित करते हैं। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव

के होने पर घर में कमी नहीं आती। (२) इस स्नेह व निर्द्वेषता के धारण करने पर **युवतयः**=ये सदा अजरामर रहनेवाली वेदवाणियाँ (देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति) **न मृष्यन्ते**=रजोगुण से अभिभूत नहीं होती, अर्थात् सात्त्विक भाव के कारण इनका उत्तरोत्तर प्रकाश बढ़ता जाता है। **अवाताः**=ये वेदवाणियाँ शुष्क भी नहीं हो जाती (न शोषयति मारुतः), **यत्**=क्योंकि **विश्वजिन्वा**=सब उत्तम ज्ञानों को प्रेरित करनेवाले ये मित्र और वरुण **पयः विभरन्ते**=आप्यायित करनेवाले ज्ञान को विशेषरूप से हमारे में धारण करते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव से सोम का रक्षण होता है, ज्ञान बढ़ता है। इस मित्र और वरुण के आराधक को अधिकाधिक ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञान यज्ञ व सत्य

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत्।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ८ ॥

(१) **सुमेधाः**=उत्तम बुद्धिवाला पुरुष **सदम्**=सदा **जिह्वया**=अपनी जिह्वा से **ता**=उन मित्र और वरुण से **इदम्**=इस गत मन्त्र में वर्णित 'पयः' आप्यायित करनेवाले ज्ञानदुग्ध को **आ**=(आयाचते) माँगता है। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमारे ज्ञान का वर्धन करते ही हैं। **यत्**=क्योंकि **वां अरतिः**=आपका अभिगन्ता, आपको प्राप्त होनेवाला यह उपासक **सत्यः**=सत्य व्यवहारवाला तथा **ऋते**=सदा यज्ञों में चलनेवाला **भूत्**=होता है। (२) हे **घृतान्नौ**=शरीर से मलों का क्षरण करनेवाले तथा ज्ञानदीप्ति को बढ़ानेवाले अन्न का सेवन करनेवाले प्राणापानो! **वाम्**=आपकी **तत्**=वह **महित्वम्**=महिमा **अस्तु**=सदा हो, सदा आपकी यह महिमा बनी रहे कि **युवम्**=आप **दाशुषे**=इस दाश्वान् पुरुष के लिये **अंहः**=पाप को **विचयिष्टम्**=नष्ट करते हो। जो भी व्यक्ति मित्र और वरुण के लिये अपने को दे डालता है, मित्र और वरुण उसके पाप को विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता से ज्ञानवृद्धि होती है, सत्य व यज्ञों की रुचि बढ़ती है, पाप विनष्ट होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्नेह व निर्द्वेषता का महत्व

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥ ९ ॥

(१) हे **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुण! **यद्**=जब **वाम्**=आपके **प्रिया धाम**=प्रिय तेजों को व **युवधिता**=आप से किये जानेवाले कर्मों को **स्पूर्धन्**=(defy) निरादृत करते हैं व **प्रमिनन्ति**=हिंसित करते हैं। अर्थात् जब स्नेह व निर्द्वेषता से उत्पन्न होनेवाले तेज को ये महत्त्व नहीं देते और जब स्नेह व निर्द्वेषता से युक्त होकर कर्म नहीं करते तो इनका जीवन ऐसा हो जाता है कि **ये**=जो **न देवासः**=देववृत्ति के नहीं बन पाते। और ये वे **मर्ताः**=मनुष्य होते हैं जो **अयज्ञसाचः**=यज्ञों का सेवन न करते हुए **ओहसा न**=(वहनसाधनेन स्तोत्रेण) लक्ष्य स्थान पर ले जानेवाले स्तोत्र से युक्त नहीं होते। **अप्यः**=कर्मशील होते हुए भी ये **पुत्राः न**=(पुनाति त्रायते) अपने को पवित्र नहीं कर पाते और अपने को रोगों व वासनाओं के आक्रमण से नहीं बचा पाते। (२) स्नेह व निर्द्वेषता के अभाव में हमें वास्तविक तेज की प्राप्ति नहीं होती। हम स्नेह व निर्द्वेषता

से दूर होकर देवत्व से ही दूर हो जाते हैं। हमारा जीवन यज्ञमय व स्तुतिमय नहीं रहता। पवित्रता का विनाश होकर रोगों व वासनाओं की प्रबलता हो जाती है।

भावार्थ—हम स्नेह व निर्द्वेषता के महत्त्व को समझें। इन्हीं से हमें 'तेजस्विता, दिव्यता, स्तुति की वृत्ति, यज्ञशीलता व पवित्रता' प्राप्त होगी।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

स्तवन-ज्ञान-दिव्य गुण

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा॥ १० ॥

(१) **यद्**=जब **कीस्तासः**=मेधावी उद्गाता **वाचम्**=स्तुति वाणी को **विभरन्ते**=विशेषरूप से धारण करते हैं। और **केचित्**=कई **मनानाः**=मननशील पुरुष **निविदः**=निश्चयात्मक ज्ञान को देनेवाली वेदवाणियों का **शंसन्ति**=शंसन करते हैं। **आत्**=तब हम **वाम्**=हे मित्र और वरुण आपके ही **सत्यानि उक्था**=सत्य स्तोत्रों को **ब्रवाम**=उच्चरित करते हैं। वस्तुतः स्नेह व निर्द्वेषता का धारण ही उन मेधावी उद्गाताओं (कीस्त) को स्तुति में प्रवृत्त करता है और मननशील पुरुषों को इन ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करने के योग्य बनाता है। (२) हे मित्र और वरुण! आप **महित्वा**=अपनी महिमा से **देवेभिः**=अन्य दिव्य गुणों के साथ **नकिः यतथः**=नहीं जाते हो। अर्थात् सब दिव्य गुणों से आपकी महिमा अधिक है। वस्तुतः स्नेह व निर्द्वेषता के भाव ही अन्य दिव्य गुणों को जन्म देते हैं। इनके अभाव में किसी भी दिव्य गुण का सम्भव नहीं।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता की ही यह महिमा है कि हम (क) मेधावी उद्गाता बनकर प्रभु का स्तवन करते हैं। (ख) मननशील बनकर ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हैं, (ग) अन्य दिव्य गुणों को अपने में उत्पन्न कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अस्कृधोयु छर्दिः (महान् गृह)

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु।
अनु यद्गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन्॥ ११ ॥

(१) हे **मित्रावरुणौ**=मित्र और वरुण! **अवोः**=(अवतोः) रक्षण करते हुए **वाम्**=आपके **अभिष्टौ**=अभिगमन के होने पर **इत्था**=सचमुच **युवोः**=आपके **छर्दिषः**=इस शरीररूप गृह की **अस्कृधोयु**=(कृधु-ह्रस्व-अल्प) अनल्पता होती है। स्नेह व निर्द्वेषता के भाव इस शरीरगृह को बड़ा सुन्दर व महान् बनाते हैं। इनके होने पर इस गृह का असमय में ही विच्छेद नहीं हो जाता। (२) **यत्**=क्योंकि मित्र और वरुण के होने पर उस गृह में **गावः**=ज्ञानपूर्वक की स्तुति वाणियाँ **अनु स्फुरान्**=स्फुरित होती हैं, निरन्तर उच्चरित होती हैं और **यत्**=क्योंकि ये मित्र और वरुण के उपासक **ऋजिप्यम्**=ऋजुगामी, सरल मार्ग से गति की प्रेरणा देनेवाले **धृष्णुम्**=रोगरूप शत्रुओं के धर्षक **वृषणम्**=शक्ति का सेचन करनेवाले सोम को, वीर्यशक्ति को **रणे**=जीवन संग्राम में **युनजन्**=युक्त करते हैं। अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता के कारण हम ज्ञानपूर्वक स्तुति करनेवाले बनते हैं और सोम का रक्षण करते हुए जीवन संग्राम में विजयी बनते हैं। बस, ये दो बातें हमारे इस शरीर गृह को असमय में विच्छिन्न नहीं होने देती। जिस भी घर में स्नेह व निर्द्वेषता का वास होता है, वह घर अवश्य महान् बनता है।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता हमें ज्ञान व सोमरक्षण की ओर ले जाकर दीर्घजीवी व उत्तम महान् गृहवाला बनाते हैं।

अगले सूक्त में 'भारद्वाज बार्हस्पत्य' इन्द्र और वरुण का स्तवन करते हैं 'इन्द्र' जितेन्द्रियता व बल का प्रतीक है और 'वरुण' निर्द्वेषता का—

[६८] अष्टषष्टीतमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु प्रेरणा व महान् सुख

श्रुष्टी वां युज्ञ उद्यतः सुजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत्॥ १॥

(१) हे **महे**=मंहनीय-पूजनीय **इन्द्रावरुणौ**=इन्द्र और वरुण! बल व निर्द्वेषता के भावो! **श्रीष्टी**=शीघ्र ही अब **वाम्**=आपका **यज्ञः**=पूजन **उद्यतः**=उद्यत हुआ है, प्रवृत्त हुआ है। **सजोषाः**=यह पूजन समान रूप से प्रीतिवाला है। जितना जितेन्द्रियता के द्वारा बल के रक्षण का विचार है, उतना ही निर्द्वेष बनने का निश्चय है। यह **मनुष्वत्**=एक विचारशील पुरुष की तरह **वृक्तबर्हिषः**=जिसने हृदय क्षेत्र में से वासनारूप घास-फूस को उखाड़कर फेंक दिया है उस यजमान के **यजध्यै**=यजन के लिये होता है। अर्थात् 'इन्द्र-वरुण' का पूजन 'वृक्तबर्हिष्' ही कर पाता है। हृदय में वासनाओं के रहते यह पूजन नहीं हो सकता। (२) **यः**=जो यज्ञ **अद्य**=आज **इषे**=हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को प्राप्त कराने के लिये **आववर्तत्**=निरन्तर अवृत्त होता है, वह **महे सुम्नाय**=महान् सुख के लिये होता है। वस्तुतः जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता की उपासना हमें सुखी बनाती है, यह हमें हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनने के योग्य बनाती है।

भावार्थ—हम हृदयक्षेत्र से वासनाओं के घास-फूस को उखाड़ फेंकने का यत्न करें। इससे हम जितेन्द्रिय व निर्द्वेष बनकर महान् सुख को प्राप्त करेंगे और हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुन पायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'इन्द्र और वरुण' की श्रेष्ठता

ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम्।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना॥ २॥

(१) **ता**=वे इन्द्र और वरुण, जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव **हि**=ही **श्रेष्ठा**=प्रशस्ततम हैं। **देवताता**=यज्ञ में ये **तुजा**=विघ्नकारी शत्रुओं के संहारक हैं। इनके द्वारा जीवनयज्ञ सुचारुरूपेण चलता है। **ता**=वे **हि**=ही **शूराणां शविष्ठा**=शूरों में सर्वाधिक बलवाले **भूतम्**=होते हैं। (२) ये इन्द्र और वरुण **मघोनाम्**=दाताओं में **मंहिष्ठा**=दातृतम हैं। **तुविशुष्मा**=महान् बलवाले हैं। **ऋतेन**=ऋत के द्वारा **वृत्रतुरा**=ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करनेवाले हैं। **सर्वसेना**=ये इन्द्र और वरुण पूर्ण सेनावाले होते हैं। इन्द्रियाँ, प्राण, मन व बुद्धि आदि ही वे सैनिक हैं जिनसे कि इस जीवन संग्राम को हमने लड़ना है। इन्द्र और वरुण के द्वारा ये सैनिक बड़े ठीक बने रहते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता ही हमें श्रेष्ठ जीवनवाला, सबल व शत्रुसंहार समर्थ बनाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शूष+सुम्न-बल+शुख

ता गृणीहि नमस्यैभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः॥ ३॥

(१) **नमस्येभिः**=नमस्करणीय-स्तुत्य **शूषैः**=बलों से तथा **सुम्नेभिः**=सुखों से **चकाना**=स्तुत **ता**=उन **इन्द्रारुणा**=इन्द्र और वरुण की **गृणीहि**=स्तुति कर। 'इन्द्र' स्तुत्य बल से युक्त है, तो 'वरुण' प्रशस्त सुखों का कारण बनता है। (२) **अन्यः**=इनमें से एक इन्द्र, **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **हन्ति**=विनष्ट करता है। **अन्यः**=दूसरा **विप्रः**=हमारा विशेषरूप से पूरण करनेवाला 'वरुण' (निर्द्वेषता का भाव) **वृजनेषु**=(battle, fight) संग्रामों में **शवसा**=बल से **सिषक्ति**=(संगच्छते) संगत होता है। निर्द्वेषता वह बल प्राप्त कराती है जिससे कि हम संग्रामों में सदा विजयी बनते हैं।

भावार्थ—'इन्द्र' स्तुत्य बलों को प्राप्त कराता है तो वरुण सुखों को। जितेन्द्रियता हमें बलयुक्त करती है, निर्द्वेषता जीवन को सुखी बनाती है। ये जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता हमें वासना विनाश के द्वारा संग्राम में विजयी बनाती हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्वगूर्ताः वावृधन्त

ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी॥ ४॥

(१) **नराम्**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्यों में **ग्नाः च**=स्त्रियाँ और **यत्**=जो **नरः च**=मनुष्य **स्वगूर्ताः**=स्वयं उद्योगवाले होते हुए **वावृधन्त**=वृद्धि को प्राप्त होते हैं अथवा स्तुति शब्दों से प्रभु का वर्धन करते हैं तो ये **विश्वे**=सब **देवासः**=देव बन जाते हैं। देव का लक्षण यही है कि स्वयं पुरुषार्थी बने और प्रभु का स्मरण करे। (२) हे **इन्द्रावरुणा**=जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावो! **एभ्यः**=इन देववृत्तिवाले पुरुषों के लिये **महित्वा**=अपनी महिमा से **प्रभूतम्**=प्रकृष्ट प्रभाव (सामर्थ्य) को पैदा करनेवाले होवो। **द्यौः च**=और द्युलोक तथा **पृथिवि**=हे पृथिवि! आप भी इन देव वृत्तिवाले पुरुषों के लिये **उर्वी**=विशाल (भूतम्=) होवो। इनका मस्तिष्क रूप द्युलोक दीप्त हो, इनका शरीररूप पृथिवीलोक दृढ़ हो।

भावार्थ—स्वयं पुरुषार्थ में प्रवृत्त हुए-हुए प्रभु स्तवन करनेवाले व्यक्ति देव बनते हैं। इनके लिये जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता सामर्थ्य को देनेवाली होती हैं। ये दीप्त मस्तिष्कवाले व दृढ़ शरीरवाले बनते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सुदानुः-स्ववान्-दास्वान्

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन्।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद्रयिं रयिवतश्च जनान्॥ ५॥

(१) हे **इन्द्रावरुण**=इन्द्र और वरुण देवो! **यः**=जो **त्मन्**=स्वयं अपने को **वां दाशति**=आपके प्रति दे डालता है, अर्थात् जो जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का उपासक बनता है, **सः**=वह **इत्**=निश्चय

से **सुदानुः**=शोभन दानवाला व अच्छी प्रकार शत्रुओं को काटनेवाला (दाप् लवने) होता है। यह **स्ववान्**=आत्मशक्तिवाला तथा **ऋतावा**=ऋत व यज्ञों का रक्षण करनेवाला होता है। (२) **सः**=यह **इषा**=प्रभु प्रेरणा के द्वारा **द्विषः तरेत्**=द्वेष की भावनाओं को तैर जाता है। **दास्वान्**=दानशील होता है। **रयिं वंसत**=धन को प्राप्त करता है **च**=तथा **रयिवतः**=ऐश्वर्यशाली **जनान्**=पुत्रों को प्राप्त करता है।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का उपासक शोभनदानशील, उत्तम धनवाला व ऐश्वर्यशाली पुत्रोंवाला होता है। यह प्रभु प्रेरणा को सुनता हुआ वासनारूप शत्रुओं को तैर जाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वसुमान्-पुरुक्षु' रयि

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥ ६ ॥

(१) हे **इन्द्रावरुणौ**=इन्द्र और वरुण! **युवम्**=आप **दाश्वध्वराय**=दत्तहविष्क पुरुष के लिये, यज्ञशील पुरुष के लिये **यम्**=जिस **वसुमन्तम्**=प्रशस्त वसुओंवाले, उत्तम निवास के तत्त्वों को प्राप्त करानेवाले, **पुरुक्षुम्**=पूर्ण यश को देनेवाले **रयिम्**=धन को **धत्थः**=प्राप्त कराते हो। **स**=वह धन **अस्मे**=हमारे लिये **अपि स्यात्**=भी हो। हम भी जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के द्वारा 'वसुमान् पुरुक्षु' रयि को प्राप्त करें। (२) हम उस धन को प्राप्त करें **यः**=जो कि **वनुषाम्**=हिंसकों की **अशस्तीः**=अशुभ क्रियाओं को **प्रभनक्ति**=नष्ट करता है। जिस धन के द्वारा हम हिंसात्मक अशुभ कर्मों में न प्रवृत्त हों, वही धन हमें मिले।

भावार्थ—हम जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का साधन करते हुए उस धन को प्राप्त करें जो (क) हमारे निवास को उत्तम बनाये, (ख) पूर्ण यश का कारण बने, (ग) हिंसात्मक अशुभ कर्मों से हमें दूर रखे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'सुत्रात्र देवगोपा' रयि

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात्।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥ ७ ॥

(१) **उत**=और **नः**=हम **सूरिभ्यः**=ज्ञानी स्तोताओं के लिये, हे **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण! **रयिः स्यात्**=वह धन प्राप्त हो, जो **सुत्रात्रः**=अच्छी प्रकार हमारा रक्षण करनेवाला हो तथा **देवगोपाः**=हमारे जीवनों में देवों का, दिव्य भावों का रक्षक हो। (२) इस धन को पाकर हम ऐसे बनें **येषाम्**=जिनका कि **शुष्मः**=शत्रुशोषक बल **पृतनासु**=संग्रामों में **साह्वान्**=शत्रुओं का पराभव करनेवाला हो तथा **ततुरिः**=शत्रुओं का संहार करनेवाला होता हुआ **सद्यः**=शीघ्र ही **द्युम्ना**=शत्रुओं के यशों को **प्रतिरते**=तैर जाता है, विनष्ट कर डालता है। जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का आराधन ही इस प्रकार के धन को हमारे लिये प्राप्त कराता है।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता की उपासना हमें वह धन प्राप्त कराती है, (१) जो हमारा रक्षण करता है, (२) हमारे में दिव्य भावों का वर्धन करता है। (३) हमें शत्रुओं को पराभूत करने में समर्थ करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

आपो न नावादुरिता तरेम

नू नं इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं र॒यिं सौश्रवसाय देवा।
इ॒त्था गृ॒णन्तो॑ म॒हिन॑स्य॒ शर्धो॒ऽपो न ना॒वा दु॑रि॒ता त॑रेम॥ ८॥

(१) **नू**=अब **गृणाना**=स्तुति किये जाते हुए **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण, जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव **नः**=हमारे लिये **रयिम्**=धन को **पृङ्क्तम्**=देनेवाले हो। **देवौ**=प्रकाशमय इन्द्र और वरुण हमारे **सौश्रवसाय**=उत्कृष्ट ज्ञान के लिये हो। (२) **इत्था**=इस प्रकार **महिनस्य**=उस महान् महिमावाले प्रभु के **शर्धः**=बल का **गृणन्तः**=स्तवन करते हैं हम **दुरिता तरेम**=दुरितों को इस प्रकार तैर जायें, **न**=जैसे कि **नावा आपः**=नौका से जलों को तैर जाते हैं।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता का आराधन हमारे ऐश्वर्य व ज्ञान का साधक हो। उस महान् प्रभु के सामर्थ्य का स्तवन करते हुए हम पापों से पार हो जायें। निष्पाप जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सम्राट् वरुण का स्तवन

प्र स॒म्राजे॑ बृ॒हते॒ मन्म॒ नु प्रि॒यमर्च॑ दे॒वाय॒ वरु॑णाय स॒प्रथः॑।
अ॒यं य उ॒र्वी म॑हि॒ना महि॑व्रतः॒ क्रत्वा॑ विभा॒त्य॒जरो॒ न शो॒चिषा॑॥ ९॥

(१) **सम्राजे**=सम्यग् देदीप्यमान **बृहते**=वृद्धि को प्राप्त हुए **देवाय**=दिव्यस्वरूप **वरुणाय**=वरुण के लिये **सप्रथः**=(सर्वतः पृथु) सब दृष्टिकोणों से विशाल **प्रियम्**=प्रीतिजनक **मन्म**=स्तोत्र का **नु**=अब **प्र अर्च**=प्रकर्षेण उच्चारण कर। सब संसार को नियम के बन्धन में बाँधनेवाले प्रभु का स्तवन कर। ये प्रभु सब गुणों के दृष्टिकोण से बढ़े हैं, सम्राट् हैं, बृहत् हैं, देव हैं। (२) **अयं यः**=जो वरुण हैं, **महिव्रतः**=महान् व्रतोंवाले हैं, **न (च)**=और **महिना**=अपनी महिमा से **अजरः**=कभी न जीर्ण होनेवाले हैं। ये वरुण **उर्वी**=इन विशाल द्यावापृथिवी को **क्रत्वा**=शक्ति से तथा **शोचिषा**=दीप्ति से **विभाति**=विभासित करते हैं। हमारे मस्तिष्करूप द्युलोकों को दीप्तिमय बनाते हैं और शरीर रूप पृथिवीलोक को शक्ति-सम्पन्न करते हैं।

भावार्थ—हम सम्राट् वरुण का स्तवन करें। हमारे लिये ये दीप्ति मस्तिष्क व शक्ति सम्पन्न शरीर को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

स्व-सरं अध्वरं प्रति

इन्द्रा॑वरुणा सुतपावि॒मं सु॒तं सोमं॑ पिबतं॒ मद्यं॑ धृतव्रता।
यु॒वो रथो॑ अध्व॒रं दे॒ववी॑तये॒ प्रति॒ स्वस॑रमुप॑ याति पी॒तये॑॥ १०॥

(१) हे **सुतपौ**=उत्पन्न सोम का रक्षण करनेवाले **धृतव्रता**=व्रतों का धारण करनेवाले **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण, जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावो! आप **इमम्**=इस **सुतम्**=उत्पन्न हुए-हुए **मद्यम्**=मद व उल्लास के जनक **सोमम्**=सोम को **पिबतम्**=पीनेवाले होवो, शरीर में ही इसे व्याप्त करनेवाले होवो। वस्तुतः जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव हमें व्रतमय जीवनवाला बनाते हैं। ऐसे जीवन में ही सोम के रक्षण का सम्भव होता है। (२) हे इन्द्र और वरुण! **युवोः रथः**=आपका यह शरीररूप रथ **स्वसरम्**=(स्व-गृह) आत्मलोक की ओर ले जानेवाले **अध्वरं**

प्रति=जीवनयज्ञ की ओर **उपयाति**=प्राप्त होता है और इस प्रकार यह **देववीतये**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये होता है और **पीतये**=शरीर में सोम के रक्षण के लिये होता है।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के धारण करने पर हम आत्मतत्त्व की प्राप्ति के मार्ग पर चलते हैं। दिव्य गुणों को प्राप्त करते हैं और शरीर में सोम को सुरक्षित कर पाते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण व आनन्द प्राप्ति

इन्द्रा॑वरुणा॒ मधु॑मत्तमस्य॒ वृष्णः॒ सोम॑स्य वृष॒णा वृ॑षेथाम्।
इ॒दं वा॒मन्धः॒ परि॑षिक्तम॒स्मे आ॒सद्या॒स्मिन्ब॒र्हिषि॑ मादयेथाम्॥ ११ ॥

(१) हे **वरुणा**=शक्तिशाली **इन्द्रावरुणा**=इन्द्र और वरुण, जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भावो! आप **मधुमत्तमस्य**=हमारे जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाले **वृष्णः**=शक्तिशाली **सोमस्य**=सोम का, वीर्यशक्ति का **वृषणा**=सोम शक्ति के द्वारा **आवृषेथाम्**=शरीर में ही चारों ओर सेचन करो। यही आपका सोमभक्षण है। (२) **इदम्**=यह **वाम्**=आपके द्वारा **अस्मे**=हमारे लिये **अन्धः**=आध्यातव्य सोम **परिषिक्तम्**=शरीर में चारों ओर सिक्त हुआ है। **अस्मिन्**=इस **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **आसद्य**=आसीन होकर हे इन्द्र और वरुण! **मादयेथाम्**=आप हमारे जीवनों को आनन्दयुक्त करो।

भावार्थ—जितेन्द्रियता व निर्द्वेषता के भाव हमारे जीवनों में सोमरक्षण के द्वारा आनन्द के जनक होते हैं।

अगले सूक्त के देवता 'इन्द्राविष्णू' हैं। 'इन्द्र' बल का प्रतीक है और 'विष्णु' व्यापकता व धारण का। हम बल को प्राप्त करते उदार वृत्तिवाले बनें और बल के द्वारा सभी का धारण करनेवाले बनें—

[६९] एकोनसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

शक्ति व उदारता

सं वां॒ कर्म॑णा॒ समि॒षा हि॑नो॒मीन्द्रा॑विष्णू॒ अप॑सस्पा॒रे अ॒स्य।
जु॒षेथां॑ य॒ज्ञं द्रवि॑णं च धत्त॒मरि॑ष्टैर्नः प॒थिभिः॒ पा॒रय॑न्ता॥ १ ॥

(१) हे **इन्द्राविष्णू**=इन्द्र और विष्णु, जितेन्द्रियता द्वारा शक्ति की प्राप्ति की भावना तथा उदारता द्वारा सब के धारण की भावना! **वाम्**=आप दोनों को मैं **कर्मणा**=कर्म के हेतु से **संहिनोमि**=अपने अन्दर सम्यक् रूप से प्रेरित करता हूँ। **इषा**=प्रभु प्रेरणा की प्राप्ति के हेतु से **सं** (हिनोमि)=अपने अन्दर प्रेरित करता हूँ। इन्द्रत्व व विष्णुत्व को धारण करनेवाला अवश्य हृदयस्थ प्रभु की प्रेरणा को सुनता है। आप दोनों हमें **अस्य अपसः**=इस हमारे कर्त्तव्यभूत कर्म के **पारे**=पार प्राप्त कराओ। आपके द्वारा हम कर्त्तव्य कर्म को निर्विघ्नता से पूर्ण कर पायें। (२) हे इन्द्र और विष्णु! आप **यज्ञं जुषेथाम्**=यज्ञात्मक कर्मों का प्रीतिपूर्वक सेचन करिये। **च**=और **द्रविणं धत्तम्**=ऐश्वर्य का हमारे लिये धारण करिये तथा **नः**=हमें **अरिष्टैः**=अहिंसित **पथिभिः**=मार्गों से ले चलते हुए **पारयन्ता**=जीवनयात्रा के पार ले चलनेवाले होइये। आपके अनुग्रह से हमारी जीवनयात्रा निर्विघ्न पूर्ण हो।

भावार्थ—हम शक्ति व उदारता को धारण करते हुए उत्तम कर्मों में लगे रहें, प्रभु प्रेरणा को सुन पायें तथा शुभ मार्गों से चलते हुए जीवनयात्रा को सफलता से पूर्ण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मतीनां जनितारा

या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ २ ॥

(१) **या**=जो **इन्द्राविष्णू**=इन्द्र और विष्णु, शक्ति व उदारता के देव, **विश्वासां मतीनाम्**=सब उत्तम बुद्धियों के **जनितारा**=जन्म देनेवाले हैं, वे सोमधाना **कलशा**=सोम के रक्षण के आधारभूत कलश (=घड़े) ही हैं। इन इन्द्र और विष्णु के द्वारा सोम का शरीर में ही रक्षण होता है। (२) **वाम्**=आपको **शस्यमानाः**=उच्चारण की जाती हुई **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ **प्र अवन्तु**=प्रकर्षेण प्राप्त हों। **अर्कैः**=स्तोताओं से **गीयमानासः**=गाये जाते हुए **स्तोमासः**=स्तुति समूह **प्र** (अवन्तु)=प्राप्त हों। अर्थात् इन्द्र और विष्णु का उपासक ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करनेवाला हो और स्तुति की वृत्तिवाला बने।

भावार्थ—'शक्ति और उदारता' की उपासना (क) हमारी बुद्धियों को विकसित करती है, (ख) यह शरीर में सोमरक्षण का साधन बनती है, (ग) ज्ञान को बढ़ाती है, (घ) स्तुति की वृत्ति को उत्पन्न करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मदपती मदानाम् (इन्द्राविष्णू)

इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥ ३ ॥

(१) **इन्द्राविष्णू**=इन्द्र और **विष्णु**=शक्ति व उदारता के भाव, **मदानां मदपती**=उल्लास के जनक सोमकणों के सर्वोत्तम रक्षक हैं। ये इन्द्र और विष्णु **सोमं आयातम्**=सोम को आभिमुख्येन प्राप्त हों, अर्थात् सोम का हमारे अन्दर रक्षण करें। **उ**=और **द्रविणा दधाना**=सब ऐश्वर्यों का हमारे अन्दर धारण करें। सुरक्षित सोम ही सब ऐश्वर्यों का साधन बनता है। (२) उपासक लोग **मतीनां अक्तुभिः**=बुद्धियों के प्रकाश के हेतु से **वाम्**=आप दोनों को **सं अञ्जन्तु**=सम्यक् प्राप्त हों (अञ्ज् गतौ)। इन्द्र और विष्णु की उपासना बुद्धियों को विकसित करती ही है। **उक्थैः**=स्तोत्रों के साथ **शस्यमानासः**=उच्चारण की जाती हुईं **स्तोमासः**=स्तुतियाँ **सं** (अञ्जन्तु)=आपको प्राप्त हों। अर्थात् आपका उपासक स्तुति की वृत्तिवाला बने।

भावार्थ—शक्ति व उदारता की उपासना (क) उल्लास को पैदा करती है, (ख) सोम का रक्षण करती है, (ग) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराती है, (घ) हमें ज्ञान की रुचिवाला बनाती है, (ङ) स्तुति की ओर झुकाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अभिमातिषाहः, सधमदः' अश्वासः

आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥ ४ ॥

(१) हे इन्द्राविष्णू=इन्द्र और विष्णु, शक्ति व उदारता के दिव्य भावो! **वाम्**=आप **अश्वासः**=हमारे ये इन्द्रियाश्व **आवहन्तु**=हमारे लिये प्राप्त करायें। जो इन्द्रियाश्व **अभिमातिषाहः**=अभिमान आदि शत्रुओं को कुचलनेवाले हैं तथा **सदमादः**=परस्पर मिलकर प्रीतिपूर्वक कार्यों को करनेवाले हैं। ज्ञानेन्द्रियों से दिये गये ज्ञान के अनुसार कर्मेन्द्रियों के कर्म चलते हैं तो ये इन्द्रियाश्व हमारे लिये शक्ति व उदारता आदि दिव्य भावों को प्राप्त करानेवाले होते हैं। (२) हे इन्द्र और विष्णु! आप **मतीनाम्**=मननपूर्वक स्तुति करनेवालों के **विश्वा हवना**=सब पुकारों को **जुषेथाम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करो। अर्थात् ये शक्ति व उदारता के उपासक लोग सदा मननपूर्वक प्रभु की प्रार्थना करनेवाले हों और **मे**=मेरी **गिरः**=ज्ञान की वाणियों को तथा **ब्रह्माणि**=मेरे से उच्चरित इन सत्यवाणियों को (ब्रह्मन्=truth) **उपशृणुतम्**=सुनो। इन्द्र और विष्णु का उपासक सदा ज्ञानप्रवण व सत्य वक्ता होता है।

भावार्थ—शक्ति व उदारता की आराधना, इनका धारण, हमारी इन्द्रियों को शत्रुओं से अनाक्रान्त बनाता है। यह आराधना हमें प्रार्थनामय, ज्ञानप्रणव व सत्य वक्ता बनाती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राविष्णू**॥ छन्दः—**ब्राह्मयुष्णिक्**॥ स्वरः—**ऋषभः**॥

'शक्ति व उदारता' की उपासना का लाभ

इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि॥ ५॥

(१) हे **इन्द्राविष्णू**=इन्द्र और विष्णु, शक्ति व उदारता के भावो! **वाम्**=आपका **तत्**=वह कर्म **पनयाय्यम्**=स्तुति के योग्य है कि **सोमस्य मदे**=सोम के मद में, सोमरक्षण से जनित उल्लास में आप **उरु चक्रमाथे**=विशाल पराक्रम को करते हो। आप इन्द्रियों, मन व बुद्धि तीनों को ही बड़ा सुन्दर बनाते हो। (२) आप **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को **वरीयः**=विशालतर-खूब विशाल **अकृणुतम्**=करते हो और **नः**=हमारे **जीवसे**=उत्कृष्ट जीवन के लिये **रजांसि**=सब लोकों को **अप्रथतम्**=खूब विस्तृत कर देते हो। अर्थात् सब अंग-प्रत्यंगों को विकसित शक्तिवाला बनाते हो।

भावार्थ—शक्ति व उदारता की आराधना सोमरक्षण द्वारा विशाल पराक्रम की जनक होती है। इससे हृदय विशाल बनता है, तथा सब अंग-प्रत्यंग विकसित शक्तिवाले होते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः**॥ देवता—**इन्द्राविष्णू**॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

अग्राद्वाना

इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः॥ ६॥

(१) **इन्द्राविष्णू**=शक्ति व उदारता के दिव्य भावो! **हविषा**=त्यागपूर्वक अदन के द्वारा **वावृधाना**=हमारे अन्दर आप निरन्तर बढ़ते हो। त्यागपूर्वक अदन से 'शक्ति व उदारता' की वृद्धि होती है **अग्राद्वाना**=ये इन्द्र और विष्णु भोजनों से उत्पन्न सर्वाग्रणी (=सर्वश्रेष्ठ) सोम के भक्षण करनेवाले होते हैं, सोम का ये शरीर में ही रक्षण करते हैं। **नमसा रातहव्या**=नमन के साथ ये हवि के देनेवाले हैं। अर्थात् हमें ये नम्रता व यज्ञशीलता को प्राप्त कराते हैं। (२) **घृतासुती**=तेज व दीप्ति को हमारे में ये उत्पन्न करनेवाले हैं। **अस्मे**=हमारे लिये हे इन्द्राविष्णू! **द्रविणं धत्तम्**=धन

को धारण कीजिये। आप **समुद्रः स्थः**=समुद्र की तरह होते हो। आप **सोमधानः कलशः**=सोम के आधारभूत कलश ही हो, अर्थात् आपके द्वारा इस शरीर कलश में सोम का रक्षण होता है।

भावार्थ—शक्ति व उदारता के भावों की उपासना हमें 'त्याग, नम्रता, यज्ञशीलता' को प्राप्त कराती है और हमारे लिये उत्तम धनों का धारण करती है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'इन्द्राविष्णू' का सोमपान

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

(१) **इन्द्राविष्णू**=हे शक्ति व उदारता के भावो! **अस्य**=इस **मध्वः**=जीवन को मधुर बनानेवाले **सोमस्य**=सोम का **पिबतम्**=पान करो, शरीर में सोम को सुरक्षित करो। हे **दस्रा**=सोमरक्षण द्वारा सब दुःखों का उपक्षय करनेवाले इन्द्र और विष्णु! आप सोम के द्वारा **जठरम्**=जठर को, उदर को **पृणेथाम्**=पूरित करो। शरीर को सुरक्षित सोम से भरनेवाले होवो। (२) **वाम्**=आपको **मदिराणि**=आनन्द व उल्लास को देनेवाले **अन्धांसि**=आध्यातव्य सोम **आ अग्मन्**=प्राप्त हों। हे इन्द्राविष्णू! आप **मे**=मेरे **ब्रह्माणि**=स्तोत्रों को तथा **हवम्**=पुकार को **उपशृणुतम्**=समीपता से सुननेवाले होइये। अर्थात् मैं स्तवन व प्रार्थना की वृत्तिवाला बनूँ।

भावार्थ—शक्ति व उदारता की उपासना हमें सोमरक्षण के योग्य बनाये। यह हमारे अन्दर स्तुति व प्रार्थना की वृत्ति को पैदा करे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

(त्रेधा सहस्रं) इन्द्र और विष्णु का विजय

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ ८ ॥

(१) **उभा**=इन्द्र और विष्णु दोनों, शक्ति व उदारता के भाव दोनों ही **जिग्यथुः**=विजय को प्राप्त होते हैं **न पराजयेथे**=ये पराजित नहीं होते। **एनोः**=इन दोनों में से **कतरः चन**=कोई भी एक **पराजिग्ये**=पराजित नहीं होता। (२) **इन्द्रः च विष्णो**=इन्द्र और हे विष्णो! आप दोनों **यत्**=जब **अपस्पृधेथाम्**=संघर्ष में असुरों का मुकाविला करते हो तो **तत्**=उस **त्रेधा**=तीन प्रकार से स्थित-लोक वेद वाग् आत्मा के रूप से विद्यमान **सहस्रम्**=(अमितं) अनन्त ऐश्वर्य को अपने में **वि ऐरयेथाम्**=प्रेरित करते हो। ये इन्द्र और विष्णु-शक्ति व उदारता के भाव हमारे अंगों (लोक) को ठीक रखते हैं, हमारे ज्ञान को बढ़ाते हैं (वेद) हमारी वाणी को परिष्कृत करते हैं (वाग्)।

भावार्थ—जब हम शक्ति व उदारता के भाव का आराधन करते हैं तो विजय ही विजय को प्राप्त करते हैं, कभी पराजित नहीं होते। हमारे 'अंग ज्ञान व वाणी' सब बड़े ठीक विकासवाले होते हैं।

अगले सूक्त में 'द्यावापृथिव्यौ' देवता हैं—

[७०] सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

'घृतवती मधुदुघे' द्यावापृथिवी

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ १ ॥

(१) **द्यावापृथिवी**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **घृतवती**=दीप्तिवाले हैं। **भुवनानाम्**=सब प्राणियों के **अभिश्रिया**=आश्रयणीय होते हैं। **उर्वी**=ये विशाल हैं, **पृथ्वी**=अपने कार्यों से प्रथित=विस्तृत व फैले हुए हैं। **मधुदुघे**=ये माधुर्य का दोहन (पूरण) करनेवाले हैं। **सुपेशसा**=उत्तम आकृतिवाले हैं। (२) ये द्यावापृथिवी **वरुणस्य**=उस प्रचेता-प्रकृष्ट ज्ञानवाले प्रभु की **धर्मणा**=धारक शक्ति से **विष्कभिते**=थामे गये हैं। **अजरे**=कभी जीर्ण होनेवाले नहीं तथा **भूरिरेतसा**=बहुत शक्तिवाले हैं। द्यावापृथिवी की अनुकूलता से हमारा शरीर व मस्तिष्क सभी शक्ति-सम्पन्न बनते हैं।

भावार्थ—द्यावापृथिवी की अनुकूलता हमें दीप्ति व शक्ति प्राप्त कराती है। ये हमारे जीवन में माधुर्य का दोहन करते हैं।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

हितकर शक्ति का संचार

असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

(१) **असश्चन्ती**=परस्पर सक्त न होते हुए (असज्यमाने), एक-दूसरे से दूर विद्यमान, **भूरिधारे**=खूब ही धारण शक्ति से युक्त **पयस्वती**=आप्यायन व वर्धन के तत्त्वोंवाले, **शुचिव्रते**=पवित्र व्रतोंवाले ये द्यावापृथिवी **सुकृते**=शुभ कर्म करनेवाले के लिये **घृतं दुहाते**=मलों के क्षरण व दीप्ति को प्रपूरित करते हैं। (२) **अस्य**=इस **भुवनस्य**=भुवन का **राजन्ती**=शासन करते हुए **रोदसी**=ये द्यावापृथिवी **अस्मे**=हमारे लिये **रेतः**=उस शक्ति का **सिञ्चतम्**=सेचन करें, **यत्**=जो शक्ति **मनुर्हितम्**=विचारशील पुरुष के लिये हितकर है।

भावार्थ—द्यावापृथिवी हमारे जीवन में उस शक्ति का संचार करते हैं, जो हमारे लिये हितकर होती है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

ऋजुक्रमण व सत् सन्तान

यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥ ३ ॥

(१) हे **धिषणे**=धारण करनेवाले **रोदसी**=द्यावापृथिवी **यः**=जो **मर्तः**=मनुष्य **ऋजवे क्रमणाय**=ऋजु (सरल) मार्ग से गति के लिये **वां ददाश**=आपके प्रति अपना अर्पण करता है, **स साधति**=वह अपनी कामनाओं को सिद्ध कर पाता है। द्यावापृथिवी के प्रति अपने को दे डालने का भाव यही है कि मस्तिष्क (द्यावा) व शरीर (पृथिवी) का पूरा ध्यान करना। सरल मार्ग से चलता हुआ पुरुष मस्तिष्क व शरीर दोनों को स्वस्थ रख पाता है। इनका स्वास्थ्य उसकी सब

कामनाओं को पूर्ण करता है। (२) यह व्यक्ति **धर्मणः परि**=धर्मपूर्वक **प्रजाभिः प्रजायते**=पुत्र-पौत्र आदि से फलता-फूलता है। हे द्यावापृथिवी! **युवोः**=तुम्हारे द्वारा **विषुरूपाणि**=विशिष्ट उत्तम रूपवाले **सव्रता**=आपके समान व्रतोंवाले सन्तान **सिक्ता**=सिक्त होते हैं। 'द्यौरहं पृथिवी त्वं' इस वर से उच्चारण किये जानेवाले वाक्य में 'द्यौः' पिता है, 'पृथिवी' माता है। ये विशिष्ट उत्तम रूपवाले, उत्तम व्रती सन्तान को जन्म देते हैं।

भावार्थ—द्यावापृथिवी के प्रति अपने को दे डालने का भाव यह है कि हम मस्तिष्क व शरीर का पूरा ध्यान करें। ऐसा होने पर हम सदा ऋजुमार्ग से चलते हैं और पुत्र-पौत्रों से फलते हुए सदा सव्रत सन्तानों को ही प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'घृतश्रिया घृतपृचा' द्यावापृथिवी

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये॥ ४॥

(१) **द्यावापृथिवी**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **घृतेन**=उदक से व दीप्ति से **अभीवृते**=आवृत हैं। **घृतश्रिया**=उदक व दीप्ति से आश्रयणीय हैं। **घृतपृचा**=उदक व दीप्ति के सम्पर्कवाले हैं। **घृतावृधा**=हमारे जीवनों में भी रेतःकणरूप जलों को व दीप्ति को बढ़ानेवाले हैं। (२) **उर्वी**=विस्तृत हैं, **पृथ्वी**=प्रथित हैं, अपने कर्मों से सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। **होतृवूर्ये**=होताओं का जिनमें वरण होता है, उन यज्ञों में **पुरोहिते**=ये द्यावापृथिवी पुरस्कृत होते हैं, 'द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा' इन शब्दों से ये यज्ञों को प्रारम्भ करते हैं। **विप्राः**=ज्ञानी पुरुष **ते इत्**=इन द्यावापृथिवी से ही **इष्टये**=यज्ञों के लिये **सुम्नम्**=सुख को **ईडते**=याचित करते हैं। वस्तुतः मस्तिष्क (द्यावा) व शरीर (पृथिवी) का सुख होने पर ही यज्ञ प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ—ये द्यावापृथिवी उदक व दीप्ति से आवृत हैं। ये ही हमारे जीवनों में रेतःकण रूप उदक के द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाते हैं और ज्ञानदीप्ति से मस्तिष्क को उज्ज्वल करते हैं। ये हमें सुखी करके यज्ञों में समर्थ करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'माधुर्य के सेचक' द्यावापृथिवी

मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम्॥ ५॥

(१) **द्यावापृथिवी**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **नः**=हमारे लिये **मधु**=माधुर्य को **मिमिक्षताम्**=सिक्त करें। **मधुश्चुता**=ये माधुर्य को क्षरित करनेवाले हैं, **मधुदुघे**=माधुर्य का हमारे में दोहन (पूरण) करनेवाले हैं। **मधुव्रते**=माधुर्ययुक्त कर्मोंवाले हैं। द्युलोक वृष्टि जल के द्वारा माधुर्य का वर्षण करता है तथा पृथिवीलोक उत्तम अन्न के द्वारा माधुर्य को प्राप्त कराता है। (२) ये द्यावापृथिवी हमारे जीवनों में **यज्ञम्**=यज्ञ को, **च**=और **द्रविणम्**=धन को **दधाने**=धारण करते हैं। **देवता**=देवतारूप ये द्यावापृथिवी **अस्मे**=हमारे लिये **महि श्रवः**=महनीय ज्ञान को **वाजम्**=बल को तथा **सुवीर्यम्**=उत्तम वीर्य को धारण करें।

भावार्थ—द्यावापृथिवी माधुर्य को क्षरित करनेवाले हैं। ये हमारे लिये 'यज्ञ, द्रविण, ज्ञान,

बल व वीर्य' का धारण करें।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

'ऊर्ज्, सनि, वाज, रयि' के दाता द्यावापृथिवी

ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम्॥ ६॥

(१) वृष्टि जल के सेचन के कारण द्युलोक पिता के समान है। उस जल का धारण करने के कारण पृथिवी माता है। **नः**=हमारे लिये **पिता**=पितृ तुल्य **द्यौः च**=यह द्युलोक तथा **माता पृथिवी च**=मातृ तुल्य यह पृथिवीलोक **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को देनेवाले अन्न को **पिन्वताम्**=प्राप्त करायें। ये माता-पिता ही **विश्वविदा**=सब आवश्यक चीजों को प्राप्त करानेवाले हैं (विद् लाभे) तथा **सुदंससा**=उत्तम कर्मोंवाले हैं। (२) **संरराणे**=उपकार्योपकारक भाव से साथ-साथ रममाण होते हुए **रोदसी**=ये द्यावापृथिवी **विश्वशम्भुवा**=सब शान्तियों को देनेवाले हैं, सब त्रिविध दुःखों को दूर करनेवाले हैं। ये **अस्मे**=हमारे लिये **सनिम्**=सम्भजनीय पुत्रादि को, **वाजम्**=बल को और **रयिम्**=ऐश्वर्य को **समिन्वताम्**=प्रेरित करें।

भावार्थ—द्यावापृथिवी हमारे माता-पिता हैं। ये हमें 'ऊर्ज्, वाज, रयि व सनि' को प्राप्त करायें। पौष्टिक अन्न, बल, धन व सम्भजनीय पुत्र को दें।

अगले सूक्त में 'सविता' (सूर्य) देवता है—

[७१] एकसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सूर्य की हितरमणीय भुजाएँ

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि॥ १॥

(१) **स्यः**=वह **देवः**=प्रकाशमय **सविता**=सर्वत्र प्राणशक्ति को जन्म देनेवाला सूर्य **उ**=निश्चय से **हिरण्यया बाहू**=अपनी हित रमणीय भुजाओं को **उद् अयंस्त**=ऊपर थामता है, उदित करता है। यह **सुक्रतुः**=उत्तम शक्तिवाला सूर्य **सवनाय**=यज्ञों के लिये हमें प्रेरित करता है। (२) यह सूर्य **पाणी**=अपने किरणरूप हाथों को **घृतेन**=उदक से **अभि प्रुष्णुते**=सिक्त करता है। जल को किरणों के द्वारा वाष्परूप में ऊपर सूर्य ही तो ले जाता है और फिर यह सूर्य ही इन जलों को बरसाता है। **मखः**=यह यज्ञशील है, सूर्योदय के होने पर ही सब यज्ञों का उपक्रम होता है। **युवा**=नित्यतरुण है, यह सूर्य अपनी किरणों से मलों का दहन करता हुआ हमारे अन्दर शक्ति का संचार करता है 'यु मिश्रणामिश्रणयोः' **सुदक्षः**=उत्तम बुद्धि का यह कारण है। **राजसः विधर्मणि**=यह सूर्य उदक के धारण में स्थित है। हमारे शरीरों के अन्दर रेतःकण रूप जलों की ऊर्ध्वगति का ये प्रातः सूर्य की किरणें कारण बनती हैं।

भावार्थ—सूर्य उदय होता है, यज्ञों की प्रेरणा देता है, हमारी वृद्धि का कारण बनता है, शरीर में रेतःकणरूप जलों की ऊर्ध्वगति व धारण का हेतु बनता है।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

सविता देव की प्रेरणा में 'दानशीलता'

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥ २ ॥

(१) **वयम्**=हम **सवितुः**=उस सर्वोत्पादक व सर्वप्रेरक **देवस्य**=प्रकाशमय सर्वदाता प्रभु की **सवीमनि**=प्रेरणा में **वसुनः**=धन के **श्रेष्ठे दावने**=उत्तम दान में **स्याम**=हों। प्रभु की प्रेरणा को प्राप्त करके हम सदा धनों का दान करनेवाले हों। (२) उस प्रभु की प्रेरणा में हम दान दें **यः**=जो **विश्वस्य**=सब **द्विपदः**=दो पाँववाले मनुष्यों और **भूमनः**=बहुत प्रकार के **चतुष्पदः**=इन पशुओं के **निवेशने**=स्थापन व धारण में **च**=तथा **प्रसवे**=उत्पादन में **असि**=स्थित हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब दो पाँववालों व चार पाँववालों को उत्पन्न करते हैं व धारण करते हैं। इस प्रभु की उत्तम प्रेरणा में हम सदा दान देनेवाले हों।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—निचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

प्रभु का 'अदब्ध शिव' रक्षण

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ३ ॥

(१) हे **सवितः**=सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभो! (प्रकृति के दृष्टिकोण से सर्वोत्पादक, जीव के दृष्टिकोण से सर्वप्रेरक) **त्वम्**=आप **अदब्धेभिः**=अहिंसित **शिवेभिः**=कल्याण करनेवाले **पायुभिः**=रक्षणों से **अद्य**=आज **नः**=हमारे **गयम्**=शरीररूप गृह को **परिपाहि**=सर्वतः सुरक्षित करिये। (२) **हिरण्यजिह्वः**=हितरमणीय जिह्वावाले आप **नव्यसे**=नवतर, अत्यन्त स्तुत्य **सुविताय**=सुवित के लिये, दुरित को दूर करने के लिये **रक्षा**=हमारा रक्षण करिये। **अघशंसः**=बुराई का शंसन करनेवाला **नः**=हमारा **माकिः**=मत **ईशत**=ईश बने। हम अघशंस के वशीभूत न हो जाएँ।

भावार्थ—प्रभु के अहिंसित शिव रक्षण हमें प्राप्त हों। प्रभु की हितरमणीय प्रेरणा हमें प्राप्त हो। हम बुराइयों का शंसन करनेवालों के दबाव में न आ जाएँ।

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

'हिरण्यपाणि अयोहनु' सूर्य

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥ ४ ॥

(१) **स्यः**=वह **देवः सविता**=प्रकाशमय सूर्य **प्रतिदोषम्**=प्रत्येक रात्रि की समाप्ति पर **उत् उ अस्थात्**=उदय होता ही है। यह सूर्य **दमूनाः**=दान के मनवाला होता है, हमारे लिये प्रकाश व प्राणशक्ति को देना चाहता है। **हिरण्यपाणिः**=इसके किरण रूप हाथों में स्वर्ण होता है, यह प्रातः का सूर्य अपने किरणरूप हाथों से स्वर्ण का हमारे शरीर में प्रवेश कराता है। (२) यह **अयोहनुः**=लोहे के बने अस्त्रवाला है (हनु=weapon) अपने लोहास्त्र से सब रोगकृमियों का संहार करता है। **यजतः**=इसीलिए संगतिकरण योग्य है, हम सूर्य के सम्पर्क में आयेंगे, तो सूर्य का रोगकृमियों का संहार करेगा। **मन्द्रजिह्वः**=यह मोदमान वाणीवाला है, हमारी जिह्वा को उत्तम बनानेवाला है। **दाशुषे**=दानशील पुरुष के लिये यह **भूरि**=बहुत **वामम्**=सुन्दर धन को

आसुवति=प्रेरित करता है, प्राप्त कराता है। सूर्योदय होने पर सूर्याभिमुख होकर यज्ञ करनेवाले पुरुष को यह सूर्य स्वास्थ्य आदि सुन्दर धनों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—सूर्य अपनी किरणों से हमारे शरीर में स्वर्ण का प्रवेश करता है। यह अपने किरणरूप लोहास्त्रों से रोग कृमियों का नाश करता है, हमारी जिह्वा को उत्तम मधुर शब्द बोलनेवाली बनाता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उपवक्ता इव (एक व्याख्याता की तरह)

उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम्॥ ५॥

(१) **उपवक्ता इव**=एक अधिवक्ता (व्याख्याता) की तरह **सविता**=यह सूर्य **हिरण्यया**=हितरमणीय **सुप्रतीका**=शोभन अवयवोंवाली **बाहू**=अपनी किरणरूप भुजाओं को **उ**=निश्चय से **उद् अयान्**=उद्यत करता है। (२) यह सूर्य **पृथिव्याः**=इस पृथिवी से **दिवः रोहांसि**=द्युलोक के उच्छ्रित प्रदेशों को **अरुहत्**=आरूढ़ होता है। उदयकाल में पृथिवी पर प्रतीत होता है। अब यह आकाश में ऊपर उठता प्रतीत होता है, आकाश में आरूढ़ हो जाता है। **पतयत्**=गति करता हुआ यह सूर्य **कच्चित्**=जो कुछ **अभ्वम्**=महान् यह जगत् है उसे **अरीरमत्**=यह रमणयुक्त करता है। सूर्य के अस्त हो जाने पर सर्वत्र अन्धकार था। अब सूर्योदय के होने पर यह जगत् विशाल हो उठता है, सर्वत्र आनन्द प्रतीत होता है।

भावार्थ—एक व्याख्याता की तरह सूर्य किरण रूप भुजाओं को ऊपर उठाता है। इन किरणों के द्वारा ही वह उठने व यज्ञादि करने की प्रेरणा देता है। सारे संसार को विशाल व रमणवाला कर देता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सविता** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वामभाजः स्याम

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम॥ ६॥

(१) हे **सवितः**=सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभो! **अद्य**=आज **वामम्**=सुन्दर धन को **अस्मभ्यं सावीः**=हमारे लिये दीजिये। **उ**=और **श्वः**=कल भी, आनेवाले दिन में भी **वामम्**=सुन्दर ही धन को दीजिये। **दिवे दिवे**=प्रतिदिन हमारे लिये **वामम्**=सुन्दर धन को ही हमें दीजिये। (२) हे **देव**=सर्वप्रदातः प्रभो! आप **हि**=ही **क्षयस्य**=निवास के कारणभूत **भूरेः**=बहुत व पर्याप्त **वामस्य**=सुन्दर धन के आप दाता हैं। सो **अया धिया**=इस बुद्धिपूर्वक की गई स्तुति के द्वारा हम **वामभाजः स्याम**=सुन्दर धनों का सेवन करनेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। प्रभु हमें सदा उत्तम धनों को प्राप्त करायें।

अगले सूक्त के देवता 'इन्द्रासोमौ' है—

[७२] द्विसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्योदय तथा प्रकाश व सुख की प्राप्ति

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च॥ १॥

(१) 'इन्द्र' बल का प्रतीक है और 'सोम' सौम्यता का। हम बलवान् बनकर सौम्य बने रहें। हे **इन्द्रासोमा**=बल व सौम्यता के दिव्य भावो! **वाम्**=आपका **तत्**=वह **महि महित्वम्**=महान् महत्त्व है कि **युवम्**=आप मनुष्यों को **महानि**=महान् व **प्रथमानि**=मुख्य स्थान में स्थित **चक्रथुः**=करते हो। (२) **युवम्**=आप दोनों **सूर्यं विविदथुः**=ज्ञान सूर्य को प्राप्त कराते हो। **युवम्**=आप **स्वः**=सुख को प्राप्त कराते हो। इस प्रकार ज्ञान के द्वारा जीवन को सुखी बनाते हुए आप **विश्वा**=सब **तमांसि**=अन्धकारों को **निदः च**=और निन्दित पापों को **अहतम्**=विनष्ट करते हो। हमें ये बल व सौम्यता, पाप व अन्धकार से दूर करके ही तो सुखी करते हैं।

भावार्थ—हम सबल बनें, साथ ही सौम्य (विनीत) बनें। इस प्रकार हमारे जीवन में ज्ञान सूर्य का उदय होकर सुख व प्रकाश होगा। हम पापों व अन्धकारों से दूर होकर सुखमय जीवन बितायेंगे।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्योदय

इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि॥ २॥

(१) हे **इन्द्रासोमा**=बल व सौम्यता के दिव्य भावो! आप **उषासं वासयथः**=हमारे जीवनों के उषाकाल को उत्तमता से बिताते हो और **ज्योतिषा सह**=ज्योति के साथ **सूर्यम्**=ज्ञान सूर्य को **उत् नयथः**=उन्नत करते हो। (२) आप **द्याम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को **स्कम्भनेन**=आधारभूत स्काम से **स्कम्भथुः**=थामने हो। शरीर में बल तथा हृदय में सौम्यता ये मिलकर मस्तिष्करूप द्युलोक के स्तम्भ बनते हैं। आप ही **मातरम्**=मातृ तुल्य **पृथिवीम्**=इस पृथिवी का **वि अप्रथतम्**=विशेषरूप से विस्तार करते हो। शरीर ही पृथिवी है। इन्द्र और सोम इस पृथिवी को विस्तृत शक्तिवाला बनाते हैं।

भावार्थ—बल व सौम्यता से जीवन का उषाकाल सुन्दरता से बीतता है। जीवन में ज्ञानसूर्य का उदय होता है। मस्तिष्क व शरीर दोनों का धारण होता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समुद्र-प्रथन

इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि॥ ३॥

(१) **अपः परिष्ठाम्**=रेतःकण रूप जलों को घेरकर स्थित होनेवाली **अहिम्**=(आहन्तारं) विनाशक **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को, हे **इन्द्रासोमा**=बल व सौम्यता के भावो! आप

हथः=विनष्ट करते हो। **वाम्**=आपके **अनु**=अनुसार **द्यौः**=मस्तिष्क रूप द्युलोक **अमन्यत**=मनन करनेवाला होता है, ज्ञानदीप्ति से दीप्त होता है। (२) आप ही **नदीनाम्**=ज्ञान की नदियों के **अर्णांसि**=ज्ञान जलों को **प्रऐरयतम्**=प्रकर्षेण प्रेरित करते हो। और हमारे जीवनों में **पुरूणि**=महान् **समुद्राणि**=ज्ञान समुद्रों को आप **प्रथुः**=विस्तृत करते हो 'सरस्वती' के ज्ञानजल के प्रवाह इन्द्र सोम के द्वारा ही प्रवाहित होते हैं और ज्ञान-समुद्र का उद्भव होता है।

भावार्थ—बल व सौम्यता के भावों का आराधन (क) वासना को विनष्ट करता है, (ख) ज्ञान की वृद्धि करता है, (ग) ज्ञान जलों को प्रवाहित कर हमारे जीवनों में ज्ञान समुद्र का उद्भव क़रता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सूर्य व चन्द्र के द्वारा गौवों परिपक्व दुग्ध की स्थापना

इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥

(१) 'इन्द्र' सूर्य है तो 'सोम' चन्द्रमा। ये **इन्द्रासोमा**=सूर्य और चन्द्र **गवाम्**=गौवों के **आमासु**=अपरिपक्व **वक्षणासु अन्तः**=ऊधस् प्रदेशों में **पक्वम्**=पक्व (गर्म) दुग्ध को **इत्**=निश्चय से **निदधथुः**=धारण करते हैं। सूर्य अपनी किरणों के द्वारा दुग्ध में प्राणशक्ति की स्थापना करता है और चन्द्रमा इस दुग्ध को रसमय बनाता है। सूर्य और चन्द्र मिलकर दूध का ठीक से परिपाक करते हैं। (२) **आसु**=इन **चित्रासु**=भिन्न-भिन्न वर्णोंवाली **जगतीषु**=गौवों के **अन्तः**=अन्दर **अन पिनद्धम्**=किसी से न बाँधे गये **रुशत्**=देदीप्यमान दूध को **जगृभथुः**=धारण करते हैं। इस प्रकार धारण करते हैं कि वह दूध स्वयं पृथिवी पर टपक नहीं पड़ता। यह सब साधारण-सी बात है। परन्तु इसमें भी प्रभु की रचना का महत्त्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

भावार्थ—प्रभु ने सूर्य व चन्द्र के द्वारा गौवों के अपरिपक्व ऊधस् प्रदेशों में परिपक्व दूध की स्थापना की है। **अनपिनद्ध**=न बँधे हुए इस **ऊधस्**=में वह देदीप्यमान दुग्ध को इस प्रकार स्थापित करता है यह दूध पृथिवी पर नहीं पड़ता।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धन+बल

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥ ५ ॥

(१) हे **इन्द्रासोमा**=बल व सौम्यता के दिव्य भावो! **युवम्**=आप दोनों **अंग**=शीघ्र ही उस धन को **रराथे**=हमारे लिये देते हो, जो **तरुत्रम्**=आपत्तियों से तरानेवाला है, विषय वासनाओं में न फँसानेवाला है। **अपत्यसाचम्**=उत्तम सन्तान से युक्त है तथा **श्रुत्यम्**=श्रवणीय है, हमें यशस्वी बनानेवाला है। (२) हे **उग्रा**=तेजस्वी इन्द्र और सोम! **युवम्**=आप **चर्षणिभ्यः**=श्रमशील मनुष्यों के लिये **नर्यम्**=नरहितकारी **पृतनाषाहम्**=शत्रु-सैन्यों के अभिभावुक **शुष्मम्**=बल को **संविव्यथुः**=परिवेष्टित करते हो, ऐसे बल से उन्हें आच्छादित करते हो। इस बल से युक्त होकर वे सब शत्रुओं को जीतनेवाले होते हैं।

भावार्थ—बल व सौम्यता के दिव्य भाव हमारे लिये उस धन को देते हैं जो आपत्तियों से तरानेवाला, उत्तम सन्तान से युक्त व हमें यशस्वी बनानेवाला है। ये हमें उस बल को देते हैं जो नरहितकारी व शत्रुशैन्य का पराजय करनेवाला है।

अगले सूक्त का देवता 'बृहस्पति' है—

[७३] त्रिसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अद्रिभित्' बृहस्पति

यो अ॑द्रि॒भित्प्र॑थम॒जा ऋ॒ताव॒ा बृह॒स्पति॑राङ्गिर॒सो ह॒विष्मा॑न्।
द्वि॒बर्ह॑ज्मा प्राघर्म॒सत्पि॒ता न॒ आ रोद॑सी वृष॒भो रो॑रवीति॥ १॥

(१) **यः**=जो प्रभु **अद्रिभित्**=हमारे अविद्या पर्वत का विदारण करनेवाले हैं। **प्रथमजाः**=सृष्टि से पूर्व ही विद्यमान हैं 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'। **ऋतावा**=ऋतवाले हैं, प्रभु के तीव्र तप से ही ऋत की उत्पत्ति होती है 'ऋतं च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत'। **बृहस्पतिः**=(ब्रह्मणस्पतिः) वेदज्ञान के रक्षक हैं। **आंगिरसः**=उपासकों के अंग-प्रत्यंग में रस का संञ्चार करनेवाले हैं। **हविष्मान्**=प्रशस्त हविवाले हैं, सृष्टियज्ञ के महान् होता हैं। (२) **द्विबर्हज्मा**=दोनों लोकों में प्रवृद्ध गतिवाले हैं (द्वि-बर्ह-ज्मा) द्युलोक व पृथिवीलोक में सर्वत्र प्रभु की क्रिया विद्यमान है। **प्राघर्मसत्**=प्रकृष्ट तेज में आसीन होनेवाले हैं, तेजःपुञ्ज हैं, तेज ही तेज हैं। **नः पिता**=हम सबके पिता हैं। **वृषभः**=ये सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु हैं **रोदसी**=इन द्यावापृथिवी में **आरोरवीति**=खूब ही गर्जना करते हैं। इन लोकों में स्थित सब मनुष्यों के हृदयों में स्थित होकर उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश करते हैं। अच्छे कर्मों में उत्साह व बुरे कर्मों में भय, शंका व लज्जा प्रभु ही तो प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—ज्ञान के स्वामी प्रभु ही हमारे अविद्या पर्वत का विदारण करते हैं। हमें तेजस्वी बनाते हैं। हृदयस्थ रूपेण कर्तव्य की प्रेरणा देते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुरः विदर्दरीति

जना॑य चि॒द्य ईव॑त उ लो॒कं बृह॒स्पति॑र्दे॒वहू॑तौ च॒कार॑।
घ्नन्वृ॒त्राणि॒ वि पुरो॑ दर्दरीति॒ जय॒ञ्छत्रूँ॑रमि॒त्रान्पृ॒त्सु साह॑न्॥ २॥

(१) **यः बृहस्पतिः**=जो ज्ञान के स्वामी प्रभु हैं, वे **ईवते जनाय**=गतिशील-आलस्यशून्य-मनुष्य के लिये **चित् उ**=पूर्ण निश्चय से **देवहूतौ**=यज्ञों में **लोकम्**=स्थान को **चकार**=करते हैं। अर्थात् वे ज्ञानस्वरूप (चित् रूप) प्रभु पुरुषार्थी मनुष्य को यज्ञ की रुचिवाला बनाते हैं। (२) इस प्रकार यज्ञरुचि बनाकर प्रभु **वृत्राणि घ्नन्**=इसकी वासनाओं को नष्ट करते हुए **पुरः विदर्दरीति**=काम-क्रोध-लोभ की नगरियों का विदारण कर देते हैं। इसके **शत्रून्**=इन काम आदि शत्रुओं को **जयन्**=जीतते हुए, **पृत्सु**=संग्रामों में **अमित्रान्**=द्वेष आदि रूप अमित्र भूत भावनाओं को **साहन्**=पराभूत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु कर्मशील पुरुष को यज्ञशील बनाते हैं। इसके आसुर भावों का विनाश करते हैं।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अपः स्वः' सिषासन्

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

(१) **बृहस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी प्रभु **वसूनि**=निवास के लिये आवश्यक सब धनों को हमारे लिये **समजयत्**=जीतते हैं। **एषः देवः**=ये हमारे लिये शत्रुओं को पराजित करने की कामनावाले प्रभु (दिव् विजिगीषा) **महः**=महत्त्वपूर्ण **गोमतः**=प्रशस्त इन्द्रियोंवाले **व्रजान्**=बाड़ों को (cow-shed) हमारे लिये जीतते हैं। अर्थात् प्रभु सब वसुओं को प्राप्त कराते हैं और प्रशस्त इन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं। (२) ये **अप्रतीतः**=किसी से भी प्रतिगत न होनेवाले, न रोके जानेवाले, प्रभु **अपः**=रेतःकणरूप जलों को तथा **स्वः**=प्रकाश को **सिषासन्**=हमारे साथ सम्भक्त करने की कामनावाले हैं। **बृहस्पतिः**=ये ज्ञान के स्वामी प्रभु **अर्कैः**=अर्चना के साधनभूत मन्त्रों के द्वारा **अमित्रं हन्ति**=हमारा विनाश करनेवाली द्वेष आदि की भावनाओं को **हन्ति**=नष्ट करते हैं।

भावार्थ—ज्ञान के स्वामी प्रभु हमें वसुओं को प्राप्त कराते हैं, प्रशस्त इन्द्रियों को देते हैं। रेतःकणों को व प्रकाश को प्राप्त कराते हुए ये ज्ञान के स्वामी प्रभु मन्त्रों द्वारा द्वेष आदि अमित्रभूत भावनाओं को विनष्ट करते हैं।

अगले सूक्त के देवता 'सोमारुद्रौ' हैं सौम्य, परन्तु शत्रुओं के लिये भयङ्कर अथवा सोमरक्षण के द्वारा रोगों का द्रावण करनेवाले। सोमरक्षण रोगविनाश का हेतु तो है ही—

[७४] चतुःसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'सोम और रुद्र' का आराधन

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्य१ं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

(१) हे **सोमारुद्रा**=सोमरक्षण व रोगद्रावण के भावो! **असुर्यम्**=बल को हमारे लिये **धारयेथाम्**=धारण करो। **वाम्**=आपके **इष्टयः**=यज्ञ **अरम्**=पर्याप्त **प्र अश्नुवन्तु**=हमें व्याप्त करें। हम सदा सोम और रुद्र के उपासनात्मक यज्ञों को करनेवाले बनें। (२) **दमे दमे**=प्रत्येक शरीरगृह में **सप्त रत्ना**=सात रत्नों को, 'आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' रूप सात उत्तम चीजों को **दधाना**=धारण करते हुए ये सोम और रुद्र **नः**=हमारे लिये **शं भूतम्**=शान्ति को देनेवाले हों। हमारे **द्विपदे**=दो पाँववाले पुत्र आदि के लिये तथा **चतुष्पदे**=गवादि चतुष्पाद् पशुओं के लिये भी **शम्**=शान्ति को देनेवाले हों।

भावार्थ—सोमरक्षण द्वारा रोगद्रावण के पवित्र भाव हमें सबल बनायें। हम सोम व रुद्र का ही आराधन करें। यह आराधना हमारे जीवनों में 'आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' रूप सात रत्नों का धारण करे तथा हमारे लिये शान्ति को देनेवाली हो।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'विषूची अमीवा' का उच्छेद

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु॥ २॥

(१) हे **सोमारुद्रा**=सोमरक्षण व रोगद्रावण के पवित्र भावो! **या**=जो रोग **नः**=हमारे **गयम्**=शरीररूप गृह में **आविवेश**=घुस आया है, उस **विषूचीम्**=भिन्न-भिन्न रूपों में गति करनेवाले **अमीवा (म्)**=रोग को **विवृहतम्**=जड़ से उखाड़ दो, हमारे से इसे पृथक् कर दो। (२) **निर्ऋतिम्**=इस रोग रूप अलक्ष्मी को **पराचैः**=दूरगमन साधनों से **आरे बाधेथाम्**=हमारे से दूर ही रोक दो। **अस्मे**=हमारे लिये **भद्रा**=कल्याणकर **सौश्रवसानि**=उत्तम यश व ज्ञान **सन्तु**=हों।

भावार्थ—सोम और रुद्र की आराधना से नीरोग बनकर, अलक्ष्मी को दूर करके हम कल्याणकर यशस्वी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सब रोगों का औषध

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत्॥ ३॥

(१) हे **सोमारुद्रा**=सोमरक्षण व रोगद्रावण के भावो! **युवम्**=आप **अस्मे**=हमारे लिये **तनूषु**=शरीरों में **एतानि**=इन **विश्वा भेषजानि**=सब भेषजों को, औषधों को **धत्तम्**=धारण करो। वस्तुतः सुरक्षित सोम सब रोगों का औषध बनता ही है। (२) **नः**=हमारे **तनूषु**=शरीरों में **बद्धम्**=बंधा हुआ जो भी **एनः अस्मि**=पाप है, उसे **अवस्यतम्**=सुदूर समाप्त करो। **अस्मत्**=हमारे से **कृतं एनः**=किये हुए पाप को भी **मुञ्चतम्**=छुड़ाओ। सोमरक्षण से रोगों का द्रावण होने पर केवल शरीर ही नीरोग नहीं बनता, मन भी पवित्र बन जाता है।

भावार्थ—सोम और रुद्र की आराधना सब औषधों को प्राप्त कराता है। शरीर व मनोगत सब विकारों को दूर करता है।

ऋषिः—**भरद्वाजो बार्हस्पत्यः** ॥ देवता—**सोमारुद्रौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वरुण के पाश से छुटकारा

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना॥ ४॥

(१) हे **सोमारुद्रौ**=सोमरक्षण व रोगद्रावण के पवित्र भावो! आप **तिग्मायुधौ**=बड़े तीक्ष्ण धनुषवाले हो और **तिग्महेती**=तीक्ष्ण शरों (बाणों) वाले हो। **सुशेवौ**=उत्तम सुख को देनेवाले आप **इह**=इस जीवन में रोगविनाश के द्वारा, **नः**=हमारे लिये **सुमृडतम्**=उत्तम सुख को देनेवाले होइये। (२) ये सोम और **रुद्र नः**=हमें **वरुणस्य पाशात्**=वरुण के पास से **प्रमुञ्चतम्**=मुक्त करें। अनृतवादी को ही वरुण के पाश बाँधते हैं। ये सोम और रुद्र हमें अनृत से छुड़ाकर वरुण के पाशों से भी मुक्त करें। इस प्रकार **सुमनस्यमाना**=हमें शोभन मनवाला बनाते हुए ये सोम और रुद्र **नः**=हमें **गोपायतम्**=सुरक्षित करें।

भावार्थ—सोम और रुद्र का आराधन रोगविनाश द्वारा हमें सुखी बनाये। तथा यह आराधन हमें अनृत से छुड़ाकर सुरक्षित करे।

इस प्रकार सोम और रुद्र के आराधन से अपना रक्षण करनेवाला यह 'पायु' बनता है (पाति इति)। अपने में शक्ति को भरनेवाला 'भारद्वाज' तो यह है ही। यह युद्ध में सदा विजयी बनता है। युद्ध के एक-एक उपकरण का यह चित्रण करता है और कहता है—

[७५] पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**वर्म** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वर्म=कवच की महिमा

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १ ॥

(१) **यत्**=अब **समदाम्**=संग्रामों के **उपस्थे**=उपस्थित होने पर एक योद्धा **वर्मी**=कवचवाला होकर, कवच को धारण करके **याति**=रणांगण में गति करता है तो इसका **प्रतीकम्**=रूप **जीमूतस्य इव**=जलों से परिपूर्ण मेघ के समान **भवति**=होता है। लोहे का बना हुआ कवच उस योद्धा को बिलकुल बादल के रंग का बना देता है। (२) हे सैनिक! **त्वम्**=तू **अनाविद्धया**=शत्रु के बाणों से न विंधे हुए **तन्वा**=शरीर से युक्त हुआ-हुआ **जय**=विजय को प्राप्त कर। **त्वा**=तुझे **सः**=वह **वर्मणः महिमा**=कवच की महिमा **पिपर्तु**=पालित करे। तू कवच के कारण शत्रुशरों से शीर्ण शरीरवाला न हो।

भावार्थ—कवच को धारण करके, मेघ के समानरूपवाला यह योद्धा शत्रुशरों से विद्ध शरीरवाला न हो और सदा विजयी बने।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**धनुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

धनुष द्वारा विजय

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

(१) **धन्वना**=धनुष के द्वारा, युद्ध के अस्त्रों के द्वारा **गाः**=हम शत्रुओं से चुरायी गयी गौवों को फिर से जीतनेवाले बनें। **धन्वना**=इस धनुष से **आजिम्**=संग्राम को **जयेम**=जीतें। **धन्वना**=इस धनुष से ही **तीव्राः**=बड़े उद्धत स्वभाववाले **समदः**=मदयुक्त शत्रुसैन्यों को **जयेम**=जीतनेवाले हों। (२) **धनुः**=यह हमारा धनुष **शत्रोः**=शत्रु की **अपकामं कृणोति**=विजय की कामना को समाप्त कर देता है। हमारे धनुष को देखकर शत्रु लौट जाता है, आक्रमण की इच्छा नहीं करता। **धन्वना**=इस धनुष के द्वारा **सर्वाः प्रदिशः**=सब विस्तृत दिशाओं को, इनमें स्थित व्यक्तियों को **जयेम**=हम जीतें।

भावार्थ—धनुष (आयुध) ही हमें युद्ध में विजयी बनाता है।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**ज्या** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्या (डोरी)

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ३ ॥

(१) **प्रियं सखायम्**=अपने मित्र सखा (पति) को **परिषस्वजाना**=आलिंगन करती हुई **योषा इव**=नारी की तरह, इषु का आलिंगन करती हुई **इयं ज्या**=यह डोरी **वक्ष्यन्ती इव**=कुछ कहना-सा चाहती हुई **कर्णं आगनीगन्ति**=कान के समीप आती है। (२) **अधि धन्वन्**=धनुष पर **वितता**=फैली हुई **समने पारयन्ती**=युद्ध में पार को प्राप्त करती हुई यह **ज्या शिङ्क्ते**=अव्यक्त ध्वनि करती है।

भावार्थ—धनुष से तीर चलाते समय धनुष की डोरी इस प्रकार धानुष्क के कान के समीप आती है, जैसे कि प्रिय पति को आलिंगन करती हुई नारी प्रिय कथन के लिये पति के कान के समीप आती है।

ऋषि:—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**आर्त्नी** ॥ छन्द:—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवतः** ॥

आर्त्नी (धनुष्कोटी)

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान्॥ ४॥

(१) **ते**=वे **आर्त्नी**=धनुष्कोटियाँ **समना योषा इव**=समान मनवाली (समनस्का) स्त्री की तरह **आचरन्ती**=आचरण करती हुई, जैसे वह स्त्री पति सान्निध्य को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार धनुष के सान्निध्य को न छोड़ती हुई ये धनुष्कोटियाँ, **माता पुत्रं इव उपस्थे**=माता जैसे गोद में बच्चे का धारण करती है। इसी प्रकार ये धनुष्कोटियाँ **बिभृताम्**=सैनिक (योद्धा) का धारण करती हैं। (२) **इमे**=ये **संविदाने**=परस्पर संज्ञानवाली होती हुईं, विसंवाद रहित होती हुई, धनुष्कोटियाँ **अमित्रान्**=अमित्रों को **विष्फुरन्ती**=हिंसित करती हुई **शत्रून्**=शत्रुओं को **अपविध्यताम्**=विद्ध करके दूर भगा दें।

भावार्थ—धनुष्कोटियाँ योद्धा का धारण करनेवाली हों। परस्पर संज्ञानवाली होकर शत्रुओं को अपविद्ध करनेवाली हों।

ऋषि:—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**इषुधिः** ॥ छन्द:—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:—**धैवतः** ॥

इषुधि (तरकस)

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः॥ ५॥

(१) इषुधि में बाण रखे जाते हैं, सो इषुधि इन बाणों का रक्षक होने से पिता है। बाण उसके पुत्र के समान हैं। यह **इषुधिः**=तरकस **बह्वीनां पिता**=बहुत से बाणों का पिता है। ये **बहुः**=बहुत से बाण **अस्य**=इस इषुधि के **पुत्रः**=पुत्र हैं यह **समना अवगत्य**=युद्ध में आकर **चिश्चा कृणोति**=बाण को निकालते समय होनेवाली इस अव्यक्त-सी 'चिश्चा' ध्वनि को करता है। (२) **च**=और **पृष्ठे निनद्धः**=सैनिक की पीठ पर बँधा हुआ यह तरकस **प्रसूतः**=अपने में से बाणों को शत्रु की ओर प्रेरित करता हुआ **सर्वाः**=सब **संकाः**=(समं कायन्ति शब्दायन्ते) मिलकर शब्द करनेवाली **पृतनाः**=सेनाओं को **जयति**=विजय करता है। इषुधि में स्थित बाण ही विजय का साधन बनते हैं।

भावार्थ—तरकस बाणों को अपने अन्दर सुरक्षित करता है। बाण मानो इसके पुत्र हैं, यह उनका पिता है। इससे निकले हुए बाण शत्रु-सैन्य को पराजित करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**सारथिः, रश्मयः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

सारथि

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥

(१) **रथे तिष्ठन्**=रथ पर स्थित हुआ-हुआ **सुषारथिः**=उत्तम सारथि **यत्र यत्र कामयते**=जहाँ-जहाँ चाहता है, वहाँ-वहाँ **वाजिनः**=घोड़ों को **पुरः नयति**=आगे ले जाता है। सारथि घोड़ों को हाँकता हुआ लक्ष्य स्थान पर रथ को प्राप्त कराता है। (२) वस्तुतः सारथि कितना भी कुशल हो, पर बिना लगाम के तो उसके लिये कुछ भी करने का सम्भव नहीं होता। सो कहते हैं कि **अभीशूनाम्**=रश्मियों की, लगाम की **महिमानम्**=महिमा को **पनायत**=स्तुत करो। ये **रश्मयः**=रश्मियाँ ही, लगामें ही **मनः पश्चात्**=मन के अनुकूल होती हुई, सारथि के मन के अनुसार **अनुयच्छन्ति**=घोड़ों का नियमन करती हैं।

भावार्थ—उत्तम सारथि लगाम के द्वारा घोड़ों को वश में रखता हुआ इन घोड़ों को यथेष्ट स्थान की ओर प्रेरित करता है।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**अश्वाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अश्वाः

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥

(१) **वृषपाणयः**=(पां सूनां वर्षकखुराः) धूलियों को बरसानेवाले खुरोंवाले **अश्वाः**=घोड़े **रथेभिः सह**=रथों के साथ **वाजयन्तः**=वेग को करते हुए, वेग से आगे बढ़ते हुए, **तीव्रान् घोषान्**=तीव्र शब्दों को **कृण्वते**=करते हैं। (२) ये घोड़े **अनपव्ययन्तः**=रणांगण से न भागते हुए **प्रपदैः**=पाद के अग्र भागों से **अमित्रान्**=अमित्रों को **अवक्रामन्तः**=आक्रान्त करते हुए **शत्रून्**=शत्रुओं को **क्षिणन्ति**=हिंसित करते हैं।

भावार्थ—उत्तम घोड़े युद्ध में आगे और आगे बढ़ते हैं। तीव्र घोषों को करते हुए ये पादाग्रों से शत्रुओं को आक्रान्त करते हैं।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**रथः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रथः

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥

(१) **यत्र**=जहाँ रथ में **अस्य**=इस शूरवीर के **रथवाहनम्**=रथ को संचालित करनेवाले उपकरण, **हविः**=अन्न और **नाम आयुधम्**=शत्रुओं को नमानेवाले अस्त्र **निहितम्**=रखे हैं और **अस्य**=इस योद्धा का **वर्म निहितम्**=कवच रखा है। वस्तुतः रथ का सभी युद्धोपकरणों से युक्त होना आवश्यक ही है। (२) **तत्र**=वहाँ **वयम्**=हम **विश्वाहा**=सदा **सुमनस्यमानाः**=उत्तम मनवाले होते हुए **शग्मं रथम्**=सुखकर रथ में **उपसदेम**=आसीन हों। यह रथ हमारी विजय का साधन बनता हुआ हमारे लिये सदा सुखकर हो।

भावार्थ—रथ सब उपकरणों से युक्त हो, आवश्यक भोजनादि सामग्री, आयुध कवच आदि

सभी उसमें रखे हों। यह रथ युद्ध में सहायक होकर हमारे लिये सुखकर हो। यह हमें विजयी बनाये।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**रथगोपाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रथगोपाः

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः॥ ९॥

(१) **पितरः**=राष्ट्र-रक्षक लोग, राष्ट्ररूप रथ के गोपा, **स्वादुषंसदः**=स्वादु, सुख प्रीति विवर्धन, अन्नों में आसीन होते हैं। सदा सात्त्विक अन्नों का सेवन करते हैं। **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं, **कृच्छ्रेश्रितः**=आपत्ति में प्रजाओं से आश्रयणीय होते हैं। **शक्तीवन्तः**=शक्तिशाली व **गभीराः**=गम्भीर स्वभाववाले होते हैं। (२) ये राष्ट्र-रक्षा के लिये **चित्रसेनाः**=अद्भुत सेनावाले, **इषुबलाः**=बाणों (शस्त्रों) के बलवाले होते हैं। पर्याप्त सेना को रखते हैं और उस सेना को अस्त्रों से सन्नद्ध रखते हैं। इसीलिए **अमृध्राः**=शत्रुओं से हिंसित होने योग्य नहीं होते। **सतः वीराः**=प्राप्त वीर्य, अर्थात् वीरता सम्पन्न होते हैं। **उरवः**=विशाल हृदयवाले होते हैं। **व्रातसाहाः**=शत्रुसमूहों को पराभूत करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—राष्ट्र-रक्षक लोग सात्त्विक अन्न का सेवन करनेवाले, कष्टों में प्रजा से आश्रयणीय, शक्तिशाली व गम्भीर होते हैं। ये अस्त्र-सन्नद्ध सैन्यों द्वारा शत्रुसमूह को अभिभूत करके राष्ट्र-रथ के गोपा (रक्षक) होते हैं।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥ १०॥

(१) हमारे राष्ट्र के **ब्राह्मणासः**=ज्ञान को प्रधानता देनेवाले ब्राह्मण लोग तथा **पितरः**=राष्ट्र-रक्षक क्षत्रियवर्ण **सोम्यासः**=सोम का सम्पादन करनेवाले हों। यह सोमरक्षण ही इन्हें 'ब्राह्मण व पिता' बनायेगा। सुरक्षित सोम ब्राह्मणों की ज्ञानाग्नि का ईंधन बनेगा तो क्षत्रियों को शक्ति-सम्पन्न बनायेगा। ऐसा होने पर **अनेहसा**=निष्पाप ये **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक **नः शिवे**=हमारे लिये कल्याणकर हों। ब्राह्मणों व क्षत्रियों के ठीक होने पर राष्ट्र में पाप नहीं फैलते। ऐसा राष्ट्र मंगलमय होता है। (२) इस राष्ट्र में **पूषा**=पोषण करनेवाला वैश्य वर्ग **ऋतावृधः नः**=ऋत का, यज्ञ का वर्धन करनेवाले हम लोगों को **दुरितात् पातु**=दुर्गति से बचाये। अन्नाभाव के कारण राष्ट्र में भुखमरी ही न फैल जाये। वैश्यवर्ग 'कृषि, गोरक्षा व वाणिज्य' द्वारा सदा सुकाल बनाये रखे और यज्ञों का वर्धन करे। इस प्रकार प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! आप हमारा **रक्षा**=रक्षण करिये। **अघशंसः**=बुराई का शंसन करनेवाला **नः**=हमारा **माकिः**=मत **ईशत**=ईश बन जाये। हम इसकी बातों में आकर पाप की ओर न बहक जायें।

भावार्थ—हमारे राष्ट्र के ब्राह्मण सोमरक्षण द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करें। क्षत्रिय सोमरक्षण द्वारा शक्ति-सम्पन्न हों। ये दोनों राष्ट्र को निष्पाप बनायें। वैश्य अन्नाभाव को न होने देकर हमें दुर्गति से बचायें। यज्ञों के वर्धन का कारण बनें। हम अघशंस लोगों से बहकाये जाकर पाप में न फँस जाएँ।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**इषवः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इषवः

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन्॥ ११ ॥

(१) बाण अग्रभाग में कङ्क-पक्षी के पंख को लगाते हैं, इस से बाण की गति में तीव्रता आ जाती है। यह इषु **सुपर्णम्**=पंख को **वस्ते**=धारण करता है। **अस्याः**=इस इषु का **दन्तः**=दाँत के समान आकारवाला अग्रभाग **मृगः**=शत्रुओं को ढूँढता-सा है (मृगयमाणः) इन्हें विद्ध करने की कामनावाला होता है। **गोभिः सन्नद्धा**=गोविकार स्नायुओं से सम्यग् बद्ध हुआ-हुआ यह इषु, **प्रसूता**=प्रेरित हुआ-हुआ, **पतति**=शत्रुओं पर पड़ता है। (२) **यत्र**=जहाँ युद्ध में **नरः**=मनुष्य **संद्रवन्ति**=मिलकर इधर-उधर गतिवाले होते हैं, **च**=और **विद्रवन्ति च**=विविध दिशाओं में अलग-अलग भाग खड़े होते हैं, **तत्र**=वहाँ रणांगण में **इषवः**=ये बाण **अस्मभ्यम्**=हमारे लिये **शर्म यंसन्**=सुख को देनेवाले हों।

भावार्थ—अग्रभाग में पंख को धारण करनेवाला यह बाण प्रेरित होकर शत्रुओं पर पड़ता है। शत्रुओं में यह भगदड़ मचा देता है। यह बाण रणांगण में हमारे लिये सुखकर हो।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**इषवः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

सोम-अदिति

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु॥ १२ ॥

(१) छोड़ा हुआ बाण सीधे मार्ग से सरल रेखा में गतिवाला होता है। हे **ऋजीते**=(ऋजु गच्छति इति) बाण! **नः परिवृङ्धि**=हमें छोड़नेवाला हो, हमारे पर तू न पड़। **नः तनूः**=हमारा शरीर तो **अश्मा भवतु**=पत्थर के समान हो। पत्थर पर जैसे बाण का प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार हमारे शरीर पर भी इनका प्रभाव न हो। (२) **सोमः**=(सोमो वै ब्राह्मणः तां० २३।१६।५) सोम का सम्पादन करनेवाला, सोमरक्षण द्वारा अपनी ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाला ब्राह्मण **नः**=हमारे लिये **अधि ब्रवीतु**=आधिक्येन उपदेश देनेवाला हो। **अदितिः**=(पृथिवी नाम नि० १।१) यह पृथिवी हमारे लिये **शर्म यच्छतु**=सुख को देनेवाली हो। ब्राह्मणों से दिये गये ज्ञानोपदेश के अनुसार हम अपने कार्य करेंगे, तो अवश्य यह राष्ट्र हमारे लिये सुखकर होगा, यह भूमि हमारे लिये कल्याण ही कल्याण को करेगी।

भावार्थ—हमारे शरीर बाणों के लिये अभेद्य हों। कवच आदि से सुरक्षित होकर हम अपना रक्षण कर पायें। ज्ञानियों के द्वारा दिये गये ज्ञान के अनुसार चलने से यह भूमि हमारे लिये सुखकर हो।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**प्रतोदः** ॥ छन्दः—**स्वराडुष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रतोदः

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय॥ १३ ॥

(१) हे **अश्वाजनि**=(अश्व+अज) अश्वों को गति देनेवाली व अश्वों पर फेंके जानेवाली

कशे (चावुक) **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले समझदार सारथि तेरे द्वारा **एषाम्**=इन घोड़ों के **सानु**=सविथ प्रदेशों को (thigh) **आजङ्घन्ति**=आहत करते हैं। **जघनान्**=जघन प्रदेशों को (the hip and the coins) **उपजिघ्नते**=आहत करते हैं। (२) इस प्रकार हे कशे! तू **अश्वान्**=इन घोड़ों को **समत्सु**=संग्रामों में **चोदय**=प्रेरित कर। तेरे से आहत हुए-हुए ये घोड़े तीव्रता से आगे बढ़नेवाले हों।

भावार्थ—समझदार सारथि कशा के समुचित प्रयोग से घोड़ों को रणांगण में आगे तीव्रगतिवाला करता है।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**हस्तघ्नः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

हस्तघ्नः

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ १४ ॥

(१) **हस्त**=समीपवर्ती प्रकोष्ठ में स्थित हुआ-हुआ यह डोरी के आघात से आहत होता है, सो इसे 'हस्तघ्न' कहते हैं। यह **हस्तघ्नः**=हस्तघ्न **बाहुं पर्येति**=बाहु को इस प्रकार परिवेष्टित कर लेता है **इव**=जैसे कि **अहिः**=साँप **भोगैः**=अपने शरीरावयवों से किसी की बाहु को घेर लेता है। इस प्रकार यह **ज्यायाः**=धनुष की डोरी के **हेतिम्**=आघात को **परिबाधमानः**=रोकनेवाला होता है। हस्तघ्न हमें डोरी के आघात से बचाता है। (२) इस 'हस्तघ्न' द्वारा ज्या की हेति से अपना बचाव करता हुआ, **विश्वा वयुनानि**=सब प्रज्ञानों को **विद्वान्**=जानता हुआ, युद्ध की सब नीतियों को समझता हुआ, **पुमान्**=वीर पुरुष **पुमांसम्**=वीर सैनिकों का **विश्वतः परिपातु**=सर्वतः रक्षण करे, वीर सेनानी वीर सैनिकों का रक्षण करनेवाला हो, अनीति से उन्हें यों ही रणाग्नि में न झोंक दे।

भावार्थ—हस्तघ्न हमें धनुष की डोरी के आघात से बचाये। हस्तघ्न को धारण करनेवाला वीर सेनानी युद्ध नीति को समझता हुआ वीर सैनिकों की व्यर्थ में हत्या न होने दे।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**इषवः** ॥ छन्दः—**निचृद् अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

आलाक्ता इषु

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥

(१) बाण के अग्रभाग को विष में बुझा लेते हैं सो **या**=जो बाण **आल अक्ता**=विष से सिक्त है। **रुरुशीर्ष्णी**=मृगशृंग से जिसका अग्रभाग बना हुआ है। **अथ उ**=और निश्चय से **यस्याः**=जिसका **मुखम्**=मुख **अयः**=अयोमय, लोहे का बना हुआ है। (२) **पर्जन्यरेतसे**=पर्जन्य की कार्यभूत इस **देव्यै इष्वै**=युद्ध में विजय की कामनावाली (दिव्=विजिगीषा) इषु के लिये **इदम्**=यह **बृहत्**=बहुत **नमः**=आदर करते हैं। जिस शरकाण्ड (सरकण्डे) से इषु बना होता है, वह बादल की वृष्टि से उत्पन्न होता है सो उसे 'पर्जन्यरेतस्' कहा है। इस इषु का हम आदर करते हैं। इसी ने तो हमें युद्ध में विजयी बनाना है।

भावार्थ—बाण विषसिक्त होता है। मृगशृंग का इसका शिरस् है। अयोमय इसका मुख है। बादल से उत्पन्न शरकाण्ड का यह बना है। युद्ध में विजय प्राप्त करानेवाले इस इषु का हम आदर करते हैं। इसके द्वारा शत्रुओं को नतमस्तक करते हैं।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**इषवः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

'शरव्या' इषु

अव॑सृष्टा॒ परा॑ पत॒ शर॑व्ये॒ ब्रह्म॑संशिते।
गच्छा॒मित्रा॒न्प्र प॑द्यस्व॒ मामीषां॒ कं च॒नोच्छि॑षः॥ १६॥

(१) हे **ब्रह्मसंशिते**=(मंत्रेण तीक्ष्णीकृते) विचारपूर्वक प्रयोग से शत्रु के लिये बड़ी तीक्ष्ण बनी हुई **शरव्ये**=शत्रुहिंसन में कुशल इषो! **अवसृष्टा**=छोड़ी हुई तू **परापत**=सुदूर शत्रुओं पर पड़। (२) **गच्छ**=शत्रुओं की ओर जा। **अमित्रान् प्रपद्यस्व**=उन अमित्रों को प्राप्त हो और **अमीषाम्**=उनमें से **कञ्चन**=किसी को भी **मा उच्छिषः**=अवशिष्ट मत कर। सभी को तू समाप्त करनेवाली हो।

भावार्थ—विचारपूर्वक चलाया गया बाण शत्रुओं के लिये बड़ा तीक्ष्ण हो, यह सब शत्रुओं को समाप्त करनेवाला हो।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च)** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

युद्धभूमि में रक्षण

यत्र॑ बा॒णाः सं॒पत॑न्ति कुमा॒रा वि॑शि॒खाइ॑व।
तत्रा॑ नो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒रदि॑तिः॒ शर्म॑ यच्छतु वि॒श्वाहा॒ शर्म॑ यच्छतु॥ १७॥

(१) **यत्र**=जहाँ युद्धभूमि में **बाणाः**=बाण **सम्पतन्ति**=लगातार पड़ते हैं (सम्=मिलकर) और **कुमाराः**=बड़ी बुरी तरह से मारनेवाले होते हैं। **विशिखाः इव**=विशिष्ट ही शिखावाले होते हैं, जिन बाणों के अग्रभाग १५वें मन्त्र के अनुसार 'आलाक्त' होते हैं। इन बाणों का जहाँ निरन्तर पतन हो रहा है, **तत्र**=वहाँ **ब्रह्मणस्पतिः**=ज्ञान का स्वामी **अदितिः**=(न दितिर्यस्मात्) न खण्डन होने देनेवाला प्रभु **नः**=हमारे लिये **शर्म यच्छतु**=रक्षण को व सुख को **यच्छतु**=दे। युद्ध विद्या से पूर्ण अभिज्ञ होकर हम अपना रक्षण कर सकें। (२) प्रभु **विश्वाहा**=सदा ही **शर्मयच्छतु**=हमारे लिये सुख को दें। वस्तुतः ज्ञान प्राप्ति के होने पर युद्धों का कम ही सम्भव होता है और युद्ध हो भी जाएँ तो हम व्यर्थ में मृत्यु को नहीं प्राप्त होते। ज्ञान हमारा रक्षण करता है।

भावार्थ—विशिष्ट अग्रभागवाले, बुरी तरह से मारनेवाले बाण जहाँ निरन्तर पड़ रहे हैं, उन युद्धभूमियों में भी ज्ञान के स्वामी प्रभु हमें विनष्ट होने से बचायें।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (कवचसोमवरुणाः)** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वर्म-सोम-वरुण

मर्मा॑णि ते॒ वर्म॑णा छादयामि॒ सोम॑स्त्वा॒ राजा॒मृते॒नानु॑ वस्ताम्।
उ॒रोर्वरी॑यो॒ वरु॑णस्ते कृणोतु॒ जय॑न्तं॒ त्वानु॑ दे॒वा म॑दन्तु॥ १८॥

(१) जिन स्थानों पर विद्ध होकर शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है उन्हें 'मर्म' कहते हैं। **ते मर्माणि**=तेरे मर्मस्थलों को **वर्मणा**=कवच के द्वारा **छादयामि**=आच्छादित करता हूँ। कवच से छादित मर्मस्थल शत्रुशरों से विद्ध नहीं होते। **राजा**=जीवन को दीप्त करनेवाला **सोमः**=सोम

(वीर्य) **त्वा**=तुझे **अमृतेन**=नीरोगता से **अनुवस्ताम्**=आच्छादित करे। अर्थात् सोम का रक्षण तुझे नीरोग बनाये। (२) **वरुणः**=द्वेष निवारण की देवता **ते**=तेरे लिये **उरोः वरीयः**=विशाल से भी विशालतर सुख को **कृणोतु**=करनेवाली हो। **जयन्तम्**=राग-द्वेष आदि सब शत्रुओं को पराजित करते हुए **त्वा**=तुझे **देवः**=सब देव, सब दिव्य भाव **अनुमदन्तु**=अनुकूलता से हर्षित करनेवाले हों।

भावार्थ—कवच हमारे मर्मों का रक्षण करे। सुरक्षित सोम हमें नीरोगता प्रदान करे। निर्द्वेषता की देवता हमें आनन्दित करनेवाली हो।

ऋषिः—**पायुर्भारद्वाजः** ॥ देवता—**लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (देवा ब्रह्म च)** ॥
छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

ब्रह्म वर्म मम अन्तरम्

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ १९ ॥

(१) **यः**=जो **स्वः**=अपना, कोई रिश्तेदार, बन्धु-बान्धव अथवा **अरणः**=(अरममाण) हमारे साथ न प्रीतिवाला कोई पराया व्यक्ति **यः च**=और जो **निष्ट्यः**=तिरोभूत-दूरे स्थित पुरुष **नः**=हमें **जिघांसति**=मारना चाहता है। **तम्**=उसको **सर्वे देवाः**=सब देव **धूर्वन्तु**=हिंसित करें। जल, वायु आदि देवों की प्रतिकूलता से वह विनष्ट हो जाये। अथवा हमारे दिव्य भाव उसकी पापवृत्ति को समाप्त करनेवाले हों। (२) **ब्रह्म**=ज्ञान अथवा प्रभु **मम**=मेरे **अन्तरं वर्म**=अन्दर के कवच हों। इस अन्तःकवच से सुरक्षित हुआ मैं हिंसित होऊँ।

भावार्थ—हृदयस्थ प्रभु व ज्ञान को ही हम अपना अन्दर का कवच बनायें और हिंसित न हों।

॥ इति षष्ठं मण्डलम् ॥

वेद प्रभु की वाणी है।

दिव्य ज्ञान वेद प्रभु वाणी है। इसका विस्तार कर मानव जीवन में सुख, शान्ति व ऐश्वर्य वृद्धि का प्रयास करने वाले ही परम पिता परमात्मा को प्रिय होते हैं। पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार ईश्वर के एक ऐसे ही प्रिय पुत्र थे। आजीवन ब्रह्मचारी रह कर उन्होंने निरन्तर वेदों का स्वाध्याय किया और इससे अर्जित ज्ञान को वाणी व लेखनी से जन-जन तक पहुँचाया।

भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों से सम्बन्धित वेदाशय को प्रकट करने वाली तीस से अधिक पुस्तकों के प्रणयन के अतिरिक्त उन्होंने लगभग पन्द्रह हजार पृष्ठों में चारों वेदों का भाष्य भी किया। उनके अपने शब्दों में इस वेद भाष्य का उद्देश्य है "हमने अपनी ओर से प्रयास किया है कि सामान्य पाठक पढ़कर यह न कह बैठे कि समझ में नहीं आया और कोई विद्वान् यह न कह सके कि व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं।"

वेद विद्या की अमूल्य निधि ईश्वर ने सृष्टि के आदि में मानव जाति को प्रदान की थी। इसमें पृथ्वी व तृण से लेकर प्रकृति पर्यन्त पदार्थों के गुणों का ठीक-ठीक ज्ञान एवं जीवन में लोक व्यवहार की सिद्धि तथा भगवत्-प्राप्ति के लिए मार्गदर्शन है। वेदों का मुख्य विषय तो अध्यात्म ज्ञान ही है। प्रतीकों, रूपको व अलंकारों में बांध कर इसे गुह्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। वेद के शब्द ऐसे रहस्यमय ज्ञान की ओर संकेत करते हैं जिन्हें भाषा की साधारण पद्धति से समझा ही नहीं जा सकता।

वेद के इस गुह्य ज्ञान का उद्घाटन ऋषि-मुनियों ने दीक्षा, तप एवं ध्यान द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों व उपनिषदों में किया। कालान्तर में साधना के अभाव में तथा अप्रचलित भाषा शैली के कारण वेद के अभिप्राय को समझना कठिन होता गया। यही कारण था कि रावण, स्कन्द स्वामी, उद्गीथ, वररूचि, भट्ट भास्कर, महिधर व उव्वट आदि बाद के भाष्यकार वेद के वास्तविक अर्थों को अपने भाष्यों में प्रकट न कर पाए।

पाश्चात्य विद्वान् भी वेदों में निहित उदात्त ज्ञान का मूल्यांकन न कर सके। वे इन्हें आदिम काल के पशुपालकों के गीत अथवा वैदिक युग का इतिहास तथा गाथा भण्डार मात्र समझ कर रह गये। उन्नीसवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में महर्षि दयानन्द ने नैरुक्तिक प्रणाली से भाष्य करके दिखाया कि वेदों में बीज रूप से सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान विद्यमान है।

पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार ने स्वामी दयानन्द की निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार वेदभाष्य किया है। वह निरुक्त एवं व्याकरण के अप्रतिम विद्वान् थे। वेद मन्त्रों की शास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या करने तथा संगति लगाने में उनकी प्रतिभा अपूर्व थी। व्याकरण, धातु पाठ से युक्त उनका यह भाष्य जहां उद्भट विद्वानों के लिए विचार विमर्श की सामग्री प्रस्तुत करता है वहीं सामान्य पाठक के लिए यह अत्यन्त प्रेरणादायक, रोचक, सरल, सुबोध एवं सहज में ही हृदयंगम हो जाने वाला है।

अजय भल्ला

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी; ०११-६५८४५५९९, ९३१३७८४२७२